है।
हैं—और बालक माताके शरीरसे लपट
बोले कि, हे निःपाप रघुनाथ! मैंनेतुम्हारे
ा वाकरूपी जालफैलाया है, इससे अपने
। हे रामजी! यहजो मैंने तुमको उपदेश
र चित्तको लगाओ। जैसेहंसजलको त्यागकर
पर्यंत सबउपदेश बारम्बार बिचारकर सारको
तर कर परमपदको प्राप्तहोगे। अन्यथाल
रेगा वह संसारसमुद्रसे तरजावेगा और
ाप्त होगा। जैसे बिंध्याचल पर्व्वतकी
ा वह संसारमें कष्ट पावेगा। हेरामजी! ये
नीचे गिरोगे—जैसे पंथी हाथसे दीपकत्या-
संगहोकर व्यवहारमें विचरोगे तो आत्म
ज्ञान; मनोनाश और वासना क्षय कर
ास्त्रको सिद्धांतहै। हे सभा? हे महाराजो!
मैंने तुमसे कहाहै उसको तुम विचारो; जोकुछ
ूगा। इतनाकह वाल्मीकिजीबोले; हे साधो। इस
सब सभाउठखड़ीहुई और वशिष्ठजीके वचनों को
सूर्य्यकोपाकर कमल खिलआताहै। वशिष्ठ और विश्वा-
र वशिष्ठजी बिश्वामित्रको अपने आश्रममें लेगये। आकाश
वशिष्ठजीको नमस्कारकरके अपने अपने स्थानों कोगये,
से वशिष्ठजीकीपूजनकरके अपने अन्तःपुरमें गये औरश्रोता
र वशिष्ठजीकी पूजनकरके अपने अपनेस्थानोंमें गये। राज
ये, मुनीश्वर बनमें गये और राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न वशिष्ठ
जाकरके फिरअपने गृहमें आये। सब श्रोता अपने
ध्यादिक कर्मकरनेलगे, पितर और देवताओंको पूजाऔर
सबको भोजनकराकर अपने मित्र और भाइयोंके साथ
अपने बर्णाश्रमके धर्म्मको साधा। जब सूर्य्य भगवान्
ा निवृत्त होगई तब रात्रिहुई और निशाचर विचरनेलगे
जपुत्र आदिक जो श्रोताथे सो रात्रिको एकान्तमें अप-
बेचारनेलगे। राजकुमार और राजा अपने २ स्थानों
कुशादिक बिछाकर बैठे बिचारतेथे कि संसारके तरने

का क्या उपायकहाहै; और जो वशिष्ठजीने वचन कहे थे उनमें भलेप्रक और भाहको
एकाग्रकर और भलेप्रकार विचारकर निद्राको प्राप्तहुये। जैसे सूर्य्य उ का कारण नहीं
नियां मुंदजाती हैं तैसेही वे सब सुषुप्ति को प्राप्तहुये; पर राम, लक्ष्मण, गता है तैसेही
शत्रुघ्न तीनपहर वशिष्ठजीके उपदेशको विचारते रहे और आधेपहर सोकेनिवृत्त हुई है

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदिवसरात्रिव्यापारवर्णनंनामप्रथमस्सर्गः नपुरुषोंने

वाल्मीकिजी बोले, हे साधो! इसप्रकार जब रात्रिव्यतीत हुई और म नहीं लेते।
हुआ तब राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्नादिक स्नान और संध्यादिक कर्म कर नाममात्र दो हैं
आश्रम में जा स्थित हुये। वशिष्ठजी भी सन्ध्यादिक करके अग्निहो वास्तव में एकही
और जब करचुके तब रामादिकने उनको अर्घ्य पाद्य से पूजा और त् ब्रह्मरूप है।
भले प्रकार मस्तक रक्खा। जब रामजी गयेथे तब वशिष्ठजी के से ब्रह्म तुमहो।
न था पर एकघड़ी में अनेक सहस्र जीव आये और वशिष्ठज तुम कहो मैं जड़
साथ लेकर राजा दशरथ के गृहमें आये। तब राजा दशर हो? जो चेतनहो
हुये। आये और वशिष्ठजी का आदर पूजन किया और द आदि अन्तसे रहित
नष्ट पूजन किया। निदान नभचर और भूचर जितने श्रोता थे न्ति पावोगे। जो
ही नमस्कार करके बैठे और सब निस्पन्द और एकाग्र होकर । और ब्रह्मरूप
कु निस्पन्द वायु से कमलोंकी पंक्ति अचलहोती है तैसे वे बैठे नारूपी फुरना
होत ते करनेवालेथे वे भी एक ओर बैठे और सूर्य्यकी किरणें झरोखोंके हो, उसमें और
को किरणेंभी वशिष्ठजी के वचन सुननेको आई हैं तब वशिष्ठजीकी जिसके अन्तर
और जैसे स्वामिकार्त्तिक शंकरकी ओर; कच बृहस्पतिकी ओर और कुछ कलना नहीं।
हैं, दे और जैसे भ्रमरा भ्रमता २ आकाशमार्ग से कमलपर तुम्हारी जयहो।
जब जीकी दृष्टि औरोंको देखते २ वशिष्ठजी पर आस्थित हुई चिद्घनस्वरूप
मैं पजीकी ओर देखा और बोले; हे रघुनन्दन! मैंने जो तुमको उ जो जगत् है सो
को कुछ स्मरण है? वे वचन परमार्थ बोधके कारण, आनन्द
गंभीर हैं। अब और भी बोधके कारण और अज्ञानरूपी शत्रुके स्सर्गः २॥
त्रमा वचनों को सुनो। निरन्तर आत्मसिद्धांत शास्त्र में तुमसे क जगत्रूपी तरङ्ग
वैराग्य और तत्त्वके विचार से संसार समुद्रको तरता है और स से मुक्त और भाव
व दुर्बोध निवृत्त होजाता है तब वासनाका आवेश नष्ट होजाता सर्व्व जगत्रूप है
पदको प्राप्त होजाता है। वह पद देशकाल और वस्तुके परिच्छेद त्मा का किञ्चन है
जगत् रूपहोकर स्थित हुआ है और भ्रमसे द्वैतकीनाईं भासत रामजी! महासरल,
अविच्छिन्नसर्व्वत्र ब्रह्म है इस प्रकार महत् स्वरूप जानकर प है और रामरूपी
जी! केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थितहै; न कुछ चित्तहै, तत्त्व है वह जगत्रूपी

सब कलना ब्रह्ममें भ्रमसे फुरती हैं । जो स्पन्द फुरनादृश्य और चित्त
रूप संभ्रम है। ब्रह्मसे कोई पदार्थ नहीं । हे रामजी ! स्वर्ग,पाताल,और
शिवसे तृण पर्यन्त जो कुछ दृश्य है वह सब परब्रह्म है-चिद्रूपसे अन्य
सीन और मित्र, बांधव से लेकर सब ब्रह्म हैं । जबतक अज्ञान कलनासे
बद्धि स्थित है और ब्रह्मभाव नानात्व है तबतक चित्तादि कलना होती है;
में अहंभाव है और अनात्मदृश्यमें ममत्व है तबतक चित्त आदिक
ौर जबतक सन्तजन और सत्शास्त्रोंसे ऊंचे पदको नहीं पाया और
हीं हुई तबतक चित्तादिक भ्रमहोता है । हे रामजी ! जबतक देहाभि
को नहीं प्राप्त हुआ; संसारकी भावना नहीं मिटी और सम्यक्ज्ञान
नहीं पाई; जबतक चित्तादिक प्रकट है; तबतक अज्ञानसे अन्धा है
आशाके आवेशसे मूर्च्छित है और मोहमूर्च्छासे नहीं उठा तबतक
होती है । हे रामजी ! जब तक आशारूपी बिषकी गन्ध हृदय-
है तब तक विचाररूपी चकोरनहीं प्राप्त होता और भोग
जब भोगोंकी आशा मिटजावे और सत्य शीतलता और सं
तब चित्तरूपी भ्रम निवृत्त होजाता है । जब मोह औरतृष्णा और
नेत्य संवित्हो तब चित्त शांतभूमिकाको प्राप्त होता है । हे रामसे
स्थिति स्वरूपमें हुई है वह आपको देहसे दूरदेखता है । उस तु
ी भूमिका कहते हैं । जब अनन्त चेतनतत्त्वकी भावना जाने
ागकर आत्मस्वरूप में प्राप्त होता है तब वह पुरुष सब जगत
देखता है अर्थात् सब अपना स्वरूप देखता है । ऐसा जोआ
उसको जीवत्वादिक भ्रम कहां है ? जब अज्ञान भ्रमाम
न, अद्वैत पद उदय होता हैं । जैसे रात्रि के क्षीण हुये रा
सेही मोहके निवृत्त हुये आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है तुम
साक्षात्कार होता है तब चित्त नष्ट होजाता है । जैसे सूखा पत्र
जाता है तैसेही ज्ञानवान्का चित्त नष्ट होजाता है । हे रामजी !
त्मा पुरुष और परावरदर्शी है और जिसको सर्व्वत्र ब्रह्मही
चित्त सत्यपदको प्राप्त होता है । वह चित्त सत्य कहाता है और
ष्टि नहीं आती । वह चेतनमन है और वह चित्त सत्यपदको
गत् ज्ञानवान्को लीलामात्र भासता है और वह हृदयसे शांति
। उसको सर्व्वदा आत्म ज्योति भासती है; विवेक से उसके
निवृत्त होगई है और स्वरूप में उसने स्थिति पाई है सो

चित्तसत्ता कहाती है। फिर वह कर्म चेष्टा करता भी दृष्टि आता है और मोहको नहीं प्राप्तहोता। जैसे भूनाबीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं और जो अज्ञानी हैं उनकी वासना मोहसंयुक्त है। जैसे कच्चाबीज उगता है तैसेही अज्ञानी वासनासे फिर फिर जन्मलेता है और जिसचित्तसे आसक्ति निवृत्त हुई है उसकी वासना जन्मका कारणनहीं। वह चित्तसत्ता कहाती है। हेरामजी! जिनपुरुषोंने पाने योगपद पाया है और ज्ञानाग्निसे चित्त दग्धकिया है वे फिर जन्म नहीं लेते। जो कुछ जगत् है उनको सब ब्रह्मरूप है। जैसे वृक्ष और तरुनाममात्र दो हैं वास्तवमें एकही है; तैसेही ब्रह्म और जगत् नाममात्र दोनों हैं पर वास्तव में एकही है। जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही ब्रह्ममें जगत् ब्रह्मरूप है। ...तन आत्मारूपी मिरचमें जगत्रूपी तीक्ष्णता है। हे रामजी! ऐसे ब्रह्म तुमहो। ... तुम कहो कि, मैं चित्त नहीं तो कुछ मानाजाता है क्योंकि, जो तुम कहा मैं जड़ हूं तो तुम आकाशवत् हुये तुम्हारे में कलना का उल्लेख कैसेहो? जो चेतनहो तो शोक किसका करतेहो और जो चिन्मयहो तो निरायास आदि अन्तसे रहित हुये। निदान सब तुमहीं हो अपने स्वरूपको स्मरण करो तब शान्ति पावोगे। जो भावमें स्थितहो और सबको उदय करने वाले शान्तरूप, चेतन और ब्रह्मरूप हे रामजी! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है उसके उदयमें वासनारूपी फुरना हो? वह तो महाघनरूप है। हे रामजी! जो तुमहो सोई हो, उसमें और ...ारे में कुछभेद नहीं। वही सत् और असत्रूप होकर भासताहै, जिसके अन्तर ...दार्थ हैं और जिसमें नानात्व और 'अहं'; 'त्वं', 'अज्ञ' 'तज्ज्ञ' में कुछ कलना नहीं। जो सत्यरूप चिद्घन आत्माहै उसको नमस्कारहै। हेरामजी! तुम्हारी जयहो। ...आदि और अन्तसे रहित बिशालहो और शिलाके अन्तर्वत् चिद्घनस्वरूप ...शवत् निर्मल हो। जैसे समुद्रमें तरङ्ग हैं तैसेही तुम्हारे में जो जगत् है सो ...मात्र है। तुम अपने घनस्वरूपमें स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रामदृढीकरणंनामद्वितीयस्सर्गः २॥

वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप रामजी! जिस चेतनरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग फुरते और लीन होजाते हैं ऐसे अनन्त आत्मभाव की भावनासे मुक्त और भाव अभावसे रहित हो। ऐसा जो चिदात्म तुम्हारा स्वरूप है वही सर्व्व जगत्रूप है तब वासनादिक आवरण कहां हैं। जीव और वासना सब आत्मा का किञ्चन है दूसरी वस्तु कुछ नहीं तब और कथा और प्रसङ्ग कैसेहो? हे रामजी! महासरल, गम्भीर और प्रकाशरूप जो चेतन समुद्र है वह तुम्हारा रूप है और रामरूपी एक तरंग फुरआया है सो समुद्र तुम हो। ऐसा जो आत्मतत्त्व है वह जगत्रूपी

होकर व्यापारी भासता है। जैसे अग्नि से उष्णता, फूलसे सुगन्धि; कज्जलसे कृ-ष्णता, बरफ से शुक्लता; गुड़से मधुरता और सूर्य्यसे प्रकाश भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्म से अनुभव भिन्न नहीं—नित्यरूप है। अनुभवसे अहं भिन्न नहीं; अहं से जीव भिन्न नहीं; जीवसे मन भिन्न नहीं, मनसे इन्द्रियां भिन्न नहीं, इन्द्रियों से देह भिन्न नही और देहसे जगत् भिन्न नहीं। इसप्रकार महाचक्र जो प्रवृत्तकीनाईं हुआहै सो कुछ प्रवृत्त नहीं, न शीघ्र प्रवर्त्तन, चिरकाल का प्रवर्त्ता है, न कोई ऊन है और न अधिक है, सर्व्वदा एक अखण्डसत्ता परमात्मतत्त्व है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। वही सत्ता वज्रभूत और वही पूर्णहोकर स्थित है द्वैतकल्पना कुछ नहीं। ऐसे अपने स्वरूप में जो पुरुष स्थित है वह जीव-न्मुक्त है। ऐसा जो ज्ञानवान् है वह मन, इन्द्रियों और शरीरकी चेष्टाभी करता है पर उसको कर्त्तव्यका लेप नहीं लगता। हे रामजी! ज्ञानवान् को न कुछ त्याग योग्यरहताहै और न ग्रहण करनेयोग्यहै; वह सब पदार्थोंसे निर्लेप रहता है। जब तक इसको ग्रहण और त्यागकी बुद्धिहोती है तबतक संसार के सुखदुःखका भागी होताहै और इससे हेयोपादेयका जिसको अभावहै वह सुख दुःखकाभागी नहींहोता। हे रामजी! जो कुछ जगत्है व एक अद्वैत आत्मतत्त्वहै, अन्यत् कुछ नहीं। जैसे घटमठकी उपाधिसे आकाश नानाप्रकार का भासता है और समुद्र तरङ्गसे अनेक रूप भासताहै पर नानात्व भावको नहीं प्राप्तहोता तैसेही आत्मामें नानाप्रकार जगत् भासताहै और नानात्वको नहीं प्राप्तहोता है। ऐसे स्वरूपको जानकर उसमें स्थित हो; बाहरसे अपने वर्णाश्रमका व्यवहार करो पर हृदय से पत्थरकी नाईं हर्ष शोकसे रहित स्थितहो। संवित्मात्र आत्माको जो अपनारूप देखताहै वही सम्यक्दर्शी है और उसका अज्ञान और मोहनष्ट होजाता है। जैसे नदीका वेग मूलसहित तटके वृक्षकोकाटताहै तैसेही आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञानकोकाटताहै। मित्रता, वैर, हर्ष, शोक,राग, द्वेषआदिक जो विकार हैं वे चित्तमेंरहते हैं सो उसकाचित्त नष्ट होजाता है। हे रामजी! ज्ञानीसोताभी दृष्टिआताहै पर कदाचत् नहींसोता जिसकाअनात्म में अहंभाव निवृत्तहुआ है और जिसकी बुद्धि लेपायमान नहीं होती वह पुरुष इस लोककोमारे तोभी उसनेकोईनहींमारा औरन वहबंधायमान होताहै। हे रामजी! जो वस्तु नहो और भासे उसको मायामात्र जानिये, जानने से वह नष्टहोजावेगी। जैसे तेलबिना दीपकशान्तहोजाताहै तैसेही ज्ञानसे वासना क्षयहोजातीहै और चित्त अ-चित्तहोजाताहै। जिसको सुखदुःखमें ग्रहणत्यागनहीं वह जीवन्मुक्त आत्मस्थित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकप्र दनन्नामतृतीयस्सर्ग्गः ३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन, बुद्धि, अहङ्कार और इन्द्रियादिक जो दृश्य है

वह सब अचिन्त्य चिन्मात्र है और जीवभी उससे अभिन्नरूप है। जैसे सुवर्ण और भूषण में भेद कुछ नहीं तैसेही चिन्मात्र और जीवादिक अभिन्न हैं। जब तक चित्त अज्ञान में होता है तब तक जगत् का कारण होताहै और जब अज्ञान नष्ट होजाता है तब चित्तादिक का अभाव होजाता है । अध्यात्मविद्या जो वेदान्त शास्त्र है उसके अभ्यास से अज्ञान नष्ट होजाता है। जैसे अग्नि के तेजसे शीतका अभाव होजाता है तैसेही अध्यात्मविद्या के विचार और अभ्यास से अज्ञान नष्ट होजाता है । जबतक अज्ञान का कारण तृष्णा उपशम को नहीं प्राप्तहुई तब तक अज्ञान है और जब तृष्णा नाश हो तब जानिये कि, अज्ञानका अभाव हुआ। हे रामजी! तृष्णारूपी विशूचिका रोग के नाश करनेका मन्त्र अध्यात्मशास्त्रही है, उसके अभ्यास से तृष्णा क्षीण होजाती है। जैसे शरत्काल में कुहिरा नष्ट होजाता है, तैसेही आत्मअभ्यास से चित्त शान्त होजाता है; और जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होजाता है तैसेही विचार से मूर्खता नष्ट होजाती है । जब चित्त अचित्तपद को प्राप्त होताहै तब वासनाभ्रम क्षीण होजाता है। जैसे तागेसेमोती पिरोयेहोते और तागेके टूटसे मोती भिन्न२ होजाते हैं तैसेही अज्ञानके नष्टहुये मनादिक सब नष्ट होजाते हैं। जो पुरुष अध्यात्मशास्त्रके अर्थको नहीं धारणकरते और न प्रीतिही करतेहैं व पापी कीटादिक नीचयोनिको प्राप्तहोंगे। हे कमलनयन! तुम्हारेमें जो कुछ मूर्खता और चंचलताथी वह नष्टहोगई है और जैसे पवनके ठहरेसे जल अचल होताहै तैसेही तुम स्थिरता और भावअभावसे रहित परम आकाशवत् निर्मल पद को प्राप्तहुयेहो। हे रामजी! मैं ऐसे मानताहूं कि, मेरे बचनोंसे तुम बोधवान् हुयेहो और विस्तृत अज्ञानरूपी निद्रासे जागेहो। समानजीवभी हमारी बाणीसे जगआते हैं, और तुमतो अतिउदार बुद्धिहो तुम्हारे जागने में क्या आश्चर्य है? हे रामजी! जब गुरुभी दृढ़होताहै और शिष्यभी शुद्धपात्रहोताहै तब गुरुके वचन उसके हृदय में प्रवेश करते हैं सो मैं गुरुभी समर्थहूं कि, मुझको अपना स्वरूपसदा प्रत्यक्ष है और सत्शास्त्रके अनुसार मैंने वचनकहे हैं और तेरा हृदयभी शुद्धहै उसमें वे प्रवेश करगये हैं। जैसे तप्त पृथ्वी क्षेत्रमें जलप्रवेश करजाताहै तैसेही तेरे हृदयमें बचनों ने प्रवेशकियाहै। हे राघव! हम महानुभाव रघुवंश कुलके वड़े गुरुके गुरुहैं; हमारे वचन तुमको धारनेआते हैं। अबखेदसे रहितहोकर अपने प्रकृतआचारको करो। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि,इसप्रकार जब मुनीश्वरनेकहा तब सूर्य्य अस्त होनेलगा और सबसभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गई रात्रिके व्यतीतहुये सूर्य्यकी किरणोंके निकलतेही सब फिर आबैठे॥

इतिश्रीये वाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तभावाभाववर्णनंनामचतुर्थस्सर्ग्गः ४॥

रामजी बोले, हे मुनीश्वर ! मैं परम स्वस्थताको प्राप्तहोकर अपने आपमें स्थित हूं और आपके वचनों की भावना से जगत्जाल के स्थित हुयेभी मुझको शान्ति होगई है। आत्मानन्द से मैं तृप्तहुआहूं—जैसे बड़ी वर्षासे पृथ्वी तृप्त होती है—और प्रसन्नताको पाकर स्थित हूं। सब ओरसे केवल आत्मारूप मुझको भासता है और नानात्वका अभाव हुआ है। जैसे कुहिरे से रहितदेश और आकाश निर्मल भासताहै तैसेही सम्यक् ज्ञानसे मुझको शुद्ध आत्मा भासता है और मोह निवृत्त होगया है। मोहरूपी जङ्गल में जो तृष्णा रूपी मृग और रागद्वेष आदिक धूलि और कुहिरा था सो सब निवृत्त होगया है और ज्ञानरूपी वर्षासे सब शान्त होगये हैं। अब मैं आत्मानन्दको प्राप्तहुआ हूं, जो आदि अन्तसे रहित और अमृत है बल्कि अमृत का स्वादभी उसके आगे तुच्छ भासता है। ऐसे आनन्दमें मैं अपने स्वभाव में प्राप्त हुआ हूं मैं रामहूं अर्थात् सब में रमने वालाहूं; मेरा मुझको नमस्कार है। अब मैं सब सन्देहसे रहितहूं और सब संशय और विकार मेरे नष्टहुये हैं। जैसे प्रातःकाल होने से निशाचर और वैताल आदिक निवृत्त होजाते हैं तैसेही राग द्वेषादिक विकारों का अभाव हुआ है और निर्मल विस्तीर्ण हिमकीनाईं हृदय कमल में मैं स्थितहूं। जैसे भँवरा फिरता२ कम[illegible]आ स्थितहोताहै तैसेही मैं आत्मरूपी सारमें स्थितहूं। अविद्यारूपी कलंक आत्मा को कहांथा मैंतो निश्चय से निर्मलता को प्राप्तहुआहूं। जैसे सूर्यके उदय हुये तमका अभाव होजाता है तैसेही मेरे संशय और अविद्या नाश हुईहै। अब मुझे सर्व आत्मा भासता है और कलना कोई नहीं। भावित आकार अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ मैं पूर्व प्रकृति को देखके हँसता हूं कि, क्या जानता था और क्या करता था। मैंतो नित्यशुद्धज्यों का त्यों आदि अन्तसे रहितहूं। हे मुनीश्वर ! तेरे वचनरूपी अमृतके समु[illegible]में मैंने स्नानकियाहै और उससे अजरअमर आनन्दपदको पाकर सूर्यसेभी ऊंचेपदको प्राप्तहुआहूं और वीतशोक होकर परमशुद्धता, समता, शीतलता और अद्वैत अनुभवको प्राप्तहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराघवविश्रांतिवर्णनंनामपंचमस्सर्गः ५॥

वशिष्ठजीबोले, हेमहाबाहो ? फिरभी मेरेपरम वचनसुनो; तुम्हारे हितकी कामना से मैं कहताहूं। अब तुम [illegible]ात्मपदको प्राप्त हुयेहो परन्तु बोधकी वृद्धिके निमित्तफिर सुनो; जिसके सुनने से अल्पबुद्धि भी आनन्दपदको प्राप्तहो। हे रामजी ! जिसको अनात्ममें आत्माभिमानहै और आत्मज्ञान नहींहुआ उसको इन्द्रियरूपी शत्रुदुःख देतेहैं—जैसे निर्म्मल पुरुषको चोर दुःखदेते हैं—और जिसको आत्मपदमें स्थितिहुई है उसको इन्द्रियां दुःखनहीं देतीं—जैसे दृढ़राजाके शत्रुभी मित्र होजातेहैं तैसेहीज्ञानवा[illegible]के इन्द्रियगणमित्र होतेहैं। जिनपुरुषों की देहमें स्थित बुद्धि है और इन्द्रियों के

विषयकी सेवना करतेहैं उनको बड़े दुःख प्राप्तहोते हैं । हेरामजी ! आत्मा औरशरीर का सम्बन्ध कुछ नहींहै । जैसे तम और प्रकाश बिलक्षण स्वभाव हैं तैसेही आत्मा और देहका परस्पर बिलक्षण स्वभावहै । आत्मा सर्वबिकारोंसे रहित, नित्यमुक्त, उदय अस्तसे रहित और सबसे निर्लेपहै और सदा ज्योंका त्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सत्‌रूप है उसका सम्बन्ध किससे हो ? देह जड़ और असत्य, अज्ञानरूप, तुच्छ, विनाशी और अकृतज्ञहै उसका संयोग किसभांतिहो ? आत्मा चेतन, ज्ञान, सत् और प्रकाशरूप है उसका देह के साथ कैसे संयोग हो ? अज्ञान से देह और आत्माका संयोग भासता है; सम्यक् ज्ञान से संयोग का अभाव भासता है । हे रामजी ! ये मैंने निपुण वचन कहे हैं; इनका वारम्वार अभ्यास करने से संसार मोहका अभाव होजावेगा । जब संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ तब फिर उसका सद्भाव न होगा जब तक अज्ञानरूपी निद्रासे दृढ़ होकर नहीं जागता तबतक आवरण रहताहै । जैसे नि— के जागेसे फिर निद्रा घेर लेतीहै पर जब दृढ़ होके जागे तब फिर न—ीं घेरती; तैसेही दृढ़ अभ्यास से अज्ञान निवृत्त हुआ फिर आवरण न करेगा । इससे मोह और दुःख निवृत्त के अर्थ दृढ़ अभ्यासकरो । रामजी ! आत्मा देहके गुणको अंगीकार नहीं करता; यदि देहके गुण अंगीकार करे तो आत्माभी जड़ होजावे पर वह तो सदाज्ञानरूप है; और जो देह आत्मा का गुण परमार्थ से अंगीकार करे तो देहभी चेतन होजावे पर वह तो जड़रूप है, उसको अपना ज्ञान कुछ नहीं । जब ज्योंका त्यों ज्ञानहो तब शरीर तुच्छ और जड़ भासे । हे रामजी ! देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं और समवाय सम्बन्ध भी नहीं फिर इससे मिलकर वृथा दुःखको ग्रहण करना इससे बढ़के और मूर्खता क्या है ? जब कुछभी इसका समान लक्षणहो तब सम्बन्धभीहो पर जिसका कुछभीसमान लक्षण न हो उसका सम्बन्ध कैसेहो ? आत्मा चेतन है, देह जड़ है; आत्मा सत्‌रूप है, देह असत्‌रूप है; आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है; आत्मा निराकार है, देह साकार है; आत्मा सूक्ष्म है और देह स्थूल है तो फिर आत्मा और देहका सम्बन्ध कैसेहो ? और जब इनका संयोगही नहीं तब दुःख किसका हो ? जैसे सूक्ष्म और स्थूल; दिन और रात्रि; ज्ञान और अज्ञान; धूप और छाया; सत् और असत्‌का सम्बन्ध नहींहोता तैसेही आत्मा और देहका संयोग नहींहोता और देहके सुखदुःखसे आत्माको सुखी दुःखी जानना मिथ्या भ्रमहै । जरा–मरण, सुख-दुःख; भाव–अभाव आत्मामें रञ्चक मात्रभी नहीं । यदि देहमें अभिमानहोता है तो ऊंचनीच जन्म —ाताहै; वास्तव में कुछनहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और उसमें बिकार कोई नहीं । जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब जलमें होता है और जलके हिलनेसे प्रतिबिम्ब भी चलताहै तैसेही देहकेसुखदुःख

रूपी विषकी बेलि है; नेत्ररूपी उसके फूल हैं, ओष्ठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी गुच्छे हैं और अज्ञानरूपी भँवरे वहां विराजमान होते हैं। और नाशहोते हैं। मतिरूपी तलाव में हर्षरूपी कमल और चित्तरूपी भँवरे सदा रहते हैं और अज्ञानरूपी नदी में दुःखरूपी लहरे हैं और तृष्णारूपी बुद्बुदे हैं; ऐसी नदी मरणरूपी बड़वाग्नि में जापड़ेगी। हे रामजी! जब जन्महोता है तब जीवमहागर्भ अग्निसे जलताहुआ निकलता है और महामूर्ख अवस्थामे निकलकर दुःखी होताहै; जब यौवन अवस्था को प्राप्त होताहै तब बिषयोंको सेवताहै—वेभी दुःखके कारणहोते हैं और फिर वृद्धावस्थाको प्राप्तहोता है तब शरीर आसक्त होता है और हृदय से तृष्णा जलाती है। इसप्रकार जन्म मरण अवस्था में जीव भटकते हैं। हे रामजी! संसाररूपी कूप में मोहरूपी घटोंकीमालाहै और तृष्णा और बासनारूपी रस्सीसेबांधेहुये जीवरूपीटीड भ्रमते हैं। ज्ञानवान्को संसार कोईदुःख नहीं देता; गोपदकीनाईं तुच्छहोजाताहै और अज्ञानीको समुद्रवत् तरना कठिनहोताहै। वह अपने भीतरहीभ्रमदेखताहै और निकलनहींसक्ता-थोड़ाभी उसको बहुत होजाता है। जैसे पक्षीको पिंजरे में और कोल्हूके बैलको घरही में बड़ामार्ग होजाता है तैसेही अज्ञानीको तुच्छ संसार बड़ाहो भासता है। हे रामजी! जिसजगत्को रमणीय जानकर जीव उसके पदार्थोंकी इच्छा करता है। वे सब पंचभौतिकपदार्थ हैं पर मोहसे उनको सुन्दर जानता है, उनमें प्रीतिकरता है और स्थिर जानता है और वह सब अनर्थ के निमित्त होता है। हे रामजी! अज्ञानरूपी चन्द्रमा के उदयसे भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं और जन्मोंकी परंपरा रसकोपाते; कर्मरूपी जलसे सिंचते हैं और पुण्य और पापरूपी मञ्जरी उनमें होती है। अज्ञानरूपी चन्द्रमाका बासनारूपी अमृत है और आशारूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होता है। आशारूपी कमलिनी पर अज्ञानरूपी भँवरा बैठकर प्रसन्न होता है इससे सब जगत् अज्ञानसे रमणीक भासता है। हे रामजी! जिसअज्ञानसे यह जगत् स्थितहै उसकाप्रवाह सुनो। जबअज्ञानरूपी चन्द्रमा पूर्णहोकर स्थित होता है तबकामनारूपी क्षीरसमुद्र उछलता है और अनेक तरङ्ग फैलाता है। उसकेरससे तृष्णारूपी मञ्जरी पुष्टहोती है और काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होते हैं देह अभिमान रूपी रात्रिके निवृत्त हुये और विवेकरूपी सूर्य्य के उदय हुये अज्ञानरूपी चन्द्रमाका प्रकाश निवृत्त होजाता है। हे रामजी! अज्ञानसे जीव भ्रमते हैं और उनकी चेष्टा विपर्यय होगई है; जो तुच्छ और नीच दुःखरूप पदार्थ हैं उनको देखकर सुखदायक और रमणीय जानते हैं और स्त्रीकोदेख प्रसन्न होते हैं। कवीश्वर कहते हैं कि, इसके कपोल कमलवत्, नेत्र भँवरेवत्, होठ हँसनेवाले और भुजा बेलिकी नाईं हैं; कंचनके कमलवत् स्तन हैं, उदर और वक्षस्स्थल

बहुत सुन्दर हैं और जंघस्थल केलेके स्तम्भवत् हैं। जिसस्त्रीकी कवि स्तुति करते हैं वह स्त्री रक्तमांस की पुतली है; कपोल भी रक्तमांस हैं, होठ भी रक्तमांस हैं; भुजा विषके वृक्षके टासवत् हैं स्तन भी रक्तमांस हैं और सम्पूर्ण शरीर भी रक्तमांस अस्थिसे पूर्ण है। एक बुतबनी है उसको जो रमणीक जानते हैं वे मूर्ख मोह से मोहितहुये हैं और अपने नाश के निमित्त इच्छाकरते हैं। जैसे सर्पिणी से जो कोई हित करेगा वह नष्ट होगा तैसेही इससे हितकिये से नाश होगा और जैसे कदलीवनका महाबली हाथी कामसे नीचगति पाता है और संकट में पड़ता है और अंकुश सहकर जो अपमान को प्राप्तहोता है, सो एकके हितसेही ऐसी गतिको प्राप्तहोता है, तैसेही यहजीव स्त्रीकीइच्छा करके अनेक दुःख पाताहै। जैसे दीपकको रमणीय जानकर पतङ्ग उसमें प्रवेशकरता है और नष्टहोताहै तैसेही यह जीव स्त्रीकी इच्छा करता है और उसके सङ्गसे नाशको प्राप्त होता है। लक्ष्मीका आश्रय करके जो सुखकी इच्छा करता है वहभी सुखी न होगा। जैसे पहाड़दूरसे देखने मात्र सुंदर भासता है तैसेही यहभी देखनेमें सुन्दर लगती है पर लक्ष्मीका आश्रय करके जो सुखकी इच्छा करे सो सुख न मिलेगा अन्तमें दुःखकोही प्राप्तहोगा। जब लक्ष्मी प्राप्तहोती है तब अनर्थ और पापकरने लगाता है और दुःखका पात्रहोताहै; और जब जाती है तब दुःख दे जाती है और उससे जलता रहता है। हे रामजी! जगत् में सुखकी इच्छा करनी व्यर्थ है; प्रथम जन्म लेता है तबभी दुःखसे जन्म लेता है; फिर जन्म कर मूर्ख और नीच बालक अवस्थाको प्राप्त होता है तब कुछ विचार नहीं होता है उसमें दुःखपाता है और कुछ शक्तिनहीं होती उससे दुःखपाता है; जब यौवन अवस्थारूपी रात्रिआती है तब उसमें काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी निशाचर विचरते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी विचरतीहै क्योंकि उस अवस्था विवेकरूपी चन्द्रमा नहीं उदयहोता इससे अन्धकारमें वे सब क्रीड़ाकरते हैं। हे रामजी! यौवन अवस्थारूपी वर्षाकालमें बुद्धि आदिक नदियां मलिनभावको प्राप्तहोती हैं; कामरूपी मेघगर्जताहै और तृष्णारूपी मोरनी उसको देख प्रसन्नहोकर नृत्य करती है। फिर यौवन अवस्थारूपी चूहेको जरारूपी बिल्लीभोजन करलेतीहै और शरीर महाजर्जरीभूत हो आसक्त होजाता है, तृष्णाबढ़ती जाती है और हृदयसे जलता है; निदान फिर मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिण को भोजन करलेता है। इसप्रकार जीव उपजता और मरताहै और आशारूपी रस्सीसे बंधाहुआ घटी यंत्रकी नाईं भटकताहै—शान्तिकदाचित् नहींपाता। हे रामजी! ब्रह्माण्डरूपी एकवृक्षहै और उसमें जीवरूपी पत्रलगे हैं सो कर्मरूपी वायुसेहलते हैं और अज्ञानरूपी उसमें जड़ताहै। चित्तरूपी ऊंचावृक्षहै उसपर लोभादिक घुघुआ बैठते हैं। जगतरूपी तालमें शरीररूपी कमल

हैं उनपर जीवरूपी भँवरे आ बैठते हैं और कालरूपीहाथी आकर उनको भोजन करजाता है। हे रामजी! जननारूपी जीर्णपक्षी आशारूपी फांसीसे बांधेहुये वासनारूपी शिक्षामें पड़े हैं और रागद्वेषरूपी अग्निमें पड़ेन्ये कालरूपी पुरुषके मुख में प्रवेशकरते हैं। जनरूपी पक्षीउड़ते फिरते हैं सो कोईदिन उनको जब कालरूपी व्याध जाल फैलावेगा तब फँसालेगा। हे रामजी! संसाररूपी तालमे जीवरूपी मछलियां हैं और कालरूपी बगला उनको भोजनकरताहै। कालरूपी कुम्हार जनरूपी मृत्तिकाकेवासनबनाताहै और वे शीघ्रही फूटजातेहैं। जीवरूपी नदीकर्म्मरूपी तरङ्गोंकोफैलाती है और कालरूपी बड़वाग्निमें जापड़ती है। जगत्रूपी हाथीके मस्तकमें जीवरूपी मोती हैं; उस हाथीको कालरूपी सिंहभोजन करजाता है। वह कालरूपी भक्षक ऐसा है कि जिसने ब्रह्माकोभी भोजनकिया है और करता है पर तृप्तनहींहोता। जैसे घृतकी आहुतिसे अग्नि तृप्त नहींहोता तैसेही कालजीवोंके भोजनसे तृप्तनहीं होता हे रामजी! एक निमेषमें अनेक जगत् उपजते हैं और उसी निमेषमें लीन होजाते हैं सबके अभावहुये जो शेष रहता है वहरुद्र है; फिर वहभी निवृत्तहोता है और सब के पाछे एक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह अज्ञान से भासता है; जन्म, मरण, बाल अवस्था, यौवन और वृद्धादिक बिकार अज्ञानसे भासते हैं और अज्ञान के नष्टहुये सबनष्ट होजाते हैं। जब तक आत्मबिचार नहीं उपजता तबतक अज्ञान रहता है और जब आत्मबिचार उपजता है तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त होजाती है केवल ब्रह्मपद भासता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअज्ञानमाहात्म्यवर्णनन्नामषष्ठस्सर्ग्गः ६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसाररूपी यौवन चेतनरूपी पर्वतके शृङ्गपर स्थित है और अविद्यारूपी वेलि उसमें बढ़कर विकाशको प्राप्तहुई है और सुख, दुःख, भाव, अभाव, अज्ञानपत्र, फूल और फलहै। जहां अविद्या सुखरूप होकरस्थित होती है वहांऊंचे सुखको भोगाती है और उसके सत्ताभावको प्राप्तहोती है और जहां दुःखरूप होकर स्थित होतीहै तहां दुःखरूप भासती है। वही सुख दुःख इसकेफल गुच्छे हैं। दिनरूपी फूलहैं और रात्रिरूपी भँवरे हैं; जन्मरूपी अंकुरहै और भोगरूपी रससे पूर्णहै। जब बिचाररूपी घुन अविद्यारूपी वृक्षको खानेलगता है तब वह नष्ट होजाती है। जबतक विचाररूपी घुन नहींलगा तबतक वह दिनदिन बढ़तीजाती है और दृढ होतीजातीहै। हे रामजी! अविद्यारूपी वेलिका मूल सम्वित् फुरनाहै उस से फैलीहै; तारागण उसके फलहैं, चन्द्रमा और सूर्य्य उसका प्रकाशहै और दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कंटक हैं; शुभ कर्मरूपी स्वर्ग उसके फूलहैं और सुखदुःखरूपी फललगते हैं, जीवरूपी उसके पत्रहैं जो कालरूपी वायुसे हलते हैं और जीर्णहोकर

को प्राप्तहुये हैं। जो कुछ तुमको दृश्यभासताहै वह अविद्याके नवगुणोंमें है । ऋषी-श्वर, मुनीश्वर, सिद्ध, नाग, विद्याधर और देवता अविद्याके सात्त्विक भाग हैं और उस सात्त्विक के विभाग में नाग सात्त्विक-तामस हैं, विद्याधर, सिद्ध, देवता और मुनीश्वर, अविद्या के सात्त्विकभाग में सात्त्विक-राजस हैं और हरिहरादिक केवल सात्त्विकहैं । हे रामजी ! सात्त्विक जो प्रकृत भागहैं उसमें जो तत्त्वज्ञ हुये हैं वे मोहको नहीं प्राप्तहोते क्योंकि, वे मुक्तिरूप होतेहैं । हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं और सदा मुक्तिरूप होकर जगत्में स्थित हैं । वे जबतक जगत्में हैं तबतक जीवन्मुक्त हैं और जब विदेह मुक्त हुये तब परमेश्वर को प्राप्त होतेहैं । हे रामजी ! एक अविद्या के दो रूप हैं । एक अविद्या विद्यारूप होती है-जैसे बीजफलको प्राप्त होता है और फल बीजभाव को प्राप्तहोता है जैसे जलसे बुद्बुदा उठताहै तैसेही अविद्यासे विद्या उप-जती है और विद्यासे अविद्या लीन होती है । जैसे काष्ठसे अग्नि उपजकर काष्ठको दग्धकरती है तैसेही विद्या अविद्यासे उपजकर अविद्या को नाश करती है । वास्तव में सब चिदाकाश है जैसे जलमें तरङ्ग कलनामात्रहै तैसेही विद्या अविद्या भावना मात्र है । इसको त्यागकर शेषआत्मसत्ताही रहती है । अविद्या और विद्या आपस में प्रतियोगी हैं-जैसे तम और प्रकाश इससे इन दोनों को त्यागकर आत्म सत्तामें स्थित हो । विद्या और अविद्या कल्पनामात्र है । विद्या के अभाव का नाम अविद्या है और अविद्या के अभाव का नाम विद्या है । यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठीहै । जब विद्या उपजतीहै तब अविद्याको नष्ट करतीहै और फिर आपभी लीन होजातीहै-जैसे काष्ठसे उपजी अग्नि काष्ठको जलाकर आपभी शान्त होजाती है-उससे जो शेष रहता है वह अशब्द पद सर्वव्यापी है । जैसे वट बीज में पत्र टास, फूल, फल और पत्ते होते हैं तैसेही सबमें एक अनुस्यूतसत्ता व्यापी है सोही ब्रह्मतत्त्व सर्व शक्ति है, उसीसे सर्व शक्ति का स्पन्द है और आकाशसे भी शून्य है। जैसे सूर्यकांत में अग्निहोती है और दूधमें घृत है तैसेही सब जगत्में ब्रह्म व्याप रहा है । जैसे दधिके मथेबिना घृत नहीं निकलता तैसेही विचार बिना आत्मा नहीं भासता और जैसे अग्निसे चिनगारें और सूर्यसे किरणें निकलती हैं तैसेही यह जगत् आत्मा का किंचन रूपहै । जैसे घटके नाश हुये घटाकाश अविनाशी है तैसेही जगत् के अभावसे भी आत्मा अविनाशी है । हे रामजी ! जैसे चुम्बक पत्थर की सत्तासे जड़लोह चेष्टा करता है परंतु चुम्बक सदा अकर्त्ताही है तैसेही आत्माकी सत्ता से जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं और चेतन्य होते हैं परन्तु आत्मा सदा अकर्त्ता है । इस जगत् का बीज चेतन आत्म सत्ता है और उसमें सम्वित् संवेदन आदिक शब्दभी कल्पना मात्रहै । जैसे जलको कहिये कि, बहुतसुन्दर और चञ्चलहै

सो जलही जल है तैसेही संवेदन आदिक सब चेतनरूप है। जहां न किञ्चन है, न अकिञ्चन है सो तुम्हारा स्वरूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यानिराकरणंनामअष्टमस्सर्गः ८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थावर–जङ्गम जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह अधिभौतिकता को नहीं प्राप्त हुआ। वह सब चिदाकाश रूपहै और उसमें कुछभाव अभाव की कल्पना नहीं और जीवादिक भेद भी नहीं। हमको तो भेद कल्पना कुछ नहीं भासती। जैसे रस्सीमें सर्प का अभाव है तैसेही ब्रह्ममें भेद कल्पना का अभाव है। हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से भेद कल्पना भासती है और आत्माके जानेसे भेद कल्पना मिटजाती है वही सर्व संपदाका अन्तहै। शुद्ध चेतनमें चित्तका संबंध होनेका नाम अविद्या है। जो पुरुष चित्तकी उपाधि से रहित चिन्मात्र है वहशरीर के नाश हुये नाश नहीं होता और शरीरके उपजेसे नहीं उपजता। शरीरके उपजने और विनशने में वह सदा एक रस ज्योंका त्यों स्थित है। जैसे घटके उपजने और विनशने में घटाकाश ज्योंका त्यों रहता है तैसेही शरीरके भावअभावमें आत्मा ज्योंका त्यों है। जैसे बालक दौड़ता है तो उसको सूर्य्य भी दौड़ता भासताहै और स्थित होने में स्थित भासता है परंतु सूर्य्य ज्योंका त्यों है; तैसेही चित्तकी चञ्चलता से मूर्खजन आत्माको व्याकुल देखते हैं; चित्तके अचलता में अचल देखते हैं और चित्तके उपजनेमें उपजता देखते हैं परंतु आत्मासदा ज्योंका त्यों है। जैसे मकड़ी अपने जालेसे आपही वेष्टित होती है और निकल नहीं सक्ती तैसेही जीव अपनी वासना से आपही बन्धमान होते हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! अत्यन्त मूर्खताको प्राप्तहोकर जो स्थावर आदिक तनमें घन स्थित हुये हैं उनकीवासना कैसी होती है सो कृपाकरके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो स्थावरजीव हैं वे अमनसत्ता को नहींप्राप्तहुये। वे केवल मन अवस्थामें भी तिष्ठितनहीं पर मध्य अवस्थामें हैं। उनकी पुर्य्यष्टका सुषुप्ति रूप है सो केवल दुःखकाकारणहै। उनकामन नहीं नष्ट हुआ वे सुषुप्ति अवस्थामें जड़रूप स्थितहैं सोकालपाकर जागेंगे अब उनकी सत्ता मूकजड़ होकरस्थित है। रामजी ने पूछा; हे देवताओं में श्रेष्ठ! यदि उनकीसत्ता अद्वैत रूप होकरस्थावर शरीर में स्थित है तो मुक्ति अवस्था उनके निकट है यह सिद्ध हुआ। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मुक्ति कैसे निकट होती है? मुक्ति तब होती है जब बुद्धि पूर्वकवस्तुको विचारे और यथा भूत अर्थ दृष्टिआवे। जब सत्ता समान का बोध हो तबकेवल आत्मपदको प्राप्तहो। हे रामजी! जब ज्योंका त्यों पदार्थ जानकर वासना कोत्यागकरे तबसत्ता समान पदप्राप्तहो। प्रथमअध्यात्म शास्त्रको विचारे और उसमें जो सार है उसकी वारंवार भावनाकरे तब उससे जो प्राप्तहो सो सत्तासमान परब्रह्म

कहाता है। स्थावर के भीतर वासना है परन्तु बाहर दृष्टि नहीं आती क्योंकि; उनकी सुषुप्ति वासना है। जैसे बीजमें अंकुर होता है और फिर उगता है; तैसेही उनके जन्महोवेंगे और वासना जागेगी। उनके भीतर जगत् की सत्यता है पर बाहर दृष्टि नहीं आती है। यह सुषुप्तिवत् जड़ धर्म है वे अनन्त जन्मके दुःख पावेंगे। हे रामजी! स्थावर जो अब जड़ धर्मा सुषुप्ति पदमें स्थित हैं सो बारम्बार जन्मको पावेंगे-जैसे बीजमें पत्र, टास, फूल और फल स्थित होते हैं और मृत्तिका में घट शक्ति है तैसेही स्थावर में वासना स्थित है। जिसमें वासनारूपी बीजहै वह सुषुप्तिरूप कहाता है और वह सिद्धता जो मुक्ति है नहीं प्राप्तकरती। जहां निर्बीज वासना है सो तुरीयापदहै और वह सिद्धताको प्राप्तकरती है। हे रामजी! जब चित्त शक्ति वासना से मिली होती है तब स्थावरहोती है और वह फिर जागती है। जैसे कोई कर्म करता हुआ सो जाताहै तो सुषुप्तिसे उठकर फिरवही कर्म करने लगताहै क्योंकि कर्मरूपी वासना उसके भीतर रहती है; तैसेही स्थावर वासनासे फिरजन्म पावेंगे। जबवह वासना हृदयसे दग्धहो तब जन्मका कारण नहीं होती। आत्मसत्ता समान भाव से घटपट आदिक सब पदार्थोंमें स्थितहै। जैसे वर्षाकालका एकहीमेघ नाना रूपहोकर स्थित होताहै तैसेही एकही आत्मसत्ता सर्व पदार्थोंमें स्थित होती है। इससे सबमें आत्माही व्याप रहाहै। ऐसीदृष्टिसे जो रहितहै उसको विपर्यय दृष्टि भ्रमदायक होती है और जब आत्म दृष्टि प्राप्तहोती है तब सब दुःख नाश होजाते हैं। हे रामजी! असम्यक् दृष्टिकोही ब्रह्मेश्वर अविद्या कहते हैं। वह अविद्या जगत्का कारण है और उससे सबपसारा होताहै। जब उससे रहित अपना स्वरूप भासे तब अविद्या नष्ट होती है। जैसे बरफकी कणिका धूपसे नाश होजाती है तैसेही शुद्ध स्वरूपके अभ्याससे अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे स्वप्नसे रहित जब अपना स्वरूप देखता है तब फिर स्वप्नकी ओर नहींजाता, तैसेही शुद्ध स्वरूपके अभ्याससे सम्पूर्ण भ्रम निवृत्त होजाते हैं। हे रामजी! जब वस्तुको वस्तु जानताहै तब अविद्या नष्ट होजा-तीहै। जैसे प्रकाशसे अन्धकार नष्ट होजाताहै पर दीपकको हाथमें लेकर देखिये तो अन्धकारकी कुछ मूर्त्ति दृष्टि नहींआती, और जैसे उष्णतासे घृतका पीनगलजाताहै तैसेही आत्माके दर्शन हुये अविद्या नहीं रहती। वास्तवमें अविद्या कुछ वस्तु नहीं, अविचारसे सिद्ध है और विचारकिये से लीनहोजाती है। जैसे प्रकाशसे तमलीन होजाताहै तैसेही विचारसे अविद्यालीन होजाती है। अज्ञानसे अविद्याकी प्रतीति होती है। जबतक आत्मतत्त्वको नहीं देखा तबतक अविद्याही प्रतीति होती है और जब आत्माको देखा तब अविद्याका अभाव होजाता है। प्रथम यह विचारकरे कि; रक्त, मांस और अस्थिका यंत्र जो शरीर है उस में "मैं क्या वस्तुहूं"? सत्यक्या

है ? और असत्य क्याहै ? इस विचारसे जिसका अभावहोता है वह असत्य है और जिसका अभाव नहीं होता वह सत्य है। फिर अन्वय व्यतिरेकसे विचारे कि, कार्य कल्पित के होतेभी हो और उसके अभाव मेंभी हो सो अन्वय सत्य है। देहादिके भावमेंभी जो आत्मा अधिष्ठान है और इनके अभावमेंभी निरुपाधि सिद्धहै सो सत्यहै और देहादिक व्यतिरेक असत्यहै। ऐसे विचारकर आत्मतत्त्वका अभ्यासकरे और असत् देहादिकसे वैराग्यकरे तब निश्चय करके अविद्या लीन होजाती है क्योंकि. वह वास्तवनहीं है, असत्यरूपहै। उसके नष्टहुये जो शेषरहे सो निष्किंचन किंचन स्वरूपहै और सत्यहै, ब्रह्म निरन्तर है सो तत्त्ववस्तु उपादेय करने योग्यहै। हे रामजी! ऐसे विचार करके अविद्या नष्ट होजातीहै। जैसे पौंड़ेका रस जिह्वासे लगता है तब अवश्य स्वाद आता है तैसेही आत्म विचारसे अविद्या अवश्य नष्ट होजाती है। यदि वास्तव में कहिये तो अविद्याभी कुछ भिन्न वस्तुनहीं, एक अखंडित ब्रह्मतत्त्व है। जिस के घट, पट, रथ आदिक पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं उसको अविद्या जानो और जिसको सर्व में एक ब्रह्म भावना है उसको विद्याजानो। इस विद्यासे अविद्या नष्ट होजावेगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्याचिकित्सावर्णनंनामनवमस्सर्गः ९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बोधके निमित्त में तुमको वारम्वार सारकहता हूं कि आत्माका साक्षात्कार भावनाके अभ्यासविना न होगा। यह जो अज्ञान अविद्याहै सो अनन्तजन्म का दृढ़ हुआ भीतर बाहर दिखाई देता है, आत्मसर्व इंद्रियोंसे अगोचरहै जब मन सहित षट् इन्द्रियोंका अभाव हो तब केवल शान्तिको प्राप्त होता है। हे रामजी! जो कुछवृत्ति वहिर्मुख फुरती है सो अविद्याहै क्योंकि, वह वृत्ति आत्मतत्त्वसे भिन्न जानकर फुरतीहै और जो अन्तर्मुख आत्माकीओर फुरती है सो विद्या अविद्याको नाश करेगी। अविद्याके दोरूपहैं—एक प्रधानरूप और दूसरा निकृष्टरूप है। उस अविद्यासे विद्या उपजकर अविद्याको नाशकरती है और फिर आपभी नाश होजाती है। जैसे बांससे अग्नि उपजती है और बांसको जलाकर आपभी शान्त होजाती है तैसेही जो अन्तर्मुख है सो प्रधानरूप विद्या है और जो वहिर्मुख है सो निकृष्टरूप अविद्या है। इससे अविद्या भावको नाश करे। हे रामजी! अभ्यास विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कुछ किसीको प्राप्तहोता है सो अभ्यासरूपीवृक्षका फल है। चिरकाल जो अविद्याका दृढ़ अभ्यास हुआ है तब अविद्या दृढ़ हुई है। जब आत्म ज्ञानके निमित्त यत्न करके दृढ़ अभ्यास करोगे तब अविद्या नाश होजावेगी। हे रामजी! हृदयरूपी वृक्षसे जो अविद्यारूपी बुरीलता फैलरहीहै उसको ज्ञानरूपी खड्गसे काटो और जो कुछ अपना प्रकृत आचार है उसको करो तब

तुमको दुःख कोई न होगा जैसे जनक राजा ज्ञातज्ञेय होकर व्यवहारको करता था तैसेही आत्मज्ञान का दृढ़ अभ्यास कर तुमभी विचरो। हे रामजी! जैसे निश्चय पवन, विष्णुजी, सदाशिव, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, अग्नि, नारद, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, भृगु, शुकदेव और ज्ञातज्ञेय ब्राह्मणोंका है वही तुमकोभी प्राप्तहो। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! जिस निश्चयसे बुद्धिमान् विशोकहोकर स्थितहुये हैं वह मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सम्पूर्ण ज्ञानवानों का निश्चय है और जैसे वे व्यवहारमें समरहे हैं सो सुनो। विस्ताररूप जो कुछ जगत जाल तुमको भासताहै वह निर्मल ब्रह्मसत्ता अपनी महिमामें स्थित है—जैसे समुद्रमें तरङ्ग स्थित होते हैं और नानाप्रकारके उत्पन्न होते हैं सो एक जल रूप है, जलसे भिन्न नहीं; तैसेही जो ग्रहण करने वाला है सोभी ब्रह्म है और जिसको भोजन करता है वहभी ब्रह्महै; मित्रभी ब्रह्म है, शत्रुभी ब्रह्म है; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। यह निश्चय ज्ञानवान्को सदा रहता है और ब्रह्मको ब्रह्म स्पर्श करता है तब किसको स्पर्श किया? हे रामजी! जिनको सदा यही निश्चय रहता है उनको रागद्वेष कुछ दुःख नहीं दे सक्ते। ब्रह्मही ब्रह्ममें फुरता है; भावरूपभी ब्रह्म है, अभाव रूपभी ब्रह्म है; कुछ भिन्न नहीं तो फिर रागद्वेष कलना कैसेहो? ब्रह्मही ब्रह्मको चेतता है; ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है, ब्रह्मही अहंअस्मि है; ब्रह्मही सम है; ब्रह्मही आत्मा है और घटभी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्मही से विस्तार को प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जब सर्वत्र ब्रह्मही है तब राग विराग कलना कैसेहोवे? मृत्युभी ब्रह्म है, शरीरभी ब्रह्म है; मरताभी ब्रह्महै और मारताभी ब्रह्महै। जैसे रस्सीमें सर्प भ्रमसे भासताहै तैसेही आत्मामें सुखदुःख मिथ्याहै। भोगभी ब्रह्महै, भोगनेवाला भी ब्रह्महै और भोक्तादेह भी ब्रह्महै निदान सर्वत्र ब्रह्महीहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और मिटजाते हैं सो जलसे भिन्न नहीं तैसेही शरीर उपजते और मिटजाते हैं सो ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थितहै। हे रामजी! जल के तरङ्ग जो मृत्युको प्राप्तहोते हैं तो क्याहुआ वे तो जलही हैं; तैसेही मृतकब्रह्मने जो मृतकदेह ब्रह्मकोमारा तब कौनमुआ और किसनेमारा? जैसे एकतरङ्ग जलसे उपजा और दूसरे तरङ्गसे मिलदोनों इकट्ठे होकर मिटगये सो जलही जलहैं; वहां मैं, तू इत्यादिक दूसरा कुछनहीं; तैसेही आत्मामें जो जगत् है सो आत्माही अपने आपमें स्थितहै; तेरा, मेरा, भिन्नकुछ नहीं। जैसे सुवर्णमें भूषण और जलमें तरङ्ग अभेदरूपहै तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछ भेदनहीं। हे रामजी! जो पुरुष यथार्थ दर्शीहै उसको सदायही निश्चयरहता है और जिनको सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्तहुआ उनको विपर्ययरूप औरका और भासताहै। पर वास्तवमें सदा एकरूपहै; ज्ञान और अज्ञानका भेदहै। जैसे रस्सी एकहोतीहै परन्तु जिसको सम्यक्ज्ञान होताहै उसको

है? और असत्य क्याहै? इस बिचारसे जिसका अभावहोता है वह असत्य है और जिसका अभाव नहीं होता वह सत्य है। फिर अन्वय व्यतिरेकसे बिचारे कि, कार्य कल्पित के होतेभी हो और उसके अभाव मेंभी हो सो अन्वय सत्य है। देहादिके भावमेंभी जो आत्मा अधिष्ठान है और इनके अभावमेंभी निरुपाधि सिद्धहै सो सत्यहै और देहादिक व्यतिरेक असत्यहै। ऐसे बिचारकर आत्मतत्त्वका अभ्यासकरे और असत् देहादिकसे वैराग्यकरे तब निश्चय करके अविद्या लीन होजाती है क्योंकि, वह वास्तवनहीं है, असत्यरूपहै। उसके नष्टहुये जो शेषरहे सो निष्किंचन किंचन स्वरूपहै और सत्यहै, ब्रह्म निरन्तर है सो तत्त्ववस्तु उपादेय करने योग्यहै। हे रामजी! ऐसे विचार करके अविद्या नष्ट होजातीहै। जैसे पौंड़ेका रस जिह्वासे लगता है तब अवश्य स्वाद आता है तैसेही आत्म विचारसे अविद्या अवश्य नष्ट होजाती है। यदि वास्तव में कहिये तो अविद्याभी कुछ भिन्न वस्तुनहीं, एक अखंडित ब्रह्मतत्त्व है। जिस के घट, पट, रथ आदिक पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं उसको अविद्या जानो और जिसको सर्व में एक ब्रह्म भावना है उसको विद्याजानो। इस विद्यासे अविद्या नष्ट होजावेगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽविद्याचिकित्सावर्णनंनामनवमस्सर्गः ९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बोधके निमित्त मैं तुमको बारम्बार सारकहता हूं कि आत्माका साक्षात्कार भावनाके अभ्यासबिना न होगा। यहजो अज्ञान अविद्याहैसो अनन्तजन्म का दृढ़ हुआ भीतर बाहर दिखाई देता है, आत्मसर्व इंद्रियोंसे अगोचरहै जब मन सहित षट् इन्द्रियोंका अभाव हो तब केवल शान्तिको प्राप्त होता है। हे रामजी! जो कुछवृत्ति बहिर्मुख फुरती है सो अविद्याहै क्योंकि, वह वृत्ति आत्मतत्त्वसे भिन्न जानकर फुरतीहै और जो अन्तर्म्मुख आत्माकीओर फुरती है सो विद्या अविद्याको नाश करेगी। अविद्याके दोरूपहैं—एक प्रधानरूप और दूसरा निकृष्टरूप है। उस अविद्यासे विद्या उपजकर अविद्याको नाशकरती है और फिर आपभी नाश होजाती है। जैसे बांससे अग्नि उपजती है और बांसको जलाकर आपभी शान्त होजाती है तैसेही जो अन्तर्मुख है सो प्रधानरूप विद्या है और जो बहिर्मुख है सो निकृष्टरूप अविद्या है। इससे अविद्या भावको नाश करे। हे रामजी! अभ्यास बिना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कुछ किसीको प्राप्तहोता है सो अभ्यासरूपीवृक्षका फल है। चिरकाल जो अविद्याका दृढ़ अभ्यास हुआ है तब अविद्या दृढ़ हुई है। जब आत्म ज्ञानके निमित्त यत्न करके दृढ़ अभ्यास करोगे तब अविद्या नाश होजावेगी। हे रामजी! हृदयरूपी वृक्षसे जो अविद्यारूपी बुरीलता फैलरहीहै उसको ज्ञानरूपी खड्गसे काटो और जो कुछ अपना प्रकृत आचार है उसको करो तब

तुमको दुःख कोई न होगा जैसे जनक राजा ज्ञातज्ञेय होकर व्यवहारको करता था तैसेही आत्मज्ञान का दृढ़ अभ्यास कर तुमभी विचरो । हे रामजी ! जैसे निश्चय पवन, विष्णुजी, सदाशिव, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, अग्नि, नारद, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, भृगु, शुकदेव और ज्ञातज्ञेय ब्राह्मणोंका है वही तुमको भी प्राप्तहो । रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! जिस निश्चयसे बुद्धिमान् विशोकहोकर स्थितहुये हैं वह मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे सम्पूर्ण ज्ञानवानों का निश्चय है और जैसे वे व्यवहारमें समरहे हैं सो सुनो । विस्ताररूप जो कुछ जगत् जाल तुमको भासताहै वह निर्मल ब्रह्मसत्ता अपनी महिमामें स्थित है–जैसे समुद्रमें तरङ्ग स्थित होते हैं और नानाप्रकारके उत्पन्न होते हैं सो एक जल रूप है, जलसे भिन्न नहीं; तैसेही जो ग्रहण करने वाला है सोभी ब्रह्म है और जिसको भोजन करता है वहभी ब्रह्महै; मित्रभी ब्रह्म है, शत्रुभी ब्रह्म है; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है । यह निश्चय ज्ञानवान्को सदा रहता है और ब्रह्मको ब्रह्म स्पर्श करता है तब किसको स्पर्श किया ? हे रामजी ! जिनको सदा यही निश्चय रहता है उनको रागद्वेष कुछ दुःख नहीं दे सक्ते । ब्रह्मही ब्रह्ममें फुरता है; भावरूपभी ब्रह्म है, अभाव रूपभी ब्रह्म है; कुछ भिन्न नहीं तो फिर रागद्वेष कलना कैसेहो ? ब्रह्मही ब्रह्मको चेतता है; ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है, ब्रह्मही अहंअस्मि है; ब्रह्मही सम है; ब्रह्मही आत्मा है और घटभी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्मही से विस्तार को प्राप्त हुआ है । हे रामजी ! जब सर्वत्र ब्रह्मही है तब राग विराग कलना कैसेहोवे ? मृत्युभी ब्रह्म है, शरीरभी ब्रह्म है; मरताभी ब्रह्महै और मारताभी ब्रह्महै । जैसे रस्सीमें सर्प भ्रमसे भासताहै तैसेही आत्मामें सुखदुःख मिथ्याहै । भोगभी ब्रह्महै, भोगनेवाला भी ब्रह्महै और भोक्तादेह भी ब्रह्महै निदान सर्वत्र ब्रह्महीहै । जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और मिटजाते हैं सो जलसे भिन्न नहीं तैसेही शरीर उपजते और मिटजाते हैं सो ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थितहै । हे रामजी ! जल के तरङ्ग जो मृत्युको प्राप्तहोते हैं तो क्याहुआ वे तो जलही हैं; तैसेही मृतकब्रह्मने जो मृतकदेह ब्रह्मकोमारा तब कौनमुआ और किसनेमारा ? जैसे एकतरङ्ग जलसे उपजा और दूसरे तरङ्गसे मिलदोनों इकट्ठे होकर मिटगये सो जलही जलहै; वहां मैं, तू इत्यादिक दूसरा कुछनहीं; तैसेही आत्मामें जो जगत् है सो आत्माही अपने आपमें स्थितहै; तेरा, मेरा, भिन्नकुछ नहीं । जैसे सुवर्णमें भूषण और जलमें तरङ्ग अभेदरूपहै तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछ भेदनहीं । हे रामजी ! जो पुरुष यथार्थ दर्शीहै उसको सदायही निश्चयरहता है और जिनको सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्तहुआ उनको विपर्ययरूप औरका और भासताहै । पर वास्तवमें सदा एकरूपहै; ज्ञान और अज्ञानका भेदहै । जैसे रस्सी एकहोती है परन्तु जिसको सम्यक्ज्ञान होताहै उसको

रस्सी भासतीहै और जिसको सम्यक्ज्ञान नहींहोताउसकोसर्पहो भासताहै;तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुषहै उसको सब ब्रह्मसत्ताही भासतीहै और जो अज्ञानीहै उसको जगत्-रूप भासताहै और नानाप्रकारका जगत् दुःखदायकहोताहै पर ज्ञानवान्को सुखरूप है। जैसे अन्धेको सबओर अन्धकारही भासताहै और नेत्रवान्को प्रकाशरूप होता है तैसेही सर्व जगत् आत्मरूपहै परन्तु ज्ञानीको आत्मसत्ता सुखरूप भासती है और अज्ञानीको दुःखदायकहै। जैसे बालकको अपनी परछाहींमें वैताल बुद्धिहोती है और उससे भयवान् होताहै पर बुद्धिमान् निर्भय होता है तैसेही अज्ञानीको जगत् दुःख-दायकहै और ज्ञानीको सुखरूपहै। यदि मेरा निश्चय पूछो तो यों है कि,मैं सर्व्व,ब्रह्म, नित्य, शुद्ध सर्व्वमें स्थितहूं; न कोई विनशता है, न उपजता है। जैसे जलमें तरङ्ग न कुछ उपजते हैं और न विनशते हैं जलही जल है तैसेही भूतभी आत्मा में है और जगत् भी आत्मरूप है। आत्म ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और शरीर के नाश हुये आत्माका नाश नहीं होता। मृतकरूप भी ब्रह्म है शरीर भी ब्रह्म है; ब्रह्मही अनेकरूप होकर भासता है ब्रह्मसे भिन्न शरीर आदिक कुछ सिद्ध नहीं होते। जैसे तरङ्ग, फेन और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही देह, कलना, इन्द्रियां, इच्छा, देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं और जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं होता—सुवर्णही भूषणरूपहोता है—तैसेही ब्रह्मसे व्यतिरेक जगत् नहीं होता ब्रह्मही जगत्रूपहै। जो मूढ़ हैं उनको द्वैतकलना भासती है। हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा और इन्द्रियां, सब ब्रह्महीके नाम हैं और सुखदुःख कुछ नहीं। अहं आदिक,जो शब्द हैं उनमें भिन्न २ भावना करनी व्यर्थ है, अपना अनुभवही अन्यकी नाईं होभासता है—जैसे पहाड़ में शब्द करने से प्रतिशब्दका भास होता है सो अपनाही शब्द है उसमें और की कल्पना मिथ्या है। जैसे स्वप्ने में कोई अपना शिरकटा देखता है सो व्यर्थ है पर सोई भासि आताहै। जिसको असम्यक्ज्ञान होता है उसको ऐसेही है। हे रामजी! ब्रह्म सर्व्वशक्त है उसमें जैसी भावना होती है वही भासि आता है। जिसको सम्यक्ज्ञान होताहै वह उसे निरहंकार, सुप्रकाश और सर्वशक्त देखताहै। कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, यह जो षट्कारक बुद्धिहै सो सब सर्वत्र ब्रह्महीहै और ब्रह्मही अर्पण, ब्रह्महीहवि, ब्रह्मही अग्नि, ब्रह्मही होत्र,ब्रह्मही हुतनेवाला और ब्रह्मही फलदेताहै;ऐसे जाननेवालेका नामज्ञानीहै और ऐसेनजानने से अज्ञानीहै। जाननेवालेका नाम ब्रह्मवेत्ताहै। हे रामजी! यदि चिरकालका बांधव हो और उसको देखिये तो जानिये कि,बांधवहै और जो देखनेमें न आये और उसका अभ्यास दूरहोगया हो तो बान्धव भी अबांधवकी नाईं होजाता है; तैसेही अपना आपही ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होतीहै तब ऐसेही भासि आताहै कि, मैं ब्रह्महूं

और द्वैत कल्पना लीन होजाती है—सर्व ब्रह्मही भासताहै । जैसे जिसने अमृत पान कियाहै वह अमृतमय होताहै और जिसनेनहीं पानकिया वह अमृतमय नहींहोता; तैसेही जिसने जानाहै कि, मैं ब्रह्महूं वह ब्रह्मही होता है और जिसने नहीं जाना उसको नानात्व कल्पना जन्म मरण भासताहै और ब्रह्म अप्राप्तकी नाईं भासता है । हे रामजी ! जिसको ब्रह्म भावनाका अभ्यासजगा है वह अभ्यास के बलसे शीघ्रही ब्रह्महोता है । ब्रह्मरूपी बड़े दर्पण में जैसी कोई भावना करता है तैसाही रूपहो भासताहै । मन भावनामात्रहै, दुर्वासना से स्वरूपका आवरण हुआहै; जब वासना नष्ट होतीहै तब निष्कलङ्क आत्मतत्त्वही भासताहै । जैसे शुद्ध वस्त्रपर केशरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है, तैसेही वासना से रहित चित्तमें ब्रह्मस्वरूप भासिआता है । हे रामजी ! आत्मा सर्व्व कलना से रहित है और तीनों काल में नित्यशुद्ध, सम और शान्तरूप है । जिसको ज्ञान होता है वह ऐसे जानता है कि, मैं ब्रह्महूं । और सदाकाल, सर्व में सर्वप्रकार सर्व्वघट, पटादिक जो जगत् जाल है उसमें मैंहीं ब्रह्म आकाशवत् व्यापरहाहूं ? न कोई मुझको दुःख है, न कर्म है न किसी का त्याग करताहूं और न वांछाकरताहूं और सर्वकलनासे रहित निरामयहूं । मैंहीं रक्त, पीत, श्वेत और श्यामहूं और रक्त, मांस, अस्थिका वपुभी मैंहींहूं; घट, पटादिक जगत् भी मैंहींहूं और तृण, बेलि, फूल, गुच्छे, टास, वन, पर्व्वत, समुद्र, नदियां, ग्रहण, त्याग, संकुचना, भूत आदिशक्ति सब मैंहींहूं । विस्तारको प्राप्त मैंहीं भयाहूं; वृक्ष, बेलि, फल, गुच्छे, जिसके आश्रय फुरते हैं वह चिदात्मा मैंहींहूं और सबमें रसरूप मैंहींहूं । जिसमें यह सर्व है और जिससे यह सर्व है; जो सर्व है और जिसको सर्व-है ऐसा चिदात्मा ब्रह्म मैंहींहूं । जिसके चेतन, आत्मा, ब्रह्म, सत्य, अमृत, ज्ञानरूप इत्यादिक नाम हैं; ऐसा सर्व्वशक्त, चिन्मात्र, चैत्यसे रहित प्रकाशमात्र, निर्मल, सर्व भूत प्रकाशक और मन,बुद्धि,इन्द्रियों का स्वामी मैंहूं ।जो कुछ भेद कलनाहै सो इसने ही की थी और अब इनकी कलनाको त्यागकर मैं अपने प्रकाश में स्थितहूं । शब्द, स्पर्श,रूप,रस,गन्ध आदिक जो सब जगत्का कारणहैं उन सबका चेतनआत्मारूप ब्रह्म,निरामय,अविनाशी, निरन्तर, स्वच्छ आत्मा, प्रकाशरूप, मनकेउत्थानसे रहित, मौनरूपमैंहींहूं और परम अमृत, निरन्तर सर्वभूतों के सत्तारूप से मैंहीं स्थितहूं । सदाअलेपक, साक्षी, सुषुप्तिकी नाईं और द्वैतकलनासे रहित अक्षोभरूपानुभव मैंहीं हूं । शांतरूप जगत्में मैंहीं फैलरहाहूं और सब वासनासे रहित अक्षोभरूपी अनु-भवमैंहीं हूं । जिससेसब स्वादका अनुभवहोताहै सो चेतन ब्रह्मआत्मा मैंहींहूं । जिस का चित्त स्त्रीमें आसक्त है; जिसको चन्द्रमाकी कांतिसे अधिक मुदिता है और जिस से स्त्रीका स्पर्श और मदिताका अनुभव होता है ऐसा चेतन ब्रह्म मैंहींहूं और सुख

रस्सी भासतीहै और जिसको सम्यक्ज्ञान नहींहोताउसकोसर्पहो भासताहै;तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुषहै उसको सब ब्रह्मसत्ताही भासतीहै और जो अज्ञानीहै उसको जगत्-रूप भासताहै और नानाप्रकारका जगत् दुःखदायकहोताहै पर ज्ञानवान्को सुखरूप है। जैसे अन्धेको सबओर अन्धकारही भासताहै और नेत्रवान्को प्रकाशरूप होता है तैसेही सर्व जगत् आत्मरूपहै परन्तु ज्ञानीको आत्मसत्ता सुखरूप भासती है और अज्ञानीको दुःखदायकहै। जैसे बालकको अपनी परछाहींमें वैताल बुद्धिहोती है और उससे भयवान् होताहै पर बुद्धिमान् निर्भय होता है तैसेही अज्ञानीको जगत् दुःख-दायकहै और ज्ञानीको सुखरूपहै। यदि मेरा निश्चय पूछो तो यों है कि, मैं सर्व्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध सर्व्वमें स्थितहूं; न कोई विनशता है, न उपजता है। जैसे जलमें तरङ्ग न कुछ उपजते हैं और न विनशते हैं जलही जल है तैसेही भूतभी आत्मा में है और जगत् भी आत्मरूप है। आत्म ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और शरीर के नाश हुये आत्माका नाश नहीं होता। मृतकरूप भी ब्रह्म है शरीर भी ब्रह्म है; ब्रह्मही अनेकरूप होकर भासता है ब्रह्मसे भिन्न शरीर आदिक कुछ सिद्ध नहीं होते। जैसे तरङ्ग, फेन और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही देह, कलना, इन्द्रियां, इच्छा, देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं और जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं होता—सुवर्णही भूषणरूपहोता है—तैसेही ब्रह्मसे व्यतिरेक जगत् नहीं होता ब्रह्मही जगत्रूपहै। जो मूढ़ हैं उनको द्वैतकलना भासती है। हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा और इन्द्रियां, सब ब्रह्महीके नाम हैं और सुखदुःख कुछ नहीं। अहं आदिक, जो शब्द हैं उनमें भिन्न २ भावना करनी व्यर्थ है, अपना अनुभवही अन्यकी नाईं होभासता है—जैसे पहाड़ में शब्द करने से प्रतिशब्दका भास होता है सो अपनाही शब्द है उसमें और की कल्पना मिथ्या है। जैसे स्वप्ने में कोई अपना शिरकटा देखता है सो व्यर्थ है पर सोई भासि आताहै। जिसको असम्यक्ज्ञान होता है उसको ऐसेही है। हे रामजी! ब्रह्म सर्व्वशक्त है उसमें जैसी भावना होती है वही भासि आता है। जिसको सम्यक्ज्ञान होताहै वह उसे निरहंकार, सुप्रकाश और सर्वशक्त देखता है। कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, यह जो षट्कारक बुद्धिहै सो सब सर्वत्र ब्रह्महीहै और ब्रह्मही अर्पण, ब्रह्महीहवि, ब्रह्मही अग्नि, ब्रह्मही होत्र, ब्रह्मही हुतनेवाला और ब्रह्मही फलदेताहै; ऐसे जाननेवालेका नामज्ञानीहै और ऐसेनजानने से अज्ञानीहै। जाननेवालेका नाम ब्रह्मवेत्ताहै। हे रामजी! यदि चिरकालका बांधव हो और उसको देखिये तो जानिये कि, बांधवहै और जो देखनेमें न आये और उसका अभ्यास दूरहोगया हो तो बान्धव भी अबांधवकी नाईं होजाता है; तैसेही अपना आपही ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होतीहै तब ऐसेही भासि आताहै कि, मैं ब्रह्महूं

आर द्वैत कल्पना लीन होजाती है—सर्व ब्रह्मही भासताहै। जैसे जिसने अमृत पान कियाहै वह अमृतमय होताहै और जिसनेनहीं पानकिया वह अमृतमय नहींहोता; तैसेही जिसने जानाहै कि, मैं ब्रह्महूं वह ब्रह्मही होता है और जिसने नहीं जाना उसको नानात्व कल्पना जन्म मरण भासताहै और ब्रह्म अप्राप्तकी नाईं भासता है। हे रामजी! जिसको ब्रह्म भावनाका अभ्यासजगा है वह अभ्यास के बलसे शीघ्रही ब्रह्महोता है । ब्रह्मरूपी बड़े दर्पण में जैसी कोई भावना करता है तैसाही रूपहो भासताहै। मन भावनामात्रहै, दुर्वासना से स्वरूपका आवरण हुआहै; जब वासना नष्ट होतीहै तब निष्कलङ्क आत्मतत्त्वही भासताहै। जैसे शुद्ध वस्त्रपर केशरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है, तैसेही वासना से रहित चित्तमें ब्रह्मस्वरूप भासिआता है। हे रामजी! आत्मा सर्व्व कलना से रहित है और तीनों काल में नित्यशुद्ध, सम और शान्तरूप है। जिसको ज्ञान होता है वह ऐसे जानता है कि, मैं ब्रह्महूं। और सदाकाल, सर्व में सर्वप्रकार सर्व्वघट, पटादिक जो जगत् जाल है उसमें मैंहीं ब्रह्म आकाशवत् व्यापरहाहूं ? न कोई मुझको दुःख है, न कर्म है न किसी का त्याग करताहूं और न वांछाकरताहूं और सर्वकलनासे रहित निरामयहूं। मैंहीं रक्त, पीत, श्वेत और श्यामहूं और रक्त, मांस, अस्थिका वपुभी मैंहींहूं; घट, पटादिक जगत् भी मैंहींहूं और तृण, वेलि, फूल, गुच्छे, टास, वन, पर्व्वत, समुद्र, नदियां, ग्रहण, त्याग, संकुचना, भूत आदिशक्ति सब मैंहींहूं । विस्तारको प्राप्त मैंहीं भयाहूं; वृक्ष, वेलि, फल, गुच्छे, जिसके आश्रय फुरते हैं वह चिदात्मा मैंहींहूं और सबमें रसरूप मैंहींहूं। जिसमें यह सर्व है और जिससे यह सर्व है; जो सर्व है और जिसको सर्व-है ऐसा चिदात्मा ब्रह्म मैंहींहूं। जिसके चेतन, आत्मा, ब्रह्म, सत्य, अमृत, ज्ञानरूप इत्यादिक नाम हैं; ऐसा सर्व्वशक्त, चिन्मात्र, चैत्यसे रहित प्रकाशमात्र, निर्मल, सर्व भूत प्रकाशक और मन,बुद्धि,इन्द्रियों का स्वामी मैंहूं।जो कुछ भेद कलनाहै सो इसने ही की थी और अब इनकी कलनाको त्यागकर मैं अपने प्रकाश में स्थितहूं। शब्द, स्पर्श,रूप,रस,गन्ध आदिक जो सब जगत्का कारणहैं उन सबका चेतनआत्मारूप ब्रह्म,निरामय,अविनाशी, निरन्तर, स्वच्छ आत्मा, प्रकाशरूप, मनकेउत्थानसे रहित, मौनरूपमैंहींहूं और परम अमृत, निरन्तर सर्वभूतों के सत्तारूप से मैंहीं स्थितहूं। सदाअलेपक, साक्षी, सुषुप्तिकी नाईं और द्वैतकलनासे रहित अक्षोभरूपअनुभाव मैंहीं हूं। शांतरूप जगत्में मैंहीं फैलरहाहूं और सब वासनासे रहित अक्षोभरूपी अनु-भवमैंहीं हूं। जिससेसब स्वादका अनुभवहोताहै सो चेतन ब्रह्मआत्मा मैंहींहूं। जिस का चित्त स्त्रीमें आसक्त है; जिसको चन्द्रमाकी कांतिसे अधिक मुदिता है और जिस से स्त्रीका स्पर्श और मदिताका अनुभव होता है ऐसा चेतन ब्रह्म मैंहींहूं और सुख

दुःखकी कलनासे रहित अमनसत्ता और अनुभवरूप जो आत्मा है सो चेतनरूप आत्माब्रह्म मैंहीं हूं। खजूर और नींबआदिकमें स्वादरूप मैंहींहूं; खेद और आनन्द, लाभ और हानि मुझको तुल्य है और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और साक्षी तुरीयारूप आदि, अन्तसे रहित चेतनब्रह्म निरामय मैंहूं। जैसे एक खेतके पौड़ों में एकहीसा रसहोता है तैसेही अनेक मूर्त्तियों में एक ब्रह्मसत्ताही स्थित है। वह सत्य, शुद्ध, सम, शांतरूप और सर्वज्ञ है, जो प्रकाशक और सूर्य्य की नाईं है सो प्रकाशरूप ब्रह्ममैंहीं हूं और सब शरीरों में व्यापरहाहूं। जैसे मोती की मालामें तागा गुप्त होता है जिस में मोती पिरोये हैं;तैसेही मोतीरूपी शरीरमें तंतुरूप गुप्त मैंहींहूं और जगत्रूपी दूध में ब्रह्मरूपी घृतमैंहीं व्यापरहाहूं। हे रामजी! जैसे सुवर्णमें जो नानाप्रकारके भूषण बनते हैं सो सुवर्णसे भिन्न नहीं होते तैसेही सब पदार्थ आत्मा में स्थितहैं—आत्मासे भिन्न नहीं। पर्व्वत, समुद्र और नदियों में सत्तारूप आत्माही है; सर्वसंकल्पोंका फल-दाता और सर्वपदार्थोंका प्रकाशक आत्माही है और सब पानेयोग्य पदार्थोंका अन्त है। उसआत्माकी उपासना हम करते हैं जो घट, पट, तट, और कंध में स्थित है। जाग्रत् में जो सुषुप्तिरूप स्थित है और जिसमें कोई फ़ुरना नहीं, ऐसे चेतनरूप आत्माकी उपासना हम करते हैं। मधुर में जो मधुरता है और तीक्ष्णमें तीक्ष्णता है और जगत् में चलना शक्ति है उस चेतन आत्मकी हम उपासना करते हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया और तुरीयातीत में जो समतत्त्व है उसकी हम उपा-सनाकरते हैं। त्रिलोकी के देहरूपी मोतियों में जो तंतुकी नाईं अनुस्यूत है और फैलाने और संकोच ने का कारण है उस चेतनरूप आत्माकी हम उपासना करते हैं। जो षोड़श कलासंयुक्त और षोड़श कलासे रहित और अकिंचन, किंचनरूप है उस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं। चेतनरूप अमृत जो क्षीरसमुद्रसे निकला है और चन्द्रमाके मण्डल में रहता है, ऐसा जो स्वतःसिद्ध अमृत है जिस को पाकर कदाचित् मृत्यु न हो उसचेतन अमृतकी हमउपासना करते हैं। जो अखण्ड प्रकाश है और सब भूतोंको सुन्दर करता है उस चिदात्माको हम उपासते हैं। जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रकाशते हैं और आप इससे रहित हैं उस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं। सबमेंहूं और सबमेंनहीं और भी कोईनहीं इसप्रकार विदित जानकर अपने अद्वैतरूप में विगतज्वर होकर स्थितहोते हैं। यही निश्चय ज्ञानवानों का है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तिनिश्चयोपदेशोनामदशमस्सर्ग्गः १०॥

वशिष्ठजी बोले,हेरामजी! जो निष्पाप पुरुषहै उसको यहीनिश्चयरहताहै कि,सत्य-रूप आत्मतत्त्वहै यह पूर्णबोधवान्का निश्चय है। उसको न किसीमें रागहोताहै और

न किसीमेंद्वेषहोताहै;उसकोजीना और मरना सुखदुःख नहींदेता और वहएकसमान रहताहै। वह विष्णु नारायणका अङ्ग है अर्थात् अभेद है और सदाअचल है। जैसे सुमेरुपर्व्वत वायुसे चलायमान नहींहोता तैसेही वह दुःखसे चलायमाननहीं होता। ऐसेजोज्ञानवान् पुरुष हैं वे वनमें विचरते हैं और नगर द्वीप आदिक नानाप्रकारके स्थानोंमें भी फिरते हैं परन्तु दुःख नहीं पाते।कोईस्वर्ग्ग में फूलोंके वन और वगीचों मेंफिरते हैं कोई पर्व्वत की कन्दराओं में रहते हैं, कोई राज्य करते हैं और शत्रुओंको मारकर शिरपर झुलाते हैं; कितने श्रुति–स्मृतिके अनुसार कर्म्म करते हैं; कोईभोग भोगते हैं; कोई विरक्त होकर स्थित हैं, कोई दान, यज्ञादिक कर्म्म करते हैं; कोई स्त्रियोंके साथ लीलाकरते, कहीं गीत सुनते और कहीं नन्दनवनमें गंधर्व गायन करते हैं; कोई गृहमें स्थित हैं; कोई तीर्थ और यज्ञकरते हैं, कोई नौवत, नगारे और तुरियां इत्यादिक सुनते और नानाप्रकारके स्थानों में रहते हैं परन्तु आसक्त नहीं होते। जैसे सुमेरुपर्व्वत तालमें नहीं डूवता तैसेही ज्ञानवान् किसी पदार्थमें वंधवान् नहीं होते।वे इष्टको पाकर हर्षवान् नहीं होते और अनिष्टको पाकर दुःखी नहीं होते। वे आपदा और सम्पदामें तुल्य रहते हैं और प्रकृत आचार कर्म्म करते हैं परन्तु उनका हृदय सर्व आरम्भ से रहित है । हे राघव ! इसी दृष्टिका आश्रय करके तुमभी विचरो । यह दृष्टि सर्व पापका नाशकरती है। अहंकारसे रहित होकर जो इच्छाहो सो करो, जव यथाभूतदर्शी हुये तव निर्वंध हुये फिर जो कुछ पतित प्रवाह से आ प्राप्त होगा उसमें सुमेरुकी नाईं तुमरहोगे। हे रामजी! यह सव जगत् चिन्मात्र है; न कुछ सत्य है, न असत्य है; वही इस प्रकार होकर भासता है। इसदृष्टि को आश्रय करके और तुच्छ दृष्टिको त्यागो । हे रामजी ! असंसक्त वुद्धिहोकर सर्व भाव अभावमें स्थित हो रागद्वेषसे चलायमान नहो; अवसावधान होरहो। रामजी वोले, हे भगवन् ! वड़ा आश्चर्य्य है कि,मैंने आपके प्रसादसे जानने योग्यपदजाना और प्रवुद्ध हुआहूं।जैसे सूर्य्यकी किरणोंसे कमलप्रफुल्लित होतेहैं तैसेहीमें प्रफुल्लित हुआहूं और जैसे शरत्कालमें कुहिरानष्ट होजाताहै तैसेही और वचनसे मेरासंदेह और मानमोह मदमत्सर सवनष्टहोगये हैं। मैं अव सर्वक्षोभसे रहित शांतको प्राप्तहुआहूं॥ इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तिनिश्चयवर्णनंनामएकादशस्सर्गः ११॥

रामजीने पूछा,हे भगवन् ! सम्यक् ज्ञानविलाससे वासना उदयहोती है सो जीवन्मुक्ति पदमें किसप्रकार विश्रांति पाते हैं सोकहो। वशिष्ठजी वोले, हेरामजी! संसार तरनेकी युक्ति है सो योगनाम्नी है। वह युक्ति दो प्रकारकी है– एक सम्यक् ज्ञान और दूसरी प्राणके रोकने से। फिर रामजीने पूछा, हे भगवन् ! इन दोनोंमें सुगम कौन है जिससे दुःखभी नहो और फिर क्षोभभी नहो ? वशिष्ठजी वोले, हे रामजी !

दोनों प्रकारसे योग शब्द कहाता है तौभी योगप्राणके रोकनेका नामहै। योग और ज्ञान दोनों संसारसे तरनेके उपायहैं। इनदोनोंका फल एकही सदाशिवने कहाहै। हे रामजी! किसीको योगकरना कठिनहोताहै और ज्ञानका निश्चय सुगम होता है और किसीको ज्ञानका निश्चय कठिनहोता है और योग करना सुगम है। यदि मुझसे पूछो तो दोनोंमें ज्ञानसुगम है क्योंकि, इसमें यत्न और कष्टथोड़ा है। जानने योग्य पदार्थके जानेसे फिर सुपनेमेंभी भ्रमनहीं होता क्योंकि,वह साक्षीभूत होकर, देखता है और जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं उनकोभी कुछयत्न नहीं होता, वे स्वाभाविकही चले जाते हैं और उनकी एक युक्ति समझकर चित्तशांत होजाता है। हेरामजी! दोनों की सिद्धता अभ्यास और यत्नसे होती है; अभ्यास बिना कुछ नहीं प्राप्तहोता। वह ज्ञान तो मैंने तुमसे कहाहै। जो हृदयमें विराजमान ज्ञेयहै उसका जाननाही ज्ञान है जो प्राण अपानके रथपर आरूढ़ है और हृदयरूपी गुहामें स्थित है। हे रामजी! उसयोगका भी क्रमसुनो वहभी परम सिद्धताके निमित्त है। प्राणवायु जो नासिका और मुख के मार्गसे आतीजाती है उसके रोकनेका क्रम कहताहूं। उससे चित्त उप-शम होजाता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेज्ञानज्ञेयविचारोनामद्वादशस्सर्गः १२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाशके किसी कोने से यह जगत्‌रूपी स्पन्द आभासफुरा है—जैसे मरुस्थलमें सूर्य्यकी किरणोंमें मृगतृष्णाका जल फुर आता है— उस जगत्‌के कारण भावको वही प्राप्त हुआ है जो ब्रह्मके नाभि कमल से उत्पन्न हुआहै और पितामह नामसे कहाताहै। उसका मानसी पुत्र श्रेष्ठआचारी मैं वशिष्ठहूं। नक्षत्र और तारा चक्रमें मेरानिवासहै और युगयुग प्रतिमें वहां रहता हूं। एक समय में नक्षत्र चक्र से उड़ा और इन्द्रकी सभामें गया तो देखा कि, वहां ऋषीश्वर, मुनीश्वर बैठे थे। इतनेमें नारद आदिक चिरञ्जीवीका जो प्रसङ्ग चला तो शातातप नाम एक बुद्धिमान् ऋषीश्वरने कहा कि, हे साधो! सबमें चिरञ्जीव एक है। सुमेरु पर्वतकी कोणपद्मरागनाम्नी कन्दरा के शिखरपर एक कल्पवृक्ष है जो महासुन्दर और अपनी शोभासे पूर्ण है। उस वृक्षके दक्षिण दिशाकी डालपर बहुत पक्षी रहते हैं उन पक्षियों में एक महाश्रीमान् कौवा रहता है जिसका नाम भुशुण्ड है। वह वीतराग और बुद्धिमान् है और उसका आलय उस कल्पवृक्ष के टासपर बनाहुआ है। जैसेब्रह्मा नाभिकमलमें रहते हैं तैसेही वह उस आलय में रहता है। जैसे वह जिया है तैसे न कोई जिया है और न जीवेगा। उसकी बड़ी आयुर्बल है और वह महा बुद्धिमान्, विश्रांतिमान्, शांतरूप और काल का वेत्ता है। हे साधो! बहुत जीनाभी उसीका फल है और पुण्यवान्भी वही है।

उसको आत्मपदमें विश्रांति हुई है और संसारकी आस्था जाती रही है । इसप्रकार जब उन देवताओंके देवने कहा तब सम्पूर्ण सभामें ऋषीश्वरने दूसरी बार पूछाकि, उसका वृत्तान्त फिर कहो । तब उसने फिर वर्णन किया तो सब आश्चर्यको प्राप्तहुये जब यहकथा वार्त्ताहोचुकी तब सब सभा उठखड़ी हुई और अपने २ आश्रमको गये पर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, ऐसे पक्षीको किसीप्रकारदेखाचाहिये ऐसा बिचार करके मैं सुमेरु पर्व्वत की कन्दराके सन्मुख हो चला और एकक्षणमें वहां जापहुंचा तो क्या देखा कि; महाप्रकाशरूप वह कन्दरा का शिखर रत्नमणि से पूर्ण है और उसका गेरूकीनाईं रङ्ग है । जैसे अग्निकी ज्वाला होती तैसेही उसका प्रकाशरूपथा मानों प्रलयकाल में अग्निकी ज्वाला जागती है—और बीचमें नीलमणि धूम्रके समानथा—मानोंधुआं निकलता है और सब रत्नोंकी खानि है । ऐसाचमत्कार प्रकाशथा मानो सन्ध्याके लाल बादल इकट्ठे हुये हैं; मानों योगीश्वरोंके ब्रह्म रन्ध्रसे अग्नि निकलकर इकट्ठी हुई वा मानो बड़वाग्नि समुद्रसे निकलकर मेघको ग्रहण करने के निमित्त स्थित हुई है । निदान महासुन्दर रचना बनीहुई थी जो फल और रत्नमणिसंयुक्त प्रकाशवान्था और ऊपर गङ्गाका प्रवाह चलाजाताथा सो यज्ञोपवीत रूपथा । गन्धर्व्व गीतगाते थे, देवियोंके रहनेके स्थान बनेथे और हर्ष उपजाने को महासुन्दर लीलाके स्थान बिधाताने वहां रचे हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डोपाख्यानेसुमेरुशिखरलीला वर्णनंनामत्रयोदशस्सर्ग्गः १३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे शिखरपर मैंने कल्पवृक्ष देखा कि, वह महासुन्दर फलोंसे पूर्ण है और रत्न और मणियोंके गुच्छे और स्वर्णकी बेलें लगी हुई हैं; तारोंसेदूने फूल दृष्टि आते हैं; मेघके बादलसे दूने पत्र दृष्टि आते हैं और सूर्य्यकी किरणोंसे दुगुने त्रिवर्ग भासते हैं; जिनका बिजलीकी नाईं चमत्कार है । पत्रोंपर देवता, किन्नर, विद्याधर और देवियां बैठी हैं और अप्सरा आ नृत्य और गान करती हैं—जैसे भँवरे गुञ्जार करते फिरते हैं । हे रामजी ! रत्नोंके गुच्छे और कलियां और मणिके फूल फल पत्र निरन्ध्र दृष्टि आतेथे; सबस्थान फूल फल गुच्छोंसे पूर्ण थे और छहोंऋतुके फूल फल वहां पायेजातेथे । उस बृक्षके एक टासपर पक्षी बैठे कहीं फूल फलादिक खातेथे, कहीं ब्रह्माजीके हंस बैठे थे, कहीं अग्निके वाहन तोते, कहीं अश्विनीकुमार और भगवतीके शिखावाले मोर, कहीं बगले, कहीं कबूतर, और कहीं गरुड़ बैठे ऐसे शब्द करतेथे मानों ब्रह्मा कमलसे उपजकर ओंकारका उच्चार करताहै कई ऐसे पक्षी देखे कि, उनकी दोदो चोंचेंथीं । फिर मैं आगे देखनेको गया तो जहां उस बृक्षका टासथा वहां अनेक कौवे बैठे देखे । जैसे महाप्रलयमें मेघ और लोका-

लोक पर्वतों पर आन बैठतेहैं तैसेही वहां अनेक कौवे अचल बैठेथे जो सोम, सूर्य्य, इन्द्र, वरुण और कुवेर के यज्ञकी रक्षा करनेवाले और पुण्यवान् स्त्रियोंकी प्रसन्नता देनेवाले भर्त्ताके संदेशे पहुंचानवालेहैं। उनके मध्यमें एकमहाश्रीमान् और कान्तिमान् कौवा ऊंचीग्रीवा कियेहुये बैठाथा। जैसे नीलमणि चमकती है तैसेही उसकी ग्रीवा चमकतीथी और पूर्णमन और मानी अर्थात् मानकरनेयोग्य; सुन्दर और प्राणस्पंद को जीतनेवाला; नित्यअन्तर्सुख और नितही सुखी वह चिरञ्जीवी पुरुष वहां बैठाथा जगत्में दीर्घआयु और जगत्की आगमापायी गति देखतेदेखते जिसने वहुतकल्पका स्मरण किया है; इन्द्रकी जिसने कईपरम्परा देखी हैं; लोकपाल, वरुण, कुवेर, यमादिकके कईजन्म देखे हैं और देवतों और सिद्धोंके अनेक जन्म जिसपुरुषने देखे हैं और जिसका प्रसन्न और गम्भीर अन्तःकरण है; जिसकी सुन्दरवाणी वक्रतासे रहितहै;जो निर्मल और निरहङ्कार सवको सुहृद मित्रहै; वड़ीकोटर हलवेकी नाईं है; जो पितासमान हैं उनको पुत्रकी नाईं है और जो पुत्र के समान हैं उनको उपदेश करनेके निमित्त पिता और गुरूकीनाईं समर्थ है और जो सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्व काल, सवमें समर्थ और प्रसन्न, महामति, हृदय पुंडरीक, व्यवहारका वेत्ता है;गम्भीर और शान्तरूप महाज्ञाताज्ञेय है; ऐसे पुरुष को मैंने देखा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डदर्शनंनामचतुर्दशस्सर्ग्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर में आकाशमार्ग से वहांआया और महातेजवान् दीपकवत् प्रकाशवान् मेराशरीरथा। जव मैं उतरातव जितनेपक्षी वहां बैठेथे वे सव जैसे वायुसे कमलकी पंक्तिक्षोभको प्राप्तहोतीहै और भूकंपसे समुद्रक्षोभ को प्राप्तहोता है तैसेही क्षोभको प्राप्तहुये। उनके मध्य में जो भुशुण्डथा उसने मुझको यद्यपि अकस्मात् ऐसा तोभी जानगया कि, यह वशिष्ठ है और उठखड़ा हो वोला; हे मुनीश्वर! स्वस्थहो,कुशलतो है। हे रामजी! ऐसेकहकर उसने सङ्कल्पके हाथरचे औरउनसे मेरा अर्घ्यपाद्यकर भावसंयुक्त पूजनकिया और नौकरोंको दूरकरके आपही वृक्षके वड़ेपत्रले और उनका आसन रचकर मुझको वैठावोला अहो आश्चर्य्य है! हे भगवन्! आपने वड़ीकृपाकी कि, दर्शनदिया। चिरपर्य्यन्त दर्शनरूपी अमृतसेहम वृक्षसहित पूर्णहोरहे हैं। हे भगवन्! मेरेपुण्य इकट्ठे होकर प्रसन्नताके निमित्त आप को प्रेरलेआये हैं। हे मुनीश्वर! देवता जो पूजने योग्यहैं उनके भी आप पूज्यहो। कृपा करके कहो कि, आप किस निमित्त आयेहैं और आपका क्या मनोरथहै? आपके चरणोंके दर्शनकरके मैंनेतो सवकुछ जानाहै। स्वर्ग्गकी सभामें जव चिरञ्जीवियों का प्रसङ्गचला था तवमैं भी शरणमें आयाथा इससे आप मुझको पवित्र करने आयेहो परन्तु प्रभुके वचनरूपी अमृत के स्वादकी मुझको इच्छा है इस निमित्त मैं प्रभुके

मुखस कुछ सुनाचाहताहूँ । हे रामजी ! जब इस प्रकार चिरञ्जीवी भुशुण्डनाम पक्षीने मुझसे कहा तबमैंने कहा, हे पक्षियों के महाराज ! जो कुछ तुमने कहा सो सत्है । मैं अभ्यागत तुम्हारे आश्रमपर इस निमित्त आयाहूँ कि, चिरंजीवियों की कथा चली थी और उसमें तुम्हारा वर्णन हुआथा । तुममुझको शीतलचित्त दृष्टिआतेहो; और कुशलमूर्त्ति हो और संसाररूपी जालसे निकलेहुये दीखतेहो । इससेमेरे इससंशय को दूरकरो कि, कब तुमने जन्म लियाथा,ज्ञातज्ञेय कैसेहुये; तुम्हारी आयुकितनीहै; कौन कौन वृत्तान्त तुमको देखाहुआ स्मरणहै और किसकारण यहां निवास कियाहै; भुशुण्ड बोले, हे मुनीश्वर ! जो कुछ तुम ने पूंछा वहसब कहता हूँ, शनैः शनैः तुम श्रवण करो । तुमतो स्वयम् साक्षात् प्रभु; त्रिलोकीके पूज्य और त्रिकालदर्शीहो परन्तु जोकुछ तुमने आज्ञाकी है सो मानने योग्य है । तुमसारिखे महात्मा पुरुषों के सम्मुख हुये अपने में जो कुछ तप्तता होती है वहभी निवृत्त होजाती है—जैसे मेघ के आगे आये हुये सूर्य्यकी तप्तता मिट जाती है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डीसमागमंनामपञ्चदशस्सर्गः १५ ॥

भुशुण्ड बोले, हे मुनीश्वर ! इस जगत् में सब देवताओं के बड़े देव सदाशिव हैं जिन्हों ने अर्द्धाङ्ग भगवती को शरीर में धारण किया है और जो महासुन्दर मूर्त्ति और त्रिनेत्र हैं । जिनकी बड़ी जटा हैं और मस्तक पर चन्द्रमा है जिससे अमृत टपकता है; और जटाके चहुंओर गङ्गा फिरती हैं—जैसे फूलोंकी माला कंठ में होती है । नीलकंठ कालकूट के पानसे विष विभूषण होगये हैं; कंठमें मुण्डकी माला हैं और सब ओर से भस्मलगी हुई है । दिशा उनके वस्त्रहैं; मसानमें गृह हैं और महाशान्तरूप विचरते हैं । उनके साथ जो सेना है उसके महाभयानक आकार हैं; किसीके तो रुद्रकी नाईं तीन नेत्र हैं; किसी का तोतेकी नाईं मुख है; किसी का ऊंट का मुख है; कोई गर्दभमुखी है; किसीका बैल का मुख है; कोई जीवों के हृदय में प्रवेश करके रक्त मांस के भोजन करने वाले हैं कोई पहाड़ में रहते हैं; कितने वन, कन्दराओं और मसान में रहते हैं । उनके साथ देवियांभी ऐसी हैं जिनकी महाभयानक चेष्टा और आचार हैं । उन देवियों में जो मुख्य देवियां हैं उनका जिस जिस दिशामें निवास है वह सुनो । जया, विजया, जित और अपराजित वामदिशा की ओर तुम्बररुद्र के आश्रित हैं; और सिद्ध, मुखका, रक्तका और उतला भैरव रुद्रके आश्रित हैं । सर्व्वदेवियों के मध्य ये अष्टनायका और शतसहस्र देवियांहैं । रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, वाराही, वायवी, कौमारी, वासवी, सौरी इत्यादिक । इनके साथ मिलीहुई आकाशमें उत्तम देव, किन्नर, गन्धर्व्व, पुरुष, सुरसंभवतियां तिनके

साथ हुई हैं। भूचरपृथ्वी में कोटों हैं। और नानाप्रकाररूप, नाम धारकर पृथ्वी में जीवोंको भोजन करती हैं। उनके बाहन ऊँट, गर्दभ, काक, वानर, तोते इत्यादिकहैं। उन देवियों में कई पशुधर्मिणी हैं जो क्षुद्रकर्म्म में स्थित हैं और कई विदित वेद जीवन्मुक्तपद में स्थित हैं। उनके मध्यनायक अलम्बसा देवी है। जैसे विष्णु का वाहन गरुड़ है तैसेही उस देवीका वाहन काक है और यह देवी अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य्य संयुक्त है। वे देवियां एककाल में विचारती भईं और जगत्के पूज्य तुम्बर और भैरवकी पूजा कर विचार किया कि, सदाशिव हमारे साथ भावसंयुक्त नहीं बोलते और हमको तुच्छ जानते हैं इससे हमइनको कुछ अपनाभावदिखावें क्योंकि प्रभाव दिखाये विना कोई किसीको नहीं जानता। ऐसे विचाररच ये उमा को वश करके दुराय लेगई और उत्साहकरके मद्य,मांसादिक भोजनकिया। निदान मायाके छल से पार्व्वती को मारकर चावलकीनाईं पकाया और उसके कुछअंग पकायेहुये सदाशिव को दिये। तब सदाशिवने जाना कि, मेरीप्यारी पार्व्वती इन्होंने मारी है। ऐसे निश्चय करके वह कोप करनेलगे तब उन देवियों ने अपने अपने अंग से उनके अंग निकाले सौरी ने नेत्र, कौमारी ने नासा और इसीप्रकार सबने अपने अपने अङ्ग निकाल कर वैसीही पार्वती की मूर्तिलादी और नूतन विवाह कर दिया। तब सदाशिव प्रसन्न हुये, सब ठौर उत्साह और आनन्द हुआ और सब देवियां अपने अपने स्थानों को गईं। चन्द्रनाम काक जो अलंबसादेवीका वाहनथा उसने ब्रह्माणी की हांसिनी के साथ क्रीड़ाकी और इसी प्रकार सब ने क्रीड़ाकी जिस से सबको गर्भ रहे। निदान वह हांसिनी ब्रह्माणी के पास गई तब ब्रह्माणी ने कहा कि, अब तुमको मेरे उठानेकी शक्ति नहीं–तुम गर्भवती हो–जहां तुम्हारी इच्छाहो वहां जावो; फिर आना। हे मुनीश्वर! ऐसे कहकर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधिमें स्थितहुई और नाभि सरोवर जो ब्रह्माजी का उत्पत्तिस्थान है वहां जा स्थितहुई और उस ताल के कमलपत्र पर निवास किया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उन हंसिनियों ने तीनतीन अंडे दिये। जैसे बेलसे अंकुर उत्पन्न होता है तैसेही उनसे एकविंशति अण्ड क्रमसे उत्पन्नहुये। कुछ काल उपरान्त जब उनको फोड़ा तो उनअण्डों से हमारे अङ्ग उत्पन्नहुये और क्रमकरके जब हम बड़े हो उड़ने योग्य हुये तब माता हमको ब्रह्माणी के पास लेगई। उनके आगे हमने मस्तकटेका तब ब्रह्माणी ने, कि, उसी समय समाधिसे उतरी थी हमको देखकर कृपाकी वृत्तिधार हमारे शिरपर हाथरक्खा। उसके हाथ रखने से हमारी अविद्या नष्ट होगई और हमारामन तृप्त और शांतरूप होगया और हम जीवन्मुक्त पद में स्थित हुये। तब हमको यह वृत्ति फुर आई कि, किसी प्रकार एकान्त ध्यान में स्थित होवें। देवीने आज्ञाकी कि अब

तुमजावो; तब देवीजी की आज्ञासे हम पिता के पास आये और पिताने हमको कंठलगाया और मस्तक चूंबा । फिर हमने अलंबसा देवी की पूजाकी तब पिताने हमसे कहा, हेपुत्रो ! तुम संसाररूपी जालमें तो नहीं फँसे और यदि फँसे हो तो मैं भगवती की प्रार्थना करताहूं वह भृत्योंपर दयालु है– जैसे तुम प्राप्तहोगे तैसेही तुमको प्राप्तकरेगी । तब हमने कहा, हेपिता ! हमतो ज्ञातज्ञेयहुये हैं; जोकुछजानने योग्य है वह जाना है और जो पानेयोग्य है वह हमने ब्रह्माणी देवीजी के प्रसादसे पाया है । अब हमको एकान्त स्थानकी इच्छा है जहां एकान्तहो वहां जावैठें । तब चन्द पिताने कहा, हे पुत्रो ! सुमेरुपर्व्वत निर्दोष, महापावन, निर्भय और क्षोभ-रहित सुन्दर स्थान है, वह सर्व रत्नोंकी खानिहै, सर्व देवतोंका आश्रयरूप है और सूर्य्य-चन्द्रमा उसके दीपकहैं जो चहुंओर फिरते हैं। ब्रह्माण्डरूपी मण्डपका वह थम्भा है और सुवर्णकाहै, चन्द्र सूर्य्य उसके नेत्रहैं और तारोंकी कंठमेंमालाहै । दशोंदिशा उसके वस्त्रहैं, रत्नमणियोंके भूषणहैं और वृक्ष और वेल रोमावली हैं। उसकी त्रिलोकीमें पूजा होती है और वह षोड़शसहस्र योजन पातालमें है जहां नाग और दैत्य पूजा करते हैं और चौरासी सहस्र योजन ऊर्ध्वको है जहां गन्धर्व, देवता, किन्नर, राक्षस, मनुष्य पूजाकरते हैं । ऐसा पर्व्वत जंबूद्वीपके एक स्थानमें स्थित है और उसके आश्रय चतुर्दश प्रकारके भूतजातिरहते हैं वह बड़ाऊंचा पर्व्वत है और पद्मराग नाम उसका एक शिखर सूर्यवत् उदय है। शिखरपर एक वड़ा कल्पवृक्ष है जो मानों जगत्‌रूपी शिखरका प्रतिविम्बआपड़ाहै। उसकल्पवृक्षके दक्षिणदिशाकी ओर जो डालहै उसमें महारत्नके गुच्छे, सुवर्ण के पत्र और चन्द्रमाके विम्ववत् फूल हैं और सघन और रमणीय गुच्छे लगे हैं । वहां एक आलय वनाहुआ है; वहां मैंभी आगे रहआयाहूं । जब देवीजी समाधिमें स्थित हुईथीं तब मैं वहां आलयवनाकर स्थित हुआथा । चिन्तामणिकी उसमें शलाका लगी हैं और महारत्नों से वनाहै । वहां जा तुम निवासकरो । वहां और कौवोंके पुत्रभी रहते हैं जिनका हृदय आत्मज्ञानसे शीतल हैं और वाहरसे भी फल फूल से शीतल हैं । तुमको वहां भोगभी है और मोक्षभी है । हे वशिष्ठजी ! जब इसप्रकार पिताने हमसे कहा तब हम सबोंने पिताके चरण परसे और पिताने हमारा मस्तकचूंवा । निदान हम विन्ध्याचल पर्व्वतसेउड़े और आकाशमार्ग्ग से मेघनक्षत्र, चक्र, लोकान्तर होकर ब्रह्मलोक में पहुंच देवीजीको प्रणामकिया और उनने भलीप्रकार हमारे ऊपर कृपादृष्टि की और दया और स्नेह सहित कण्ठलगाया और मस्तक चूंवा । हमभी मस्तक टेककर सुमेरुको चले और सूर्य्य और चन्द्रमाके लोकों और तारागण, लोकपाल और देवताओं के लोक, मेघ और पवनके स्थान लांघकर सुमेरुपर्वतके कल्पवृक्षपरपहुंचे । हेमुनीश्वर ! जिसप्र-

कार हम उपजे और जिससे ज्ञानको प्राप्तहुये हैं और जिसप्रकार यहां आस्थित हुये हैं वहसब समाचार तुम्हारे आगे अखण्डित कहा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डोपाख्याने
अस्ताचललाभोनामषोड़शस्सर्गः १६॥

भुशुण्डबोले; हे मुनीश्वर! यह चिरकालकी वार्त्ता तुमसे कही है वह सृष्टि इस सृष्टिसेदूरहै परन्तु मैंने तुमको वर्त्तमानकीनाईं अभ्यासकेवलसे सुनायाहै हे मुनीश्वर! मेराकोई पुण्यथा सोफला है कि, तुम्हारा निर्विघ्न दर्शनहुआ और यह आलय शाखा और वृक्षआज पवित्रहुआ। अब जो कुछ संशयहै सोपूछो तो मैंकहूं।वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार कहकर उसने मेरा भलीप्रकार अर्घ्यपाद्यसे आदर सहित पूजनकिया तब मैंने उससे कहा, हे पक्षियों के ईश्वर! तुम्हारे वे भाई कहां हैं जो तुम्हारे समान तत्त्ववेत्ताथे; वहतो दृष्टिनहीं आते,अकेले तुमहीं दीखतेहो? भुशुण्डबोले, हे मुनीश्वर! यहां मुझको बहुत युगकी पंक्ति व्यतीतहुई है जैसे सूर्य्यको कई दिनरात्रि व्यतीतहोजातेहैं तैसेहीं मुझको युगव्यतीतहुयेहैं। कुछकाल वेभीरहेथे पर समयपाकर उन्होंने शरीर त्यागदिये और तृणकी नाईं तन त्यागकर शिव आत्मपद को प्राप्तहुये। हे मुनीश्वर! बड़ी आयुर्बल हो अथवा सिद्ध महन्त हो; बली हो, अथवा ऐश्वर्यवान् हो, काल सबको ग्रासिलेता है। फिर मैंने पूछा,हे साधु! जब प्रलयकालका समयआता है तब सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ सब अपनी मर्य्यादा त्याग देते हैं और बड़ा क्षोभहोताहै पर तुमको खेद किसकारण नहींहोता? सूर्य्यकी तपनसे अस्ताचल उदयाचलादिक पर्व्वत भस्म होजाते हैं पर उस क्षोभमें तुमखेदवान् क्योंनहींहोते? भुशुण्ड बोले, हे मुनीश्वर! कईजीव जगत् में आधारसे रहते हैं और कई निराधार रहते हैं। जिनको सेनादिक ऐश्वर्य पदार्थ होतेहैं वे आधार सहित हैं और जो इन पदार्थोंसे रहित हैं वे निराधार हैं पर दोनोंको हम तुच्छ देखते हैं सत् कोई नहीं। बड़े २ ऐश्वर्यवान् और बलीभी हैं परन्तु सत्य कोई नहीं। उन में पक्षीकी जाति महा तुच्छ हैं जिनका उजाड़ वन में निवास है और वहांही उनका दानापानी है। ये निरालम्बहैं और इनकी जीविका दैवने ऐसेही बनाईहै। हे भगवन्! मैं तो सदा सुखीहूं और अपने आपमें स्थित आत्म सन्तोषसे तृप्तहूं कदाचित् इस जगत्के क्षोभसे खेदको प्राप्त नहीं होता और स्वभाव मात्रमें सन्तुष्ट और कष्टचेष्टा से मुक्तहूं। हे ब्राह्मण! अब हम केवल कालको व्यतीत करते हैं और जगत्के इष्ट अनिष्ट हमको चला नहीं सक्ते। न मरनेकी हमको इच्छा है और न जीनेकी इच्छा है क्योंकि; जीना मरना शरीरकी अवस्था है, आत्माकी अवस्था नहीं। हमको जीने का रागनहीं और मरनेमें द्वेषनहीं—जैसी अवस्था प्राप्तहो उसीमें सन्तुष्टहैं। हे मुनी-

श्वर ! ऐसे ऐसे देखे हैं कि वे फिर भस्म होगये हैं; उनकी अवस्था देखकर हमारे मनकी चपलता जाती रही है और हम इस कल्पवृक्ष पर बैठे हैं जिसमें रत्नों की बेलिलगी हैं । इसपर बैठकर मैं प्राण अपान की गतिको देखता हूं । इनकी कलाकी जो सूक्ष्मगति है उसका मैं ज्ञाताहूं और दिन रात्रिका मुझको कुछ ज्ञान नहीं । सत्बुद्धिसे मैं कालको जानता हूं और सार असारको भी भले प्रकार जानता हूं । हे मुनीश्वर ! जो कुछ विस्तार भासता है वह सब झूंठ है, सत्कुछ नहीं; इसी कारण हमको किसी दृश्यपदार्थकी इच्छा नहीं, हम परम उपशम पद में स्थित हैं और सब जगत् भी हमको शान्तरूप है । जो कोई इस जगत् जाल का आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता । यह सब जगत् चञ्चलरूप है और स्थिर कदाचित् नहीं होता । इसकी अवस्था में हम पत्थरवत् अचल हैं; न किसी का हमको राग फुरता है और न द्वेष है; न हम किसीकी इच्छाकरें;सब जगत् हमको तुच्छ भासता है । यह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्रमें जापड़ती हैं पर हम किनारे खड़े हैं इससे कदाचित् नहीं डूबते; और जितने जीवभूत हैं वे डूबते हैं ? पर कई एक तुम सारखे निकले हुये हैं और तुम्हारी कृपासे हमभी निर्विकार पदको प्राप्त हुये हैं । हे मुनीश्वर ! मैं निर्विकार सबजगत्के क्षोभसे रहितहूं और आत्मपदको पाकर उपशम रूपहूं।हेमुनीश्वर तुम्हारे दर्शनसे मैं अब पूर्ण आनन्दको प्राप्तहुआहूं;सन्तकीसङ्गति चन्द्रमाकी चाँदनीवत् शीतल है और अमृतकी नाईं आनन्दको देनेवाली है । ऐसा कौनहै जो सन्तके सङ्गसे आनन्दको न प्राप्तहो; अर्थात् सब आनन्दको प्राप्त होते हैं–यह अर्थहै । हे मुनीश्वर ! सन्त का संग चन्द्रमाके अमृतसे भी अधिक है क्यों-कि;वह शीतल गौण है हृदय की तपन नहीं मिटाता और संत का संग अंतष्करण की तपन मिटाता है वह अमृत क्षीर समुद्र के मथन के क्षोभ से निकला है औरसंत का संग सुख से प्राप्त होता है और आत्मानन्द को प्राप्तकरता है–इस से यह परम उत्तम है । मैं तो इससे और कोई उत्तम नहीं मानता; सन्तका सङ्ग सबसे उत्तम है सन्तभी वेही हैं जिनकी आपातरमणीय सब इच्छा निवृत्तहुई हैं अर्थात् जो विचार बिना दृश्यपदार्थ सुन्दर भासते हैं और नाशवन्त हैं वे उनको तुच्छभासते हैं और वे सदा आत्मानन्दसे तृप्त हैं । वे अद्वैतनिष्ठ हैं; उनकी द्वैतकलनाका अभाव हुआ है वे सदा आत्मानन्दमें स्थित हैं । ऐसे पुरुष सन्त कहाते हैं । उनसन्तोंकी सङ्गति ऐसी है जैसे चिंतामणि होती है; जिसके पायेसे सब दुःखनाश होते हैं । हे मुनीश्वर ! त्रिलोकीरूपी कमल के भँवरे और सब ज्ञानवानोंसे उत्तम तुमहीं दृष्टि आयेहो । तुम्हारे वचन स्निग्ध, कोमल और आत्मरससे पूर्ण, हृदय गम्य और उचित हैं और तुम्हारा हृदय महा गम्भीर और उदार, धैर्य्यवान् और सदा आत्मानन्दसे

तृप्त हैं; इससे तुम सबसे उत्तम मुझको दीखतेहो । तुम्हारे दर्शनसे मेरे सब दुःख नष्ट हुये हैं और आज मेरा जन्मसुफल हुआ है। तुमसारखे संतोंकासङ्ग आत्मपद को प्राप्त करता है। और दुःख और भय नष्ट करके निर्भयताको प्राप्तकरता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंतमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशस्सर्गः १७॥

भुशुण्ड बोले, हे मुनीश्वर! तुमने जो पूछा था कि; सूर्य्य, वायु और जलका क्षोभ होता है तो तुम खेदवान् क्यों नहीं होते उसका उत्तरसुनो। जब जगत्को क्षोभहोता है तब भी मेरा कल्पवृक्ष यह स्थिर रहता है क्षोभको प्राप्त नहीं होता। हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सबलोकको अगम है। भूत नष्ट होते हैं तब भी मैं इससे सुखीरहता हूं। जब हिरण्यकशिपु द्वीपोंसहित पृथ्वी समेटकर पाताललेगयाथा तब भी मेरावृक्ष कम्पायमान न हुआ; जब देवता और दैत्योंका युद्धहुआ तब और सबपर्व्वत चलाय-मानहुये पर मेरावृक्ष स्थिररहा और जब क्षीरसमुद्रके मथनेके निमित्त विष्णुजी सुमेरुको भुजासे उखाड़ने लगे पर मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ तब मन्दरा-चलको लेगये और क्षीर समुद्रको मथनेलगे। प्रलय कालका पवन और मेघका क्षोभहुआ तबभी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ। फिर एक दैत्य आनकर सुमेरु को पटकने लगा और उसने कुछ उखाड़ा परंतु मेरा वृक्ष कम्पाय मान न हुआ। हे मुनीश्वर! बड़े बड़े उपद्रव हुये हैं और प्रलय कालके मेघ, पवन और सूर्य्यतपे हैं तबभी मेरावृक्ष स्थिर रहा है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने उससे पूछा कि, हे साधो! जब प्रलय कालके वायु और मेघ क्षोभतेहैं तबतू विगत-ज्वर कैसे रहता है? भुशुण्डने कहा, हे साधो! जब प्रलय कालके वायु, मेघादिक क्षोभकरतेहैं तबमैं कृतघ्नकी नाईं अपने आलयको त्यागकर और सबक्षोभसे रहित आकाश में स्थित होताहूं और सब अंगोंको सकुचा लेताहूं। जैसे वासनाके रोंकेसे मन सकुच जाता है तैसेही मैंभी अंगको सकुचालेता हूं। हे मुनीश्वर! जब प्रलय कालका सूर्य्य तपताहै तब मैं जलकी धारणासे जलरूप होजाताहूं; जबवायु चलता है तब पर्व्वतकी धारणा बांधकर स्थित होजाताहूं, जब बहुत तत्त्वों का क्षोभहोता है तब सबको त्यागकर ब्रह्मांड खप्पर के पार जो निर्मल परमपद है वहां मैं सुषुप्तिवत् अचल गम्भीर होजाता हूं और जब ब्रह्मा उपजकर फिर सृष्टि रचता है तबमैं सुमेरु के वृक्षपर इसी आलय में स्थित होताहूं। फिर मैंने पूछा, हे पक्षियों के ईश्वर! जैसे तुम अखण्ड स्थित होतेहो तैसेही और योगीश्वर क्यों नहीं स्थित होते? भुशुण्ड बोले, हे मुनीश्वर! परमात्मा की यह नीति किसी से लंघी नहीं जाती; उन योगीश्वरों की नीति इसी प्रकार हुई है और मेरी उत्पत्ति इसी प्रकार है। ईश्वरकी नीति अतुल है। उसकी तुल्यता किसी से नहीं की जाती; जहां जैसी नीति हुई

है वहां वैसेही है; अन्यथा किसी से नहीं होती । हमको इसीप्रकार हुई है कि,कल्प कल्प में इसी पर्वत के वृक्षपर आलय होता है और हम आय निवासकरते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे पक्षियोंके नायक ! तुम्हारी अत्यन्त दीर्घआयुहै; तुमज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न और योगेश्वरहो और तुमने अनेक आश्चर्य देखे हैं उनमें जो स्मरण है वह कहो ! भुशुण्ड बोले, हे मुनीश्वर ! एकवार ऐसे स्मरण आता है कि, पृथ्वीपर तृण और वृक्षहीथे और कुछ न था; फिर एकवार एकादशसहस्रवर्ष पर्यन्त भस्मही दृष्टि आती थी; जो वृक्ष और तृण थे सो सब जल गये थे; एकवार ऐसी सृष्टि हुई कि, उसमें चन्द्र और सूर्य्य न उपजे और दिन और रात्रि कीगति कुछ जानी न जाती थी पर कुछ कुछ सुमेरुके रत्नोंका प्रकाश होता था; एककल्प ऐसा हुआ है कि, जिसमें देवता और दैत्योंका युद्ध हुआ था । और जब दैत्योंकी जीतहुई तो उन्होंने सब देवता मनुष्योंकी नाईहतकिये । ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र तीनों देवतोंके सिवा और सब सृष्टि उन्होंने जीती और बीसयुग पर्यन्त उनहींकी आज्ञाचली । एकवार ऐसे स्मरण आता है कि, दो युग पर्यन्त पृथ्वीपर वृक्षही वृक्षथे और कुछ सृष्टि न थी; एकवार दोयुग पर्यन्त पृथ्वी पर पर्वतही पर्वत सघन होरहे थे और कुछ न था और एकवार ऐसा हुआ कि, सब जलही जल होगया और कुछ न भासे केवल सुमेरु पर्वत थंभेकीनाईं भासे । एकवार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशासे आये और विन्ध्याचल पर्वत बढ़ा और सब ब्रह्मांड चूर्णकर दिये । हे मुनीश्वर ! बहुत कुछ स्मरण है परन्तु संक्षेप से सुनो । एककाल सृष्टि में मनुष्य, देवतादिक कुछ न भासते थे; एकवार ऐसी सृष्टि हुईथी कि, ब्राह्मण मद्यपान करते थे शूद्र बड़ेहो बैठेथे और सब जीवों में विपर्यय धर्म्महो गयेथे; एकवार ऐसी सृष्टिस्मरणमें आतीहै कि, पृथ्वीमें कोईपर्व्वत दृष्टि न आताथा; एकवार सृष्टि ऐसी उत्पन्नहुई कि, सूर्य्य, चन्द्रमा,नक्षत्र, लोकपाल आदि कोई न उपजा; एक सृष्टि ऐसी हुई कि, सबही उपजे; एकसृष्टि ऐसीहुई कि, उसमें स्वामिकार्त्तिक न उपजा, दैत्य बढ़गये और दैत्योंहीं का राज्यहोगया । मुझको बहुत स्मरण है कहांतक कहूं । सूर्य्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, इन्द्र, उपेंद्र, और लोकपालों के बहुतजन्म मुझको स्मरण आते हैं । जब हिरण्यकशिपु को जो वेदको चुराले आयाथा हरिने माराथा वहभी स्मरण है और क्षीरसमुद्र मथना भी स्मरणहै । ऐसी सृष्टि भी देखी है कि, जिसमें विष्णुजीका वाहन गरुड़ नहींहुआ; ब्रह्माजी हंसवाहन विनाहुये हैं और रुद्रबैलबाहन विना हुये हैं । इसीप्रकार बहुतकुछ देखाहै क्या क्या तुम्हारे आगे वर्णन करूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुंडोपाख्यानेजीवितवृत्तान्तवर्णनंनाम अष्टादशस्सर्गः १८ ॥

भुशुंडबोले, हे मुनीश्वर ! जब फिर सृष्टि उत्पन्नहुई तब तुम, भारद्वाज, पुलस्त्य, नारद, इन्द्र,मरीचि, उद्दालक,क्रतु, भृगु, अंगिरा,सनत्कुमार,भार्गवेशआदिक उपजे। फिर सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्व्वत उपजे और अत्रि,वासुदेव, वाल्मीकि, इत्यादिक यह तो अल्पकालके उपजे हैं। हे मुनीश्वर ! तुम ब्रह्मा के पुत्र हो और तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आतेहैं। कभी तुम आकाशसे उपजे हो, कभी जलसे उपजे, कभी पहाड़से उपजे, कभी पवनसे उपजे औरकभी अग्निसे उपजे हो। हे मुनीश्वर ! मन्दराचल पर्व्वतको क्षीरसमुद्रमें डालकर जब मथने लगे और देवता और दैत्य क्षोभवान् हुये कि,मन्दराचल नीचे चलाजाताहै तब विष्णुजी ने कच्छपरूप धारणकर पर्व्वतको ठहराया था और अमृत निकालाथा सो मुझको द्वादशवार स्मरण आता है। तीनवार हिरण्यकशिपु पृथ्वीको पातालमें समेट लेगया है और छःवार परशुराम रेणुका माताका पुत्रहुआ है सो बहुत सृष्टिके पीछेहुआ है। जब क्षत्रियोंमें दैत्य उपजनेलगे तो उनके नाशनिमित्त विष्णुजीने परशुरामजी का अवतार लियाथा। हे मुनीश्वर ! एक सृष्टि ऐसी हुई है कि, जिसमें अगलेसे विपर्य्ययरूप शास्त्र और पुराणके अर्थ हुये और एककल्पमें औरही पाठ औरही युक्ति औरही अर्थ हुये क्योंकि; युगयुग प्रति औरही पुराणहोतेहैं, किसी को देवता बनाते हैं और किसीको ऋषीश्वर मुनीश्वर कहते हैं। कथा और इतिहास भी मुझे बहुत स्मरण हैं। वाल्मीकिजीने द्वादशवार रामायण बनाई और विस्मरण होगया है और व्यासजीने दोवार महाभारत बनाई और उन्होंने सातवार अवतार लिया है। हे मुनीश्वर! इसप्रकार आख्यान, कथा, इतिहास और शास्त्र जो जो हुये हैं वेसब मुझ को बहुत स्मरण में आते हैं। हे साधो! दैत्यों केमारने के निमित्त विष्णुजी युगयुग प्रति अवतार लेते हैं। एकादशवार मुझको रामजी स्मरण में आते हैं और वसुदेव के गृहमें पृथ्वीके भार उतारनेके निमित्त कृष्णजीने सोलहवार अवतार लिया है सो भी मुझको स्मरण है और तीन वार नरसिंह अवतार धारण कर विष्णुने हिरण्यकशिपुको मारा है। हे मुनीश्वर ! इसी प्रकार मुझको अनेक सृष्टि स्मरण आती है परन्तु सबही भ्रममात्र है, कुछ उपजी नहीं। जब आत्म तत्वमें देखताहूं तब कुछ सृष्टि नहीं भासती सब सत्तामात्रहै। जैसे जलमें बुदबुदे उपजकर लीन होजाते हैं तैसेही आत्मामें मनके फुरनेसे कई सृष्टि उपजती हैं और लीन होजाती हैं। उस फुरनेसे कईसृष्टि देखी हैं; कोई सदृशही उपजती हैं, कोई अर्धसदृश और कोई विपर्य्ययरूप हैं। हे मुनीश्वर ! कोई२ सृष्टिमें एकसेही आकार और कर्म–आचार होते हैं कोई मन्वन्तर मन्वन्तर प्रति औरही और सृष्टि होती है और किसी में ऐसे होता है कि; पुत्र पिता होजाता है; शत्रु मित्र होजाता है; बांधव अबांधव और अबांधव

बांधव होजाता है। इस प्रकार भी विपर्यय होते दृष्टि आये हैं। कभी इसही कल्प-वृक्षपर हमारा आलय होताहै, कभी मन्दराचलमें; कभी हिमालयपर्वतमें; और कभी मालव पर्व्वतमें होता है। इसी प्रकार वन, वृक्ष और वेलिपर होजाता है और कभी इसी कल्पवृक्षके ऊपर होजाता है पर अबतो बहुत कालसे इसी कल्पवृक्ष पर रहताहूं। जब सृष्टिका नाश होजाता है तबभी मेरा यही शरीर रहता है। मैं आसन लगाकर अपनी पुर्यष्टक को ब्रह्मसत्तामें स्थित करताहूं इसी कारण मुझको फिरयही शरीर प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! यह ज़गत् सब सङ्कल्पमात्र है; जैसा सङ्कल्प फुरता है तैसाही आगेहो भासता है। यह जगत् सत्यभी नहीं और असत्यभी नहीं केवल भ्रमरूपहै। उस जगत्भ्रममें अनेक आश्चर्यदृष्टि आते हैं; पिता पुत्रहो जाताहै; मित्र शत्रुहोजाताहै; स्त्री पुरुष होजाती है; और पुरुष स्त्री होजाताहै। कभी कलियुगमें सतयुग वर्त्तनेलगताहै और सतयुगमें कलियुग वर्त्तनेलगताहै और कभीद्वापरमें त्रेता और त्रेतामें द्वापर वर्त्तता है। कभी अदृश्यही वेद विद्याके अर्थ होते हैं और नाना प्रकारके आश्चर्य भासते हैं। हे मुनीश्वर! जब एक सहस्र चौकड़ी युगकी व्यतीत होती हैं तब ब्रह्माजीका एक दिन होता है सो एकबार दो दिन पर्यन्त ब्रह्मा समाधि में लगारहा और सृष्टि शून्य होरही—यहभी स्मरण आता है औरभी कई देशक्रिया विचित्ररूप चित्त आतेहैं; क्या क्या कहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिरअतीतवर्णनंनामएकोनविंशतितमस्सर्गः १९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब भुशुंडने कहा तब मैंने फिर जिज्ञासा के अर्थ पूछा कि, हे पक्षियोंके ईश्वर! तुमतो चिर पर्यन्त जगत्में व्यवहार करतेरहे हो तो तुम्हारे शरीरको मृत्युने किसनिमित्त न ग्रास किया? भुशुंडजी बोले, हे मुनीश्वर! तुम सब जानतेहो परन्तु ब्रह्म जिज्ञासा करके पूछतेहो इससे जैसे विद्यार्थी वेदार्थ पढ़ कर फिर गुरुके आगे कहते हैं तैसेही मैं आज्ञा मान कर कहताहूं। हे मुनीश्वर! मृत्यु किसको मारता है और किसको नहीं मारता सो सुनो। दुःख रूपी मोती वासना रूपी तांतसे पिरोये हैं; यह माला जिसके हृदयरूपी गलेमें पड़ीहुई है उसको मृत्यु मारता है और जिसके कण्ठमें यह माला नहीं पड़ी उसको मृत्यु नहीं मारता। शरीररूपी वृक्षमें चित्तरूपी सर्प बैठा है। आशारूपी अग्नि जिस वृक्ष को नहीं जलाती वह मृत्युके वश नहीं होता। रागद्वेषरूपी विषसे पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है, तृष्णासे चूर्ण होता है और लोभरूपी व्याधिसे नष्टहोता है उसको मृत्यु मारता है और ग्रासलेता है। जिसको इनका दुःखनहीं स्पर्शकरता उसको मृत्यु भी नहीं नाशकरता। हे मुनीश्वर! शरीररूपी समुद्र क्रोधरूपी बड़वाग्निसे जलता है; जिसको क्रोधरूपी अग्निनहीं जलाता उसको मृत्युभी नहीं मारता। जिसका मन

परम पावन और निर्मल पदमें दृढ़ विश्रान्त और स्थितहुआ है उसको मृत्यु नाश नहीं करता। हे मुनीश्वर ! जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिन्ता, चंचलता, अभिमान, प्रमाद इत्यादिक दुःखहोते हैं उसको मृत्युमारताहै और जिसको काम, क्रोध, लोभादिक रोग संसार वंधनका कारण बांध नहीं सक्के और जो इनसे लेपायमान नहीं होता उसको आधि व्याधिरूपीमल नहीं स्पर्श करता। जो मनुष्य लेता है, देता है और सबकार्य करता है पर चित्तमें अनात्म अभिमान स्पर्श नहीं करता उसको और जो पुरुप इष्टकी वांछानहीं करता और अनिष्टमें दोषनहीं करता दोनोंकी प्राप्तिमें सम रहता है उसको समाहत चित्त कहते हैं। हे मुनीश्वर ! जो कुछ ऐश्वर्यवान् सुन्दर पदार्थ हैं वे सब असत्रूप हैं;पृथ्वीपर चक्रवर्तीराजा और स्वर्ग में गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, देवता और उनकी स्त्रीगण और सुरोंकीसेना आदिक सबनाशरूप हैं। मनुष्य, दैत्य, देवता, असुर, पहाड़, ताल, नदियां जो कुछ बड़े पदार्थ हैं वे सबही नाश रूप हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल लोक जो कुछ जगत् भोग हैं वे सब असत्रूप और अशुभ हैं। कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं;न पृथ्वीका राज्य श्रेष्ठ है, न देवताओंका रूप श्रेष्ठहै न नागोंका पाताल लोक श्रेष्ठ है न कुछ शास्त्रोंका विचारना श्रेष्ठ है; न काव्यका जानना श्रेष्ठ है; न पुरातनकथा क्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है; न बहुत जीना श्रेष्ठ है; न मूढ़ता से मरजाना श्रेष्ठ है; न नरकमें पड़ना श्रेष्ठ है और न इस त्रिलोकीमें और कोई पदार्थ श्रेष्ठ है; जहां सन्तका मन स्थित है वही श्रेष्ठ है। यह नाना प्रकारका जगत् क्रम चलरूप है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे मूढ़ होकर चल पदार्थमें नहीं रमते और बहुत जीनेकी इच्छा भी नहीं करते॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डोपाख्यानेसंङ्कल्पनिराकारणम् नामाविंशतितमस्सर्गः २०॥

भुशुण्ड बोले,हे मुनीश्वर ! केवलएक आत्मदृष्टि सबसे श्रेष्ठहै;जिसके पायेसे सब दुःखनाशहोते हैं और परमपद प्राप्तहोते हैं।वह आत्म चिन्तन सर्वदुःखोंकानाशकर्त्ता है और चिरकालके तीनों तापोंसेतपे और जन्मके मार्गसे थकेहुये जीवके श्रमको दूर करता है और तपन मिटाताहै। समस्त दुःखोंको जो अविद्या सत्ता अनर्थ प्राप्तकरने वाली है उसकोभी नाशकर्त्ताहै। जैसे अन्धकारको प्रकाश नाशकरताहै तैसेहीजीव के हृदयमें शीतल प्रकाश उपजाती है। हे भगवन् ! ऐसी जो आत्म चिन्तना सब सङ्कल्पों से रहित है सो तुम सारिखेको सुगम प्राप्त है और हम सारिखेको कठिनहै क्योंकि; सब सत् कलना से अतीत है। हेमुनीश्वर ! उस आत्मा चिन्तन की सखी और भी कोई प्राप्तहो तो सब तापमिटजावें और महा शीतलताहो उनमेंसे मुझको एकसखी प्राप्तहुई है वह सब दुःखों का नाश करती है, सब सौभाग्य देनेवाली और

जीनेका मूल है । ऐसी प्राणचिन्ता मुझको प्राप्तहुई है । हे रामजी ! जब इसप्रकार मुझ से काकभुशुण्डने कहा तब मैंने जानकरभी क्रीड़ाके निमित्त फिर उससे पूछा कि हे सर्व संशयोंके निवृत्त करनेवाले चिरंजीवी पुरुष ! सत्यकहो प्राणचिन्ता किसको कहते हैं ? भुशुण्ड बोले, हे सर्व वेदान्तके वेत्ता और सर्व संशयों के नाशकर्त्ता ! मेरे उपहासके निमित्त तुम मुझसे पूछते हो । तुमतो सबकुछ जानते हो परन्तु तुमसे शिक्षक की भांति कहताहूं । क्योंकि, गुरुके आगे कहनाभी कल्याण के निमित्त है । भुशुण्ड के जीने का कारण और भुशुण्डको आत्मलाभ देनेवाली प्राणचिन्ता कहाती है । हे भगवन् ! इसीदृष्टिका आश्रय करके मैं परमपदको प्राप्तहुआहूं मुझको बन्धन नहीं होता और सब अवस्थामें बैठते, चलते, जागते,सोते सब ठौर मेराचित्त सावधान रहता है इस कारण कोई बन्धन नहीं होता । हे मुनीश्वर ! मैंने पान और अपानके संसरने की गतिपाई है; उसयुक्तिसे मुझको आत्म बोध हुआ है और उस बोधसे मेरे मद, मोहादिक विकार सब नष्ट होगये हैं और शान्तरूप होकर स्थित हुआहूं । हे मुनीश्वर ! जिसको प्राण अपानकी गति प्राप्तहुई है वह सब आरम्भ कर्मको करे अथवा सब आरम्भका त्याग करे परन्तु सदा शान्तरूप है; उसका काल सुखसे व्यतीत होता है । हे मुनीश्वर ! प्राण हृदय से उपज कर द्वादश अंगुल पर्यन्त बाहर जाता है और वहां जाकर स्थित होता है; उस ठौरसे अपान रूप हो हृदयमें आकर स्थित होता है । हे मुनीश्वर ! बाहर आकाश के सन्मुख जो प्राण जाताहै सो अग्नि मुखवत् उष्ण होताहै और जो हृदयाकाशके सम्मुख आता है सो शीतल नदी के प्रवाहवत् आता है । अपान चन्द्रमा रूप है और बाहर से अन्तर आता है और प्राण भीतर से बाहर जाता है; वह अग्नि, उष्ण और सूर्य्य रूप है । प्राण वायु हृदयाकाशको तपाता है और अन्न पचाता है और अपान हृदय को चन्द्रमा की सदृश शीतल करता है । हे मुनीश्वर ! अपान रूपी चन्द्रमा जब प्राणरूपी सूर्य में जहां साठतत्त्व हैं लीनहोता है तो उसमें स्थित हुआ मन फिर शोकको नहीं प्राप्तहोता और प्राणरूपी सूर्य जब अपानरूपी चन्द्रमा के घरमें लीनहोता है उस अवस्था में मन स्थितहुआ फिर जन्मका भागी नहीं होता । हे मुनीश्वर ! सूर्यरूपी प्राण अपने सूर्यभावको त्यागकर अपानरूपी चन्द्रमा को जबतक नहीं प्राप्तहुआ उस अवस्था के देशकाल को बिचारे तो फिर शोक नहींपाता और सब भ्रम नाशहोजाते हैं । द्वादश अंगुल पर्यंत जो आकाशहै उससे अपानरूपी चन्द्रमा उपजकर हृदय के प्राणरूपी सूर्य में लीनहोता है पर सूर्य भाव को जब तक नहीं प्राप्तहोता उस के मध्यभाव अवस्था में जिसका मन लगा है वह परम पदको प्राप्तहोता है । हृदय में चन्द्रमा और सूर्यके अस्तभाव और उदयभाव

का ज्ञाताहुआ और इसका आधारभूत जो आत्मा है उसको जानकर फिर मन नहीं उपजता। हे मुनीश्वर! प्राण और अपानरूपी सूर्य और चन्द्रमा जो हृदय आकाश में उदय और अस्त होते हैं उनके प्रकाश से हृदय में जो भास्कर देव है उसको जो देखता है वही देखता है। वाहर जो सूर्य प्रकाशता है और कभी अन्धकार होता है तो उस प्रकाश के उदय हुये और तम के क्षीणहुये कुछ सिद्ध नहीं होता परन्तु जब हृदय का तमदूर होता है तब परम सिद्धता को प्राप्त होता है। वाहरके तम नष्ट हुये लोकोंमें प्रकाश होता है और हृदयके तम नष्ट हुये आत्मप्रकाश उदय होताहै और अज्ञान अन्धकार का अभावहो परमपदको जानकर मुक्त होता है। प्राण अपान की युक्ति जाने से तम नष्ट होजाता है। हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो चन्द्रमा और सूर्य्य हैं सो यत्न विना उदय और अस्त होतेहैं। जब प्राणरूपी सूर्य्य हृदयकोटसे उपजकर वाहर जाता है तब उसीक्षण अपानरूपी चन्द्रमा में लीन होताहै और अपानरूपी चन्द्रमा उदय होआता है और जब अपान रूपी चन्द्रमा हृदय कोटके प्राण वायुरूपी सूर्य्य में स्थित होता है तब उसी क्षण में प्राणरूपी सूर्य्य उदय होताहै। प्राणके अस्तहुये अपान उदय होताहै और अपान के अस्तहुये प्राण उदय होता है। जैसे छायाके अस्तहुये धूप उदय होती है और धूपके अस्तहुये छाया उदय होती है तैसेही प्राण अपानकी गति है। हे मुनीश्वर! जब हृदयकोटसे प्राण उदय होता है तब प्राणका रेचक होने लगता है और अपान का पूरक होने लगताहै और जब प्राण अपानमें स्थित हुआ तब अपान का कुम्भक होता है। उस कुम्भक में जब स्थितिहोती है तब फिर तीनों तापों से नहीं तपता। जब अपान का रेचक होता है तब प्राणका पूरक होने लगताहै और जब अपान जा स्थित होता है तब प्राणका कुम्भक होता है। उसमें जब स्थित होता है तबभी तीन तापों से तपायमान नहीं होता। हे मुनीश्वर! प्राण अपान के भीतर जो शान्तरूप आत्मतत्त्व है उसमें जब स्थितिहोती है तब मन तपायमान नहीं होता और जब अपान आस्थित होताहै और प्राण उदय नहीं हुआ उस अवस्था में जो साक्षीभूत सत्ताहै वह आत्मतत्त्व है। उसमें जब स्थिति होतीहै तब फिर वहकठिन नहीं होता। जब अपानके स्थानमें प्राणजा स्थितहोताहै और अपान जबतक उदय नहीं हुआ वहां जो देश, काल, अवस्था है उसमें मनस्थित होता है तब मनका मनत्व भाव जाता है और फिर नहीं उपजता। हे मुनीश्वर! प्राण जो अपान में स्थित हुआ और अपान उदय नहीं हुआ वह कुम्भकहै। अपान प्राण में स्थितभया और प्राण जब तक उदय नहीं हुआ उस कुम्भक में जोशान्त तत्त्व है वह आत्मा का स्वरूपहै और शुद्ध और परमचैतन्यहै। जो उसको प्राप्तहोताहै वह फिर शोकवान् नहींहोता।

जैसे पुष्पमें गन्धसे प्रयोजन होता है तैसेही प्राण अपानके भीतर जो अनुभव तत्त्व स्थित है उससे प्रयोजन है । वह न प्राण है, न अपान है; उसअनुभव आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं । प्राण अपानकोट क्षयको प्राप्तहोता है और अपान प्राणकोट में क्षय होता है; उसप्राण–अपानके मध्यमें जो चिदात्माहै उसकीहम उपासना करते हैं । हे मुनीश्वर ! जो प्राणका प्राण है; अपानका अपान है; जीवका जीव है और देहका आधारभूत है ऐसे चिदात्माकी हम उपासना करते हैं। जिसमें सर्व है,जिससे यह सर्व है और जो यह सर्व है; ऐसाजो चिदात्मा है उसकी हम उपासना करते हैं। जो सर्व प्रकाशका प्रकाश है; सबपावनका पावन है और सबभाव अभाव पदार्थोंका अपना आप है उसचिदात्माकी हम उपासना करते हैं जो पवन परस्पर हृदय में संपुटरूप है उसमें स्थित जो साक्षीरूप और भीतर बाहर सब ठौर वही है; उस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं । जब अपान अस्तहुआ और प्राण नहीं उपजा उसक्षणमें जो कलंकसे रहित है उस चेतनतत्त्वकी हम उपासना करते हैं । जबप्राण अस्त हुआ और अपान नहीं उपजा ऐसा जो नासिकाके अग्रमें शुद्ध आकाश है और उसमें जो सत्यता है उस चिद्सत्यताकी हम उपासना करते हैं । जो प्राण अपानके उत्पत्तिका स्थान; भीतर बाहर सब ओर में व्याप्त और सब योग कलाका आधारभूत है उसचिद्तत्त्वकी हमउपासना करते हैं । जो प्राण अपानके रथपर आरूढ़ है और शक्तिका शक्तिरूप है उस चिद्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं । हे मुनीश्वर ! जो संपूर्ण कला कलंकसे रहित और सर्वकला जिसके आश्रयहैं ऐसा जो अनुभवतत्त्व है और सब देवता जिसकी शरण को प्राप्त होते हैं उसआत्मतत्त्व को हम उपासना करते हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डोपाख्यानेप्राणअपानसमाधिवर्णनंनामएकविंशतितमस्सर्गः २१ ॥

भुशुण्डबोले, हे मुनीश्वर ! इसप्रकार मैं प्राणसमाधिको प्राप्त हुआहूं और इस क्रमसे मैं आत्मपदको प्राप्तहुआहूं । इसी निर्मलदृष्टिका आश्रय करके स्थितहूं और एकनिमेषभी चलायमान नहीं होता । सुमेरु पर्वतकी नाईं स्थितहूं और चलता हुआभी स्थिरहूं; जाग्रतमें सुषुप्ति स्वप्नमें स्थितहूं और सर्वदा आत्मसमाधिमें लगा रहताहूं; विक्षेप कदाचित् नहीं होता । हे मुनीश्वर ! नित्यअनित्य भावसे जो जगत् स्थित है उसको त्यागकर मैं अन्तर्मुख अपने आपमें स्थितहूं और प्राण अपानकी कला जो तुम्हारे विद्यमान कही है उसका सदाऐसेही प्रवाह चलाजाताहै उसमें मेरी अयत्न समाधि है इससे मैं सदा सुखीरहताहूं कुछ कष्ट नहीं होता । जिसको यहकला नहींप्राप्त हुई वहकष्ट पाता है । हे मुनीश्वर ! अज्ञानी जीव महाप्रलय पर्यन्त संसार

समुद्रमें डूबते हैं और निकलकर फिरडूबते और इसीप्रकार गोतेखाते हैं और जिनपुरुषोंने पुरुषार्थ कर आत्मपद पाया है वे सुखसे विचरते हैं । हे मुनीश्वर ! भूतकालकी मुझको चिन्ता नहीं और भविष्यकी इच्छानहीं; वर्त्तमान में यथा प्राप्त राग द्वेषसे रहित होकर विचरताहूं । मैं सुषुप्तिकी नाईं स्थितहूं इससे केवल स्वरूप में भावअभाव पदार्थोंसे रहितहूं और इसकारण चिरंजीवीहो दुःखसे रहितहूं । प्राण-अपानकी कलाको शमकरके स्वरूपमें स्थितहूं । आजयह कुछपाया है और कलयह पाऊंगा यह चिन्ता मेरी दूरहोगई है, इसकारण निर्दुःख जीताहूं । न किसीकी प्रशंसा करताहूं और न कदाचित् निन्दाकरताहूं; सब आत्मस्वरूप देखताहूं इसकारण सुखी जीताहूं । इष्टकी प्राप्तिमें हर्षवान्नहीं और अनिष्टकी प्राप्तिमें शोकवान् नहीं होता मैंने परम त्यागकियाहै सर्वआत्मभाव देखताहूं और जीवभाव दूरहोगयाहै इसकारण अदुःख जीताहूं । हे मुनीश्वर ! मेरेमनकी चपलता मिटगईहै और राग द्वेष दूरहोगयेहैं। मन शान्तहुआहै इसकारण अरोगजीताहूं, काष्ठ, सुन्दर स्त्री, पहाड़, तृण, अग्नि और सुवर्ण समभाव देखताहूं । हे मुनीश्वर ! मैं जरामरणके दुःख और राजलाभकेसुख और शोक से रहित समभावमें स्थितहूं और निर्दुःख जीताहूं ये मेरे बांधव हैं, ये अन्ध हैं। यहमैंहूं, यह मेरा है, यह सबकलना मुझ को कुछनहीं इसीसे सुखी जीताहूं और आहार व्यवहार करता, बैठता, चलता, सूंघता, स्पर्शकरता, और श्वासलेताहूं परन्तु यह जो अभिमानहै कि, 'मैं 'देहहूं', इस आभिमानसे रहितहो सुखी जीताहूं। इस संसार की ओरसे मैं सुपुप्तरूपहूं और इस संसारकी गति को देखकर हँसता हूं कि, वास्तवमें यह हैनहीं आश्चर्य है; इस कारण निर्दुःख जीताहूं । हे मुनीश्वर! मैं सर्वदाकाल, सर्वप्रकार, सर्वपदार्थों में समबुद्धिहूं और विषमता मुझको कुछ नहीं भासती; न किसीसे सुखी होताहूं और न दुःखीहूं—जैसे हाथफैलाइये तौभी शरीरहै और संकोचिये तौभी शरीर है इसी प्रकार मैंने सर्वात्मा आप को जाना है इस से मुझ को कोईदुःख नहीं । मेरीबोली और निश्चय स्निग्ध और कोमल सबको हृदय गम्य है । सर्वत्र में जो ऐसे देखताहूं इसकारण निर्दुःख जीताहूं । चरण से मस्तक पर्यन्त देहमें मुझको ममता नहीं और अहंकाररूपी कीचड़ से मैं निकला हूं इस कारण अरोग जीताहूं । कार्यकर्त्ता और भोजन कर्त्ताभी दृष्टि आताहूं परन्तु मेरेमन में निष्कर्मता दृढ़है । हे मुनीश्वर ! सामर्थ्य करके कार्यकरूं तौभी मुझको अभिमान नहीं और दरिद्रीहोऊं तौभी संपाति और सुखकी इच्छानहीं अर्थात् किसीमें आसक्त नहींहोता । इस असत्यरूप शरीर के नाशहुये अभिमान नाश नहींहोता । भूतों का समूहसब असत्य रूप है और आत्मा सत्यरूप है; ऐसे जानकर मैं स्थितहूं और आशारूपी फांसीसे मेरे मुक्तचित्तकी वृत्तिसमाहत हुई है और अनात्ममें आत्मअ-

[अ]भिमान की वृत्तिनहीं फुरती। हे मुनीश्वर! मैंने जगत्को असत्य जाना है और आत्मा को सत्य और हाथमें विल्वफलवत् प्रत्यक्ष जानाहै । इसजगत् में मैं सुषुप्त प्रबुद्धहूं । [स]ुख को पाकर मैं सुखी नहीं होता और दुःखको पाकर दुःखी नहीं होता । सर्व्वका मैं [प]रममित्रहूं इसकारण मैं निर्दुःखजीताहूं; आपदामें अचलचित्तहूं; संपदामें सवजगत् [क]ा मित्रहूं और भाव अभावसे ज्योंका त्योंहूं इसकारण सदासुखी जीताहूं । न मैं [प]रिच्छिन्न अहं हूं; न कोई अन्यहै; न कोई मेराहै और न मैं किसीकाहूं;यह भावना [म]ेरे चित्तमें दृढ़है । मैं जगत्हूं; और मैंहीं आकाश, देश, काल, क्रिया, सवहूं; यह निश्चय मुझको दृढ़है। घटभी चेतन है, पटभी चेतन है, रथ भी चेतन है और यह सव चेतन तत्त्व है; यह निश्चय मुझको दृढ़है इसकारण अदुःखजीताहूं। हे मुनि-शार्दूल ! यहसव जोमैंने तुमसे कहा भुशुण्डनाम काकने जो त्रिलोकीरूपी कमलका भँवरा है मुझसे कहा था ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डोपाख्यानेचिरंजीवीहेतुकथनंनाम द्वाविंशतितमस्सर्गः २२ ॥

भुशुण्डवोले, हे मुनीश्वर ! जैसा मैंहूं तैसा तुम्हारी आज्ञाके सिद्धि अर्थ कहा है नहीं तो गुरुके आगे कहनाभी ढिठाईहै । तुम ज्ञानके पारगामीहो । फिर मैं वोला, हे भगवन् ! आश्चर्यहै और आश्चर्यसे भी आश्चर्य है कि, तुमने श्रवणका भूषण कहा और आत्मउदितरूप वचन जो तुमने कहे हैं वे परम विस्मयके कारण हैं । हे भगवन् ! तुमधन्यहो । तुम महात्मा पुरुषहो और चिरंजीवियोंके मध्य तुम मुझको साक्षात् दूसरे व्रह्मा भासते हो । आज हमभी धन्य हैं कि तुम्हारे ऐसे महापुरुषके मुखसे इसप्रकार आत्मउदित सुनाहै जैसे मैंने पूंछा तैसेही तुमने कहा। हेसाधु !मैंने सवभूमिलोक देखेहैं और दिशागण,आकाश और पाताललोकभी देखे हैं;त्रिलोकीमें तुमसाकोई विरलाही है। जैसे बांसवहुतहैं पर मोतीवालाविरलाही होताहै तैसेही तुम सारिखे विरले हैं। हे साधु ! आजहम पुण्यरूप हुयेहैं और आज हमारीदेह पवित्रहुई जो तुमऐसे मुक्तआत्माका दर्शनहुआ है । हे साधु ! अवहम सप्तर्षिके मध्य जाते हैं; हमारे मध्याह्नका समय हुआ है । जव मैंने ऐसे कहा तवभुशुण्ड कल्पलतासे उठखड़ा हुआ और संकल्पके हाथ करके उसने सुवर्णका पात्र रचकर मोती और रत्नोंसेभरा और मुझको अर्घ्यपाद्यकरके पूजनकिया।जैसे त्रिनेत्र सदाशिवकी पूजाकरते हैं तैसे ही उसने चरणोंसे लेकर मस्तकपर्य्यंतमेरा पूजनकिया और वहुत नम्रहोकर प्रणाम किया । मैंनेभी उसको प्रणामकिया और इसप्रकार परस्पर नमस्कार करके मैं वहांसे उठखड़ाहुआ और आकाशमार्ग्गको चला । जैसे पक्षी उड़ता है तैसेही मैं उड़ा और वहभी मेरे साथउड़ा । परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये जव एकयोजन पर्यंतचले

गये तब मैंने उससे कहा; हे साधु! तुम अब इहांसे फिरो। इसप्रकार बारम्बार कह कर मैंने उसको ठहराया और मैं चलागया। जबतक मैं उसको दृष्टिआतारहा तब तक वह देखतारहा और जब मैं न दीखा तबवह अपने स्थानमें जा बैठा। मैं सप्तर्षियोंके मण्डल में जा पहुंचा और अरुन्धती से पूजितहुआ। हे रामजी! भुशुण्डके आश्चर्य्यरूप वचन मैंने तुमको सुनाये हैं। अबभी सुमेरुके शृङ्गपर उस कल्पवृक्ष की लतामें वह कल्याणरूप सम स्थित है और शांतिरूप और मानकरने के योग्य है और सदा समाधिवान् है। हे रामजी! यह हमारा और उसका समागम सतयुग के दोसौवर्ष व्यतीतहुये हुआथा और अब सतयुग क्षीणहो त्रेतायुगवर्त्तताहै उसमें तुम उपजेहो। हे रामजी! अभी आठवर्षबीते हैं कि,हमारा उसका फिर मिलापहुआथा तो वह उसीवृक्ष लतापरहै। हे रामजी!यह इतिहास जो मैंने तुमसे कहाहै सो परमउत्तम है। जब इसको विचारोगे तबसंसारभ्रम निवृत्त होजावेगा। मुनिवशिष्ठ और भुशुण्ड की कथाको जो निर्मलबुद्धि से विचारेगा वह भवरूप संसारके भयसे तरेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डोपाख्यानसमाप्तिर्नाम त्रयोविंशत्तमस्सर्गः २३॥

वशिष्ठजीबोले, हे अनघ! यह जो मैंने तुमसे भुशुण्डका वृत्तान्त कहा इसे बोध करके भुशुण्ड महासंकटसे तराहै, इसदशाको तुमभी आश्रयकरके प्राणकी युक्तिकर अभ्यासकरो तब तुमभी भुशुण्डकी नाईं भवसमुद्रके पारहोगे। जैसे भुशुण्डने ज्ञान योगसे पानेकेयोग्य पदपायाहै तैसेही तुमभी पावो और जैसे प्राण अपानके अभ्यास से भुशुण्ड परमतत्त्वको प्राप्तहुआ है तैसेही तुमभी अभ्यास करके प्राप्तहो। विज्ञान दृष्टि जो तुमनेसुनी है उसकी ओर चित्तको लगाकर आत्मपदको पावो फिर जैसे इच्छाहो तैसेकरो। रामजीने पूछा,हे भगवन्! पृथ्वीमें आपके ज्ञानरूपी सूर्य्यकीकिरणों के प्रकाशसे मेरेहृदयसे अज्ञानरूपीतम दूरहोगयाहै और अबप्रबुद्धहोकर अपने आनन्दरूपमें स्थितहुआहूं और जाननेयोग्य पदको जानताहूं—मानो दूसरा वशिष्ठहुआ हूं। हे भगवन्! यहजो भुशुण्डका चरित्र आपने परमार्थबोधके निमित्तकहाहै उसमेंरक्त, मांस और अस्थिका शरीररूपीगृह किसनेरचाहै; कहांसे उपजाहै; कैसे स्थितहुआ है और कौन इसमें स्थित है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थ तत्त्व के बोध और दुःख के निवृत्त अर्थये मेरे वचन हैं सो सुनो। अस्थि इस शरीररूपी गृहका थम्भा है और इसके नवद्वारे हैं; रक्त मांससे जो यहलेपन किया है सो किसी ने बनाया नहीं आभासमात्र है और मिथ्या भ्रमसे भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे भासता है तैसेही असत्यरूप शरीर भी भ्रमसे भासता है। हे रामजी! जब तक अज्ञान है तब तक देह सत्य भासता है और जब ज्ञानहोता है तब देह असत्य

रूप भासता है—जैसे स्वप्नकाल में स्वप्ने के पदार्थ सत्यभासते हैं और जाग्रत् काल में स्वप्ना असत्य भासता है; तैसेही अज्ञानकाल में अज्ञानके देहादिक पदार्थ सत्य भासते हैं और ज्ञानकाल में असत्य होजाते हैं । जैसे जलमें बुद्बुदा जलके अज्ञान से सत्य भासता है और जलके जाने से असत्य भासता है; और सूर्य्यकी किरणों में मरुस्थलकी नदी भासती है; तैसेही आत्मा में देह भासता है । हे रामजी ! जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्र अज्ञान से भासता है और 'अहं' 'त्वं' आदिक कल्पना सब मननमात्र मनमें फुरती हैं । तुमजो कहतेहो कि, देह अस्थि और मांसका गृहरचा है; सो अस्थिमांस से नहीं रचा संकल्प मात्र है, संकल्प से भासता है और संकल्पके अभाव हुये देहनहीं पायाजाता । हे रामजी ! स्वप्नमें जो देह धरकर दिशा, तट, पर्वत इत्यादि तुम देखते फिरतेहो जाग्रत्में तुम्हारा वहदेह कहां जाता है ? जो देह सत्य होता तो जाग्रत् में भी रहता और मनोराज से स्वर्ग को जाता है तथा सुमेरु और भूमिलोक में फिरता है । हे रामजी ! इन स्थानों में जैसे मनका फुरना देह होकर भासता है सो असत्यरूप है तैसेही यह शरीर मनके फुरने मात्र है इससे असत्य जानो । यह मेरा धन है, यह मेरा देहहै, यह मेरा देशहै इत्यादिक कल्पना मनकी रचीहुई है—सबका बीज, चित्तही है । हे रामजी ! जगत्को दीर्घ कालका स्वप्ना जानो वा दीर्घ चित्तका भ्रमजानो अथवा दीर्घमनोराज जानो; वास्तवमें जगत् कुछनहीं । जब अपने वास्तव परमात्म स्वरूपको अभ्यास करके जानता है तब जगत् असत्यरूप भासताहै । हे रामजी ! मैंने पूर्व्वभी तुमको ब्रह्मा-जीके वचनों में कहा है कि, सब जगत् मनका रचा हुआ है—इससे सङ्कल्पमात्र है । चिरकाल का जो अभ्यास होरहा है इससे सत् भासता है; जब दृढ़ पुरुष प्रयत्न से आत्मअभ्यास हो तब असत्यभासेगा । हे रामजी ! जो भावना हृदयमें दृढ़होती है उसका अभावभी सुगम नहीं होता पर जब उसके विपर्यय भावनाका अभ्यासकरिये तब उसका अभाव होजाताहै । यह मैंहूं, यह औरहै इत्यादिक कलना जो हृदयमें दृढ़ होरही है जब इसके विपर्यय आत्मभावना हो तब वह मिटै और सर्व्व आत्माही भासे । हे रामजी ! जिसकी तीव्र भावना होती है वही रूपफल उसका होजाता है—जैसे कामी पुरुषको सुन्दरस्त्री की वासनारहती है तैसेही जीवको जब आत्मपदकी चिन्ता रहे तब वहीरूप होता है । जैसे कीटभृङ्गी होजाता है और जैसे दिनमें व्यापारका अभ्यास होता है तो रात्रिको स्वप्नमेंभी वही देखता है; तैसेही जिसका जीवको दृढ़ अभ्यासहोताहै वही अनुभवहोताहै । जैसे सूर्य्य आकाशमें तपताहै और मरुस्थल में जल होकर भासता है परवहां जलका अभाव है; तैसेही भावसे रहित पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रमसे भावरूप भासते हैं। जैसे नेत्र दुखने से आकाश में तरवरे मोर पुच्छवत्

भासते हैं तैसेही अज्ञान से जगत् जाल भासते हैं। हे रामजी! यह जगत् सब आभासरूप है स्वरूप के प्रमाद से भय और दुःखको प्राप्त होता है पर जब स्वरूप को जानता है तब भ्रम, भय और दुःखसे रहित होता है। जैसे स्वप्नपुर में चित्तके भ्रमसे सिंहोंसे भय पाता है और जब जाग्रत् स्वरूप में चित्त आता है तब सिंहका भय निवृत्त होजाता है, तैसेही आत्मज्ञानसे निर्भय होता है। जब वैराग अभ्यास करके जीव निर्मल आत्मपदको प्राप्त होताहै तब फिर क्षोभको नहीं प्राप्त होता और रागद्वेषरूपी मल उसको नहीं स्पर्श करता। जैसे तांबा जब पारसके स्पर्शसे सुवर्ण होता है तब वह तांबे भावको नहीं ग्रहण करता, तैसेही जीव फिर मलिन नहीं होता। अहं, त्वं आदिक जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्रही है। हे रामजी! प्रथम सत्य असत्यको जानकर असत्यका निरादरकरो और सत्यका अभ्यासकरो तबचित्त सर्व्व कल्पनासे रहित होकर शान्त पदको प्राप्तहोता है। जो तत्त्वज्ञानसे सम्यक्दर्शी हुआहै उसको जगत्के इष्ट पदार्थ पायेसे हर्ष नहींहोता और अनिष्टके पायेसे शोक नहींहोता; वह न किसीकी स्तुति करता है, न किसीकी निंदाकरता है और हृदयमें शीतल और शान्तरूप होजाता। जब कोई बांधव मृतकहो तव उसमें तपायमान क्यों होता है वह तो अवश्यही मरता। जब अपनी मृत्यु आवे तब अवश्य शरीर छूटता है वृथा क्यों तपायमान होता है। जब सम्पदा प्राप्त हो तो उससे हर्षवान् नहीं होता क्योंकि; जो कुछ भोगनाथा भोगा हर्ष किससेहुआ? दुःखआन प्राप्तहो तब शोक क्यों करना शरीरका व्यवहार सुख दुःख आता जाता है और अमिट है और जब अपना किया कर्म उदय होता है तबभी शोक क्यों करता है? हे रामजी! जो सत्य है वह असत्यनहीं और जो असत्य है सो सत्यनहीं फिर जगत् द्वेष किसनिमित्त करना? जिसको ऐसानिश्चय हुआ है कि, न मैंहूं, न जगत् है और न पृथ्वी है तो वह शोक किसका करे और जब देह अन्य है और मैं चेतनहूं तो चेतनका तो नाशनहीं होता तब शोक किसका करना? हे रामजी! दुःख तो किसी प्रकार नहीं है पर जबतक बिचार नहीं तबतक दुःख होता है और बिचार कियेसे दुःख कोई नहीं रहता। सम्यक्दर्शी जो मुनीश्वर है वह सत्यको सत्य और असत्य को असत्य जानता है इस कारण दुःख नहीं पाता और जो असम्यक्दर्शी है वह अज्ञान से दुःख पाता है। जैसे दिन के अन्त में मण्डल शीतल होजाता है तैसेही सम्यक्दर्शीका हृदय शीतल होता है। जिसको कर्त्तव्यमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं है वही सम्यक्दर्शी है। हे रामजी! जितने जगत्के पदार्थ हैं उनको हृदयसे आभास-मात्र जानो और बाहर जैसे आचार हो तैसे करो अथवा उसकाभी त्याग करो और निराभास होकर स्थितहो। मैं चिदाकाश, नित्य, सर्व्वज्ञ और सब से रहितहूं:

ऐसा अभ्यास कर के एकांत और निर्मल आपको देखोगे । अथवा ऐसी धारणा करो कि, न मैंहूं, न यह भोग है, न अर्थरूप जगत् आडम्बर है; अथवा ऐसेधारो कि, मैंहीं नित्यशुद्ध, चिदात्मा और आकाशरूप सब कुछहूं, मेरे से कुछ भिन्न नहीं और मैं अपने आप स्थितहूं । इन दोनों पक्षों में जो इच्छा हो सो ग्रहणकरो तो तुमको सिद्ध का कारण होगा । जगत्को आभासमात्र जानो परन्तु यह भी कलङ्करूप है इस चिंतनाको भी त्यागकर निराभासहो । तुम चिदाकाश, नित्य, सर्व्वव्यापी और सबसे रहित हो; आभास को त्यागकर निर्मल अद्वैत होरहो अथवा विधिनिषेध दोनों दृष्टोंको आश्रयकरो । हे रामजी ! क्रियाकोकरो परन्तु राग द्वेषसे रहित हो। जब रागद्वेषसेरहितहोगे तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानन्द को प्राप्त होगे और जो सर्व्वका अधिष्ठानहै उसको पावोगे । हे रामजी ! जिसका हृदय रागद्वेषरूपी अग्निसे जलता है उसको सन्तोष, वैराग्यआदिक गुणनहीं प्राप्त होते । जैसे दग्ध भूतलके वनमें हरिण प्रवेश नहीं करते तैसेही रागद्वेषादिक वाले हृदयमें सन्तोषादिक नहीं प्रवेश करते । हे रामजी ! हृदयरूपी कल्पतरुहै । ऐसावृक्ष जो रागद्वेषादिक सर्पोंसे रहित है उससे कौन पदार्थ है जो प्राप्त नहो—शुद्ध हृदयसे सब कुछ प्राप्तहोता है । हे रामजी ! जो बुद्धिमान् भी है और शास्त्रका ज्ञाताभी है परन्तु रागद्वेष संयुक्त है वह स्यारकी नाईं नीचहै और उसको धिक्कार है । जिन पदार्थों के पानेके निमित्त लोग यत्न करते हैं वे तो आतेजाते हैं । धनको इकट्ठा कोई करता है और कोई लेजाता है तब रागद्वेष किसका करिये ? जो कुछ प्रारब्ध है सो अवश्य होता है, धनका व्यर्थ यत्न क्या करिये ? बांधव और बन्धुआते हैं और फिर जातेभी हैं । जैसे समुद्र में झषका आश्रय बुद्धिमान् नहीं लेते तैसेही जगत् के पदार्थों का आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते । भाव—अभावरूप परमेश्वर की माया है और संसारकी रचना स्वप्न की नाईं है; उन में जो आसक्त होते हैं उनको वे सर्पिणीवत् डसते हैं । धन, बांधव और जगत् वास्तव में मिथ्याही हैं अज्ञान से सत्यभासते हैं । हे रामजी ! जो आदि न हो और अन्तभी न रहे पर मध्यमें भासे उसको भी असत्य जानिये । जैसे आकाश में फूल असत्य हैं तैसेही संसार रचना असत्य है और जैसे सङ्कल्परचना असत्य है; जैसे गन्धर्व्व नगर सुन्दर भासता है पर नाश होजाता है और जैसे स्वप्नपुर दीर्घकालका भासता है पर भ्रमरूप है; तैसेही यहजगत् असत्य रूप और भ्रममात्र है केवल संकल्परूप अभ्यास के वशसे दृढ़ता को प्राप्तहुआ है । दीवार जो आकारवान् भासती है सो आकार से रहित प्रकाशरूपहै और आत्मपद सुषुप्ति की नाईं अद्वैत रूपहै । उस सुषुप्तिरूप पदसे जब गिरताहै तबदीर्घ स्वप्न को देखताहै । हे रामजी ! अज्ञानरूपी निद्रा में जो अपने स्वभाव से गिरा है वह

कि, चित्रका पुरुषभी इनसे श्रेष्ठहै । ये आधिव्याधि से जलते हैं पर वहसदा ज्योंका त्यों है । चित्रका पुरुष तब नाश हो जब आधार भूतको नाश करिये; अधिष्ठान के नाशबिना उसका नाश नहींहोता और मनुष्य अविनाश के आधार है उसका नाश नहीं होता पर मूर्खतासे आपको नाशहोता मानते हैं और रागद्वेष से संयुक्त है इससे चित्रके पुरुष सेभी तुच्छहै । मनोराज संकल्परूप देहभी इस देहसे श्रेष्ठ है क्योंकि, जो कुछ दुःख इसको होते हैं वे बड़े कालपर्यंत रहते हैं पर मनोराजकादुःख और संकल्प के आयेसे अभाव होजाता है इससे थोड़ा है । संकल्प देहसे भी स्थूलदेह तुच्छ है । हे रामजी ! जो थोड़े कालसे देहहुई है उस में दुःख भी थोड़ा है और जो दीर्घ संकल्परूपी देह है वह दीर्घ दुःख को ग्रहण करती है इससे महानीच है । हे रामजी ! यह देहभी संकल्पमात्र है न सत्य है, न असत्य है; उसके भोगके निमित्त मूर्खयत्न करते हैं और क्लेश पाते हैं । देह अभिमान करके इसके सुख से वे सुखी होते हैं और दुःख से दुःखी होते हैं और इसके नष्टहुये आपको नष्ट हुआ मानते हैं । जैसे मनोराज के नाशहुये पुरुष और दूसरे चन्द्रमा के नाशहुये चन्द्रमाका नाश नहींहोता तैसेही इस देहके नाशहुये देही पुरुषका नाश नहीं होता । जैसे संकल्प पुरुषके नाशहुये पुरुषका नाशनहीं होता और जैसे स्वप्नभ्रमके नाश हुये पुरुषका नाशनहीं होता, तैसेही देहके नाशहुये आत्माका नाशनहीं होता । जैसे घन धूपके कारण रेणमें जल भासता है और भलीप्रकार जा देखिये तब जलका अभाव होजाता है परन्तु देखनेवालेका अभावनहीं होता;तैसेही संकल्पसे रचा बिनाशरूप जो देहहै उसके नाशहुये तुम्हारा नाश तो नहींहोता । हेरामजी ! दीर्घकाल का रचाजो स्वप्नमय देहहै उसके दुःख और नाशसे आत्माको दुःख और नाशनहीं होता । चेतन आत्मसत्ता नाशनहीं होती और स्वरूपसे चलायमानभी नहींहोती; न विकारको प्राप्तहोती है;वहतो सर्वदा शुद्ध और अच्युतरूप अपने आपमें स्थित है और देहके नाशहुये उसका नाशनहीं होता । अज्ञानके दृढ़ अभ्यास से देह के धर्म अपने में भासने लगे हैं; जब आत्माका दृढ़ अभ्यासहो तो देहाभिमान और देहके धर्मोंका अभाव होजावे । जैसे कोई चक्रपर चढ़कर भ्रमताहै तो उतरने पर कुछ काल भ्रमता भासता है पर जब चिरकाल व्यतीतहोताहै तब स्थितहोजाता है; इसी प्रकार देहरूपी चक्रको प्राप्तहुआ और अज्ञानसे भ्रमाहुआ आपको भ्रमता देखताहै और जब अज्ञानका बेग निवृत्त होता है तबभी कोईकाल देहभ्रम भासता है जिससे जानताहै कि, मेरानाश होताहै, मुझको दुःखहोता है इत्यादिक । यहकल्पना अज्ञान से भासती है पर जब उस भ्रमदृष्टिको धैर्य्यसे निवृत्त करते हैं तब अभावहोजातीहै। हेरामजी ! जैसे भ्रमसे रस्सीमें सर्प भासता है तैसेही आत्मा में देह भासती है सो

असत्य और जड़है; न कर्म करतीहै और न मुक्त होनेकी इच्छाकरती है। देव परमात्मा भी कुछ नहीं करता; वह सदाशुद्ध, द्रष्टा और प्रकाशकहै। जैसे निर्वात दीप अपने आपमें स्थित होता है तैसेही तुमभी शुद्धस्वरूप अपने आपमें स्थितहो। जैसे सूर्य्य आकाशमें स्थित होता है पर सर्व जगत्को प्रकाश करता है और उस के आश्रय लोग चेष्टाकरते हैं परन्तु सूर्य्य कुछनहीं करता वह केवल सबका साक्षीभूतहै तैसेही आत्माके आश्रय देहादिक की चेष्टाहोतीहै परन्तु आत्मासाक्षीरूपहै और पाप पुण्य से रहित है। हेरामजी! इसदेहरूपी शून्यगृहमें अहंकाररूपी पिशाच कल्पितहै जैसे बालक परछाहीं में बैतालकल्पके भयपाता है तैसेही अहंकाररूपी पिशाच कल्पकर जीव भयपाताहै। वह अहंकाररूपी पिशाच महानीचहै और सर्व सन्तजनोंसे निंद्य है। जब अहंकाररूपी बैताल निकले तब आनन्दहो। देहरूपी शून्य गृहमें इसका निवासहै;जो पुरुष इसका टहलुआ होरहाहै उसको यह नरकमें लेजाताहै इससे तुम इसके टहलुआ न होना। जब इसके नाशका उपायकरोगे तब आनन्द पावोगे। हे रामजी! यह चित्तरूपी उन्मत्त बैताल जिसको स्पर्शकरताहै उसकोअशुद्ध करताहै अर्थात् उसका धैर्य और निश्चयबिपर्यय करके उसे दुःखदेताहै और निज स्वरूपसे गिरादेता है। जो बड़े२ साधु महन्तहैं वेभी इसके भयसे समाधिमें स्थितहोते हैं कि, किसीप्रकार अहंकारका अभावहो। हेरामजी! अहंकाररूपी पिशाच जिसको स्पर्श करताहै उसको आप सा करलेताहै। यह जैसे आप तुच्छहैं तैसेही औरकोभी तुच्छ करताहै। जहांसत्संग सत्शास्त्रका बिचार और आत्मज्ञानका निवास नहींहोता उस शून्य और उजाड़रूपी देह मन्दिरमें यह रहता है और जो कोई ऐसे स्थानमें प्रवेश करता है उसमें प्रवेश करजाता है। हे रामजी! जिसको अहंकाररूपी पिशाचलगा है उसकाधनसे कल्याण नहींहोता और न मित्र बान्धवसे कल्याण होताहै। अहंकार पिशाचसे मिलाहुआ जोकुछ क्रियाकर्म्म वह करताहै सो अपनेनाशके निमित्त करता है और बिषकी बेलिको उपजाता और बढ़ाता है। हे रामजी! जो पुरुषाविवेक और धैर्य्यसे रहित है उसको अहंकाररूपी पिशाच शीघ्रही खाजाता है। वह सर्व्वरूप है और जिसको स्पर्श करताहै उसको शवकर छोड़ता है। जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है वहनरकरूपी अग्निमें काष्ठकीनाईं जलेगा। अहंकाररूपीसर्प देहरूपी बृक्ष के छिद्रमें बिषकोधारे बैठा है; उसके निकट जो जावेगा उसको मारडालेगा और जो अहंमम भावको प्राप्तहोगा सो मृतकसमानहोगा और जन्ममरण पावेगा। अहंकार-रूपी पिशाच जिसको लगा है उसे मलिनकरता है और स्वरूपसे गिराकर संसाररूपी गढ़ेमें डालता है और बड़ी आपदाको प्राप्तकरता है। जितनी आपदा हैं उन्हें अहं-कार प्राप्तकरता है। बहुत वर्ष पर्य्यंतभी उन आपदाओंका बर्णन न करसकेगा। हे

रामजी! यहजोमलिनकल्पनाउठतीहैकि, 'मैंहूं' 'मैंमरताहूं, 'मैंदग्धहोताहूं' 'मैंदुःखीहूं,' मनुष्यहूं' इत्यादि सो अहंकाररूपी पिशाचकीशक्तिहै। आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध, चिदाकाश, सर्व्वगत, सच्चिदानन्द, जोसबकाअपनाआपहै पर अहंकारकेवशसे जीवआपकोपरिच्छिन्न और अलेपदुःखीमानताहै। जैसे आकाश सर्वगत और अलेपहै, तैसेही अ सबमें अलेपहै और सबसे असम्बन्ध पर अहंकारके सम्बन्धसे रहितहै। हे रामजी! ग्रहण, त्याग, चलना, बैठना इत्यादिक जोकुछ क्रियाहै सो देहरूपी यन्त्रऔर बायुरूपी रस्सीसे अहंकाररूपी यंत्रीकराताहै और आत्मासदानिर्लेप सबकाअधिष्ठानरूपकारण कार्यभावसेरहितहै। जैसे वृक्षकी उँचाईकाकारण आकाश निर्लेपहै, तैसेहीआत्मा सर्व चेष्टाका कारण अधिष्ठान और निर्लेपहै जैसेआकाश और पृथ्वीका सम्बन्ध नहीं तैसेही आत्मा और अहंकारका सम्बन्धनहींहै। चित्तको जोआप जानते हैं वे महामूर्ख हैं। आत्माप्रकाशरूप, नित्य और सर्वगत विभूहै; चित्तमूर्ख जड़है और आवरणकरताहै। हे रामजी! आत्मा सर्वज्ञ और चेतन रूप है; चित्त मूढ़ है और पत्थरवत् जड़ है, इसको दूरकरो इसका और तुम्हारा कुछ सम्बन्धनहीं। तुम इस मोहसे तरो। देहरूपी शून्यगृह में चित्तरूपी बैतालका निवास है; जिसको वह अपने बश करताहै उसको बान्धव भी नहीं छुड़ासक्ते और शास्त्रभी नहीं छुड़ासक्ते जिसका देहाभिमान क्षीण होगयाहै उसको गुरु और शास्त्रभी छुड़ासक्ता जैसे अल्पकी जड़से हरिणको निकाल लेते हैं तैसेही गुरु और शास्त्र निकाल लेतेहैं। हे रामजी! जितने देहरूपी शून्य मन्दिर हैं उनसबमें अहंकररूपी पिशाच रहताहै, कोई देहरूपी गृह अहंकार पिशाच से खाली नहीं और भयसे मिलाहुआ है। जैसे पिशाच अपवित्र स्थान में रहता है, पवित्र स्थान में नहीं रहता तैसेही जहां सन्तोष, विचार, अभ्यास, सत्सङ्ग से रहित देहहै उस स्थान में अहंकार निवास करता है और जहां सन्तोष, विचार, अभ्यास और सत्संग होताहै तहांसे मिटजाताहै। जितने शरीररूपी श्मशानहैं वे चित्तरूपी वैतालसेपूर्ण हैं और अपरिमित मोहरूपी वैताल के बश जगत्रूपी महाबन में मोहको प्राप्त होते हैं। जैसे बालकमोह पाता है। हे रामजी! तुम आपसे अपना उद्धारकरो और सत्यबिचार करके धैर्य्यकोप्राप्तहो। इस जगत्रूपी पुरातन बनमें जीवरूपी मृगविचरते हैं और भोगरूपी तृणका आश्रय करते हैं पर वे भोगरूपी तृण देखनेमें तो सुन्दरभासते हैं परन्तु उनके नीचे गढ़ाहै। जैसे हरियाली और तृणसे ढपाहुआ गढ़ा देखके मृगकेबालक भोजन करने लगते हैं और गढ़ेमें गिरपड़ते हैं तैसेही जीवरूपी मृगभोगोंको रमणीय जानकर भोगने लगते हैं और उनकी तृष्णासे नरकआदिक जन्मोंमें गिरते और अग्निमें जलते हैं, हे रामजी! तुम ऐसे न होना। जो कोई भोगकी तृष्णाकरेगा वह नरकरूपी गढ़ेमें

गिरेगा, इससे तुम मृगमतिको त्यागकर सिंहवृत्तिको धारो। मोहरूपीहाथीको सिंहहोकर अपने नखोंसे बिदारणकरो और भोगकी तृष्णासे रहितहो। भोगकी तृष्णावाले जीव जंबूद्वीपरूपी जंगलमें मृगकीनाईं भटकतेहैं—उन्होंकीनाईं तुम न बिचरना। हेरामजी! स्त्री जो रमणीय भासती हैं उनका स्पर्श अल्पकालही शीतल औ सुखदायक भासता है परन्तु कीचड़की नाईंहै। जैसे कीचड़का लेपभी शीतलभासता है परन्तु तुच्छ है। जैसे हाथी दल दलमें फँसाहुआ निकल नहींसक्ता, तैसेही यह भोगरूपी दल दलमें फँसाहुआ नहीं निकलसक्ता। इसमें तुम संतकी बृत्तिको ग्रहणकरो। ग्रहण करना किसको कहते हैं औ त्याग किसका नाम है ऐसे बिचारसे असतबृत्तिको त्यागकरो और आत्मतत्त्वका आश्रय करो। हे रामजी! यह अपवित्र देह अस्थि, मांस, रुधिर से पूर्ण है और तुच्छहै और इसका दुष्ट आचारहै। देहके निमित्त भोगकी इच्छाकरनेसे कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता। देह औरने रचीहै, चेष्टा औरसे करती है; औरने इसमें प्रवेश किया है; दुःखको और ग्रहण करता है जो दुःखका भागीहोता है। संकल्पने देह रची, है प्राणसे चेष्टा करता है, अहंकार पिशाचने इसमें प्रवेशकिया है और गर्जता है; मनकी बृत्ति सुख दुःखको ग्रहणकरती है और जीव दुःखी होता है। इससे आश्चर्य्य है। हे रामजी! परमार्थ सत्ता एकहै और सर्व्वसमान है। इसमें भिन्नसत्ता नहीं। जैसे पत्थर घनजड़ होताहै, और उसमें और कुछ नहीं फुरता तैसेही सत्तामात्र से भिन्न द्वैतसत्ता किसी पदार्थकी नहीं। जैसे पत्थर घनरूप है तैसेही परमात्मा घनरूप है और जड़चेतन भिन्न कोई नहीं यह मिथ्यासंकल्पकी रचना है। जैसे बालकको परछाहीं में बैताल भासताहै तैसेही सब कल्पना मनकी है जैसे एक पौंड़े के रससे गुड़, शक्कर इत्यादि होतीहैं तैसेही एकपरमोत्तम सत्ता समान सर्बहै उसमें जड़चेतनकी कल्पना मिथ्याहै। तवतक सम्यक् दृष्टिनहीं प्राप्तहुई तब तक जड़चेतनकी दृष्टिहोतीहै और जब यथार्थ दृष्टिप्राप्तहोती है तब भेदकल्पना सब मिटजातीहै। जैसे सीपीमें रूपाभासता है सो न सत्यहोताहै और न असत्यहोता है, तैसेहीआत्मामें जड़, चेतन, सत्य, असत्य बिलक्षण कल्पनाहै। हेरामजी! जोसत्यहै सो असत्य नहींहोता और जो असत्य है सो सत्य नहींहोता। आत्मा सदा सत्यरूप अपने आपमें स्थित है और उसमें द्वैत और एकका अभावहै। जैसे पत्थर में अन्य सत्ताका अभाव है तैसेही आत्मामें द्वैतसत्ता का अभाव है। नानारूप भासता है तौ भी द्वैत कुछ नहीं सदा अनुभवरूप है और उसमें बिभाग कल्पना कुछ नहीं—सदा अद्वैतरूप है भेदकल्पना चित्तसे भासती है; जब चित्तका अभाव होता है तब जड़ चेतनकी कल्पना मिटजाती है जैसे बंध्याकेपुत्र और आकाश में बृक्षका अभाव है तैसेही आत्मामें कल्पनाका अभावहै। हे रामजी! 'यह चेतनहै, 'यहजड़है, 'यहउप

जता है, यह मिटजाता है इत्यादिक कल्पना सब मिथ्या हैं। जैसे रस्सी में सर्पमिथ्या है तैसेही केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा में कल्पना मिथ्याहै, गुरु और शास्त्रभी जो आत्माको चेतन कहते हैं और अनात्मा को जड़ कहते हैं वहभी बोधके निमित्त कहते हैं और दृष्टान्त युक्त से दृश्यको आत्मस्वरूप में स्थिति करते हैं। जब स्वरूप में दृढ़ स्थितिहोगी तब जड़ चेतनकी भेद कल्पना जाती रहेगी केवल अचैत्य चिन्मात्र सत्ता भासेगी जो तत्त्वहै। इसप्रकार गुरु जड़चेतन के बिभाग का उपदेश करते हैं तौभी मूर्ख नहीं ग्रहण करसक्के तो जब प्रथमहीं अचैत्य–चिन्मात्र–अवाच्य पदका उपदेश करें तब कैसे ग्रहणकरे। हे रामजी! और आश्चर्य देखो कि, चित्त और है; इन्द्रिय और हैं, देह और है, देहकाकर्त्ता कोई दृष्टिनहींआता और अहंकार से वेष्टितकी है। यह जीव ऐसा मूर्ख है कि, देहको अपनाआप जानताहै और दुःख पाताहै पर जो विचारवान् पुरुष आत्मपद में स्थितहुये हैं उन महानुभावों को कोई क्रिया दुःख बन्धन नहीं करसक्की। जैसेमंत्र जानने वालेको सर्पदुःख नहीं देसक्ता तैसेही, ज्ञानवान् को कर्म बन्धननहीं करते। हे रामजी! न तुम शीशहो, न नेत्रहो, न रक्तहो, न मांसहो, न अस्थि आदिकहो, न मनहो और न भूत जातहो; तुमचित्त से रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप हो इसीलिये शरीरसे ममता त्यागकर नित्यशुद्ध और सर्वगत आत्मस्वरूपमें स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्व्वाणप्रकरणेदेहसत्ताबिचारो नामपंचविंशातितमस्सर्गः २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी दृष्टिका आश्रय करो और भेदकष्ट दृष्टिका त्याग और नाशकरो। जब कष्ट दृष्टिनष्ट होगी तब ऐसा आत्मानन्द प्रकट होगा जिस आनन्दके पायेसे अष्टसिद्धिका ऐश्वर्यभी अनिष्ट जानकर त्यागोगे। अब और दृष्टि सुनो जो महा मोहका नाश करती है और जो आत्मपद पाना कठिन है उसे सुखसे प्राप्त करती है जिसका नाश कदाचित् नहीं होता। यह दृष्टि दुःखसे रहित आनन्द-रूप शिवजी से मैंने सुनी है जो पूर्वकाल में कैलासकी कन्दरामें संसार दुःखकी शान्ति के लिये अर्द्धचन्द्रधार सदाशिव ने मुझसे कहीथी। हे रामजी! महा चन्द्रमाकी नाईं शीतल और प्रकाशमान हिमालय पर्व्वतका एक शिखर कैलास पर्व्वत है जहां गौरी के रमणीय स्थान और मन्दिर हैं और गङ्गाका प्रवाह झरनों से चलता है, पक्षी शब्द करते और मन्द २ सुखदायकपवन चलता है। कुबेरके मोर वहां बिचरते हैं, कल्पवृक्ष लगे हुये हैं और महाउज्ज्वल, शीतल, सुन्दर कन्दरा पर मन्दार और तमाल वृक्ष लगे हुये हैं जिन में ऐसे फूल लगे हैं मानो श्वेत मेघ हैं। वहां गन्धर्व और किन्नर आते और गानकरते हैं और देवताओं

के रमणीय सुन्दर स्थान हैं। उस पर्वत पर सदाशिव त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और गणों से वेष्टित अर्द्धाङ्ग में भगवती को लिये विराजते हैं। ऐसे सर्व लोकों के कारण ईश्वर जिन्हों ने कामदेवका गर्व नाशकिया और षट्मुख सहित स्वामि कार्त्तिक जिनके पास बैठे हैं और महा भयानक शून्य श्मशानों में जिनका निवास है उस देवकी मैंने पूजाकी और महापुण्यवान् एककुटी बनाकर एक कमण्डलु और फूल और माला पूजन के निमित्त रक्खे यथा शास्त्र पुण्य क्रियासे उसमें तप करने लगा। जल पान करूं, फल भोजन करूं, विद्यार्थी जो साथ थे उनको पढ़ाऊं और शास्त्रका अर्थ बिचारूं। ब्रह्मविद्याके पुस्तकका समूह आगे था और मृग और उनके बालक विचरतेथे इस प्रकार वेदका पढ़ना, ब्रह्मविद्याको बिचारना और शास्त्र अनुसार तप करना इन गुणोंसे कैलास वन कंजमें हम बिश्राम करतेथे। निदान श्रावणवदी अष्टमीकी अर्धरात्रिसे जब मैं समाधिसे उतरा तो क्या देखता हूं कि, दशोदिशा काष्ठवत् मौन और शान्तरूप हैं; महातम घिरा है और मन्दमन्द पवन चलता है और उसके कनके गिरते हैं—मानो पवन हँसी करता है। उसी समय महाशीतल अमृतरूपी किरणोंसे चन्द्रमा प्रकाशितहो ओषधियोंको रससे पुष्टकरने लगा, चन्द्रमुखी कमल खिल आये;चकोर अमृतकी किरणोंको पानकर मानोचन्द्रमा रूपहोगये; प्रातःकालके तारोंकी नाईं मणी ऊपर आन पड़नेलगीं और सप्तर्षि शिर पर अस्थित हुये—मानो मेरे तपको देखनेआये हैं। सप्तर्षियोंमें पिछले जो तीन तारे हैं उनके मध्यमें मेरा मन्दिर है वहां मैं सदाबिराजताहूं। चन्द्रमासे सब स्थान शीतल होगये और पवन से फूल गिरने लगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठआश्रमवर्णनंनाम
षड्विंशतितमस्सर्गः २६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मुझको तेजका प्रकाश दृष्टिआने लगा। जैसे मन्दराचल पर्व्वत के पायेसे क्षीरसमुद्र उछल आताहै। मानो हिमालय पर्व्वत मूर्त्ति धरकर स्थित है। मानो माखनका पहाड़ पिण्ड स्थितहुआहै व सब शंखोंकी स्पष्टता स्थित हुई है वा मोतीका समूह इकट्ठा होकर उड़नेलगा है। महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टिआनेलगा मानो गङ्गाका प्रवाह उछलने लगा है। उसप्रकाशकी शीतलताने सब दिशा और तट पूर्णकर लिये और मैं देखकर आश्चर्यवान्हुआ कि, क्या अकाल ही प्रलय होने लगा। तब मैं बोध दृष्टिसे मनमें बिचारने लगा कि, यह क्या है और देखा कि, देवताओंके गुरुईश्वर सदाशिव चन्द्रकलाको धारेहुये और गौरी भगवती का हाथ ग्रहणकिये गणों के समूहसे वेष्टित चले आते हैं उनके कानोंमें सर्पपड़े थे, कण्ठमें रुण्डोंकी मालाथी शीशपर जटाथी और उनपर कदम्ब वृक्ष और तमाल

वृक्षके फूल पड़े हुयेथे । उनको प्रथम मैंने मनसे देखा; मनहींसे मन्दार वृक्षके पुष्प लेकर अर्घ्यपाद्य किया; मनहींसे प्रणाम किया और मनहीं से प्रदक्षिणा कर अपने आसनसे उठखड़ा हुआ फिर अपने शिष्यको जगा अर्घ्यपाद्य लेकर चला और त्रिनेत्र शिवजीको पुष्पअंजली दे और प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया; तब चन्द्रधारी ने मुझको कृपादृष्टिसे देखा और सुन्दर मधुर बाणी से कहा; हे ब्राह्मण ! अर्घ्यपाद्य लेआवो; हमतेरे आश्रममें अतिथि आये हैं। हे निष्पाप ! तुझको कल्याण तो है ? तू मुझको महाशान्तरूप भासता है और महासुन्दर उज्ज्वल तपकी लक्ष्मीसे तू शोभित है। चलोहम तुम्हारे आश्रमको चलें । हे रामजी ! फूलोंसे आच्छादित स्थानमें सदाशिव बैठेथे सो ऐसे कहकर उठ खड़े हुये और अपने गणों सहितमेरी कुटीमें आये । वहां मैंने पुष्प और अर्घ्यसे उनके चरणोंकी पूजा करके फिर हाथों की पूजाकी और इसी प्रकार चरणोंसे लेकर शीश पर्यंत सब अङ्गोंकी पूजाकी । फिर गौरी भगवती का पूजन करके उनकी सखियों और शिवके गणोंको पूजा । हे रामजी ! इस प्रकार भक्तिपूर्व्वक जब मैं पार्वती परमेश्वर का पूजन कर चुका तब शशिकला को धारी शिवजीने शीतल वाणीसे मुझसे कहा कि, हे ब्राह्मण ! नाना-प्रकारकी चिन्तने वाली जो चित्त वृत्तिहै सो तेरे स्वरूपमें बिश्रांतिको प्राप्तहुई है और तेरी संवित आत्मपद में स्थित हुई है। तुम्हारे शिष्यको कल्याण तो है और तुम्हारे पास जो हरिणबिचरते हैं वे भी सुखसे हैं ? मन्दार वृक्ष तुमको पूजाके निमि-त्त फूलफल भली प्रकार देते हैं और गङ्गाजी तुमको भली प्रकार स्नान कराती हैं ? देहके इष्टअनिष्टकी प्राप्तिमें तुम खेदवान् तो नहींहोते? इसपर्व्वतमें कुवेरके अनुचर यक्षऔर राक्षस जो रहते हैं वेतुमको दुःख तो नहींदेते और मेरेगणजो चक्षु निशाचर हैं वे तोतुमको कष्ट नहीं देते ? हे रघुनन्दन ! इस प्रकार जब देवेशने मुझसे वांछित प्रश्नकिये तब मैंने उनसे कहा; हे कल्याणरूप महेश्वर ! जो तुमको सदास्मरणकरतेहैं उनको इसलोकमें ऐसा कोईपदार्थ नहीं जो पाना कठिनहो और उनको भयभी किसी कानहीं । जिनका चित्ततुम्हारे स्मरणके आनन्दमें सर्व ओरसे पूर्णहुआहै वे जगत्में दीन नहीं होते । वहींदेश और उन्हीं जनोंके चरण और वहीं दिशापर्व्वत बन्दना करने योग्य हैं जहांएकान्त बुद्धिबैठकर तुम्हारा स्मरण होता है । हे प्रभो ! तुम्हारा स्मरण पूर्वपुण्यरूपी वृक्षका फल है और वर्त्तमान कर्मोंसे सिंचता है । तुम मनके परम मित्रहो, तुम्हारा स्मरण सर्व आपदाका हरनेवाला है और सर्व सम्पदारूपी लताको बढ़ानेवाला वसन्त ऋतु है। हे प्रभो ! बड़ी महिमा और बड़ेसे बड़े कर्मोंके कारणका कारण तुम्हारा स्मरण है। हे प्रभो ! तुम्हारा स्मरण विवेकरूपी समुद्र में परमार्थरूपी रत्नहै, ज्ञानरूपीतमका नाशकर्त्ता सूर्यका समूह है, ज्ञान अमृतकाकलश

धैर्य्यरूपी चांदनीका चन्द्रमा और मोक्षका द्वारहै । हेप्रभो ! तुम्हारा स्मरण अपूर्वरूपी उत्तमदीपकहै और चित्तका मण्डप जो संसारहै उससबको प्रकाशताहै।हेप्रभो! तुम्हारा स्मरण उदार चिन्तामणिकी नाईं सर्व आपदाको निवृत्त करनेवाला और बड़े उत्तमपदको देनेवाला है । हे प्रभो ! तुम्हारा स्मरण एकक्षण भी चित्त में स्थित हो तो सर्वदुःख और भयनाश करताहै और वरदायकहै । उसके बलमैंभी तुम्हारे नाईं सुखसे बसताहूं । बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब मुनीश्वरने कहा तब दिनका अन्तहुआ; सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानोंको गई और सूर्य्यकी किरणोंके साथ फिर सब अपने २ आसनपर आ बैठे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरुद्रवशिष्ठसमागमो नामसप्तविंशतितमस्सर्गः२७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब मैंने इसप्रकार कहा तब गौरी भगवती जगत् माता जैसे माता पुत्रसे कहे मुझसे बोलीं; हे वशिष्ठजी ! अरुन्धती जो पतिव्रताओं में मुख्य है वह कहां है ? उसको लेआवो वह मेरी प्यारी सखी है उससे मैं कथा वार्त्ता करूंगी । हे रामजी ! इसप्रकार जब मुझसे पार्वती ने कहा तब मैं शीघ्रही जाकर अरुन्धती को लेआया और वे दोनों परस्पर कथा वार्त्ता करनेलगीं । मैंने विचारा कि, मुझको ईश्वर मिले हैं और पूंछने का अवसर भी पाया है इससे सर्व्व ज्ञानके समुद्रसे पूछकर संदेह दूरकरूं । हे रामजी ! ऐसे विचारकरके मैंने गौरीशसे पूछा और जो कुछ चन्द्रकलाधारीने मुझसे कहा है वह तुमसे कहताहूं । मैंने पूंछा हे भगवन् ! भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनोंकालके ईश्वर और सब कारणों के कारणतुम्हारे प्रसादसे मैं कुछ पूंछनेको समर्थ हुआहूं । हेमहादेव ! जो कुछमैं पूंछताहूं उसे प्रसन्नबुद्धि तत्त्वसे उद्वेगको त्यागकर शीघ्रही कहो । हे सर्व्व पापों के नाशकरने और सर्व्व कल्याणके वृद्धकरनेवाले ! देव अर्चनका विधान मुझसे कहो । ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण ! जो उत्तम देव अर्चन है और जिसके किये से संसार समुद्रसे तरजाइये सो सुनो । हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! पुण्डरीकाक्ष जो विष्णु हैं सो देव नहीं और त्रिलोचन जो शिव हैं सोभी देव नहीं; कमलसे उपजा ब्रह्मा है सोभी देव नहीं और सहस्रनेत्र इन्द्रभी देव नहीं; न देव पवन है, न सूर्य्य है, न अग्नि है, न चन्द्रमा है, न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय हैं, न तुमहो, नमैंहूं, न देहहै, न चित्तहै, और न कलनारूप है; अकृत्रिम, अनादि, अनन्त, और संवित् रूप देव कहाताहै । आकाशादिक परिच्छिन्नरूपहैंसो बास्तवमें कुछ नहीं । एक अकृत्रिम, अनादि, अनन्त, चेतनरूप देवहै सो देव शब्दसे कहाता है और उसीका पूजन पूजन है । उस देवको जिससे यह सब हुआ है और जो सत्ता-शान्त-आत्मरूप है उसको सब ठौर में

देखना यही उसका पूजनहै पर जो उस संवित्तत्त्वों को नहीं जानते उनको आकार की अर्चनाकही है । जैसे जो पुरुष योजन पर्यन्त नहीं चलसक्ता उसको एककोश दो कोशका चलनाभी भला है; तैसेही जो पुरुष अकृत्रिम देवकी पूजा नहीं करसक्ता उसको आकारका पूजना भी भला है । हे ब्राह्मण ! जिसकी भावना कोई करता है उसके फलको उसी अनुसार भोगता है । जो परिच्छिन्नकी उपासना करता है उसको फल भी परिच्छिन्न प्राप्त होता है और जो अकृत्रिम, आनन्द अनन्त देवकी उपासना करता है उसको वही परमात्म रूपी फल प्राप्त होता है । हे साधु ! अकृत्रिम फल को त्याग कर जो कृत्रिमको चाहते हैं वे ऐसे हैं जैसे कोई मन्दार वृक्षके वनको त्याग कर कंजके वनको प्राप्तहो । वह देव कैसा है, उसकी पूजा क्या है और क्योंकर होती है सो सुनो । बोध, साम्य, और सम ये तीन फूल हैं । बोध सम्यक्ज्ञान का नाम है; अर्थात् आत्मतत्त्वको ज्योंका त्यों जाना; साम्य सबमें पूर्ण देखने को कहते हैं और समका अर्थ यह है कि, चित्तको निवृत्तकरना और आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ न फुरना; इन्हीं तीनों फूलोंसे शिव चिन्मात्र शुद्ध देवकी पूजा होती है और आकार अर्चनसे अर्चा नहीं होती आत्मसंवित् जो चिन्मात्र है उसको त्यागकर और जड़ की जो अर्चनाकरते हैं वे चिर पर्यंत क्लेशके भागी होतेहैं। हे ब्राह्मण ! जो ज्ञानज्ञेय पुरुष हैं वे आत्मध्यानसे भिन्नपूजन अर्चन को बालककी क्रीड़ावत् मानते हैं । आत्मा भगवान् एक देवहै सोही शिव है और परमकारणरूपहै; उसका सर्वदाही ज्ञान अर्चनसे पूजन है और कोई पूजा नहीं है । चेतन, आकाश और अवयवस्वभाव एक आत्मदेवको जान पूज्यपूजक और पूजा त्रिपुटी से आत्मदेवकी पूजा नहींहोती। मैंने पूछा, हे भगवन् ! चेतन आकाश मात्र आत्माको जैसे जगत् और चेतन को जीव कहते हैं सो कहो । ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! चेतन आकाश प्रसिद्ध है जो सर्व प्रकृतिसे रहित है और जो महाकल्पमें शेष रहताहै वह आपही किंचनरूप होताहै उस किंचनसे यह जगत् होता है । जैसे स्वप्नेमें चिदात्माही सर्वगत जगत्रूप होकर भासता है तैसेही जाग्रत जगत् भी चिदाकाशरूप है । आदि सर्गसे लेकर इस कालपर्य्यंत आत्मासे भिन्नका अभाव है । जैसे स्वप्ने में जोजगत् भासता है सोभी सब चिदाकाशरूप है भिन्न कल्पना कोई नहीं । चिन्मात्रही पहाड़रूप हैं; चिन्मात्रही जगत् है; चिन्मात्रही आकाश है; चिन्मात्रही सब जीवहैं; और चिन्मात्रही सब भूत हैं; चिन्मात्रसे भिन्न कुछ नहीं । सृष्टि के आदिसे अन्तपर्य्यंत जो कुछ द्वैत कल्पना भासती है सो भ्रममात्र है । जैसे स्वप्नेमें कोई किसी के अङ्गकाटे सो काटता ते नहीं निद्रा दोष से ऐसे भासता है; तैसेही यह जाग्रत जगत्भी भ्रममात्र है । हे मुनीश्वर ! आकाश, परमाकाश और ब्रह्माकाश तीनों एकही के पर्याय हैं—जैसे

स्वप्न में संकल्प के माया से अनुभव होता है सो सब चिदाकाश है; तैसेही यह जाग्रत जगत् चिदाकाशरूप है और जैसे स्वप्नपुर आकाश से कुछ भिन्ननहीं होता, तैसेही जाग्रत स्वप्नाभी आत्मतत्त्व होकर भासता है आत्मा से भिन्न वस्तुनहीं। हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्न में चिदाकाशही घट पट आदिक होकर भासता है, तैसेही स्थित प्रलयादि जगत् चिदात्मा से कुछ भिन्न नहीं आत्माही ऐसे भासता है। जैसे शुद्ध संवित् मात्रसे भिन्न स्वप्नमें नगर नहीं पायाजाता तैसेही जाग्रत में अनुभव से भिन्न कुछ नहीं पाते। हे मुनीश्वर! जगत् तीनोंकाल भाव अभावरूपपदार्थ भासताहै सो सबचिदाकाशरूप है—आत्मासे भिन्न कुछनहीं। हेमुनीश्वर! यहदेव मैंने तुमको परमार्थ से कहाहै। तुममें और सर्वभूत जाति जगत्में सर्वका जो देवहै सो चिदाकाश परमात्मा है—उससे भिन्न कुछनहीं। जैसे संकल्प परमें चिदाकाशही शरीररूप हो भासता है उससे कुछ भिन्ननहीं बना तैसेही यह सब चिदाकाशरूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्याने जगत् परमात्मरूप वर्णननामअष्टाविंशतितमस्सर्गः २८॥

ईश्वरबोले,हे ब्राह्मण! इसप्रकार यह सर्व विश्व केवल परमात्मारूपहै। परमात्माकाश ब्रह्मही एक देव कहाताहै; उसही का पूजन सारहै और उसही से सबफलप्राप्त होते हैं। वह देव सर्वज्ञहै और सबउसमें स्थितहैं। वह अकृत्रिम देवअज,परमानन्द और अखण्डरूप, है;उसकोसाधन करके पानाचाहिये जिससे परमसुख प्राप्तहोताहै। हे मुनीश्वर! तू जागाहुआहै इस कारण मैंने तुझसे इसप्रकारकी देवअर्चना कही है पर जो असम्यक् दर्शीबालकहैं,जिनको निश्चयात्मक बुद्धिनहीं प्राप्तहुई उनको धूप, दीप, पुष्पकर्म आदिक अर्चनाही कहीहै और आकार कल्पितकरके देवकी मिथ्या कल्पनाकीहै। हे मुनीश्वर! अपने संकल्पसे जो देव बनाते और उसको पुष्प, धूप, दीपादिकसे पूजते हैं सो भावनामात्रहै उससेउनको संकल्परचित फलकीप्राप्तिहोती है यह बालक बुद्धिकी अर्चनाहै। तुम सारखे की यही पूजा है जो तुमसे सर्वआत्म भावनासे कही है। हे मुनीश्वर! हमारे मतमें तो और देवकोईनहीं; एक परमात्मा देवही तीनों भुवनमें है। वहीदेव शिव है और सर्वपदसे अतीत है। वह सर्व संकल्पोंसे उल्लंघन वर्त्तता है और सर्व संकल्पोंका अधिष्ठानभी वही है। देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से वह रहित है और सर्वप्रकार शांतरूप एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है। वही देवकहाता है। हे मुनीश्वर! जो संवित्सत्ता पंचभूतकलासे अतीत और सर्वभावके भीतर स्थित है वही सबकोसत्ता देनेवाला देव है और सबकी सत्ता हरनेवाला भी वही है। हे ब्राह्मण! जो ब्रह्मसत्य—असत्यके मध्य और सत्य—असत्य केपर कहाता है वहीदेव परमात्मा है। परमस्वतः सत्ता स्वभावसे जो सबको

प्राप्तहुआ है और महाचित्त कहाता है सो परमात्म देवसत्ताहै जैसे सब वृक्षोंकी लताके भीतर रसस्थितहैं तैसेही सत्तासमान रूपसे परमचेतन आत्मा सर्व ओर स्थित है जो चेतनतत्त्व अरुन्धतीका है और जो चेतनतत्त्व तुझ निष्पापका और पार्वतीका है वही चेतनतत्त्व मेरा है और वही चेतनतत्त्व त्रिलोकी मात्रका है सोई देव है और देवकोईनहीं । हाथपांव संयुक्त जो देव कल्पतेहैं वह चिन्मात्र सारनहीं; चिन्मात्रही सर्व्व जगत्का सारभूत है और वही अर्चना करने योग्य है, उससे सर्वफलोंकी प्राप्तिहोती है वहदेव कहीं दूरनहीं और किसी प्रकार किसीको प्राप्तहोना भी कठिन नहीं । जो सबकी देहमें स्थित और सबका आत्मा है सो दूरकैसे हो और कठिनतासे कैसे प्राप्तहो । सब क्रिया वही करता है, भोजन, भरण और पोषण वही करताहै,वहीश्वास लेताहै और सबका ज्ञाताभी वही है जो पुर्यष्टकामें प्रतिबिंबितहो कर प्रकाशता है जैसे पर्व्वतपर जोचर अचरकी चेष्टाहोती है औ चलते,बैठतेऔर स्थित होते हैं सो सबका आधारभूत पर्व्वत है; तैसेही मन सहित षट्इन्द्रियोंकी चेष्टा आत्माके आश्रयहोती है । उसीकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त तत्त्ववेत्ताओंने देवकल्पी है । एकदेव, चिन्मात्र, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, निरंजन, आत्मा,ब्रह्म इत्यादिक नाम ज्ञानवानों ने शास्त्र बुद्धि उपदेश व्यवहारके निमित्त रक्खे हैं । हे मुनीश्वर! जोकुछ विस्तार सहित जगत्भासता है सबका वह प्रकाशक है और सबसे रहित है, नित्य, शुद्ध और अद्वैतरूपहै और सब जगत्में अनुस्यूतहै । जैसे बसन्तऋतुमें नानाप्रकार के फूल और बृक्ष भासते हैं पर सबमें एकहीरस व्यापार है जो अनेक रूप हो भासता है ; तैसेही एकही आत्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है । हे मुनीश्वर ! जो कुछजगत्है सो सब आत्माका चमत्का है और आत्मतत्त्वमेंही स्थित है; कहीं आकाश,कहीं जीव, कहीं चित्त और कहीं अहंकाररूप है;कहीं दिशारूप कहीं द्रव्य,कहीं भाव विकार कहीं तम कहींप्रकाश और कहीं सूर्य्य पृथ्वी जलअग्नि वायु आदिकस्थावर–जङ्गमरूप होकर स्थित है । जैसे समुद्रमें तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं तैसेही एक परमात्मा देव में त्रिलोकी है । हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिकसबएक देव बहते हैं । जैसे तृण बहते हैं, तैसेही परमात्मा में जीव बहतेहैं वहीचेतनतत्त्व चतुर्भुज होकर दैत्योंकानाश करताहै जैसे जल मेघरूप होकर धूपको रोंकताहै–और वही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र मस्तकपर चन्द्रधारे और वृषभपर आरूढ़ पार्वतीरूपी कमलिनीके मुखका भँवरा रुद्रहोकर स्थितहोताहै । वही चेतना विष्णुरूपसत्ता है,जिसके नाभिकमलसे ब्रह्मात्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनीकी तला बड़ीहोकर स्थितहुआहै । हे मुनीश्वर!इसप्रकार एकही चेतनतत्त्व अनेकरूप होकर स्थितहुआ है । जैसे एकही रस अनेकरूप होकर स्थित होता है और जैसे एकही

सुवर्ण अनेक भूषणरूप होकर स्थित होताहै, तैसेही एकही चेतन अनेकरूप हो के स्थित होताहै। इससे सर्वदेह एकचेतनतत्त्वके हैं। जैसे एकवृक्ष के अनेकपत्र होते हैं तैसेही एकही चेतन के सर्व देहहैं। वही चेतन मस्तकपर चूड़ामणि धारने वाले त्रिलोकपति इन्द्रहोकर स्थित हुआ है। देवतारूप होकर वही स्थित हुआहै और दैत्यरूप होकर भी वही स्थित है और मरने और उपजने का रूप भी वही धारता है। जैसे एक समुद्र में तरङ्गके समूह उपजते और मिट जातेहैं सोजल जलरूपही है तैसेही उपजना और विनशना चेतन में होताहै वह चेतनरूप परमात्मा एकही वस्तु है। हे मुनीश्वर! चेतनरूपी आदर्श में जगत्रूपी प्रतिबिम्ब होता है और अपनी रचीहुई वस्तु को आपही ग्रहणकरके अपने में धारता है। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भको धारती है तैसेही चेतनतत्त्व जगत् प्रतिबिम्बको धारता है। हे मुनीश्वर! सर्वक्रिया उसी देवसे सिद्ध होती हैं और सूर्य्यादिक प्रकाशरूपी उसीसे प्रकाशते हैं और उसीसे प्रफुल्लित होते हैं। जैसे नील और रक्त कमल सूर्य्यसे प्रफुल्लित होते हैं तैसेही आत्मासे अन्धकार और प्रकाश दोनों सिद्धहोते हैं। हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूड़ चेतनरूपी वायुसे उड़ती है। जो कुछ जगत्के आरम्भ हैं उन सबको चेतनरूपी दीपक प्रकाश करता है। जैसे जलके सींचनेसे वेलप्रफुल्लित होती है और फूलफल उत्पन्न करती है, तैसेही चेतनसत्ता सब पदार्थों को प्रकटकरती है और सबको सत्तादेकर सिद्ध करती है। हे मुनीश्वर! चेतनहीसे जड़की सिद्धता और चेतनहीसे जड़का अभाव होता है जैसे प्रकाशहीसे अन्धकार सिद्धहोता है और प्रकाशहीसे अन्धकार का अभाव होताहै तैसेही सबदेह चेतनसे सिद्धहोते हैं और चेतनहीसे देहों का अभाव होताहै। चेतनभी उसीसे होताहै और शिवजी भी उसीसे होतेहैं। हेमुनीश्वर! ऐसापदार्थ कोईनहीं जो चेतन बिनासिद्धहो; जो कोई पदार्थहै सो आत्माहीसे सिद्धहोता है। हे मुनीश्वर! शरीररूपी सुन्दरवृक्ष बड़ी ऊंची डालों सहित हैं परन्तु चेतनरूपी मंजरी बिना नहीं शोभता। जैसेरस बिना वृक्षनहीं शोभता तैसेही चेतनबिना शरीरनहीं शोभता। बढ़ना, घटना आदिक जो विकारहै वहएकआत्मासे सिद्ध होते हैं यह जगत् सब चेतनरूप है और चेतन मात्रही अपने आप में स्थितहै इतना कह वशिष्ठजी बोले। हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणी से त्रिनेत्र ने मुझसे कहा तब मैंने अमृतरूपी भलीप्रकार वाणी से पूंछा। हे देव! जब सर्व जगत् चेतन देव व्यापकरूप स्थित है और चेतनही बड़े विस्तारको प्राप्तभया है तब यह प्रथम चेतन था अब यह चेतनतासे रहित है इस कल्पनाका सब लोकों में प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है, ईश्वर बोले। हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! यह महाप्रश्न तैंने किया है उसका उत्तर सुन इस शरीरमें

दो चेतन स्थित हैं एक चैतन्योन्मुखत्व रूप है और दूसरा निर्विकल्प आत्मा । जो चेतन चैतन्योन्मुखत्व दृश्यसे मिलाहुआ है सो जीव संकल्पके फुरनेसे अन्यकी नाईं होगया है पर वास्तवमें और कुछनहीं हुआ केवल दृश्यसंकल्पके अनुभव को ग्रहण करनेसे जीवरूप हुआ है । जैसे स्त्री अपने शीलधर्मको त्यागकर दुराचारिणी होजाती है तो उसकी शीलता जाती रहती है परन्तु स्त्रीका स्वरूप नहीं जाता तैसेही चैतन्योन्मुखत्व से अनुभवरूपी जीवरूप होजाता है परन्तु चेतन स्वरूप का त्याग नहीं करता । जैसे संकल्पके वशसे पुरुष एक क्षण में और रूप होजाता है तैसेही चित्त सत्ता फुरने भावसे अन्यरूप होजाती है । हे मुनीश्वर ! आदि में चित्त स्पंद चित्तकलामें हुआ है, तबशब्दके चेतनेसे आकाशहुआ; फिरस्पर्श तन्मात्राका चेतना हुआ,तब बायु प्रकट हुये; इसीप्रकार पंचों तन्मात्राके फुरनेसे पंचतत्त्व हुये। फिर देश आदिकका विभाग हुआ उसमें जीव प्रतिबिम्बित हुआ; फिर निश्चय वृत्ति हुई उसका नाम बुद्धिहुआ; फिर अहंवृत्ति फुरी उसका नाम अहंकार हुआ; फिर संकल्प बिकल्प वृत्तिफुरी उसकानाम मनहुआ; चिंवनासे चित्तहुआ; फिर संसारकी भावना हुई तब संसारका अनुभव हुआ और अभ्यासके वशसे संसार भासनेलगा

विपर्यय भावना करके ब्राह्मण आपको चाण्डालजाने; तैसेही भावनाके विपर्यय होनेसे वही चेतन आपको जीव माननेलगा है; संकल्पकी जड़तासे चेतनरूपी जीवको ग्रहणकर संकल्पमें बर्त्तता है और अनन्त संकल्पोंसे जड़ता तीव्रताको प्राप्तहोकर जड़भावको ग्रहणकर देहभावको प्राप्तहोताहै। जैसे जलदृढ़ जड़तासे बरफ रूप होजाता है तैसेही चेतन जबअनन्त संकल्पोंसे जड़देहभावको प्राप्तहोता है तब चित्त मन मोहित हुआ जड़ताका आश्रय करके संसारमें जन्मलेता है और मोहको प्राप्तहुआ तृष्णासे पीड़ितहोता और काम, क्रोध, संयुक्त भाव—अभावमें प्राप्तहोता है। एवम् अपनी अनन्तता को त्यागकर परिच्छिन्न व्यवहारमें बर्त्तता है; दुःखदायक अग्निसे तप्तहुआ शून्यभाव को प्राप्तहोता है और भेदभावको ग्रहणकरके महादीन होजाता है । हे मुनीश्वर ! मोहरूपी गढ़ेमें जीवरूपी हाथीफँसाहै और भाव अभावसे सदा डोलायमान होता है । जैसे जलमें तृणभासता है तैसेही असाररूप संसारमें विकार संयुक्त रागद्वेषसे जीव तपतारहता है शांतिको कदाचित् नहींपाता और जैसे यूथसे बिछुरा मृग कष्टवान् होता है तैसेही आवरण भाव जन्म मरणसे जीव कष्टवान् होता है और अपने संकल्पसे आपही भयपाता है । जैसे बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पकर आपही भयपाता है तैसेही जीव अपने संकल्पसे आपही भयभीत होता है और संकट पाता है; आशारूपी फांसीसे बँधाहुआ कष्टसे कष्टपाता है और कर्मोंको करके तपायमानहुआ अनेक जन्मपाता है और भयमें र-

हता है। बालकहोता है तब महादीन और परबश होताहै;यौवन अवस्थामें कामादिकके बशहुआ स्त्रीमें रत रहताहै और वृद्ध अवस्थामें चिन्तासे मग्नहोता है। जब मृतकहोता है तब कर्मोंके बश फिर जन्मता है और गर्भमें दुःखपाता है और फिर बालक यौवन वृद्ध और मृतक अवस्थाको पाता है। स्वरूपसे गिराहुआ इसीप्रकार भटकता है, कदाचित् स्थिर नहींहोता। हे मुनीश्वर! एक चित्तसत्ता स्पन्दभावसे अनेक भावको प्राप्तहोती है; कहीं दुःखसे रुदनकरती है, कहीं दुःख भोगतीहै; कहीं स्वर्गमें देवांगना होतीहै,पातालमें नागनी, असरोंमें असुरी, राक्षसोंमें राक्षसी, बन कोटमें बानरी; सिंहोंमेंसिंही;किन्नरोंमें किन्नरी;हरिणोंमेंहरिणी,विद्याधरों में विद्याधरी, गन्धर्वोंमें गन्धर्वी, देवताओं में देवी इत्यादिक जो रूपधारती है सो चैतन्योन्मुखत्व जीवकला है। क्षीर समुद्रमें वह विष्णुरूप होकर स्थितहोती है, ब्रह्मपुरीमें ब्रह्मारूप होती है, पंचमुख होकर रुद्र होती है और स्वर्ग में इन्द्र होती है। तीक्ष्णकला से सूर्य दिनका कर्त्ता होती है और क्षण, दिन, मास, बर्ष करती है। चन्द्रमा होकर वही रात्रिकरती और कालहोकर नक्षत्र फेरती है। कहीं प्रकाश, कहीं तम, कहीं बीज, कहीं पाषाण, कहीं मन होती है और कहीं नदीहोकर बहती है; कहीं फूल होकर फूलती है; कहीं भँवरहोकर सुगन्धलेती है, कहीं फलहोकरदिखतीहै, कहींबायु होकर चलती है, कहीं अग्नि होकर जलाती है, कहीं बरफ होती है और कहीं आकाशहोकर दिखती है। हे मुनीश्वर! इसीप्रकार सर्वगत सर्वात्मा सर्व शक्तत्तासे एकहीरूप चित्तशक्ति आकाशसेभी निर्मलहै। जैसे चेतताहै तैसेही होकर स्थितहुई है। जैसी२ भावना करती है शीघ्रही तैसारूप होजाती है परन्तु स्वरूपसे भिन्ननहीं होती। जैसे समुद्रमें फेन तरङ्ग होकर भासता है परन्तु जलसे भिन्ननहीं—जलही जल है तैसेही चित्तशक्ति अनेकरूप धारती है परन्तु चेतनसे भिन्ननहीं होती। चित्त शक्तिही कहीं हंस, कहीं काक, कहीं शूकर,कहीं मक्खी, चिड़िया इत्यादिक रूपधारकर संसारमें प्रवर्त्तती है। जैसे जलमें आया तृण भ्रमताहै तैसेही भ्रमतीहै और अपने संकल्पसे आपही भयपाती है और जैसे गधा अपना शब्दसुन आपही दौड़ता है और भयपाता है तैसेही जीव अपने संकल्पसे आपही भयपाताहै। हे मुनीश्वर! यहमैंने जीवशक्तिका आचार तुमसे कहा; इसी आचारको ग्रहणकरके बुद्धिनीच पशुधर्मणी हुई है और स्वरूपके प्रमादसे जैसा २ संकल्पकरती है तैसीही तैसी कर्मगति को प्राप्त हो शोकवान्होती है, अनन्तदुःख पातीहै और अपनी चैत्यतासेही मलिन होती है। जैसे तुषसेढपा चावल बड़े संतापको प्राप्त होता है; फिर फिर बोयाजाता है; फिर २ उगता है और काटाजाता है; तैसे स्वरूपके आवरणसे जीवकला दुर्भाग्यसे जन्म मरण दुःखको प्राप्तहोती है। जैसे भर्त्तारसे रहित स्त्री शोकवान् होती है

तैसेही जीवकला कष्टपातीहै । हे मुनीश्वर ! जड़दृश्य और अनात्मरूपकी प्रीतिकरने और निज स्वरूपके विस्मरण करनेसे आशारूपी फाँसीसे बँधाहुआ चित, जीव को नीच योनिमें, प्राप्तकरता है जैसे घटीयंत्र कभीनीचे जाती है और कभी ऊर्ध्वको जातीहै तैसेही जीवआशाके बशहुआ कभीपाताल और कभीआकाशको जाता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे वशिष्ठेश्वरसम्वादेचैतन्योन्मुखत्वविचारो नामएकोनत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः २९ ॥

ईश्वरबोले, हे मुनीश्वर ! स्वरूपके विस्मरणसे जो इसप्रकार होता है कि, मैं हन्ता हूं, मैंदुःखीहूं; सो अनात्मा में अहंप्रतीति करकेही दुःखका अनुभव करता है । जैसे स्वप्नेमें पुरुष आपको पर्व्वतसे गिरता देखके दुःखीहोता है और आपको मृतकहुआ देखता है तैसेही स्वरूपके प्रमादसे अनात्ममें आत्म अभिमान करके आपको दुःखी देखता है । हे मुनीश्वर ! शुद्धचेतन तत्त्वमें जो चित्तभाव हुआहै सो चित्तकला फुरने से जगत्का कारणहुआ है परन्तु वास्तवमें स्वरूपसे भिन्ननहीं । जैसे जैसे चितकला चेततीगई है तैसेही तैसे जगत् होतागया है । वह चित्तका कारण रूपभी नहीं हुआ और जब कारणही नहींहुआ तबकार्य्य किसको कहिये ? हे मुनीश्वर ! न वह चित्त है, न चेतन है, न चेतनेवाली है, न द्रष्टाहै, न दृश्य है, औरन दर्शन है जैसे पत्थर में तेलनहीं होता । न कारण है, न कर्म्म है और न कारणइन्द्रियां हैं, जैसे चन्द्रमा में श्यामता नहींहोती । न वह मनहै और न माननेयोग्य दृश्य बस्तु है–जैसे आकाश में अंकुर नहींहोता । न वह अहंताहै, न तम है, और न दृश्य है–जैसे शंखको सामता नहींहोती । हे मनीश्वर ! न वह नाना है, न अनाना है,–जैसे अणुमें सुमेरु नहीं होता । न वह शब्द है, न स्पर्शकाअर्थ है–जैसे मरुस्थल में बेलि नहीं होती । न वस्तु है, न अवस्तु है–जैसे बरफ मेंउष्णता नहीं होती । न शून्य है, न अशून्य है, न जड़ है, न चेतन है,–जैसे सूर्य्यमण्डल में अन्धकार नहींहोता । हे मुनीश्वर ! शब्द और अर्थ इत्यादिककी कल्पना भी उसमें कुछनहीं–जैसे अग्नि में शीतलता नहीं होती । वहतो केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है स्वरूपसे किसीको कुछभी दुःख नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जगत्को असत् जानकर अभावना करना और आत्मको सत् जानकर भावना करना इस भावनासे सर्व अनर्थ निवृत्त होजाते हैं पर यह और किसीसे प्राप्त नहीं होता अपने आपहीसे प्राप्त होता है और अनादिही सिद्ध है । जब उसकी ओर भावना होती है तब सब भ्रम मिटजाते हैं और जब अनात्म भावना होती है तब उसका पाना कठिन होता है । जो यत्नके साथ है सो यत्न विना नहीं पायाजाता; आत्मानिर्विकल्प, अद्वैत और सबसे अतीत है, उसे अभ्यास विना कैसे पाइये ? आत्मतत्त्व परम, एक, स्वच्छ, तेजका भी प्रकाशक,

स गत, निर्मल, नित्य, सदा उदित, शक्तिरूप, निर्विकार और निरञ्जन है। घट, पट, बट, वृक्ष, गादी, बानर, दैत्य, देवता, समुद्र, हाथी इत्यादिक स्थावर-जङ्गमरूप जो कुछ जगत् है सबका साक्षीरूप होकर आत्मतत्त्व स्थित है और दीपकवत् सबको प्रकाशता है। आप सर्व क्रियासे अतीत है पर उसीसे सर्वकार्य सिद्धहोते हैं; सर्व क्रिया संयुक्त भासता है और सर्व बिकल्पसे रहित जड़वत् भी भासता है परन्तु परम चेतन है। आत्मतत्त्व सब चेतनका सार चेतन, निर्विकल्प और परमसूक्ष्म है और अप आपमें स्थिन हो भासता है। अपनेही प्रमादसे रूप, अवलोक और नमस्कार त्रिपुटी भासती है; जब बोधहोता है तब ज्योंकात्यों आत्मा भासता है। नित्य, शुद्ध, निर्मल और परमानन्द रूपके प्रमादसे चेतन चित्तभावको प्राप्तहोता है जैसे साधुभी दुर्जनके संगसे असाधु होजाते हैं तैसेही अनात्माके संगसे यह नीचता को प्राप्त होता है। जैसे सोना दूसरी धातुकी मिलौनीसे खोटा होजाता है और जब शोधाजाता है तब शुद्धता को प्राप्तहोता है तैसेही अनात्मके सङ्गसे यहजीव दुःखी होता है और जब अभ्यास और यत्नकरके अपने शुद्धरूपको पाताहै तब वही रूप होजाता है। जैसे मुखके श्वाससे दर्पणमलीन होजाता है तो उसमें मुखनहीं भासता पर जब मलिनता निवृत्त होतीहै तब शुद्ध होता है और उसमें मुखस्पष्ट भासता है; तैसेही चित्तसंवेदन के प्रमादसे फुरने के कारण जगत् भ्रम भासने लगता है और आत्मस्वरूप नहीं भासता। जब यह जगत् सत्ता फुरने सहित दूर होगी तब आत्म तत्त्व भासेगा और जगत्की असत्यता भासेगी। मुनीश्वर! जब शुद्धसंवित में चेतनताका फुरना निवृत्तहोता है तब जीव अहंता भावको प्राप्तहोता है और अहंकारको प्राप्त होनेसे अविनाशी रूपको विनाशी जानता है। हे मुनीश्वर! स्वरूपसे कुछभी उत्थान होता है तो उससे स्वरूपसे गिरके कष्टपाता है। जैसे पहाड़से गिरा नीचेचला जाता है और चूर्णहोता है तैसेही जीव स्वरूपसे उत्थान होता है और अनात्मामें अभिमान और अहंप्रतीति होताहै तब अनेक दुःखोंको प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! सर्व पदार्थोंका सत्तारूप आत्मा है; उसके अज्ञानसे दैवत्व भावको प्राप्त होता है जब उसका बोधहो तब दैवत भाव निवृत्तहोजावेगा वह आत्माशुद्ध और चिन्मात्रस्वरूप है उसी की सत्तासे देह इन्द्रियादिकभी चेतन होते हैं और अपने अपने बिषयको ग्रहण करते हैं। जैसे सूर्य्यके प्रकाशसे सब जगत्का व्यवहार होता है और प्रकाशबिना कोई व्यवहार नहींहोता, तैसे आत्माकी सत्तासेही देह, इन्द्रियादिकका व्यवहार होताहै और अपने अपने बिषयको ग्रहण करती है। हे मुनीश्वर! प्राणवायुके लिये जो नेत्र में सुख श्यामताहै वह अपने आपमें रूपको ग्रहण करती है, उसका बाहरके बिषयसे संयोग होता है और उस रूपका जिसमें अनुभव होताहै

वह परम चेतन सत्ता है । त्वचा इन्द्रियां और स्पर्शका जब संयोग होताहै तो इन जड़ों का जिससे अनुभव होता है वह साक्षीभूत परम चेतन सत्ताहै और नासिका इन्द्रियका जब गन्धतन्मात्रसे संयोग होताहै तो उसके संयोगमें जो अनुभवसत्ताहै सो परमचेतन है । इसीप्रकार शब्द,स्पर्श,रूप,रस, गन्ध पांचो विषयोंको श्रोत्र,नेत्र, त्वचा, रसना, नासिका पांचो इन्द्रियोंसे मिलकर जाननेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्त्वहै । वह सुख सम्बित् परम चेतन कहाताहै और जो बहिर्मुख फुरकर दृश्य से मिला है वह मलीन चित्त कहाता है । जब वही मलीनरूप अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थितहोताहै तब शुद्धहोताहै । हेमुनीश्वर! यहजगत् सब आत्मस्वरूपहै और शिला घनकी नाईं अद्वैत और सर्व विकारों से रहित है; न उदयहोता है और न अस्त होता है संकल्पके वशसे जीवभाव को प्राप्त होता है और संकल्प के निवृत्त हुये परमात्मारूप होजाता है । हे मुनीश्वर ! आदि चित्तकला जीवरूपी रथपर आरूढ़ हुई है; जीव अहंकार रूपी रथपर आरूढ़ हुआ है; अहंकार बुद्धिरूपी रथपर आरूढ़ है; बुद्धि मनरूपी रथपर आरूढ़ है; मन प्राणरूपी रथपर चढ़ा है और प्राण इन्द्रियां रूपी रथपर चढ़े हैं । इन्द्रियों का रथ देह है और देहका रथ पदार्थ है । जो कर्म इन्द्रियां करती हैं उसी के वश जरामरणरूपी संसार पिंजरे भ्रमती हैं । इसप्रकार यह चक्र चलता है और उसमें प्रमाद करके जीव भटकताहै । हे मुनीश्वर ! यहचक्र आत्माका आभास विरूप है । जैसे स्वप्नपुरमें नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं सो वास्तवमें कुछनहीं हैं; तैसेही यह जगत् वास्तवमें कुछनहीं है और जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रमकरके भासती है, तैसेही यहजगत् भ्रमसे भासता है । हे मुनीश्वर ! मनका रथ प्राणहै; जब प्राणकला फुरनेसे रहित होती है तब मन भी स्थित होजाता है और मनके स्थितहुये मनका मननभी शांत होजाता है । जब प्राणकला फुरती है तब मनका मननभी फुरता है और जब प्राणकला स्थित होती है तब मनन निवृत्त होजाता है । जैसे प्रकाश बिना पदार्थ नहीं भासते और वायु के शांतहुये धूर नहीं उड़ती तैसेही प्राणके फुरनेसे रहित मन शांतहोता है । जैसे जहां पुष्प होते हैं वहां गन्धभी होतीहै और जहां अग्निहै वहां उष्णताभी होती है; तैसेही जहां प्राणस्पन्द होता है वहां मनभी होता है । हृदय में जो नाड़ी है उसमें प्राणस्वतः फुरते हैं और उसीसे मनन होता है । सम्बित् जो स्वच्छरूप है सो जड़ अजड़ सर्वत्र भासतीहै और संवेदन प्राणकलामें फुरतीहै । हेमुनीश्वर ! आत्मसत्ता सर्व्वत्र अनुस्यूत है परन्तु जहां प्राणकला होतीहै वहां भासती है और जहां प्राण कला नहीं ती वहां नहीं भासती । जैसे सूर्य्यका प्रकाश सर्व्वठौरमें होता है परन्तु जहां उज्ज्वलस्थान, जल अथवा दर्प्पण होताहै वहां प्रतिबिम्ब भासता है और ठौर

नहीं भासता; तैसेही आत्मसत्ता सर्व्वत्र है परन्तु जहां प्राणकला पुर्य्यष्टकाहोती है वहां भासती है और ठौर नहीं भासती। जैसे दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब भासता है और शिलामें नहीं भासता तैसेही पुर्य्यष्टका जो मनरूपहै सो सर्व्वका कारण है और अहंकार, बुद्धि, इन्द्रियां उसीके भेद हैं; जो आपही से कल्पित है; सर्व्व दृश्यजाल उसहीसे उदय होताहै और कोई वस्तुनहीं। यह भलीप्रकार अनुभवकियाहै। इससे मनही देहादिकको प्रवर्तता है और परमतत्त्व वस्तु उसहीसे भासतीहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेमनप्राणोक्त-
प्रतिपादनंनामत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३०॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता बिना जीव कन्धवत् होताहै और आत्मसत्ता से चेतनहोकर चेष्टाकरताहै। जैसे चुम्बक पाषाणकी सत्तासे जड़ लोहा चेष्टा करता है, तैसेही सर्वगत आत्माकी सत्तासे जीवफुरता है और आत्मसत्ताभी जीवकला में भासता है और ठौर नहीं भासता। जैसे मुखका प्रतिबिम्ब दर्पण में भासताहै और ठौर नहीं भासता, तैसेही परमात्मा सर्वगत और सर्वशक्तभी है परन्तु जीव कलाही मेंहै। हे मुनीश्वर! शुद्धवास्तव स्वरूपसे जो इस जीवकलाका उत्थान हुआहै और दृश्यकी ओर इससे चित्तभावको प्राप्तहुआ है। जैसे शूद्रकी सङ्गतिकरके ब्राह्मणभी आपको शूद्रमानने लगताहै, तैसेही स्वरूपके प्रमादसे जीवकला आपको चित्तदृश्य-भाव जाननेलगीहै। अज्ञानसे घेराहुआ जीव महादीन भावको प्राप्त होता है; जड़ देहके अभ्याससे कष्टपाताहै और काम,क्रोध,वात,पित्तादिकसे जलताहै। जैसी जैसी भावना होतीहै तैसाहीतैसा कर्मकरताहै और उनकर्मोंकी भावनासे मिलाहुआभटकता है। जैसेरथपर आरूढ़होकर रथीचलताहै तैसेही आत्मामन और प्राण कर्म्मकोदृढ़ करके चलता है। हे मुनीश्वर! चेतनही जड़दृश्यको अङ्गीकार करके जीवत्वभावको प्राप्त होता है और मन प्राणरूपी रथपर चढ़कर पदार्थकी भावनासे नानाप्रकारके भेदको प्राप्त हुयेकी नाईं स्थित होता है। जैसे जलही तरङ्ग भावको प्राप्त होता है, तैसेही चेतनही नानाप्रकार होकर स्थित होता है। निदान यह जीवकला आत्माकी सत्ताको पाकर वृत्तिमें फुरनरूप होती है। जैसे सूर्य्यकी सत्ताको पाकर नेत्ररूपको ग्रहण करते हैं तैसेही परमात्माकी सत्ता पाकर जीववृत्तिमें फुरता है और परमात्मा चित्तत्व में जो स्थित है उससे फुरणरूप जीता है। जैसे घरमें दीपक होता है तब प्रकाशहोता है; दीपकबिना प्रकाशनहीं होता। अपने स्वरूपको भुलाकर जीवदृश्य की ओर लगा है इसकारण आधि व्याधिसे दुःखीहोता है। जैसे जब कमल डोडीके साथ लगताहै तब उसपर भ्रमरे आन स्थित होतेहैं; तैसेही जब जीव दृश्यकी ओर लगता है तब दुःख स्थित होतेहैं और उनसे जीव दीन होजाता है—जैसे जलतरङ्ग

भावको प्राप्त होताहै—और अपनी क्रियासे आप बन्धायमान होता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं को देखकर आपही अबिचारसे भयपाता है तैसेही अपने स्वरूप के प्रमादसे जीव आपही दुःखपाता है और दीनताको प्राप्तहोताहै। हे मुनीश्वर! चिद्-शक्ति सर्व्वगत अपनीआप है। उसकी अभावना करके जीव दीनताको प्राप्त होता है। जैसे सूर्य्य बादलसे घिरजाता है तैसेही मूढ़तासे आत्माका आवरण होता है पर जब प्राणोंका अभ्यासकरे तब जड़ता निवृत्तहो और अपनाआप आत्मा स्मरणहो जिनकी वासना निर्म्मल हुईहै पर हृदयसे दूर नहींहुई तो वह स्थिरहुई एकरूप हो-जाती है और वे जीव जीवन्मुक्तहोकर चिरपर्य्यंत जीते हैं और हृदय कमलमें प्राणों को रोककर शान्तिको प्राप्त होते हैं। जब काष्ठ लोष्टवत् देह गिरपड़ती है तब पुर्य्य-ष्टका आकाशमें लीनहोजातीहै। जैसे आकाशमें पवनलीन होताहै तैसेही उनकामन पुर्य्यष्टका वहांही लीनहोजातीहै। हे मुनीश्वर! जिनकी वासना शुद्धनहीं हुई उनकी पुर्य्यष्टका मृत्युकालमें आकाशमें स्थितहोतीहै और उसके अनन्तर फिर फुर आतीहै तब उस वासनाके अनुसार स्वर्ग नरकको देखनेलगताहै। जब शरीरमन और प्राणसे रहितहोताहै तब शून्यरूपहोजाताहै। जैसे पुरुष घरकोत्यागकर दूरजारहताहै तैसेही शरीरको त्यागकर मन और प्राण और ठौर जा रहते हैं और शरीर शून्यहोजाताहै। हे मुनीश्वर! चिद्सत्ता सर्वत्रहै परन्तु जहां जीवपुर्य्यष्टका होतीहै वहांही भासतीहै और चेतनकाअनुभव होताहै और ठौर नहींहोता। हे मुनीश्वर! जब यह जीव शरीर को त्यागताहै तब पंचतन्मात्राको ग्रहणकरके संगलेजाताहै और जहां इसकीवासना होतीहै वहांही प्राप्तहोताहै। प्रथम इसका अन्तबाहक शरीर होताहै, फिरदृश्यके दृढ़ अभ्याससे स्थूलभावको प्राप्तहोजाताहै और अन्तवाहकता बिस्मरणहोजातीहै। जैसे स्वप्नेमें भ्रमसेस्थूल आकारदेखताहै; तैसेही मोहकरकेमरताहै तब अपनेसाथ स्थूल आकारदेखताहै। फिर स्थूलदेहमें अहंप्रतीतकरताहै और उससेमिलकर क्रियाकरता है तब असत्यको सत्यमानता है और सत्यको असत्यजानताहै। इसप्रकार भ्रमको प्राप्तहोता है। जबसर्वगत चिदंशसे जीव मन होताहै तब जगत्भावको प्राप्तहोता है। जब देहसे पुर्य्यष्टका निकलजाती है तब आकाश में जा लीन होती है और देहफुरने से रहितहोतीहै तब उसको मृतक कहते हैं और अपने स्वरूप शक्तिको विस्मरण करके जर्जरीभावको प्राप्तहोताहै। जब जीव शक्ति हृदय कमलमें मूर्च्छित होतीहै और प्राण रोंकेजाते हैं तब यहमृतकहोता है। एवम् फिर जन्मलेता है और फिर मरजाता है। हे मुनीश्वर! जैसे वृक्षमें पत्र लगते हैं और कालपाकर नष्ट होजाते हैं और फिर नूतन लगते हैं; तैसेही यहजीव शरीरको धारताहै और नष्ट होजाता है; फिर शरीर धारताहै और वहभी नष्ट होजाता है। जो वृक्षके पत्रकीनाईं उपजते और नष्टहोते हैं

उनका शोककरना व्यर्थहै। हे मुनीश्वर! चेतनरूपी समुद्रमें शरीररूपी अनेकतरङ्ग बुद्बुदे उपजते और नष्टहो हैं उनका शोककरना व्यर्थ है। जैसे दर्पणमें जो अनेक पदार्थ का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पणसे भिन्न नहीं होता तैसेही चेतन में अनेक पदार्थ भासते हैं। वह चेतन निर्मल आकाशकी नाईं विस्तीर्ण रूप है, उसमें जो पदार्थ फुरते हैं वे अनन्यरूप हैं और विधिशरीर भी वहीरूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेहपातविचारोनाम एकात्रिंशत्तमस्सर्गः ३१॥

वशिष्ठजी बोले, हे अर्द्धचन्द्रधारी! जो चेतनतत्त्व परमात्मा पुरुष है वह अनंत और एक रूप है उसको यह द्वैत कहां से प्राप्त हुआ? भूत और भविष्यकाल कहां से दृढ़ होरहे हैं? एकमें अनेकता कहां से प्राप्त हुई है? बुद्धिमान् दुःख को कैसे निवृत्त करते हैं और वह कैसे निवृत्त होता है? ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! ब्रह्मचेतन सर्वशक्त है। जब वह एकही अद्वैत होता है तब निर्मलता को प्राप्त होताहै। एकके भाव से द्वैत कहाता है और द्वैतकी अपेक्षासे एककहाता है पर यह दोनों कल्पनामात्र हैं। जब चित्त फुरताहै तब एक और दोकी कल्पना होती है और चित्तस्पंद के अभावहुये दोनोंकी कल्पना मिटजाती है और कारणसे जो कार्य भासता है सो भी एकरूप है। जैसे बीजसे लेकर फल पर्यन्त वृक्षका विस्तार है सो एकहीरूप है और बढ़नाघटना उसमें कल्पना होती है; तैसेही चेतनमें चित्तकल्पना होती है तब जगत्रूप हो भासता है परन्तु उस कालमें भी वहीरूप है। हे मुनीश्वर! वृक्षके समेतभी बीज एक वस्तुरूप है और कुछ नहीं हुआ परन्तु बीज फुरता है तब वृक्ष होभासता है, तैसेही जब शुद्ध चेतन में चेतनकलना फुरती है तब जगत्रूप हो भासता है। हे मुनीश्वर! कारण–कार्य विकार रूप जगत् असम्यक् दृष्टिसे भासता है। जैसे जलमें तरङ्ग भासते हैं सो जलरूप है–जलसे भिन्न नहीं, जैसे ससेके सींग असत् हैं औ जलमें द्वैततरङ्ग कलना असत् है–अज्ञानसे भासती है; तैसेही आत्मामें अज्ञानसे जगत् भासता है। जैसे द्रवता से जलही तरङ्ग रूप हो भासता है तैसेही फुरनेसे आत्मतत्त्व जगत् रूप हो भासता है और द्वैत नहीं। चेतनरूपी बेल फैली है और उसमें पत्र, फूल, और फल एकही रूप हैं। जैसे एक बेल अनेकरूप होभासती है, तैसेही एकही चेतन जो अहं,त्वं,देश,काल आदिकविकार होकरभासता है सो वही रूप है। हे मुनीश्वर! जब सबही चेतन है तबतेरे प्रश्नका अवसर कहां हो? देश, काल, क्रिया,नीति आदिकजो शक्ति पदार्थ हैं सो एकही चिदात्माहै। जैसे जलमें जब द्रवता होती है तब तरङ्गरूप हो भासता है और उसकानाम तरङ्ग होता है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् फुरता है तब अहं, त्वं आदिक नानाप्रकार के होते

हैं पर वह ब्रह्म, शिव, परमात्मा, चेतनसत्ता, द्वैत, अद्वैत आदिक नामोंसे अतीत है; वाणीका विषय नहीं । ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व सदा अपने आप में स्थित है । यह जगत् जो कुछ भासता है सोभी वही चेतन तत्त्व है । जैसे बेल फूल और पत्र होकर फैलती है तैसेही चेतन सर्व्वरूप होकर फैलता है । हे मुनीश्वर ! महाचेतन में जब किंचन होता है तब जीवरूपहोकर स्थित होता है और फिर द्वैतकलनाको देखता है । जैसे स्वप्न में अपना स्वरूप त्यागकर परिच्छिन्न बपुको धारण करता है और द्वैतरूप जगत् देखता है पर जब जागता है तब अपने अद्वैतरूपको देखता है परंतु जागे बिना भी द्वैत कुछ नहीं हुआ; तैसेही यहजाग्रत् जगत्भी कुछ है नहीं भ्रमसे भासता है । जब यह जीव अपने बास्तव स्वरूप की ओर सावधान होताहै तब उसके अभ्यास से वही रूप होजाता है । हे मुनीश्वर ! इसजीवका आदि बपु अन्तबाहक है और सङ्कल्पही उसका रूप है; जब उसमें अहंभावना तीव्र होती है तब वही अधिभौतिक होकर भासता है । जब उसमें सत्यता दृढ़ होजाती है तो उस की भावना से रागद्वेषसे क्षोभायमान होता है । पर जब काकतालीयवत् अकस्मात् से हृदय में विचार उपजता है तब संकलपरूपी आवरण दूरहोजाता है और अपने बास्तव स्वरूपको प्राप्त होता है । जैसे बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पकर भयपाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भय पाता है । हे मुनीश्वर ! यह जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प हृदय में दृढ़होता है तैसाही भासनेलगताहै । प्रत्यक्ष देखो कि, जो पुरुष कुछकार्य करता है तो कर्त्तृत्व भाव उसके हृदय में दृढ़होता है और कहता है कि, यह कार्य मैं न करूं; जब यही संकल्प दृढ़होता है तब उसकार्य्य से आपको अकर्त्ता जानता है; तैसेही दृश्यकी भावना से जगत् सत्य दृढ़होगया है । जबदृश्यका संकल्प निवृत्त होता है और आत्मभावनामें लगता है तबजगत् भ्रमनिवृत्त होजाता है और आत्माही भासता है । हे मुनीश्वर ! परमार्थ से द्वैत कुछ हैही नहीं सब संकल्प रचना है । संकलपसे रचा जो दृश्य है सो संकल्प के अभावसे अभाव होजाताहै । जैसे मनोराज और गन्धर्व्व नगर मनसे रचित होता है और जब संकल्प के अभावहुये से अभाव होता है तब क्लेशकुछ नहीं रहता । हे मुनीश्वर ! जगत् संकल्पकी पुष्टतासे जीव दुःखका भागी होता है । जैसे स्वप्ने में संकल्प करके जीव दुःखी होता है । इससंकल्पमात्रकी इच्छा त्यागने में क्या कृपणता है ? जैसे स्वप्नेमें जो सुख भोगता है सो सुखभी कुछ बस्तु नहीं भ्रममात्र है तैसेही यह सुखभी भ्रममात्र है । हे मुनीश्वर ! संकल्प बिकल्प ने जीवको दीनकिया है । जब संकल्प बिकल्पको त्याग करता है तबचित्त अचित्त होजाता है और ऊंचेपद में विराजमान होता है । जिसपुरुषने विवेकरूपी वायुसे

संकल्परूपी मेघको दूरकिया है वह परमनिर्मलताको प्राप्तहोता है। जैसे शरत्काल का आकाशनिर्म्मल होता है तैसेही संकल्प बिकल्परूपी मलसे रहित जीव उज्ज्वल भावको प्राप्तहोता है। संकल्प के त्यागेसे जो शेषरहता है सो सत्तामात्र परमानन्द तेरा स्वरूप है। हे मुनीश्वर ! आत्मा सर्व्वशक्तिरूप है; जैसी भावना होतीहै तैसाही उसे अपनी भावनासे देखता है इससे सब संकल्पमात्र है; भ्रमसे उदय हुआहै और संकल्पकेलीनहुये सब लीनहोजाताहै। हे मुनीश्वर ! संकल्परूपी लकड़ी और तृष्णारूपी घृतसे जन्मरूपी अग्निको यहजीव बढ़ाता है और फिर उससे अन्त कदाचित् नहीं होता। जब असंकल्परूपी वायु और जलमें इसका अभाव करे तब शांत होजाता है। जैसे दीपक निर्व्वाण होजाता है तैसेही जन्मरूपी अग्निका अभाव होजाताहै और संकल्परूपी वायुसे तृणकीनाईं भ्रमता है। हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी कंजकी बेलको जीव संकल्परूपी जलसे सींचता है; जब असंकल्प रूपी शोषता और बिचाररूपी खड्गसे काटे तब उसका अभावहोताहै। जो अभावमात्र है सो आभासके क्षयहुये अभाव होजाता है। जैसे गन्धर्व्वनगर होताहै तैसेही यहजगत् असम्यक् ज्ञानसे भासता है और सम्यक् ज्ञानसे लीन हे जाता है। जैसे कोई राजा स्वप्नेमें अपनेको रङ्कदेखे और पूर्व्वका स्वरूप बिस्मरण करके दीनताको प्राप्तहो पर जब पूर्व्वका स्वरूप स्मरणआवे तब आपको राजाजाने और दुःख मिट जावे; तैसेही जीवको जब अपने पूर्व्वका वास्तव स्वरूप विस्मरण होजाता है तब आपको परिच्छिन्न दीन और दुःखी जानता है पर जब स्वरूपका ज्ञान होता है तब सब दुःखका अभाव होजाता है और जैसे शरत्काल का आकाश निर्म्मल होता है तैसेही निर्म्मल होजाता है। जैसे वर्षाकाल के मेघगयेसे आकाश निर्म्मल होता है तैसेही अज्ञानरूपी मलसे रहित जीव निर्म्मल होकर शुद्धपदको प्राप्त होता है। जो ऐसी युक्तिसे भावना करताहै कि,मैं एकआत्मा और द्वैतसे रहितहूं तो वहीहोता है और द्वैतका अभाव होजाताहै और उत्तमपद ब्रह्मदेव पूज्य, पूजक और पूजा; किञ्चित् निष्किंचनकी नाईं चित्त एकरूप होजाताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेव प्रतिपादनन्नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३२॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! वह देव निरन्तर स्थित है; द्वैत और एक पदसे रहितहै और द्वैत और एक संयुक्तभी वहीहै। संकल्पसे मिलकर चेतनरूप संसारको प्राप्त हुआहै और जो संकल्प मलसे रहितहै वह संसारसे रहितहै। जबऐसे जानताहै कि, 'मैं हूं' इसी संकल्पसे बन्धवान् होताहै और जबइसके भावसे मुक्तहोता है तब सुख दुःखका अभाव होजाताहै और शुद्धनिरंजन एकसत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होताहै।

इसीका नाममुक्तिहै । आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होताहै । वशिष्ठजी बोले, हेप्रभो ! जब मनमें मनक्षीण होताहै और इन्द्रियां मनमें लीन होतीहैं वह द्वितीय और तृतीय पद किसकीनाई शेष रहताहै ? जो महासत्ता आत्मसत्ता सर्व्वका लीन करताहै सो किस की नाईंहै ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! जब मनसे मनको जिसके अंग इन्द्रियाँहैं विचार करके छेदता है अथवा उपासना करके आत्मबोध प्राप्त होता है तब द्वैतएककी कल्पना नष्टहोजाती है और जगत्जालकी सत्यता नष्टहोजाती है उसके पीछे जो शेषरहताहै सो आत्मतत्त्व प्रकाशताहै । जैसेभूने बीजसे अंकुरनहीं उपजता तैसेही जबमन उपशम होताहै तब उसमें जगत् सत्ताका अभावहोजाताहै और चेतन सत्ता चित्त सत्ताको भक्षण करलेती है । जब मनरूपी मेघकी सत्ता नष्टहोती है तब शरत्कालके आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है । जब चित्तकी चपलता मिटजातीहै तब परमनिर्मल पावन चिन्मात्रतत्त्व प्राप्त होताहै; एकद्वैत—औरभाव—अभावरूपी संसार कल्पना मिटजाती है और सम सत्तारूप तत्त्व जो सर्व्वव्यापक और संसार समुद्रसे पार करनेवाला प्राप्तहोताहै । तब सुषुप्तकी नाईं निर्भय बोध होजाताहै और शांतिरूप आत्माको पाकर शांतरूप होजाताहै । हे मुनीश्वर ! मनकी क्षीणताका यह प्रथमपद तुमसे कहाहै अब द्वितीयपद सुनो । जब चित्तशक्ति मनके मननसे मुक्तहोतीहै तब चन्द्रमाके प्रकाशवत् शीतल होजाता है; आकाशवत् विस्तृतरूप अपना आप भासताहै और घन सुषुप्तरूप होजाताहै । जैसे पत्थरकी शिला पोलसे रहित होतीहै तैसेही वह दृश्यसे रहित घन सुषुप्त उसका रूपहोताहै और नमक के सदृश रसमयब्रह्म होजाताहै । जैसे आकाशमें शब्द लीन होजाताहै तैसेही वहचित्त आत्मा मेंलीनहोजाताहैऔर जैसेबायु चलनेसे रहित अचल होताहै तैसेही चित्त अचल होजाताहै । जैसे गन्धपुष्पमें स्थितहोती है तैसेही चित्त वृत्ति आत्मतत्त्वमें विश्रामको पातीहै ! वह आत्मसत्ता न जड़है, न चेतनहै;सर्व्व कलनासे रहित अचैत्य चिन्मात्र अंकुररूप सब सत्ताओंको धारण करनेवाली और देश कालके परिच्छेदसे रहितहै । जिसको वहप्राप्त होतीहै उसको तुरीयापदभी कहते हैं । वह सर्व्वदुःख कलंकसे रहित पदहै । उससत्ताको पाकर साक्षीकीनाईं स्थितहोता और सर्व्वत्र,सर्व्वदा सम स्थित होताहै । सर्व्वप्रकाश वही है और शांतिरूपहै । उस आत्मसत्ता का जिसको आत्मतत्त्वसे अनुभव होता है उसको द्वितीयपद प्राप्तहोता है । हे मुनीश्वर ! यह द्वितीयपदभी तुमसे कहा अब तृतीयपदसुन । जब आत्मतत्त्वमें वृत्तिका अत्यन्त परिणाम होता है तब ब्रह्म, आत्मा आदिक नामोंकी भी निवृत्ति होजाती है; भाव अभावकी कलनाकोई नहीं फुरती और स्थानकीनाईं अचल वृत्तिहोकर परमशांत और निष्कलंक सबसे उल्लंघित तुरीयातीत पदको प्राप्तहोता है । जो सबका अन्त और सबका

आधाररूप एक,अद्वैत, नित्य, चिन्मात्रतत्त्व है और तुरीयासे भी आगे है जिसमें बाणीकी गम नहीं। हे मुनीश्वर! सर्व्व कल्पनासे रहित अतीतपद जो मैंने तुमसे कहा है उसमें स्थितहो। वही सनातन देव है और विश्वभी वही रूप है। वही तत्त्व संवेदन के बशसे ऐसारूप होकर भासता है पर बास्तवमें न कुछ प्रवृत्त है और न कुछ निवृत्त है; आकाश[illegible]प समसत्ता अद्वैत तत्त्व अपने आपमें स्थित और आकाशवत् निर्म्मल है और उसमें द्वैतभ्रमका अभाव है। एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपने आपमें स्थितहै उस[illegible] और जगत्में रंचकभी भेदनहीं। जैसे जल और तरङ्ग में कुछ भेदनहीं होता [illegible]सेही ब्रह्म और जगत्में कुछभेद नहीं। सम सत्यसत्ता शिव शान्तिरूप और सर्व्वबाणीके विलाससे अतीत है। इसकी चतुर्मात्रा है और तुरीया परमशान्त है। इतना कह बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इसप्रकार जब ईश्वरने कहा और परमशांतिरूप आत्मतत्त्वका प्रसङ्ग वशिष्ठजीने सुना तब दोनोंकी वृत्ति आत्मतत्त्वमें स्थित होगई और तूष्णी होगये—मानो चित्रलिखे हैं—और एकमुहूर्त्त पर्य्यंत चित्तकीवृत्ति ऐसेही रही। फिर ईश्वर जागे॥

इतिश्रीयोग[illegible]ाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेपरमेश्वरोपदेशोनामत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३३॥

बाल्मीकिजी बोले कि, एकमुहूर्त्त उपरान्त सदाशिव[illegible]ने तीनोंनेत्र खोले तो जैसे पृथ्वीरूपी डब्बेसे सूर्य्य निकले तैसेही उनके नेत्र निकले और जैसे द्वादशसूर्य्य का प्रकाश इकट्ठाहो तैसेही उनका प्रकाशहुआ। उन्होंने देखा कि, वशिष्ठजी के नेत्र मूंदेहुये हैं, तब कहा कि, हे मुनीश्वर! जागो अबनेत्र क्यों मूंदेहो? जो कुछ देखनाथा सो तो तुमने देखा अब समाधि लगानेका श्रम किसनिमित्त करते हो? तुमसरीखे तत्त्ववेत्ताओं को किसी में हेयोपादेय नहीं होता। तुम जैसे बुद्धिमान् हो तैसेही आत्मदर्शीभी हो। जो कुछ पानेयोग्यथा सोतुमनेपायाहै और जानने योग्य जानाहै। बालकों के बोधके निमित्त जो तुमने मुझसे पूछा था सो मैंने कहाहै अबतुमकोतूष्णी रहनेसे क्याप्रयोजनहै? हेरामजी! इसप्रकार कहकर सदाशिवने मेरेभीतर प्रवेशकरके चित्तकी वृत्तिसेजगाया और जब मैं जागा तब फिर ईश्वरने कहा, हे वशिष्ठजी! इस शरीरकी क्रियाका कारण प्राणस्पन्द है। प्राणोंसेही शरीरकी चेष्टा होती है और उसमें आत्मा उदासीनकी नाईं स्थित है वह न कुछ करता है, न भोगता है। जब जीवको अपने स्वरूपका प्रमाद होता है तब देहमें अभिमान होता है और क्रिया करता और भोगता आपको मानता है इससे दुःखपाता है और इसलोकपरलोक में भटकता है। जब आत्मबिचार उपजता है तब आत्माका अभ्यास होता है; देह अभिमान मिटजाता है और दुःखसे मुक्त होताहै। शरीरके नष्टहुये आत्माका नाश

नहींहोता । शरीर चेतनहोकर प्राणोंसे फुरताहै; जबबीचसे प्राणनिकलजाते हैं तब शरीर मूकजड़रूप होजाताहै । चलाने और पवित्र करनेवाली जो संवित् शक्तिहै वह आकाशसेभी सूक्ष्महै । वहशरीरकेनाशहुये नाशनहींहोती और जोनाश नहींहोती तो नाशका भ्रमकैसेहो ? हे मुनीश्वर ! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्तासर्वत्रहै परन्तुवहीं भासतीहै जहां सात्त्विकगुणकाअंश मनहोता है और प्राणहोतेहैं । मन और प्राणोंसहितदेह में भासती है । जैसे निर्मलदर्पण में मुखका प्रतिबिम्ब भासता है और आदर्श मलीन होता है तब मुखविद्यमानभी होता है परन्तु नहीं भासता है; तैसेही मन और प्राण जब देहमें होते हैं तबआत्माभासता है और जब मन और प्राण निकलजाते हैं तब मलीन शरीरमें आत्मस॒ा नहीं भासती । हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासती नहीं जब उसका अभ्यास हो तब सर्वात्मरूप होकर भासती है । सर्वकल्पनासे रहित शुद्ध शिवरूप सर्वकी सत्तारूप वहै है । विष्णु, शिव, ब्रह्मा, देवता, अग्नि, बायु, चन्द्रमा, सूर्य्यादिक सब जगत्का आदिबपु वही है । वह एक देव शुद्धचेतनरूप सर्व देवोंका देवहै, सब उसके नौकर हैं और सब उसके चित्त उल्लास हैं । हे मुनीश्वर ! इस जगत्में ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र जो बड़े हैं सो उसही तत्त्व से प्रकट हुये हैं । जैसे अग्निसे चिनगारे उपजते हैं और समुद्रसे तरङ्ग प्रकट होतेहैं तैसेही हम उससे प्रकटहुये हैं । यह अविद्याभी उसहीसे प्रकटहो अनेकशाखाओं को प्राप्त हुईहै । देव, अदेव, वेद और वेदके अर्थ और जीव सब उस अविद्याकी जटा हैं और अनन्तभावको प्राप्त हुईहैं जो फिर फिर उपजती और मिटतीहै । देशकाल, पृथिव्यादिक भी सब उसीसे उत्पन्नहैं और सर्वसत्तारूप वही आत्मादेवहै । हमजो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रहैं सो हमारा परमपिता आत्माही है; सर्वका मूलबीज वही देवहै और सब उससे उपजे हैं । जैसे वृक्षसेपत्र उपजते हैं तैसेही सब उसीमहादेवसे उपजतेहैं; सबका अनुभवकर्त्ता वही है और सबको सत्त देनेवाला और सब प्रकाशका प्रकाशवहीहै । वह तत्त्ववेत्ताओंसे पूजनेयोग्यहै, सबमें प्रत्यक्षहै और सर्वदा सर्वप्रकार सबमें उदितआकार चेतन अनुभवरूपहै । उसके आवाहनमें मन्त्र, आसन आदिक सामग्री न चाहिये क्योंकि; वहसर्वदा अनुभवरूपसे प्रत्यक्षहै औरसर्वप्रकार सर्वठौरमें विद्यमानहै । जहां जहां उसके पानेका यत्नकरिये वहां वहां आगेही विद्यमानहै । वह शिवतत्त्व आदिहीसे सिद्धहै और मन बाणीमें तीनोंरूप वहीहो भासताहै । सब की आदि और पूज्य और नमस्कार करनेयोग्य है और जानने योग्यभी वही है । हे मुनीश्वर ! ऐसा जो आत्मतत्त्व जरा, मृत्यु शोक और भयके काटनेवाला है उसको जीव आपसे आपही देखता है और उसके साक्षात्कार हुये चित्त भूनेबीज की नाईं होजाता है फिर नहीं उगता । वह शिवतत्त्वजीवका भी जीव है और

सर्वपदका पद वही है। अनुभवरूप आत्मा परमपद है; भिन्नदृष्टि का त्याग करो॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेवनिर्णयो
नामचतुस्त्रिन्शतितमस्सर्ग्गः ३४॥
ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह चिद्रूप तत्त्वसबके भीतर स्थित है। अनुभव मय शुद्ध देवईश्वर और सब बीजका बीजवहीहै। सर्व सारोंका सार; कर्मोंका कर्म और धर्मोंकाधर्म चेतनधातु निर्मलरूप सबकारणोंका कारण और आपअपना कारण है। वह सर्वभाव अभावका प्रकाशक और सर्व चेतनका चेतन परम प्रकाशरूप है। भौतिक प्रकाशसे रहित और अवलौकिक प्रकाशक सबजीवोंका जीव वही है। चेतन घन निर्मल आत्माअस्ति तन्मयरूप है और सत् असत्से रहित महासत् रूप है। सर्वसत्ताकी सत्तावही है। वही चिन्मात्रतत्त्व नानारूप होरहा है। जैसे एकही आत्मसत्ता स्वप्नमें आकाश, कन्ध, पहाड़ आदिक होकर भासती है तैसेही नाना रङ्ग रञ्जना होकर वही भासता है।जैसेसूर्य्यकी किरणोंमें मरुथलकी नदी अनेक कोट किरणों से अनेकतरङ्ग संयुक्त होभासती है तैसेही यहजगत् उसमें भासता है। हे मुनीश्वर! उसीआत्मतत्त्वका यहआभास प्रकाश है; उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे अग्निसे उष्णता भिन्न नहीं–वहीरूप है; तैसेही आत्मासे जगत्कुछ भिन्ननहीं–वही स्वरूप है। सुमेरुभी उसके आगे परमाणुरूप है; संपूर्णकालउसका एक निमेषरूप है;कल्पभी निमेष और उन्मेषवत् उदय और लयहोतेहैं और सप्तसमुद्रसंयुक्तपृथ्वी उसके रोमके अग्रवत् तुच्छहै। ऐसावह देवहै। वह संसार रचनाको नहींकरता और कर्त्तृत्व भाव को प्राप्तहोता है। बड़े कर्मोंको करता भासता है तौभी कुछनहीं करता; द्रव्यरूप दृष्टिआता है तौभीद्रव्यसे रहित है निर्द्रव्य है तौभी द्रव्यवान् है; देहवान् नहीं तौभी देहवान् है और बड़ा देहवान् है तौभी अदेह है। सर्व्वका सत्तारूप वही देवहै। हंठी,मोलि, घले, सतचल, पिंढली, मांगले, वेल,विलिमिला, लोबलाग, युगुल, समस इत्यादि वाक्य निरर्थक हैं; इनकाअर्थ कुछ नहीं तौभी उसदेवसे सिद्धहोते हैं। ऐसाकुछ नहीं जो उसदेव में असत् नहीं और ऐसाभी कुछनहीं जो उसदेवसे सत्नहीं। हे मुनीश्वर! जिससे यहसर्व्वहै; जो यहसर्व्व है और जो सर्व्व में नित्य है उस सर्वात्माको मेरा नमस्कार है॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहेश्वरवर्णनंनामपंचात्रिंशत्तमस्सर्गः ३५॥
ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! शब्दकी सत्तारूप वही है; सर्व्व सत्तारूप रत्नोंका डब्बा वही है और वही तत्त्व चमत्कार करके फुरता है। जैसे जल से तरङ्ग, फेन, बुदबुदे आदिक आकारहोकरके फुरता है तैसेही वह देव नानाप्रकारके आकार होकर फुरता है। वही फूल और गुच्छे रूप होकर स्थित होताहै और वही उनमें सुगन्धित होता

है। घ्राणइन्द्रियमें स्थितहोकर आपही उसे सूंघता है; आपही त्वचाइन्द्रिय होता है; आपही पवन होकर चलता है; आपही स्पर्शसे ग्रहणकरता है; आपही जलरूप होताहै, आपही वायुहोकर सुखाता है; आपही श्रवणेन्द्रिय और आपही शब्दहोकर ग्रहण करता है। इसीप्रकार जिह्वात्वचा नासिका कर्ण और नेत्र होकर आपही स्पर्श,रूप, रस, गन्ध, और शब्दको ग्रहण करता है। उसीने सब पदार्थ रचे हैं और उसीने नीति रची है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव और पंचम ईश्वर सदाशिव पर्य्यंत वही देव इसप्रकार हुआ है और आपही साक्षीवत् स्थित होता है। जैसे दीपकके प्रकाशसे मन्दिरकी सर्व्वक्रिया होतीहैं तैसेही संसाररूपी मण्डपकी सब क्रिया उसीं साक्षीसे होती हैं उसमें उसकीशक्ति नृत्यकरती है और आपसाक्षीरूप होकर देखताहै वशिष्ठजी बोले कि,फिर मैंने पूंछा, हे जगत्नाथ! शिवकीशक्ति क्याहै, कैसे स्थित है; देवको साक्षात्कैसे है और उसकीनृत्य कैसेहोती है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व स्वभावसे अचल और शान्तरूप है। शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्र रूप और निराकार है। उसकी आसक्ति इच्छा और काल,नीति, मोह, ज्ञान,क्रिया-कर्त्तादि शक्ति हैं। उन शक्तियोंका अन्तनहीं। वह अनन्तरूप चिन्मात्र देव है। यह जो मैं तुमसे शक्तिकही है सोभी शिवरूप है भिन्ननहीं शिव और शक्ति एक रूप है और बहुत भासती है। जैसे पदार्थोंमें अर्थ शक्ति और आत्मा में साक्षीशक्ति कल्पित है तैसेही कालशक्ति नृत्यककी नाईं ब्रह्माण्डरूपी नृत्यमंडल में नृत्यकरतीहै और क्रियाशक्तिभी कर्तृत्वसे नृत्यकरतीहै सो शक्ति कहाती है। जैसे आदिनीति हुई है ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यंत तैसेही स्थित है—अन्यथा नहीं होती। हे मुनीश्वर! यह सम्पूर्ण जगत नृत्य करताहै। संसाररूपी नटिनीके प्रेरनेवाली नीतिहै और परमेश्वर परमात्मा साक्षीरूपहै। वह सदाउदित प्रकाशरूपहै और एकरसस्थितहै नीति आदिक शक्तिभी उससे भिन्ननहीं वे वहीरूप हैं—इससे सर्व देवही जानो द्वैतनहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेनीति
नृत्यवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह एक देव परमात्मा सन्तों से पूजनेयोग्य है। वह चिन्मात्र अनुभवआत्मा घटपटादिक सर्व्व में स्थित है और ब्रह्मा इन्द्रादिक देवता और जीव सबके भीतर बाहर भी वही स्थित है। उस सर्व्वात्मा शांतरूप देवका पूजन दो प्रकारसे होता है। उस इष्टदेवका पूजन ध्यान है और ध्यानही पूजन है। जहां जहां मनजावे वहां वहां छलछिद्ररूप आत्माको ध्यानकरो। सबका प्रकाशक आत्माही है; चिद्रूप अनुभवसे भीतर स्थित है और अहंतासे सिद्ध है। वही सबका साररूप है और सबका आश्रयरूप है। उसका जो विराटरूप है सो सुनो। बाहर

अनन्तपारावारसे रहित है; परमाकाश उसकी ग्रीवाहै; अनन्त पाताल उसके चरण हैं; अनन्तदिशा उसकी भुजाहैं; सर्बप्रकाश उसके शस्त्र हैं; हृदयकोश कोणमें स्थित है और ब्रह्मांड समूहोंको परंपरासे प्रकाशता है। परमाकाशपार अपाररूपहै, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि, देवता और जीव उसकी रोमावली हैं, त्रिलोकीमें जो देहरूपी यंत्र हैं उनमें इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्यापा है जिससे सबचेष्टा करतेहैं। वहदेव एकही है और अनन्त है। सत्तामात्र उसका स्वरूपहै, सबजगत्जाल उसका निवृत्त है, काल उसका द्वारपाल है और पर्वतादिक ब्रह्मांड जगत् उसकी देहके किसीकोणमें स्थित है। उस देवकी चिन्तनाकरो। उसके सहस्रचरण हैं और सहस्रही नेत्र, शीश और भुजा और भुजाओंके विभूषण हैं। सर्बत्र उसकी नासिका इन्द्रिय है; सर्बत्र रसना इन्द्रिय है, सर्बत्र भावना इन्द्रिय है और सर्वओर मनहै पर सर्व मनन कलासे अतीत है। सर्व ओर वहीशिवरूप सर्व्वदा सर्व्वका कर्त्ताहै; सर्व संकल्पोंके अर्थका फल दायक है और सर्वभूतके भीतर स्थित और सर्व साधनका सिद्धकरता है। ऐसा देव सबमें सबप्रकार और सर्बदाकाल स्थित है। उसीदेवकी चिन्तनाकरो और उसीदेवके ध्यानमें सावधानरहो। सदा उसहीके आकाररहना उसदेवकाबाहरीपूजन है। अब भीतरका पूजनसुनो। हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! सम्वित्मात्र जो देवहै सो सदा अनुभवसे प्रकाशता है। उसकापूजन दीपक करके नहींहोता और न धूप, पुष्प, दान, लेप और केशरिसे होता है। अर्घ्य, पाद्यादिक जो पूजाकीसामग्रीहैं उनसे भी उस देवका पूजननहींहोता। उसका पूजनतो क्लेशबिना नित्यही होताहै। हे मुनीश्वर! एक अमृत रूपी जो बोधहै उससे उसदेवका सजातीय प्रतीत ध्यानकरना उसकापरम पूजन है। हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र देव अनुभवरूप है उसका सर्व्वदाकाल और सर्बप्रकार पूजनकरो; अर्थात् देखते, स्पर्श करते, सूंघते, सुनते, बोलते, देते, लेते, चलते, बैठते औरउससे लेकर जो कुछ क्रिया हैं सबप्रत्यक्ष चेतन साक्षीमें अर्पणकरो और उसीके परायणहो। इसप्रकार आत्मदेवका पूजनकरो। हे मुनीश्वर! आत्मदेवका ध्यानकरनाही धूपदीप है और सर्व सामग्री पूजनकी यहीहैं। ध्यानही उसदेवको प्रसन्नकरताहै और उससे परमानन्द प्राप्तहोता है और किसीप्रकारसे उसदेवकी प्राप्तिनहींहोती। हे मुनीश्वर! मूढ़भी इसप्रकार ध्यानसे उसईश्वरकी पूजाकरे तो त्रयोदश निमेषमें जगत् उदानकेफलकोपाताहै और सत्निमेषकेध्यानसे प्रभुकोपूजे तो अश्वमेधयज्ञकेफलको पावे और केवल ध्यान से आत्माका एकघड़ी पर्यन्त पूजनकरे तो राजसूययज्ञ किये के फलको पावे। जोदोप्रहर पर्यन्त ध्यान करे तो लक्षराजस यज्ञके फलकोपावे और जो दिन पर्यंत ध्यानकरे तो असंख्य फलपावे। हे मुनीश्वर! यहपरम योग है; यही परम क्रिया है और यही परम प्रयोजन है। हे मुनीश्वर! दोनों पूजा मैंने

तुमसे कही । जिसको ये परमपूजा प्राप्त होती हैं वह परमपदको प्राप्त होता है; उसको सब देवता नमस्कार करते हैं और सबकरके वह पुरुष सुमेरुवत् पूजने योग्य होता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेअन्तर्वाह्य पूजावर्णनंनामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ३७ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! अब तुम अभ्यन्तरका पूजन सुनो जो सर्वत्र पवित्र करनेवाले कोभी पवित्रकरता है और सब तम और अज्ञानका नाशकरता है । वह आत्मपूजन मैं तुमसे कहताहूं जो सर्वप्रकार से सर्वदाकाल में उसदेवका पूजन होता है और व्यवधान कभी नहीं पड़ता; चलते, बैठते, जागते, सोते सर्वव्यवहार में नित्यध्यानमें रहता है । हे मुनीश्वर ! इससंसार में संवितरूप चिन्मात्र नित्य स्थितहै उसका पूजन करो । जो सर्वप्रत्ययका कर्त्ता और सदा अनुभवसे प्रकाशताहै उसका आपसे आप पूजन करो । उठते, चलते, खाते, पीते जो कुछ बाहर के अर्थ त्याग, ग्रहण और भोग हैं सबको करतेभी उस देवकी पूजाकरो । हे मुनीश्वर ! शरीर में शिवलिङ्ग चिह्नसे रहित बोधरूप देव है, यथाप्राप्त में समरहना उसदेवका पूजन है । यथाप्राप्तिके समभावमें स्नानकरके शुद्धहोकर बोधरूप लिङ्गका पूजनकरो । जो कुछ प्राप्तहो उसमें रागद्वेषसे रहितहोना और सर्वदा साक्षीरूप अनुभवमें स्थितरहना यही उसका पूजनहै । हे मुनीश्वर ! सूर्य्यके भुवन आकाशमें यही सूर्य्यहोकर प्रकाशताहै और चन्द्रमा के भुवनमें चन्द्रमाहोकर स्थितहोताहै । इनसे आदिलेकर जो पदार्थके समूहहैं जैसी जैसी भावनासे उनमें फुरनाहुआहै वहीरूपहोकर वह देवस्थितहै । हे मुनीश्वर ! जो नित्य, शुद्ध, बोधरूप और अद्वैतहै उसको देखना और किसीमें वृत्ति न लगाना यही उस देवका पूजनहै । प्राण अपानरूपी रथपर आरूढ़हुआ जो हृदय में स्थितहै उसका ज्ञानहीपूजनहै । वहीसब कर्म्मकर्त्ता है; सब भोगोंका भोक्ता और सर्वशब्दकास्मरण करनेवाला और भागवतरूपहै और सबकी भावना करनेवाला परमप्रकाशरूप है । ऐसा जो संवित तत्त्वहै उसको सर्वज्ञ जानकर चिन्तनाकरना वहीउसका पूजनहै । वह देव सकल निष्कल देहमेंस्थितहै तौभी आकाशवत् निर्मल है । वह जाताभी है और नहीं जाता । प्राणरूपी आलयमें प्रकाशताहै, हृदय, कंठ, तालु, जिह्वा, नासिका और पीठमें व्यापक है शब्दआदिक विषयको कर्त्ता और मनको प्रेरताहै । जैसे तिलमें तेल आश्रयभूत है तैसेही आत्मा सबमें आश्रयभूत है । वह कलनारूपी कलङ्कसे रहितहै और कलनागणसे संयुक्तभीहै । सम्पूर्ण देहोंमें वही एकदेव व्यापरहाहै परन्तु प्रत्यक्ष हृदयमें जो होताहै सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाश रूपहै और कलनारूपी कलङ्कसे रहित सदा प्रत्यक्षहै और अपने आपहीसे अनुभव

होताहै। सर्बदा सर्बपदार्थोंका प्रकाशक प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व जो अपने आपमें स्थितहै सो अपने फुरनेसे शीघ्रही द्वैतकीनाईं होजाताहै। हे मुनीश्वर! जो कुछ साकार रूप जगत् दृष्ट आता है सो सब विराट् आत्मा है। इससे आपको विराट्की भावना करो कि, हाथ, पांव, नख, केश यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड मेरादेह है; मैंहीं प्रकाशरूप एक देवहूं, नीति इच्छादिक मेरीशक्ति है और सब मेरीउपासना करते हैं। जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्त्तारकी सेवाकरती है तैसेही शक्ति मेरी उपासना करतीहै; मनमेरा द्वारपाल है जो त्रिलोकीका निवेदन करनेवाला है; चिन्तन मेरी आनेवाली प्रतिहारीहै, नानाप्रकार के ज्ञान मेरे अङ्गके भूषणहैं; कर्मइन्द्रियां मेरेद्वारहैं और ज्ञानइन्द्रियां मेरेगणहैं। ऐसा मैं एक अनन्त आत्मा अखण्डरूप भेदसे रहित अपने आपमें स्थित सब में परिपूर्णहूं। हे मुनीश्वर! इसी भावनासे जो एकदेवकी पूजाकरता है वह परमात्मदेवको प्राप्तहोता है। दीनता आदिक उसके क्लेश सबनष्ट होजाते हैं, अनिष्ट की प्राप्तिमें उसे शोकनहीं उपजता और इष्टकी प्राप्ति में हर्षनहीं उपजता; न तोषवान् होताहै और न कोपवान् होताहै; विषयकी प्राप्तिसे न तृप्तमानताहै और न इनके वियोगसे खेदमानताहै; और न अप्राप्तकी बांछाकरताहै; न प्राप्तके त्यागकी इच्छाकरताहै; सर्बपदार्थमें समभाव रहताहै। ऐसा पुरुषउसदेवका परमउपासक है। ग्रहण त्यागसे रहित सबमें तुल्यरहना और भेदभाव को प्राप्त न होना उसदेव का उत्तम अर्चनहै। हे मुनीश्वर! चेतन तत्त्व देव मैंने तुमसेकहाहै जो इसीदेहमें स्थित है। जो बस्तुप्राप्तहो उससे अर्चन करके उसीके आगेरखना; सबका साक्षी आत्माको देखना और किसीसे खेदवान् न होना और उसमें अहंप्रतीत रखकर भिन्नदृश्यकी भावना न करना; यही उसदेवकी अर्चना है। हे मुनीश्वर! जोकुछ प्राप्तहो उसमें यत्न बिना तुल्यरहना जोभक्ष्य, लेह्य, चोष्य भोजन प्राप्तहो उसेदेवके आगे रखके ग्रहण त्यागकी बुद्धि उसमें न करना, यह उसदेवका पूजन है। सब पदार्थोंकी प्राप्तिमें देवकी पूजाकरने से अनिष्टभी इष्टहोजाता है। मृत्युआवे तो देवकीपूजा, जन्मआवे तब देव कीपूजा, दरिद्रआवे तब देवकीपूजा, राग प्राप्तहो तो देवकीपूजा और नानाप्रकारकी बिचित्र चेष्टाकरनी सो सब उसदेवके आगेपुष्प हैं; राग द्वेषमें समरहनाही उसदेवकी पूजा है। सन्तोंके हृदयकी रहनेवाली जो मैत्री है कि, सम्पूर्ण विश्वका मित्रहोना उससेभी उसदेवका पूजन है और भोग, त्याग, रागसे जो कुछ प्राप्तहो उससे उस देवका पूजनकरो। जो नष्ट हुआ सो हुआ और जो प्राप्तहुआ सो हुआ दोनों में निर्विकार रहना इससे उस देवका अर्चनकरो। ये भोग आपातरमणीय हैं, होते भी और नष्टभी होजाते हैं इनकी इच्छा न करना; सदा सन्तुष्ट रहना जैसे आनि प्राप्तहो उसमें राग द्वेषसे रहित होना सो उस देवका अर्चन है। हे मुनी-

श्वर! जो कुछ प्रारब्धसे प्राप्तहो उससे आत्माका अर्चनकरो और इच्छा अनिच्छा को त्यागकर जो प्राप्तहो उससे उसदेवका अर्चनकरो। हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् न किसीकी इच्छा करताहै और न त्याग करता है जो अनिच्छित प्राप्तहो उसको भोगता है। जैसे समुद्रमें नदी प्राप्त होती हैं और वह उससे न कुछहर्ष मानता है न शोककरता है तैसेही ज्ञानवान् इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में राग द्वेषसे रहित यथा प्राप्तको भोगताहै सोही उसदेवका पूजन है। देश, काल, क्रिया, शुभ अथवा अशुभ प्राप्तहो उसमें संसरण बिकारको प्राप्त न होना उसदेवकी अर्चनाहै। यदि द्रव्य अनर्थ रूपहो तौभी समरससे मिलाहुआ अमृत होजाता है। जैसे षट्रस स्वाद शक्करसे मिले हुये मधुर होजाते हैं तैसेही अनर्थरूपी रस समरससे मिलेहुये अमृत होजाते हैं, खेदनहीं करते और अनन्तरूप होजाते हैं। चन्द्रमाकीनाईं सबभ वना अमृतमय होजाती है। जैसे आकाश निर्लेप है तैसेही समताभाव करके चित्त रागद्वेषसे रहित निर्मल होजाताहै। द्रष्टाको दृश्यसे मिला न देखना साक्षीरूप रहनाही देवकीअर्चना है। जैसे पत्थरकी शिला निस्पन्द होतीहै तैसेही बिकल्पसे रहित चित्त अचलहोता है; सोही देवकी अर्चना है। हे मुनीश्वर! भीतरसे आकाशवत् असङ्गरहना और बाहरसे प्रकृति आचारमें रहना;किसीकासंग हृदयमें स्पर्श न करना और सदा सम-भाव विज्ञानसे पूर्णरहनाही उस देवकी उपासनाहोतीहै।जिसके हृदयरूपी आकाशसे अज्ञानरूपी मेघनष्ट होगया है उसको स्वप्नमेंभी बिकारनहीं प्राप्तहोता और जिसके हृदयरूपी आकाशसे अहंतारूपी कुहिरा शान्तहोगयाहै वह शरत्काल के आकाश-वत् उज्ज्वल होताहै। हे मुनीश्वर! जिसको समभाव प्राप्तहुआ है और उससे उसने देवकोपायाहै वह पुरुष ऐसा होजाताहै जैसा नूतनबालक राग द्वेषसे रहित होताहै। जीवरूपी चेतनाको उल्लंघकर परम चेतनतत्त्वको प्राप्त होता है और सकल इच्छा और सुख दुःख भ्रमसे मुक्तशरीरका नायक तिष्ठित होताहै सोही देवअर्चना है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदेवअर्चनाविधानंनामअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ३८॥

ईश्वरबोले, हे मुनीश्वर! जैसी कामनाहो और जोकुछ आरम्भकरो अथवा न करो सो अपने आपसे चिन्मात्र संवितत्त्वकी अर्चनाकरो इससे वह देव प्रसन्नहोताहै और जब देव प्रसन्नहुआ तब प्रकटहोता है। जब उसकोपाया और स्थितहुआ तब राग द्वेषादिक शब्दोंका अर्थनहीं पायाजाता। जैसे अग्निमें बर्फका कणकानहीं पायाजाता तैसेही फिर उसमें राग द्वेषादिक नहीं पायाजाता।इससे उसदेवकी अर्चनाकरनी योग्य है।यदि राज्य अथवा दरिद्र व सुख दुःखप्राप्तहो उसमें समरहनाही देवअर्चना करनी है। हे मुनीश्वर! शुद्धचिन्मात्रसे प्रमादी न होना इसीकानाम अर्चनाहै। जोकुछ घटपट आदिक जगत् भासताहै सो सब आत्मरूपहै उससे भिन्न कुछनहीं। वह आत्मा शिव

शांतिरूप अनाभासहै और एकही प्रकाशरूपहै। सम्पूर्ण जगत् प्रतीतमात्रहै और आत्मासे भिन्न कुछ द्वैतबस्तु आभास नहीं। सर्वात्मारूप अद्वैततत्त्व जब भासता है तब उसमें प्राप्तहुआ जानता है कि, बड़ा आश्चर्य्य है; घटपटादिक सब वहीरूप है और तो कुछनहीं। हे मुनीश्वर! यह सब सर्वात्मा अनन्तरूप शिवतत्त्व है, जिसको ऐसे निश्चय प्राप्तहुआ है उसने देवकीपूजा जानी है। घटपट आदिक जो पदार्थ हैं और पूज्य-पूजा-पूजकभाव सो सब ब्रह्मरूप है; निर्मलदेव आत्मामें कुछ भेद भाव नहीं है। हे मुनीश्वर! आत्मदेव सर्वशक्त और अनन्तरूप है जगत्में उससे भिन्न कुछ नहीं। निर्मलप्रकाश सम्वितरूप आत्मा स्थित है; हमको तो ईश्वरदेवसे भिन्न कुछ नहीं भासता और सर्वत्र, सर्वप्रकार वही सर्वात्मासम्पूर्णदृष्ट आता है। जिनको देशकालके परिच्छेद सहित ईश्वर भासता है वे हमारे उपदेशके पात्रनहीं; वे ज्ञानवन्ध नीचहैं। उनकी दृष्टिकोत्यागकर मेरीदृष्टिका आश्रयले तो स्वस्थ, वीतराग और निरामयहो और यथाप्रारब्ध जोकुछ सुख दुःख आन प्राप्तहो खेदसे रहितहोकर उस देवका अर्चनकरे तब शान्ति प्राप्तहो। हे मुनीश्वर! उस देवकी सबप्रकार सर्वात्मा करके भावनाकरो-यही उसका पूजन है। वृत्तिका सदाअनुभव रूपमें स्थित रहना और यथाप्राप्तमें खेदसे रहित विचरना यही उसदेवकी अर्चना है। जैसे स्फटिक के मन्दिरमें प्रतिबिम्ब भासते हैं सो और कुछ नहीं निष्कलंक स्फटिकही है, तैसेही सर्व ओर से रहित और जन्मादिक दुःखसे रहित निष्कलंक आत्मा है उसकी प्राप्तिसे तेरेमें जन्मादिक कलंक दुःख कुछ न रहेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेवपूजाविचारो नामएकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे देव! शिव किसको कहते हैं और ब्रह्म, आत्म, परमात्म, तत्सत्, निष्किंचन, शून्य, विज्ञान इत्यादिक किसको कहते हैं और ये भेदसंज्ञा किस निमित्त हुई हैं कृपाकरके कहो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब सबका अभाव होता है तब अनादि अनन्त अनाभास सत्तामात्र शेषरहता है जो इन्द्रियोंका बिषयनहीं-उसको निष्किञ्चन कहते हैं। फिर मैंने पूछा, हे ईश्वर! जो इन्द्रियां, बुद्धि आदिक का बिषय नहीं उसको क्योंकर पासक्ते हैं? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो मुमुक्षु हैं और जिनको वेदके आश्रय संयुक्त सात्विकी वृत्ति प्राप्तहुई है उनको सात्विकीरूप जो गुरुशास्त्र नाम्नी विद्या प्राप्त होती है उससे अविद्याका भाग नष्ट होजाता है और आत्मतत्त्व प्रकाश होआता है। जैसे साबुनसे धोबी वस्त्रका मैल उतारता है तैसेही गुरु और शास्त्र अविद्याको दूर करते हैं। जब कुछ कालमें अविद्या नष्ट होती है तब अपना आपही दिखता है। हे मुनीश्वर! जब गुरु और शास्त्रोंका मिलकर

बिचार प्राप्त होता है तब स्वरूपकी प्राप्ति होती है; द्वैतभ्रम मिट जाता है और सर्वआत्माही प्रकाशता है और जब बिचार द्वारा आत्मतत्त्व निश्चय हुआ कि, सर्व आत्माही है उससे कुछ भिन्न नहीं तो अविद्या जाती रहती है । हे मुनीश्वर! आत्माकी प्राप्तिमें गुरु और शास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं क्योंकि, जिनके क्षयहुयेसे वस्तु पाइये उनके विद्यमानहुये कैसे पाइये? इन्द्रियोंके समूहका नाम गुरुहै और ब्रह्म सर्व इन्द्रियोंसे अतीत है; इनसे कैसे पाइये? अकारण है परन्तु कारणभी हैं क्योंकि; गुरु और शास्त्रके क्रमसे ज्ञानकी सिद्धता होती है और गुरु और शास्त्र बिना बोधकी सिद्धता नहींहोती। आत्मा निर्देश और अदृश्य है तौभी गुरु और शास्त्रसे मिलता है और गुरु और शास्त्रसेभी मिलता नहीं अपने आपहीसे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होतीहै। जैसे अन्धकारमें पदार्थहो और दीपकके प्रकाशसे दीखेतो दीपकसे नहीं पाया अपने आपसे पाया है; तैसेही गुरु और शास्त्रभी है । यदि दीपकहो और नेत्र न हों तब कैसे पाइये और नेत्रहों और दीपक नहो तौभीनहीं पायाजाता जबदोनोंहों तबपदार्थ पायाजाता है; तैसेही गुरु और शास्त्रभीहो और अपना पुरुषार्थ और तीक्ष्णबुद्धि भी हो तब आत्मतत्त्व मिलता है अन्यथा नहीं पायाजाता । जब गुरु, शास्त्र और शिष्यकी शुद्धबुद्धि तीनों इकट्ठे मिलते हैं तब संसारके सुख दुःख दूरहोते हैं और आत्मपदकी प्राप्तिहोती है । जब गुरु और शास्त्र आवरण को दूरकरदेते हैं तब आपसे आपही आत्मपद मिलता है । जैसे जबवायु बादलको दूरकरती है तबनेत्रों से सूर्य्य दीखता है । अब नामके भेदसुनो । जब बोधके बशसे कर्म और बुद्धि इन्द्रियां क्षयहोजाती हैं उसकेपीछे जो शेषरहता है उसकानाम संवित्तत्त्व आत्मसत्ता आदिक है । जहां ये सम्पूर्ण नहीं और इनकी वृत्ति भी नहीं उसके पीछे जो सत्ता शेष रहती है सो आकाशसे भी सूक्ष्म और निर्मल अनन्त परमशून्यरूप है—जहां शून्यकाभी अभाव है । हे मुनीश्वर! जो शांतरूप मुमुक्षु मनन कलनासे संयुक्त हैं उनको जीवन्मुक्ति पदकेबोधके निमित्त शास्त्र मोक्ष उपाय,ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र,इन्द्र,लोकपाल, पण्डित, पुराण, वेद, शास्त्र और सिद्धांत रचे हैं और उनमें शास्त्रों ने चेतन, ब्रह्म,शिव, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, सत्,चित्, आनन्द आदिक भिन्न२ अनेक संज्ञा कही हैं परज्ञानी को कुछ भेदनहीं । हे मुनीश्वर! ऐसा जो देवहै उसका ज्ञानवान् इसप्रकार अर्चन करते हैं और जिसपदके हम आदिक टहलुये हैं उस परमपदको वे प्राप्तहोते हैं । फिर मैंने पूंछा,हे भगवन्! यह सब जगत् अविद्यमानहै और विद्यमान की नाई स्थित है सो कैसे हुआहै । समसत् कहनेको तुमहीं योग्यहो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो ब्रह्म आदिक नामसे कहाताहै वह केवल शुद्ध संवित्मात्र है और आकाशसे भी सूक्ष्म है । उसके आगे आकाशभी ऐसास्थूल है जैसा अणुके

आगे सुमेरु स्थूलहोताहै। उसमें जब वेदनाशक्ति आभासहोकर फुरती है तब उसका नाम चेतनहोता है। फिर जब अहन्ताभावको प्राप्तहुआ—जैसे स्वप्ने में पुरुष आपको हाथीदेखनेलगै तैसे आपको अहंमाननेलगा, फिर देशकाल आकाशआदिक देखनेलगा तब चेतन कलाजीव अवस्थाको प्राप्तहुई और वासनाकरनेवालीहुई;जब जीवभाव हुआ तब बुद्धि निश्चयात्मक होकर स्थितहुई और शब्द और क्रियाज्ञान संयुक्तहुई और जब एकएकसे मिलकर शीघ्रही कल्पित हुये तब मनहुआ जो संकल्परूपी भाषाका बीज है। तब अन्तबाहक शरीरमें आत्मस्वरूप होकर ब्रह्मसत्ता स्थितहुई। इसप्रकार यह उत्पन्नहुई है। फिर बायुसत्ता स्पन्दहुई जिससे स्पर्शसत्ता त्वचाप्रकटहुई;फिर तेजसत्ताहुई जिससे प्रकाशसत्ताहुई और प्रकाशसे नेत्रसत्ताप्रकट हुई; फिर जलसत्ताहुई जिससे स्वाद—रससत्ताहुई और उससे जिह्वा प्रकट हुई; फिर गन्धसत्तासे भूमि, भूमिसे घ्राणसत्ता और उससेपिंडसत्ता प्रकटहुई। फिर देशसत्ता कालसत्ता और सर्वसत्ताहुई जिनको इकट्ठाकरके आत्मसत्ता फुरी। जैसे बीज पत्र,फूल, फलादिकके आश्रय होता है तैसेही इस पुर्यष्टका को जानो। यही अन्तबाहक देह है इसीके आश्रय ब्रह्मसत्ता हुई। वास्तवमें कुछ उपजानहीं केवल परमात्मसत्ता अपने आपमें फुरती है। जैसे जलमें जल फुरताहै तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें फुरती है। हे मुनीश्वर! संवित् में जो संवेदन पृथक्रूप होकर फुरे उसे निस्पन्द करके जब स्वरूप को जाने तबवह नष्ट होजाती है। जैसे संकल्पकोरचानगर संकल्पके अभाव हुये अभाव होजाता है; तैसेही आत्माके ज्ञानसे सम्वेदनका अभाव होजाता है। हे मुनीश्वर! सम्वेदन तबतक भासता है जबतक उसको जानानहीं; जबजानता है तब सम्वेदनका अभाव होजाता है और संवित् में लीन होजाती है; भिन्नसत्ता इसकी कुछनहीं रहती। हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणुतन्मात्राथी सो भावना के बशसे स्थूल देहको प्राप्तहुई और स्थूलदेह होकर भासने लगी; आगे जैसे २ देशकाल पदार्थकी भावना होतीगई तैसे तैसे भासनेलगी और जैसे गन्धर्व नगर और स्वप्नपुर भासता है तैसेही भावनाके बशसे ये पदार्थ भासनेलगे हैं मैंने पूछा,हे भगवन्! गन्धर्वनगर और स्वप्नपुरके समान इसको कैसे कहतेहो? यह जगत् तो प्रत्यक्ष दीखता है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! संसारको दुःख वासनाके बशसे दीखता है कि,अविद्यमानमें स्वरूपके प्रमादकरके विद्यमान बुद्धि हुईहै और जगत्के पदार्थोंका सत् जानकर जो वासना फुरती है उससे दुःख होता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है। जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य होता है तैसेही यहजगत् असत्यहै उसमें वासना, वासक और वासना करनेयोग्य तीनों वृथाहैं जैसे मृगतृष्णाका जलपान करके कोई तृप्त नहींहोता क्योंकि, जलही असत् है; तैसेही यह जगतही असत्

है इसके पदार्थोंकी वासना करनी वृथा है । ब्रह्मासे आदि तृणपर्यंत सब जगत् मिथ्यारूप है । बासना, बासक और बासना करने योग्य पदार्थोंके अभावहुये केवल आत्मतत्त्व रहताहै और सबभ्रम शान्त होजाता है । हे मुनीश्वर ! यह जगत् भ्रम मात्र है—वास्तवमें कुछनहीं । जैसे बालकको अज्ञानसे अपनी परछाहींमें बैताल भासता है और जब बिचारकर के देखे तब बैतालका अभाव होजाता है;तैसेही अज्ञानसे यह जगत् भासताहै और आत्मबिचारसे इसका अभाव होजाताहै। जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है और आकाशमें नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही आत्मामें अज्ञानसे देह भासताहै । जिसकी बुद्धि देहादिकमें स्थिरहै वह हमारे उपदेशके योग्यनहींहै । जो विचारवान् है उसको उपदेशकरना योग्य है और जो मूर्ख भ्रमी और असत्वादी सत्कर्मसे रहित अनार्य हैं उसको ज्ञानवान् उपदेशनकरे। जिनमें विचार, वैराग्य,कोमलता और शुभ आचारहों उनको उपदेशकरना योग्यहै और जो इन गुणोंसे रहित हो उनको उपदेशकरना ऐसेहोताहै जैसे कोई महासुन्दर और सुवर्णवत् कांतिवाली कन्याको कल्पित पुरुषको विवाह देनेकी इच्छाकरे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नामचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे भगवन् ! वह जीवजो आदिस्वर्गसे उत्पन्नहुआ और अपने साथ देहभ्रम देखनेलगा उसके अनन्तर वह कैसे स्थितहुआ ? ईश्वर बोले,हे मुनीश्वर ! वह जीव स्वप्नकी नाईं सर्बगत चिद्घन आत्माके आश्रय उपजकर अपने शरीरको देखताभया । हे मुनीश्वर ! आदि जो जीवफुरकर प्रमादको न प्राप्तहुआ और अपने स्वरूपहीमें अहंप्रत्ययरहा इसकारण ईश्वरहोकर स्थितहुआ।उसको यह निश्चयरहा कि मैं सनातन,नित्य,शुद्ध,परमानन्द और अव्यक्तरूप परमपुरुषहूं आत्माकी अपेक्षासे उसको जीवकहा है और सृष्टि जगत्की अपेक्षाकरके उसको ईश्वर कहा । हे मुनीश्वर ! वहजो आदिजीवहै सो कभी विष्णुरूप होकर ब्रह्माको नाभिकमल से उत्पन्न करता है किसीसृष्टिमें प्रथम ब्रह्मा हुआ है और विष्णु और रुद्र उससे हुये हैं; किसीसृष्टिमें प्रथमरुद्रहुआ उससे विष्णु और ब्रह्माहुये । चेतन आकाशमें जैसा २ संकल्प फुरा है तैसाही तैसा होकर स्थित हुआ है । आदि जीवने उपजकर जिसजिस प्रकारका संकल्प किया है तैसा तैसा होकर स्थित हुआ है वास्तव में सब असत्रूपहै और अज्ञान भ्रमकरके हुआहै । जैसे परछाहीं में बैतालहोता है तैसेही अज्ञानकरके सत्रूप हो भासता है । आदि पुरुषसे लेकर जो सृष्टि है सो परमाकाशके एकनिमेष में हुईहै और उन्मेषमें लयहोजातीहै । एकनिमेषके प्रमादसे कल्पके समूह व्यतीत होजाते हैं और परमाणु परमाणु में सृष्टि फुरती है उनमें कल्प और

महाकल्प भासते हैं। क सृष्टि परस्पर दिखती हैं और कई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं। इसीप्रकार सृष्टिउसके स्पन्दकला में फुरी है और चमत्कार होता है और जब स्पन्द कला स्वरूपकी ओर आतीहै तबलीन होजातीहै। जैसे स्वप्नेका पर्वत जागेसे लीनहोजाताहै तैसेही जाग्रतकी सृष्टिअफुरहुये लीन होजातीहै। हेमुनीश्वर! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि हैं उनसृष्टियोंको कोईदेशकाल रोंकनहींसक्ता क्योंकि, वे अपने अपने संकल्पमें स्थित हैं और आत्माका चमत्कार हैं। जैसा फुरना फुरता है तैसा चमत्कार भासता है। हे मुनीश्वर! न कुछ उपजा है, न कुछनाश होता है; स्वतः चेतनतत्त्व अपने आप में चमकता है। जैसे स्वप्ननगर उपजकर नष्टहोजाता है और संकल्पका पहाड़उपजकर मिटजाताहै; तैसेही जगत् उपजकर नष्ट होजाता है। जैसे स्वप्न और संकल्पके पहाड़को कोई रोंकनहींसक्ता तैसेही अपनी २ सृष्टिको देश काल रोंकनहींसक्ता क्योंकि, और ठौरमें इनका सद्भावनहीं। इससे यह जगत् अपने अपने कालमें सत्रूप है, आत्मामें सद्भावनहीं—संकल्परूप है। हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्त्वसे जीव ईश्वर फुरे हैं तैसेही कर्म फुरे हैं। रुद्रसे लेकर वृक्षपर्यंत सब एक क्षणमें उसी तत्त्वसे फुरआये हैं। सुमेरु आदिकभी अपने स्थित में रोंकते हैं अन्य अणुको नहीं रोंकसक्ते क्योंकि, वहां हैहीनहीं। इससे आत्मामें सृष्टिआभासरूप है। हे मुनीश्वर! इसप्रकार सबजगत् मायामात्र है और भावनासे भासता है; जब आत्माका अभ्यास होता है; तब भेदकल्पना मिटजाती है और केवल उपशमरूप शिवतत्त्व भासता है। हे मुनीश्वर। निमेष का जो समभाग है उसके अर्द्धभाग प्रमाद होने से नानाप्रकारका जगत्हो भासता है। सत् असत्रूप जगत् मनरूपी विश्वकर्मा बनाता है। आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है, न नीचे है, न ऊंचे है, न पूर्व में है और न पश्चिममें है सत्असत् के मध्य अनुभवरूप सबका ज्ञाता है। उसमें प्रत्यक्षआदिक प्रमाणनहीं करसक्ते—जैसे जलमें अग्नि नहीं निकलती। हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूंछाथा सो मैंने कहा, उसमें चित्त के लगानेसे तुम्हारा कल्याणहोगा। इतनाकह सदाशिवबोले कि, अबहम अपने वांछित स्थानको जाते हैं; चलो पार्वती अपने स्थानको चलें। इतनाकहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जबइसप्रकार ईश्वरने कहा तब मैंने अर्घ्य पाद्यसे उनका पूजन किया और ईश्वर पार्वती और गणोंको लेकर आकाशमार्गको चले। जबतक मुझको दृष्टिआते रहे तबतक मैं उनकी ओर देखतारहा फिर अपने कुशके स्थानपर आन बैठा और जो कुछ ईश्वरने उपदेश कियाथा वह मैं अपनी सुध बुधसे विचारने लगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थविचारोनामएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ ईश्वरने मुझसे कहा सो मैं आपभी जानता था और तुमभी जानतेहो । यह जगत्‌भी असत् है और देखनेवालाभी असत् है; उसमायारूप जगत्‌में मैं तुमसे सत् क्याकहूं और असत् क्या कहूं ? जैसे जल में द्रवता होती है तैसेही आत्मामें जगत् है और जैसे पवनमें स्पन्द और आकाश में शून्यता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है । हे रामजी ! जो कुछ पतित प्रवाहसे प्राप्त होता है उसीसे मैं देवअर्चन करताहूं । इसक्रमसे मैं निर्वासनिकहूं और जगत्‌की क्रियामें भी निर्दुःख होकर चेष्टाकरताहूं; व्यवहार करता दृष्टि आताहूं तौभीसदा शांतिरूप हूं और यथा प्राप्त आचापरूपी फूलसे आत्मदेवकी अर्चना करताहूं—छेद भेद मुझको कोई नहीं होता है। हे रामजी ! विषय और इन्द्रियोंका सम्बन्ध सबजीवोंको तुल्य है पर जो ज्ञानवान् हैं वे सावधान रहते हैं और जो कुछ देखते, सुनते, बोलते, खाते, सूंघते और स्पर्शकरते हैं वह सब आत्मतत्त्वमें अर्चन करते हैं और आत्मासे भिन्न नहीं जानते। अज्ञानियोंको कर्तृत्व—भोक्तृत्वका अभिमान होता है और उसमें वे दुःखीहोते हैं । हे रामजी ! तुमभी ऐसीदृष्टिको आश्रय करके संसाररूपी बनमें निःसंग होकर बिचरो तो तुमको कुछखेद न होगा। जिसकी वृत्ति इसप्रकार समान होगई है उसको बड़ाकष्ट प्राप्तहो व धन बांधवोंका वियोगहो तौभी उसको खेद नहींहोता । यह जो दृष्टि मैंने तुमसे कहीहै जब उसका आश्रयकरोगे तब तुमको कोईदुःख न होगा । हे रामजी ! सुख, दुःख, धन और बांधवोंका बियोग ये सब पदार्थ अनित्य हैं ये आतेभी हैं और जातेभी हैं इनको आगमापायी जानकर बिचरो। यह संसार बिषमरूप है, एकरस कदाचित् नहींरहता; इसको स्थित जानकर दुःखी न होना । हेरामजी ! पदार्थ और काल जैसेजावे तैसेजावे और जैसे सुखदुःख आवे तैसे आवे ये सब आगमापायी पदार्थ हैं; आतेभी हैं और जातेभीहैं। इष्टकीप्राप्ति और अनिष्टकी निवृत्तिमें हर्षवान् नहोना और अनिष्टकी प्राप्ति और इष्टके वियोगसे खेदवान् न होना; जैसे आवे तैसे जावे, जैसे जावे तैसे आवे; जिसको आना है वह आवेगा और जिसको जानाहै वह जावेगा; ये सुख दुःख प्रवाहरूपहैं इनमें आस्था करके तपायमान न होना । हे रामजी ! यह सब जगत् तुमही हो और तुमही जगत्‌रूप हो और चिन्मात्र विस्तृत आकार भी तुमही हो; यदि सब तुमही हो तो हर्ष शोक किस निमित्त करतेहो? इसीदृष्टिका आश्रय करके जगत्‌में सुषुप्त होकर बिचरो तो तुरीयातीत अवस्थाको प्राप्त होगे जो सम प्रकाशरूप है । हे रामजी ! जो कुछ मुझे तुमसे कहनाथा सो कहा है आगे जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो । पीछे तुमने पूछाथा कि अनन्तरूप ब्रह्म में कलङ्क कैसे प्राप्तहुआ है सो अब फिर प्रश्नकरो कि, मैं उत्तरदूं । रामजी ने कहा, हे ब्रह्मन् ! अब मुझको कुछ संशय नहीं रहा; मेरे सब

संशय नष्ट होगये हैं और जो कुछ जाननाथा सो मैंने जानाहै। अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तताको प्राप्तहुआहूं। हे मुनीश्वर! आत्मामें न मैलहै, न द्वैतहै और न एक आदि कोई कल्पना है। पहिले मुझको अज्ञानताथी तब मैंने पूंछाथा; अब तुम्हारे बचनों से मेरी अज्ञानता नष्टहुई है इससे कुछ कलङ्क नहीं भासता। आत्मा में न जन्महै, न मरणहै सर्व ब्रह्मही है। हे मुनीश्वर! प्रश्न संशयसे उपजताहै सो संशय मेरा नष्ट होगया है। जैसे यंत्रीकी पुतली हिलानेसे रहित अचल होती है तैसेही मैं संशय से रहित अचल स्थितहूं और सर्वसारोंका सार मुझको प्राप्तहुआ है। जैसे सुमेरु अचल होताहै तैसेही मैं अचलहूं और कोई क्षोभ मुझको नहीं। ऐसा कोई पदार्थनहीं जो मुझको त्यागनेयोग्यहो और ऐसाभी कोई पदार्थनहीं जो ग्रहणकरने योग्य हो, न किसीपदार्थकी मुझको इच्छाहै और न अनिच्छाहै मैं शांतरूप स्थित हूं; न स्वर्गकी मुझको इच्छा है न नरक में द्वेषहै; सर्व्व ब्रह्मरूप मुझको भासता है और मन्दराचल पर्वतकीनाईं आत्मतत्त्वमें स्थितहूं। हे मुनीश्वर! जिसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि होतीहै और कलनाकाल हृदयमें स्थितहोतीहै वह किसीको ग्रहणकरता है; किसीको त्यागकरता है और दीनताको प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्ररूप है; उसमें राग द्वेषरूपी कलोले हैं और शुभ अशुभरूपी मच्छ रहते हैं। ऐसे भयानक संसार समुद्रसे अब मैं आपके प्रसादसे तरगयाहूं और सब सम्पदाके अन्तको प्राप्तहोकर मेरे सब दुःख नष्ट होगयेहैं। सबके सारको प्राप्तहोकर मैं पूर्ण आत्माहूं और अदीनपद और परम शान्त अभेदसत्ता को प्राप्तहुआ हूं। आशारूपी हाथीको मैंने सिंह बनकर मारा है अब मुझको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। मेरे सब बिकल्पों के जाल गलगये हैं, इच्छादिक विकार नष्ट होगये हैं और दीनता जातीरहीहै। तीनों जगत्में मेरी जयहै और मैं सदा उदितरूपहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबिश्रांतिआगमनंनाम
द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो केवल देह इन्द्रियों से करता है और मनसे नहीं करता वह जो कुछ करताहै सो कुछ नहीं करता। जो कुछ इन्द्रियोंसे इष्टप्राप्तहोताहै उससे क्षणमात्र सुखप्राप्त होता है; उसक्षणकी प्रसन्नतामें जो बन्धमान होताहै वह बालकवत्मूर्खहै। जो ज्ञानवानहै वह उसमें बन्धमाननहींहोता। हे रामजी! बांछाही इसको दुःखी करती है। जो सुन्दर विषयोंकी बांछाकरता है उसे जब यत्नसे उनकी प्राप्ति होतीहै तो क्षणभर सुख होताहै और जब वियोग होताहै तब दुःखदेतेहैं। इस कारण इनकी बांछा त्यागनाहीयोग्यहै। इनकी बांछातबहोतीहै जब स्वरूपका अज्ञान होता है और देहादिकमें भावहोताहै जब देहादिकमें अहंभाव होताहै तब अनेक

अनर्थकीप्राप्तिहोतीहै; इससे हेरामजी ! ज्ञानरूपी पहाड़परचढ़ेरहना और अहन्ता-रूपी ग े में न गिरना । हे रामजी ! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्व्वतपर चढ़कर फिर अहन्ता अभिमानकरके गढ़ेमें गिरना बड़ी मूर्खताहै । जब दृश्यभावको त्यागोगे तब अपने स्वभावसत्ताकोप्राप्तहोगे, जो सम और शान्तरूपहै और जिससे िकल्पजाल सब मिटजावेगा, समुद्रवत् पूर्णहोगे और द्वैतरूप न फुरेगा । हे रामजी ! जब हृदय में विषय को विषजाने तब मन भी निरस ोजाता है । और चित्तनिस्संग होता है । वास्तवमें देखो तो सबमें सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थितहै पर द्वैत स्वरूपके प्रमादसे नहीं भासता । हे रामजी ! आत्माका अज्ञानही बन्धनरूप है और आत्मा का बोध मुक्तरूप है; इस से बलकरके आपको आपही जगाओ तब इस बन्धनसे मुक्तहोगे । हे रामजी ! जिस में विषयका स्वादनहीं और जिस में उनका अनुभव होता है वह तत्त्व आकाशवत् निर्मलसत्ता बासना से रहित है । वासनासे रहित होकर जो पुरुष कुछक्रिया करता है वह विकारको नहीं प्राप्त होत । यद्यपि अनेक क्षोभ आनि प्राप्त हों तौभी उसको विकार कुछ नहीं होता । ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ये तीनों आत्मरूप भा े हैं; जब ऐसे जाने तब किसी का भय हीं रहता । चित्तके फुरनेसे जगत् उत्पन्न होता है और चित्तके अफुरहुये लीन होजाता है । जब वासना सहित प्राण उदय होते हैं तब जगत् उदय होता है और जब वासना सहित प्राण लीन होते हैं तब जगत् भी लीनहोता है । अभ्यास करके वासना और प्राणोंको स्थितकरो । जब मूर्खता उदय होती है तब कर्म उदय होते हैं और मूर्खताके लीन हुये कर्मभी लीन होते हैं; इस से सत्सङ्ग और सत् शास्त्रोंके बिचारसे मूर्खताको क्षयकरो । जैसे वायुके संगसे धूलउड़के बादल आकार होतीहै तैसेही चित्तकेफुरनेसे जगत् स्थित होता है । हे रामजी ! जब चित्त फुरता है तब नानाप्रकारका जगत् फुरआता है और चित्तके अफुरहये जगत् लीनहोजाता है । हे रामजी ! वासना शान्तहो अथवा प्राणोंका निरोध हो तब चित्त अचित्त होजाता है और जब चित्त अचित्त हुआ तब परमपदको प्राप्तहोता है । हे रामजी ! दृश्य और दर्शन सम्बन्धके मध्यमें जो परमात्मसुख है और जो एकान्तसुख है सो संवित् ब्रह्मरूप है; उसके साक्षात्कारहुये मनक्षयहोता है । जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्तसे रहित अकृत्रिम सुख है । ऐसा सुख स्वर्ग ें भी नहींहोता । जैसे मरुस्थलमें वृक्ष नहीं होता तैसेही चित्त सहित विषयको सुख नहीं होते । चित्तके उपशममें जे सुख है सो वाणीसे कहा नहीं जाता; उसके समान और कोई सुखनहीं और उससे अतिशय सुखभी नहीं । और सुखनाश होजाताहै पर आत्मसुख नाश नहीं होता—अविनाशीहै और उपजने विनशनेसे रहित है । हे रामजी ! अबोधसे चित्त उदय होता है और आत्मबोधसे

शान्त होजाता है। जैसे मोहसे बालकको बैताल दिखाई देता है और मोहके नष्ट हुये नष्ट होजाता है; तैसेही अज्ञानसे चित्त उदय होता है और अज्ञानके नष्ट हुये नष्ट होता है। यदि चित्त विद्यमानभी भासता है तबभी बोधसे निर्बीज होता है। जैसे पारसके साथ मिलकर तांबा सुवर्ण होता है तो आकारतो वही दृष्टि आता है परन्तु तांबे भावका अभाव होजाता है; तैसेही अज्ञानसे जगत् भासता है और ज्ञान से चित्त अचित्त होजाता है; जड़ जगत् नहीं भासता, ब्रह्मसत्ता होकर भासता है और सत्पद को प्राप्त होता है परन्तु नामरूप तैसेही भासता है। हे रामजी! ज्ञानी का चित्तभी क्रिया करता दृष्टिआता है परन्तु चित्त अचित्त होजाता है। जो अज्ञान करके भासता है सो ज्ञानकरके शून्य होजाता है। जो कुछ जगत् अबोधसे भासता था सो बोध से शान्त होजाता है फिर नहीं उपजता। वह चित्त शान्तपदको प्राप्त होता है। कुछ काल तो वहभी तुरीया अवस्था में स्थितहुआ बिचरता है फिर तुरीयातीत पदको प्राप्तहोता है। अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्मही इसप्रकार अनेक होकर स्थितहुआ है। अनेकभ्रम करकेभी एकही है और सर्वात्माही है-चित्तादिक कुछ नहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तसत्तासूचनंनामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम संक्षेपसे एक अपूर्व और आश्चर्य्यरूप बोधका कारण ज्ञानसुनो। एक बेल फल है जिसका अनन्त योजन पर्य्यंत बिस्तारहै और जिसे अनन्त युगव्यतीत होगये हैं जर्जरी भावको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता। वहअनादि है, उसमें अविनाशी रसहै इससे कभीनाश नहींहोता और चन्द्रमाकीनाईं सुन्दर है। सुमेरुआदिक जो बड़ेपहाड़ हैं उनको महाप्रलयका पवन तृणोंकीनाईं उड़ाता है पर वहपवनभी उसको नहीं हिलासक्ता। हे रामजी! योजनोंकी अनन्त कोट निकोटसंख्या है पर उसकी संख्यानहीं की जाती। ऐसावह बेलफल है और बहुत बड़ाहै। जैसे सुमेरुके निकट राईका दानासूक्ष्म और तुच्छ भासताहै तैसेही उसबेल फलकेआगे ब्रह्माण्ड सूक्ष्म और तुच्छ भासता है। वह बेलरससे पूर्णहै, कभीगिरता नहीं और पुरातनहै। उसका आदि, अन्त और मध्य; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिकभी नहीं जानसक्ते और न उसके मूलको कोई जानसक्ताहै; न मध्यको कोई जानसक्ताहै। उसका अदृष्ट आकारहै और अदृष्टफलहै; अपने प्रकाशसे प्रकाशता है; उसका घन आकार है; सदाअचल है किसी विकारको नहीं प्राप्तहोता और सत, निर्म्मल, निर्विकार, निरन्तररूप, निरन्ध्र और चन्द्रमाकी नाईं शीतल सुन्दर है। उसमें ज्ञान संवित्रूपी रसहै सो अपनारस आपहीलेता है और सबको देताहै और सबको प्रकाश कर्त्ताभी वहीहै। उसमें अनेक चित्ररेखोंने नियासकियाहै परन्तु वह अपने स्वरूपको

नहीं त्यागता अनेकरूप होकर भासता है और उस में स्पन्दरूपी रसफुरता है। तत्त्वं, इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत्, काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या इत्यादि कलना जाल उस रसके फुरनेसे फुरते हैं। वह बेल आत्मरूपहै और अनुभवरूपी उसमें रसहै। वहसदा अपनेआपमें स्थित और नित्य शांतरूप है। उसको जानकर पुरुष कृतकृत्य होताहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविलोपाख्यानंनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४ ॥

रामजी बोले, हे भगवन्! सर्वधर्मों के वेत्ता आपने यह बेलरूपी महाचिद्घन सत्ताकही सो मुझे ऐसे निश्चयहुआ कि,चेतन मज्जारूप अहंतादिक जगत्है इसमें भेदरञ्चकभी नहीं; एकद्वैत कलना सर्ववहीहै। वशिष्ठजीबोले.हेरामजी! जैसे ब्रह्माण्डकी मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है तैसेही चेतन बेलकी मज्जा यह ब्रह्माण्ड है। सब जगत् चेतन बेलरूप है–भिन्न नहीं और उस सर्वचेतन जगत्का विनाश नहीं होसक्ता। हे रामजी! चेतनरूपी मिरचेके बीजमें जगत्रूपी चमत्कार तीक्ष्णता है सो सुषुप्तवत् निर्मल है और शिलाके अन्तरवत् अमिश्रित है। हे रामजी! अब और आश्चर्यरूप एक आख्यानसुनो कि, महासुन्दर प्रकाशसंयुक्त स्निग्ध और शीतल स्पर्श है और विस्तृतरूप एक शिला है सो महानिरन्ध्र और घनरूप है। उसमें कमल उपजते हैं और उसकी ऊर्द्ध बेल है, अधमूल है और अनेक शाखा हैं। रामजी बोले, हे भगवन्! सत्य कहतेहो यह शिला मैंनेभी देखीहै कि, नदीमें विष्णु की मूर्त्ति शालग्राम है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे तो तुम जानतेहो और देखाभी है परन्तु जो शिला मैं कहताहूं वह अपूर्वशिलाहै और उसके भीतर ब्रह्माण्डके समूह हैं और कुछ भी नहीं। हे रामजी! चेतनरूपी शिला जो मैंने तुमसे कही है उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हैं; उसघन चेतनतासे शिला वर्णनकी है। वह अनन्तघन और निरन्ध्र है और आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदियां, समुद्र इत्यादिक सबही विश्व उस शिलाके भीतर स्थित है और कुछ नहीं है। जैसे शिलाके ऊपर कमल लिखे होतेहैं सो शिलारूपहैं; शिलासे भिन्ननहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूपी शिलामें है; आत्मासेभिन्न नहीं। हे रामजी! भूत,भविष्यत् और वर्त्तमान तीनोंकाल उस शिलाकी पुतलियांहैं। जैसे शिल्पी पुतलियां कल्पताहै तैसेही यहजगत् आत्मा में है उपजानहीं क्योंकि; मनरूपी शिल्पी कल्पता है और उससे नानाप्रकारका जगत् भासता है; आत्मा में कुछ उपजा नहीं। जैसे सुषुप्तरूप शिलाके ऊपर कमल रेखा लिखी होती है वह शिलासे भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मामें है आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे शिलामें पुतली होती हैं सो उदय अस्त नहीं होती शिला ज्यों की त्यों है; तैसेही आत्मामें जगत् उदय अस्त नहीं होता क्योंकि बास्तव में कुछ नहीं है।

आत्मा में द्वैतकल्पना अज्ञान से भासती है और जब बोध होता है तब शांत हो-जाती है। जैसे समुद्रमें पड़ी जलकी बूंद समुद्ररूप होजाती है तैसेही बोधसे कल्पना आत्मामें लीनहोजातीहै। हे रामजी! चेतनआत्मा अनन्तहै और उसमें कोई विकार कल्पनानहींहै पर अज्ञानसे कल्पनाभासतीहै और ज्ञानसेलीनहोजातीहै। विकारभी आत्माके आश्रय भासतेहैं पर आत्मा विकारसे रहितहै। ब्रह्मसे विकार उत्पन्नहोतेहैं और ब्रह्महीमें स्थितहैं पर वास्तवमें कुछहुयेनहीं; सब आभासमात्रहैं। जैसे किरणों में जलाभास होताहै तैसेही ब्रह्ममें जगत् विकार आभास होताहै। जैसे बीजमें पत्र, डाल; फूल और फलका विस्तार होताहै और बीजसत्ता सबमें मिलीहोतीहै; बीजसे कछभिन्न नहीं होता; तैसेही चिद्घन आत्माके भीतर जगत् विस्तार है सो चिद्घन आत्मासे भिन्न नहीं; वही अपने आपमें स्थितहै और जगत्भी वहीरूप है। यदिएक मानिये तो द्वैतभी होताहै और यदि एकनहीं कहाजाता तो द्वैत कहांहो? जगत् और आत्मामें कुछभेद नहीं; अद्वैत आत्माही अपने आपमें स्थितहै। जैसे शिलामें मूर्त्ति लिखीहोती है सो शिलारूपहै; तैसेही जगत् आत्मारूपहै और जैसे शिलामें भिन्न२ विषम मूर्त्ति होती हैं और आधाररूप शिला अभेद है तैसेही आत्मा में जगन्मूर्त्ति भिन्न २ विषमरूप भासती है और चेतनरूप आधार अभेद है। ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् समस्थितहै बड़ेविकारभी उसमेंदृष्टिआतेहैं परन्तु वास्तव सुषुप्तवत्विकारसे रहित स्थितहै और फुरनेसेरहित चेतनाशिला स्थितहै उस नित्य शांत चिद्घनरूप सत्तामें यहजगत् कल्पित है अधिष्ठान सत्ता सदासर्वदा शांतरूप है भेद कदाचित् नहीं जैसे जलमें तरंग अभेदरूपहै और सुवर्णमें भूषण अभिन्नरूपहै तैसे आत्मा में जगत् अभिन्न रूपहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलाकोशउपदेशोनाम पंचचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बीजके भीतर फूलफल और सम्पूर्ण वृक्षहोताहै सो आदिभी बीज है और अन्तभी बीज है जब फलपरिपक्व होता है तब बीजही हो-ता है तैसे आत्माभी जगत्में है परन्तु सदाअच्युत और समहै कदाचित् भेदविकार और परिणामको प्राप्त नहीं हुआ अपनी सत्तासे स्थित है जगत्के आदि मध्य अन्त में वही है कुछ और भावको प्राप्तनहीं हुआ देशकाल कर्म आदिक जो कुछ कलना भासती है सो वहीरूप है जो कुछ शब्द और अर्थ है वह आत्मासे भिन्न नहीं जैसे वृक्षके आदिभी बीज है और अन्तभी बीज है और जो कुछ मध्यमें विस्तारभासता है वह भी वहीरूपहै भिन्न कुछ नहीं तैसे जगत्के आदि भी आत्मसत्ता है अन्त भी आत्मसत्ता है जो कुछ मध्यमें भासता है वह भी वहीरूप है हे रामजी! चेतनरूपी

महाआदर्श में सम्पूर्ण जगत् प्रतिबिम्ब होताहै और सम्पूर्ण जगत् सङ्कल्पमात्र है जैसा जैसा किसीमें फुरना दृढ़होताहै तैसाही आत्मसत्ताके आश्रित होकर भासता है जैसे चिन्तामणिमें जैसा कोई सङ्कल्प धारताहै तैसाही प्रकट होआताहै सो सङ्कल्पमात्रही होता है तैसे जैसी जैसी भावना कोई करता है तैसी तैसी आत्मा के आश्रित होकर भासती है अनन्त जगत् आत्मरूपी मणि के आश्रित स्थितहोते हैं जैसी कोई भावना करता है तैसी उसको हो भासती है। हे रामजी ! आत्मरूपी डब्बेसे जगत्रूपी रत्न निकलते हैं। जैसा फुरना होता है तैसाही जगत् भासि आता है । जैसे शिलाके ऊपर रेखा होती हैं और नानाप्रकार के चित्र भासते हैं सो अनन्यरूप है । तैसेही आत्मामें जगत् अनन्यरूपहै और जैसे शिलाके ऊपर शंख चक्रादिक रेखा भासती हैं तैसेही आत्मामें यह जगत् भासता है सो आत्मरूप है । आत्मरूपी शिला निरन्ध्र है, उसमें छिद्र कोई नहीं जैसे जलमें तरङ्ग जलरूपहोते हैं, तैसेही ब्रह्ममें जगत् ब्रह्मरूप है । वह ब्रह्म सम, शान्तरूप, और सुषुप्तवत् स्थित है उसमें जगत् कुछ फुरानहीं शिलाकी रेखावत् है। जैसे बिलावके भीतर मज्जा होती है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् स्थित है और जैसे आकाश में शून्यता; जल में द्रवता और वायु में स्पन्दता होती है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् है । ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । जैसे तरु और वृक्षमें कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं—ब्रह्मही जगत् है और जगत्ही ब्रह्महै । हे रामजी ! इसमें भाव–अभाव भेद कल्पना कोई नहीं ब्रह्मसत्ताही प्रकाशती है और ब्रह्मही जगत्रूपहोकर भासताहै । जैसे मरुस्थल में सूर्य्यकी किरणें जलरूप होकर भासती हैं, तैसेही ब्रह्म जगत्रूपहोकर भासता है । हे रामजी ! सुमेरुआदिक पर्वत और तृण, वन और चित्त जगत् परिणामसे लेकर भूतोंको विचार देखिये तो परमसत्ताही भासतीहै और सब पदार्थों में स्थूल और सूक्ष्मभाव से वही सत्ताव्यापी है । जैसे जलका रसवनस्पति में व्यापाहुआ है, तैसेही सब जगत् में सूक्ष्मताकरके आत्मसत्ता व्यापी हुई है । जैसे एकहीरस सत्ता, वृक्ष, तृण और गुच्छोंमें व्यापीहुई है और एकही अनेकरूप होकर भासती है; तैसेही एकही ब्रह्मसत्ता अनेकरूपहोकर भासतीहै । हे रामजी ! जैसे मोरके अण्डे में अनेक रङ्ग होते हैं और जब अण्डा फूटजाता है तब उससे शनैः शनैः अनेकरङ्ग प्रकट होते हैं सो एकही रस अनेकरूपहो भासताहै, तैसेही एकही आत्मा अनेकरूप जगत् आकार होकर भासताहै । जैसे मोरकेअंडेमें एकही रस होताहै परन्तु जो दीर्घसूत्री अज्ञानीहैं उनको भविष्यत् अनेक रंग उसमें भासते हैं सो अनउपजेही उपजे भासते हैं; तैसेही यहजगत् अनउपजाही नानात्व अज्ञानी के हृदयमें स्थित होताहै और जो ज्ञानवान् हैं उनको एक रस ब्रह्मसत्ताही भासती

है । जैसे मोरका रस परिणाम को नहीं प्राप्तहुआ एक रस है और जब परिणामको प्राप्तहोकर नानारूपहुआ तब भी एक रस है; तैसेही यह जगत् परमात्मा में गुह्य है तौ भी परमात्माही है और जब नानारूपहोकर भासता है तौ भी वहीहै परिणाम को नहींप्राप्तहुआ परन्तु अज्ञानीको नानात्व भासताहै और ज्ञानवान्को एकसत्ताही भासता है । अथवा इस दृष्टान्तका दूसरा अर्थ यह है कि जैसे मोर के अण्डे में नानात्व कुछ हुआ नहीं पर जिसको दिव्यदृष्टि है उसको उसमें अनउपजी नानात्व भासती है और जिसको दिव्यदृष्टि नहीं उसको बीजही भासताहै, नानात्व नहीं भासता; तैसेही जिनको अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टिहै उनको अनउपजाही जगत् नानात्वहो भासता है और जो अज्ञानदृष्टि से रहितहैं उनको एकही ब्रह्म भासता है, और कुछ नहीं भासता । हे रामजी ! नानात्व भासतीहै तौ भी कुछ नहीं; जैसे मोरके अण्डे में नानारंग भासतेहैं तौ भी एकरूपहै; तैसेही इसजगत्में भिन्नाभिन्न पदार्थ भासते हैं तौ भी एक ब्रह्मसत्ताहै; द्वैत कुछ नहीं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसत्ताउपदेशोनामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४६ ॥

वशिष्ठजीबोले,हेरामजी! जैसे अनउपजेकान्तिरंग मयूरकेअण्डेमेंहोते हैं सो बीज से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहं त्वं आदिक जगत् आत्मामें अनउदयही उदयरूपी भासताहै । जैसे बीजमें उनरंगोंकीउदयभी अनउदयरूपहै, तैसेही आत्मामेंजगत्की उदय भी अनउदयरूप है । आत्मसत्ता अशब्दपद है वाणीसे कुछ कहा नहींजाता। ऐसा सुख स्वर्ग तथा और किसी स्थान में भी नहीं है जैसा सुख आत्मामें स्थित हुये पायाजाताहै । हे रामजी ! आत्म सुखमें विश्रान्ति पानेकेनिमित्त मुनीश्वर, देवता, सिद्ध और महाऋषि दृश्यदर्शन सम्बन्ध फुरनेको त्यागकर स्थितहोते हैं इससे वह उत्तमसुख है । सम्वित्में संवेदनका फुरना जिनका निवृत्तहुआहै उनपुरुषोंको दृश्य भावना कोई नहीं फुरती और न कोई कर्म्म उनको स्पर्श करता है; प्राणभी उनके निस्पन्दहोतेहैं; चित्तचेतनकी सम्बन्धसे रहित चित्रकी मूर्त्तिवत् स्थित होते हैं और शान्तरूप स्थितहोतेहैं। हे रामजी! जब चित्तकला फुरतीहै तब संसारभ्रम प्राप्तहोता है और जबचित्तका फुरना मिटजाता है तब शान्तरूप अद्वैत स्थित होता है । जैसे युद्ध राजाकी सेना करती है और जीत हार राजाकी होती है तैसेही चित्त के फुरने के द्वारा आत्मामें बंधमोक्ष होता है । यद्यपि आत्मा सत्रूप और अच्युत है परन्तु मन, बुद्धि और अन्तःकरणके द्वारा आत्मा में बंधमोक्ष भासता है। आत्मा सबका प्रकाशकहै—जैसे चन्द्रमाकी चांदनी वृक्षादिकों को प्रकाशती है, तैसेही आत्मा सब पदार्थोंको प्रकाशता है । वह आत्मा न दृश्य है, न उपदेशका विषय है, न विस्तार रूप है, न दूर है, केवल चेतनरूप अनुभव आत्मा से सिद्ध है । वह न देह है, न

...है; न गुणहै; न चित्तहै, न बासना है; न जीवहै, न स्पन्द है; न औरको स्पर्श करता है, न आकाशहै; न सत् है, न असत्है; न मध्य है; न शून्यहै, न अशून्य है; न देश,काल,बस्तुहै; न अहंहै, न इतर इत्यादिकहै;सर्वशब्दोंसेरहित हृदय स्थानमेंप्रकाशता है और केवल अनुभवरूपहै। उसका न आदिहै, न अंतहै; न उसे शस्त्रकाटतेहैं; न उसे अग्नि जलासक्ती है; न जल गलासक्ताहै; न यहहै, न वहहै; न उसे वायु सोख सक्ती है और न किसीकी सामर्थ्य उससे चलती है। वह चित्तरूपी आत्मतत्त्व है न जन्मता है और न मरताहै। देहरूपी घटकईवार उपजते हैं और कईबार नष्टहोते हैं और आत्मरूपी आकाशसबके भीतर बाहर अखंड अबिनाशी है। जैसे अनेक घटोंमें एकही आकाश स्थित होता है तैसेही अनेक पदार्थोंमें एकही ब्रह्मसत्ता आत्मरूपसे स्थित है। हे रामजी! जोकुछ स्थावर—जङ्गम जगत् दृष्टआताहै सो सब ब्रह्मरूप है जो निरधर्म्म, निर्गुण, निरवयव, निराकार, निर्मल, निर्विकार है और आदि अन्तसे रहित, सम और शान्तरूप है। ऐसीदृष्टिका आश्रय करके स्थितहो। हे रामजी! इस दृष्टिका आश्रय करोगे तो बड़े कार्य्यभी तुमको स्पर्श न करेंगे। जैसे आकाश को बादल स्पर्श नहींकरते तैसेही तुमको कर्म्म स्पर्श न करेंगे। काल, क्रिया, कारण, कार्य्य, जन्म, स्थिति, संहारआदिक जो संसरणरूप संसारहै सो सब ब्रह्मरूपहै। इसी दृष्टिका आश्रयकरके विचरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मएकताप्रतिपादनंनाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४७॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! यदि ब्रह्ममें कोई बिकार नहीं तो भाव—अभावरूप जगत् किससे भासताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बिकार किसको कहतेहैं? प्रथमतो यहसुनो। जो वस्तु अपने पूर्वरूप को त्यागकर विपर्यय रूपको प्राप्तहो और फिर पूर्वके स्वरूपको न प्राप्तहो उसको विकार कहते हैं। जैसे दूधसे दहीहोकर फिर दूध नहीं होता; जैसे बालकअवस्था बीत जातीहै तो फिर नहींआती और जैसे युवा अवस्था गईहुई फिर नहीं आती इसकानाम बिकारहै परब्रह्म निर्मलहै; आदि भी निर्विकारहै, अन्तभी निर्विकारहै और मध्यमें जो उसमें कुछ बिकार मल भासता है सो अज्ञानसे भासताहै। मध्यमें भी ब्रह्म अबिकारी ज्योंका त्योंहै। हे रामजी! जो पदार्थ विपर्ययरूप होजाता है वह फिर अपने स्वरूपको नहीं प्राप्तहोता और ब्रह्मसत्ता सदा ज्योंकीत्यों अद्वैतरूपहै और आत्मअनुभव से प्रकाशती है। जो कभी अन्यथारूपको प्राप्त न हो उसको बिकार कैसे कहिये? हे रामजी! जो बस्तु विचार और ज्ञानसे निवृत्त होजाय उसको भ्रममात्र जानिये वह बास्तव में कुछ नहीं। जो कुछ बिकारहै सो अज्ञानसे भासताहै और जब आत्म बोधहोताहै तब निवृत्त हो

जाताहै। जिसके बोधसे बिकार नष्टहोजाय उसे बिकार कैसे कहिये ? जो ब्रह्म शब्द से कहाताहै सो निर्वेदरूप आत्माहै। जो आदि अन्तमें सत्हो उसे मध्यमें भी सत् जानिये और इससेभिन्नहो सो अज्ञानसेजानिये। आत्मरूप सदासर्बदा समरूपहै। आकाश और पवनभी अन्यभावको प्राप्तहो जातेहैं परन्तु आत्मतत्त्वकदाचित् अन्य भावको नहीं प्राप्तहोता। वह तो प्रकाशरूप एक,नित्य और निर्विकार ईश्वरहै; भाव अभाव बिकारको कदाचित् नहीं प्राप्त होताहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! एकतत्त्व विद्यमानहै सो ब्रह्म सदा सर्बदा निर्मलरूप है तो उस सांचितब्रह्ममें यह अविद्या कहांसे आईहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह सर्व ब्रह्महै; आगेभी ब्रह्मथा और पीछेभी ब्रह्म होगा। उस निर्विकार और आदि, अन्त, मध्यसे रहित ब्रह्ममें अविद्या कोई नहीं–यह निश्चयहै। जो वाच्य–वाचक शब्दसे उपदेशके निमित्त ब्रह्म कहताहै उसमें अविद्या कहांहै ? हे रामजी ! 'अहं', 'त्वं' आदिक जगत्भ्रम और अग्नि, वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ताहै और अविद्या रञ्चकमात्र भी नहीं। जिसका नामही अविद्या है उसे भ्रममात्र और असत् जानो। जो विद्यमानही नहीं है उसका नाम क्या कहिये ? फिर रामजीने पूछा, हे भगवन् ! उपशम प्रकरणमें आपने क्यों कहाथा कि, अविद्याहै और अब इसप्रकार कैसे कहतेहो कि, विद्यमान नहींहै। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इतने काल पर्यंत तुम अबोधथे इसनिमित्त मैंने तुम्हारे जागनेके निमित्त युक्ति कल्पकर कहीथी और अब तुम प्रबुद्धहुये हो त मैंने कहाहै कि, अविद्या अविद्यमानहै। हे रामजी ! अविद्या,जीव और जगत् आदिकका क्रम अप्रबोधको जगानेके निमित्त वेदवादीने वर्णन किया है। जबतक मन अप्रबोध होता है तबतक अविद्या भ्रमहै और युक्तिविना अनेकउपायोंसे भी बोधवान् नहींहोता। जब बोधवान् होताहै तब सिद्धांतको उपदेशकी युक्तिविना भी पाताहै और अबोध मनयुक्ति विना नहीं पासक्ता। हे रामजी ! जो कार्य्य युक्तिसे सिद्धहोता है वह और यत्न से नहीं साधाजाता। जैसे युक्तिरूपी दीपकसे अन्धकार दूरहोता है और बलयत्नसे निवृत्तनहींहोता; तैसेही युक्तिबिना और यत्नसे अज्ञानकी निद्रानिवृत्तनहींहोती। यदि अप्रबोध को सर्वब्रह्म सिद्धांतका उपदेश कीजिये तो वह उपदेश व्यर्थहोता है–जैसे कोई दुःखी अपनादुःखदीवालके आगे जाकहे तो उसकाकहा वह नहीं सुनती और उसका कहनाभी वृथाहोता है; तैसेही अप्रबुद्धको सर्वब्रह्म का उपदेश व्यर्थहोताहै। मूढ़ युक्तिसे जगता है और बोधवान् को प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेशहोताहै। हे रामजी ! अबतुम यह धारणाकरो कि, ब्रह्म, तीनोंजगत् और अहं,त्वं आदिक सबब्रह्म हैं द्वैत कल्पना कोईनहीं; फिर जो तुम्हारी इच्छाहो सोकरो और दृश्य संवेदन न फुरे सदा आत्मामें स्थितरहो। इसप्रकार अनेक कार्य्यमेंभी लेपनहोगा। हे रामजी ! जो चेतन

बपु परमात्मा प्रकाशरूप है सो सदा अहंभावसे फुरता है। ऐसा जो अनुभव रूपहै उसीमें चलते, बैठते,खाते, पीते,चेष्टाकरते स्थितरहो तब तुम्हारा अहंममभाव निवृत्त होजावेगा और जो शांतरूप ब्रह्म सर्बभूतोंमें स्थितहै उसको तुम प्राप्तहोगे और आदि अन्तसे रहित शुद्ध संवित्‌मात्र प्रकाशरूप आत्माको देखोगे। जैसे मृत्तिकाके पात्र घट आदिक सब मृत्तिकाकेही हैं तैसेही तुम सर्बभूत आत्माको देखोगे। जैसे मृत्तिकासे घटभिन्ननहीं तैसेही आत्मासे जगत्‌भी भिन्ननहीं। जैसेवायुसेस्पन्द और जलसे तरङ्ग भिन्ननहीं तैसेही आत्मासे प्रकृति भिन्ननहीं। जैसेजल और तरङ्ग शब्दमात्रदोहैं तैसेही आत्मा और प्रकृति शब्दमात्रदोहैं पर भेदभाव कुछनहीं केवलअज्ञानसे भेद भासताहै और ज्ञानसे नष्टहोजाताहै। जैसे रस्सीमेंसर्प भासताहै तैसेही आत्मामें प्रकृतिहै। हे रामजी! चित्तरूपी वृक्षहै और कल्पनारूपी बीजहै;जब कल्पनारूपी बीज बोयाजाताहै तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होताहै और उससेजब भावरूप संसार उत्पन्नहोताहै तब आत्मज्ञानकरके कल्पनारूपी बीज दग्ध होताहै और चित्तरूपी अंकुर नष्ट होजाताहै। हे रामजी ! चित्तरूपी अंकुरसे सुख दुःखरूपी वृक्षउत्पन्न होता है। जब चित्तरूपी अंकुरनष्टहो तब सुख दुःखरूपी वृक्ष कहां उपजे ? हे रामजी ! जोकुछ द्वैतभ्रमहै सो अबोधसे उपजताहै और बोधसे नष्ट होजाता है । आत्मा जो परमार्थ सारहै उसकी भावना करो तब संसार भ्रमसे मुक्तहोगे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्मृतिविचारयोगोनामअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८

रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर ! जोकुछ जानने योग्यथा सोमैंनेजाना और जोकुछ देखने योग्यथा सोदेखा; अबमैं आपके ज्ञानरूपी अमृतके सींचनेसे परमपद में पूर्णात्मा हुआहूं। हे मुनीश्वर ! पूर्णने सबबिश्व पूर्णकी है; पूर्णसे पूर्ण प्रतीतकीहै और पूर्ण में पूर्णही स्थितहै—द्वैत कुछनहीं,यह अब मुझको अनुभव हुआहै। हे मुनीश्वर!ऐसे जानकरभी मैं लीला और बोधकी वृद्धिके निमित्त आपसे पूछताहूं। जैसे बालक पितासे पूछताहै तो पिता उद्वेग नहींकरता, तैसेही आप उद्वेगवान् न होना। हे मुनीश्वर ! श्रवण, नेत्र, त्वचा, रसना और घ्राण ये पांचोंइन्द्रियां प्रत्यक्ष दृष्टि आती हैं पर मरेपर विषयको क्योंनहीं ग्रहणकरतीं और जीतेकैसे ग्रहण करतीहैं ? घटादिककी नाईं बाहरसे ये जड़ स्थितहैं पर हृदयमें अनुभव कैसे होताहै ? और लोहेकी शलाकावत् ये भिन्न भिन्नहैं पर इकट्ठी कैसेहुई हैं ? परस्पर जो एकआत्मामेंअनुभव होताहै कि, मैं देखता;मैं सुनताहूं इनसे आदिलेकर वृत्ति क्योंकर इकट्ठी हुईहै ? मैं सामान्य भावसे जानताभीहूं परन्तु विशेषकरके आपसे पूछताहूं। वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! इन्द्रियां, चित्त और घट, पट आदिक पदार्थ निर्मलचेतनरूप आत्मासे भिन्ननहीं-आत्मतत्त्व आकाशसेभी सूक्ष्म और स्वच्छहै। हे रामजी ! जब चेतनतत्त्वसे पुर्यष्ट-

का चैत्यताकी भावना फुरी तो उसने आगे इन्द्रिय गणोंको देखा और इन्द्रियगण चित्तके आगे हुयेहैं। इनकी घनतासे चेतनतत्त्व पुर्यष्टकाभावको प्राप्तहुआहै। उसीमें सब घटादिक पदार्थ प्रति िम्बित हुये हैं और पुर्यष्टकामें भासेहैं। रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! अनन्त जगत् जो रचेहैं और महाआदर्शमें प्रतिबिम्बितहैं उस पुर्यष्टका का रूपक्याहै और कैसे हुईहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि अन्तसे रहित जगत्का बीजरूप जो अनादिब्रह्महै सो निरामय और प्रकाशरूप है और कल्पना और कलनासे रहित, शुद्ध, चिन्मात्र और अचेतन जगत्का बीज वही अनादि ब्रह्महै। वह जब कलनाके सन्मुखहुआ तबउसका नामजीव हुआ उसजीवने जब देहको चेता और अहंभाव फुरा तब अहंकारहुआ; जब मननकरनेलगा तब मनहुआ; जब निश्चय करनेलगा तब बुद्धिहुई, जब परमात्माके देखनेवाली इन्द्रियोंकी भावनाहुई तब इन्द्रियांहुईं; जब देहकी भावना करनेलगा तब देह हुई और जब घट पटकी भावना हुई तब घट पटहुये; इसीप्रकार जैसीजैसी भवना होतीगई तैसेही पदार्थ होतेगये। हे रामजी! यहीस्वभाव जिसकाहै उसको पुर्यष्टका कहतेहैं। स्वरूपसे विपर्ययरूपी दृश्य की ओर भावनाहोने और कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदिक की भावना, कलना और अभिमान जो चित्तकलामें हुआहै इससे उसको जीवकहतेहैं। निदान जैसीजैसी भावनाका आकारहुआ तैसीही तैसी वासनाको करताभया। जैसे जलसे सींचाहुआ बीज डाल, पत्र, फूल और फलभाव को प्राप्तहोता है तैसेही वासनासे सींचाहुआ जीव स्वरूपके प्रमादसे महाभ्रमजाल में गिरता है और ऐसे जानताहै कि, मैं मनुष्य देह सहितहूं अथवा देवता व स्थावरहूं पर ऐसेनहींजानता कि, मैं चिदात्माहूं। वह देहसे मिलाहुआ परिच्छिन्न और तुच्छरूप आपको देखता है। इस मिथ्याज्ञानसे डूबताहै और देहमें अभिमानसे वासनाके वशहुआ चिरपर्यंत नीचे ऊंचे और बीच में भ्रमता है। जैसे समुद्रमें आयाहुआ काष्ठतरंगोंसे उछलताहै और घटी यन्त्रका बर्त्तन नीचे ऊपरजाता है तैसेही जीव वासनाके वशसे नीचे और ऊपर भ्रमताहै। जब विचार और अभ्यासकरके आत्मबोधको प्राप्तहोताहै तब संसार बन्धनसे मुक्त होता है और आदि अन्तसे रहित आत्मपदको प्राप्तहोता है। बहुत काल योनि रेखाको भोगके आत्मज्ञानके वशसे परमपदको प्राप्तहोताहै। हे रामजी! स्वरूपसेगिरे हुयेजीव इसप्रकार भ्रमते हैं और शरीर पातेहैं। अब यहसुनो कि,इन्द्रियां मृतकहुये बिषय को किसी िञ्चित्त ग्रहणनहीं करतीं। हे रामजी! जब शुद्धतत्त्वमें चित्त कलना फुरतीहै तब व जीवरूप होतीहै और मनसहित षट्इन्द्रियोंको लेकर देहरूपी गृह में स्थित हो बाहरके बिषयको ग्रहणकरती है। मनसहित षट् इन्द्रियों के सम्बन्धसे विषयका ग्रहणहोताहै; इनसे रहित विषयोंको कदाचित् नहीं ग्रहणकरती। इसप्रकार

इनमें स्थित होकर जीव कला बिषयको ग्रहणकरती है। यद्यपि इन्द्रियां भिन्न भिन्न हैं तौभी इनको एकताकर लेती हैं और ये अहंकाररूपी तागेसे इकट्ठीहोती हैं। देह और इन्द्रियां माणिक्यकीनाईं हैं; इनको इकट्ठेकरके जीवकहताहै कि,मैं देखता,सूंघता, सुनता, फिरता, बोलताहूं और इन्हींके अभिमानसे बिषयको ग्रहणकरताहै। हे राम-जी ! देह इन्द्रियां मन आदिक जड़ हैं परन्तु आत्माकी सत्तापाकर अपने २ बिषय को ग्रहणकरती हैं। जबतक पुर्यष्टका देहमें होती है तबतक इन्द्रियां बिषयको ग्रहण करती हैं और जब पुर्यष्टका देहसे निकलजाती है तब इन्द्रियां बिषयको नहीं ग्रहण करतीं। हे रामजी ! ये जो प्रत्यक्षनेत्र, न सिका, कान, जिह्वा और त्वचा भासते हैं सो ये इन्द्रियां नहीं हैं इन्द्रि यां तो सूक्ष्म तन्मात्र हैं; ये उनके रहनेके स्थान हैं। जैसे गृहमें झरोखे होते हैं तैसेही ये स्थान हैं। हे रामजी ! अब जीव रूप सुनो आत्म-तत्त्व सबठौरमें पूर्णहै परन्तु उसका प्रतिबिम्ब वहांहीं भासता है जहांनिर्मल ठौरहोता है। जैसे निर्मल जलमें प्रतिबिम्ब होताहै और जैसे दोकुण्डहों एकजलसे पूर्णहो और दूसराजलसे रहितहो तो सूर्य्यका प्रकाशतो दोनोंमें तुल्य होताहै परन्तु जिसमें जल है उस में प्रतिबिम्बित होता है और जल के डोलने से प्रतिबिम्बभी हलता दृष्ट आता है पर जहां जलनहीं है वहां प्रतिबिम्बभी नहीं; तैसेही जहां सात्त्विक अंश अंतःकरण होता है वहां आत्मा का प्रतिबिम्ब जीव भी होता है और ज तक शरीर में होता है तबतक शरीर चेतन भासता है; पर जब वह जीवकला पुर्यष्टका-रूप शरीर को त्यागजाती है तब शरीर जड़भासता है। जैसे कुण्डसे जल निकल जाय तो कुण्डसूर्यके प्रतिबिम्ब से हीन होजाता है, तैसेही अंतःकरण और तन्मात्रा पुर्यष्टका में आत्माका प्रतिबिम्ब होताहै। जब पर्यष्टका शरीरको त्यागजाती है तब शरीर जड़ भासता है। हे रामजी ! जैसे झरोखेके आगे कोई पदार्थ रखिये तो झरोखे को पदार्थ का ज्ञाननहीं होता और जब उसका स्वामी देखता है तब पदार्थ को ग्रहण करता है; तैसेही इन्द्रियों के स्थानों में जो सूक्ष्मतन्मात्रा ग्रहण करनेवाली होती है वही विषयों को ग्रहण करती है और जब तन्मात्रानहीं होतीं तब इन्द्रियां ग्रहण नहीं करसक्तीं। हे रामजी ! प्रत्यक्ष देखो कि, कथाका श्रोता पुरुष कथामें बैठा होताहै परयदि उसकाचित्त और ठौर निकलजाता है तब प्रत्यक्ष बैठा रहताहै परन्तु कुछनहीं सुनता क्योंकि; श्रवण उसकी इन्द्रिय मनकेसाथगईहै; तैसेही जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब मृतक होता है और इन्द्रियां भी विषयों को ग्रहण नहीं करतीं। हे रामजी ! अहंमम आदि जो दृश्यहै सोभी सर्ग के आदि में आत्मरूपी समुद्र से तरङ्गवत् फुरा है, उस के पश्चात् दृश्य कलना हुई है सो न देश है, न काल है, न क्रिया है, न यह सब असत्रूप है; वास्तव में कछ नहीं। ऐसे जानकर संसार के

सुख,दुःख, हर्ष, शोक,राग, द्वेषसे रहित होकर बिचरो तब तुम मायासे तरजावोगे ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसम्वेदनविचारोनामएकोनपञ्चाशत्तमस्सर्ग्गः ४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! बास्तव में इन्द्रियादिक गण कुछ उपजे नहीं; आदि ब्रह्माकी उत्पत्ति जैसे मैंने तुमसे कहीहै सो सब तुमनेसुनी और जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है तैसे और भी उपजे हैं । हे रामजी ! जीवपुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी जैसी भावना करतागया है तैसेही तैसे भासने लगा है और फिर उसीकी सत्तापाकर अपनेअपने बिषयको ग्रहण करनेलगेहैं, बास्तवमें इन्द्रियां भी कुछबस्तुनहीं । सब आत्मा के आभाससे फुरतीहैं; इंद्रियां और इन्द्रियोंके विषय ये सम्वेदन से उपजे हैं सो जैसे उपजे हैं तैसे तुमसे कहे हैं । हे रामजी ! शुद्ध सम्बित् सत्तामात्रसे जो अहं उल्लेख हुआहै सोही सम्वेदन हुई है । वही सम्वेदन जीवरूप पुर्यष्टका भावको प्राप्तहो और बुद्धि, मन और पंचतन्मात्रा को उपजाकर आपही उनमें प्रवेशकर स्थितहुई है उसको पुर्यष्टका कहते हैं परन्तु यह उपजी भी स्पन्दमें है आत्मा से कुछनहीं उपजा । वह आत्मा न एक है, न अनेक है और परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है और उसमें वेदनाभी अनन्यरूप है । हे रामजी ! उसमें न कोईद्वैत कलना है और न कुछ मनशक्ति है केवल शांत और सत्ता है उसी को परमात्मा कहते हैं जो मनसहित षट् इन्द्रियोंसे अतीत अचैत्य चिन्मात्रहै उस-से जीव उत्पन्नहुआ है । यहभी मैं उपदेशके निमित्त कहताहूं बास्तवमें कुछउपजा नहीं केवल भ्रममात्रहै । जहांजीव उपजाहै वहांउसको अहंभाव विपर्ययहुआ है;यही अविद्या है सो उपदेशसे लीनहोजाती है । जैसे निर्मलीसे जलकी मलिनता लीनहो जाती है तैसेही गुरु और शास्त्रकेउपदेशको पाकर जब अविद्यालीन होजाती है तब भ्रमरूपआकार शांत होजाते हैं और ज्ञानरूप आत्माशेष रहताहै जिसमें आकाश भी स्थूल है । जैसे परमाणु के आगे सुमेरु स्थूल होता है तैसेही आत्माके आगे आकाश स्थूल है । हे रामजी ! आत्माकेआगे जो स्थूलता भासती है सो भ्रममात्र है । जो बड़े उदार आरम्भ भासतेहैं सोतो असत् हैं तब और पदार्थों की क्याबात है ? हे रामजी ! आत्मामें जगत् कुछनहीं पायाजाता क्योंकि; बस्तु असम्यक् ज्ञान से भासती है और सम्यक् ज्ञानसेनहीं पाईजाती । जो कुछ-जगत्जाल भासते हैं वे सब मायामात्र हैं उनसे कुछ अर्थ सिद्धनहीं होता । जैसे मृगतृष्णा का जल पान नहीं किया जाता तैसेही जगत् के पदार्थों से कुछ परमार्थसिद्धि नहीं होती, सब अज्ञान से भासते हैं । हे रामजी ! जो बस्तु सम्यक् ज्ञान से पाइये उसे सत् जानिये और जो सम्यक्ज्ञानसे नरहे उसेभ्रममात्रजानिये । यहजीव पुर्यष्टका अविद्धकभ्रमहै, असत्हीसत्हो भासताहै और जबगुरु औरशास्त्रोंका बिचारहोता है तब जगत्भ्रम

मिटजाता है। पुर्यष्टकामें स्थितहोकर जीव जैसी भावना करताहै तैसी सिद्धिहोती है। जैसे बालक अपनी परछाहींमें बैताल कल्पताहै तैसेही जीवकला अपने आपमें देश, काल, तत्त्वआदिक कल्पतीहै और भावनाके अनुसार उसको भासते हैं। जैसे बीजसे पत्र, डाल, फूल, फलादिक विस्तार होताहै तैसेही तन्मात्रा से भूतजात सब भीतर बाहर देश, काल, क्रिया, कर्महुआहै। आदि जीव फुरकर जैसासंकल्प धारताहैतैसेही हो भासता है सो यह सम्वेदनभी आत्मासे अनन्यरूप है। जैसे मिरचमें तीक्ष्णता और आकाशमें शून्यता अनन्यरूपहै; तैसेही आत्मामें सम्वेदन अनन्यरूपहै। उस सम्वेदनने उपजकर निश्चय धाराहै कि, ये पदार्थ ऐसे हैं ये ऐसे हैं सो तैसेही स्थित हुये अन्यथा कदाचित् नहींहोते। आदिजीवने फुरकर जो निश्चय धाराहै उसीका नाम नीति है और स्वरूपसे सर्व आत्मसत्ता है; आत्मसत्ताहीरूप धारकर स्थित हुआहै। जैसे एकही पौंड़ेकारस शक्कर आदि और मृत्तिका घट पटादिक आकारको धारती है तैसेही आत्मसत्ता सर्वज्ञानको पातीहै। जैसे एकही जलका रस पत्र, डाल, फूल, फलादिक होकर भासताहै तैसेही एकही आत्मसत्ता घटपट और दीवार आदिक आकारहोभासतीहै। हेरामजी! जैसे आदि जीवने निश्चय कियाहै तैसेहीस्थित है अन्यथा कदाचित् नहींहोता परन्तु जगत्कालमें ऐसे हैं; बास्तवमें न बिम्बहै और न प्रतिबिम्ब है। ये द्वैत होते हैं सोद्वैत कुछनहीं केवल चिदानन्द ब्रह्म आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थितहै और देहादिकभी सर्व चिन्मात्रहै। हेरामजी! जो कुछ जगत् भासता है सो आत्माका किंचनरूप है। जैसे रस्सी सर्परूप भासती है तैसेही आत्मा जगत्रूप हो भासता है और जैसे सुवर्ण भूषणहो भासताहै तैसेही आत्मा दृश्यरूप हो भासता है जैसे सुवर्णमें भूषण कुछ बास्तवनहीं होते तैसेही आत्मामें दृश्य बास्तव नहीं। जैसे स्वप्नका पत्तनदेश असत्ही सत्हो भासता है तैसेही जीवको देह और भासती है। हे रामजी! आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों है परन्तु फुरनेसे अनेकरूप धारती है। जैसे एकनटवा अनेक स्वांग धारता है तैसेही आत्मसत्ता देहादिक अनेकआकार धारती है और जैसेस्वप्ने में एकही अनेकरूप धारचेष्टा करता है, तैसेही जगत् में आत्मसत्ता नानारूप धारती है हेरामजी! आत्मा नित्यशुद्ध और सबका अपना आप है। अपने स्वरूप के प्रमादसे आप से आपका जन्ममरण जानता है पर वह जन्ममरण असत्रूप है। जैसे कोई पुरुष आपको स्वप्ने में श्वानरूप देखे तैसेही यह आपको जन्मतामरता देखताहै। जैसे इसको पूर्वभावना है और भ्रमसे असत्को सत्जानताहै और जैसे स्वप्नमें वस्तुको अवस्तु और अवस्तुको वस्तु देखता है; तैसेही जाग्रत् में विपर्यय देखताहै। जैसे जाग्रत्के ज्ञानसे स्वप्नभ्रम निवृत्त होजाताहै तैसेही आत्मा अधिष्ठानके ज्ञानसे जगत्

भ्रम निवृत्त होजाता है। जैसे पूर्वका दुष्कृत कर्म्मकियाहो तो उसकेपीछे सुकृत कर्म्म करे तो वह घटजाता है तैसेही पूर्व संस्कारसे जब नीचवासना होती है और फिर आत्मतत्त्वका अभ्यास करता है तो पुरुष प्रयत्नसे मलिन वासना नष्ट होजाती है। जबतक वासना मलिन होती है तबतक उपजता विनशता और गोते खाता है और जब संतोंके संग और सत्शास्त्रोंके विचारसे आत्मज्ञान उपजता है तब संसारबन्धन से छूटता है–अन्यथा नहीं छूटता। हे रामजी! वासनारूपी कलंकसे जीव घेराहुआ है और देहरूपी मन्दिरमें बैठकर अनेकभ्रम देखाता है। आदिजीवको जो फुराहै सो अपने स्वरूपको त्यागकर अनात्म भ्रमको देखा। जैसे बालक परछाहीं में भूतकल्पे, तैसेही जीवने कल्पकर जैसी भावनाकी तैसाही भासनेलगा। आदिजीव पुर्यष्टका में स्थितहुआ है। बुद्धि, मन, अहंकार और तन्मात्राकानाम पुर्य्यष्टकाहै और अन्तवाहक देह है। चैतन्य आत्मा अमूर्त्तिहै; आकाशभी उसके निकट स्थूल है, प्राणवायु गुच्छे के समान है और देहसुमेरुके समान है। ऐसा सूक्ष्मजीव है। सुषुप्त जड़रूप और स्वप्न भ्रम दोनों अवस्थाओं में स्थावर–जङ्गमरूपी जीव भटकते हैं; कभी सुषुप्तिमें स्थितहोते हैं और कभी स्वप्नमें स्थितहोते हैं। इसीप्रकार दोनों अवस्थाओं में जीव भटकतेहैं। हे रामजी! सबकादेह अंतवाहक है और उसी देहसे सबचेष्टा करते हैं। कभी स्थावरमें जाकर वृक्ष और पत्थरादिक योनिपाते हैं। जबस्वप्नमें होतेहैं तबजंग-मयोनिपाते हैं सोभी कर्म्मवासनाके अनुसार पातेहैं; जब तामसी वासना घनहोती है तबकल्पवृक्ष चिंतामण्यादिक स्वरूपको प्राप्तहोते हैं; जब केवल तामसी घनमोह-रूपी होती है तबवृक्ष और पत्थरादिक योनिपाते हैं। इसकानाम सुषुप्ति है सो लय घनमोहरूप है और इससे भिन्न जंगमविक्षेपरूप स्वप्न अवस्थाहै, कभी ‾समें होता है और कभी सुषुप्तिरूप स्थावर होताहै। हे रामजी! सुषुप्ति अवस्थामें वासना सुषु-प्तिरूप होती है सो फिर उगती है इससे मोहरूप है। उस सुषुप्तिसे जब उतरता है तब विक्षेपरूप स्वप्नाहोता है और जब बोधहो तबजाग्रत् अवस्थापावे। जाग्रत् दो प्रकारकी है। जाग्रत्वही है जो लय और विक्षेपतासे रहित चेतन अवस्था है; उससे रहित और मनोराज सब स्वप्नरूप है। एक जीवन्मुक्ति जाग्रत्है और दूसरी विदेह-मुक्ति है। जीवन्मक्ति तुरीयारूप है और विदेहमुक्ति तुरीयातीत है। यह अवस्था जीवको बोधसे प्राप्तहोती है और जीवको बोध पुरुष प्रयत्नसे होताहै–अन्यथा नहीं होता। हे रामजी! जीवका फुरना ज्ञानरूप है। यदि दृश्यकी ओर लगता है तो वही रूप होजाता है और यदि सत्की ओर लगता है तो सत्रूप होजाता है एवम् जब दृश्यके सन्मुख होता है तब दीर्घभ्रमको देखता है। जीवके भीतर जो सृष्टिरूपहो फुर‾ा है सोभी आत्मसत्तासे कुछ भिन्न बस्तु नहीं है। जैसे ब‾लोहीमें दानोंकेसमान

जलउछलता है सो उस जलसे वस्तु भिन्ननहीं तैसेही आत्मा के सिवा जीवके भीतर और कुछ वस्तुनहीं और सृष्टि जो भासती है सो मायामात्र है। हे रामजी! जीवको स्वरूप के प्रमादसे सृष्टि भासती है और सत्वत् होगई है उससे नानाप्रकार का विश्वभासता है और नानाप्रकारकी वासना फुरती है उससे बन्धमान हुआहै। जब वासना क्षयहो तब मुक्तिरूपहो। हे रामजी! घनबासना मोहरूपकानाम सुषुप्ति जड़ अवस्थाहै और क्षीण स्वप्नरूप । जब स्वरूपका प्रमादहोताहै तब दृश्यमें सत्बुद्धि होतीहै और जब उसमें प्रतीति होतीहै तब नानाप्रकार की वासना उदय होतीहै पर जब स्वरूपका साक्षात्कार होताहै तब संसार सत्यता नाशहोजाती है–फिर वासना नहींफुरती। हेरामजी! घनवासना तबतक फुरतीहै जबतक दृश्यकी सत्बुद्धिहोतीहै और जब जगत्का अत्यन्त अभाव होताहै तबवासना भी नहीं रहती। जैसे भूषण पिघला कर जब सुवर्णकिया तब भूषण बुद्धिनहीं रहती। जो वस्तुअज्ञानसे उपजी है सो ज्ञानसे लीन होजाती है, एवंवासना भ्रम अबोधसे उपजाहै और बोधसेलीन होजाता है। हे रामजी ! घनबासना से सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है और तनु बासना से स्वप्नदेखता है। घनबासना मोहसे जीव स्थावर अवस्थाको प्राप्तहोताहै; मध्यवासनासे तिर्य्यक्योनि पाताहै अर्थात् पशु, पक्षी और सर्प्पादिक होताहै; तनु बासना से मनुष्यादिक शरीर पाता है और नष्टबासनासे मोक्षपाता है। हे रामजी! यह जगत् सब संकल्पसेरचाहै। घटपट आदिक जो बाहरदेखते और ग्रहणकरतेहो वही हृदय में स्थित होजाते हैं और जब उनको ग्रहण करतेहो तो ग्राह्य ग्राहक का सम्बन्ध देखतेहो कि, यह मैंने ग्रहणकिया है और यह मैंनेलियाहै। जो ज्ञानवानहै वह न ग्रहणकरने का अभिमान करताहै और न कुछ त्यागने का अभिमान करताहै उसको भीतर बाहर सब चिदाकाश भासता है। चेतन सत्ताका यह चमत्कारहै; तीनोंजगत्रूप होकर वही प्रकाशता है रंचकमात्र भी कुछअन्य नहीं–केवल आत्म सत्ताअपने आपमेंस्थित है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग और बुदबुदे होकर भासतेहैं परन्तु जलहीजलहै–जलसेकुछ भिन्ननहीं तैसेहीआत्माजगत्रूप होकरभासताहै द्वैतनहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशोनामपंचाशत्तमस्सर्गः ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! जैसे जीवको स्वप्नमें जो संसार उदय होताहै वहकल्पनामात्र होताहै, न सत्है और न असत्है जीवके फुरनेसेही भ्रमभासताहै; तैसेही यह जाग्रत अवस्था भ्रममात्र है–स्वप्न और जाग्रत एकरूपहै। जैसे स्वप्नमें जाग्रत का एकक्षण भी दीर्घकाल होताहै तैसेही स्वरूपके प्रमादसे जाग्रतभी दीर्घकालका भ्रमहुआ है जिससे सत् को असत् जानता है और असत् को सत्जानताहै; जड़ को चेतन जानता है और चेतन को विपर्य्यय ज्ञानसे जड़ जानता है। जैसे स्वप्न में

एकही जीव अनेकताको प्राप्तहोताहै; तैसेही आदिजीव एकसे अनेकहोकर भासता है। जैसे किसी स्थान में चोर भ्रम भासता है तैसेही आत्मा तीनों जगत् भ्रम भासता है । जैसे सुषुप्त से स्वप्नभ्रम उदय होता है तैसेही अद्वैत तत्त्व आत्मा में जगत्भ्रम होता है । आत्मा अनन्त सर्बगत जीव का बीजरूप है जैसा उसके आश्रय फुरना होता है तैसाही सिद्धहोकर भासता है। हे रामजी ! जिस पुरुषकी स्वरूपमें स्थितिहुई है वहसदा निःसंग होकर बिचरताहै। जैसे विष्णुजीके निःसंगताके उपदेशसे अर्जुन मुक्तहोकर बिचरेंगे; तैसेही, हे महाबाहो ! तुमभी बिचरो। हे रामजी ! पाण्डवके पुत्र अर्जुन जैसे सुखसे जन्म व्यतीत करेंगे और सब व्यवहारों मेंभी सुखी और स्वस्थ रहेंगे तैसेही तुमभी निस्सङ्गहोकर बिचरो। रामजीने पूछा, हे ब्राह्मण ! पाण्डवके पुत्र अर्जुन कबहोंगे और कैसे विष्णुजी उनको निःसंग का उपदेश करेंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अस्ति तन्मात्र तत्त्वमें आत्मादिक संज्ञा कल्पकर कही हैं। जैसे आकाशमें आकाश स्थितहै तैसेही निर्मल तत्त्व अपने आप में स्थितहै; जैसे सुवर्णमें भूषण औरसमुद्रमें तरङ्ग फुरते हैं तैसेही आत्मामें चौदह प्रकार के भूतजाति फुरते हैं और जैसे जालमें पक्षी भ्रमते हैं तैसेही जगत् में जीव भ्रमते हैं और चन्द्रमा, सूर्य, लोकपाल होकर स्थितहैं और उन्होंने पंचभूतोंकेकर्म्म रचेहैं कि;यह पुण्यग्रहण करनेयोग्यहै और यहपाप त्यागनेयोग्यहै; पुण्यसे स्वर्गादिक सुख प्राप्तहोताहै और पापसे नरकहोताहै। यह मर्यादालोकपालने स्थापनकीहै। इस प्रकारसंसाररूपी नदीमें जीवबहतेहैं। संसाररूपी नदी अवच्छिन्नरूप बहतीभासती है पर क्षणक्षणमें नष्ट होतीहै। इस जगत्में सूर्य्यकेपुत्र यमराज लोकपाल बड़े प्रतापवान् और तेजवान् हैं और सब जीवोंको मारतेहैं और उस पतित प्रवाह कार्य्यके कर्म्म में स्थित हैं। उनका जीवोंको मारना और दण्डदेनाही नियमहै परन्तु चित्त में पहाड़कीनाईं स्थितहैं। वे यमराज चारचार युगोंप्रति कभीआठ,कभीसात;कभीबारह वा सोलह बर्षोंका नियमधारके किसीजीवको नहींमारते और उदासीनकीनाईं स्थित होते हैं। जब पृथ्वीमें अधिकभूत होजातेहैं और चलनेको मार्गनहींरहता औरकोई दुष्टजीव जीवोंको दुःखदेते हैं उससे पृथ्वीभारी और दुःखीहोतीहै तब पृथ्वीके भार उतारनेके निमित्त विष्णुजी अवतार धारकर दुष्टजीवों का नाश करतेहैं और धर्म मार्गको दृढ़करतेहैं। हे रामजी ! इसप्रकार नियमके धारनेवाले यमको अनन्तयुग अपने व्यवहार को करते व्यतीतहोगये हैं और भूत और जगत् अनेक होगयेहैं। इस सृष्टिका जो अब वैवस्वत यमहै सो आगे द्वादशबर्ष पर्यंत नियम करेगा और किसीको न मारेगा तब जीव क्रूरकर्म करने लगेंगे और पृथ्वी भूतोंसे भरजावेगी। जैसे वृक्षगुच्छोंके साथ संघट्टहोजातेहैं तैसेही पृथ्वी प्राणियोंके साथ संघट्ट होजावेगी

और जैसे चोरसे डरकर स्त्री भर्त्ताकी शरणजाती है तैसेही पृथ्वी भी दुःखित होकर विष्णुकी शरण जावेगी तब विष्णुजी दो देह धारकर पृथ्वीका भार उतारेंगे और सन्मार्ग स्थापन करेंगे । सब देवता भी अवतार लेकर उनकेसाथ आवेंगे और नरोंमें नायकभावको प्राप्तहोंगे । एकदेहसे तो विष्णुभगवान् वसुदेवके गृहमें पुत्ररूप कृष्ण नामसेहोंगे और दूसरीदेहसे पाण्डवकेगृह अर्जुन नामसे युधिष्ठिरनाम धर्म्मके पुत्र होंगे और समुद्रजिसकी मेखलाहै ऐसी जो पृथ्वी है तिसकाराज्यकरेंगे । उसके चचा के पुत्रका दुर्योधन नामहोगा और उसका और भीमका बड़ायुद्धहोगा । दोनों ओर संग्रामकी लालसाहोके अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठीहोकर बड़े भयानक युद्धहोंगे और उनके बलसे हरि पृथ्वीका भार उतारेंगे । हे रामजी ! उससेनाके युद्धमें विष्णु का अर्जुन नाम देहहोगा जो गांडीव धनुषधारके प्रकृतस्वभावमें स्थितहो हर्षशोकादिक विकार संयुक्त निरधर्मा होगा और युद्धमें अपने बांधवोंको देखकर मूर्च्छित होगा और मोह और कायरतासे उसके हाथसे धनुषगिरपड़ेगा और आतुर होगा तब बोधदेहसे उसको हरि उपदेश करेंगे । जब दोनों सेनाओंके मध्यमें अर्जुन मोहित होकरगिरेगा तब हरिकहैंगे कि; हे राजसिंह अर्जुन ! तू मनुष्यभावको प्राप्तहो क्यों मोहित हुआहै ? इस कायरता को त्यागकर; तू तो परमप्रकाश आत्मतत्त्वहै । सर्वकाआत्मा आनन्द, अविनाशी, आदि–अन्त–मध्यसे रहित; सर्वव्यापी, परम अंकुररूप, निर्मल, दुःखके स्पर्शसेरहित, नित्य, शुद्ध, निरामयहै । हे अर्जुन ! आत्मा न जन्मताहै, न मरताहै; होकरभी फिर कुछ और नहीं होता क्योंकि; अजनित, निरन्तर और पुरातन सर्बकी आदिहै । उसका शरीरके नाशहुये नाश नहींहोता तू क्यों वृथा कायरता को प्राप्तहुआहै ? ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनारायणावतारोनामएकपंचाशत्तमस्सर्ग्गः ५१ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! जो इसआत्मा को हन्तामानते हैं और हत होता मानते हैं वे आत्माको नहीं जानते । यह आत्मा न मरताहै और न मारताहै क्योंकि जो अक्षयरूप और निराकार आकाशसे भी सूक्ष्म है उस आत्मापरमेश्वरको कोई किसप्रकारमारे । हे अर्जुन ! तुम अहंकाररूप नहीं । इस अनात्म अभिमानरूपी मलको त्यागकरो; तुमजन्ममरणसे रहित मुक्तरूपहो । जिसपुरुषको अनात्ममें अहंभाव नहीं और जिसकीबुद्धि कर्त्तृत्व भोक्तृत्वसे लेपायमान नहीं होती वह पुरुष सब विश्वको मारे तौभी उसको नहीं मारता और न बन्धमान होताहै । हे अर्जुन ! जिस को जैसा दृढ़निश्चय होता है उसको तैसाही अनुभव होताहै; इससे यह, मैं, मेरा इत्यादि जो मलिनसंवित् निश्चय होताहै उसको त्यागकर स्वरूप में स्थितहो । जो ऐसीभावनामें स्थित नहीं होते और आपको नष्टहोता मानते हैं सो सुखदुःखसे राग

द्वेषमें जलते हैं। हे अर्जुन ! वे अपनेगुणोंके असंख्यकर्मोंमें वर्त्तते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनसे पांचोंतत्त्व–आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उपजे हैं और उनभूतों के अंश श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका बिषयोंमेंस्थित हैं वे अपने विषयको ग्रहण करती हैं। नेत्र–रूप, त्वचा–स्पर्श; जिह्वा–रस, नासिका–गन्ध और श्रवण–शब्द ग्रहण करतेहैं; उसमें अहंकारसे जो मूढ़ हुआ है वह आप को कर्त्ता मानता है कि; मैं देखताहूं, सुनताहूं, स्पर्शकरताहूं, स्वादलेताहूं और गन्ध लेताहूं। हे अर्जुन ! ये सवकर्म कलनासे रचेहैं। इन्द्रियोंसे कर्म होतेहैं और अहं-भावसे जीव वृथाक्लेशका भागी होताहै। बहुत ने मिलकरकर्मकिया और इसमें एक-ही अभिमानी होकर दुःखपाताहै। बड़ा आश्चर्यहै कि, देह और इन्द्रियोंसे कर्म होते हैं और जीव अभिमानी होकर सुख, दुःख और राग,द्वेषसे जलताहै। इससे इनका संग और अभिमान त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहो। योगी केवल इन्द्रियों से कर्म करता है और उनमें अभिमान वृत्ति नहींकरता। हे अर्जुन ! इस जीवको अहंकारही दुःखदायक है कि, अनात्म में आत्मअभिमान करताहै। जो अभिमान रूपी बिषके चूर्णसे रहितहोकर चेष्टा करता है वह दुःखका कारण नहीं होता; वह सदा सुखरूप है। हे अर्जुन ! जैसे सुन्दर शरीर विष्ठा और मलसे मलिन कियाहो तो उसकी शोभा जातीरहती है तैसेही बुद्धिवान् शास्त्रका वेत्ता और गुणोंसे सम्पन्न भी हो पर यदि अनात्ममें आत्म अभिमानकरे तो उसकी शोभा जातीरहती है। जो निर्मल, निरहंकार, सुख,दुःखमें सम और क्षमावानहै वह शुभकर्म करे अथवा अशुभ करे उसको किसी कर्म्मका स्पर्श नहीं होता। हे अर्ज्जुन ! ऐसे निश्चयवान् होकर कर्मको करो। हे पांडवपुत्र ! युद्ध तुम्हारा परम धर्म है उसे करो। अपना अतिक्रूर कर्म्म भी कल्याण करताहै। परायाधर्म्म उत्तम भी दुःखदायक है और अपनाधर्म्म अल्पभी अमृतकीनाईं सुखदायकहै। हे अर्जुन! चाहे जैसा कर्मकरो; यदि तुम्हारेमें अहंभाव नहोगा तो वह तुमको स्पर्शनकरेगा। संग अभिमानकोत्याग और योगमें स्थित होकर कर्म करो। जो निःसंग पुरुष है उसको कोई कर्म प्राप्तहो पर वह उस को करता हुआ बन्धमान नहींहोता। इससे ब्रह्मरूप होकर ब्रह्ममय कर्म करो तब शीघ्रही ब्रह्मरूप होजावोगे। जोकुछ आचार कर्महो उसे ब्रह्ममें अर्पण करो। संन्या-स योग युक्तिसे कर्मोंको करते भी मुक्तिरूप होगे। इतना सुन अर्जुन ने पूंछा, हे भगवन् ! संगत्याग, ब्रह्म अर्पण, ईश्वरअर्पण और योग किसको कहते हैं ? मोहकी निवृत्तिकेलिये इनको पृथक् पृथक् कहिये ? श्रीभगवान्वोले। हे अर्जुन ! प्रथम तुम यहसुनो कि,ब्रह्म किसकोकहतेहैं।जहां सब संकल्प शान्तहैं केवल एक घन वेदनाहै; दूसरी भावनाका उत्थान नहीं केवल अचेत चिन्मात्रसत्ताहै उसको परब्रह्म कहतेहैं।

उसको जानकर उसके पानेका उद्यमकरना और जिस विचारसेउसकोपाइये उसका नाम ज्ञानहै। उसमें स्थित होनेका नाम योगहै। ऐसा निश्चय करना कि, यह सर्व ब्रह्महै; मैं ब्रह्महूं और सब जगत् मैंहीं"; और ब्रह्मसे भिन्नकुछ भावना न करना इस का नाम ब्रह्म अर्पणहै। नानाप्रकार का जो जगत् भासताहै सो क्या है ? भीतरभी शून्यहै और बाहरभी शून्यहै। जिसकी शिलाकीउपमाहै ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है सो न शून्य है, न शिलावत् है; उसके आश्रय स्पन्द कलना स्फूर्त्तिकीनाईं अन्यवत् जगत्रूप होकर भासती है परन्तु आकाशकी नाईं शून्य है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे अनेकरूप होकर स्थित होते हैं सो जलही हैं और कुछ नहीं एक जलही अनेकरूप भासता है; तैसेही एकही वस्तु सत्ता घट, पट आदिक आकार होकर भासती है। संवित्सार आत्मामें भेदकलना कुछ नहीं; अज्ञान से अनेकरूप भेदकलना विकल्प जाल भासते हैं और अनेक भावको प्राप्तहोते हैं। आत्माको अनेक नाम रूप देखना और भिन्नभिन्न देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्ध्यादिक अनेक में अहंप्रतीतिसे एकत्रभाव देखनाअज्ञानता है। यहकलना ज्ञानसे नष्ट होजाती है। हे अर्जुन ! संकल्पजालों को त्याग करने का नाम असंग कहते हैं। सब कलना जालोंको भी ईश्वरसे भिन्न न जानना इस भावनासे द्वैत भाव गलित होजावेगा—इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं। हे अर्जुन ! जब ऐसी अभेद भावना होती है तब आत्मबोध प्राप्तहोता है। बोधसे सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं; सब शब्दों का एकही श्ब्द भासता है और एकही अर्थ सब शब्दोंमें भासता है। हे अर्जुन ! सर्व जगत् मैंहूं; दिशा और आकाश मैंहूं और कर्म, काल, द्वैत, अद्वैत मैंहींहूं; तू मुझसे मनलगा, मेरीभक्तिकर, मेराही भजन कर और मुझहीको नमस्कार कर तब तू मुझहीको प्राप्तहोगा। हे अर्जुन ! मैं आत्माहूं और तुम मेरेही परायणहो। अर्जुन बोले, हे देव ! आपके दो रूप हैं—एकपर और दूसरा अपर; उन दोनों रूपोंमें मैं किसका आश्रय करूं जिससे मैं परम सिद्धिपाऊं ? श्रीभगवान् बोले, हे अनघ ! एक समान रूप है और दूसरा परमरूप है। यहजो शंख, चक्र गदादिक संयुक्त है सो तो मेरा समानरूप है और परमरूप आदि अन्तसे रहित एक अनामय है उस ब्रह्मरूपको आत्मा और परमात्मा आदिक नामसे कहते हैं। जबतक तुम अप्रबोध हो और तुमको अनात्म देहादिकमें आत्म अभिमान है तबतक मेरे चतुर्भुज आकारकी पूजाके परायणहो और कर्मोंको करो, और जब प्रबोधहोगे तब मेरे परमरूप को प्राप्तहोगे जो आदि—अन्त—मध्यसे रहित है। उसको पाकर फिर जन्म—मरणमें न आवोगे। जब तमसे शत्रुओंके नाशकर्त्ता और ज्ञानवान् हुये तब आत्मा से मेरा पूजन करो। मैं स का आत्माहूं। हे अर्जुन ! मैं मानताहूं कि, तुम अब प्रबोधहुये

हो, आत्मपदमें बिश्राम पाया है और संकल्प कलनासे रहित एकआत्मसत्तामें स्थित होकर मुक्तहुयेहो। ऐसेयोगसे तुम सर्वभूतोंमें स्थितहोकर आत्माको देखोगे; सब भूतोंको आत्मामें स्थित देखोगे और सर्वत्रमें तुमको समबुद्धिहोगी तब स्वरूप में तुमको दृढ़स्थिति होगी। हे अर्जुन! जो सर्वभूतों में स्थित आत्माको देखता है और एकत्वभाव से भजन करताहै और जिसको आत्मासे भिन्न और भावना नहीं फुरती वह सर्व प्रकार वर्तमानभी है तौभी फिर जन्म मरणमेंनहीं आता। हे अर्जुन! जिस में सर्व शब्दों का अर्थ है और जो सर्वशब्दों में एक अर्थरूप है ऐसी आत्मसत्ता न सत् है, और न असत् है; सत्–असत्से जो रहित सत्ता है सो आत्मसत्ताहै। वह सब लोगोंके चित्तमें प्रकाशरूप करके स्थित है। हे भारत! जैसे दूधमें घृत और जलमें रसस्थित होता है तैसेही मैं सबलोगों के हृदय में तत्त्वरूप स्थितहूं। जैसे दूधमें घृत स्थित है, तैसेही सब पदार्थों के भीतर मैं आत्मा स्थितहूं। और जैसे रत्नोंके भीतर बाहर प्रकाश होता है, तैसेही मैं सर्व पदार्थोंके भीतर बाहर स्थितहूं। जैसे अनेक घटोंके भीतर बाहर एकही आकाश स्थित है तैसेही मैं अनेक देहोंके भीतर बाहर अव्यक्त स्वरूप स्थितहूं। हे अर्जुन! ब्रह्मा से आदितृण पर्यंत सर्व पदार्थों में सत्ता समान से मैं स्थितहूं और नित्य अजन्माहूं। मुझमें जो चित्तसंवेदन फुरा है सो ब्रह्मसत्ता की नाईं हुआ है और फुरने से जगत्रूप हो भासता है पर आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है–कुछ द्वैत नहीं। हे अर्जुन! आत्मा सबका साक्षीरूप है–उसको जगत् का सुखदुःख स्पर्श नहीं करता। जैसे दर्पण प्रतिबिम्बको ग्रहण करता है परंतु सबमें सम है और किसीसे खेदवान् नहीं होता; तैसेही सब पदार्थ अवस्थाका साक्षीभूत आत्मा है परन्तु किसीको स्पर्श नहीं करता और शरीरकेनाशमें उसका नाशनहींहोता। जो ऐसा देखताहै सोही यथार्थ देखता है। हे अर्जुन! पृथ्वीमें गन्ध, जलमें रस, पवनमें स्पर्श और स्पन्दशक्ति मैंहीहूं; अग्निमें प्रकाश और आकाशमें शब्दशक्ति मैंहीं हूं। तुमसे क्याकहूं कि, यह मैंहूं। सर्वात्म सर्वका आत्मामैंहूं–मुझसे कुछभिन्ननहीं। हे पाण्डव! यहजो सृष्टि प्रवर्त्ततीहै और उत्पन्न और प्रलय होती दृष्टिआती है सो मुझमें ऐसे है जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और लीनहोतेहैं। जैसे पहाड़ पत्थररूपहै; वृक्षकाष्ठरूप है और तरङ्ग जलरूप है तैसेही सर्वपदार्थोंमें मैं आत्मारूपहूं। जो सबभूतोंको आत्मा में देखता है सो आत्माको अकर्त्ता देखता है। जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरङ्ग और सुवर्णमें भूषण भासते हैं तैसेही नाना आकार आत्मामें भासते हैं। हे अर्जुन! ये नाना प्रकारके पदार्थ ब्रह्मरूप हैं–ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं; तब और क्या कहिये; भाव बिकार क्या कहिये और जगत् द्वैत क्या कहिये? जो सब वही है तो वृथा मोहित

क्योंहोते हो ? इसप्रकार सुनकर बुद्धिमान् इसलोकमें समरसचित्तविचरते हैं। हे अर्जुन! उसपदको तुम क्योंनहीं प्राप्त होते जो पुरुष निर्वाण और निर्मोह न्ये हैं और जिनकी अभिलाषा और द्वेष अभिलाषा निवृत्त हुई है वे अव्यय पदको प्राप्त हुये हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअर्जुनोपदेशोनामद्विपंचाशत्तमस्सर्गः ५२॥

श्रीभगवान् बोले, हे महाबाहो! फिर मेरे परम वचन सुनो; मैं तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त कहताहूं क्योंकि; तुम्हारा हितकारीहूं। ये जो शीतोष्णविषयहैं सो इन्द्रियों ` छूतेहैं अ र आगमापायी हैं अर्थात् आते हैं और फिर निवृत्त होजाते हैं इससे अनित्य हैं; इनको सहकर तुम आत्माको स्पर्श नहींकरते। तुमतो एकआत्मा आदि-अन्त–मध्यसे रहित, निराकार, अखण्ड और पूर्णहो तुमको शीत, उष्ण, सुख, दुःख खण्डित नहीं करसक्ते; ये कललासे रचेहुये हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण का निवास है तैसेही आत्मा में इनका असत् निवास है। हे भारत! जिसको इन्द्रियों के भ्रमरूप भोग और स्पर्श चलायमान नहीं करसक्ते और सुखदुःख समहैं उस पुरुषको मोक्ष की प्राप्तिहोती है। हे अर्जुन! आत्मा नित्य, शुद्ध और सर्व्वरूपहै और इन्द्रियों के स्पर्श असत्रूपहैं इसलिये असत्रूप सत्रूप आत्माको मोह नहीं करसक्ते। यह अल्पमात्र तुच्छ है और बोधरूप आत्मतत्त्व सर्व्वगत शुद्धरूप है; उसको इनका स्पर्श कैसेहो–सत्को असत् स्पर्श नहीं करसक्ता। जैसे रस्सीमें सर्प आभास होता है सो रस्सीको स्पर्श नहीं करसक्ता; जैसे मूर्त्तिकी अग्नि काग़ज़ को जलानहीं सक्ती और जैसे स्वप्ने के क्षोभ जाग्रत् पुरुष को स्पर्शनहीं करसक्ते; तैसेही इन्द्रियां और उनके विषय आत्मा को स्पर्श नहीं करसक्ते हैं। हे अर्जुन! जो सत्है सो असत् नहीं होता और जो असत् है सो सत्नहीं होता। सुख, दुःखादिक असत्रूपहैं और परमात्मा सत्रूप है। जगत् के सत्वस्तु घटादिक और आकाश के असत्फलादिक त्यागसे जो निष्किञ्चन महासत् पदशेष रहे उसमें स्थितहो। हे अर्जुन! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्टसे चलायमान नहींहोता; वह इष्टसुखसे हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट दुःखसे शोकवान् नहीं होता चेतन पाषाणवत् शरीर में स्थित होता है। हे साधो! यह चित्त भी जड़है और देह इंद्रियादिक भी जड़हैं। आत्मा चेतनहै इनके साथ मिलाहुआ आपको देहक्या देखताहै? चित्त और देहभी आपसमें भिन्नभिन्न हैं; देहके नष्टहुये चित्तनहीं नष्टहोता और चित्तकेनष्टहये देह नहीं नष्ट होता। इनके नष्टहुये जो आपको नष्ट हुआ मानता है और इनके सुख दुःखसे सुखी दुःखी होता है वह महामूर्ख है। हे अर्जुन! स्वरूपके प्रमाद से जो देहादिक में अहंप्रतीत करता है और आपको भोक्ता मानता है वह निर्बुद्धि है। जब आत्माका बोधहोता है तब

आपको अकर्त्ता, अभोक्ता और अद्वैत देखता है। जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्प भासता है और रस्सीके बोधसे सर्पका अभाव होता है; तैसेही आत्माके अज्ञानसे देह और इन्द्रियोंके सुखदुःख भासते हैं और आत्मज्ञानसे सुखदुःखकाअभाव होजाता है। हे अर्जुन! यहविश्व एकअज ब्रह्मस्वरूप है। न कोई जन्मता है और न मरता है—यह सत् उपदेश है। हे अर्जुन! ब्रह्मरूपी समुद्र में तुम एक तरङ्ग फुरेहो और कुछ काल रहके फिर उसीमें लीन होजावोगे—इससे तुम्हारा स्वरूप निरामय ब्रह्म है। सब जगत् ब्रह्मकास्पन्द है और समय पाकर दृष्टि आताहै; इससे मान, मद, शोक और सुख, दुःख सब असत्रूप है। तुमशांतिमान् होरहो। हे अर्जुन! प्रथम तो तुम ब्रह्ममय युद्धकरो और जो कुछ अक्षौहिणी सेना है उसका अनुभवसे नाश करो। यह द्वैत कुछ नहीं एकही सर्वदा परब्रह्मरूपस्थित है। ब्रह्ममय युद्धकरे और सुख,दुःख, हानि,लाभ और जय, अजय इनकी उस युद्धमें एकता करो ब्रह्मा से लेकर तृण पर्य्यन्त जोकुछ जगत् भासता है सोसब ब्रह्महीहै, ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं; ऐसे जानके लाभ, हानि में सम होकर स्थितहो और चिन्तना कुछ नकरो। हे अर्जुन! जड़ शरीर से कर्म्म स्वाभाविक होतेहैं; जैसे वायुका फुरना स्वाभाविकहोता है तैसेही शरीरसे कर्म्म स्वाभाविक होतेहैं। हे अर्जुन! भोजन, यजन, दान इत्यादिक जो कुछ कार्य्य करो सो आत्माही में अर्पण करो; सदा आत्मसत्तामें स्थितरहो और सबको आत्मरूप देखो। हे अर्जुन! जो किसीके हृदयमें दृढ़निश्चय होताहै वहीरूप सको भासता है। जब तुम इसप्रकार अभ्यास करोगे तबब्रह्मरूप होजावोगे—इस में संशय नहीं। हे अर्जुन! जो कर्म्मोंमें आत्माको अकर्त्ता देखता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और सम्पूर्ण कर्म्मोंके करतेभी कुछनहीं करता। हे अर्जुन! कर्म्मोंके फलकी इच्छाभी नहो और कर्म्मोंसे विरसताभी नहो—योगमें स्थितहोकर कर्म्म को करो। हे धनंजय! कर्त्तृत्व के अभिमान और फलकी वांछाको त्यागकर कर्म्मकरो। जो कर्म्मोंके फल और संगको त्यागकर नित्यतृप्त हुआहै वह करता हुआभी कुछ नहीं करता। हे अर्जुन! जिसने सब आरम्भों में कामना और संकल्पका त्यागकिया है और ज्ञान अग्निसे कर्म्म जलाये हैं उसको बुद्धिमान् पण्डित कहते हैं। जोआत्मा में समस्थित है और सब अर्थोंमें निस्स्पृह और निर्द्वंद्वसत्ता में स्थित है यथाप्राप्ति में वर्त्तता है सो पृथ्वीका भूषण है और समुद्रकी नाई अचलऔर अपने आपमेंतृप्त है। जैसेसमुद्रमें अनिच्छितजल प्रवेश करताहै तैसेही ज्ञानवान्में सुख प्रवेश करते हैं। वह शान्तरूप सर्व कामनाओं से रहित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअर्जुनोपदेशेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनाम त्रिपंचाशत्तमस्सर्गः ५३॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! तुम देश, काल और बस्तुके परिच्छेद से रहित, अविनाशी और अजर आत्मा हो । अजर परिणामसे रहितको कहते हैं। हे अर्जुन! तुम शोक मतकरो; यह जगत् तुमको अज्ञानसे भासता है । अज्ञान अपने प्रमाद को कहते हैं और प्रमाद अनात्ममें आत्म अभिमान करनेका नाम है । हे अर्जुन ! यह जो संसाररूप तुम्हारादेह है इसमें अभिमान मतकरो—यह मिथ्या है—इसमें दुःख होताहै और तुम असंग और अविनाशीहो; तुम्हारा नाश कदाचित् नहींहोता। हे अर्जुन! जो विनाशरूप है वह कदाचित् न होगा और जो सत्य है उसकाअभाव न होगा । तत्त्ववेत्ताओंने इनदोनोंका निर्णयकिया है । हे अर्जुन ! जिसमें यह सर्व प्रकाशता है उसको तुम अविनाशीजानो उसको कोई विनाश नहींकरसक्ता । हे अर्जुन ! तुमऐसेहो और यह आत्मा सबका अपना आप है उसका विनाश कैसेहो ? अज्ञानी मनुष्य उसका विनाश होता मानते हैं । अर्जुनने पूछा, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, आत्मा अविनाशी है और सबका अपना आप है तो उनका क्योंकर नाश होताहै ? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! तुम सत्यकहतेहो । किसीकानाश नहीं होता परन्तु अज्ञान से अपना नाश होता मानते हैं। हे अर्जुन ! तुम आत्मवेत्ता होरहो। वह आत्मा एक अद्वैतहै जिसको एकभी नहीं कहसक्ते तो द्वैतकहांहो ? अर्जुनबोले, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, आत्मा एकहै तो मृत्युभी दूसरा न हुआ और लोग मरके नरकस्वर्ग भोगते हैं; यदि मृत्युनहीं तो लोगमरतेक्योंहैं और पाप पुण्य क्यों भोगते हैं ? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! न कोई मरता है और न जन्मता है—यह स्वप्नेकी नाईं मिथ्या कल्पना है । जैसे निद्रा दोषसे जन्मना और मरना भासता है तैसेही संसार में यह जन्ममरण अज्ञानसे भासता है । अज्ञान फुरनेका नाम है उस फुरनेहासे नरक और स्वर्गकल्पा है । हे अर्जुन ! जैसे यह जीव भोगता है सो तुम सुनो । इसजीवने अपने स्वरूपके प्रमादसे संकल्पके शरीर रचेहैं । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में मन, बुद्धि और अहंकारसे जीवप्रकाश करताहै। उससे मिलकर जैसी वासनाकरता है तैसाही आगे भोगता है । वह वासना तीन प्रकारकी है—एक सात्त्विकी; दूसरी राजसी और तीसरीतामसी । जैसी वासनाहोती है तैसाहीस्वर्ग और नरक बनजाता है । सात्त्विकी वासनासे स्वर्ग बनजाता है और भिन्नसे नरकादिक बनजाते हैं । स्वर्ग नरक केवल वासनामात्र हैं; वास्तवमें न कोई स्वर्ग है और न नरक है; न कोई मरता है, न जन्मता है केवल एक आत्माही ज्यों का त्यों स्थित है परन्तु यह जगत् भास भ्रम से भासता है । इस जीव ने अज्ञानसे चिरकाल वासना का अभ्यास कियाहै, उसीसे भ्रम देखताहै।अर्जुन बोले, हे जगत्पते ! यह जीव जो नरक, स्वर्गादिक योनि जगत् में देखता है उसका कारण कौन

है? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! अज्ञान से जो अनात्मामें आत्म अभिमान हुआ है उससे जगत्को सत्जानकर वासनाकरने लगा है और जैसेजैसे जगत् को सत् जान कर वासना करता है तैसेही जगत्भ्रम देखता है। जब आत्मविचार उपजता है तब जगत् को स्वप्ने की नाई देखता है और वासनाभी क्षयहोजाती है और जब वासना क्षयहोती है तब कल्याण होता है। फिर अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! चिर अभ्याससे जो संसार भ्रम दृढ़ हो रहा है सो किस प्रकार उपजा है और किसप्रकार लीन होगा? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मूर्खता और अज्ञता से जो अनात्म देहादिकमें आत्म भावना होती है उससे जगत्को सत्जान वासनाकरता है और उस वासना के अनुसार जगत्भ्रम देखता है पर जब स्वरूपका अभ्यास करता है तब वासनानष्ट होजाती है। इससे हे अर्जुन! तुम स्व पका अभ्यासकरो। अहं, मम आदिक वासनाको त्यागकर केवल आत्माकी भावनाकरो। यहदेह वासना रूप है; जब वासना निवृत्तहोगी तब देहभी लीनहो जावेगी और जब देहलीनहुई तब देश, काल, क्रिया, जन्म, मरणभी न रहेंगे। यह अपनेही संकल्पसे उठेहैं और भ्रमरूप हैं; उनकी वासनासे घेराहुआ जीव भटकता है। जब आत्मबोध होता है तब वासनासे मुक्तहोता है और निरालम्ब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्वपाताहै। उसीको मोक्ष कहते हैं। हे अर्जुन! जब जीवको तत्त्वबोध होता है तब वासनारूपी जालसे मुक्त होताहै औरजो वासनासे मुक्तहुआ सो मुक्तहुआ। यदिपुरुष सर्वधर्म परायणभीहो। और सर्वज्ञ और शास्त्रोंका वेत्ताभीहो पर यदि वासनासे मुक्तनहीं हुआ तो वह सब ओरसे बन्ध है जैसे दृष्टिके दोषसे निर्मल आकाशमें मोरके पुच्छवत् तोर भासते हैं तैसेही मूर्खको शुद्धआत्मा में वासनारूपी मलजगत् भासता है। जैसे पिंजरेमें पक्षी बंदहोता है तैसेही वह बन्धहोता है। जिसके हृदयमें वासना है वहबन्ध है और जिसके हृदयमें वासना नहीं है उसको मोक्षजानो। हे अर्जुन! जिसके हृदय में जगत् की वासना है वह यदि बड़ी प्रभुता संयुक्त दृष्टिआता है तौभीदरिद्री है और दुःख का भोगी है; और जिसकी वासना नष्ट हुई है वह यदि प्रभुतासे रहित दृष्टि आता है तौभी बड़ा प्रभुतावान् है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवनिर्णयोनामचतुःपंचाशत्तमस्सर्गः ५४॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! इसप्रकार तुम निरवासनिक जीवन्मुक्त होकर विचरो तब तुम्हारा अन्तःकरण शीतल होजावेगा; जरामरण से मुक्त और निःसंग आकाशवत् होगे और इष्ट अनिष्टकोत्याग बीतरागहोकर स्थितनहोगे। हे अर्जुन! पतित प्रवाहजो कार्य्य आन प्राप्त हो उसकोकरो और युद्धमें कायरता मतकरो। आत्मा अविनाशी है और देह नाशवन्त है; देहकेनाशहुये आत्मानाश नहीं होता।

हे अर्जुन ! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे रागद्वेषसे रहित होकर प्रवाह पतितकार्य्यको करते हैं। तुमभी जीवन्मुक्त स्वभाव होकर बिचरो और 'यह मैं करूं;' 'यह न करूं; इसग्रहण त्याग के संकल्पको त्यागो । इसीसे ज्ञानवान् बन्धवान् नहीं होते । जो मूर्ख हैं वे इसमें बन्धवान् होते हैं और जीवन्मुक्त पुरुष सुषुप्तवत् स्थित होकर प्रवाह पतित और प्रबुद्धकीनाईं वासनासे रहितहुये कार्य्यकरतेहैं । जैसे कच्छप अपनाअङ्ग समेटलेताहै तैसेहीज्ञानवान् वासनाको सकुचालेताहै और आपको चिन्मात्ररूपजानताहै । मुझमें जगत्मालाकेदानोंकीनाईं पिरोया हुआहै और सबजगत्मेराअङ्ग है। जैसे अपने हाथ पसारे और समेटे और जैसे समुद्रसे तरङ्गउठते और लीनहोते हैं; तैसेही विश्वआत्मामे उपजते और लीन होते हैं–भिन्नकुछ नहीं । हे अर्जुन ! जैसे चँदवेके ऊपर नाना प्रकारके चित्र लिखे होते हैं परन्तु वहरंग वस्त्रसे भिन्ननहींहोते; तैसेही आत्मामें मनरूपी चितेरेने जगत् रचा है और अनउपजाहोकर भासता है। जैसे थंभेमें चितेराकल्पना करता है कि, इतनी पुतलियां निकलेंगी सो आकाशरूपी पुतलियां उसके मन में फुरती हैं; तैसेही ये तीनों जगत् काल संयुक्त चित्तमें फुरते हैं । चितेराभी मूर्त्ति तब लिखता है जब उसके चित्तके भीतर कल्पना होती है पर यह आश्चर्य है कि, मन आकाशमें चित्र कल्पता है । हे अर्जुन ! यह चित्रस्पष्ट भासता है तौभी आकाशरूप है । जैसे स्वप्न सृष्टि आकाशरूप होती है तैसेही यह भी है आकाश और भीतमें भेद नहीं परन्तु आश्चर्य है कि, भेद भासता है । जैसे मनोराज स्वप्नपुरमें जगत् मनके फुरनेसे भासता है और अफुर हुये लय होजाता है सो मनो मात्र है; तैसेही यह मनोमात्र है और आकाशसे भी शून्यरूपहै । जैसे स्वप्न पुर और मनोराजमें एकक्षणमें बड़े कालका अनुभव होता है और पूर्वरूपके विस्मरणसे सत्हो भासता है तैसेही यह जगत् सत्हो भासता है । जबतक प्रमादहोता है तबतक भासता है पर जब इस क्रमसे आत्माको देखता है तब जगत् भ्रम निवृत्त हो जाता है यद्यपि प्रकट देखता है परन्तु लीन होजाताहै और शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भासता है । जैसे चितेरेकेमनमें चित्रफुरते हैं सो आकाशरूपहै तैसेही यहजगत् आकाशरूप है । हे अर्जुन ! भाव अभाववृत्तिको त्यागकर स्वरूपमेंस्थित हो तब आकाशवत् निर्मल होजावोगे । जैसेमेघकी प्रवृत्तिमेंऔर निवृत्तिमें आकाश निर्मलहीहोताहै, तैसेही तुमभीपदार्थके भावअभावमेंनिर्मलहो । जोकुछपदार्थ भासते हैंवे सबआकाशरूप हैं । जैसे चितेरेके मनमें पुतलियां भासती हैं तैसेही यह जगत् आकाशरूप है । जैसे एक क्षणमें मनके फुरनेसे नाना प्रकारके पदार्थ भासिआते हैं और अफुरहुये लीनहो जातेहैं; तैसेही प्रमादसे जगत् भासता है और आत्मा के जाननेसे लीन होजाता है । आत्मामेंजगत् निर्वाणरूप है प॰ आत्मामें एक निमेष

केफुरनेकेद्वारा प्रमादसे बज्रसारकी नाईं दृढ़हो भासता है और चित्तके फुरनेसे सत् भासता है यह सब जगत् आकाशरूप है—द्वैतकुछ हुआनहीं पर बड़ा आश्चर्य है कि, आकाश पर लिखे हुये चित्र नानारूप रमणीय होकर भासते हैं और मनको मोहते हैं। हे अर्जुन! यही आश्चर्य है कि, कुछ है नहीं और नानाप्रकारके रङ्ग भासते हैं। आकाशरूपी नीलातालमें चन्द्रमा और तारेआदिक फूलखिले हैं और उनमें मेघरूपी पत्र लगे हैं। हे अर्जुन! और आश्चर्य देखो कि, चित्रभी तब होता है जब उसका आधारभीत अथवा बस्त्र होता है और यहां चित्रप्रथम उत्पन्न होते हैं आधार भूत या दीवार पीछे बनती है। प्रथम ये मूर्त्ति और चित्र बने हैं और पीछे भीत नईहै; यही आश्चर्य है। हे अर्जुन! यह मायाकी प्रधानताहै कि, बास्तव आकाशरूप चितेरेने आकाशमें आकाशरूप पुतलियां रची हैं। आकाशमें आकाश रूप पुतलियां उपजी हैं और आकाशमेंहीं लीनहोती हैं; आकाशहीको भोजन करती हैं; आकाशहीको आकाश देखता है; आकाशही यह सृष्टि है और आकाशहीरूप आकाश आत्मामें आकाशरूप स्थित है। हे अर्जुन! बास्तवमें आत्मा ऐसे है। ऐसे अद्वैतरूप आत्मामें जो उत्थान हुआहै उस उत्थानसे उसको स्वरूपका प्रमाद हुआ है जिससे दृश्यभ्रम देखता है और अनेक वासना होती हैं। वासनारूपी रस्सीसे बांधाहुआ भटकता है और वासनासे घेराहुआ अहंत्वं आदिक शब्दोंको जानने लगता है और नाना प्रकारके भ्रम देखता है तौभी स्वरूप ज्योंकात्यों है। जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ता है और दर्पण ज्योंका त्यों रहता है तैसेही आत्मामें जगत् प्रतिबिम्बित होता है और आत्मा छेदभेदसे रहित है। ब्रह्महीब्रह्ममें स्थित है—जब सर्ववहीहै तब छेदभेद किसकाहो? जैसे जलमें तरङ्ग और बुदबुदे जलरूप हैंतैसेही यह सब ब्रह्महीसे पूर्णहै उसमें द्वैत कुछनहीं। जैसे आकाशमें आकाश स्थितहै तैसेही आत्मामें आत्मा स्थितहै। उसमें वास वासक कल्पना कोई नहीं परन्तु स्वरूपके प्रमादसे वास वासक भेदहोता है। जब स्वरूपका ज्ञान होता है तब वासना नष्ट हो जाती है। हे अर्जुन! जो वासनासे मुक्त है वही मुक्त है और वासनासे बांधाहुआ बंध है। यदि सब शास्त्रोंका बेत्ताभी हो। और सर्व धर्मोंसे पूर्ण हो तौभी यदि वासना से मुक्तनहीं हुआ तो बन्धही है। जैसे पिंजरेमें पक्षी बंध होता है तैसेही वहवासना से बांधाहुआ है। हे अर्जुन! जिसके हृदयमें वासनाका बीज है; यद्यपि बाह्य दृष्टि नहीं आता तौभी बहुत फैल जावेगा। जैसे बटका बीज फैल जाता है तैसेही वह वासना फैलजावेगी। जिस पुरुषने आत्माका अभ्यास किया है और उससे ज्ञानरूपी अग्नि उपजाकर वासनारूपी बीज जलाया है उसका फिर संसार भ्रम नहीं उदय होता और न वस्तु बुद्धिसे पदार्थोंके ग्रहण करता है न सुखदुःख आदिक में

डूबता है–सदा निर्लेप रहता है । जैसे तूंबी जलके ऊपरही रहती है तैसेही वह सुख दुःखके ऊपर रहता है । हे अर्जुन ! तुमशांतआत्माहो । तुम्हारा भ्रम अब दूरहुआ है और आत्मपदको तुम प्राप्त हुयेहो । तुम्हारा मन और मोह निर्वाण होगया है और सम्यक्ज्ञानी हुयेहो । व्यवहार करना और तूष्णीरहना तुमको दोनों तुल्यहैं और शांतरूप निःशङ्कपदको प्राप्त हुयेहो । यह मैं जानताहूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेश्रीकृष्णसंवादेअर्जुनविश्रांतिवर्ण-
नंनामपंचपंचाशत्तमस्सर्गः ५५ ॥

अर्जुन बोले, हे अच्युत ! मेरा मोह अब नष्ट है और मैं आत्मास्मृतिको प्राप्त हुआहूं । आपके प्रसादसे मैं अब निःसन्देह होकर स्थितहुआहूं; अब जो कुछ आप कहिये वह मैं करूं । श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! मनकी पांचवृत्तियां हैं–प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव, और स्मृति । जब ये पांचो हृदयसे निवृत्त हों तब चित्त शांत हो । उसके पीछे चैत्यसे रहित चेतन जो शेषरहता है उसको प्रत्यक् चेतन कहते हैं । वह वस्तुरूपहै और सब उपाधिसे रहितसर्व है और सर्वरूप है । जो उस पदको प्राप्त हुआ है उसको आधि–व्याधि आदिक दुःख नहीं होसक्के । जैसे जालसे निकलकर पक्षी आकाशमार्गको उड़ता है तैसेही वह देहाभिमान से मुक्त होकर आत्मपदको प्राप्तहोताहै । हे अर्जुन ! प्रत्यक् जो चेतनसत्ता है सो परमप्रकाश-रूप, शुद्ध और संकल्प–विकल्पसे रहित है और इन्द्रियोंके विषयमें नहीं आता–इन्द्रियोंसे अतीत है । जो पुरुष सबसे अतीतपदको प्राप्त हुआ है उसको वासना नहीं स्पर्शकरसक्ती । उसके प्राप्त हुये ये घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य होजाते हैं और वहां तुच्छवासना का कुछ बल नहीं चलता । जैसे अग्निसमूहके निकट बरफ गलजाती है और उसकी शीतलता नहीं रहती, तैसेही शुद्धपदके साक्षात्कार हुये चित्तवृत्ति नष्टहोजातीहै और वासनाकाभी अभावहोजाताहै । हे अर्जुन ! वासना तबतक फुरती है जबतक संसारको सत्य जानता है; जब आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै तब संसार और वासनाका अभाव होजाता है । इसकारण विरक्त पुरुषको सत्यजा-ननेसे कुछ वासना नहीं रहती नानाप्रकारके आकार विकारसंयुक्त विद्या तबतक फुरती है जबतक शुद्ध आत्माको अपने आपसे नहीं जाना । शुद्ध आत्माको प्राप्त हुये जगत् भ्रम सब नष्ट होजाता है; स्वच्छपद आत्मतत्त्व में स्थित होता है; आकाशवत् निर्मल भावको प्राप्तहोता है और अपने आपसे सबको पूर्णदेखता है । वहीआत्मसत्ता सबआकार रूप है और सबआकाररूपों से रहितभी है । हे अर्जुन! जो शब्द से अतीत परमवस्तु है उसको किसकी उपमा दीजै ? जो वासनारूपी बि-शूचिका को त्यागकर अपने आत्मस्वभावमें स्थितहुआ पृथ्वीमें विचरता है वह

त्रिलोकीका नाथ है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जबइसप्रकार त्रिलो-कीके नाथकहेंगे तब अर्जुन एक क्षणमौन में स्थित होजावेंगे और उसके उपरान्त कहेंगे कि, हे भगवन् ! मेरे सब शोक नष्ट होगये हैं और जैसे सूर्य्यके उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही आपके वचनोंसे मेरा बोधखिल आया है–अबजो कुछ आपकी आज्ञाहो वहमैं करूं ! इसप्रकार कहकर अर्जुन गांडीव धनुष ग्रहण करेंगे और भगवान् को सारथी करके निःसन्देह औरनिश्शङ्क होकर रणलीला करेंगे जिसमें हाथी, घोड़े, मनुष्य मारकर लोहूके प्रवाहचलावेंगे तौभी आत्मतत्त्वमें स्थित रहेंगे और स्वरूप से चलायमान न होंगे। जैसे पवन मेघको अभावकर देता है। तैसेही योधाओंका नाशकरेंगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेश्रीकृष्णअर्जुनसम्वादेभविष्यत् गीतानामोपाख्यानसमाप्तिर्नामषट्पंचाशत्तमस्सर्गः ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हेरामजी ! ऐसीदृष्टिका आश्रय करके जोदृष्टि दुःखका नाशकरती है निःसङ्ग संन्यासीहो अपने सबकर्म और चेष्टा ब्रह्म अर्पणकरो। जिसमें यह सब है और जिससे यहसर्व है ऐसीसत्ताको तुम परमात्मा जानो। अनुभवरूप आत्मा है उसकी भावनासे उसीको प्राप्त होता है–इसमें संशयनहीं। जोसत्ता संवेदन फुरनेसे रहित चेतन प्रकाशता है उसीको तुम परमपद जानो। वह सबका परम द्रष्टारूपहै और सबका प्रकाशक है और महाउत्तम परमगुरुका गुरुहै। जिसकोशून्यबादी शून्य, विज्ञानवादी विज्ञान और ब्रह्मवादी ब्रह्मकहतेहैं वह परमसार शान्तरूप शिव अपने आपमें स्थितहै वही आत्मा इसजगत्‌रूपी मन्दिरको प्रकाशकरनेवाला दीपक है; जगत्‌रूपी वृक्षका रस है;जगत्‌रूपी पशुका पालनेवाला गोपाल है; जीवभूतरूपी मोतियोंको एकत्रकरने वाला तागा है और हृदय और भूतरूपी मिरचोंमें तीक्ष्णता है निदान सब पदार्थों में पदार्थरूप सत्तावही है। सत्यमें सत्यता और असत्यमें असत्यता वहीहै। जगत्‌रूपीगृहमें सब पदार्थोंका प्रकाशनेवाला दीपक वही है और उसीसे सबसिद्धहोते हैं। चन्द्रमा,सूर्य,तारे आदिक जो प्रकाशरूप दीखते हैं उनका भी वह प्रकाशक है। यहजड़ प्रकाश है और वह चेतनप्रकाश है उसमें ये सिद्धहोते हैं और उसीसे सबप्रकाश प्रकटहुये हैं। वह आत्मसंवित् अपनेही विचारसे पायाजाता है। हेरामजी ! जो कुछ भाव अभाव पदार्थ भासते हैं वे असत् हैं; वास्तवमें कुछहुये नहीं प्रमाद दोषसे भासते हैं और जब विचार उपजता है तब नष्टहोजाते हैं। हेरामजी ! जिसके हृदयमें अहंभावहै उसे ऐसाजो जगत् जालहै सो मिथ्याभ्रमसे भासताहै उसको उपजा क्या कहिये और किसकी आस्था कीजिये ? यहजगत् कुछबस्तु नहीं। आदि–अन्त–मध्यकी कल्पनासे रहित जो देव

है वह ब्रह्मसत्ता समान अपने आपमें स्थित है और द्वैत कुछ बनानहीं । जब यह तुमको दृढ़ निश्चयहोगा तो तुम व्यवहार करतेभी हृदयसे निःसंग और शान्तरूप होगे। हेरामजी ! जिस पुरुषकी उससमान सत्तामें स्थितिहुई है वह इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें रागद्वेषसे रहित हृदयसे सदा शान्तरूप रहता है । वह न उदय होता है, न अस्तहोताहै; सदा समताभावमेंस्थित रहताहै । वह स्वस्थरूप अद्वैत तत्त्वमें स्थित होताहै और जगत्की ओरसे सुषुप्तवत् होजाताहै; व्यवहारभी करताहै परन्तु दर्पणके सदृश क्षोभवान् नहींहोता । जैसे मणि सब प्रतिबिम्बको ग्रहण करतीहै परन्तु उसकासङ्ग नहीं करती; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलना कलङ्कको नहीं प्राप्तहोता; उसका चित्त व्यवहारमें सदा निर्मल रहता है। ज्ञानवान्को जगत् आत्माका चमत्कार भासता है;न एकहै, न अनेकहै; आत्मतत्त्व सदाअपने आपमेंस्थित है। चित्तमें जो यह चेतनभाव भासता है उस चित्त फुरने का नाम संसार है और फुरनेसे रहित अफुरका नाम परमपद है । हे रामजी! महाचेतन में जो निजका अभाव है कि, 'मैं आत्माको नहीं जानता;इसीकानाम चित्तस्पन्दहै और यही संसार का कारण है । जब यहभावना क्षयहो तबचित्त अफुरहो। हेरामजी! जहां निजभाव होता है वहां पदार्थोंका अभाव होता है। वह निजसबठौर अपने अर्थको सिद्धकरती है परन्तु आत्मा में नहीं प्रवर्त्तसक्ती । जब जीव कहता है कि, मैं आत्माको नहीं जानता तबभी आत्माका अभावनहीं होता क्योंकि, अभावको जाननेवाला भी आत्माही है । जो आत्मतत्त्व न हो तो अभाव क्यों नकहे सो आत्मा परमशून्य है परन्तु अजड़रूप परम चेतन है। हे रामजी ! तुम निजकाअर्थ आत्मामें करो और आत्माका अभाव न मानो । अनात्म में जो निजका भावत्व है उसका अभावकरो अर्थात् अनात्मको अभावरूप मानो । जब इसप्रकार दृढ़भावना करोगे तब संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा और केवल आत्मभाव शेषरहेगा । हे रामजी ! चित्तके फुरने का नाम संसार है चित्तके फुरनेसेही संसारचक्र वर्त्तता है । जैसे सुवर्णसे भूषण प्रकट होते हैं तैसेही चित्तसेत्रिपुटी होती है पर चित्तस्पन्दभी कछ भिन्नवस्तु नहीं आत्माका आभासरूपहै। अज्ञानसे चित्त स्पन्द होता है और ज्ञानसे लीनहोजाता है। जैसे सुवर्ण के भूषणको गलायेसे भूषण बुद्धि नहीं रहती तैसेही चित्त अचलहये चित्त संज्ञा जाती रहती है और जैसे भूषण के अभाव हुये सुवर्णही रहताहै तैसेही बोधसे चित्तके लीन हुये शुद्ध चेतनसत्ता शेषरहती है । फिर भोगोंकी तृष्णा लीन होजाती है और जब भोगभावना निवृत्तहोती है तब ज्ञानका परमलक्षण सिद्धहोता है। हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष है और जिसने सत्रूप को जानाहै उसको भोगकी इच्छा नहीं रहती। जैसे जो पुरुष अमृतपानसे अघाजाता है उसको

खलीआदिक तुच्छ भोजनकी इच्छा नहींरहती तैसेही आत्मज्ञानसे जो संतुष्टहुआ है उसको विषयकी तृष्णा नहीं रहती। यह निश्चय करकेजानो कि, जब चित्तफुरता है तब जगत्भ्रम हो भासता है और सत्यजानकर भोगकी इच्छा होतीहै पर जब बोधहोता है तब जगत्भ्रम लीनहोजाताहै तो फिर तृष्णा किसकीकरे। यदि इन्द्रियों के विषय प्राप्तहों और हठकर उनको नभोगे वह मूर्खहै वह मानो अस्त्रसे आकाश को छेदता है। हे रामजी! गुरु और शास्त्रोंकी युक्तिसे मनवश्य होताहै; उनकीयुक्ति विनाशुद्धता नहींहोती। यदि कोई अपने अङ्गही को काटे और उससे चित्तको स्थित कियाचाहे तौभी चित्त स्थिर नहीं होता और न संसार भ्रमही मिटता है। जबतक चित्तमें स्थिति है तबतक जगत्भ्रम दिखता है और जब गुरु और शास्त्रोंकी युक्ति ग्रहण करके चित्तका अभाव होताहै तब चित्तनष्ट और अचल होजाता है। जैसे बालक को अन्धकारमें पिशाच भासता है और दीपक जलाकर देखेसे अन्धकार निवृत्तहोकर पिशाचभ्रम नष्ट होजाता है तब बालक निर्भय होताहै; तैसेही आत्म-ज्ञान युक्तिसे अज्ञान निवृत्त होताहै। असम्यक् बुद्धि से जगत्भ्रम हुआ है और सम्यक् बोधसे निवृत्तहोजाता है; फिर जाना नहींजाता कि, अज्ञान का जगत्भ्रम कहां गया। जैसे दीपकके निर्वाणहुये नहींजानता कि, प्रकाश कहांगया, तैसेही अ-ज्ञान नष्टहुये नहींजानाजाता कि, जगत् कहांगया। चित्तके फुरनेसे बन्धहोताहै और अफुरनेसे मोक्ष होताहै परन्तु आत्मासे भिन्न कुछनहीं आत्मसत्ता ज्योंकीत्योंहै; उसमें न बन्ध है, न मोक्षहै। हे रामजी जब मोक्षकी इच्छा होतीहै तबभी उसकी पूर्णताका क्षय होताहै और निःसंवेदन हुये कल्याण होताहै। जो अनाभास अजड़रूप परम-पदहै वह चैतन्योन्मुखत्व से रहित है। हे रामजी! बन्ध मोक्ष आदिकभी कलनामें होतेहैं। जब कलना से रहित बोध होताहै तब बन्ध मोक्ष दोनों नहींरहते। जबतक विचारसे नहीं देखा तबतक बन्ध और मोक्ष भासता है विचार कियेसे दोनों का अभाव होजाताहै। जब'अहं','त्वं','इदं'आदिक भावनाकाअभाव हुआ तब किसको कौन बन्धक है और किसको कौन मोक्षक है सबकलना चित्तके फुरनेसे होतीहै जब चित्तकाफुरना नष्टहोता है तब सब कलना का अभाव होजाता है तब शांतिमान् होताहै अन्यथा नहींहोता। इससे चित्तको आत्मपद में लीनकरो। जिसके आश्रय यह जगत् उपजता है और लीन होताहै ऐसा जो ज्ञानरूप आत्माहै उसी अनुपम-रूप प्रत्यक् आत्मप्रकाश में स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रत्यक्आत्मबोधवर्णन-
न्नामसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमतत्त्व परमात्मपद हमको सदा प्रत्यक्ष है और

बस्तुरूप वहीहैउससे कुछ भिन्ननहीं। यह प्रत्यक्आत्माहै और सर्व्व सत्ताका र्पणहै; सबसत्ता इसीसे प्रकटहोतीहै। जैसे बीजसे वृक्षकीसत्ता प्रकटहोतीहै तैसेही आत्मासे जगत् सत्ता प्रकटहोतीहै। हे रामजी! मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जड़ात्मक हैं और इनसे रहित परमपद है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक सब उसीसे स्थित हैं। जैसे चक्रवर्त्ती राजा निर्द्धनसे ऊंचा शोभता है तैसेही उससत्ताको पकर जीवसब लोगोंसे ऊंचे शोभता है। उसआत्माको प्राप्तहोकर फिर मृत्युको नहीं प्राप्तहोता और न कदाचित् शोकवानही होताहै न रक्षीणहोता है एकक्षणमात्रभी जो अप्रमादी होकर आत्माको ज्योंकात्यों जानता है वह संसार कलनाको त्यागकर मुक्तहोता है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारके अभाव हुये जो सत्तासामान्य शेष रहतीहै उसका भान कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! जो सबदेहोंमें स्थितहोकर भोजन और जल,पान करता और देखता, सुनता, बोलता इत्यादिक क्रियाकरता दृष्टिआता है सो आदि अन्तसे रहित संवित्सत्ता सर्वगत अपने आपमें स्थितहै और सर्वविश्वरूप वही है। आकाशमें आकाश; शब्दमें शब्द; स्पर्शमें स्पर्श; नासिकामें गन्ध; शून्यमें शून्य; नेत्रोंमें रूप; पृथ्वीमें पृथ्वी; जलमें जल; तेजमें तेज; वृक्षोंमें रस; मनमें मन; बुद्धिमें बुद्धि; अहंकारमें अहंकार; अग्निमें अग्नि; उष्णतामें उष्णता; घटमें घट; पटमें पट; बटमें वट; स्थावरमें स्थावर; जङ्गममें जङ्गम; चेतनमें चेतन; जड़में जड़; कालमें काल; नाशमें नाश; बालकमें बालक; यौवनमें यौवन; वृद्धमें वृद्ध और मृत्युमें मृत्युरूप होकर वही परमेश्वर स्थित है। हे रामजी! इसप्रकार सब पदार्थोंमें वह अभिमन्नरूप स्थित है, नानात्व दृष्टिभी आती है परन्तु अनाना है और भ्रमसे भासती है। जैसे परछाहींमें भ्रमसे वैताल भासताहै तैसेही आत्मामें नानात्व भासती है। सबमें, सबठौर, सबप्रकार, सर्व आत्माही स्थितहै; ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमानहै उसमें स्थितहो। इतना कहकर बाल्मीकिजीबोले कि, इसप्रकार जब वशिष्ठजीने कहातब दिनअस्त होनेसे सबसभा परस्पर नमस्कारकरके स्नानकोगये और सूर्यके निकलतेही फिर अपने अपने आसनपर आनबैठे॥

इतिश्रीयोगबाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबिभूतियोगोपदेशोनामअष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः५८॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! जैसे हमारे स्वप्नेमें पुर,नगर और मण्डल होते हैं तैसेही ब्रह्मादिकने उस देवको ग्रहणकिया है उनको असत्में प्रतीतिहै और हमको दृढ़ प्रतीतिकैसे उपजी है? वशिष्ठजी बोले; हेरामजी! प्रथम ब्रह्माको सर्ग असत्वत्भासता है; वास्तव नहीं भासता। सर्व्वगत चेतन संवित् को संसारके दर्शनसे जब सम्यक् दर्शनका अभावहुआ और स्वप्नरूपमें आपसे अहंप्रतीति उपजी तब दृढ़होकरदेखने लगा। जैसे अपने स्वप्ने में जगत् दृढ़ भासताहै और उसेस्वप्ना नहींजानता; तैसेही

ब्रह्माका जगत्भी दृढ़भासताहै; स्वप्नानहीं भासता। जो स्वप्न पुरुषसे उपजा है सो स्वप्नरूपहै। हे रामजी! ऐसा जो सर्ग्ग है सो जीव जीव प्रति उदयहुआहै। जैसे समुद्रमें तरंग फुरतेहैं तैसेही चेतनतत्त्वका आभासजगत् फुरतेहैं और जैसेस्वप्नपुरमें असत्पदार्थ होतेहैं तैसेही यहपदार्थभी अवास्तवहैं और मनकेसंकल्पसे भ्रममात्रही स्पष्टभासतेहैं। हेरामजी! ऐसापदार्थ कोईनहीं कि, इसजगत्में सिद्धनहींहोता; और का और नहींभासता और मर्य्यादा नहींत्यागता क्योंकि; मनके संकल्पमात्रउपजे हैं। तुम देखो कि, जल में अग्नि स्थित है—जैसे समद्रमें बड़वाग्नि है सो विपर्य्यय है। इसीकारणसे कहताहूं कि मनोमात्र है। और देखो कि, आकाश नगर बसतेहैं; विमान प्रत्यक्षचलतेहैं और चिन्तामणि आदिकसे कमलउपजतेहैं। जैसे हिमालय ॰ तमें बरफउपजतीहै और सबऋतुकेफूल एकहीसमय उपजतेहैं। जैसे संकल्पके वृक्षसे पत्थर निकलआतेहैं; शिलामें जल निकलताहै; चन्द्रकान्तिसे अमृतद्रवताहै और निमेषमें घट पट होजातेहैं और पट घट होजातेहैं; निदान स्वरूपके विस्मरण हुये सत्के असत् देखताहै। जैसे स्वप्नेमें अपनामरनादेखताहै; जल ऊर्ध्वकोचलता देखता है; मेघ होकर स्वर्ग्ग में गंगा बहती देखता है; और पत्थर उड़ते देखता है। जैसे पंखों सहित पहाड़ उड़तेहैं और चिन्तामणि ादिक से सब पदार्थ उपजते हैं इत्यादिक भ्रमसे नानात्व विपर्य्ययरूपहो फुरतेहैं। इससे तुमदेखो कि, सब मनोमात्रहैं औरकाऔर होजातेहैं। हे रामजी! यह इन्द्रजाल, गन्धर्व्वनगर और सांबर मायावत्है; असत्ही भ्रम करके सत्हो भासताहै। ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि; सत् नहीं और असत् भी नहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्व्वाणप्रकरणेजाग्रतस्वप्नविचारोनाम एकोनषष्टितमस्सर्ग्गः ५९॥

वशिष्ठजीबोले; हेरामजी! यहसंसारमिथ्याहै। जो पुरुष इसकोसत्यजानताहै वह महामूर्खहै और भ्रममें भ्रम देखकर महामोहको प्राप्तहोताहै। जैसे कोई मृग गढ़ेमें गिरपड़ताहै तो महादुःखीहोताहै और फिर उससे भी बड़े गढ़ेमें गिरताहै तो अति दुःखपाताहै; तैसेही जो मूर्खपुरुषहै वह आत्माके अज्ञानसे संसाररूपीगढ़ेमें गिरता है और उससे और और भ्रम देखता है और स्वप्नेसे स्वप्नान्तर देखताहै। इसीसे एक इतिहास कहताहूं उसे मनलगाकर सुनो। एक मनन और शीलवान् संन्यासी योगके आठवें अङ्ग समाधिमें स्थितथा और उसका हृदय समाधि करते करते शुद्ध हुआथा। समाधिमें दिनको व्यतीतकरे और जब समाधिसे उतरे तो फिर आसन लगाकर समाधिमें लगे। इसीप्रकार जब बहुतकाल बीता तो एक समय समाधिसे उतर वह यह चिन्तना करने लगा कि, जैसे प्रकृति परुष विचरते और चेष्टा करते

हैं तैसेही मैंभी कुछ चेष्टा रचूं। ऐसे विचारकरके उसने मनके संकल्पसे विश्वकल्पी और उसमें एक आप भी बना और उसका नाम भीवट हुआ निदान मद्यपानकरे और ब्राह्मणोंकी सेवाभी करे। चेष्टा करते २ सोगया और स्वप्नेमें उसको ब्राह्मणके शरीरका भानहुआ तो उस ब्राह्मण शरीरमें वेदका अध्ययन और पाठ करनेलगा। ऐसी चेष्टासे जब उसे चिरकाल बीता तो फिर स्वप्नाआया और आपको बड़ी सेना संयुक्त राजा देखा और उस सेना संयुक्त राजाहोकर बिचरनेलगा। कुछकाल जब इसीप्रकार व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्नाआया और उस स्वप्ने में आपको चक्रवर्त्ती राजा देखा और चक्रवर्त्ती होकर सारीपृथ्वी पर आज्ञा चलानेलगा। जब कुछकाल बीता तो फिर आपको देवांगना देखा और देवताकेसाथ बाग में बिचरनेलगा और जैसे बेलि वृक्ष के साथ शोभा पाती है तैसेही देवताके साथ शोभा पानेलगा। इसी प्रकार जब कुछकाल देवताके साथ बीता तो फिर स्वप्नाआया औ आपको हरिणी देखा और बनमें चरनेलगा। कोई काल ऐसेभी व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्नाआया और आपको देवताओं के बनकी बेलि देखा। जब ऐसे कुछ समय बीता तो फिर स्वप्नमे आपको भँवरी देखा और सुगन्धको ग्रहण करनेलगा। उसके अनन्तर फिर स्वप्ना आया कि, मैं कमलिनीहूं और वहां एक दिन हाथीआकर बेलिको खागया। जैसे कोई मूर्खबालक भलीवस्तुको भी तोड़डालताहै तैसेही वह मूर्खहाथी बेलितोड़ कर खागया। उसके उपरान्त उस बेलिने हाथीका शरीरपाकर बड़ा दुःखपाया और गढ़ेमें गिरा। थोड़े समयके उपरान्त हाथीको स्वप्नाआया और भँवरी होकर कमलों में बिचरनेलगा। जब कुछ काल बीता तो फिर वह बेलि हुआ और उस बेलि के निकट एक हाथी आया और उसहाथीकेपांवोंसे वह बेलि चूर्णहोगई। तब उसबेलि को एक हंसने खाया तब वह बेलि हंस हुआ और बड़े मानसरोवरमें बिचरनेलगा। फिर उस हंसके मन में आया कि मैं ब्रह्माका हंस होऊं। तब वह अपने संकल्प से ब्रह्माका हंस बनगया जैसे जलका तरंग बनजावे। तब ब्रह्माके उपदेश से हंस को आत्मज्ञान प्राप्तहुआ। हे रामजी! अज्ञानसे ऐसे भ्रमपाके ज्ञानसे शान्त हुआ फिर सदेहमुक्तहोगा। वह हंस सुमेरुपर्व्वत में उड़ाजाताथा तब उसके मनमें आया कि, मैं रुद्र होऊं इसलिये सत् संकल्पसे रुद्र होगया। जैसे शुद्धदर्प्पणमें शीघ्रही प्रति-बिम्ब पड़ताहै तैसेही शुद्धअन्तःकरणके सङ्कल्पसे वह रुद्र हुआ। जिसको अनुत्तर ज्ञानहो उसको रुद्र कहतेहैं और अनुत्तरज्ञान वहहै जिसके पानेसे और कुछ पाना नहीं रहता। चेष्टासे अपने गुण को देख उस रुद्रके मन में विचार हुआ कि, बड़ा आश्चर्य्य है कि; मैं अज्ञानसे इतनेबड़ेभ्रमको प्राप्तहुआथा। बड़ी आश्चर्य्य माया है! तो एक और बड़ाहूं और यह विश्व मेरा स्वरूप है। जो मेरे निज शरीर हैं

उनको जाकर जगाऊं! तब रुद्र उठ खड़ाहुआ और अपने स्थानको चला। प्रथम संन्यासीके शरीरकोआकरदेखा और चित्त शक्तिसेउसेजगाया तो संन्यासीके शरीर मेंज्ञानहुआ कि, सब मैंहीं खड़ाहूं परन्तु संन्यासीने जाना कि; मुझकोरुद्रने जगाया है और इतने शरीर मेरे और भी हैं। फिरवहांसे वहरुद्र और संन्यासी दोनों चले और भीवटके स्थानमें आये तो देखा कि, भीवट शवकी नाईं पड़ा है; मदिराके बासन पड़े हैं, चेतना भी वहांही भ्रमती है और नानाप्रकारके स्थान देखती है— जैसे भ नेके छिद्रमें चींटी भ्रमती है। तब उन्होंने भीवटको चित्त शक्तिसे जगाया और वह उठ खड़ाहुआ तो उसको ऐसा स्मरण हुआ कि, मुझे तो इन्होंने जगाया। फिर भीवटके मनमें विचार हुआ कि, इतने शरीर मेरे और भी हैं। निदान रुद्र, संन्यासी और भीवट तीनों चले। इन्होंने बिचार किया कि, हमने इतने शरीर क्यों करपाये कि, आदि तो मैं एक परमात्मामें चैतन्योन्मुखत्व करके संन्यासीहुआ, फिर संन्यासी से भीवटहुआ और मद्यपान करनेलगा; फिर ब्राह्मण होकर वेदका पाठ करनेलगा और उसके पाठकरने के पुण्यसे राजा का शरीर धारणकिया, उसके आगे जो बड़ापुण्य प्राप्त हुआ उससे चक्रवर्ती राजा हुआ; चक्रवर्तीराजाके शरीरमें काम बहुतहुआ उससे देवताकी स्त्री हुआ और स्त्रीके शरीरमें नेत्रों में बहुत प्रीति थी उससे हरिणी हुआ; फिर भँवरी हुआ; उससे आगे बेलिहुआ और इससे लेकर जो शरीरधारे सो मिथ्याधारे और अज्ञानसे बहुतकाल भटकतारहा। अनेक वर्ष औ सहस्रों युग व्यतीतहोगये हैं संन्यासीसे आदि रुद्र पर्य्यन्त वासना करके जन्मपाये हैं और इतने जन्मपाकर ब्रह्मा का हंसहुआ तब वहां ज्ञानकी प्राप्ति हुई क्योंकि; पूर्व अभ्यास कियाथा उससे अकस्मात्से सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। ऐसे बिचार करते वे वहांसेचले और चेतन आकाशमें उड़कर वेदपाठ करनेवाले ब्राह्मण की सृष्टि में गये तो उसको देखा कि, पड़ा है। चित्तशक्ति से उन्होंने उसकोजगा रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला भीवट और ब्राह्मणचारो वहांसे चले और चित्ताकाशमें उड़े और राजाकी सृष्टिमें पहुंचे तो देखा कि, राजाकी सृष्टि चेष्टा करतीहै और राजा जिनकी देह सुवर्णकी नाईं शोभायमान है अपने मन्दिरमें रानी समेत शय्या परसोवे है और सहेलियां चमर करती हैं। तब उन्होंने राजाको चित्त शक्तिसे जगाया और उसने देखा कि, सर्वविश्व मेराही स्वरूप है और इतने शरीर मैंने अज्ञान से धरे हैं। निदान रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला भीवट, ब्राह्मण और राजा वहां से चले और हाथीसे आदि लेकर जितने शरीर धरेथे उन सबको जगाया और उनमें यही निश्चयहुआ कि, हम चिन्मात्ररूप हैं और आवरणसे रहित हैं अर्थात् अज्ञानके फुरनेसे रहित हैं। हे रामजी! तब उनके शरीर अलगअलग दीखे परन्तु

चेष्टा -" निश्चय सबकी एकसीही थी । उनका नाम शतरुद्र हुआ । हे रामजी ! सम्पूर्ण विश्व अज्ञानके फुरने से होता है और ज्ञानसे देखिये तो कुछ नहीं । ऐसे-ही उनका संवेदन और निश्चयएकसा हुआ। एकदेखे तो जाने कि,सर्वही मेरारूपहै और जब दूसरा देखे तो विचारे कि, मेराहीरूप है। जैसे समुद्रसे अनेकतरंग होतेहैं पर उनकेआकार भिन्न भिन्न होते हैं और स्वरूप एकसाही होता है; तैसेही ज्ञानवान् सर्व विश्वको अपनाही स्वरूप देखते हैं और अज्ञानी उनको भिन्न भिन्न जानते हैं और आपको भिन्न जानते हैं । एकको दूसरा नहीं जानता और दूसरे को प्रथम नहीं जानता । हे रामजी ! यह विश्वअपनाही स्वरूप है पर अज्ञानसे भिन्नभासता है । चिन्मात्रमें फुरने को अज्ञानकहते हैं । चित्तफुरने से संसार है और न फुरने से आत्म स्वरूपही है । इससे हे रामजी ! फुरनेका त्यागकरो ! और कुछ नहीं जिस प्रकार शत्रुमरे उस प्रकार मारिये—यही यत्न करो; और मैं तुमसे ऐसा उपाय कहता हूं कि, जिसमें कुछ यत्न नहीं और शत्रुभी माराजावे । हे रामजी ! यह चिन्तनाही दुःख है और चिन्तनासे रहित होनाही सुख है—आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। इस चित्तके फुरनेसे संसार है और निवृत्त होने में स्वरूपही है । जैसे पत्थरमें पुरुष पुतलियां कल्पता है सो पत्थरसे भिन्न पुतलियोंका अभाव है; तैसेही चित्तने विश्व कल्पा है । जब चित्त निवृत्तहो तब विश्वअपनाही स्वरूप है; कुछ भिन्न नहीं । चित्त से जहां जाव वहां पञ्चभूतही दृष्टिआते हैं आत्मा नहींदृष्टि आता और चित्तसे रहित ज्ञानी जहां जावे वहां आत्माही दृष्टि आता है । जब चित्तकी वृत्ति बहिर्मुख होती है तब संसार होता है और पञ्चभूतही दृष्टिआते हैं और जब चित्तकी वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब ज्ञानरूप अपना आपही भासता है । जो कुछ पदार्थ हैं सो ज्ञानरूप आत्मा विना सिद्ध नहीं होते । प्रथम आपको जानता है तो और पदार्थ जानते हैं। इसीसे ज्ञानवान् सब अपना आप जानता है । हे रामजी ! ये जो कुछ पदार्थ हैं सो फुरने से कल्पते हैं और जितने जीव हैं उनकी संवेदन भिन्न भिन्न है । संवेदन में अपनी अपनी सृष्टि है । जैसे किसी सोयेहुये पुरुषको अपने स्वप्ने की सृष्टिभासती है और जो उसके पास बैठा होता है उसको नहीं भासती क्योंकि, उसकी विश्व स्वप्ने को नहीं जानती; तैसेही जो ज्ञानी है उसको अपना आपही भासता और इस सब जगत्को अपनारूप जानताहै । ज्ञानी जिस ओर देखताहै उसी ओर पंचभूत दृष्टि आते हैं । जैसे पृथ्वी के खोदे से आकाशही दृष्टि आता है तैसेही ज्ञानी चित्त सहित जहां देखता है तहां पंचभूतही दृष्टि आते हैं। इससे हे रामजी ! तुम फुरनेसे रहित हो । फुरनेहीसे बन्ध है और न फुरनेसे मोक्ष है; आगे जैसी तुम्हारी इच्छाहो तैसा करो । हे रामजी ! जो अफुरनेसे अस्तहोजावे उसके नाममें कृपणता करना क्या है

और जो अफुरनेसे प्राप्तहो उसको प्राप्तरूप जानो। रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! यह भीवट और ब्राह्मणसे आदिलेकर संन्यासीके रूप स्वप्ने में हुये उसके उपरान्त फिर क्याहुआ वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्राह्मणसे आदि जितने शरीरथे वे रुद्र के जगाये हुये सुखीहुये और जब सब इकट्ठे हुये तब रुद्रने उनसे कहा, हे साधो! तुम अपने २ स्थानको जाओ और कुछकाल अपने कलत्रमें भोगभोगो तब तुम मेरे गण होकर मुझको प्राप्तहोगे और महा कल्पमें हम सबही विदेहमुक्त होंगे। हे रामजी! जब रुद्रने ऐसे कहा तब सब अपने अपने स्थानोंको गये और रुद्रजीभी अन्तर्द्धानहोगये वे अबभी तारोंका आकार धारेहुये कभी कभी मुझको आकाश में दृष्टिआते हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपनेकहा कि, संन्यासीने भीवटसे आदि लेकर सब शरीर धारे सो सत्कैसे हुये और उनकी सृष्टि कैसे सत्हुई सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा सबका अपना आप, शुद्ध, चेतन, आकाश और अनुभव रूप है; उसमें जैसे देश, काल और बस्तुका निश्चय होता है तैसेही बनजाता है। जैसेजैसे फुरता है तैसेही तैसे आगे होजाता है। जिसका मनशुद्ध होता है उसका सत् सङ्कल्प होता है और जैसा सङ्कल्प करता है तैसाही होता है। जो तुम कहो कि, संन्यासीका अंतष्करण शुद्धथा उसने नीच और ऊंचजन्म कैसेपाये अर्थात् मद्यपान करनेवाला और भँवरी, बल्लीसे आदि लेकर नीच और ऊंच अर्थात् ब्राह्मण, राजा आदि लेकर शुद्ध अन्तःकरणमें ऐसे जन्म न चाहिये; तो उसका उत्तर यह है कि; संवेदनमें जैसा फुरना होता है तैसाही होभासता है। जैसे एक पुरुष का अन्तःकरण शुद्धहो और उसके मनमें फुरे कि, एक शरीर मेरा विद्याधर हो और एक शरीर भेड़का हो तो उसके दोनों भले और बुरेभी होजाते हैं। जो तुम कहो कि, बुरा क्यों बना भलाही बनता तो उसका उत्तर सुनो कि, जैसे भले पण्डितके घरपुत्र हो और संस्कार अर्थात् बासना से चोरहोजावे तो उसको दुःखहोता है। इससे हे रामजी! सब फुरनेहीसे ऊंचनीच होते हैं; जब अभ्यास और परमयोग होता है तब शुद्ध होता है। अभ्यास, मंत्र, जाप और चित्तके स्थित करने को योग कहते हैं। इससे जैसी जैसी चिन्तना होती है तैसीही सिद्ध होती है और अज्ञानी की नहीं होती। जैसे बस्तु निकट पड़ी है और भावना नहीं तो दूर है; तैसेही अज्ञानी की भावना नहीं तो न दूरवाली बस्तु प्राप्तहोती है और न निकटवाली प्राप्तहोती है। वह सिद्ध इसलिये नहींहोती क्योंकि, उसकी भावनादृढ़नहीं और हृदयभी शुद्धनहीं। संकल्पभी तब सिद्धहोताहै जब हृदयशुद्धहोता है। शुद्धहृदयवाला जिसकी चिन्तना करता है वहचाहेदूर भी है तोभी सिद्धहोता है और जो निकट है सोभी सिद्धहोता है। जो तुमकहो कि, संन्यासी तो एकथा बहुत चेतन शरीर कैसेहुये तो उसका उत्तर

सुनो। जो कोई योगीश्वर हैं और योगिनी देवियां हैं उनका सङ्कल्प सत्य है; उन्हें जैसा संकल्प फुरता है तैसाही होता है। ऐसे सत् संकल्पवाले मैंने अनेक आगे देखेहैं। एक सहस्रबाहु अर्जुनराजाथा जो अपने घरमें बैठाथा और उसके शिरपर छत्र झुलता और चमर होतेथे; उसके मनमें सङ्कल्पहुआ कि, मैं मेघहोकर बरसूं। उस सङ्कल्प के करने से उसका एक शरीर तो राजाका रहा और एक शरीरसे मेघ होकर बरसनेलगा। विष्णु भगवान् एक शरीर से तो क्षीर समुद्र में शयन करते हैं और प्रजाकी रक्षा के निमित्त और शरीर भी धारलेते हैं। यज्ञ देवियां अपने २ स्थानों में होती हैं और बड़े ऐश्वर्य्य में विचरती हैं; इन्द्र एक शरीर से स्वर्ग्ग में रहता है और दूसरे शरीर से जगत् में भी बैठा रहता है। योगीश्वरों का जैसा संकल्प होता है तैसाही सिद्ध होता है और जो अज्ञानी मूर्ख हैं उनका मन बड़े भ्रमको प्राप्तहोता है और वे बड़े मोहको प्राप्त होते हैं और मोहसे आगे मोह से नीचगतिको प्राप्त होतेहैं। जैसे बड़े पर्वतके ऊपरसे बट्टा गिरताहै सो नीचेको जाता है तैसेही मूर्ख आत्मपदसे गिरके संसाररूपी गढ़े में पड़ते हैं और बड़े दुःख पाते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, संसार स्वप्नमात्रहै सो मैंने जाना कि, अनन्त मोहरूपी विषमता है और आत्मचेतनरूप आनन्दके प्रमाद से जीव आपको जड़दुःखी जानताहै। यहबड़ाआश्चर्य्यहै! हे भगवन्! यहजो आपनेसंन्यासी कहा उसके समान कोई औरभी है अथवा नहीं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी मढ़ी में मैं रात्रि के समय समाधि करके देखूंगा और तुमसे प्रभातको जैसे होगा तैसे कहूंगा। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; हे राजन्! वशिष्ठजीने जबइतना कहा तो मध्याह्नका समयहुआ; नौबत नगारे बजने लगे जिनका प्रलयकालके मेघवत् शब्द होनेलगा और वशिष्ठजीके चरणोंपर राजा और देवताओंने फूलचढ़ाये और सबने बड़ी पूजाकी। जैसे बड़ापवन चलता है और वेग करके बाग वृक्षों के फूल पृथ्वीपर गिरपड़ते हैं तैसेही सबने बहुत फूलोंकी बर्षा की। इस प्रकार प्र॰॰म तो बहुत पूजाहोतीरही फिर वशिष्ठजीको नमस्कार करके सब उठके खड़े हुये और आपस में नमस्कार किया। फिर राजा दशरथसे आदिलेकर राजा और ऋषि सब उठे और जैसे मन्दराचल पर्वत से सूर्य्य उदय होता है तैसेही वशिष्ठजीसे आदिलेकर ऋषि और राजादशरथसे आदिसब राजा उठे। तब पृथ्वी के राजा और प्रजा पृथ्वी को चले और आकाश के सिद्ध और देवता आकाश को चले और सब अपने अपने कर्ममें जालगे और जैसे शास्त्रोक्त ब्यवहार है उसमें स्थित हुये। जब रात्रि हुई तब विचार करते रहे कि, वशिष्ठजी ने कैसे ज्ञान उपदेश किया है और उस विचार में उनकी रात्रि एक क्षणकी नाईं बीती।

इतनेमें सूर्य्यकी किरणों के उदय होतेही राम लक्ष्मण आदि सबआये और परस्पर नमस्कार कर अपने अपने आसनपर शान्तरूप होकर बैठे—जैसे पवनसे रहित कमल स्थित होते हैं। तब वशिष्ठजी ने अनुग्रह करके आपही कहा, हे रामजी! तुम्हारी प्रीति के निमित्त मैंने संसार का बहु खोजकिया और आकाश,पाताल और सप्तद्वीप सब खोजे हैं परन्तु ऐसाकोई संन्यासी न देखा और न अन्यका सङ्कल्प उसकी नाईं भासता है। जब एक प्रहर रात्रिरही तो मैंने फिर ढूंढ़कर उत्तर दिशा में चिन्माचीन नगरमें एक मढ़ी देखी तो उसके दरवाजे चढ़ेहुये थे और उसमें पके बालवाला एक संन्यासी बैठाथा और बाहर उसके चेले बैठेथे। वे दरवाजेनहीं खोलतेथे कि, ऐसा न हो हमारे गुरुकी समाधि खुलजावे। वह उस स्थानमें दूसरे ब्रह्माकी नाईं बैठा है। उसको बैठे अभी इकीस दिनहुये हैं पर उसको समाधि में सहस्र वर्षोंका अनुभव हुआ है और उसने बहुत जन्मभी पाये हैं जो उसको प्रत्यक्ष भासितहुये हैं। उसने सृष्टिभी प्रत्यक्ष देखी है और उस में विचरा है। हे रामजी! इसकासा एक और भी पूर्वकल्पमें था। इतनासुन राजा दशरथने कहा, हे महामुनीश्वर! जो आप आज्ञादें तो मैं अपना अनुचर चिन्माचीन नगरमें भेजूं कि, वह वहां जाकर उस संन्यासीको जगावे? वशिष्ठजीने कहा, हेराजन्! वह संन्यासी अब ब्रह्माका हंसहोकर ब्रह्माके उपदेशसे जीवन्मुक्त हुआ है और यह शरीर उसका अब मृतक हुआ है। उस में अब पुर्यष्टका अर्थात् जीवनहीं उसका क्या जगाना है? एक महीने पीछे शिष्य उसका दरवाजा खोलेंगे तो उसनगरके लोग देखेंगे कि, वह मृतक पड़ाहै। इससे, हे रामजी! यह विश्वसङ्कल्पमात्रही है और जो तुम कहो कि, एकसे क्योंकरहुये तो सुनो कि, जैसे यह मुनीश्वर, ऋषि, राजा और और जो संसारमें लोग हैं वे कईवार एकसा शरीरधारते हैं और कईबारमध्य धारते हैं, कई कुछ थोड़ा धारते हैं और कई विलक्षण धारते हैं। इसनारदजीके समान और भी नारद होंगे उनकी चेष्टाभी ऐसीही होगी और शरीर भी ऐसाही होगा। व्यासजी, शुकदेव, भृगु, भृगुके पिता; जनक, करकर, अत्रि ऋषीश्वर और अत्रिकीस्त्री भी जैसी कि अब हैं वैसीही होंगी। जैसे समुद्रमें तरङ्ग एकसेभी और न्यून अधिकभी होते हैं तैसेही यह संसार ब्रह्मासे आदिलेकर पाताल पर्यन्त सबमनका रचाहुआहै और सब मिथ्या है। जब यह चित्तकला बहिर्मुख होती है तब संसार और देशकाल होता है और जब अन्तर्मुख होती है तब आत्मपद प्राप्त होता है। जब तक बहिर्मुखहोती है तबतक दुःखपाताहै। अपना स्वरूप आनंदरूपहै उसमें चित्तकला जानती है कि, मैं सदादुःखीहूं। देह और इन्द्रियों से मिलकर दुःखी होताहै। इससे हे रामजी! इस अज्ञानरूप फुरने से तुम रहित होरहो। फुरने से यह अवस्था प्राप्त

होती है। जैसे चन्द्रमा अमृत से पूर्ण है और उसमें चर्म दृष्टिसे कलंकता भासती है तैसेही अमृतरूपी चन्द्रमा आत्मामें अज्ञानदृष्टिसे जन्म, मरण, शोक, दुःख, भय, कलंक दीखता है । यह माया महाआश्चर्यरूप है जैसे चन्द्रमा एक है और नेत्र दोषसे अनन्त भासते हैं तैसेही एक अद्वैत आत्मा में नानात्व विश्वका भान अज्ञानसे होता है । यही मायाहै । हे रामजी ! तुम एकरूप आत्मा हो; उसमें फुरने से विश्वकल्पा है । इससे फुरनेसे रहितहुये बिना आत्माका दर्शन नहीं होता । जैसे उदयहुआ सूर्य्य भी बादलके होते शुद्ध नहीं भासता तैसेही फुरनरूपी बादलके दूरहुये आत्मरूपी सूर्य्य शुद्धभासता है और दृश्य, दर्शन, द्रष्टाफुरनेसे कल्पे हैं । हे रामजी ! इस संसारका सार जो आत्मा है उसमें सुषुप्तकी नाईं मौनहोरहो । रामजीने पूछा, हेभगवन् ! मैं तीन मौन जानता हूं—एक वाणी मौन अर्थात् चुपकर रहना; दूसरा इन्द्रियों का मौन और तीसरा कष्टमौन अर्थात् हठकरके मन और इन्द्रियोंको वश करना; सुषुप्त मौन नहीं जानता आप कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ये तीनों कष्ट मौन तपस्वियोंके हैं और सुषुप्तमौन ज्ञानी और जीवन्मुक्त का है । वे तीनों मौन जो तुमने कहे सो अज्ञानी तपस्वियों के हैं; उनको फिर सुनो । एक वाणीका मौन कि, बोलना नहीं दूसरा मौन समाधि कि, नेत्रोंका मूंदलेना और कुछ न देखना और तीसरा हठकर स्थित होना और मन और इन्द्रियोंको स्थित करना । एक मौन इन्द्रियोंकी चेष्टासे रहित होना और ज्ञानीका सुषुप्त मौन सुनो कि, वाणी और इंद्रियों से चेष्टाकरना पर आत्मासे भिन्न और कुछ न भासित होना अथवा ऐसे होना कि, न मैं हूं, न जगत् है अथवा ऐसे होना कि, सब मैंहींहूं । ऐसे निश्चय में स्थित होना बड़ा उत्तम मौन है । हे रामजी ! विधिसे भी आत्माकी सिद्धि होती है और निषेधसे भी होतीहै । उस आत्मामें स्थित होना बड़ा मौनहै । हे रामजी ! यह जो मैंने सुषुप्त मौन कहाहै सो क्याहै कि,द्वैतरूपसंसारके फुरनेसे सुषुप्तहोना; आत्मामें जागना और ऐसेदेखना कि, न मुझमें जाग्रत्है, न स्वप्नहै और न सुषुप्तिहै । इस निश्चयमें स्थित होना तुरीयातीतहै । यह पञ्चम मौनहै । ऐसा तुरीयातीत पदअनादि अनन्तजरासे रहित शुद्ध निर्दोषहै । हेरामजी ! ज्ञानी इन्द्रियोंके रोकनेकी इच्छाभी नहींकरता और न विचरनेकी इच्छाकरताहै जैसे स्वाभाविक आनपड़े उसमें स्थित होताहै । यहपरम मौनहै । ज्ञानी को सुखकी इच्छा भी नहीं और दुःखका त्रासभी नहीं; वह हेयोपादेय से रहितहै । हे रामजी ! तुम रघुवंश कुलमें चन्द्रमाहो अपने स्वभावमें स्थितहो; संसार भ्रम मनके फुरने से होताहै सो मिथ्याहै वास्तव नहीं; और न शरीर सत्यहै, न माया सत्यहै । हे रामजी ! तुम्हारा स्वरूप ओंकारहै और ओंकारको अङ्गीकार करके स्थितहोना परमउत्तम मौनहै । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! यह जो पीछेआपने

सबरुद्र कहे वे रुद्रथे अथवा रुद्रके गणथे ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसको रुद्रकहते हैं—उसीको गणकहते हैं ये सबहीरुद्र हैं। फिर रामजीनेपूछा, हे भगवन् ! यह जो आपनेकहा कि, सब रुद्रहुये ये तो एक चित्तथे सब क्योंकर हुये ? जैसे दीपकसे दीपकहोताहै इसीभांतिहुये ? वशिष्ठजीबोले हे रामजी ! एकसावरणहै दूसरा निरावरणहै। जिसका शुद्धअन्तःकरणहै वह निरावरणहै और जिसका मलिन अन्तःकरण है वह सावरण है। शुद्ध अन्तःकरण में जैसा निश्चय होताहै तैसाही तत्काल आगे सिद्ध होता है और मलिन अन्तःकरणका फुरना सिद्ध नहीं होता। इससे शुद्ध जो निरावरण रुद्रहै सो आत्माहै और सर्व्वव्यापी है; जैसा उनका निश्चय होताहै सो सत्यहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! सदाशिव की चेष्टा तो मलिन है कि, रुंडोंकी माला गरे में धारते हैं और बिभूति लगाकर श्मशान में बिहारकरते हैं और स्त्री बायें अंगमें रहती है। आप क्योंकर कहते हैं कि, उनका शुद्ध अन्तःकरणहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शुद्ध अशुद्ध अज्ञानी को कहते हैं। जो शुद्ध में बरते अशुद्ध में न बरते जो ज्ञानी है। वह अपने में क्रिया नहीं देखता और उसको शुद्ध अशुद्ध मलिन से राग द्वेष नहीं होता है। ऐसे सदा शिवजीको ग्रहण त्यागनहीं है, जो स्वाभाविक चेष्टा होती है सो हो वह ऐसे होती है कि, जैसे आदिपरमात्मा में विष्णुभगवान् चारभुजा धारे संसारकी रक्षा करनेकेलिये शुद्ध चेष्टासे अवतार धारकर धर्म्म की रक्षा करते हैं और पापियों को मारते हैं। यह आदि फुरना हुआ है। जो क्रिया स्वाभाविक ही आन प्राप्तहो उस क्रियाका उनको रागद्वेष करके हेयोपादेय कुछ नहीं और उनको क्रियाका अभिमान भी नहीं होता इसीसे क्रिया उनको बंधनहीं करती। इससे यह सिद्ध है कि, संसार फुरनेमात्र है। जब तुम फुरने से रहित होगे तब तुमको त्रिपुटी न भासेगी आत्मासे भिन्न कुछनहीं भासेगा इससे तुम अज्ञानरूप फुरनेसे रहितहो जब तुमको और आत्मपदका साक्षात्कार होगा। तब तुमजानोगे कि, मुझमें फुरन, दृश्य, अदृश्यकुछ नहीं केवल आत्मपद है जिसमें एककहना भी नहीं तो द्वैतकहां से हो ? हे रामजी ! दृश्य, अदृश्य, फुरना, न फुरना और विद्या, अविद्या ये सब उपदेशके निमित्त कहते हैं, आत्मा में कुछ कहा नहींजाता। आत्मा एक है जिसमें द्वैतका अभाव है। जब चित्त परिणाम बहिर्मुख होताहै तब विश्व का भानहोताहै और जबचित्त अन्तर्मुख परिणाम पाताहै तब अहंता और ममताका नाश होताहै और चेतनमय शेष रहताहै। जब अतिशम अन्तर्मुख परिणाम होता है तब चेतनभी नहीं कहाजाता और जब इससे भी अतिशय परिणाम पाता है तब 'है' 'नहीं' भी नहीं कहाजाता। हे रामजी ! ऐसा आत्मा तुम्हारा अपना आपस्वरूप और शांतपद है उसमें वाणीका गमनहीं कि, ऐसा कहिये और तैसाकहिये। ऐसा

कहिये तो इन्द्रियों का बिषयहै और तैसा कहिये तो इन्द्रियोंसे परहै । जब तुमअपने में स्थित होगे तब जानोगे कि, मुझमें अहंफुरना कुछ नहीं । आत्मरूपी सूर्य्यके साक्षात्कारहुये से दृश्यरूपी अंधकार का अभाव होजावेगा क्योंकि, आत्मा तुम्हारा अपना आपहै जो केवल शांतरूप और निर्मलहै । जैसे गम्भीर समुद्र वायुसे रहित होताहै तैसेही आत्मरूप समुद्र सङ्कल्परूपी वायुसेरहित, गम्भीर और शुद्धहोता है । यह संसार चित्तका चमत्कार है जो निरंश है और जिसमें अंशांशीभाव नहीं– अद्वैतहै हे रामजी ! जब ऐसे बोध में स्थित होगे तब इस विश्वको भी आत्मरूप देखोगे और यदि बोध विना देखोगे तो विश्वका भान होगा । इससे हे रामजी बोधमें स्थितरहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकताप्रतिपादनंनामषष्टितमस्सर्ग्गः ६० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सदा शिवका आदि फुरना हुआहै जो त्रिनेत्रहैं और विश्वका संहार करते और शिरोंकी मालाधारण किये हैं । ब्रह्मा के चारमुख हैं और चारों वेद हाथमें हैं और संसारकीउत्पत्ति करते हैं उनका ऐसेही फुरनाहुआहै । हेराम जी ! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों एकरूप हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक यही बनपड़ी है । उन्होंने यह कर्म न रागसे अङ्गीकार किया है और न द्वेषकरके त्यागकरते हैं और यह संज्ञाभी लोगोंके देखनेके लिये है वे अपने ज्ञानमें कुछनहीं करते क्योंकि; बोधमेंही उनका जाग्रत् है बोधमें जाग्रत् क्या और कैसे होताहै सोभी सुनो । एक सांख्य मार्ग्गसे होता है और एक योग मार्ग्गसे होता है । सांख्य मार्ग्ग यह है कि, तत्त्व और मिथ्या का विचारना । तत्त्व इसे कहते हैं कि, मैं आत्मा सत् और चेतनहूं और सर्वदृश्य मिथ्या, जड़ और असत् है ! मेरेमें अज्ञान कल्पित है पर मैं अद्वैत आत्माहूं और मेरेमें अज्ञान और दृश्य दोनों नहीं । ऐसे निश्चय में स्थित होना सांख्य विचार है । योग प्राणोंके स्थित करने को कहते हैं क्योंकि, जब प्राण स्थित होते हैं तब मनभी स्थित होजाता है और जब मन स्थित होजाता है तब प्राणभी स्थित होते हैं–इनका परस्पर सम्बन्ध है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो प्राणही स्थित हुये से मुक्त होता है तो मृतक पुरुषोंके तो प्राण नहींरहते–वे सब मुक्त होने चाहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी प्रथम तो प्राण श्रवण करो कि, क्या है । यहजीव पुर्यष्टकामें स्थित होकर जैसी वासना करता है तो शरीरको त्यागकर उसी के अनुसार आकाश में स्थित होता है इसका नाम प्राण है । उस बासनारूप प्राणसे फिर उसको संसारका भान होता है और जब प्राणकी वासना क्षय होती है तब मुक्त होताहै । ज्ञानीकी बासना क्षय होजातीहै इससे वह जन्म–मरणसे रहित होताहै । जैसे भुनाबीज फिर नहीं उगता तैसेही ज्ञानीको बासनाके अभावसे जन्म मरण नहीं

होता। हे रामजी! जन्म मरण दोनों मार्गोंसे निवृत्त होता है और दोनों का फल कहा है। हे रामजी! ज्ञानसे चित्त सत्यपदको प्राप्त होता है और योग करके प्राणवायु स्थित होती है तब बासना क्षय होजाती है। जब स्वरूपकी प्राप्ति होती है तब संसार के पदार्थोंका अभाव होजाताहै जैसे रसायनसे तांबा सोना होके फिर तांबेका भावनहीं रहता; तैसेही ज्ञानसे विश्वरूपी तांबेकी संज्ञानहीं रहती। जैसे ताबाभावजाता रहता है तैसेही ज्ञानसे जब चित्त सत्यरूप हुआ फिर संसारी नहीं होता। आत्मामें न बन्ध है और न मुक्त है परमात्मा एक अद्वैत है तब उसमें बन्ध कहां और मुक्तकहां? बन्ध और मुक्त चित्तके कल्पेहुये हैं और जोचित्तकेशान्तकरनेका उपायकहा है उससे शान्त होता है इसीको मुक्त कहते हैं और बन्ध मुक्त कोई नहीं। चित्तके उदय होनेका नाम बन्ध है और चित्तका शांत होनाही मुक्त है। हे रामजी! जब मनअपने वश होता है तब आत्मपद प्राप्तहोताहै; अथवा जब प्राण स्थितहोतेहैं। तब आत्मपद प्राप्तहोताहै। यह संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्याहै; जब वासना निवृत्तहोतीहै तब आत्मपदमें स्थिति होती है। जैसे मेघ जब जलसंयुक्त होते हैं तबगर्जते हैं और वर्षाकरते हैं और जब वर्षासे रहितहोते हैं तब शांतहोजाते हैं तैसेहीजब बासनाक्षयहोती है तब चित्तशांत होजाताहै! जैसे शरत्कालमें बादल और कुहिरा निवृत्त होकर शुद्ध और निर्मलआकाशही रहता है, तैसेही बासनाके निवृत्त हुये शुद्ध और केवल चेतन आत्मा हो भासता है। जो तुम एक मुहूर्त्त भी चित्त बिना स्थितहो तो तुमको आत्मपदकी प्राप्तिहो। जब तक चित्तकी बासना क्षय नहींहोती तबतक बड़ेभ्रम देखताहै। हे रामजी! यह संसार मृगतृष्णाके जलवत् असत् है और आभासमात्र फुरता है। इसपर एक आख्यान जो आगे हुआ है सो कहताहूं मनलगाकर सुनो। दक्षिणदिशा में मन्दराचलपर्व्वत है उसकी कन्दरा में एक बैताल महाभयानक आकारसेरहताथा और मनुष्यों को खाताथा। उसके मनमें बिचार उपजा कि,किसी नगरको भोजनकरूं पर वह एकसमय साधुकासंगभी करताथा क्योंकि, एकसाधु उस बैतालको भोजनकरता था। उससाधु संगके प्रसाद से बैतालके मनमें यहउपजा कि, मेरी कौन गतिहोगी? मेरा आहार मनुष्यहै और मनुष्योंका भोजनकरना बड़ीहत्याहै। इससे मैं एकवृत्तिकरूं कि, जो मूर्ख और अज्ञानी मनुष्यहों उनको भोजन करूं और जो उत्तम पुरुष हैं उनको न खाऊं। हे रामजी! निदान वह बैताल यद्यपि क्षुधातुर भी हो तौभी भले मनुष्यों को न खावे इसीप्रकार एकसमय वह क्षुधासे बहुतव्याकुल हो रात्रिके समय घरसे बाहर निकला तोसंयोगबश उसनगरके राजासे जो बीरयात्राको निकलाथा भेंटहुई। बैतालने कहा, हेराजन्! तुममुझे भोजनमिलेहो अब मैं तुमको खाताहूं; तुमकहांजावोगे? राजाने

कहा; हेरात्रिके बिचरनेवाले बैताल! जोतू मेरे निकट अन्यायसे आवेगा तोतेराशीश हजार टुकड़ेहोगा और तू गिरेगा। बैतालने कहा, हे राजन्! मैं तुझसे नहीं डरता। हेआत्महत्यारे! मैं तुझे भोजनकरूंगा; चाहे तूजैसा बलीहो मैं नहींडरता परन्तु एक मेरी प्रतिज्ञा है कि, मैं अज्ञानी को भोजनकरताहूं और ज्ञानी को नहीं मारता। जोतू ज्ञानीहै तो न मारूंगा और जो अज्ञानी है तो मारूंगा जैसे बाज पक्षी पक्षियों कोमारताहै। जोतूज्ञानीहै तो मेरेप्रश्नोंका उत्तरदे। एकप्रश्नयहहै कि, जिसमें ब्रह्माण्ड रूपी अणुहै वह सूर्य्य कौनहै दूसरा प्रश्न यहहै कि, जिस पवनमें आकाशरूपीअणु उड़तेहैं वह पवन कौनहै तीसरा प्रश्न यहहै कि, जिसमें केलेकेवृक्षवत् और कुछनहीं निकलता वह कौनवृक्षहै और चौथाप्रश्न यहहै कि, वहपुरुष कौनहै जोस्वप्नसे स्वप्ना और फिर उसमें और स्वप्ना देखताहै और एकरहताहै, परिणामको नहीं प्राप्तहोता? इनप्रश्नोंका उत्तर दो, जो तुमने मेरे प्रश्नोंका उत्तर न दिया तो तुझेखाजाऊंगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबैतालप्रश्नोक्तिनामएकषष्टितमस्सर्ग्गः ६१॥

राजाबोला हे बैताल! इनप्रश्नोंका उत्तर सुनों ब्रह्माण्डरूपी एक मिरच बीजहै और उसमें सत्पद आत्माचेतन रूपी तीक्ष्णताहै। एकडालमें ऐसी मिरचें कईसहस्र लगीहुई हैं और एक वृक्षमें कई सहस्र ऐसी डालें लगीहैं; ऐसे वृक्ष एक वनमें कई सहस्र हैं और ऐसे कई सहस्र वन एक शिखर पर स्थित हैं; ऐसे कई सहस्र शिखर एक पर्व्वत परहैं और ऐसे कई सहस्र पर्व्वत एक नगरमें हैं; ऐसे कई सहस्र नगर एक द्वीप में हैं और ऐसे कई सहस्र द्वीप एक भव पृथ्वी में हैं; ऐसे कई सहस्र पृथ्वी भव एक अण्ड में हैं और ऐसे कई सहस्र अण्ड एक समुद्र में लहरे हैं; ऐसे कई सहस्र समुद्र एक समुद्रकी लहरे हैं और ऐसे कई सहस्र समुद्र एक पुरुष के उदरमें हैं; ऐसे कई पुरुषोंकी एक पुरुषके गले में माला पिरोई हुई हैं। ऐसे कई लाख कोटि सूर्य्यके अणु हैं जिस सूर्य्यसे सर्व्व प्रकाशमान है। वहसूर्य्य आत्मा है जिसमें अनन्त सृष्टि स्थित है। हे बैताल! जैसे यह सृष्टि भासती है तैसेही सब सृष्टिजान। जो यह सृष्टिसत्य है तो सब सृष्टि सत् है और जो यह सृष्टि स्वप्न है तो सब सृष्टि स्वप्नजानो। आत्मा ऐसा सूर्य्य है जिससे भिन्न और अणु कोई नहीं और सदा अपने आपमें स्थित है। इससे और क्या पूछता है? ऐसे आत्मामें स्थित हो जो आत्मसत्ता मात्रपद है; जिससत्ता मात्रपदसे कालसत्ता हुई है और उसी में आकाश सत्ताहुई है। उसी सत् पदसे सबसत्ता संकल्पसे उदय हुई है और संकल्प के लय हुये सब लय होजाती है। तूने जो प्रश्नकियाथा कि, वह कौन सूर्य्य है जिससे ब्रह्माण्डरूपी अणु होते हैं? वह ब्रह्मसूर्य्य है जिससे भिन्न और कुछ नहीं और केले का वृक्ष जो तू ने पूछा था सो केलेकी नाईं भीतर बाहर बिश्वके आत्मास्थित है।

ष्वग पुत्रदारगृहादिषु। नित्यचसमचित्तत्वं मिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ अर्थात् देह और इन्द्रियों में आत्म अभिमान न करके पुत्र, स्त्री और कुटुम्बके दुःखसे आपको दुःखी न जानना; नित्य सम चित्त रहकर इष्ट अनिष्ट की प्राप्तिमें एकरस रहना; चित्तको आत्मपद में लगाकर वृत्तिको और ओर न जानेदेना, एकान्त देश में स्थित होना और अज्ञानी का संग न करके ब्रह्मविद्या का सदा विचार करना; यह लक्षणतत्त्व ज्ञान के दर्शन के निमित्त तुमसे कहेहैं—इससे विपरीत अज्ञानता है। हे राजन्! यहज्ञेय जानने योग्यहै; इसके जानेसे केवल शांत पद को प्राप्त होगे और देह का अहंकारभी निवृत्तहोगा।हे राजन्! पहिले अहंहोताहै और फिर ममहोतीहै; इससे तू अहंममका त्यागकर। जब अहं ममका त्याग करेगा तब आत्मपद अहंप्रत्ययसे भासेगा वह आत्मा सर्व्वज्ञ है; सर्व्व भी आपहै; स्वतःप्रकाश और आनन्दरूप है पर संसार के आनन्दसे रहित है। जब ऐसे गुरूजीनेकहा तबराजाबोला; हेभगवन्! यह अहंकार तो चिरकाल का देहमें रहताहै और अभिमानी है उसका क्योंकरत्याग करूं? ऋषिबोले, हे राजन्! अहंकार पुरुषप्रयत्न करके निवृत्तहोताहै। पहिलेभोगों में द्वेष दृष्टि करनी, भोगों की वासना न करनी; बारम्बार अपने स्वरूप की भावना करनी और विचारकरना; इससे तुम्हाराजीव अहंकार निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! जब तुम्हारा अहंकार निवृत्तहोगातब तुमको सर्व्वात्माही भासेगा और दुःखसे रहित शांतरूपका प्रकाश होगा। हे राजन्! यह लज्जारूप फांसी जबतक निवृत्त नहीं होती तबतक आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। अहं, मम, तृष्णा, शोक, दुःख और भला कहने की इच्छा इत्यादिक जो मोहके स्थान हैं उसे लज्जा कहते हैं। इससेतुम अहं ममसे रहित हो तुम्हारे शत्रुजो राज्य लेनेकी इच्छा करतेहैं उनको अपनाराज्य दो और क्षोभसे रहित होकर पुत्र, स्त्री और बांधवों के मोहसे रहितहो। मेरेमोह से भी रहितहो और राज्यकात्याग करके एकांत देशमें स्थित हो और उन शत्रुओं के घरमें भिक्षामांग कि, तुझे भला कहने की इच्छा न रहे। अबउठ खड़ा हो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभगीरथोपदेशोनामत्रिषष्टितमस्सर्ग्गः ६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जबइसप्रकार त्रितल ऋषीश्वरने उपदेशकिया तब राजा उठखड़ाहुआ और घरको गया। गुरुका उपदेश हृदय में धारकर अपनेराज्य में स्थितहो राज्य करनेलगा और मनमें विचार भी करतारहा। जब कुछकाल बीता तब राजाने अग्निष्टोम यज्ञका आरम्भ किया। धनके त्यागकरनेको अग्निष्टोमयज्ञ कहते हैं। तीन दिनमें धनका त्यागकर हाथी, घोड़े, रथ, भूषण, वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य्यथे सो लोगोंको देदिये। ब्राह्मण, अर्थी, पुत्र, स्त्री और शत्रुओंको जब पृथ्वी का राज्य देदिया तो शत्रुओं ने जाना कि, अब राजा भगीरथ में कुछ पराक्रम नहीं

रहा तो उन्होंने आकर इसका देश घेरलिया, हवेलीपर चढ़ आये और राजाके सब स्थान रोंकलिये । राजाके पास केवल धोती अँगौछा रहगया तब राजा वहांसे निकल कर बनोंमें बिचरनेलगा और शान्तपद आत्मामें स्थित हुआ । जब कुछ कालबीता तो भगीरथ फिर अपने देशमें आया और अपने शत्रुओं के घरमें भिक्षामांगनेलगा तब शत्रुओं और दूसरे लोगोंने उसकी बहुत पूजाकी और कहा, हे भगवन् ! तुम अपना राज्यलो; पर उसने राज्य न लिया । जैसे पृथ्वीपर पड़ातृणको तुच्छबुद्धिकर-के नहीं ग्रहण करता तैसेही उसने राज्य ग्रहण न किया । कुछकाल वहां रहकर त्रितल ऋषिकेपास जो उसका गुरु था अनिच्छितहोकर गया । गुरुने आत्मत्वसे उसे ग्रहण किया और शिष्यने भी गुरुकोआत्मत्व से ग्रहणकिया । गुरु और शिष्यभावना से रहितहो वे दोनों कुछकाल एकस्थानमें रहे और फिर बनमें इकट्ठे विचरनेलगे । वे शांत और आत्मपदमें स्थित रहकर रागद्वेषसे रहित केवल एकरस स्थितरहे और उनके न देहत्यागनेकी इच्छाथी, न देहरखनेकी इच्छाथी; केवल अनिच्छित प्रारब्ध में स्थितरहतेथे । इतनेमें स्वर्गलोकके सिद्धोंने आकर उनकी पूजाकी और बड़ेऐश्वर्य पदार्थ चढ़ाये । बहुत अप्सराआईं और जितने ऐश्वर्यभोग पदार्थथे वे आये पर उन-को उन्होंने तुच्छजाना क्योंकि; वे आत्म सुखसे तृप्त और केवल आकाशवत् निर्मल थे और प्रकाशरूप, समचित्त, कलङ्कतारूपी मलसे रहितथे । हे रामजी ! जैसे राजा भगीरथ स्थितहुये हैं तैसेही तुमभी स्थितहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनन्नामचतःषष्टितमस्सर्गः ६४ ॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! जबकुछ कालबीता तो भगीरथ वहांसेचला और एक देशमें पहुंचा जहां का राजा मृतक हुआ था और उसकी लक्ष्मीराजाकी याचना करती थी । राजा भगीरथ भिक्षा मांगता फिरताथा कि, उस राजाके मन्त्रीने भगी-रथको देखा कि, जो कुछ गुणराजामें होते हैं वे इसमें हैं; इसलिये वह राजा भगीरथ से बोला, हे भगवन् ! आप इस राज्यको अङ्गीकार कीजिये क्योंकि, आपको अनि-च्छित प्राप्त हुआ है । निदान राजाने उस राज्यको ग्रहण किया और उसे न कुछ भलाजाना नबुरा । फिर राजा हाथीपर आरूढ़ हो सेना से सुशोभित हुआ देश और सब स्थान सेनासे पूर्णहुये । जैसे मेघसे ताल पूर्ण होते हैं तैसेही देश और स्थान सेना से पूर्ण होगये और नगारे और साज बजनेलगे । तब राजा गृहमेंगया और महल की सब स्त्रियां आईं । जहां का राज्य भगीरथने पहिले किया था उस देशसे मंत्री और प्रजा आये और उन्होंने भगीरथसे कहा, हे भगवन् ! जिन शत्रु-ओंको तुमने राज्य दियाथा उनको मृत्युने भोगकरलिया है । जैसे मछली मल मांस को खालेती है तैसे उनको मृत्युने भोजन करलियाहै; इससे तुम राज्यकरो । यद्यपि

इच्छा तुमको नहीं है पर तौभी राज्यकरो क्योंकि, जो बस्तु अनिच्छित प्राप्तहो उस का त्याग करना श्रेष्ठ नहीं इतनासुन राजाने उस राज्यका भी अङ्गीकार किया और राज्य करनेलगा । फिर राजाने पिछला वृत्तान्त स्मरणकर कि, मेरे पितर कपिल मुनि के शाप से भस्म हो कूप में पड़े हैं; विचार किया कि, मैं उनका उद्धार करूं; इसलिये अपने मंत्रीको राज्यदेकर अकेला बनकोचला और इच्छाकी कि,तप करूं। निदान एकस्थानमें स्थित होकर तप करनेलगा और गङ्गाके लानेके निमित्त ब्रह्मा, रुद्र और जगत् ऋषिका सहस्र वर्षपर्य्यन्त आराधन किया। तब गङ्गा मध्य मंडल में आई जो विष्णु भगवान् के चरणों से प्रकटहुई हैं। जब पितरोंके उद्धार निमित्त गङ्गाके प्रवाहको राजाले आया तब फिर समचित्त और शान्तपद में स्थित होकर बिचरने लगा; जिसमें क्षोभ, भय और इच्छा न थी केवल शान्त आत्मपदमें स्थित हुआ। जैसे पवनसे रहित समुद्र अचल होता है तैसेही सङ्कल्प विकल्प से रहित होकर वह राजा स्थित हुआ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पञ्चषष्टितमस्सर्गः ६५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यहजो भगीरथकीदृष्टि तुमसे कही है उसका आश्रय करके विचरो। यह दृष्टिसब दुःखोंका नाश करती है । एकआख्यान ऐसा आगेभी व्यतीत हुआ है। ऐसाही शिखरध्वज राजा हुआथा । इतनासुन रामजीने पूछा, हे भगवन्! वह शिखरध्वज कौनथा और किस प्रकार चेष्टा करताथा सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सातमन्वन्तरों के बीतनेके उपरान्त द्वापरयुगकी चौथी चौकड़ीमें राजा शिखरध्वज हुआ है और फिरभी होवेगा। वहराजा सम्पूर्ण पृथ्वीका तिलक,महाशूरवीर और सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे संपन्नथा परन्तु उसमें बन्धवान् नथा। वह बड़ेभोग भोगता और बड़े ओजसे संपन्न, उदार, धैर्य्यवान्था किसी पर अन्याय न करे और समचित्त, शान्तपदमें स्थित और सम्पूर्ण दुःखोंसे रहितथा और अर्थीका अर्थ पूर्ण करताथा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञानवान् राजा फिर क्यों जन्म पावेगा, ज्ञानीतो फिर जन्म नहीं पाता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे एक समुद्रमें कईतरङ्ग समानउठते हैं, कई अर्द्धसम और कई बिलक्षण भावसे फुरते हैं, तैसेही आत्मसमुद्रमें कई आकार एकसे,कईअर्द्ध औरकई बिलक्षण भावसे फुरते हैं,जो समान फुरते हैं उनकी चेष्टा और आकार एकसे दृष्टि आते हैं। इसीप्रकार शिखरध्वजकी ऐसेही प्रतिभा होगी। हे रामजी! जबइससर्ग में सप्तमन्वन्तर और चारचौकड़ी द्वापरयुगकी बीतेंगी तबजम्बूद्वीपके मालवदेशमें एकश्रीमान् शिखरध्वज राजाहोगा परन्तु वह उससा शिखरध्वज दूसरा होगा, वह न होगा। प्रथम शि-

खरध्वज जब षोड़श बर्षका राजकुमारथा तबएक समय शिकारको निकला । बसन्त ऋतुकासमयथा; राजा अपने बागमेंजा ठहरा जहां,फूलोंके बिचित्र स्थानवने हुयेथे और कमलिनियां मानों स्त्रियां और धूरके कणके उनके भूषणथे और उनके समीप पुष्पवृक्ष लगेथे इसीप्रकार भँवरी और भँवरोंकी सुन्दरलीलादेख राजाको बिचार उपजा कि, मुझे स्त्री प्राप्त हो तो मैंभी चेष्टाकरूं । निदान उसे अधिक चिन्तना हुई कि, कब मुझे स्त्री मिलेगी और कब उसके साथ फूलकी शय्यापर शयन करूंगा जब इसप्रकार भोगकी राजा चिन्तना करनेलगा तबमंत्रियों ने, जो त्रिकाल ज्ञानरखते थे और राजाके शरीरकी अवस्था जानतेथे, जानाकि; हमारे राजाका मनस्त्रीपर है, इससे अब राजाका विवाह करना चाहिये । निदान एकराजाकी कन्याजो बहुत सुन्दरी थी और बर चाहती थी उससे राजा शिखरध्वजका विवाह शास्त्रकी बिधि सहित किया गया और राजाबहुत प्रसन्न होकर अपने घरआया । उसस्त्रीका नाम चुड़ालाथा और वह बहुत सुन्दरीथी । उससे राजाकी बहुत प्रीतिहुई और उस स्त्री काभी राजासे बहुतस्नेहहुआ; जो कुछराजाके मनमें चिन्तनाहो वह रानी पहिलेही सिद्धकरदे उनकी परस्पर ऐसी प्रीति बढ़ी जैसे भँवरे और भँवरी में होती है । एक समयराजा मंत्रियोंको राज्यदेकरबनको गया और वहांनानाप्रकारकी चेष्टाकर दोनों ऐसेबिचरे कि,जैसेसदाशिव और पार्वती; व विष्णु और लक्ष्मीविचरें । इसकेपश्चात् राजा योगकला सीखनेलगे पररानी राजाकोभोग कला सिखावे; इसीप्रकार वे दोनों सम्पूर्ण कलाओंमें संपन्नहुये । चुड़ालाकी बुद्धिराजाकी बुद्धिसे तीक्ष्णथी वहशीघ्रही सबबातें जानले और राजाको सिखावे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजचुड़ालोपाख्यानंनाम षट्षष्टितमस्सर्ग्गः ६६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसीप्रकार जबराजा और रानीने अनन्त भोगभोगे तो जैसे कुम्भमें छिद्रहोनेसे शनैःशनैः जल निकलताहै तैसेही शनैःशनैः उनकेयौवन के दिन निकल गये और वृद्ध अवस्था आई तब राजा और रानीको वैराग्य उत्पन्न हुआ और वैराग्यसे वे यह विचारनेलगे कि, यहसंसार मिथ्या और विनाशीहै, एकसा नहीं रहता और ये भोग भी मिथ्या हैं कि, इतनेकाल हम भोगते रहे पर तृष्णा पूर्ण न हुई—बढ़तीही गई । हे रामजी ! इसप्रकार राजा और रानी वैराग्यसे विचारते रहे कि, ये भोग मिथ्या हैं और हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत होगई है । जैसे बिजलीका चमत्कार क्षणमात्र होकर बीतजाता है तैसेही यौवन अवस्था व्यतीत होगई और मृत्यु निकट आई । जैसे नदीका बेगनीचे चलाजाता है तैसेही आयुर्बल व्यतीत होजाती है और जैसे हाथपर जलडालने से बहजाताहै तैसेही यौवन

अवस्था निवृत्त होगई है। जैसेजलमें तरङ्ग और बुदबुदे उपजकर लीन होजाते हैं तैसेही शरीर क्षणभंगुर है। जहां चित्तजाता है वहां दुःखभी इसके साथ चलेजाते हैं–निवृत्त नहीं होते। जैसे मांसके टुकड़ेके पीछेचील पक्षी चलाजाता है तैसेही जहां अज्ञान है वहांदुःखभी पीछे जाते हैं। यह शरीरभी नष्ट होजावेगा। जैसे पकाहुआ आंबका फल वृक्षकेसाथ नहीं रहता; गिरपड़ता है; तैसेही शरीरभी नष्टहोजाता है। जो शरीर कि अवश्य गिरता है उसका क्या आसरा करना है।जैसे सूखा पत्ता वृक्षसे गिरपड़ता है तैसेही यह शरीर गिरपड़ता है। इससे हम ऐसा कुछकरें कि, संसार रूपी विशूचिका निवृत्त हो। यह संसाररूपी विशूचिका ब्रह्म विद्याके मंत्रसे निवृत्त होती है; ब्रह्मविद्यासे ज्ञानउपजता है और आत्मज्ञानसे सर्व दुःख निवृत्त होजाते हैं इसके सिवा और कोई उपाय नहीं ; इसलिये आत्मज्ञानके निमित्त हमसन्तोंके पास जावें। ऐसे विचार करके राजा और चुड़ाला आत्मज्ञानियोंके पासचले। वे आत्म-ज्ञानकी वार्त्ताकरें और आत्मज्ञानमेंहींचित्तभावनाकर आपसमें उसीका विचार और चर्चाकरें। निदानवे ऐसे सन्तों के पासपहुंचे जो संसार समुद्रसे तारने वाले और आत्मवेत्ताथे। उनकी पूजाकरके उन्होंने उनसे प्रश्नकिया और राजा और रानी उन से ब्रह्मविद्या सुननेलगेकि, आत्माशुद्ध, आनन्दरूप,चैतन्य और एकहै जिसके पाये से दुःख निवृत्त होजाते हैं। हेरामजी! तब रानीचुड़ाला विचारमेंलगी और राजाकी कोईटहलभीकरे तो भी उसके चित्तकी वृत्ति विचारहीमें रहे। वह यह विचारे कि, मैं क्याहूं ? यहसंसार क्याहै और संसारकीउत्पत्ति किससे है ? ऐसे विचारकर वहजानने लगी कि, यहशरीर पञ्चतत्त्वकाहै सोमैंनहीं क्योंकि; शरीरजड़ है और कर्मइन्द्रियांभी जड़हैं। जैसाशरीरहै तैसेही शरीरकेअङ्गभी हैं और ये चेष्टा ज्ञानइन्द्रियों से करतेहैं सो ज्ञान इन्द्रियां भी मैं नहीं क्योंकि; ये भी जड़ हैं । मन से मनकी चेष्टा होती है सो मन भी जड़ है; इसमें संकल्प विकल्प बुद्धिसे है। बुद्धिभी जड़ है क्योंकि; उसमें निश्चय चेतना अहंकारसे होती है और अहंकारभी जड़है क्योंकि, उसमें अहंचेत-नासे होती है। वह चेतनता जीवसे होती है वहजीवभी मैं नहीं क्योंकि, जीवत्व फुर-न रूप है और मेरास्वरूप अफुर,सदा उदयरूप और सन्मात्र है। बड़ा कल्याण है कि, चिरकालके उपरांत मैंने अपना स्वरूप पाया है जो अविनाशी, अनन्त और आत्मा है। जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसेही मैं निर्मल और विगत ज्व ; राग– द्वेषरूपी तापसे रहित चिन्मात्र पदहूं और अहंत्वसे रहितहूं। मुझमें फुरनाकोईनहीं; इसीसेशांतरूपहूं। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचलपर्वतसे रहित शान्त-रूपहै; तैसेही मैं चित्तसे रहित अचल और अद्वैतहूं, कदाचित् स्वरूपसे परिणाम को नहींप्राप्तहोती। ऐसा जो तन्मात्रपदहै उसको ब्रह्मवेत्ताओंने ब्रह्म और परमात्म

चेतनसंज्ञा कही है। यह आत्माही मन,बुद्धि आदिक दृश्य और संसाररूप होकर फैला है और स्वरूपसे अच्युत है और फुरनेसे आकार भासते हैं तौभी आत्मासे भिन्ननहीं। जैसे बड़ेपर्वतकेपत्थर और बट्टेहोतेहैं सो पर्वतसेभिन्ननहीं तैसेही यहदृश्य आत्मासे भिन्ननहीं । ये आकार ऐसे हैं जैसे गन्धर्वनगर नाना आकारहो भासता है पर ज्ञानवान्को एकरस है और अज्ञानीको भेदभावनाहै। जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौने हाथी, घोड़ा, राजा, प्रजा आदि बनाता है और जिसको मृत्तिका का ज्ञानहै उसको मृत्तिकाही भासतीहै भिन्नकुछनहीं भासता; तैसेही अज्ञानसे नानारंग भासते हैं। अब मैंने जानाहै कि, मैं एकरसहूं। हेरामजी ! इसप्रकार चुड़ाला आपको जानने लगी कि, मैं सन्मात्र, अच्छेद, अदाह,स्वच्छ,अक्षर और निर्मलहूं; मुझमें 'अहं' 'त्वं' 'एक, और द्वैतशब्द कोईनहीं और जन्म, मरणभी नहीं। यह संसार चित्तसे भासता है और आत्मस्वरूप है। देवता, यक्ष, राक्षस, स्थावर, जंगम आदिक सब आत्मरूप हैं। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे समुद्रसे भिन्ननहीं तैसेही आत्मासे कोई वस्तु भिन्न नहीं। दृश्य, द्रष्टा, दर्शन ये भी आत्माकी सत्तासे चेतनहैं; इनको आपसे सत्ता कुछनहीं। मुझमें अहंका उत्थान कदाचित् नहीं—अपने आपमें स्थितहूं। अब इसी पदका आश्रयकरके चिरकाल इस संसारमें विचरूंगी ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचुड़ालाप्रबोधोनामसप्तषष्टितमस्सर्गः ६७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! फिर चुड़ाला जिसकी तृष्णा निवृत्तहुई थी और जो दुःख, भय और भोग वासना से निवृत्त होकर केवल शांतपदको पाकर शोभित हुई थी पाने योग्य पद पाकर जानने लगी कि; इतने कालतक में अपने स्वरूप से गिरी थी और अब मुझे शान्तिहुई है और दुःख सब मिटगये हैं। अबमुझे कुछ ग्रहण और त्याग नहीं और अब मैं अपने आत्मस्वभावमें स्थितहुईहूं। निदान एकान्त बैठकर समाधिमें ऐसी लगी। जैसे वृद्धगऊ पर्वतकी कन्दरा पाकर तृण और घाससे बहुत प्रसन्न होती है तैसेही अपने आनन्दरूपको पाकर चुड़ाला स्थितभई। हे रामजी ! वह ऐसे आनन्दको प्राप्तहुई जिसको वाणीसे नहीं कहसक्ते। तब राजा शिखरध्वज रानीको देखकर आश्चर्यवान् हुआ और बोला; हे अङ्गना ! अब तुम फिर यौवन अवस्थाको प्राप्तहुई हो और तुमको कोई बड़ाआनन्द प्राप्तहुआ है। कदाचित् तुमने अमृतका सार पानकिया है इससे अमर हुईहो वा किसी योगीश्वरने तुझे इस कलाको प्राप्तकिया है; अथवा त्रिलोकी का ऐश्वर्य तुझे प्राप्तहुआ है। हे अङ्गना ! तुझेकौन वस्तुमिलीहै? तुम्हारे चित्तकी वृत्तिसे ऐसा जानपड़ताहै कि,तुमने अमृतका सार पान कियाहै व त्रिलोकीके राज्यसे भी कोई अधिक पदार्थ पायाहै। तू तो किसी बड़े आनन्दको प्राप्तहुई है कि, जिसका आदि अन्त कोई नहीं दीखताऔर

तुझमें भोग बासनाभी नहीं दीखती शांतरूप होगई है। जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसेही तुझमें निर्मलता दीखती है और तेरे श्वेतबालभी बड़े सुन्दर दृष्टि आते हैं इसलिये कह कि, तुझे कौनसी बस्तु प्राप्तहुई है? चुड़ाला बोली, हे राजन्! यह जो कुछ दीखताहै सो किंचित्है और इससे जो रहित निष्किंचित्पद है उसको पाकर मैं श्रीमान् हुईहूं। जिसका आकार निष्किंचित् है और जिसमें दूसरे का अभाव है उसीको पाकर मैं श्रीमान् हुईहूं और जो कुछ भोग हैं उनसे रहित होकर अभोग भोग भोगा है उस भोगसे तृप्त हुई हूं अर्थात् आत्मज्ञान मैंने पाया है और आत्मामें बिश्राम पायाहै जिससे सदा शांतरूप और श्रीमानहूं। हे राजन्! जितने ये राज भोग सुख हैं उनको त्यागकर मैं परमसुखको भोगतीहूं और राग द्वेषसे रहित होकर मैं कैसीहूं कि, 'नहींहूं' और मैंहीं स्थित हूं। जो कुछ नेत्रोंसे दिखता इन्द्रियों से जानाजाता है और मनसे चिन्तन होता है वह सब मिथ्या स्वप्नवत् है और मैं वहां स्थित हुईहूं जहां इन्द्रिय और मनकी गम नहीं और अहंकार का उत्थान नहीं उस पदको मैं ने पाया है। जो सबका आधार और सबका आत्मा है और जो सर्व अमृत है उसका सार अमृत मैंने पान किया है इससे मेरा कदाचित् नाश नहीं और कदाचित् भयभी नहीं। हे रामजी! जब इस प्रकार रानीने कहा तो राजा शिखरध्वज उसके वचन न समझा और हँसकर बोला, हे मूर्ख स्त्री! यह तू क्या कहती है जो प्रत्यक्ष बस्तुको झूठ बताती है और कहती है कि, मैं नहीं देखती और असत् बस्तु जो नहीं दिखता उसको सत्य कहतीहै और कहती है कि,मैं देखती हूं। ये बचन तेरे कौन मानेगा? इन वचनों वाला शोभानहीं पाता। तूजो कहती है कि, मैं ऐश्वर्यको त्यागकर श्रीमान् हुईहूं सो निष्किञ्चनको पाकर इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता। तू कहती है कि, इनभोगों को मैंने त्यागकिया है और इनसे जो रहित अभोग हैं उनको मैं भोगतीहूं; कभीकहती हैकि, मैं कुछनहीं; फिर कहती है मैं ईश्वर हूं; इससे महामूर्ख दृष्टि आती है। जो इसीमें तेराचित्त प्रसन्न है तो ऐसेही बिचरपरन्तु यहबात सुनकर कोई सत् न मानेगा और तुझेयह शोभाभीनहीं देती। हे रामजी! ऐसे कहकर राजा उठखड़ाहुआ और मध्याह्नके समय होजानेसे स्नानके निमित्त गया रानी मनमें बहुत शोकवान्हुई और बिचारकिया कि, बड़ाकष्ट है जो राजाने आत्मपदमें स्थिति न पाई और मेरे बचनोंको न जाना। यहीमनमें धरकर वह अपने आचार में लगी और फिर अपना निश्चय राजाको न बताया और जैसे अज्ञानकाल में चेष्टाकरतीथी तैसेही ज्ञानपाकरभी करनेलगी। एकसमय रानी के मन में आया कि, प्राणोंको ऊपर चढ़ाऊं और ऊर्ध्वको लाकर उदान और अपानको बशकरूं जिससे आकाश और पाताल दोनोंस्थानों में जाऊं। ऐसे चिन्तना कर रानी योगमें

स्थित हुई और प्राणायाम करनेलगी। इतनासुनकर रामजीने पूछा,हे भगवन्! यह संसार सङ्कल्प से उत्पन्न हुआ है । स्थावर-जङ्गमरूप संसार वृक्ष है और सङ्कल्प इसका बीजहै। वह कौन प्राणायाम पवन है जिससे आकाशको उड़ते हैं और फिर नीचे आते हैं ? अज्ञानी पुरुष भी जिसे यत्नकरके कैसे सिद्ध करते हैं और ज्ञानवान् कैसे लीला करके बिचरते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तीनप्रकारकी सिद्धि होती हैं-एक तो उपादेय सिद्धि है कि, यह वस्तु मुझे मिले । इसके निमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं । दूसरी सिद्धि यह है कि, यह दुःख मेरा निवृत्त हो और मैं सुखी होजाऊं। यह चिन्ता महाअज्ञानीको रहती है; और तीसरी सिद्धि यह है कि, जो मैं कर्म करताहूं उसका फल मुझे मिले । यह विचार करनेवाला भी अज्ञानीहै क्योंकि; वह आपको कर्त्ताजानता है । ज्ञानवान् इनसे उल्लंघितवर्त्तता है वह कदाचित् इसमें वर्त्तता भी है तौभी उसको यह निश्चय रहता है कि, न मैं कर्त्ताहूं और न भोगताहूं। योगकरके इसप्रकार सिद्ध होते हैं कि, देश, काल, वस्तु और क्रिया उनके आधीन होजातीहैं । मुखमें गुटका राखके जहां चाहे उसी ठौरमें जा प्राप्त होना नेत्रोंमें अञ्जन डालके जिसको देखाचाहे उसको देखलेना और खड्ग हाथ में धारणकरके संपूर्ण पृथ्वी को वशकरलेना-यह तो क्रिया पदार्थ है और देश यह है कि, जो सब पर्वत हैं उनमें कितनी पीठ हैं और बड़े उत्तम हैं । जिस प्रकार ये सिद्ध होते हैं सो भी सुनो नाभि के तले आधार चक्रमें एक कुण्डलिनी शक्ति है, सर्पिणीकी नाईं उस में कुंडल हैं और वह कुण्डल मारबैठी है और बासनाही उसमें बिष है । जितनी नाड़ी हैं समष्टिनहीं हैं । उस कुण्डलिनी में जब मनन होताहै तब मन होकर प्रकट होता है; जब निश्चय होता है तबबुद्धि प्रकट होती है; जबअहंभाव होताहै तबअहं-कार प्रकट होता है; जब स्मरण होता है तब चित्त प्रकट होता है और जब उसमें स्पर्श की इच्छा होती है तब पवन प्रकट होता है । इसीप्रकार पञ्चतन्मात्रा और चारों अन्तःकरण प्रकट होते हैं । जितनी नाड़ी हैं वे सब कुण्डलिनीसे प्रकट होती हैं और आत्माका प्रकट होनाभी उससे जानाजाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उससे आत्माका प्रकट होना कैसे जानाजाता है ? आत्मातो देश,काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहित है और सब देश, सर्वकाल और सर्व वस्तुसे पूर्ण है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे सूर्य्यका प्रतिबिम्ब जलमें और धूप सर्वठौर में दिखता है तैसेही ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है और प्रकट सात्त्विक गुणमें दिखता है । जो कुछ नाड़ी और इन्द्रियां हैं वे कुण्डलिनी शक्तिसे उदय होतीहैं और जबयह जीव कुण्ड-लिनी शक्तिमें स्थित होकर पवनको स्थितकरता है तब जो कुछ भीतर प्राणवायु हैं वे सब इसकेबश होती हैं जैसे सर्व सेनाराजाके बशहोती हैं उसीप्रकार सब इन्द्रियां

प्राणके बशहोती हैं और जो प्राण वायु बश नहीं होती तो आधि व्याधि रोग उप-जते हैं। रामजी ने पूछा, हे, भगवन्! आधिव्याधि कैसे होतीहै सो कहिये! वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मनकी पीड़ाका नाम आधिहै और देहके दुःखको व्याधि कहतेहैं आधितब होती है जब सङ्कल्प होता है कि, यहसुख मुझेमिले पर यदि वह बस्तु नहीं प्राप्त होती तब चिन्ता करके दुःखपाता है और व्याधि तब होतीहै जब बात, पित्त, कफका विकार शरीर में होता है और उससे दुःखपाता है। जब मन और शरीर का दुःख इकट्ठा होता है तब आधि, व्याधि, दुःख इकट्ठे होते हैं और जब भिन्नभिन्न होते हैं तब दुःखभी भिन्न भिन्न होते हैं। ज्ञानवान्को न आधि होती है न व्याधि है। यह योगकी कला मैंने विस्तार से नहीं कही क्योंकि, पूर्वके ज्ञान क्रम का प्रसङ्ग रहजाता है। जितनी कला हैं उन सबको मैं जानताहूं परन्तु यह कला ज्ञान मार्गको रोकने वाली है। वासना चार प्रकारकी हैं सो सुनो। एक वासना सुषुप्ति है; दूसरी स्वप्न, तीसरी जाग्रत् और चौथी क्षीण। स्थावर योनिको सुषुप्ति वासना है सो आगे फुरेगी; तिर्यक् योनिको स्वप्न वासना है कि, उनको वासना का ज्ञानभी नहीं और जङ्गम अर्थात् मनुष्य, देवता आदिकोंको जाग्रत् बासना है कि,वे वासनाहीमें लगे हैं। ये तीन वासना तो अज्ञानी को हैं और क्षीण वासना ज्ञानीकी है अर्थात् उसको वासना की सत्यता नष्ट हुई है। जब इसप्रकार वासना निवृत्त होती है तब आगे संसारभी नहीं रहता और जब कुण्डलिनी शक्तिसे वासना फुरती है तब पञ्च तन्मात्राकेद्वारा संसारका भान होता है। संसाररूपी वृक्षकाबीज वासनाही है, दशों दिशा उस वृक्षके पत्रहैं; शुभ अशुभ कर्म उसके फूलहैं और स्थावर जङ्गम फलहैं। जैसी जैसी वासना पुर्य्यष्टकासे मिलकर जीव करता है तैसाही आगे फल होता है। हे रामजी! इससे वासनाका त्यागकरो--वासनाही संसाररूपी वृक्षका बीज है और निर्वासनिक होनाही पुरुष प्रयत्न है—तब विश्व कदाचित् न भासेगा। जैसे सूर्य्य के उदयहुये अन्धकाररूपी रात्रि नहीं रहती तैसेही ज्ञानरूपी सूर्य्यके उदयहुये संसार-रूपी अन्धकार निवृत्त होजाताहै। हे रामजी! आधिव्याधि बड़ेरोगहैं सो मनसे होते हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन! आधिरोग तो मनसे होताहै पर ब्याधि तो शरीरका रोग है, मनसे कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! ब्याधि दो प्रकारकी है—एक लघु और दीर्घ है। जो शरीरको कोई दुःख प्राप्तहो उसे लघुकहते हैं;वह स्नान और जपसे निवृत्त होजाती है और दीर्घ ब्याधि जन्म मरण के रोगको कहते हैं वे बड़ेरोग हैं और मनके शान्तहुये बिना निवृत्त नहीं होते। इसीसे आधिब्याधि दोनों मनसे होते हैं। फिर रामजीने पूछा, हे भगवन्! ब्याधिमनसे कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चित्त शान्त होता है तब कोई रोग नहीं रहता और

जबतक चित्तशान्त नहीं होता तबतक आधिव्याधि होती है। जो कुछ अन्न बाहर अग्निसे परिपक्कहोताहै उसको जब मनुष्य भोजन करते हैं तब भीतर जो कुण्डलिनी पुर्यष्टकासे मिलीहुई है वह उदान पवनको ऊर्ध्वमुखहो फुराती है और अपान पवन उससे अधको फुरता है; उदान और अपानका आपस में विरोध है-उनके क्षोभसे अग्नि उठती है और हृदय कमलमें स्थित होती है तब बाहर अग्निका पक्काभोजन हृदयकी अग्निसे फिर पकता है और सर्वनाड़ी अपने अपने भाग रसको लेजाती हैं। वीर्य्यवाली नाड़ी वीर्य्य करके रखती है और रुधिरवाली नाड़ी रुधिर करके रखती है पर जब राग और द्वेषसे चित्त कुण्डलिनी शक्तिमें क्षोभित होता है तब नाड़ी अपने २ स्थानोंको छोड़देती हैं और अन्न भी भीतर पक्क नहीं होता तब उस कच्चे रससे रोग उठता है। जैसे राजाको क्षोभहोता है तो सेनाकोभी क्षोभहोता है और जब राजाको शान्ति होतीहै तब सेनाकोभी शांति होती है; तैसेही जब मनमें क्षोभहोताहै तब रोगहोताहै और जब मनमें शान्ति होतीहै तब नाड़ी अपने अपने स्थानों में स्थितहोती हैं-रोगकोई नहीं होता। इससे, हे रामजी! आधि-व्याधि रोग तब होते हैं जब मनुष्यका चित्त निर्वासनिक नहीं होता पर जब चित्त शान्त होताहै तब रोग कोई नहीं रहता। इससे निर्वासनिक पदमें स्थितहो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! पीछे आपने कहा है कि, मंत्रोंसेभी रोग निवृत्त होता है सो कैसे निवृत्त होता है? वशिष्ठजीने कहा, हे रामजी! प्रथम मनुष्यको श्रद्धा होती है कि, इसमंत्र से रोगनिवृत्त होगा तब पुण्यक्रिया, दान, सन्तजनोंकी संगति और य, र, ल, व आ-दिक जो अक्षर हैं इनका जापकरके क्योंकि जितने कुछ जाप और मंत्र हैं सो इन अक्षरोंसे सिद्ध होते हैं व्याधिरोग निवृत्त होजाता है। योगीश्वरोंका क्रम अणु और स्थूल है सोभी सुनो। जब ये प्राण और अपान कुण्डलिनी शक्तिमें स्थित होते हैं तो इनको वशकरके योगी गम्भीर होता है। जैसे मसकमें पवन होता है इसीप्रकार पवनको स्थित करके कुण्डलिनी सुषुम्णामें प्रवेश करता है और ब्रह्मरन्ध्र में जा स्थित होता है। एक मुहूर्त्त पर्यन्त वहां स्थित हो तो आकाश में सिद्ध देखता है। जिस प्रकार इसका क्रम है तैसे तुमसे कहताहूं। हे रामजी! सुषुम्णाके भीतर जो ब्रह्मरंध्र है उसमें जब पूरक द्वारा कुण्डलिनी शक्ति स्थित होतीहै अथवा रेचक प्राण वायुके प्रयोग से द्वादश अंगुल पर्यंत मुखसे बाहर अथवा भीतर वा ऊपर एक मुहूर्त्ततक एकही वेर स्थित होतीहै तब आकाशमें सिद्धोंका दर्शन होताहै। रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जब ब्रह्मरन्ध्र में जीव कला जा स्थित होती है तो कैसे दर्शन होता है? दर्शन तो नेत्रोंसे होता है सो नेत्र आदिक इन्द्रियां वहां कोई नहीं होतीं; नेत्रोंविना दर्शन कैसे होताहै? वशिष्ठजीबोले, हे महाबाहो रामजी! पृथ्वीमें विचरने

वालोंको आकाशमें बिचरने वालोंका दर्शन नहीं होता परन्तु दिव्य दृष्टिसे दृष्ट आता है—चर्म दृष्टिसे नहीं दीखते। विज्ञानके निकट जो निर्मल बुद्धि नेत्र होते हैं उनसे दर्शन होता है। जैसे स्वप्नमें चर्मनेत्रों के बिनाभी सर्व पदार्थ दृष्ट आते हैं तैसेही सिद्धोंका दर्शन होता है परन्तु इतनी विशेषता है कि, स्वप्नके पदार्थ जाग्रत्में नहीं भासते और न उन से कुछ अर्थसिद्ध होता है पर सिद्धोंके समागमकी चेष्टा जाग्रत् में भी स्थिर प्रतीत होती है। मुखके बाहर जो द्वादश अंगुल पर्यंत अपानका स्थान है उसमें रेचक प्राणायाम का अभ्यास होताहै और जब चिरपर्यंत वहां प्राण स्थिरीभूत होता है तब और पुरियों और दिशाके स्थानोंमें प्राप्त होसक्ता है। रामजीने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो पदार्थ चंचलरूप हैं वे क्योंकर स्थिर होते हैं? वक्ता जो गुरु हैं वे कृपा करके कहते हैं, वे दुष्ट प्रश्न जो तर्करूप है उससे भी खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसी २ बस्तुहै तैसी २ उसकी शक्ति स्वाभाविक होती है। आदि जगत् के फुरने से जैसी नीति हुई है तैसेही अबतक आत्मामें स्वभाव शक्तिका फुरना होताहै। यह जो अविद्याहै सो अवस्तुरूप है और जो कहीं बस्तुरूप होकर भी भासती है सो ऐसे है जैसे बसन्त ऋतुमेंभी शरत्कालके फूल दृष्टि आते हैं और बसन्त ऋतुके शरत्कालमें भासते हैं। यह भी एक नीति है कि, इससे इस द्रव्यकी शक्ति ऐसे होजावे परन्तु स्वरूपसे सब ब्रह्मरूप है; द्वैत नानात्व कुछ नहीं। केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है, व्यवहारके निमित्त नानात्वकी कल्पना हुई है; वास्तव में द्वैत कुछ नहीं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! सूक्ष्मरन्ध्रसे स्थूलरूप वायु कैसे निकल जाती है और अणु सूक्ष्मरूप होकर फिर स्थूलभावको कैसे प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आरेसे कटे काष्ठके दो टकड़ेको शीघ्रही घिसिये तो उनसे स्वाभाविक अग्नि प्रकट होती है तैसेही मांसमय जो कमल उदरमें है उसके मध्यहृदय कमल है और उसमें सूर्य और चन्द्रमाकी स्थिति है। उस कमल के भीतर दो कमल हैं एक अधः और दूसरा ऊर्ध्व अधः चन्द्रमाकी स्थिति है और ऊर्ध्वसूर्यकी स्थिति है और उनके मध्यमें कुण्डलिनी लक्ष्मीस्थित है। जैसे पद्मराग मणिका डब्बाहो और मोतियों का भण्डारहो तैसेही उसका महाउज्ज्वल रूप है। जैसे आवर्त्त फेनके मिलनेसे शलशल शब्द प्रकट होताहै तैसेही उससे शब्द निकलता है और जैसे डण्डेके साथ हिलायेसे सर्प्पिणी शब्द करती है तैसेही उस कुण्डलिनीसे प्रणव शब्द उदय होताहै। हे रामजी! आकाश और पृथ्वी जो ऊर्ध्व और अधःरूप दोकमल हैं उनके मध्यमें कुण्डलिनी शक्ति स्पन्दरूपिणी स्थित है। वह जीवकला पुर्य्यष्टका अनुभवरूप अतिप्रकाश सूर्यकी नाईं हृदयरूप कमलकी भ्रमरीहै सो सबोंकी अधिष्ठान आदि शक्ति है और हृदय कमलमें बिराजमान है। उसहृदय

आकाशमें कुण्डलिनी शक्तिहै उसमेंसे स्वाभाविक वायु निकलती है सो कोमल मृदु-रूप है। वही पवन निकलकर दो रूप होता है एक प्राण और दूसरा अपान, वही अन्योन्य मिलकर स्फुरणरूप होता है। जैसे वृक्षकेपत्तोंके हिलनेसे उससे शीघ्रही अग्निप्रकट होती है और बांसोंके घिसनेसे अग्नि प्रकट होती है तैसेही प्राण अपान से अग्नि प्रकट होकर जब आकाश में उदय होती है तब सर्व्व ओर से भीतर प्रकाश होता है। जैसे सूर्यके उदयहुये सर्व ओरसे भुवन प्रकाशित होते हैं तैसेही सर्व ओरसे प्रकाशित होताहै और सूर्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार हैं। हृदय कमल का भ्रमरा स्वर्णरूप है और उसके चिन्तन से योगी तद्वत् होते हैं। वह प्रकाश ज्ञानरूप है और उस तेजसे योगीकी वृत्ति तद्वत् होतीहै अर्थात् एकत्व भावको प्राप्तहोती है तब लक्ष योजन पर्यंत जो पदार्थहो उनका उसे ज्ञान होआता है और सब प्रत्यक्ष दृष्टि पड़ते हैं। उस अग्निका हृदयरूपी ताल स्थान है—जैसे बड़वाग्नि समुद्रमें रहती है और उसको जलही इंधन है अर्थात् जलको दग्धकरती हैं; तैसेही हृदयरूप तालमें उसका निवास है और रस शीतलतारूपजलको पचाती है। उस हृदय कमलसे जो अपानरूप शीतल वायु उदयहोता है उसकानाम चन्द्रमा है और प्राणरूप उष्णपवन उदय होता है सो सूर्यरूप है। वहीउष्ण और शीतल सूर्य्य चन्द्रमा नामसे देहमें स्थितहैं। आदि प्राण वायुरूप सूर्य्य अपानरूप चन्द्रमासे सूर्य्यरूप होकर स्थितहोता है। सूर्य्य उष्ण और चन्द्रमा शीतलहै। इन दोनों से जगत् हुआहै। विद्या, अविद्या, सत्य, असत्यरूप जगत् इन दोनोंसे युक्तहै। सत्, चित्, प्रकाश, विद्या, उत्तरायण, सूर्य्य, अग्नि आदिक नाम बुद्धिमान् निर्म्मल भावसे कहते हैं और असत्, जड़, अविद्या, तम, दक्षिणायन आदिक चन्द्रमारूपसे मलिनभाव कहते हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! अग्नि, सूर्यरूप जो प्राण वायु है उससे शीतल जलरूप चन्द्रमा अपान रूप कैसे उत्पन्न होता है और अपान जल चन्द्रमा रूपसे सूर्य कैसे उत्पन्न होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सूर्य्य चन्द्रमा जो अग्निसोमहैं वे परस्पर कार्य कारण रूप हैं। जैसे बीजसे अंकुर और अंकुर से बीजहोता है; जैसे दिनसे रात्रि और रात्रिसे दिन होताहै और जैसे छाया से धूप और धूपसे छाया होती है; तैसेही सूर्य्य चन्द्रमा परस्पर कार्य्य कारण होते हैं। कभी कभी इनकी इकट्ठी उपलब्धिभी होतीहै—जैसे सूर्यके उदयहुये धूप और छाया दोनों इकट्ठे होजाते हैं। कार्य कारणभी दोप्रकारका है—एक कार्य सत्यरूप परि-णाम से होता है एक बिनाशरूप परिणाम से होता है। एकसे जो दूसरा होता है सो जैसे बीजनष्ट होगया तो उससे अंकुर होताहै सो बिनाशरूप परिणाम होताहै और जैसे मृत्तिकासे घट उपजता है सो सत्यरूप परिणाम कहाता है। जो कारण कार्य के

भावमें भी इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष पाइये उसका नाम सत्यरूप परिणामहै और जो कार्यमें इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं पाया जाताजैसे दिनमें रात्रि और रात्रिमें दिनसो विनाशरूप परिणाम कहाता है। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है तैसेही अभाव प्रमाण भी है। इससे बिनाश भाव भी एक कारणरूप है जैसे युक्तिवादी कहते हैं कि, अपने संवित्में कर्त्तव्य नहीं बनता, इत्यादि सो इस अर्थकी अवज्ञा करतेहैं और अपने अनुभवको नहीं जानते। अनुभवकी युक्ति उनको नहीं आती। यह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रकट होताहै। शीतलताका प्रमाण यह है कि, जैसे अग्निके भावसे शीतलताके अभावमें उष्णता होती है; दिन के अभाव में रात्रि और छायाके अभावमें धूप इत्यादिकका नाम अभाव प्रमाण कहाताहै। अग्निसे धूम्रभाग निकलता है सो मेघ होता है इस कारण सत्त्वरूप प्रमाणसे चन्द्रमा का कारण अग्निहोता है और अग्निनाश होकर शीतल भावको प्राप्तहोती है तब उसकानाम बिनाश प्रमाणसे अग्नि चन्द्रमा का कारण होताहै। सात समुद्रोंका जल पानकरके बड़वाग्निको धूम्रको उद्गीर्ण करता है सोधूम्रमेघको प्राप्तहोकर अत्यर्थ जलका कारणहोता है। सूर्य जो विनाशके अर्थ चन्द्रमाको पान करता है सो अमावस्या पर्यंत बारम्बार भक्षण करता है और फिर शुक्लपक्ष में उद्गीर्ण करता है—जैसे सारस पक्षी कर्मकी जड़को भक्षणकरके उद्गीर्ण कर डालताहै। हेरामजी। अमृतके समान शीतल जो अपान वायु चन्द्रमारूप है सो मुखके अग्रमें रहताहै। वह कणकारूप जल जब शरीर में जाताहै तब वह जल का अणुअपान और सूर्यरूपी प्राणफुरण को प्राप्तहोता है। इसप्रकार सत्यरूप परिणामसे जल अग्निका कणका होताहै। जब जलका नाशहोजाताहै तबवह उष्णभाव अग्निको प्राप्तहोता है—इनका नाम बिनाश परिणाम है। इसप्रकार जल अग्नि का कारण कहाता है। अग्निके नाशहुये चन्द्रमा उत्पन्नहोता है इसकानाम बिनाश परिणाम है और चन्द्रमाके अभावहुये अग्नि उत्पन्न होता है इसकानामभी बिनाश परिणामहै जैसे तमके अभावसे प्रकाश उदयहोता है, और प्रकाशके अभावसे तम होता है; दिनके अभावसे रात्रि और रात्रिके अभावसे दिनहोता है; इसके मध्यमें जो विलक्षण रूपहै सो बुद्धिमानोंसे भी नहीं पायाजाता। वह तम और प्रकाश दोनों रूपोंसे युक्त है; इनके मध्यमें जो संधि है सो आत्मरूप है। उसमें स्थित होके चेतन और जड़ दोनों रूपोंसे भूत फुरण होते हैं। जैसे दिन और रात्रि; तम और प्रकाश से पृथ्वी में चेष्टा करते हैं सो चेतन और जड़रूप सूर्य और चन्द्रमा दोनों रूपों से यक्ति है। निर्मल रूप प्रकाश जो चिद्रूप है उसका नाम सूर्य है और जड़ात्मक तमरूप है सो चन्द्रमाका शरीर है। जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्माका दर्शन होता है तब संसार के दुःखरूप जो तम हैं सो नष्ट होजाते हैं—जैसे आकाश में सूर्य

उदय से श्यामरात्रि का तमनष्ट होजाता है । जड़ चन्द्रमारूप जो देह है जब उस को देखता है तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता—असत्यकी नाईं होजाता है और चेतनकी ओर देखता है तब देह नहीं भासता। केवल लक्षमें दूसरे की उपलब्धि नहीं होती । केवल चेतन पदके प्राप्त हुये से द्वैतसे रहित निर्वाण भाव होता है और जड़भाव को प्राप्त हुये चेतन नहीं भासता । इससे संसारके दर्शनका कारण दोनों हैं । सूर्य चेतनसे चन्द्रमा जड़की उपलब्धि होती है और जड़ चन्द्रमा से सूर्य चैतन्यकी उपलब्धि होती है । जैसे दीपक अग्निका अन्धकारबिना प्रकाश नहीं होता तैसेही इन दोनों बिना आत्माकी उपलब्धि नहीं होती । प्रकाशबिना केवलजड़की उपलब्धि भी नहीं होती—जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब जिस दीवारपर पड़ताहै वह दीवार प्रकाशसे भासती है और प्रकाश दीवारसे भासता है; तैसेही चित्तफुरता है तब चेतनको जगत् भासताहै और फुरना जगतसे होताहै—फुरनेसे रहित अचैत्य चिन्मात्र निर्वाण होता है। इससे हे रामजी ! जगत्को अग्नि और सोमजानो। देह देहसे सम्बन्ध है परन्तु जिसकी अतिशयहो उसकी जयहोती है। प्राण—अग्नि उष्णरूप है और अपानशीतल—चन्द्रमारूप है । ये दोनों प्रकाश और छायारूप हैं—इनको जानना सुखकामार्ग है। हेरामजी ! जब बाहरसे शीतलरूप अपान भीतरको आता है तब उष्णरूप प्राणमें जा स्थित होता है और जब हृदयस्थानसे निकलकर उष्णरूप प्राण बाहरको द्वादशअंगुल पर्यंतजाता है तब अपान जो चन्द्रमा का मंडल है उसको प्राप्त होता है । अपानप्राणरूप होकर उदयहोता है और प्राण अपानरूप होकर उदयहोता है । जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है। तैसेही इनका परस्पर आपस में प्रतिबिम्ब पड़ता है जहां षोड़शकला चन्द्रमा को सूर्य ग्रास लेता है उस मध्यभाव में स्थितहो । जब अपान प्राणों के स्थान में आन स्थित होता है और प्राणरूप होकर उदयनहीं हुआ सो शान्तिरूप भाव है—उसमें स्थितहो। प्राणनिकलकर जब मुखसे द्वादशअंगुल पर्यंत बाहर स्थितहोताहै और जबतक अपानभावको प्राप्तहोकर उदयनहीं वह वह जो मध्यभावहै उसीमें स्थितहो। मेषआदिक जो द्वादशराशिहैं उनमें एकको त्यागकर दूसरीराशिको जबतक संक्रांति नहींप्राप्तहोती उसकानाम संक्रांतिहै और उनके मध्यमें जो सन्धिहै उसकानाम पुण्य कालहै सो पुण्य भीतर और बाहर प्राणअपानकी सन्धिके समयमें तृणवतहै । उन संक्रान्तियोंमें जो वैशाखकी वृषवती संक्रांतिहै सो शिवरात्रि चैत्रकीसंक्रांति त्रयोदश दिन होतेहैं और अस्तकीसंक्रांति त्रयोदशादिन हैं इनकानाम वृषवती है। जहां दिन और रात्रि समहोते हैं और दक्षिणायन और उत्तरायणकी जो सन्धिहोती हैं इनके भीतर और बाहर भेदकोजाने तब जन्मसेरहित होकर परमबोधको प्राप्तहो। हे राम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे अछिद्रमोती में तागाप्रवेश नहीं करता तैसेही चुड़ालाके उपदेशने राजाको न बेधा। जबतक आपविचार न करे और उसमें दृढ़ अभ्यास न हो तबतक यदि ब्रह्माभी उपदेशकरें तो उसको न बेधे क्योंकि आत्मा आपही से जानाजाता है और इन्द्रियोंका बिषय नहीं । अधिष्ठानरूप और स्वभावमात्र आपही आपको देखता है और किसीमन और इन्द्रियों का विषय नहीं सबका अपना आप है। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! यदि अपने आपहीसे देखताहै तो गुरु और शास्त्र किसनिमित्त उपदेश करतेहैं ! वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! गुरु और शास्त्र जनादेते हैं कि, तेरा स्वरूप आत्मा है परन्तु 'इदं' करके नहीं दिखाते। विचार नेत्रसे आपको आपही देखताहै; विचारसे रहित उसको नहीं देखसक्ता। जैसे किसी पुरुषको चन्द्रमा कोई सचक्षु दिखाता है पर जो वह सचक्षु होताहै तो देखता है और मन्ददृष्टि होता है तो नहीं देखता; तैसेही गुरु और शास्त्र आत्मा का रूप बर्णन करतेहैं और लखातेहैं पर जब वह विचार नेत्रसे दखताहै तब कहताहै कि, मैंने देखा और औरके दिखानेके योग्य होताहै। हेरामजी ! आत्मा किसीइन्द्रिय का विषय नहीं; वह अपना आप मूलरूप है और इन्द्रियां कल्पितहैं । जो तुमकहो कि,तुमभी तो इन्द्रियसेही उपदेश करतेहो तो सब इन्द्रियोंका विस्मरणकरो तो अपना मूल तुम्हें भासे। हे रामजी ! इसपर एक क्रांतका इतिहास है सो सुनो । एक क्रांत था जिसके पास बहुत धन और अनाज था परन्तु वह ऐसा कृपणथा कि, किसीको कुछ न देताथा और धनकी तृष्णाकरता था कि, किसीप्रकार मुझे चिन्तामणि मिले। इसीइच्छासे एकसमयघरसे बाहर निकल पृथ्वीकीओर देखताजाताथा कि,एकस्थान में पहुंचाजहांघास और भुसपड़ाथा तो उसे उसमें एककौड़ी दृष्टिपड़ी और उसने उस कौड़ीको उठाकर देखनेलगा कि,कुछ और भी निकले तो फिर दूसरी कौड़ी निकली; इसी प्रकार ढूंढ़ते २ उसे तीन दिन व्यतीत हुये तब चारकौड़ी निकलीं और फिर आठ निकलीं । जब तीनदिन और ढूंढ़ते वीते तब चन्द्रमाकी नाईं चिन्तामणि प्रकट देखी और उसे लेकर अपने घर आया और अतिहर्षवान् हुआ। हेरामजी! तैसेही गुरु और शास्त्रोंसे 'तत्त्वमसि' और'अहंब्रह्मास्मि'का पाना कौड़ियोंका खोजनाहै और आत्मा चिन्तामणिरूपहै । परन्तु जैसे कौड़ियोंके खोजमें उसनेचिन्तामणि बिनाखोजे न पाई तैसेही गुरु और शास्त्रोंसे आत्मपद मिलता है—गुरु और शास्त्रों बिना नहीं मिलता।धन, तप औ कर्मसे आत्मा नहीं मिलता, केव अपने आपसे पायाजाता है। हेरामजी ! जब शिखरध्वज चुड़ालाके पाससे उठकर स्नानको गया तब राजाके मन में बैराग उपजा कि, यह संसार मिथ्याहै । हमने बहुत भोगभोगे तौभी हृदयको शांति न हुई और इन भोगों का परिणाम दुःख दायक है। जब मनमें ऐसा विचार

उपजा तब राजाने गउ, पृथ्वी, सुवर्ण, मन्दिर और दूसरी सामग्री बहुत दानकी और सबऐश्वर्यके पदार्थ ब्राह्मणों, गरीबों और अतिथियोंको अधिकारके अनुसार दिये। रानीने भी ब्राह्मणों और मंत्रियोंसे कहा कि, राजाको तुम यही उपदेश दिया करो कि ये भोग मिथ्या हैं; इनमें कुछ सुख नहीं और आत्मसुख बड़ा सुख है जिस के पायेसे जन्म-मरण से मुक्त होता है इसी प्रकार राजा ब्राह्मणों से सुने और अपने मनमेभी बैराग उपजाता था इसकारण बिचारे कि, में इस संसार दुःखसे रहित होजाऊं; यह संसार बड़ा दुःखरूप है और इसमें सदा जन्म मरण है। निदान राजाके मनमें आया कि, में तीर्थोंको जाऊं और स्नान करूं, इसलिये तीर्थोंकोचला और स्नान, दान करता इसी प्रकार देवता, तीर्थों और सिद्धोंके दर्शन करके गृहको आया। रात्रिके समय रानीके साथ शयनकिया तो रानीसे कहा कि, हे अंगना! अब मैं वन को तप करनेके लिये जाताहूं क्योंकि; ये भोग मुझे दुःखदायक भासते हैं और राज्यभी वनकी नाईं उजाड़ भासता है। ये भोग हम बहुत काल पर्यंत भोगते रहे तौभी इनमें सुखदृष्टि न आया, इसलिये मैं वनको जाताहूं-मुझे न अटकाइयो। तब रानीने कहा, हे राजन्! अब तेरी कौन अवस्था है जो तू वनमें जाता है? अबतो हमारे राज भोगने का समय है। जैसे बसंतमें फूल शोभा पाते हैं और शरत्कालमें नहीं शोभते तैसेही हमभी जब वृद्ध होंगी तब वनको जावेंगी और बनहीमें शोभा पावेंगी। जैसे वनके फूल श्वेत होते हैं तैसेही जब हमारे केश श्वेत होंगे तब शोभा पावेंगे-अबतो राज करो। हे रामजी! इस प्रकार रानीने कहा पर राजा का चित्त वैरागहीमें रहा और रानीका कहना चित्तमें न आया। जैसे चन्द्रमा बिना कमलिनी शांतिनहीं पाती तैसेही ज्ञान बिना राजाको शांति न हुई परन्तु बैराग करके फिर कहने लगा; हे रानी! अब मुझे न रोंक अब राज्य मुझको फीका लगता है इसलिये मैं वनको जाताहूं यहां नहीं ठहर सक्ता। जो तुम कहो कि, हम यहां तेरी टहल करतीथीं वनमें कौन करेगा तो पृथ्वीही हमारी टहल करेगी, वनकी बीथियां स्त्रियां होंगी; मृगोंके बालक पुत्र; आकाश हमारे वस्त्र और फूलके गुच्छे भूषण होंगे। जब दूसरी रात्रिहुई और राजा वहांसे चला तो रानी और सेनाभी पीछेचली और कोट के बीच सब स्थित हुये। राजा और रानी विश्राम किया-जैसे भँवरा भँवरी सोते हैं और सेना और सहेलियां भी सब सोगये और पत्थर की शिलावत् कर्मनिद्रासे जड़ होगये। जब आधी रात्रि व्यतीत हुई तो राजा जगा और देखा कि, सब सोगये हैं। निदान शय्या से उठ और रानीके वस्त्र एक ओर करके और हाथ में खड्ग लेकर निकला जैसे क्षीरसमुद्रसे विष्णु भगवान् लक्ष्मी के पाससे उठते हैं तैसेही उठ सब लोगोंको लङ्घता कोटके दरवाजे पर आया। तो देखा आधेमनुष्य

जागतेथे और आधे सोगयेथे। उन्होंने जब राजाको देखा तब राजाने कहा, द्वारपालो! तुम यहांहीं बैठे रहो; मैं अकेलाही वीर यात्राको जाताहूं। इतना कह राजा तीक्ष्ण वेगसे चलागया और बाहर निकल कर कहा, हे राज लक्ष्मी! तुझको नमस्कार है; अब मैं बनको चलाहूं। फिर एक बनमें पहुंचा जहां सिंह, सर्प तथा और २ भयानक जीवथे; उनके शब्द सुनता आगे चलागया तो उसके आगे और बन मिला उसको भी लांघगया। आठ पहर चलकर राजा एक ठौर जा स्थितहुआ और जब सूर्य्य उदय हुआ तब स्नान करके संध्यादिक कर्मकिये और वृक्षोंके फल भोजन कर फिर वहांसे आगे चला। इस डरसे कि, कोई कहीं पीछेसे आकर मुझे न रोंके बड़े तीक्ष्णवेगसे चला और बड़े पहाड़, नदियां और बन उलङ्घ कर बारह दिन पश्चात् जब मन्दराचल पर्वतके निकट जा पहुंचा तबएक बनमें जा स्थितहुआ और स्नान करके कुछ भोजन किया। मेघ और छाया से रक्षा के निमित्त उसने वहां एक झोपड़ी बनाई और बासन बनाकर उनमें फूल और फल रक्खे। जब प्रातःकाल हो तब स्नान करके प्रहर पर्यंत जापकरे और फिर देवताओंकी पूजनके निमित्त फूल चुने; दो प्रहर स्नान करके ऐसे ब्यतीतकरे, जब तीसरा प्रहरहो तबफल भोजनकरे और चौथे प्रहर फिर संध्या और जापकरे। कुछकाल रात्रिको शयनकरे और बाकी जापमें बितावे; इसी प्रकार कालको ब्यतीत करे। हे रामजी! राजा की तो यह अवस्थाहुई अबरानीकी अवस्थासुनो। जब अर्द्धरात्रिके पीछे रानीजागी तो क्यादेखा कि, राजा यहांनहीं है और शय्या खालीपड़ी है। रानीने सहेलियोंको जगा कर कहा बड़ाकष्टहै कि, राजा वनको निकलगयाहै और बड़े भयानक बनमें जावेगा। ऐसे कहकर मनमें विचारकिया कि, राजाको देखा चाहिये इस निमित्त योगमें स्थित होकर आकाश को उड़ी और आकाशकी नाईं देह को अन्तर्द्धान किया। जैसे योगेश्वरी भवानी उड़ती हैं तैसेही उड़ी और आकाश में स्थित होकर देखा कि, राजा चलाजाता है। रानीके मन में आया कि, इसका मार्ग रोकूं पर एकक्षणमात्र स्थित होकर भविष्यत् को बिचारने लगी कि; राजाका और मेरा संयोग नीति में कैसे रचा है। विचार करके देखा कि, राजाका और मेरा मिलाप होने में अभी बहुतकाल बाकी है; अवश्य मिलापहोगा और मेरे उपदेशसे राजा जागेगा परन्तु यह सब बहुत काल उपरान्त होगा अभी इसके कषाय परिपक्वनहीं हुये इससे इसका मार्ग रोंकना न चाहिये। निदान रानी फिर अपने घर आई और शय्यापर शयन कर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुई। जब रात्रि व्यतीतहुई तब मंत्रियोंसे कहनेलगी कि, राजा एक तीर्थ करनेगया है और दर्शनकरके फिर आवेगा, तुम अपने कार्य करते रहो। यह सुन मंत्री अपनी चेष्टामें वर्तनेलगे और इसीप्रकार रानीने आठवर्ष पर्यंत

राज्यकिया और प्रजाको सुखदिया । जैसेबागवान् कमलों और क्यारियोंको पालता है तैसेही रानीने प्रजाको पालकर सुखदिया । उधर राजाको आठवर्ष तपकरतेबीते और उसके अङ्ग दुर्बलहोगये और इधर रानीने राज्यकिया पर जैसे भँवरा और ठौर हो तैसेही व्यतीत समय हुआ । तब रानीने विचार किया कि, राजा अब मेरे बचनों का अधिकारी हुआ होगा क्योंकि, अब उसका अन्तःकरण तपकरके शुद्धहुआ है इससे अब राजाको देखिये । निदान रानी वहांसे उड़के आकाशकोगई और इन्द्रके नन्दनबन को देख वहां के दिव्यपवनका स्पर्शहुआ तो उसके चित्तमें आया कि, मुझेभर्त्ता कबमिलेगा । फिर कहनेलगी कि, बड़ाआश्चर्य है; मैंतो सत्पदको प्राप्त हुईथी तौभी मेरामन चलायमान हुआहै तो और जीवोंकी क्यावार्त्ता । वहांसे भी चली तो आगे कमल फूल देखकर कहनेलगी कि, मुझे भर्त्ता कब मिलेगा मैं तो कामातुर हुईहूं । फिर मनमें कहनेलगी कि, हे दुष्टमन ! तूतो सत्पदको प्राप्तहुआथा तेराभर्त्ता आत्माहै अबतू मिथ्या पदार्थोंकी अभिलाषा क्या करता है ? मालूम होता है कि, जबतक देहहै तबतक देहके स्वभावभी साथरहते हैं इससे यह अवस्था प्राप्त हुई है तभी मनचलायमान होताहै इससे इतर जीवोंकी क्या वार्त्ता है । तबरानी मेघ, बिजली, पर्व्वत, नदियां, समुद्र और और भयानक स्थानों को लांघकर मन्दराचल पर्व्वतके पास वनमें पहुंची और देखनेलगी कि, मेराभर्त्ता कहां है । समाधिमें स्थित होकर उसने देखा कि, अमुकस्थानमें बैठाहै, तपकरके महा दुर्ब्बल अङ्ग होगये हैं और ऐसे स्थानमें प्राप्तहुआ है जहां और जीवकी गमनहीं । बड़ा आश्चर्य है कि, महाबेतालकी नाईं यहरात्रिको चलाआयाहै । अज्ञान महादुष्ट है कि, ऐसाराजा तप में लगाहै और स्वरूपके प्रमादसे जड़है । अब ऐसा हो कि, किसीप्रकार यह अपने स्वरूपको प्राप्तहो । परन्तुमेरे इस शरीरसे इसको ज्ञान न उपजेगा क्योंकि, प्रथम तो उसको यह अभिमान होगा कि, यह मेरी स्त्री है और फिर कहेगा कि, मैंने इन-हींके निमित्त राज्य छोड़ाहै और यह फिर मुझे दुःख देनेआई है इससे मैं ब्रह्मचारी का शरीर धारूं । ऐसा विचार करके उसने शीघ्रही ब्रह्मचारीका शरीरधरा और हाथमें रुद्राक्षकीमाला और कमण्डलु और गलेमें मृगछाला धारणकिया । जैसे सदाशिवके मस्तकपर चन्द्रमा विराजताहै तैसेही सुन्दर बिभूतिलगा और श्वेतही यज्ञोपवीत धारणकर पृथ्वीके मार्गसे राजाके निकट जापहुंची । राजा उसे देखकर आगेसे उठ खड़ाहुआ और नमस्कार कर चरणोंपर फूल चढ़ाये । फिर अपने स्थानपर बैठाकर कहनेलगा ; हे देवपुत्र ! आज मेरेबड़े भागहैं जो आपका दर्शनहुआ । कृपाकरके कहिये कि, आपकिसलिये आये हैं ? देवपुत्र बोले, हे राजन् ! हमबड़े बड़े पर्व्वत देखते और तीर्थ करते आये हैं परन्तु जैसी भावना तुझमें देखी है तैसी किसीमें नहीं

देखी। तूने बड़ा तपकिया है और तू इन्द्रियजित दृष्टिआताहै। मैं जानताहूं कि, तेरा तप खड्गकीधारसा तीक्ष्णहै इससे तू धन्यहै और तुझे नमस्कारहै। परन्तु हे राजन्! आत्मयोगके निमित्तभी कुछतप किया है अथवा नहीं सो कह ? तब राजाने जो फूलों की माला देवपूजनके निमित्त रक्खीथी सो देवपुत्रके गलेमें डाली और पूजा करके कहा, हे देवपुत्र ! तुमऐसोंका दर्शन दुर्लभ है और अतिथिका पूजन देवतासेभी अधिक है। हे देवपुत्र ! आपके अङ्ग बहुत सुन्दर दृष्टआते हैं । ऐसेही मेरीस्त्रीकेभी अङ्ग थे; नखसे शिखपर्यन्त तुम्हारे वही अङ्ग दृष्टआते हैं परन्तु आपतो तपस्वी हैं और आपकीमूर्त्ति शांतिके लिये हुईहै मैं कैसेकहूं कि, तुम वही हो। इससे हे देवपुत्र ! आप किसके पुत्रहैं; यहां किसनिमित्त आयेहैं और आगेकहां जावेंगे यहसंशय मेरानिवृत्त कीजिये ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! एकसमय नारदमुनि सुमेरुपर्वतकी कन्दरा में जहां आश्चर्यके देनेवाले वृक्ष और मञ्जरियां फूलों और फलोंसे पूर्णथीं और ब्राह्मणोंकी कुटी बनीहुईथीं समाधि लगाके बैठे। वहां गङ्गाकाप्रवाह चलताथा और सिद्धों के सिवाय और जीवोंकी गम न थी इससे नारदमुनि वहां कुछकाल समाधि में स्थित रहे । जब समाधिसे उतरे तब उन्होंने आभूषणोंका शब्द सुना और मनमें महाआश्चर्य माना कि, यहां तो कोई नहीं आसक्ता यह भूषणोंका शब्द कहांसे आया । तब उठकर देखनेलगे कि, गङ्गाका प्रवाह चलाआता है और वहां उर्वशी आदिक महासुन्दर अप्सरा वस्त्रोंको उतारेहुये स्नानकरती हैं। जब उनको नारदजी ने देखा तो उनका विवेकजातारहा और वीर्यनिकलकर उनके पास एकसुन्दर बेलथी उसके पत्रपर स्थित हुआ। इतना सुनके शिखरध्वजने कहा, हे देवपुत्र ! ऐसे ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञ मनन शील संयुक्त नारदमुनिका वीर्य किसनिमित्त गिरा ? देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! जबतक शरीर है तबतक अज्ञानी और ज्ञानीका शरीर स्वभाव निवृत्त नहीं होता; परन्तु एकभेद है कि, ज्ञानवान्को यदि दुःख प्राप्तहोताहै तो वह दुःख नहीं मानता और यदि सुख प्राप्त होता है तो सुख नहीं मानता और उससे हर्षवान् नहीं होता; और अज्ञानीको यदि दुःख सुख प्राप्त होते हैं तो वह हर्ष शोक करता है। जैसे श्वेत वस्त्रपर केशरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है तैसेही अज्ञानी को दुःख सुखका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है और जैसे मोमके वस्त्रों को जलका स्पर्शनहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को दुःख सुखकास्पर्श नहीं होता। जिसके अन्तष्करणरूपी वस्त्रको ज्ञानरूपी मोम नहीं चढ़ा उसको दुःख सुखरूप जल स्पर्श करजाता है। दुःख की और सुखकीनाड़ी भिन्न २ हैं, जब सुखकी नाड़ीमें जीवस्थित होताहै तब कोई दुःखनहीं देखता और जब दुःखकी नाड़ीमें स्थितहोताहै तब सुखनहीं देखता। अज्ञानीको कोई दुःखका स्थान है और कोई सुखका स्थान है और ज्ञानीको एक

आभासमात्र दिखाई देता है—बन्धमान नहींहोता । जबतक अज्ञानका सम्बन्ध है तबतक दुःख निवृत्त नहींहोता। तब राजानेकहा कि,वीर्य्य जो गिरताहै सो कैसेनिवृत्त होता है? देवपुत्रने कहा, हे राजन्! जब चित्त वासनासे क्षोभवान् होता है तब नाड़ी भी क्षोभ करती हैं और अपने स्थानोंको त्यागने लगती हैं; उसी अवस्थामें बीर्य्यवाली नाड़ीसेभी स्वाभाविकही बीर्य्य नीचेको चलाआताहै। फिर राजानें पूछा, हे देवपुत्र! स्वाभाविक किसे कहते हैं? देवपुत्रने कहा, हे राजन्! आदि शुद्ध चेतन परमात्मामें जो फुरनाहुआहे उस क्षणमात्र शक्तिकेउत्थानसे प्रपञ्चबनगयाहे। उसमें आदि नीतिहुई है कि, यहघटहै; यहपटहै; यह अग्निहै; इसमें उष्णताहै; यह जलहै; इसमें शीतलता है; तैसेही यहभी नीति है कि; वीर्य्य ऊपरसे नीचे को आता है। जैसे पर्वतसे पत्थर गिरता है सो नीचेको चला आता है तैसेही बीर्य्य भी नीचे को आता है। तब राजाने प्रश्न किया कि, हे देवपुत्र! जीवको दुःख सुख कैसे होता है और दुःख सुख का अभाव कैसे होता है? देवपुत्रने कहा, हे राजन्! यह जीव कुण्डलनी शक्तिमें स्थित होकर दृश्यमें जो चारों अन्तष्करण; इन्द्रियां और देह हैं उनमें अभिमान करके इनके दुःखसे दुःखी और इनके सुखसे सुखी होता है तो जैसा २ आगे प्रतिबिम्ब होता है तैसा २ दुःख सुख भासता है। जैसे शुद्ध मणिमें प्रतिबिम्ब पड़ताहै। यहसब अज्ञानसे होताहै और ज्ञानसे इसका अभावहोजाताहै। जब ज्ञानरूप का आवरण करके आगे पटल होता है तब प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। देहादिकके अभिमान मे रहितहोने को ज्ञानकहते हैं कि; न देहादिक है और न मैं इनसे कुछ करताहूं। जब ऐसे निश्चयहो तब दुःख सुखका भान नहींहोता क्योंकि; संसारका दुःख सुख भावनामें होताहै; जब बासनासे रहितहुआ तब दुःखसुखभी सब नष्ट होजाते हैं । जैसे जब वृक्षही जलजाता है तब पत्र फूल फल कहांरहे; ऐसेही अज्ञानरूप बासनाके दग्धहुये दुःखसुख कहांरहे?फिर राजानेकहा, हे भगवन्! तुम्हारे बचन सुनते मैं तृप्तनहीं होता। जैसे मेघकाशब्द सुनते मोरतृप्त नहींहोता; इससे कहिये कि, तुम्हारी उत्पत्ति कैसेहुईहै? देवपुत्रने कहा; हेराजन्! जो कोई प्रश्नकरता है उसका बड़े निरादरनहीं करते; इससे तुम जो पूछतेहो सो मैं कहताहूं। हे राजर्षि! वह वीर्य नारदमुनिने एक मटकीमें रक्खा और उसपर दूधडाला। वह मटकी स्वर्ण-वत् थी जिसका उज्ज्वल चमत्कारथा। उस मटकी को पूर्णकर वीर्यको एककोनेकी ओरकिया और फिर मंत्रों का उच्चारकिया और आहुति देकर भलेप्रकार पूजन किया। जब एकमास व्यतीतहुआ तब मटकी से बालक प्रकटहुआ—जैसे चन्द्रमा क्षीरसमुद्र से निकलाहै—उस बालकको लेकर नारद आकाशकोउड़े और अपने पिता ब्रह्माजीकेपास लेआये और नमस्कारकिया। तब मुझको पितामहने गोदमेंबैठालिया

और आशीर्वाद देकरकहा कि, तू सर्व न होगा और शीघ्रही अपने स्वरूपको प्राप्त होगा । कुंभसे जो मैं उपजाथा इसलिये उन्होंने मेरा नाम कुंभजरक्खा । मैं नारदजी का पुत्र और ब्रह्माजीका पौत्रहूं; सरस्वतीमेरीमाता है; गायत्रीमेरी मौसीहै और मुझे सर्वज्ञान है । तब राजाने कहा, हे देवपुत्र ! तुम सर्वज्ञ दृष्टआतेहो; तुम्हारे वचनोंसे मैं जानताहूं । देवपुत्रनेकहा, हे राजन् ! जो तुमने पूछा सो मैंने कहा; अबकहो तुम कौनहो; क्याकर्म्मकरते हो और यहां किसनिमित्त आयेहो ? राजाने कहा, हेदेवपुत्र ! आज मेरे बड़ेभाग उदयहुये हैं जो तुम्हारा दर्शनहुआ । तुम्हारादर्शन बड़ेभागसे प्राप्त होताहै । यज्ञ और तपसेभी तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठहै । देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! अपना वृत्तान्तकहो । राजानेकहा, हे देवपुत्र ! मैं राजाहूं; शिखरध्वज मेरानाम है। संसार दुःखदायक भासितहुआ और बारम्बार जन्म और मरण इसमें दृष्टआताहै इससे राज्यका त्यागकर यहांपर मैं तपकरने लगाहूं । तुम त्रिकालज्ञ हो और जानते हो तथापि तुम्हारे पूछनेसे कुछकहना चाहिये । मैं त्रिकालसंध्या और जपकरताहूं तो भी मुझे शान्ति नहीं हुई; इसलिये जिस से मेरे दुःख निवृत्त हों वही उपाय कहिये । हे देवपुत्र ! मैंने बहुत तीर्थ किये हैं और बहुतदेश और स्थान फिराहूं पर अब इसी वनमें आनबैठाहूं तौभी मुझे शान्ति नहीं । तब देवपुत्रनेकहा, हेराजऋषि! तूने राज्यका तो त्याग किया पर तपरूपीगढ़ेमें गिरपड़ा; यह तूने क्या किया ? जैसे पृथ्वी का क्रम फिर पृथ्वीमेंही रहता है तैसेही तू एकगढ़ेको त्यागकर दूसरेगढ़े में आपड़ा है और जिस निमित्त राज्यका त्यागकिया उसको न जाना । यहां आकर तूने एकलाठी मृगछाला और फूलरक्खेहैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती ? इससे अपने स्व¯पमें जाग; जब स्वरूप में जागेगा तब सबदुःख निवृत्तहोंगे । इसीपर एकसमय ब्रह्माजीसे मैंने प्रश्न कियाथा कि, हे पितामहजी ! कर्मश्रेष्ठ है अथवा ज्ञानश्रेष्ठ है— दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ? जो मुझको कर्त्तव्यहो सो कहो । तब पितामहनेकहा कि, ज्ञान के पाये कोई दुःखनहींरहता और सर्व आनन्दका आनन्दज्ञानहै । अज्ञानीको कर्म श्रेष्ठहै क्योंकि, वे पापकर्म करेंगे तो नरकको प्राप्तहोंगे । इससे तप और दान करनेसे स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती तौभी अज्ञानीको कर्महीं श्रेष्ठहै कि, नरक न भोगकर स्वर्ग में रहे । जैसे कम्बलसे पटकावस्त्र श्रेष्ठ है परन्तु यदि पटका न पाइये तो कम्बलही भला है; तैसेही ज्ञान पटकीनाईं है और तप कर्म कम्बलके समान है—कर्मसे शान्ति नहीं होती । इससे हे राजन् ! तुम क्यों इस गढ़ेमें पड़े हो ? आगे तू राज्यवासीथा और अब वनवासी हुआ; यह क्या किया कि, अज्ञानमें मूर्खताकेवश अज्ञान में पड़ारहा है । जबतक तुझे क्रियाकाभान होता है कि, 'मैं यह करूं' तबतक प्रमादहै; इससे दुःख निवृत्त न होगा । निर्वासनिक होकर अपने स्वरूपमें जाग । निर्वासनिक

होनाही मुक्ति है और वासनासहितही बन्धन है। निर्वासनिक होनाही पुरुष प्रयत्न है। जबतक वासना सहित है तबतक अज्ञानी है जब निर्वासनिक हो तब ज्ञेयरूप हो सदाज्ञेयकी भावनाकरनेवालेको निर्वासनिक कहते हैं और ज्ञेय आत्मस्वरूपको कहतेहैं; उसको जानकर फिर कोई इच्छा नहीं रहती। केवल चिन्मात्र पदमें स्थित होनेका नाम ज्ञेयहै। जो जाननेयोग्यहै सो जाना तब और वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होताहै। हे राजन्! तुझे अपने स्वरूपकोही जानना था तो तू और जंजालमें किसनिमित्त पड़ा है? आत्मज्ञानविना और अनेक यत्नकरो तौभी शान्ति न प्राप्त होगी। जैसे पवनसे रहित वृक्षशान्तरूप होताहै और जब पवन होताहै तब क्षोभको प्राप्त होताहै तैसेही जब वासना निवृत्त होगी तब शान्तपद प्राप्त होगा और कोई क्षोभ न रहेगा। जब ऐसे देवपुत्रनेकहा तब राजानेकहा; हे भगवन्! तुम मेरे पिताहो, तुमहीं गुरुहो और तुमहीं कृतार्थ करनेवालेहो। मैंने वासना करके बड़ा दुःखपायाहै। जैसे किसीवृक्षके पत्र, डाल, फूल, फलसूखजावें और अकेला ठूंठरह-जावे तैसेही ज्ञानविना मैं भी ठंठसा होरहाहूं इसलिये कृपाकरके मुझे शान्तिकोप्राप्त करो। देवपुत्रनेकहा, हे राजन्! तुझे त्यागकरके सन्तोंकासंग करनाचाहियेथा और यह प्रश्नकरना चाहिये था कि, बन्धक्याहै और मोक्षक्याहै? मैं क्याहूं और यह संसारक्याहै? संसारकी उत्पत्ति किससे होतीहै और लीन कैसे होताहै? तूने यह क्या किया कि, सन्तोंविना ठूंठवनका आकर सेवन किया। अब तू सन्तजनों को प्राप्तहो-कर निर्वासनिकहो। ऐसे ब्रह्मादिकने भी कहाहै कि, जब निर्वासनिक होताहै तब सुखीहोताहै। फिर राजाने कहा, हे भगवन्! तुमहीं सन्तहो और तुमहीं मेरेगुरु और पिताहो, जिस प्रकार मुझे शान्तिहो से कहिये। तब कुंभजने कहा, हे राजन्! मैं तुझे उपदेश करताहूं तू उसे हृदयमें धारणकर और जो तू उसे हृदयमें न धारेगा तो मेरे कहनेसे क्याहोताहै! जैसे डालपर कौवाहो और शब्दभी सुने तौभी अपने कौवेके स्वभावको नहीं छोड़ता; तैसेही जो तूभी कौवेकी नाईं होतो मेरे कहनेका क्या प्रयोजनहै? जैसे तोतेको सिखाते हैं तो वह सीखताहै; तैसे तुमभी हो जावो। शिखर-ध्वजने कहा, हे भगवन्! जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूंगा। जैसे शास्त्र और वेद के कहे कर्म्म करताहूं तैसेही तुम्हारा कहना करूंगा। यह मेरा नेमहै; जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूंगा। तब देवपुत्रने कहा, हे राजन्! प्रथम तो तू ऐसे निश्चयकर कि, मेरा कल्याण इनवचनोंसे होवेगा और फिर ऐसेजान कि, जो पिता पुत्रको कह-ताहै तो शुभही कहताहै। मैं जो तुझसे कहूंगा सो शुभही कहूंगा और तेरा कल्याण होगा। इससे निश्चय जान कि, इनवचनोंसे मेरा कल्याण होगा। एक आख्यान आगे व्यतीत हुआहै सो सुन। एकपण्डित धन और गुणोंसे संपन्नथा। वह सर्वदा चिन्ता

मणिके पानेकी इच्छाकरता और इसके लिये जैसे शास्त्रमें उपाय कहेहैं तैसेही करता था जब कुछकाल व्यतीत भया तबजैसे चन्द्रमाका प्रकाशहोताहै तैसेही प्रकाशवान् चिन्तामणि उसेप्राप्तहुई और उसने उसे ऐसे निकटजाना कि, हाथसे उठा लीजिये। जैसे उदयाचल पर्व्वतकेनिकट चन्द्रमा उदयहोताहै तैसेही चिन्तामणि जबनिकट आ प्राप्तहुई। तब पण्डितके मनमें विचारहुआ कि, यह चिन्तामणिहै अथवा कुछ और है; जो चिन्तामणिहो तो उठालूंऔर जो चिन्तामणि न हो तो किस निमित्तपकडूं! फिर कहे कि, उठालेताहूं, मणिही होगी; फिर कहे कि, यह मणिनहीं है क्योंकि,मणि तो बड़ेयत्नसे प्राप्तहोती है; मुझे सुखसे क्यों प्राप्तहोगी? इससे विदित होताहै कि,चिन्तामणि नहीं। जो सुखसे प्राप्तहोती तो सबलोग धनी होजाते। जब ऐसे संकल्प विकल्पसे पण्डित विचार करनेलगा और इसीसे उसका चित्त आवरण हुआ तब मणि छिपगई क्योंकि, जो सिद्धि हैं उनकामान और आदर न करिये तो उलटाशाप देती हैं। जिसवस्तुकाकोई आवाहन करताहै और उसका पूजन न करे तो वह त्यागजाती है। तब वह बड़ेदुःखको प्राप्तहुआ कि, चिन्तामणि मेरेपाससे चलीगई। निदान वह फिर यत्न करनेलगा तब कांचकी मणि हँसी करके उसके आगे आपड़ी और उसको देखकर वह कहनेलगा कि, यह चिन्तामणिहै। अबोधके वशसे उसको उठाकर अपने घरलेआया और अबोधके वशसे उसको चिन्तामणि जानता भया। जैसे मोहसे जीव असत्को सत् जानता है और रस्सीको सर्प्प जानताहै और जैसे दृष्टिदोषसे दो चन्द्रमा देखताहै और शत्रुको मित्र और विषको अमृतरूप जानताहै; तैसेही उसने कांचको चिन्तामणि जान जो कुछ अपना धनथा सो लुटादिया और कुटुम्बका त्याग कर कहनेलगा कि, मुझे चिन्तामणि प्राप्तहुई है, अब कुटुम्बसे क्या प्रयोजनहै ? निदान घरसे निकलकर बनमेंगया और वहां उसने बड़े दुःखपाये क्योंकि; कांचकी मणिसे कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुआ। तैसेही हे राजन्! जो विद्यमान वस्तुहो उसको मूर्ख त्यागते हैं और उसका माहात्म्य नहीं जानते और नहीं पाते॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिन्तामणिवृत्तान्तवर्णनं नामनवषष्टितमस्सर्ग्गः ६९॥

देवपुत्र बोले, हे राजन्! इसीप्रकार एक और आख्यान कहताहूं सोभी सुनो मंदराचल पर्वतके वनमें सब हाथियोंका राजा एकहाथी रहताथा वहमानों स्वयम् मन्दराचल पर्वतथा जिसको अगस्त्य मुनिने रोकाथा। उसके बड़ेदांत इन्द्रके वज्रकीनाईं तीक्ष्णथे और प्रलय कालकी बड़वाग्निके समान वह प्रकाशवान्था। वह ऐसाबलवान्था कि, सुमेरु पर्व्वतको दांतोंसे उठावे। निदान उसहस्तीको एक महावतने; जैसे बलिराजाको विष्णु भगवान्ने छल करके बांधाथा लोहेकी जञ्जीरसे बांधा और आप

पासके वृक्षपर चढ़बैठा कि, कूदकर हाथीके ऊपर चढ़बैठूं। वहहाथी जञ्जीरमें महाकष्टको प्राप्तहुआ और इतना दुःखपाया जिसका वर्णन नहीं होसक्ता। तब हाथीके मनमें विचारउपजा कि, जो अबमैं बलसे जञ्जीर न तोडूंगा तोक्यों छूटूंगा; इसलिये उस जञ्जीरको बलकरके तोड़दिया और वृक्षपर जो महावत बैठाथासो गिरके हाथीके चरणोंके आगे आ पड़ा और भयको प्राप्तहुआ। जैसे वृक्षका फल पवनसे गिर पड़ता है तैसेही महावत भयसे गिरपड़ा। जब इसप्रकार महावत गिरा तब हाथीने विचारकिया कि, यह मृतक समानहै इस मुयेको क्या मारना है! यद्यपि यहमेरा शत्रु है तौभी मैं इसे नहीं मारता; इसके मारनेसे मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्धहोगा? इसलिये जैसे स्वर्गके द्वारे तोड़कर दैत्यप्रवेश करते हैं तैसेही जञ्जीर तोड़कर वह हाथी वनमें गया और महावत हाथीको गया देखउठबैठा और अपने स्वभावमें स्थितहुआ। वह फिर हाथीके पीछेचला और हाथीको ढूंढ़लिया। जैसे चन्द्रमाको राहुखोज लेता है तैसेही वनमें हाथीको खोजलिया तो क्या देखा कि, वह वृक्षके नीचे सोया पड़ा है। जैसे संग्रामकोजीतकर शूरमा निश्चिन्तसोताहै तैसेही हाथीको निश्चिन्त सोयापड़ा देख महावतने विचार किया कि, इसको वश करना चाहिये। यह विचार उसने यह उपायकिया कि,वनके चारोंओर खाईंबनाई और खाईंकेऊपर कुछतृण और घासडाला जैसे शरत्कालके आकाशमें बादल देखनेमात्र होताहै तैसेही तृण और घास खाईंके ऊपर देखनेमात्र दृष्ट आतीथी। निदान जब किसीसमय हाथी उठकर चला और खाईंके बीचगिरपड़ा तब महावतने हाथीके निकट आ उसे जञ्जीरोंमें बांधा और वह हाथी बड़े दुःखको प्राप्तहुआ। जो तप करके वनमें दुःख पाता है उसने भविष्यत्का विचार नहींकिया। अज्ञानीको भविष्यत्का विचारनहींहोता इसीसे वह दुःखपाता है। हे राजन्! यह जो मणि और हाथीके आख्यान तुझे मैंने सुनाये हैं उनको जब तु समझेगा तब आगे मैं उपदेश करूंगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहस्तिआख्यानवर्णनंनामसप्ततितमस्सर्गः ७०॥

इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब देवपुत्रने ऐसेकहा तब राजाबोला, हे देवपुत्र! यहदो आख्यान जो तुमने कहेहैं सो तुम्हीं जानतेहो, मैंतो कुछ नहीं समझा इससे तुम्हीं कहो। देवपुत्रने कहा, हे राजन्! तू शास्त्रके अर्थमें तो बहुत चतुर है और सर्वअर्थोंका ज्ञाता है परन्तु स्वरूपमें तुझे स्थिति नहीं है; इस॰ जो वचनमैं कहताहूं उसे बुद्धिसे ग्रहणकर हस्ती क्या है और चिन्तामणि क्या है? प्रथम जो तूने सर्वत्याग कियाथा सो चिन्तामणिथी और उसके निकट प्राप्तहोकर तू सुखी हुआथा। यदि उसको तू अपने पास रखताती सब दुःख निवृत्त होजाते; पर मणिका तो तूने निरादर किया जो उसको त्यागा और कांचकी मणि तप क्रियाको प्राप्त

हुआ इसलिये दरिद्रीही रहा। हे राजन्! सर्व्व त्यागरूपी चिन्तामणिथी और इस क्रियाका आरम्भ कांचकी मणि है उसको तूने ग्रहण कियाहै इससे दरिद्रकी निवृत्ति नहीं होती– ःखीही रहताहै। हे राजन्! सर्व्वत्याग तूने नहीं किया और जो किया भी था परन्तु कुछ न रहगया और वह रहकर फिर फैलगया। जैसे बड़ाबादलबायु से क्षीण होताहै और सूक्ष्म रहजाताहै जो पवनकेलगेसे फिर विस्तारकोपाताहै और सूर्य्यको छिपालेताहै। वह बादल क्या है; सूर्य्य क्या है और थोड़ा रहना क्या है सो भी सुन। स्त्रियों और कुटुम्ब आदि को त्यागकर इनमें अहंकार करना सोई बड़ा बादल है। वैराग्यरूपी पवनसे तूने राज्य और कुटुम्बका अहंकार त्यागकिया पर देहादिकमें अहंकार सूक्ष्म बादल रहगयाथा सो फिर वृद्धहोगया जो अनात्म अभिमान करके क्रियाका आरम्भ किया इससे आत्मारूपी सूर्य्य जो अपना आप है सो अहंकाररूपी बादलसे ढपगया। और ज्ञानरूपी चिन्तामणि अज्ञानरूपी कांच की मणिसे छिपगई। जब ज्ञानसे आत्मा को जानेगा तब आत्मा प्रकाशेगा, अन्यथा न भासेगा। जैसे कोई पुरुष घोड़ेपरचढ़के दौड़ताहै तो उसकी वृत्ति घोड़ेमें होतीहै तैसेही जिस पुरुषका आत्मामें दृढ़ निश्चय होताहै उसको आत्मासे कुछ भिन्न नहीं भासता। हे राजन्! आत्माका पाना सुगमहै जो सुखसेही मिलता है और बड़े आनन्दकी प्राप्ति ोतीहै। तपादिक क्रिया करके कष्टसे सिद्ध होताहै और स्वरूप सुख की प्राप्ति नहीं होती। हे राजन्! मैं जानताहूं कि, तू मूर्ख नहीं बल्कि शास्त्रोंकाज्ञाता और बहुत चतुरहै तथापि तुझे स्वरूपमें स्थिति नहीं। जैसे आकाशमें पत्थर नहीं ठहरता। इससे मैं उपदेश करताहूं उसको ग्रहणकर तो तेरे दुःख निवृत्त होजावेंगे। हे राजन्! यह सबसे श्रेष्ठ ज्ञानकहा है और कहताहूं। तूने जो तप क्रियाका आरम्भ किया है और उसका जो फल जानाहै उसज्ञानसे यह श्रेष्ठ ज्ञानकहाहै ौर कहताहूं उससे तेराभ्रम निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! चिन्तामणि का संपूर्ण तात्पर्य तुझसे कहा; अब हाथीका वृत्तान्त जो आश्चर्यरूपहै सो भी सुन जिसके समझनेसेअज्ञान निवृत्त होजावेगा। मन्दराचलका हाथी तो तू है और महावत तेरी अज्ञानता है। इस अज्ञानरूपी महावतने तुझे बांधाथा और तू आशाूपी जञ्जीरोंसे बँधाथा। और जञ्जीरें घिसजाती हैं पर आशारूपी फांसी नहीं घटती यह दिन दिन बढ़तीही जाती है। हे राजन्! आशारूपी फांसी से तू महादुःखी था। हस्तीके जो बड़े दन्त थे जिनसे उसने सङ्कलोंको तोड़ाथा सो विवेक और वैराग्य था जो तूने विचारकिया कि, मैं बलकरके छूटूं। राज्य, कुटुम्ब और पृथ्वीका त्यागकर जब तूने उस फांसीको काटा तब आशारूपी रस्से कटे तो अज्ञानरूपी महावत भयको प्राप्तहुआ और तेरे चरणोंके तले आपड़ा। जैसे वृक्षके ऊपर वैताल रहता है और कोई वृक्षको काटने

आता है तब बैताल भयको प्राप्त होता है तैसेही तूने वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशाके फांसकाटे तब अज्ञानरूपी महावत गिरा और तूने एकघाव लगाया परन्तु मार न डाला इससे महावत तुझसे भागगया—जैसे वृक्षपर बैताल रहता है और वृक्षको कोई काटने लगताहै तब बैताल भागजाताहै। हे राजन्! तैसे ही वृक्षको तूने वैराग्यरूपी शस्त्रकरके काटा तब अज्ञानरूपी बैतालभागा था मूर्खतासे उसको तूने न मारा बल्कि उसको छोड़कर बनमेंगया। जब तू बनमें आया तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पीछे चला आया और तेरे चारोंओर खाई खोदी और तपादिक क्रिया आरम्भ कर तू उसखाई में गिरपड़ा और महादुःखको प्राप्त हुआ। तब उसने तुझे जंजीरोंसे फिर बाँधा और देखनेलगा कि, अबतक दुःख नहीं पाता है। अनात्म अभिमान से तूने यहां तपादिक क्रिया का आरम्भ किया है। ऐसी खाई में तू पड़ा है। हे राजन्! तू जानकर खाईमें नहीं पड़ा खाईके ऊपर घास और तृणपड़ाथा उस छलसे तू गिरपड़ाहै सो छल और तृण क्याहै सोभी तू सुन। प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुको तूने न मारा और जञ्जीरोंके भयसे भागा कि, बनमेंराकल्याण करेगा। संतों और शास्त्रोंके वचनोंको न जाना कि, तेरे दुःख निवृत्तकरेंगे और उनवचनरूपी खाई पर तृणादिकथा इस मूर्खता करके तू गिरा। जैसे बलिराजा पातालमें छलसे बांधा हुआ है तैसेही तूने भविष्यत्का विचार न किया कि, अज्ञानरूपी शत्रु जो रहाहै वह मेरा नाश करेगा। उस विचारविना तू फिर दुःखी हुआ। सब त्याग तो किया परन्तु ऐसे न जाना कि, मैं अक्रियहूं, इस क्रियाका आरम्भ काहेको करता हूं। इसीसे तू फिर फांसीसे बँधाहै। हे राजन्! जो पुरुष इसफांसीसे मुक्त हुआहै वह मुक्तहै और जिसका चित्त अनात्म अभिमानसे बँधाहै कि, यह मुझेप्राप्तहो उससे वह दुःख पाता है। जिस पुरुषने वैराग्य और विवेकरूपी दांतोंसे आशारूपी जंजीरको नहीं काटा वह कदाचित् सुख नहींपाता। विवेकसे वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे विवेक होता है। विवेक सत्यके जानने और असत् देहादिकके असत्य जाननेको कहते हैं। जब ऐसे जाना तब असत्की ओर भावना नहीं जाती सो वैराग्य हुआ। वैराग्य से विवेकउपजताहै और विवेकसे वैराग्यउपजताहै। इनविवेक और वैराग्यरूपीदांतोंसे आशारूपी जंजीरको तोड़। हे राजन्! यह हस्तीका वृत्तान्त जो तुझसे कहाहै इसके विचार किये से तेरामोह निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! वह हाथी बड़ाबली था और महावत छोटाकिये से बलीथा। उस अज्ञानरूपी महावतको मूर्खताकरके तूने न मारा उससे दुःख पाता है। अब तू वैराग्य और विवेकरूपी दांतोंसे आशारूपी फांसीको तोड़ तब दुःख सब मिट जावेंगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे हस्तीवृत्तान्तवर्णनन्नामएकसप्ततितमस्सर्गः ७१॥

देवपुत्रबोले, हे राजन् ! ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञानियों में श्रेष्ठा, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा और सत्यवादिनी तेरी स्त्री जो चुड़ाला थी उसने तुझे उपदेशकिया था पर तूने उस-के वचनोंका किसनिमित्त निरादर किया ? मैं तो सब जानताहूं क्योंकि, त्रिकालज्ञहूं; तौभी तू अपने मुखसेकह । एकतो यह मूर्खताकी कि, उपदेश न अङ्गीकार किया और दूसरी यह मूर्खताकी कि,सर्व त्याग न करके फिर बन अङ्गीकार किया । जो सर्वत्याग करता तो सर्वदुःख मिटजाते । जब ऐसे देवपुत्रने कहा, तब राजानेकहा; हे देवपुत्र ! मैंने तो स्त्री, पृथ्वी, मन्दिर, हाथी इत्यादिक ऐश्वर्य और कुटुम्बको त्यागकियाहै; आप कैसे कहते हैं कि, त्यागनहींकिया ? देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! तूने क्या त्यागा है ? राज्यमें तेराक्याथा ? जैसे ऐश्वर्य आगेथा तैसेही अबभी है और स्त्रियांभी जैसे और मनुष्यथे तैसेही थीं; पृथ्वी, मन्दिर और हस्ती जैसे आगेथे तैसेही अबभीहैं । उन-में तेराक्याथा जो त्यागकिया ? हे राजन् ! सर्वत्याग तैंने अबभी नहींकिया । जो तेरा हो उसको तू त्यागकर कि, निर्दुःख पदको प्राप्तहो । इतनाकह वशिष्ठजी बोले, हे रा-मजी ! जब इसप्रकार देवपुत्रनेकहा तब शूरबीर जो इन्द्रियजित् राजाथा सो मनमें विचारनेलगा कि, यहवन मेराहै और वृक्ष, फूल,फल मेरे हैं इनका त्यागकरूं । ऐसा विचारकर बोला, हे देवपुत्र ! बन,वृक्ष, फूल और फल जो मेरेथे उनकाभी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्यागहुआ ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ क्योंकि, बन, वृक्ष, फूल और फल तुझसे आगेभीथे इनमें तेराक्याहै ? जो तेरा हो उसकोत्याग तबसुखीहोगा । हे रामजी ! जब इसप्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा ने मनमें विचारा कि, मेरी जलपानकी बावली और बगीचे हैं इनका त्याग करूं तब सर्वत्याग सिद्धहो और कहा, हे भगवन् ! मेरी यह बावली और बगीचे हैं उनकाभी मैंने त्याग किया; अबतो मेरा सर्वत्याग सिद्धहुआ ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! सर्वत्याग अबभी नहींहुआ । जो तेराहै उसको जब त्यागेगा तब शान्तपदको प्राप्त होगा । हे रामजी ! जब इसप्रकार देवपुत्रने कहा तब राजा विचारनेलगा कि, अब मेरी मृगछाला और कुटी है उसकाभी त्यागकरूं । ऐसे विचार बोला कि, हे देवपुत्र! मेरेपास एक मृगछाला और एक कुटी है उसकाभी मैंने त्यागकिया अबतो सर्वत्यागी हुआ ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! मृगछालामें तेराक्याहै यहतो मृगकीत्वचाहै और कुटीमें तेरा क्याहै यहतो मिट्टी और शिलाकी बनी है इससेतो सर्वत्याग सिद्ध नहींहोता ? जोकुछ तेराहै उसको त्यागेगा तब सर्वत्यागहोगा और तभी तू सब दुःखों से छूटजावेगा । हे रामजी ! जब ऐसे कुम्भजने कहा तब राजाने मनमें विचारकिया कि, अब मेराएक कमण्डलु, एक माला और एकलाठी है इसकाभी त्यागकरूं ! ऐसे विचार कर राजा शांतिकेलिये बोला; हे देवपुत्र ! मेरीलाठी, कमण्डलु और एकमालाहै उस

काभी मैंने त्यागकिया; अबतो मैं सर्वत्यागी हुआ ? देवपत्रने कहा, हे राजन्! कमण्डलु में तेराक्या है ? कमण्डलु तो बनकातुम्बा है उसमें तेरा कुछनहीं; लाठीभी बन के बाँसकी है और मालाभी काष्ठका है उनमें तेराक्याहै?जो कुछ तेराहै उसका त्याग कर। जब तू उसका त्याग करेगा तब दुःखसे रहित होजावेगा। हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भजने कहा तब राजा शिखरध्वजने मनमें विचारा कि, अब मेरा क्या रह गया तब देखा कि, एक आसन और बासनहैं जिसमें फूल और फल रखते हैं; अब इनकाभी त्यागकरूं। तब राजा कहा, हे भगवन्! आसन और बासन मेरेपास रह गये हैं इनकाभी मैं त्याग करताहूं; अबतो सर्वत्यागी हुआ ? तब कुम्भजने कहा; हे राजन्! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ। आसन तो भेड़की ऊनकाहै और बासन मृत्तिका के हैं; इनमें तेराकुछ नहीं। जो कुछतेराहै उसका त्यागकर तब सर्वत्यागहोवे और तू दुःखनिवृत्त हो। हे रामजी! जब इसप्रकार कुंभजने कहा तब राजा उठ खड़ाहुआ और बनकी लकड़ी इकट्ठीकरके उनमें आगलगाई। जब बड़ीअग्नि लगी तब लाठी को हाथमें लेकर कहनेलगा; हे लाठी! मैं तेरेसाथ बहुत देशोंमें फिराहूं परन्तु तूने मेरे साथ कुछउपकार न किया; अबमैं कुंभजमुनिकी कृपासे तरूंगा, तुझे नमस्कार है। ऐसे कहकर लाठीको अग्निमें डालदिया। फिर मृगछाला को हाथ में लेकर कहा, हे मृगकीत्वचा! बहुतकाल मैं तेरेऊपर बैठाहूं परन्तु तूने कुछ उपकार न किया; अब कुंभजमुनिकी कृपासे मैं तरूंगा; तुझे नमस्कारहै। ऐसे कहकर मृगछाला को भी अग्निमें डालदिया। फिर कमण्डलुको लेकर कहनेलगा, हेकमण्डलु! तू धन्य है कि, मैंने तुझे धारणकिया औ तूनेमेरे जलकोधारा। तूने मुझसे गुणगोप नहीं किया तौभी कमण्डलु की जैसीप्रवृत्ति त्यागनी है तैसेही निवृत्ति की कल्पनाभी त्यागनीहै; इससे तुझे नमस्कार है; तुमजावो। ऐसेकहकर कमण्डलु भी अग्नि जला-दिया। फिर मालाको हाथ लेकर कहनेलगा; हे माला! तेरेदाने जो मैंने घुमाये हैं सो मानों अपने जन्म गिने हैं। तेरे सम्बंधसे जाप कियाहै और दिशाविदिशा गया हूं, अब तुझको नमस्कारहै। ऐसे कह करमालाकोभी अग्निमें डालदिया। इसीप्रकार फल, फूल, कुटी और आसनसब जलादिये तब बड़ीअग्नि जगी और बड़ाप्रकाश हुआ। जैसे सुमेरुपर्वत के पास सूर्य्यचढ़े और मणिका भी चमत्कार हो तो बड़ा-प्रकाश होताहै तैसेही बड़ी अग्निलगी और राजाने सम्पूर्ण सामग्री का त्यागकिया। जैसे पकेफलको वृक्ष त्यागताहै और जैसे पवनचलने से ठहरताहै तब धूलिसे रहित होताहै तैसेही राजा सम्पूर्ण सामग्रीको त्याग निर्विघ्न हुआ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनन्नाम द्विसप्ततितमस्सर्ग्गः ७२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! निदान सम्पूर्ण सामग्री जलकर भस्म होगई । जैसे सदाशिवके गणों ने दक्षप्रजापति के यज्ञको स्वाहा करदिया था तैसेही जितनी कुछ सामग्रीथीं सो सब स्वाहा होगई और वह वन बड़ा प्रज्वलितहुआ। जितने वृक्ष के रहनेवालेपक्षीथे सो भागगये और मृग,पशु जो आहार करते व जुगालीकरतेथे सो सबभागगये । जैसे पुरमेंआगलगेसे पुरवासीभागजावें तैसेही सबभागगये; तब राजा ने मनमें विचारा कि, अब कुंभजकी कृपासे मैं बड़े आनन्दको प्राप्तहुआ और अब सब मेरेदुःख मिटगये । जो कुछवस्तु मन के सङ्कल्प से रचीथी सो सब जलादी अब उसका न मुझे हर्षहै, न शोक है । ये सब दुःखममत्व से होते हैं सो मेरा ममत्व अब किसी से नहींरहा इससे कोईदुःखभी नहीं । अब मैं ज्ञानवान्भयाहूं, अब मेरीजयहै क्योंकि, अब निर्मलहोकर सबका मैंने त्यागकिया है । ऐसा विचारकरके राजा उठ खड़ाहुआ और हाथजोड़कर बोला; हे देवपुत्र ! अबतो मैंने सबका त्यागकिया क्योंकि; आकाश मेरे वस्त्रहैं और पृथ्वीमेरी शय्याहै । जब राजाने ऐसेकहा तब कुंभजमुनिने कहा, हे राजन् ! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ । जो तेराहै उसका त्यागकर कि, सब दुःख तेरे निवृत्त होजावें । फिर राजाने कहा, हेभगवन् ! अबतो और मेरेपास कुछ नहीं रहा, नङ्गाहोकर तुम्हारे आगे खड़ाहूं; अब एक रक्त मांसकी देहइन्द्रियों को धारनेवाली है जो कहो तो इसकाभी त्याग करूं और पर्व्वतपर जाकरडालदूं ? ऐसे कहकर राजा पर्व्वतको दौड़ा पर कुंभजमुनिनेरोका और कहा,हे राजन् ! ऐसे पुण्य-वान् देहको क्यों त्यागता है ? इसके त्यागेसे सर्व त्याग नहीं होता । जिसके त्यागने से सर्वत्यागहो उसका त्यागकर । इसदेहमें क्यादूषण है ? जैसे वृक्षमें फूलफल होते हैं और जब वायु चलताहै तब गिरते हैं; सो फूलफल गिरनेका कारण वायु है,वृक्षमें दूषण कुछ नहीं; तैसेही देह में कुछ दूषण नहीं । देहके पालनेवाला जो अभिमान है उसका त्यागकरो तो सर्वत्याग सिद्धहो और तो सब गुण हैं जो कुछ इसको देता है वही लेता है । आगेसे बोलतानहीं जड़है इसके त्यागे क्यासिद्ध होता है ? जैसे पवन से वृक्ष हिलता है और भूकंपसे पर्व्वत कांपते हैं; तैसेही देहआप कुछनहीं करती; और की प्रेरी चेष्टा करती है । जैसे पवनसे समुद्रके तरङ्ग तृणोंको जहां लेजातेहैं तहां वे चलेजाते हैं तैसेही देह आपसे कुछ नहीं करती । इसका जो प्रेरणेवाला है उसके बलसे यह चेष्टा करती है इससे देहके प्रेरणेवालेका त्यागकर तो सुखीहो । हे राजन् ! जिससे सर्व है; जिसमें सर्व शब्द हैं और जो सर्व ओरसे त्यागने योग्य है उसका त्यागकरो । राजाने पूछा, हे भगवन् ! वहकौन है जो सर्व है और जिसमें सर्व शब्द है और जो सर्व ओरसे त्यागने योग्य है ? हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ ! जिसके त्यागेसे जरामृत्यु नष्ट होजावे सो कहिये । तब कुम्भजनेकहा, हेराजन् ! जिसकानाम

चित्त,प्राण और देहहै उसकात्यागकरो और बाहर जो नानाप्रकारके आकार चित्तही से दृष्टिआतेहैं, इससे चित्तकाहीत्यागकरो।हेराजन्! जैसे सर्प बिलमेंबैठाहो तो बिल का कुछदूषणनहीं विषसर्पमेंहै जिससे वह डसताहै इसलिये उसके नाश करनेकाउपा-यकरो और सर्वशब्दभी इस चित्तमेंही हैं।आत्मा तो मात्रपदहै उस ें न एक कहना है और न द्वैत कहना है । सर्व ओरसे इसी चित्तका त्यागकरना योग्य है । जब इस चित्तका त्यागकरोगे तब त्यागरूपी अमृतसे अमरहोजावोगे और जरामृत्युसे रहित होगे जो चित्तकात्याग न करोगे तो फिर देहधारणकर दुःखभोगोगे । जैसे एकक्षेत्रमें अनेकदाने उत्पन्न होते हैं और जब क्षेत्रही जलजाता है तब अन्ननहीं उपजता; तैसेही यह जो देह और जरामृत्यु दुःखसंसार हैं इनकाबीज चित्तही है। जैसे अनेक दानोंका कारण क्षेत्रहै, तैसेही असंख्यसंसारके दुःखका कारण चित्त है; इससे हे राजन्! चित्तका त्यागकर । जब इसका त्यागकरेगा तब सुखीहोगा । हे राजन् ! जिसने सर्व त्यागकिया है वह सुखीहुआ है । जैसे आकाश सर्व पदार्थोंसे रहितहै, किसीका स्पर्श नहीं करता और सबसे बड़ा और सुखरूपहै और सर्वपदार्थोंके नष्टहोनेपरभी ज्योंका त्यों रहताहै; तैसेही हे राजन् ! तुमभी सर्वत्यागी होरहो। राज, देह और कुटुम्ब और गृहस्थ आदिक जो आश्रमहैं सोसब चित्तने कल्पे हैं। जो एकका त्यागनहीं होत तो कुछनहींत्याग। जब चित्तका त्यागकरो तबसर्व त्यागहो। हे राजन् ! यहधर्म्म, वैराग्य और ऐश्वर्य तीनों चित्तके कल्पेहुये हैं । जबचित्त पुण्यक्रियामें लगता है तब पुण्यही प्राप्तहोता है और जब पापक्रियामें लगताहै तबपापही प्राप्तहोकर अधर्म और दरिद्र होता है जबपुण्यका फल उदयहोता है तब सुखप्राप्त होता है और जब पापका फल उदय होताहै तबदुःख प्राप्तहोताहै-इससे जन्ममरणके दुःख नहींमिटते। जब चित्तका त्यागहोता है तबसब दुःख नष्ट होजातेहैं । हे राजन् ! जो पुरुष किसी वस्तुको नहीं चाहता उसकी वहुत पूजाहोती है और जो कहताहै कि,इसबस्तुको मुझकोदेतो उसको कोई नहीं देता । इससे सर्व त्यागकर कि, सुखीहो । सर्वत्याग कियेसे सर्व तुही होगा और सर्वात्मा होकर संपूर्ण ब्रह्माण्ड अपनेमें देखेगा। जैसे मालाके दानोंमें तागाहोता है और दानेभी तागेके आधार होते हैं,उनमें और कुछनहीं होता;तैसेही देखोगे कि, मैं सर्वमय और एकरसहूं; मेरेहीमें ब्रह्माण्ड स्थित है और मैंहींहूं मुझसे कुछ भिन्न नहीं । हे राजन् ! जिसने सबका त्यागकिया है वह सुखी है और समुद्रकीनाई स्थित है उसको कोईदुःख नहीं । इससे तुम चित्तका त्यागकरो कि, राजदोष मि जावे । इस चित्तके इतने नामहैं—चित्त, मन, अहङ्कार, जीव और माया । हे राजन् ! आपने ऐ-श्वर्यके त्यागने और और की भिक्षा लेनेसे तो चित्तवश नहीं होता; चित्त तवहींवश होताहै जबपुरुष निर्वासनिक होता है । जबतक चित्त फुरताहै तबतक सर्वत्याग नहीं

होता। जबयही फुरना निवृत्त होता है तबचित्तका त्यागहोता है। चित्तके त्यागसेभी त्यागके अभिमानसे रहितहो तबसर्वात्माहोगे । जबचित्तको त्यागोगे तब उसपदको प्राप्तहोगे जो जितने ऐश्वर्य और सखहैं उनका आश्रय है और जितने दुःखहैं उनका नाशकरनेवालाहै और जिसकेजानेसे किसीपदार्थकी इच्छा न रहेगी क्योंकि; सर्व आनन्दका धारनेवाला तेरास्वरूप है, फिर इच्छा किसकीरहे। जैसे आकाशके आश्रय देवलोकसे आदि सर्वविश्व रहताहै और आकाशको कुछ इच्छा नहीं और जो इच्छा नहींकरता तौभी सब आकाशहीमें हैं और सबको धारनेहाराहै। हे राजन्! जबतुम भी किसीकी इच्छा न करोगे तब निर्वासनिक होकर अपने स्वरूपमें स्थित होगे और जानोगे कि, सर्वका आत्मामैंहीं हूं; सबको धाररहा हूं और भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनोंकालभी मेरे आश्रयहैं। जैसे समुद्रके आश्रय तरङ्गहैं तैसेही मेरे आश्रय कालहै। चित्तका सम्बन्ध तुझे प्रमादसेहै और प्रमाद यहीहै कि, चिन्मात्रपदमें चित्त होकर फुरता है। चित्तकैसा है कि, जड़भी है और चेतन भी है। इसीका नाम चिद् जड़ग्रन्थि है। जब यह ग्रन्थि खुलजावेगी तब अपने आपको वासुदेवरूप जानेंगे। जब निर्वासनिक होगे तब संसाररूपी वृक्षनष्ट होजावेगा। जैसे बीजमें वृक्षहोता है, तैसेही चि[illegible]में संसार है और जैसे बीजके जलनेसे वृक्षभी जलजाताहै तैसेही वासनाके दग्ध हुयेसे संसारभी दग्धहोता है। हे राजन्! जैसे किसी डब्बेमें रत्नहोते हैं तो रत्नोंके नाशहुये डब्बानहीं नाशहोता और डब्बेके नष्टहुये रत्ननष्ट होतेहैं। डब्बा क्या है और रत्नक्याहै सोभी सुनो। डब्बा तो चित्तहै और रत्नदेह है। इससे चित्त के नष्टहोनेका उपायकरो। जब चित्तनष्ट होगा तब देहसे रहितहोगे। देहके नष्टहुये चित्तनष्ट नहींहोता और चित्तके नष्टहुये देहनष्ट होजाती है । जब चित्तरूपीधूड़ से रहित होगा तब केवल शुद्ध आकाश रहेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तत्यागवर्णनंनामत्रिसप्ततितमस्सर्ग्गः ७३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार कुम्भजने कहा कि, चित्तका त्यागनाही सर्व त्याग है तब शिखरध्वजने पूछा, हे भगवन्! मैंचित्तको कैसे स्थितकरूं? संसाररूपी आकाशकी चित्तरूपी धूड़ है और संसाररूपी वृक्षका चित्तरूपी वानर है जो कभी स्थितनहींहोता; इससे ऐसे चित्तको मैं कैसेस्थितकरूं? तब कुम्भजने कहा हे राजन्! चित्तका रोकना तो सुगम है । नेत्रों के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्नहै परन्तु चित्तके रोकनेमें कुछयत्ननहीं। दीर्घदर्शी को सुगमहै और अज्ञानीको कठिन है। जैसे चाण्डालको पृथ्वीका राजा होना और तृणको सुमेरु होना कठिनहै तैसेही अज्ञानीको चित्तका रोकना कठिनहै। राजाने पूछा, हेदेवपुत्र! चित्तका तोड़ना कठिन है तौभी टटजाता है परन्त मनका रोकना अति कठिन है। जैसे बड़े मच्छ

को बालक नहीं रोकसक्ता, तैसेही मैं चित्तको नहीं रोकसक्ता। हे देवपुत्र ! तुम कहतेहो कि, मनका रोकना सुगमहै और मुझको तो ऐसाकठिन भासताहै।जैसे अन्धे पुरुषको लिखीहुई मूर्त्ति नेत्रोंसे नहीं दृष्टिआती तो वह उसे हाथमें कैसेले; तैसेही मनको वश करना मुझे कठिन भासताहै। प्रथम चित्तकारूप मुझसे कहिये। कुम्भजबोले, हे राजन् ! इस चित्तका रूपवासनाहै। जब वासना नष्टहोगी तब चित्तभी नष्टहोजावेगा। इससे चित्तके बीज को तूनष्टकर तो चित्तरूपी वृक्षभी नष्टहो और न कोई डालरहे,न कोई फूल फलहों। यदि डालको काटेगा तो वृक्षफिर होगा क्योंकि डालके काटनेसे वृक्ष नष्टनहीं होता फिरकई डालें लगजातीहैं। जब बीजको नष्टकरे तबवृक्षभी नष्ट होजावे। राजाबोले, हे भगवन् ! चित्तरूपी फूलकी संसाररूपी सुगन्धिहै; चित्तरूपी कमलकीजड़की संसाररूपी तंतुहै;देहरूपी तृणकेउठाने और उड़ानेवाला चित्तरूपी पवनहै;चित्तरूपी तिलका जरा–मृत्यु और आध्यात्मिक आधिभौतिकदुःखतेलहै; चित्तरूपी आकाशकी संसाररूपीअँधेरीहै और हृदयरूपीकमलका चित्तरूपी भँवरा है।बीज क्याहै?औरडाल क्याहै ? डालकाकाटनाक्याहै,वृक्षक्याहै और फूल, फलक्या है सो कृपाकर कहो ? कुम्भजबोले, हे राजन् ! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ और निर्मल है;उसमें अहंभाव बीजहै उसीको अहंकार,चित्त, मन,जड़ और मिथ्या कहते हैं। उस अहङ्कारमें जो संवेदन है वही देह और इन्द्रियांहो फैली हैं और उसमें जो निश्चय है वह बुद्धिहै। उस बुद्धिमें जो निश्चय है कि, 'यहमैंहूं'; यही संसारहै और वही जीव को अहंकार है। अहंकार इस वृक्षका बीज है; चित्तरूपी इसवृक्षकी डालें हैं और सुख दुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फलहैं। हे राजन् ! एकान्त बैठकर और चिन्तनासे रहित होकर एक आश्रयका त्याग करना और दूसरेका अङ्गीकार करना और इस प्रकार स्थित होना कि, मैं ऐसा त्यागीहूं इसकी चिन्तनाही उस डालका काटना है। हे राजन् ! इस डालके काटेसे वृक्ष नहीं नष्टहोता क्योंकि, यह तो ऐसाहोकर स्थित होताहै कि, मैंहूं। वासना त्यागकरे और कुछ न फुरे। जब अहंरूपी बीज नष्टहोजाताहै तब चित्तरूपी वृक्षभी नष्ट होजाताहै क्योंकि; इसका बीज अहंही है। जब अहंभाव बीजनष्टहुआ तब वृक्षभी नष्टहोजाताहै; इससे चित्तका बीजतुम नष्टकरो। राजा बोले, हे देवपुत्र ! तुम्हारा निश्चय मैंने यह जानाहै कि; चित्तके त्यागेसे चित्तके बीज का नष्टकरना श्रेष्ठहै। हे भगवन् ! इतने काल मैं डालेंकाटता रहाहूं;इसीसे मेरे दुःख नष्ट नहींहुये और आपनेकहा कि; अहंही दुःखदायीहै इसलिये कृपाकरके कहिये कि, अहंकैसे उत्पन्न होताहै ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! शुद्ध चेतनमें जो चैतन्योन्मुखत्व अहंका फुरना हुआ कि,'मैंहूं' सोहीदृश्य रूपहुआहै और मिथ्या संवेदनसे हुआहै। जैसे शांत समुद्रमें पवनसे लहरें होतीहैं तैसेही शुद्धआत्मामें अहंफुरताहै और उससे

संसार हुआ है। इससे अहंभावको नष्टकरो कि, शांतपदमें स्थित हो। जो दुःख-दायक वस्तुहै उसको नष्टकरे तो शांत हो। राजाने पूछा, हे भगवन्! वह कौन बस्तु है जो जलाने योग्य है और वह कौन अग्निहै जिसमें वह जलतीहै? कुम्भजबोले, हे त्यागवानों में श्रेष्ठराजा! तेरा जो अपनास्वरूपहै उसका विचारकर कि, 'मैंक्याहूं' और 'यह संसार क्याहै;' इसका दृढ़विचार करनाही अग्निहै और मिथ्या अनात्म-अर्थात् देह, इन्द्रियादिक में अहंभावहै उसको अवास्तवरूप विचार अग्नि में जलाओ। जब विचार अग्निसे अहंकार बीजको जलावोगे तब केवल चिन्मात्र रहेगा। हे राजन्! मेरे उपदेश से तू आपको क्या जानता है सो मुझसे कह? राजाने कहा, मैं राजा, पृथ्वी, पर्वत, आकाश, दशोंदिशा, रुधिर, मांस,देह, कर्म्मइन्द्रियां, ज्ञान-इन्द्रियां, मन, बुद्धि और अहंकारनहीं;मैंइनसे रहित शुद्धआत्माहूं;परन्तु, हे भगवन्! अहंरूपी कलंकता मुझेकहांसे लगी है कि, उस कलङ्क को मैं दूरनहीं करसक्ता? तव कुम्भजने कहा हे राजन्! इसी अहंका त्यागकरो जो मैंने त्यागकियाहै; बल्कि यह फुरनाभी न फुरे, नितान्त, शून्य होरहे। जब इसका त्याग करोगे तब चेतन आ-काश होगा। हे राजन्! तू अपने स्वरूपको देखकरजान कि, कौनहै। राजाने कहा, हे भगवन्! मैं यह जानताहूं कि, मेरास्वरूप वही आत्माहै जो सबका आत्माहै; मैं आनन्दरूप हूं और सब मेरा प्रकाशहै परन्तु मैं यह नहीं जानता कि, अहंभाव कलना कहांसे लगी है? इसको मैं नाशनहीं करसक्ता पर यह मैंनेजानाहै कि, संसार का बीज चित्तही है और चित्तका बीज अहंकारहै। तुम्हारी कृपासे मैंने जानाहै कि, मेरा स्वरूपआत्माहै और'अहं''त्वं' मेरेमेंकोईनहीं। तुमभी इस अहंरूप कलंकताको दूरकर रहेहो–पर मुझसे दूर नहींहोता फिर फिर आफुरताहै कि,मैं शिखरध्वजहूं। इस अहंसे मैं संसारीहूं। इसके नाशकरनेका उपाय आपकहिये, कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण विना कार्य्य नहींहोता। जो कारणविना कार्य्यभासे तो जानिये कि, भ्रममात्र और मिथ्याहै और जिसका कारणपाइये उसे जानिये कि, सत्यहै। इससे तुमकहो कि, इस अहंकारका कारण क्याहै तब मैं उत्तरदूंगा? राजाबोले, हे भगव-न्! अहंकारका कारण शुद्धआत्माहै। शुद्ध आत्मामें जो जाननाहुआहै और जान-ने मात्र जानने का उत्थान हुआहै कि, दृश्यकी ओर लगाहै सो जानना संवेदनही अहंका कारणहै। कुम्भज बोले, हे राजन्! इस जाननेका कारण क्याहै? प्रथम तू यह कह पीछेदूर करनेका उपाय मैं कहूंगा। हे राजन्! जिसका कारण सत् होताहै सो कार्य्यभी सत् होताहै और जो कारण झूठहोताहै तो कार्य्यभी झूठहोताहै। जैसे भ्रम दृष्टिसे जो दूसरा चन्द्रमा आकाशमें दिखताहै उसका कारण भ्रमहै। उससे इस जानने संवेदनका कारण कह जो जानना संवेदनादृष्टि और दृश्यरूप होकर स्थित

हुई है और दृश्य द्रष्टरूप होकर स्थित हुई है। राजा बोले, हे देवपुत्र ! जानने का कारण देहादिक दृश्यहै क्योंकि; जानना तब होताहै जब जानने योग्यवस्तु आगे होती है और जो आगे वस्तुनहीं होती है ते वह जानाभी नहींजाता। इससे जानने का कारण दे ादिक हुये। कुम्भज बोले, हे राजन् ! ये देहादिक मिथ्याभ्रमसे हुये हैं; इनका कारण तो कोईनहीं ? राजा बोले, हे देवपुत्र ! देहका कारण तो प्रत्यक्ष है क्योंकि, खाता पिता है पितासे इसकी उत्पत्ति हुई है और प्रत्यक्ष कार्य्यकरत दृष्टि आताहै; आप कैसे कहतेहैं कि,कारण बिनाहै और मिथ्याहै ? कुम्भज बोले, हेराजन्! पिताका कारण कौनहै ? पिताभी मिथ्या है। जैसे स्वप्नमें पिता और पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्याहैं। इससे कह पिताका कारण क्याहै ? राजा बोले, हे भग न् ! पुत्रका कारण पिता और पिताका कारण पितामह है; इसीप्रकार परम्परासे सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष क्योंकि, सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजीसे हुई है। कुम्भज बोले, हे राजन् ! ब्रह्मासे आदि काष्ठपर्यंत सर्वसृष्टि सङ्कल्पकी रची है और देहभी भ्रम करके भासता है। जैसे मृगतृष्णा का जल और सीपीमें रूपा भासताहै तैसेही आत्मामें देह भासताहै। जैसे आकाशमें दोचन्द्रमा भ्रमसे दीखते हैं तैसेही आत्मामें यह संसार भ्रम से भासता है। जो तू कहे कि, क्रियाकैसे दृष्टि आती है तो सुन। जैसे कोई कहे कि, बन्ध्याके पु कोभूषण पहराये हैं; तो जो बन्ध्याके पुत्रही नहीं तो भूषणकिसने पहिरे? अथवा स्वप्नमें सब क्रिया भ्रममात्र होतीहैं; तैसेही यह संसार तेरे भ्रममें है। जब भ्रम निवृत्त होगा तब केवल आत्माही भासेगा। हे राजन् ! जैसे तू अपनादेह जानता है तैसेही ब्रह्माकोभी जान। ब्रह्माका कारण कौन है ? इससे इस भ्रमसे जाग कि, तेरा भ्रम नष्ट होजावे। राजा बोले, हे भगवन् ! मैं अब जागाहूं और मेरा भ्रम नष्ट भया है। मैंने यह संसार अब मिथ्याजाना है कि, केवल संकल्पमात्र है। जो कुछ दृश्य है सो मिथ्या है और एक आत्माही मेरे निश्चयमें सत् हुआ है। हे भगवन् ! ब्रह्माकाकारणभी ब्रह्म है और वह अद्वैत अविनाशी और सर्वात्मा है; ब्रह्मा काकारण यह हुआ। कुम्भजबोले,हेराजन् ! कारण और कार्य्यद्वैतमें होतेहैं सो असत् हैं क्योंकि; इस कारणका देश, वस्तु और कालसे अन्त होजाता और परिणामी होता है जो वस्तु परिणामीहो सो मिथ्या है। हे राजन् ! आत्मा अद्वैतहै; जिसमें न एक कहना है; न द्वैतकहना है; न वह भोगता है; न भोग है; न कर्म्म है; न अद्वैत है। जो वह स्वरूप से परिणामको नहीं प्राप्त होता और सर्वात्मा है; जो सर्व्वदेश और सर्व्वकालभीहै; जो सर्व्ववस्तुमें पूर्ण और अद्वैतहै और जो अद्वैतहै तो कारण कार्य्य किसकाहो ? कारण कार्य्य का सम्बन्ध द्वैतमें होता है और परिणामी होता है और जिसमें देशकालका अन्तहै सो अद्वैत आत्माहै। उसमें न कोई देशहै, न काल

है और न कोई वस्तु है; वह केवल चिन्मात्रपद है । हे राजन् ! मैं जानताहूं कि, तू जाग्रत होगा क्योंकि, भ्रम तेरा नष्ट होता जाता है । जैसे बरफकी पुतली सूर्य्यकी किरणोंसे क्षीण होजाती है तैसेही तेरा अज्ञान नष्ट होताजाता है अज्ञानके नष्टहुये से आत्माही होगा । तू अपने प्रत्येक चेतन स्वरूपसे स्थित हो और देख कि, ब्रह्मा आदिक सर्व्व परमात्माका किंचन हैं । परमात्माही ऐसे होकर स्थित हुआ है और जो दृष्टि पड़ता है उस सर्व्वका अपना आप आत्माहै । जब जागेगा तो जाने; जागे बिना नहीं जानसक्ता । राजाबोला,हे भगवन् ! तुम्हारी कृपासे अब मैं जागाहूं और जानताहूं कि, मेरास्वरूप आत्मा है और मैं निर्मलहूं । अब मेरा मुझको नमस्कार है । एक मैंहीहूं; मेरे से भिन्नकुछ नहीं और मैंने आपको जाना है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजबिश्रांतिवर्णनन्नामचतुः सप्ततितमस्सर्ग्गः ७४ ॥

राजाने पूछा, हे भगवन् ! आप कैसे कहतेहैं कि, ब्रह्माकाकारण कोई नहीं ? आत्मा ऐसा अनन्त, अच्युत, अव्यक्त और अद्वैत ईश्वरहै जो परमाणुका बिषयनहीं और परमब्रह्मतो ब्रह्माकाकारण है ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! तूही कहता है कि, आत्मा अनन्त है । जो अनन्त है उसको देश, काल और वस्तुका परिच्छेद नहीं होता जो सर्व्वदेश, सर्व्वकाल और सर्व्ववस्तुमें पूर्ण है सो कारण कार्य्य किसका हो ? कारण तब हो जब प्रथम द्वैतहो सो आत्माअद्वैत है और कारण उसको कहते हैं जो कार्य्य से पूर्वहो और पीछेभी वही हो—जैसे घटके आदि मृत्तिका है और अन्त भी मृत्तिका होती है; वह कारण कहाता है पर आत्मामें न आदि है, न अन्तहै । वह तो आत्मा अनन्त है । कारण तब होताहै जब परिणाम होताहै सो आत्मा अच्युतहै; अपने स्वरूपसे कदाचित् नहींगिरा और भोक्ताभी द्वैत से होताहै सोआत्मा अद्वैतहै । भोग और भोक्तदोनों नहीं और आत्मामें कर्मभी नहीं । आत्मा से आदि कौन है जिससे आत्मासिद्धिहो ? वह किसीका कार्य्यभी नहीं क्योंकि; कार्य्य इन्द्रियोंका विषय होताहै सोआत्मा अव्यक्तहै और जो कार्यहोता है तो उसका कारणभी होताहै सो आत्मा सबका आदि है उसका कारण कौनहो ? जो सर्वात्माहै और स्वच्छ आकाशवत् निर्मलहै सोहीतेरा स्वरूपहै । राजानेपूछा, हेभगवन् ! बड़ा आश्चर्य है ! मैंनेजानाहै कि; आत्मा अद्वैतहै वह न किसीका कारणहै,न कार्यहै औरअनुभव रूप है सोमैंहूं । मैं निर्मलहूं; विद्या—अविद्याकेकार्यसे रहितहूं; निर्वाणपदहूंऔर निर्विकल्पहूं; मेरेमें फुरना कोईनहीं और मैंनहीं और मैंहींहूं । मेरामुझको नमस्कारहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबिश्रांतिबर्णनन्नामपंचसप्ततितमस्सर्ग्गः ७५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! राजा शिखरध्वज कुम्भजमुनिके उपदेशसे प्रबोधहो और ऐसेवचनकहकर केवल निर्वाणपदमें स्थितहुआ। जब निर्विकल्प और फुरनेसे रहितहो एक मुहूर्त्त पर्यंत स्थित रहा—जैसे बायुसे रहित दीपक स्थित होता है—तब कुम्भजने उसेजगाकर कहा;हे राजन् ! तेरासमाधिसे क्याहै और उत्थानसे क्याहै?तू तो केवलआत्ममात्रहै। मैं जानताहूं कि,तू परम ज्ञानसे शोभित हुआहै। जैसे डब्बेमें रत्नहोताहै तो उसका प्रकाश बाहर नहीं दृष्टआता और जब डब्बेसे निकालकर देखिये तब बड़ाप्रकाश भासताहै; तैसेही अविद्यारूपी डब्बे से तू निकलाहै और परमज्ञान से शोभितहुआ है। हे राजन् ! अब तेरेमें न कोई क्षोभहै और न कोई उपाधि है। अब तू संसारके रागद्वेष से रहित, शान्तरूप जीवन्मुक्त होकर बिचारसे बिचर तो तुझे कोई उपाधि न लगेगी। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इसप्रकार कुम्भज मुनिने कहा तब राजा शान्तरूप होगया और बोला; हे भगवन् ! जो कुछ आपने आज्ञाकीहै उसे मैंने भलीप्रकार जाना पर अभी एकप्रश्न औरहै उसका उत्तर कृपा करके कहो कि, मैंदृढ़ स्थित होकेरहूं। हे भगवन् ! आत्मातो एकहै और शुद्ध और केवल आकाशरूप चेतनमात्रहै उसमें द्रष्टा,दर्शन और दृश्य त्रिपुटी कहांसे उपजी? कुम्भजबोले, हे राजन् ! जो कुछ स्थावर–जंगम संसारहै वह महाप्रलय पर्यन्त है। जब महाप्रलयहोताहै तब केवल आत्माही शेषरहताहै जो स्वच्छ और निर्म्मल है; तहां न तेज होताहै; न अन्धकारहै; वह केवल अपने आपस्वभावमें स्थित होताहै। जो कुछ आनन्द है उसका अधिष्ठान आत्माहै और सत् असत्से रहितहै। जिसको बुद्धि 'इदं' करकेकहतीहै उसेसत् कहिये और जिसको नहीं कहती उसे असत् कहिये। वह सत् असत्से रहित और सर्व लक्ष्मीसे संयुक्त है और अपना स्वभावमात्र है। उसमें कोई उपाधि नहीं और सदा प्रकाशवान् और उदयरूपहै। यह संसार उस परमात्माका चमत्कारहै। जैसे रत्नका चमत्कार लाटहोतीहै तैसेही ब्रह्मका चमत्कार यह संसारहै इससे ब्रह्मरूपहै। जो ब्रह्मसे भिन्नहै उसे मिथ्याभ्रमहीजानना। जो कुछ आकार भासते हैं सो असत्हैं। हे राजन् ! जो सब आकार मिथ्याहै तो तेरी संवेदन भी मिथ्याहै। आत्मामें अहंत्वंका कोई उत्थान नहीं; वह केवल ज्ञानमात्रहै; केवल सत् और आनन्दरूप है और अविद्यातमसे रहित प्रकाशरूप है। वह प्रमाणों से जानानहीं जाता क्योंकि; इन्द्रियोंका बिषयनहीं और मनकी चिन्तनासे रहितहै क्योंकि; सर्वका द्रष्टाहै और सर्वका अपना आप अनुभवरूप है। हे राजन् ! तू उसीमें स्थितहो। आत्मा, बड़ेसे बड़ाहै; सूक्ष्मसे सूक्ष्महै और स्थूलसे स्थूलहै जिसमें आकाशभी किसी और अणुसा भासताहै। उसमें ब्रह्माण्डभी तृण समानहै; वह अपने आपसे पूर्ण और धूर्महै; उससे किंचित्भी उत्पन्न नहींहुआ और नानाप्रकार करके

स्थितहुआहै । फुरनेसे जगत् भासताहै और फुरनेके निवृत्तहुये केवल शुद्ध आत्मा है । राजाने पूछा,हे भगवन् ! आप कहते हैं कि,संसार फुरनेमात्रहै और आत्मा शुद्ध शान्तिरूप और निर्विकल्पहै तो उसमें संवेदन फुरना कहांसे आयाहै ? कुम्भजबोले, हे राजन् ! फुरनाभी आत्माका चमत्कारहै जैसे पवनमें स्पन्द और निस्स्पन्द दोनों शक्तिहैं; जब फुरताहै तब चलना प्रकटहोताहै और जबठहर जाता है तब प्रकटनहीं होता; तैसेही संवेदन जब फुरताहै तब नानाप्रकार होतेहैं और जगत् भासताहै; और जबफुरना मिटजाता है तब केवल शुद्ध आत्माभासताहै । हे राजन् ! आत्मासत्तामात्र है और संसारभी सन्मात्र आत्माही है । जो सम्यक् दृष्टिसे देखियेतो आत्माही भासता है और जो असम्यक् दृष्टिसे देखिये तो दुःखदायक जगत् भासताहै । जिसके मनमें संसारभावना है उसको दुःखदायक भासता है और जिसके हृदयमें आत्मभावना होती है उसको आत्माही भासता है और सुखरूप होता है क्योंकि; आत्मा अपने आपका नामहै । जिसने जगत्को अपना आपजाना है उसको दुःखकहां ? हे राजन् ! यहसंसार भावनामात्रहै; जैसी भावनाहोती है तैसाहीहो भासताहै । जिसकी भावना विषमें अमृतकी होती है उसेविषभी अमृतहोजाता है और जिसकी भावना अमृतमें विषकी होती है तो उसे अमृतभी विष होजाता है क्योंकि; संसार भावनामात्रहै । जैसी भावना दृढ़करताहै यद्यपि आगे वहवस्तु नहो तौभी होजातीहै; इससे संसार भावनामात्र मिथ्या है । ज्ञानवान्को दुःख कदाचित् नहींदेता और अज्ञानीको सुख कदाचित् नहीं देता । हे राजन् ! अहंता और संवेदन; चित्त और चैत्य ये भी आत्माहीकी संज्ञाहैं । जैसे आकाश, शून्य, नभ; ये सर्वसंज्ञा आकाशहीकी हैं तैसेही वहसर्वसंज्ञा आत्माकी है आत्मासे भिन्नकुछनहीं । 'अहं' 'त्वं' सर्वआत्माके आश्रयहैं । जैसे भूषण सुवर्णके आश्रय होते हैं परन्तु सुवर्णसे भूषण तबहोता है जब कि अपने पूर्वरूपको त्यागता है; आत्मा तैसेभी नहीं वह केवल एकरस है और अपने आपमें स्थितहै कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्तहोता। यह संवेदन आत्माका चमत्कारहै और आत्मासत् असत्से परे है । जोकुछ दृश्य है सो आत्मामें नहीं चित्तसे रचाहै; इससे परेहै । हे राजन् ! वह कारण–कार्य किसकाहो ? कारण–कार्य तबहोता है जब दृश्य होता है सोआत्मा किसीका विषयनहीं तो कारणकार्य्य किसकाहो । विश्वके आदिभी आत्माहै; अन्तभी वहीहै और मध्यमेंभी आत्माहीहै । जोकुछ और भासताहै सो भ्रममात्र है–जैसे आकाश में जो घर, मण्डल और पुर दृष्टआते हैं उनकी आदि भी आकाश है; अन्तभी आकाश है और मध्यभी आकाशहै और जो घर, मण्डल, पुर भासते हैं सो मिथ्याहैं । जैसे अग्नि नानाप्रकार दृष्टिआती है सो सब मिथ्याआकार है एक अग्निही है; तैसेही सबके आदि, मध्य और अन्त एक आत्माही सार है ।

हे राजन्! जलमेंभी देशकाल होताहै क्योंकि, दृश्य है और इन्द्रियोंका विषयहै जैसे कि; यह तरङ्ग अमुकस्थानसे उठा और अमुक स्थान में लीनहुआ यहां स्थान देश हुआ और उपजकर इतनाकाल रहा सो काल हुआ और जिसको इन्द्रियां विषय न करसकें उसमें देशकाल कैसे हो? राजा बोले, हे भगवन्! अब मैंने भलीप्रकार जाना है कि, आत्मा चिन्मात्र है और ज्ञानइन्द्रियों और कर्म्म इन्द्रियों से परेहै। देश, काल और इन्द्रियां मनसे जानी जाती हैं कि; अमुक देशहै और अमुककाल है पर जहां इन्द्रियां और मनहीनहो वहां देशकाल कहांहै? कुम्भजबोले, हेराजन्! जो तूने ऐसे जाना तो तू जागा है। आत्मा में देश, काल कोई नहीं। यह मन और इन्द्रियों से जानताहै कि, यह देशहै और यहकालहै। जो इनसे रहितहोकर देखे तो आत्माही भासे और जो इनसहित देखे तो संसारहीदृष्टि आवेगा। हेराजन्! इनसे रहित होकर देख, तुझमें कुछ संसार न रहै कि, अमुक प्रश्नकिया और अब अमुक प्रश्नकरूं। संसार तब तक होता है जबतक इनका संयोग अपने साथ होता है। हे राजन्! ब्रह्मसे ब्रह्मको देख और पूर्णको देख कि, तू भी पूर्णहो। जब तू पूर्णहोगा तब सर्वओर आपकोही जानेगा,सर्वसंज्ञा तेरीहीहोगी और उस निर्वाच्य पदको प्राप्त होगा जहां इन्द्रियोंकी गमनहीं, केवल आकाशरूपहै। जैसे आकाश अपनी शून्यता से पूर्णहै तैसेही तू भी अपने चेतन स्वभावसे आपपूर्ण होगा। जब तू मन सहित षट् इन्द्रियों से रहित होकर देखेगा तब अपने आपको फिर यदि इन सहित भी देखेगा तौभी तुझे चेतन आत्माही भासेगा और संसारका शब्द और अर्थ तेरेहृदय से उठजावेगा—शब्द यह कि, संसारहै और अर्थ यह कि, उसको सत्जानना और केवल आकाशरूप आत्माही भासेगा। संसार संवेदनमात्र है और संवेदन चित्त शक्तिका चमत्कारहै। यही चित्त शक्ति ब्रह्माहोकर स्थित हुई है और संसार देखने लगीहै। जब यह शक्ति अन्तर्मुख होतीहै तब आत्माही दृष्टिआताहै जो सदा एक रसहै और जब बहिर्मुख होतीहै तब संसार दृष्टआता है। जैसी जीव भावना करता है तैसेही आगे दृष्टि आताहै; जब संसार की भावना होतीहै तब संसारही भासता है और जब आत्माकी भावना होतीहै तब आत्माही भासताहै। आत्मासदा एकरस और असंसारीहै इससे; हे राजन्! तू आत्माकी भावनाकर कि, तुझे आत्माहीभासे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधनंनामषट्सप्ततितमस्सर्गः ७६॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! यह संसार जो तुझे भासताहै सो आत्मामें नहीं। केवल शुद्ध आत्मामें जो अहं उत्थानहै वही संसारहै पर अहंका वह चमत्कार न सत् है, न असत्है; न भीतरहै, न बाहरहै; न शून्य है, न अशून्यहै; केवल अपने आप में स्थितहै। संसारका प्रध्वंसाभाव भी नहीं होता अर्थात् पहले हो और पीछे नाश

होजावे ऐसानहीं होता। आत्मामें संसार उदय अस्त नहींहोता केवल अपने आपमें स्थित है उससे कुछ भिन्न नहीं। किन्तु आत्माको यह भी नहीं कहसक्ते कि; केवल अपने आपमें स्वाभाविक स्थितहै; उसमें वाणीकी गमनहीं। वाणी उसको कहते हैं जहां दूसरा होताहै पर जहां दूसरा न हो वहांवाणी क्या कहे। यह कहनाभी तेरे उपदेशके निमित्त कहा है आत्मामें किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसकाकारण कार्य्य हो। आत्मा तो शुद्ध, निर्विकार और प्रमाणों से रहितहै। जो किसी लक्षणसे प्रमाण नहीं कियाजाता सो आकार होकर स्थितहुआहै और शांतरूप है। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य्यहो? कारण कार्य्य तब होताहै जब प्रथम परिणाम और क्षोभको प्राप्त होताहै पर आत्मा तो शान्तरूप है और कारण तबहो जब क्रियासे कार्य्यको उत्पन्नकरे सो आत्मा अक्रियहै अर्थात् क्रियासे रहितहै। कारणको कार्य्यसे जानाजाताहै पर आत्मा चिह्नसे रहितहै और प्रमाणोंका विषयनहीं इससे आत्मा कारणकार्य्य किसी का नहीं और आत्माको कारण कार्य्य मानने से मुझे आश्चर्य आताहै। हे राजन्! जो वस्तु उपजती है सो नष्ट भी होतीहै और जो नष्ट होतीहै सो उपजतीभीहै पर आत्मासबके आदिहै और अजन्मा औरनिर्विकारहै उसमें स्थित हो कि; तेरा संसार निवृत्त होजावे। यह संसार अज्ञान से भासता है। जब तू स्वरूपमें स्थितहोकर देखेगा तव न भासेगा; और ऐसेभी न भासेगा कि; आगे था अब निवृत्त हुआहै तब तो एकरस आत्माही भासेगा और केवल शून्य आकाश होजावेगा। संसार से रहित होनेको शून्य कहते हैं। चेतन स्वरूप नाना होकेभी वही है और एकभी वहीहै, शून्यहै और शून्यसे रहित भी वहीहै; द्वैतरूपभी वहीहै और अद्वैतरूपभी वहीहै; ऐसाभासेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजप्रथमबोधनंनाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः ७७॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! जो कुछ तू देखताहै सो सब चेतन घनहै उसमें 'अहं' 'त्वं' शब्द कोई नहीं। 'अहं' 'त्वं' शब्द प्रमादसे होते हैं; जब आत्मामें स्थित होकर देखोगे तब आत्मासे भिन्न कुछ न भासेगा तो 'अहं' 'त्वं' शब्द कहां भासे? हे राजन्! यह नानाप्रकारकी संज्ञा चित्तने कल्पी है जब चित्तसे रहित होगे तबनाना और एक कोई संज्ञा न रहेगी। हेराजन्! 'सर्वब्रह्महै'; यह वाक्यवेदका सारहै। जब इसवाक्य दृढ़भावना वृद्धि होगे तब एकरस आत्माही दृष्ट आवेगा और चित्तनष्ट होजावेगा। जब चित्तनष्ट हुआ तब केवल महाशुद्ध आकाशकी नाईं स्थितहोकर निर्दुःख पद को प्राप्तहोगे जो पद सर्वकी आदिहै और सर्वदा मुक्ति रूपहै। राजा बोले,हेभगवन्! आपने कहा कि, चित्तके नष्ट हुयेसे कोई दुःख न रहेगा और चित्तके नष्टहोने

का उपाय भी आपने कहाहै परन्तु मैं भलीभांति नहीं समझा; मेरे दृढ़ होनेकेनिमित्त कृपाकरके फिर कहिये कि; चित्त कैसे नष्ट होताहै? कुम्भज बोले,हेराजन्। यह चित्त न किसी कालकाहै; न किसीकोहै और न यह देखताहै; चित्तहैही नहींतो मैं तुझेक्या कहूं और जो चित्त तुझको दृष्ट आताहै तो तू आत्माही जान; आत्मासे भिन्न कुछ वस्तुनहीं। हे राजन्! महासर्गके आदि और अन्तकोई सृष्टि नहीं केवल आत्माहै और आत्मामें नहीं कहसक्ते मैंने तेरे जनानेके निमित्तकही है। मध्य जो कुछ दृष्टि आताहै सो अज्ञानीकी दृष्टिहै आत्मामें सृष्टिकोईनहीं और आत्मा किसीका उपादान कारण और निमित्त कारणभी नहीं क्योंकि; अच्युतहै—परिणामको नहीं प्राप्तहोता। उपादानभी परिणामसे होताहै आत्माशुद्ध निराकार आकाशरूपहै सो कारण कार्य्य किसकाहो? चित्तभी वासना रूपहै और वासना तब होतीहै जब वास होतीहै। जो आगे सृष्टि नहीं तो वासना किसकी फुरे और चित्तमें संसारकी स्थितिकैसेहो? इससे चित्त कुछनहीं। यह विश्व आत्माका चमत्कारहै और सृष्टि आत्मामें कोई नहीं; वह निरालम्ब केवल अपने आपमें स्थितहै। हे राजन्! संसारभी नहींहुआ और चित्तभी नहींहुआ तो'अहं' 'त्वं'आदिक शब्दभी आत्मामें कोईनहीं। ये शब्द तबहोते हैं जब चित्तहोता है और चित्त तबतक है जबतक वासनाहै। जब निर्वासनिक पद को प्राप्तहुआ तबकोई कल्पना नहीं रहती। हे राजन्! यह संसार महाप्रलयमें नष्ट होजावेगा और सत्—असत् संसार कुछ न रहेगा; एकआत्माही शेषरहेगा जो निराकार और शुद्ध है। जबतक महाप्रलय नहीं होता तबतक संसारहै। महाप्रलय क्या है सोभीसुनो। एकक्षण आत्माके साक्षात्कार होनेसे सृष्टिका शेषभी न रहेगा। ज्ञानही महाप्रलय है और अब जो दृष्टि आताहै सो मिथ्या है। यहक्रियाभी मिथ्या है और इसका भान होनाभी मिथ्या है। जैसे स्वप्नेकी क्रियाभी मिथ्या है और उसका भान होनाभी मिथ्याहै, तैसेही जाग्रत् संसार स्वप्नमात्रहै और कारण विनाही भासता है। जो कारणविनाहै सो मिथ्याहै इसका कारण अज्ञानहीहै कि, अपना न जानना, जब आपको जाना तब अपना आपही भासेगा। जैसे स्वप्नमें अपने न जाननेसे भिन्नआकार भासते हैं पर जब जगा तब अपना आपही जानता है कि, मैंहींथा। हे राजन्! मुझेतो एक आत्माही दृष्टिआता है; आत्मासे भिन्न संसार कोईनहीं भासता। इस संसारकी स्थिति मानना मूर्खता है, यहसदा अचलरूप है। वेदशास्त्र और लोकभी कहता है कि, संसार मिथ्याहै और आपभी जानता है कि, नष्ट होजाता दृष्टिआताहै तो फिर उसमें आस्था करनी मूर्खता है। आत्मामें संसार नाना अनाना कोई नहीं; आत्मा सर्वदा अपने आपमें स्थित है और शुद्ध और अच्युत ज्योंका त्यों है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधनन्नामअष्टसप्ततितमस्सर्ग्गः ७८॥

शिखरध्वज बोले; हे भगवन्! अब मेरा मोहनष्ट हुआहै और अपना आप मैंने जानाहै। तुम्हारी कृपासे मेरा संसारभ्रम निवृत्त हुआहै और शोक समुद्रको अबमैं तरकर शान्तपदको प्राप्तहुआहूं। 'अहं' 'त्वं'शब्द मेरेमें कोईनहीं,अबमैं निर्वाणपदको प्राप्तहुआहूं और अच्युत चिन्मात्र केवलहूं और शून्यहूं। कुम्भज बोले, हे राजन्! आत्मा शुद्ध और आकाशकी नाईं निर्मलहै; बल्कि,आकाशसेभी अति निर्मलहै पर उसमें अहंमल अहं मोहसे उपजीहै और मोह अविचारका नामहै। जब विचार होता तब कोई अहं नहीं पायाजाता। यह विश्व संवेदन में है और संवेदन सर्व के आदि होकर स्थितहुई है। जब संवेदन अन्तर्मुख होती है तब सर्व विश्व लीन होजाती है; संवेदनहीं में बंध और मुक्ति है; जब बहिर्मुख होती है तब बन्ध है और जब अन्तर्मुख होती है तब मोक्ष है। जिसने मन और इन्द्रियों से रहित होकर अपना आप देखा है उसको ज्योंका त्यों दृष्टि आता है और जो मोह संयुक्त देखता है उसको विपर्यय भासता है। जैसे सम्यक् दृष्टिसे भूषण में सुवर्ण भासताहै और जब भूषण के आकार मिट जाते हैं तबभी सुवर्णही है और मूर्खको सोने में भूषण दृष्टि आते हैं। चिरकालके अभ्याससे जो बुद्धि इनमें फुरती है तौभी प्रारब्ध वेग पर्यन्त चेष्टा होती है तब चेष्टा में भी आत्माही दृष्टि आता है—इससे केवल आत्माहीका किञ्चनहोताहै। जैसे सोनेमेंभूषण; आकाशमें नीलता और वायुमें है, तैसेही आत्मामें सृष्टि है। जैसे आकाशमें नीलता देखनेमात्रहै वास्तव कुछनहीं; तैसेही आत्मामें सृष्टि वास्तव कुछ नहीं, भ्रान्तिमात्रही है। जबभ्रांति निवृत्त होती है तबजगत्का शब्द अर्थ सर्वओरसे शान्त होजाताहै और शब्द अर्थकी भावनासे जो चेष्टा होतीहै उससे जब अभिलाषा निवृत्त होजातीहै तबकोई दुःखनहींहोता। इसीको मुनीश्वर निर्वाणकहतेहैं। जब निर्वाणपदका ऐसानिश्चय होताहै तबशांतरूप शून्यपद कोपाकर स्थितहोताहै। हे राजन्! अहंका उत्थानहोनाही बन्धनहै और अहंके निर्वाण होनेसेही मुक्तिहै। अहंकेहोनेसे संसारका दुःखहै;जबतक अहंकाउत्थानहै तबतकसंसार है और जबतक संसारहै तबतक अहंका उत्थानहै। जब संसारकीसत्ता जातीरहेगी तब अहंफुरनाभी नष्टहोजावेगा और जब फुरना नष्टहुआ तब अहंभी नष्टहोजावेगा। जब अहं नष्ट हुआ तब केवल शुद्ध आत्माही शेष रहेगा और उसीका भानहोगा। तब अहंब्रह्मका उत्थान भी शांत होजावेगा और चेतनमात्रही रहेगा। हे राजन्! जिसको सर्वब्रह्मकी बुद्धि हुई है उसको संसारकी बुद्धि नहीं रहती और जिसको संसार बुद्धि है उसको ब्रह्मबुद्धि नहीं होती। जैसी २ भावना दृढ़होती है तैसाही आगे भासता है; जिसको ब्रह्मभावना दृढ़ होती है वह ब्रह्मरूप होजाता है और जिसको जगत्की भावना दृढ़ होती है उसको जगत्ही भासता है। हे राजन्! तू अब जागा

है और ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध, निर्मल और प्रत्यक् है और जो शब्द और लक्षणविषय नहीं और इन्द्रियोंका विषयभीनहीं । हे राजन् ! ऐसा आत्मा जो केवल अद्वैत है और विश्व जिसका चमत्कार है वह कारण–कार्य किसका हो जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरङ्ग पवनसे उपजते हैं तौभी समुद्रसे भिन्ननहीं, तैसेही आत्मामें ना प्रकारकी विश्व संवेदन फुरने से उपजती है तौभी आत्मासे कुछ भिन्ननहीं–फुरने मात्र है। जैसे थम्भे में मनोराजसे कोईपुरुष पुतलियां कल्पताहै और नाना-प्रकारकी चेष्टा करता है पर उसकी चेष्टातबतक है जबतक संकल्प है, और जब सङ्कल्प निवृत्त हुआ तब शून्य थम्भाही रहजाता है जैसा आगेथा क्योंकि शिल्पी की संवेदन में सृष्टिथी; तैसेही यह संसार सङ्कल्पमात्र है, जब सङ्कल्प अन्तर्मुख होता है तब संसारकी सत्तामें जाती रहती है । राजन् ! संसार सत्ता इसकारण जातीरहती है कि, आगेही असत् है । जो वस्तु सत्होती है उसका कदाचित् नाश नहींहोता । इससे संसार केवल संवेदन कल्पी है । जैसे एक शिलामें पु ष पुतलियां कल्पताहै तो शिलामें तो पुतली कोईनहीं; ज्योंकी त्यों शिलाही है; तैसेही फुरने से आकार दृष्ट आते हैं। जब चित्त फुरने से रहित होगा तब आत्मा को अपना आप जानोगे और अशब्दपदको प्राप्तहोगे जो शांतिपद शुद्ध आकाशरूपहै । हे राजन्! सर्व शब्द और सर्वकी अभावनाही ब्रह्मअर्थ है; जहां कोईकल्पना नहीं । जब सम्यक् दृष्टिहोती है तब शेष आत्माही भासता है और यह भावना भी उठजाती है कि, यह संसारहै और यह ब्रह्महै; तब केवल ज्ञेयमात्रही होरहता है–अर्थात् शिलाकी नाईं जो ज्ञानहै ऐसा शेष रहता है ॥

इतिश्रीयो ाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधवर्णनंनामनवसप्ततितमस्सर्गः ७९॥

राजा बोले, हे भगवन् ! जैसे आपकहते हैं सो सत्यहै और मैंभी ऐसेही जानताहूं कि, संसार आत्माकाकार्यहै और आत्माकारणहै । जो आत्माकाकार्य आ तो आत्म स्वरूप हुआ आत्मासे भिन्ननहीं । कुम्भज बोले, हे राजन् ! आत्मा चेतनमात्रहै, कारण कार्य किसीका नहीं । आत्मा अप्रत्यक् और अक्रिय; अच्युत और निरस है और जो अशब्दपदहै वह कारण कार्य किसकाहो? कारणको कार्य द्वारा जानाजाताहै पर आत्मा किसी प्रमाणका विषय नहीं, अप्रत्यक् और अरूपहै । कारण तब होताहै जब क्रियाहोती है पर वह न किसी का कारण–कार्य है और न कर्म्म है केवल ज्योंका त्यों अपने आपमें स्थित है और चेतनमात्र शिवरूप शुद्धहै । यह विश्व भी चेतनमात्रहै । जैसे आकाशमें आकाशस्थितहै तैसेही आत्मामें विश्वआत्मरूप स्थितहै । ऐसा विश्व चेतनमात्रहै पर उसमें असम्यक्दर्शी अज्ञानसे नानाप्रकार कल्पता है । वस्तु जो परमात्माहै तिसके प्रमादसे बासनारूप चित्तसे विश्वकोकल्पताहै सो विश्व

शब्दमात्रहै अर्थात् कुछ नहीं । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा; समुद्र में तरंग; मृगतृष्णा में जल और परछाहीं में बैताल भासता है तैसेही असम्यक्‌दर्शी आत्मा में विश्व कल्पताहै और सम्यक्‌दर्शी ऐसे जानताहै कि, आत्माशुद्ध, अजन्मा, अविनाशी और परम निरंजन है । हे राजन्! जब तू सम्यक्‌दृष्टिसे देखेगा तब संसारका प्रध्वंसाभावभी न देखेगा क्योंकि;चित्तका कल्पाहुआहै और चित्त अज्ञानसे उपजाहै। स्वरूपमें न चित्तहै, न अज्ञानहै और न संसारहै; केवल अद्वैतमात्रहै; वहां एककहां और द्वैत कहां, वह तो केवलमात्रपदहै । जब अज्ञान नष्टहोगा तब 'अहं' 'त्वं' चित्त फुरना सब नष्ट होजावेगा और फिर भ्रमदृष्टि न आवेगा । हे राजन्! आत्मासे भिन्न जो कुछ भासताहै सो अज्ञान से भासताहै और विचार कियेसे नहीं रहता । राजा बोले, हे भगवन्! अज्ञान क्याहै और कैसे नाश होताहै सो कहिये ? कुम्भज बोले, हे रा[illegible]न्! एक ज्ञानहै और दूस[illegible]अज्ञानहै । ज्ञान यह कि, पदार्थको प्रत्यक्ष जानना और अज्ञान यह कि, पदार्थोंको न जानना । एकज्ञानभी अज्ञानहै सोभी सुन । मृगतृष्णाका जल देखकर आस्था करनी और रस्सी में सर्प और सीपीमें रूपा देखना और उसको सत्य जानना यह ज्ञान भी अज्ञान है क्योंकि; सम्यक्‌दर्शी होकर नहीं देखता—यह दृष्टान्त है और एक दृष्टांत यह भी है कि, शुद्ध आत्मा निराकार और अच्युतहै उसमें मैंहूं और मेरा अमुक वर्णाश्रमहै और नानाप्रकारका विश्व[illegible] । यह ज्ञान भी अज्ञान और मूर्खता है । हे राजन्! न कोई जन्मताहै और न को[illegible] मृतक होताहै; ज्योंकात्यों आत्माही स्थितहै; उसमें जन्म मरण आदिक विकार [illegible]खना ज्ञान भी अज्ञानहै । हे राजन्! जैसे कोई ब्राह्मणहो और ऊंचीबांहकरकेकहे कि, मैं शूद्रहूं और मुझे वेदका अधिकार नहीं;और जैसे कोई पुरुष कहे कि,मैं मुआहूं और उसको मैं जानताहूं; तैसेही आपको कुछ वर्णाश्रमका अभिमान लेकर कहना मूर्खता है क्योंकि; यह असम्यक् दर्शन है। जब ज्योंका त्यों जाने तब दुःखी न हो। हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक् दर्शनसे नष्ट होजावे सो अज्ञानही है । जैसे सूर्य किरणोंमें जल बुद्धिहोती है और किरणके ज्ञानसे जलकाज्ञान नष्ट होजाताहै तो वह जलका जानना अज्ञानताहीथी और जैसे जेवरीमें सर्प जान[illegible] जेवरीके ज्ञानसे नष्ट होजाता है यहभी अज्ञानहै और सम्यक् दर्शनसे नष्टहोताहै। जब ऐसे सम्यक्‌दर्शीहोगे तब अध्यात्मिक तापोंसे निवृत्त होकर शुद्धहोगे। आत्मा जो अज,शान्तरूप,स[illegible]—असत् है उसमें भिन्न कुछ नहीं और वह प्रकाशरूप है । ऐसा तू है। हे राजन्! अज्ञानभी और कोईनहीं; इसचित्तके उदय होनेकाही नाम अज्ञान है । अज्ञानका कारण चित्त है । जो पदार्थ चित्तसे उदयहुआ है सो नष्टभी चित्तसेही होता है; इससे तू चित्तसे चित्तको नाशकर। जैसे अग्नि पवनसे उपजतीहै और पवनहीसे शांतहोतीहै तैसेही

चित्तसे चित्तको नष्टकर। हे राजन्! न तूहै, न मैं हूं,न इन्द्रियहैं, न संसारहै और न यहजगत् है केवल शुद्धआत्माहै। हे राजन्! जो चित्तही न हो तो चित्तका कार्यविश्व कहांहो? यह अज्ञानीको भासता है कि, चित्त है और विश्व है; आत्मा केवल अपने आपमें स्थितहै। हे राजन्! चित्तका उदयहोना अज्ञानसे है। जब अज्ञान नष्टहोता है तब चित्त और 'अहं''त्वं' सबनष्टहो जातेहैं। हेराजन्! तू शुद्ध आत्मा;एक;प्रकाशरूप; अच्युत और निरन्तर है; देह इन्द्रियादिक रूपहोकरभी तुही स्थित हुआ है और इच्छा अनिच्छाभी तूहीहै। जैसे चन्द्रमाकी किरणें चन्द्रमासे भिन्ननहीं, तैसेही तूहै। तू निर्विकल्प है और तुझमें कुछ स्फूर्त्तिनहीं; तू केवल ज्योंका त्यों स्थितहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थउपदेशोनामअशीतितमस्सर्गः ८०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे कुम्भजमुनिने कहा तब शिखरध्वज सुनके शांतिको प्राप्तहुआ और नेत्रमूंदके सबअङ्गोंकी चेष्टासे रहितहुआ। जैसे शिलापर पुतलीलिखीहो तैसेही स्थितहो एकमुहूर्त्त पर्यंत वह निर्विकल्प स्थितरहा और फिर उठा तब कुम्भजने कहा; हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्पहै उस निर्विकल्प शिलामें तूने शयनकियाहै और ज्ञेयजो जाननेयोग्यहै उसे तूने जानाहै। अब अज्ञान तेरानष्ट हुआ अथवानहीं और तू शान्तिको प्राप्तहुआ अथवा नहीं सोकह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपाने मुझे उत्तमपदको प्राप्त कियाहै। हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताओंके सङ्गसे जैसा अमृत मिलताहै तैसा क्षीरसमुद्रसेभी नहीं मिलता और जो देवताओं सेभी नहीं मिलता। तुम्हारी कृपासे मैंने ऐसे अमृतको पाया है जिसका आदि अन्त कोईनहीं और जो अनंत और अमृतसारहै। अब मेरे सबदुःख नष्टहोगये हैं और मैं जगाहूं। अब मैंने अपने आपको जानाहै कि,मैं आत्माहूं;मेरेसाथ चित्त कोई नहीं और मैं केवल अपने आपमें स्थितहूं। अबमुझे कोई इच्छानहीं मैंने अपने स्वभावको पाया है और सबके आदिपदको प्राप्तहुआहूं। जिसमें कोईक्षोभ नहीं ऐसे निर्विकल्पपदको मैं प्राप्तहुआहूं। हे भगवन्! ऐसामेरा अपना आप है जिससे सब प्रकाशतेहैं। उसके जानेबिना मैंने कोटिजन्म पायेथे। अबमेरे दुःख नाशहुयेहैं और तुम्हारी कृपासे एक क्षणमेंजानाहै। आगेभी श्रवणकियाथा परक्या कारणहै जोआगे नजाना और अबजाना? कुम्भजबोले, हेराजन्! अब तेरेकषाय परिपक्क हुयेहैं। जैसे फलपरिपक्व होताहै तब यत्न बिनाही वृक्षसे गिरपड़ताहै तैसेही अबतेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट होगया है। जब अन्तःकरण मलिन होता है तब संतोंके वचननहीं लागते और जब अन्तःकरण शुद्ध होता है तब सन्तोंके बचन लागते हैं। जैसे कोमल कमलकी जड़को बाणलगे तो शीघ्रही बेध जाता है तैसेही शुद्ध अन्तःकरण में उपदेश शीघ्रही प्रवेश करता है। हे राजन्! अब तेरी भोग

वासना नष्ट हुई है और स्वरूप जाननेकी तेरी इच्छा हुई है; इससे तू जगा है । हे राजन् ! मैंने उपदेश तब किया है जब तेरा अन्तष्करण शुद्ध हुआ है । प्रतिविम्ब भी वहांपड़ता है जहां निर्मल ठौर होताहै । जैसे श्वेतवस्त्रपर केशरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है और रङ्गभी चटक होता है, तैसेही शुद्ध अन्तःकरणमें सन्तों के वचन शीघ्रहीप्रवेश करते हैं और शोभा पाते हैं । हे राजन् ! जबतक अन्तःकरण मलिन होता है तबतक चाहे जितना उपदेश कीजिये स्थित नहीं होता । जबभोगसे वैराग्य होताहै तब वासना कोई नहीं रहती केवल आत्मपदकी इच्छाहोती है और तभीस्वरूपका साक्षात्कार होताहै । हे राजन् ! अबतेरा सर्वत्याग सिद्धहुआ है और अज्ञान नष्टहुआ है क्योंकि; और उपाधि कोईनहींरही । चित्तहीबड़ी उपाधिहै; जब चित्त नष्ट हुआ तबकोई दुःखनहीं रहता । अबतू सुखसे विचर; तुझको दुःख, शोक और भय कोईनहीं अबतू शांतिपदको प्राप्तहुआहै । राजानेपूछा, हे भगवन् ! अज्ञानीको चित्त का संबंध है और ज्ञानवान्‌को चित्तका संबंध नहींहोता । जो स्वरूपमें स्थितहै वह चित्तबिना जीवन्मुक्ति क्रियामें कैसे वर्त्तताहै ? कुम्भजबोले, हे राजन् ! तूसत् कहता है कि, ज्ञानीको चित्तका संबंधनहीं । जैसे पत्थरकी शिलामें अंगुरी नहींहोतीं तैसेही ज्ञानीको चित्तका संबंधनहीं होता । हे राजन् ! चित्त वासनारूपहै और वासना जन्म मरणका कारणहै पर जीवन्मुक्तिकी वासनानहीं रहती । ज्ञानवान्‌का चित्त सत्य पदको प्राप्तहै और अज्ञानी चित्तमें वन्धमानहै; इससे वह जन्मताभी है और मरताभीहै । ज्ञानीका चित्तजो शांतिमें स्थितहै इससे उसको न वन्धहै; न मोक्षहै और वहप्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है और सर्वात्माही देखता है । यद्यपि इन्द्रियोंसे वह चेष्टाभी करताहै तौभीसर्व ब्रह्मही देखताहै और क्रियाकरनेमें इस अभिमानसे रहित होताहै कि, मैं कर्त्ताहूं और भोक्तहूं । अज्ञानी आपको करतामानताहै । और उसको संसार सत्य भासताहै इससे संकल्प विकल्प करताहै । ज्ञानवान् को संसारकी सत्यता नहीं भासती; वह आपको अकर्त्ता, अभोक्ता देखताहै और अभिलाषसे रहित चेष्टाकरता है । जबतक चित्तका सम्बन्ध है तबतक जीव संसारको सत्यजानकर अपनेमें क्रिया देखता है पर जब चित्तही नष्टहोगया तब संसार और फुरना कहांरहे ? हे राजन् ! अबतूने चित्तका त्याग कियाहै इससे सर्वत्यागी हुआहै और आगे सर्वत्याग न किया था इससे तेरा अज्ञान न नष्टहुआथा । अबतेरा अहंभावदूर हुआ है । जब अज्ञान नष्टहुआ तब अहंभावभी न रहा । अहंके त्यागकरनेसे सर्वत्याग सिद्धहुआ । आगे तूने राज्यका त्यागकियाथा पर राज्यमें तेराकुछ न था; फिर तमका त्यागकिया; फिर बनसे आदि सर्व सामग्रीका त्यागकिया पर अब तूने उसका त्यागकिया जो त्यागने योग्य अहंभाव है–इससे सर्वत्यागहुआ । जोकुछ जानने योग्यहै सो अबतूने जाना

है और शांतपदको प्राप्तहुआ है। हे राजन्! तू आत्मा सबदुःखोंसे रहित है। जैसे मन्दराचल पर्व्वतसे रहित क्षीरसमुद्र शांतपदको प्राप्तहुआ है तैसेही अज्ञान से रहित तू शांतपदको प्राप्तहुआ है। अबतू जागाहै और चित्तका त्यागकियाहै इससे अद्वैत सर्वआत्मा हुआहै। हे राजन्! जब दोअक्षर होतेहैं तब उनकीसंज्ञा नानाप्रकारकी होती है-जैसे अमृत-बिष; सुख-दुःख और धर्म-अधर्म-पर जो एकाएकीअक्षर होताहै वह सर्वका आत्माहै; तैसेही तेरा दूसरा अज्ञान नष्टहुआहै और तू सत्यपद को प्राप्तहुआ शुद्धनिर्मलहै। हे राजन्! जो ज्ञानवान्है उसने सम्यक् दृष्टिसे चित्तका त्यागकिया है और उसको कोईदुःख नहीं होता। तू उसपदको प्राप्तहुआ है जिसमें कोईदुःखनहीं और जहां स्वर्गादिक सुखभी तुच्छहैं क्योंकि, स्वर्गमेंभी अतिशय क्षय होतीहै। अतिशय इसे कहतेहैं कि, जो बड़े पुण्यवाले किसीको आपसेऊंचा देखतेहैं तो चाहते हैं कि, हमभी इसीकेसे होजावें और क्षयइसे कहते हैं कि, ऐसा न होकि, इनसुखोंसेगिरूं। निदान स्वर्गमें दोनोंप्रकार दुःखहोताहै पर तूने पुण्य पाप दोनोंका त्यागकियाहै इससे सर्वत्यागी है। अज्ञानी जो पापीजीव हैं उनको स्वर्गही भलाहै। जैसे सुवर्णका पात्र न पाइये तो पीतलकाभी भलाहै तैसेही स्वर्णका पात्र जो ज्ञानहै जबतक प्राप्त न हो तबतक पीतलके पात्र जो स्वर्गादिक हैं सो नरकसे भले हैं; पर तुम ऐसेको कुछनहीं। आत्मा में सर्व पदार्थकी पूर्णता है और सर्वकी उत्पत्ति आत्मासेही है। हे राजन्! वर्णाश्रम में क्या आस्था करनी है? जहांसे इनकी उत्पत्ति है, जहां लीनहोते हैं और मध्यमें जिसके अज्ञानसे दृष्टिआतेहैं उसमें स्थितहो। हेराजन्! सङ्कल्प विकल्प जो उठतेहैं उनमें मत स्थितहो पर जिसमें ये उत्पन्न और लीनहोते हैं उसमें स्थितहो। तपादिक क्रियासे क्या सिद्धहोताहै? जिससे तपआदिक सिद्ध होते हैं उसमें स्थितहो। बूंदमें क्या स्थित होना है? जिस मेघ से बूंद उत्पन्न होते हैं उसमें स्थितहोइये। हेराजन्! जैसे स्त्री भर्त्तासे कोई पदार्थ चाहे और आपनकहे तैसेही तपादिक क्रियासे क्या सिद्ध होता है? जो उनसे आत्मपदकी इच्छाकरे तो प्राप्त नहीं होसक्ता अपने आपसे पाता है। हे राजन्! आत्मा तेरा अपना आप है उससे सर्वसिद्धि होतीहै। जो वस्तु पीछे त्यागकरनी हो उसको ज्ञानवान् प्रथमही अङ्गीकार नहीं करता। जो कुछ तपादिकहैं उनको चित्तसे क्या रचताहै अपने आप कोदेख कि, अनुभवरूपहै और सर्वदा निरन्तर अपने आपमें स्थितहै। जब तू अपने आपसे आपको देखेगा तब तपादिक क्रिया को दूरकरके शोभा पावेगा। जैसे बादल के दूरहुये प्रकाशवान् चन्द्रमा शोभापाताहै तैसेही तू भी भोगकी चपलताको त्यागकर शोभा पावेगा। जब इन्द्रियों को जीतकर किसी पदार्थमें आसक्त न होगा और सर्व वासनाका त्यागकरेगा तब ज्ञानवान्होगा। जिसने सर्व वासना का त्याग किया

है उसको विष्णुजानना; वह सर्व राज्यकास्वामी है और जिसने मनजीता है सो चेष्टामें भी ज्योंकात्यों रहता है और समाधिमें भी ज्योंकात्यों है। जैसे पवनचलने और ठहरनेमें तुल्यहै तैसेही ज्ञानवान् को कहीं खेद नहींहोता। राजाने पूछा, हे सर्व संशयोंके नाशकर्त्ता ! स्पन्द और निस्पन्द में ज्ञानी ज्योंका त्यों कैसे रहताहै सो कृपाकरके कहिये ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! चेतन आकाश आकाशसे भी निर्मलहै; जब उसका साक्षात्कार होताहै, तब जहांदेखे तहां चेतनही भासता है । जैसे समुद्र के जानेसे तरङ्ग और बुद्‌बुदे सब जलही भासते हैं तैसेही चित्त बिना आत्माके देखे से फुरने में भी आत्माही दृष्टि आता है औ जिसने आत्माको नहीं जाना उसको नानाप्रकारका जगत्‌ही भासताहै। जैसे जलके जानेबिना तरङ्ग बुद्‌बुदे भिन्न२ दृष्टि आते हैं और जलके जाननेसे तरङ्गभी जलमय भासते हैं। हे राजन् ! सम्यक्‌दर्शी को जगदात्मास्वरूप है और असम्यक्‌दर्शीको जगत् है। इससे तू सम्यक्‌दर्शी होकर देख कि, जगत्‌भी आत्मरूप है। सम्यक्‌दर्शन जैसे प्राप्त होता है सोभी श्रवण कर। सम्य्‌दर्शन संतके संग करने और सत् शास्त्रके बिचारसे प्राप्त होता है। भावना करिये तब कितने कालमें स्वरूपका साक्षात्कार होताहै। कालकी अपेक्षाभी दृढ़ विचार के निमित्त कही है। जब दृढ़ विचार होता है तब साक्षात्कार होता है और जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है तब स्पंद और निस्पंदमें एक समान होता है। हे राजन् ! जिसके समीप मक्खी है वह मक्खीके निमित्त पर्वत क्यों खोजे और दौड़े तैसेही तेरेघरमें ब्रह्मवेत्ता चुड़ालाथी उसका त्यागकर तूने बनमें आ तपका आरम्भ किया इससे बड़ाकष्ट पाया परन्तु अब तू जागा है और तेरा दुःखनष्टहुआ है अब तू शांतपदको प्राप्तहुआ है। जैसे रस्सीके न जाननेसे सर्प्प भासता है और भलीप्रकार जाननेसे रस्सीही भासती है तैसेही जिसने भली प्रकार निस्पंद होकर अपना आप देखा है उसको फुरनेमेंभी आत्माही भासताहै। जब मनकी चपलता मिटती है तब तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है; जिस पदको वाणी नहीं कह सक्ती। हे राजन् ! तू भी अब उसी पदको प्राप्त हुआ है जो मन और वाणीसे रहित तुरीयातीत पद है वहां कोई क्षोभ नहीं केवल शांतिपद है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधवर्णननामएकाशीतितमस्सर्गः८१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब राजाको कुम्भज मुनि ऐसे उपदेश करचुके; उसके उपरान्त बोले, हे राजन् ! अब हम जाते हैं क्योंकि; स्वर्गमें ब्रह्माजी के पास नारद मुनि आये हैं, वे यदि मुझे देवताओंकी सभामें न देखेंगे तो क्रोध करेंगे । हे राजन् ! जो कल्याणकृत पुरुष हैं वे बड़ेकी प्रसन्नता लेते हैं। जो उपदेश तुझेकिया है उसको भली प्रकार बिचारना। सर्व शास्त्रोंका सार यही है कि, संपूर्णवासनाका

त्याग करना और किसी में चित्तको बन्धमान न करना। मेरे आनेतक स्वरूपमें स्थित रहकर किसी चेष्टामें न लगना और स्वरूपको भली प्रकार जानकर चाहेतैसे विचरना। ऐसे कहकर जब कुम्भज मुनि उठ खड़े हुये तब राजाने अर्घ्य और फल चढ़ानेके निमित्त हाथमें लिये पर जल और फूल हाथही में रहे और कुम्भज मुनि अन्तर्द्धान होगये। जब राजाने कुम्भजमुनि को अपने आगे न देखा तब विचार करने लगा कि, देखो ईश्वरकी नीति जानीनहीं जाती कि, नारदमुनि कहांथा; उसका पुत्र कुम्भज कहां और मैं राजा शिखरध्वज कहां ? मालूम होताहै नीतिहीने कुम्भज मुनिकारूप धारणकर मुझको जगायाहै। कुम्भज बड़ामुनिदृष्टि आया जिसने मुझे उपदेशकर के जगाया है। अब मैं अज्ञानरूपी गढ़ेसे निकलकर स्वरूपको प्राप्तहुआहूं; मेरे संपूर्ण संशय नष्टहुये हैं और मैं निर्दुःख पदमें स्थित होकर अज्ञान निद्रा से जागाहूं—बड़ा आश्चर्यहै। हे रामजी! ऐसे कहकर राजा शिखरध्वज संपूर्ण इन्द्रियां, प्राण और मन स्थित करके चेष्टासे रहित हुआ और जैसे शिलाके ऊपर पुतली लिखी होती है और पर्वतका शिखर स्थित होता है तैसेही स्थित हुआ इधर चुड़ाला कुम्भजरूप शरीरका त्यागकर और अपना सुंदररूप धारण कर उड़ी और आकाश को लांघकर अपने नगर में आई। अन्तःपुर में जहां स्त्रियां रहती थीं प्रवेश करके मंत्रियोंको आज्ञादी कि, तुम अपने अपने स्थानमें स्थितहो और आप राजाके स्थानमें स्थितहोके भली प्रकार प्रजाकी खबर लेने लगी। निदान तीनदिन रहकर फिर वहांसे उड़ी और जहां बनमें राजा था वहां आपहुंची और कुम्भज का रूप धारकर देखा कि, राजा समाधिमें स्थित है इससे बहुत प्रसन्न हुई। हे रामजी! ऐसे प्रसन्न होकर चुड़ालाने विचार किया कि, बड़ासुख कार्य्य हुआ कि, राजाने स्वरूपमें स्थिति पाई और शांतिको प्राप्त हुआ। फिर यह विचार कर कि, इसको जगाऊं सिंहकी नाईं गरजी और ऐसा शब्द किया कि, उससे बनके पशु पक्षी सब डरगये परन्तु राजा न जगा। फिर उसे हाथसे हिलाया तौभी राजा न जगा। जैसे मेघके शब्दसे पर्व्वतका शिखर चलायमान नहीं होता तैसेही राजा चलायमान न हुआ और काष्ठ और पाषाणकी नाईं स्थितरहा। तब रानीने विचारकिया कि, कहीं राजा शरीरको त्याग न दे, पर फिर विचारा कि, जो राजाने शरीरकात्याग किया हो तो मैंभी त्यागूंगी। हे रामजी! चुड़ालाने शरीर न त्यागा परन्तु आरम्भकरने लगी कि, राजा और मुझको इकट्ठा शरीर त्यागना है। फिर विचार करनेलगी कि,इसकी भविष्यत् क्या होनी है। तबराजाके नेत्रोंपर हाथलगाया और देहसे देहका स्पर्शकर देखा कि राजाकेशरीरमेंप्राणहैं। फिर भविष्यत्का विचारकिया कि, इसकी सत्त्व शेष रहती है इससे जीवन्मुक्त होकर राज्यमें विचरेगा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तुमने

कहा कि, राजाकाष्ठ और पाषाणकीनाईं स्थितहुआ और फिरकहा कि,कुम्भजने हाथ लगाकर देखा कि, इसमें प्राणहैं तो कुम्भजने क्योंकर जाना ? यह मुझको संशयहै सो दूरकरो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस शरीरमें पुर्यष्टका होती है उसमें हरियावलता होती है । हे रामजी ! अज्ञानीका चित्तरहताहै और ज्ञानीका सत्त्व रहताहै जो प्रारब्ध वेगसे फुरताहै और ब्रह्माकार वृत्ति फुरनेसे फिर शरीर पाताहै । ज्ञानी इष्ट–अनिष्ट में एकसमान रहताहै और अज्ञानी एकसमान नहीं रहता; वह इष्ट में प्रसन्न और अनिष्टकी प्राप्तिमें शोकवान्होताहै । हेरामजी ! ज्ञानीजब शरीरको त्यागताहै तब ब्रह्म समुद्र में स्थित होताहै और जबतक सत्त्व शेषहै तबतक फुरताहै । अज्ञानी जब शरीरको त्यागताहै तब उसमें सूक्ष्म संसार होताहै–जैसे बीजमें वृक्ष, फूल और फल सूक्ष्मतासे स्थित होताहै सो काल पाकर फिर निकलताहै । उसीप्रकार राजाका सत्त्व शेष रहताथा उस कारण फिर फुरेगा । तब कुम्भजरूप चुड़ाला ने विचारकिया कि, इसके भीतर प्रवेशकरके जगाऊं और जो मैं न जगाऊंगी तौभी नीतिसे इसको जानाहै । ऐसे विचार उसने अपने शरीरको त्यागा और चेतनतामें स्थित हो, फुर को लेकर उसमें प्रवेशकिया और उसकी चेतनताका जो सत्त्वशेषथा उसको फोड़ा और बड़ाक्षोभकिया । जब राजा वहांसे हिला तब आपनिकल आई और अपने शरीर प्रवेशकिया । जैसे पखेरू आकाशमें उड़ताहै और फिर आलय में आ प्रवेश करताहै तैसेही वह अपने शरीर में आन स्थितहुई और सामवेदका गायन मधुरस्वर से करनेलगी । राजा यह सुनकर कि, कोई सामवेद गात जागा और देखा कि, कुम्भजमुनि बैठे हैं । इन्हें देखकर वह बहुत प्रसन्नहुआ और फूल और जल चढ़ाकर बोला, हे भगवन् ! मेरे बड़े भाग्य हैं–मैं आपका दर्शन करके बहुत प्रसन्नहुआ । हे भगवन् ! कूलरूपी कुलाचल पर्वतहै उसमें जो देहरूपी वृक्ष है सो अबफूलाहै और तुमने हमको पावनकिया है । हे भगवन् ! किसीकी सामर्थ्य नहीं कि, तुम ऐसोंके चित्तमें प्रवेशकरे । जिसमें सर्वदा आत्माका निवासहै उस चित्त में मेरी स्मृतिहुई है कि, आपका दर्शन किया । इससे मेरे बड़े भाग्यहैं । हे भगवन् ! अमृतरूपी वचनोंसे तुमने प्रथममुझे पवित्र कियाथा और अब जो चित्तकियाहै सो मुझे पावन कियाहै । कुम्भज बोले, हे राजन् ! तेरा दर्शन करके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआहूं और तुम्हारी ऐसीप्रीति मैंने आगे किसीमें नहींदेखी । हे राजन् ! तेरे निमित्त मैं स्वर्गसे आयाहूं । स्वर्गकेसुख मुझे भले न लगे और तू बहुत प्रियतम है इसी निमित्त मैं आयाहूं । अब मैं भी स्वर्ग न जाऊंगा;तेरेहीपास रहूंगा । राजा बोले, हे भगवन् ! जिसपर तुम ऐसोंकी कृपाहोती है उसको स्वर्ग आदिक सुख भलेनहीं लगते तो तुम ऐसोंकी बात क्याकहनी है ? यह बनहै और यह झोपड़ीहै इसमें विश्राम

करो; मेरे बड़े भाग्य हैं जो तुम्हाराचित्त यहां चाहता है। कुम्भज बोले, हे राजन्! अबतुझे शांति प्राप्तहुई है और सङ्कल्पबीज नष्टहुआ। जैसे नदीके किनारे परकी बेलि जलके प्रवाहसे मूलसमेत गिरती है तैसेही तेरे सङ्कल्पबीज नष्टहुये हैं। अब तू यथाप्राप्तिमें सन्तुष्टहै कि, नहीं? और हेयोपादेयसे रहितहुआ है कि, नहीं; और जो पानेयोग्य पदहै सो पायाहै कि, नहीं; अपना अनुभवकह? राजा बोले, हे भगवन्। तुम्हारी कृपासे अब मैंने सबसे श्रेष्ठपदपायाहै जहां संसार सीमाकाअन्तहै। अब मुझे उपदेशका अधिकार नहींरहा क्योंकि,मेरे सम्पूर्ण संशय नष्टहुये हैं और हेयोपादेयसे रहितहूं इससेसुखी विचरताहूं। जो कुछ जानना योग्यथा सोभी मैंने जानाहै। अब मुझमें कोई नहीं और मैं सर्वठौर तृप्त, अनित, प्राप्तरूप आत्मा अपने निर्मल स्वभावमें स्थित, सर्वात्मा और निर्विकल्पहूं। मुझ फुरना कोई नहीं; मैं शान्तरूपहूं और चिरपर्यंत सुखीहूं। इतनाकह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार राजा और कुम्भजका तीन मुहूर्त्त सम्वादहुआ फिर उसके उपरान्त दोनोंउठखड़ेहुयेऔर चले। निकट एक तालाबथा जहां बहुत कमालिनी लगीथीं वहां पहुंच दोनोंने स्नान करके गायत्री और सन्ध्याकी और पूजाकरके फिर वहांसे चले और वन कुञ्जोंमें आये। तब कुम्भजने कहा चलिये। राजाने कहा भली बात है चलिये। निदान दोनों चले और बनतनगरों, देशों,ग्रामों और तीर्थोंको देखते नानाप्रकारके वनोंमें जो फूल और फलसंयुक्तथे और मरुथलमें विचरे। हे रामजी! ऐसे वे दोनों तीर्थादिक सात्त्विकी स्थानों; सुन्दर वनआदिक राजसी स्थानों और मरुथलादिक तामसी स्थानों में विचरे पर हर्षशोकको न प्राप्तहुये और समतामें रहे। हे रामजी! कुम्भजके फिरने का यह प्रयोजन था कि, देखें राजा शुभअशुभ स्थानोंको देखकर हर्षशोक करेगा अथवा न करेगा पर राजाहर्ष शोकको न प्राप्तहुआ। फिरउन्होंने बड़े पर्व्वतोंकी कन्दरा, बन, कुञ्ज और बड़ेकष्टके स्थान देखे और एकवनमें जारहे। कुछ कालमें राजा और कुम्भज एकहीसे होगये। दोनों इकट्ठे स्नान करें; एकहीसे जापजपें; एकसी पूजाकरें और एकसे दोनों सुहृदहुये। किसीठौर वे शरीरमें माटी लगावें; किसीठौर चन्दनका लेपकरें; किसीठौर शरीरमें भस्मलगावें; किसीठौर दिव्यवस्त्रपहिरें; किसीठौरकेलेके पत्रोंपर सोवें; किसीठौर फूलकी शय्याहो और किसीठौर क्रूरस्थानों में शयनकरें। हे रामजी! ऐसेशुभ अशुभ ठौरोंमेंभी वे ज्योंकेत्यों रहे और हर्षशोकको न प्राप्तहुये। केवल शुद्धसत्त्वमें वे दोनों स्थितरहे और आत्माकेसिवाय और कुछ न फुरा। एकबेर रानीके मनमें विचारहुआ कि यह मेराभर्त्ताहै मैं इसको भोगूं क्योंकि, हमारी अवस्थाहै। जो भले कुलकी स्त्री हैं वे भर्त्ताको प्रसन्नरखती हैं और राजाका शरीरभीदेवतोंकासा हुआ है और स्थानभी शुभहै। जबतकशरीरहै तबतकशरीरके स्वभाव भी साथहैं। फिर

विचार किया कि, राजाकी परीक्षाभी करूं कि, क्याकहे । इतना विचारकर कुम्भज ने कहा, हेराजन्! अबहम स्वर्गमेंजातेहैं क्योंकि, चैत्रशुद्ध एकमको ब्रह्माजीने सृष्टिउत्पन्नकीहै; इसीदिन बर्षकेबर्ष उत्सव होताहै और वहां नारदमुनिभी आवैंगे । मेरेआने तक तुम ध्यानमें रहना और जब ध्यानसे उतरो तो फूलोंको देखना । ऐसे कहकरउसने फूलोंकी मञ्जरीराजा कोदी और राजानेभी कुम्भजको फूलकी मञ्जरीदी । जैसे नन्दनबनमें स्त्री भर्त्तारके हाथदे और भर्त्तार स्त्रीके हाथदे तैसेही परस्पर दोनोंनेदिया । फिर कुम्भज आकाशको उड़ा और जैसे मेघको मोरदेखताहै तैसेही राजा देखतारहा । जहांतकराजाकीदृष्टि पड़तीथी वहांतक रानीने कुम्भजका शरीररक्खा और जब दृष्टि से अगोचर हुई तब फूलोंकी माला जो गलेमेंथी तोड़कर राजाके ऊपर डालदी और चुड़ालाका शरीरधारणकर आकाशको लांघ अपने अन्तःपुरमें पहुंची। निदान राजाके स्थानपर बैठकर सबको अपने अपने स्थानोंमें स्थितकिया और प्रजाकी खबरें सुनकर फिरउड़ी । सूर्यकी किरणों के मार्गसे मेघमण्डलको लांघतीहुई जहां राजाका स्थानथा वहां आकर देखाकि,राजा वियोगसे शोकवान्है इसलिये आपभी कुम्भज रूपमेंदिलगीरराजाके आगे आई । राजाने कहा,हेभगवन् ! तुमको शोक कैसेहुआहै? ऐसाकौन कष्ट तुमको मार्ग्गमें हुआ है ? सब दुःखोंकानष्ट करनेवाला ज्ञानहै; जो तुमऐसे ज्ञानवानोंको शोकहो तो और की क्याबात कहनी है । हेमुनि ! तुमको दुःखका कारण कोई नहीं, तुम क्यों शोकवान् होतेहो और तुमकोकौन अनिष्ट प्राप्तहुआ है ? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन् ! मुझे एकदुःखहै सो कहताहूं । जो मित्रपूछे तो सत्तही कहा चाहिये और दुःखभी नष्टहोता है । जैसे मेघजड़ और श्यामहोता है और उसका सज्जन जोहै क्षेत्र और पृथ्वी तिसके ऊपरवह बर्षाकरता है तोउसकी जड़ता और श्यामता नष्टहोती है – इससे मैं तुमसे कहताहूं । हे राजन् ! जबतक स्वर्गमें सभास्थित थी तबतक मैं नारदके पासरहा और जबसभाउठी तब नारदमुनिभी उठे और मुझसे कहा कि,जहां तेरी इच्छाहो तहांजा और मैंभी जाताहूं–क्योंकि, नारद एकही ठौर में नहीं ठहरते विश्वमें घूमते फिरतेहैं । तबमैं आकाशको चलातो एकठौरसूर्यसे मिलाप हुआ और मेघके मार्गसे तीक्ष्ण वेगसे चला । जैसे नदी पर्व्वत से तीक्ष्ण वेगसे आती है तैसेही मैं तीक्ष्ण वेगसेचला आताथा तो देखा कि, दुर्बासा ऋषीश्वर महा मेघकी नाईं श्यामवस्त्र पहिरेहुये और भूषणसंयुक्त जैसे बिजलीका चमत्कार होताहै उड़ेआतेहैं । भूषणोंका चमत्कारदेखकर मैंनेदण्डवत् करकेकहा,हे मुनीश्वर । तुमनेक्या रूपधारा है जो स्त्रियोंकी नाईं भासताहै? दुर्बासाने तबरुष्टहोकर मुझसे कहा,हे ब्रह्मा के पौत्र ! तू कैसा वचन कहताहै ? ऐसा वचन मुनीश्वरप्रतिकहना उचितनहीं । हम क्षेत्रहैं; जैसाबीज क्षेत्रमें बोइये तैसा उगताहै; तूने मुझे स्त्रीकहाहै इससे तूभीस्त्रीहोगा

और रात्रिको तेरे सब अंगस्त्री के होवेंगे । हे मुनीश्वर ! जो कल्याणकृत ज्ञानवान् पुरुष हैं उनमें नम्रताहोती है जैसे फल संयुक्तवृक्ष नम्रहोता है तैसेही ज्ञानीभी नम्र होता है-ऐसावचन तुझे कहना न चाहिये । हे राजन्! ऐसे सुनकर मैं तेरे पासचलाआयाहूं और मुझे लज्जाआती है कि, स्त्रीका शरीरधारे देवताओंके साथमें कैसे बिचरूंगा-यही मुझकोशोक है । राजाने कहा, क्याहुआ जो दुर्वासाने कहा और स्त्री का शरीरहुआ ? तुमतो शरीरनहीं,निर्लेप आत्माहो ?हेमुनीश्वर !तुम अपनीसमता में स्थित रहतेहो । ज्ञानवान् पुरुषको हे योपादेय किसीकानहीं रहता वहतो अपनी समतामें स्थित रहताहै ? तब कुम्भजने कहा,हे राजन्! तू सत्य कहताहै । मुझेक्या दुःख है ? जो शरीरका प्रारब्धहै सो होता है । यह ईश्वरकी नीति है कि,जबतक शरीर होता है तबतक शरीरके स्वभावभी रहते हैं। शरीरका स्वभाव त्याग करना भी मूर्खता है । जिस स्थानमें ज्ञानकी प्राप्तिहो उसीचेष्टामें बिचरिये और इंद्रियोंका रोकना और मनसे बिषयकी चिन्तना करनीभी मूर्खताहै । इन्द्रियों और देहकी चेष्टा ज्ञानवान्भी करतेहैं परन्तु उसमें बन्धमान नहींहोते। इन्द्रियां विषयमें वर्त्तती हैं। ईश्वर की आदिनीति इसीप्रकार है।हे राजन्! नीतिका त्याग किसीसे नहींकिया जाता-इससे नीतिका क्या त्यागकरिये । यह नीति है कि, जबतक शरीरहै तबतक शरीरके स्वभावभी होते हैं। जैसे जबतक तिल है तबतक तेलभी होता है तैसेही जबतक शरीरहै तबतक शरीरके स्वभावभी होतेहैं । जो ज्ञानवान् पुरुषहैं वे देह और इन्द्रियोंसे चेष्टाभी करतेहैं परन्तु बन्धायमान नहींहोते और अज्ञानी बन्धायमान होतेहैं। चेष्टाज्ञानी भी करते हैं अज्ञानीभी करते हैं । जैसे ब्रह्मा,विष्णु रुद्र आदिजो ज्ञानवान् हैं वे सर्वचेष्टाभी करते हैं परन्तु बन्धयामान किसीमें नहीं होते । हे राजन्! तैसेजो अनिच्छित आ प्राप्त हो और जिसको शास्त्र प्रमाण करें उसको भोगनेमें दूषण कुछनहीं । राजा बोले, हे भगवन्! ज्ञानवान्को दूषण कुछनहीं ।जो सत्ता समानमें स्थित है उसे दूषण कुछनहीं होता । अज्ञानी शरीरके दुःख अपने में देखताहै उससे दुःखी होता है और ज्ञानवान् शरीरके दुःख अपने में नहीं देखता । हे राम जी ! ऐसे कहते सूर्यअस्तहुआ तबराजा और कुम्भज दोनों ने सायंकाल में सन्ध्या करके जाप किया और जबरात्रि हुई, तारागण निकले और सूर्यमुखी कमलोंके मुख मूंदगये तब कुम्भजने कहा, हे राजन्! देख कि, मेरे शिरके बाल बढ़तेजाते हैं, वस्त्र भी टखने तक होगये हैं और स्तनभी स्त्रीकीनाईं हैं । निदान चुड़ाला महासुन्दर स्त्री लक्ष्मी कीनाईंहोगई और उसको देखकर राजाको एकमुहूर्त्त शोकरहा उसके उपरांत सावधान होकर बोला, हे मुनि ! क्याहुआ जो तेराशरीर स्त्रीकाहुआ ? तुमतो शरीर नहीं आत्मा हो-इससे शोकक्यों करतेहो ? तुम अपनी सत्तासमानमें स्थितरहो जब

रात्रिहुई तो रानीने महा सुन्दररूप धरके फूलोंकी शय्याबिछाई और उसपर दोनों इकट्ठे सोये । हे रामजी ! समस्त रात्रि उनको कोई फुरना न फुरा और सत्ता समान में दोनों स्थितरहे और मुखसे कुछ न बोले । जब प्रातःकाल हुआ तब फिर रानीने कुम्भजका शरीर धारकर स्नानकिया और गायत्रीसे आदिजो कर्म्म हैं सोकिये । इसीप्रकार चुड़ाला रात्रिको स्त्री बनजावे और दिनको कुम्भज पुरुषका शरीर धारे । जब कुछकाल ऐसेबीता तब दोनों वहांसे चलकर सुमेरुपर्वतके ऊपरगये और मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत आदिसर्व सुखस्थानोंको देखापर एक दृष्टिको लियेरहे न कोई हर्षवान् हुआ और न शोकवान् ज्योंके त्यों रहे । जैसे पवनसे सुमेरुपर्वत चलायमान नहींहोता तैसेही शुभ अशुभ स्थानोंमें वे समान रहे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नामद्व्यशीतितमस्सर्ग्गः८२ ॥

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार विचरते २ वे मन्दराचल के कन्दरमें पहुँचे तो वहां कुम्भजरूप चुड़ालाने राजा से परीक्षाके निमित्तकहा, हे राजन् ! जब मैं रात्रिको स्त्री होतीहूं तबमुझेभर्त्ताके भोगनेकी इच्छाहोती है क्योंकि, ईश्वरकी नीति ऐसीहीहै कि,स्त्रीको अवश्यमेव पुरुष चाहिये । जो उत्तम कुलका पुरुष होता है उसको कन्या विवाह करके पिता देता है अथवा जिसको स्त्री चाहे उस को आप देखले—इससे, हे राजन् ! मुझे तुझसे अधिक कोई नहीं दृष्टिआता । तूहीमेरा भर्त्ता है और मैं तेरी स्त्रीहूं । तू मुझे अपनी भार्य्या जानकर जो कुछ स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं सो कियाकर । मेरी अवस्थाभी यौवन है और तू भी सुन्दर है । ज्ञानवान् अनीच्छित प्राप्तहुयेका त्यागनहीं करते । यद्यपि तुझको इच्छा न हो तौभी ईश्वरकी नीति इसीप्रकार है उसके उल्लंघनसे क्या सिद्धहोगा ? जो अपने स्वरूपसत्ता में स्थितहै उसको ग्रहण त्यागकी कुछ इच्छानहीं परन्तु जो नीतिहै वह करनी चाहिये। राजाबोला, हे साधु ! जो तेरी इच्छा है सो कर मुझकोतो तीनों जगत् आकाशरूप भासतेहैं । मुझे प्राप्तहोनेसे कुछसुखनहीं और अप्राप्ति में दुःखनहीं और न कुछहर्ष शोकहै । जोतेरी इच्छाहो सोकर । कुम्भजबोले, हे राजन् ! आजही पूर्णमासीका भलादिनहै और मैंने आगेसेलग्नभी गिनरक्खाहै इससे मन्दराचल पर्वतकी कन्दरा में बैठकर विवाहकरो । निदान राजा और कुम्भजदोनों उठे और जो कुछ सामग्री शास्त्रकी रीतिसेथीं वे इकट्ठी कर दोनोंने गङ्गामें स्नानकिया । वस्त्र, फूल, फलआदि जो विवाहकी सामग्रीहैं सो कल्पवृक्षसे लेकर दोनोंने फल भोजनकिये और सूर्यअस्त हुआ तो दोनों ने सन्ध्योपासनकर कुम्भज ने राजाको दिव्य वस्त्र और भूषण पहिनाये और शिरपर मुकुटरक्खा । फिर कुम्भजने अपना शरीर त्यागकर स्त्रीका शरीर धारण किया और राजासे बोला; हे राजन् ! अब तू मुझे भूषण पहिरा । तब

राजाने संपूर्ण भूषण फूल और वस्त्र उसे पहिराये और वह पार्वतीकी नाईं सुन्दर बनी। तब चूड़ाला ने कहा, हे राजन्! मैं अब तेरी स्त्रीहूं और मेरानाम मदनिका है और तू मेरा भर्त्ता है—मुझे तू कामदेवसे भी सुन्दर भासता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार चुड़ालाने बहुत कुछ कहा तौभी राजाका चित्त हर्षको न प्राप्त हुआ और विरागसे शोकवान् भी न हुआ—ज्योंका त्यों रहा। उसके उपरान्त जब बिवाह का आरम्भ हुआ तो चन्दुआदिया और पास सुवर्ण के कलश रखके देवताओं का पूजन किया और जो शास्त्रकी विधिथी वह संपूर्ण करके मङ्गल किया। फिर रानी ने यह संकल्प किया कि, संपूर्ण ज्ञान निष्ठा तुझेदी। और राजा ने संकल्प किया कि, सम्पूर्ण ज्ञान निष्ठातुझे दी जब रात्रि एक प्रहर रही तब राजा और रानी ने फूलोंकी शय्या बिछाके शयनकी और आपसमें चरचाही करते रहे मैथुन कुछ न किया। प्रातःकाल हुये कुम्भजने स्त्रीका शरीर त्याग कर कुम्भज का शरीर धारा और स्नान संध्यादिक कर्म किये। हे रामजी! इसी प्रकार एक मास पर्यन्त मन्दराचल पर्वत में वे रहे। रात्रिको रानी स्त्रीका शरीर धरे और दिनको कुम्भज का शरीर धरे और जब तीसरा दिनहो तब राजाको शयन कराके राज्यकी सुधिले और फिर आकर राजाके पास शयन करे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविवाहलीलावर्णननामत्र्यशीतितमस्सर्ग्गः ८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जबवहांसे वे चलेतो अस्ताचल पर्वत में जायरहे और उदयाचल, सुमेरु, कैलास इत्यादिक पर्वतों और कन्दरों और बनोंमें रहे। कहीं एक मास, कहीं दशमास,कहीं पांचदिन, कहीं सप्तदिनरहे। इसीतरह जबएक बनमें आये तबरानीने बिचारकिया कि, इतनेस्थान राजाको दिखाये तौभी इसका चित्त किसी में बन्धमान नहींहुआ, इससे अब और परीक्षालूं। ऐसे विचारकर उसने अपनी ऐसी माया फैलाई कि, तैंतीस कोटि देवता संयुक्त इन्द्रके आगे किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सरा नृत्य करतीआईं। सर्व सामग्री संयुक्त इन्द्रको देखकर राजाउठा और बहुत प्रीति संयुक्त उसकीपूजाकरके बोला, हे त्रैलोक्यकेपति! तुम किसलिये बनमें आये हो सोकहो? इन्द्रनेकहा, हेराजन्! जैसे पक्षी ऊर्ध्वमें उड़ताहै और उसकीपेटीमें तागा होता उससे उड़ता हुआभी नीचे आता है, तैसेही हम ऊर्ध्वके बासी तेरे तप और शुभ लक्षणोंके तागेरूपी गुणोंको श्रवणकरके स्वर्ग से खैंचेचले आते हैं—इसप्रकार हमारा आनाहुआ है। इससे, हे राजन्! तू स्वर्गकोचल और स्वर्गमें स्थितहोकर दिव्यभोगोंको भोग। ऐरावत हाथीपर आरूढ़हो अथवा उच्चैःश्रवा घोड़ा जो क्षीरसमुद्रके मथनसे निकलाहै उसपर आरूढ़ होकरचल। अणिमा, महिमा, गरिमा आदि अष्ठसिद्धियांभी विद्यमान हैं जो इच्छाहोसो लो और स्वर्गमें चलो। हे राजन्! तुम

तत्त्ववेत्ताहो, तुमकोग्रहण त्यागकरना कुछनहींरहा परन्तुजो अनीच्छित प्राप्तहो उसका त्यागकरना योग्यनहीं-इससे स्वर्ग चलो । राजाबोले, हे देवराज ! जानातहां होताहै जहांआगे न हुआहो और जहां आगेजाना हुआहो वहां कैसे जावे ? हे देवराज ! हमको सर्वस्वर्गही दृष्टिआताहै । जो वहां स्वर्गहो और यहां न होतो जानाभी उचित है परन्तु जहां हम बैठे हैं वहांही स्वर्ग भासता है; इससे हम कहांजावें ? हमको तीनों लोक स्वर्गदृष्टि आतेहैं और सदास्वर्गरूप जो आत्माहै हम उसीमें स्थितहैं । हमको सर्वथास्वर्ग भासताहै और हमसदा तृप्त और आनन्दरूपहैं । इन्द्रबोले, हे राजन् ! जो विदित वेदपूर्ण बोधहैं वेभी यथाप्राप्त भोगोंको सेवते हैं तो तुम क्योंनहीं सेवते ? ऐसे जब इन्द्रनेकहा तबराजा त्योंहीं कहकर चुपकरगया । फिर इन्द्रनेकहा भला जो तुमनहीं आतेतो हमहींजातेहैं । तुम्हारा और कुम्भजका कल्याणहो । हेरामजी! ऐसे कहकरइन्द्रउठखड़ाहुआ और चला पर जबतक दृष्टिआताथा तबतक देवताभी साथ दीखतेथे फिर जबदृष्टिसे अगोचरहुये तब अन्तर्द्धान होगये । जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठ करफिर लीनहोजाते हैं और जानानहींजाता कि,कहांगये; तैसेही इन्द्र अन्तर्द्धानहोगया । वह इन्द्रकुम्भजरूप चुड़ालाके सङ्कल्पसेउठाथा जब सङ्कल्पलीन हुआ तब अन्तर्द्धान होगया और चुड़ालानेदेखा कि, ऐसेऐश्वर्य, सिद्धि और अप्सराओंके प्राप्त भयेभी राजाकाचित्त समतामें रहा और किसीपदार्थमें बन्धमान न हुआ ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमायाशक्रागमनवर्णनं नामचतुराशीतितमस्सर्ग्गः ८४ ॥

वशिष्ठजीबोले,हे रामजी ! जब चुड़ाला इन्द्रका छल करचुकी तब बिचारनेलगीकि, ऐसाचरित्रमैंनेराजाके मोहनेके निमित्त किया तौभी राजाकिसीमें बन्धायमान न हुआ और ज्योंका त्योंहीरहा । बड़ा कल्याणहुआ कि,राजा सत्तासामानमें स्थितरहा-इससे बड़ा आनन्दहुआ ।अब और चरित्रकरूं जिसमें इसको क्रोध और खेददोनोंहों ।ऐसे विचारकर राजाकी परीक्षाके निमित्त उसने यहचरित्रकिया कि,जबसायङ्कालका समय हुआ तब गङ्गाकेकिनारे राजासन्ध्याकरनेलगा और कुम्भज बनमें रहाओरउसमें संकल्प का मन्दिररचा।जैसेदेवताओंकी रचनाहोतीहै तैसेहीमन्दिरकेपास फूलोंकी एक वाड़ीलगाई और उसमें कल्पवृक्षआदि नानाप्रकारके फूलफल संयुक्त वृक्षरचे । एवम् सङ्कल्पकी शय्यारचकर एक सङ्कल्पका महासुन्दर पुरुषरचा और उसके साथ अङ्ग से अङ्गलगा और गलेमें फूलोंकी मालाडाल कामचेष्टा करनेलगी । जबराजा सन्ध्या करचुका तो रानीको देखनेलगा पर वहदृष्टि न आई; निदान ढूंढ़ते ढूंढ़ते उसमन्दिर के निकट आयातो क्या देखा कि, एक कामीपुरुषके साथ मदनिका सोईहुई है और दोनों कामचेष्टा करते हैं । तब राजाने विचारा कि,भले आरामसे दोनों सोरहेहैं इनके

आनन्द में विघ्न क्योंकीजिये। हे रामजी! इसप्रकार राजाने अपनी स्त्रीको देखा तौभी शोकवान् न हुआ और क्रोधभी न किया ज्योंकात्यों शांतपद में स्थितरहा। मन्दिर के बाहर निकलके वहां एक सुवर्णकी शिलापड़ीथी उसपर आन बैठा और आधेनेत्र मूंदकर समाधिमें स्थितहुआ। दो घड़ीके उपरान्त मदनिका कामीपुरुषको त्यागकर बाहरआई और राजाके निकट आकर अङ्गोंको नग्नकिया और फिर वस्त्रोंसे ढांपा जैसे और स्त्रियां कामसे व्याकुलहोती हैं तैसेही चुड़ालाको देखकर राजाने कहा, हे मदनिका! तू ऐसे सुखको त्यागकर क्यों आई है? तूतो बड़े आनन्दमें मग्नथी अब वहांही फिरजा। मुझे तो हर्ष शोक कुछनहीं मैं ज्योंका त्योंहूं परन्तु तेरी और कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखी है जगत् में परस्पर प्रीति नहीं होती है इससे तू उसको सुखदे वह तुझे सुखदे। तब मदनिका लज्जासे शिरको नीचेकरके बोली, हे भगवन्! क्षमाकरो; मुझपर क्रोध मतकरो, मुझसे बड़ी अवज्ञाहुई है परन्तु मैंने जानकेनहीं की। जैसे वृत्तांत है सो सुनो। जबतुम सन्ध्या करनेलगे तब मैं बनमें आई तो वहां एक कामीपुरुषका मिलापहुआ, मैं निर्ब्बलथी और वहबलीथा उसने पकड़कर मुझे गोद में बैठाया और जो कुछ भावना थी सो किया। मैंने जो पतिव्रता स्त्री की मर्य्यादाथी उसके अनुसार उसपर क्रोध किया और उसका निरादर किया और पुकारभी की– ये तीनों पतिव्रता की मर्य्यादा हैं सो मैंने कीं–परंत तुम दूरथे और वह बलीथा मुझे पकड़ और गोद में बैठाकर जो कुछ भावनाथी वह किया। हे भगवन्! मुझ में कुछ दूषण नहीं, इससे तुम क्षमाकरके क्रोध न करो। राजाबोले, हे मदनिका! मुझे कदाचित् क्रोध नहीं होता। आत्माही दृष्ट आता है तो क्रोध किसपर करूं? मुझे न कुछ ग्रहणहै और न त्यागहै तथापि यह कर्म्म साधों से निन्दित है, इससे मैंने अब त्याग कियाहै सुखसे बिचरूंगा। हमारा गुरु जो कुम्भज है वह हमारे पासही है; वह और हम सदा निरागरूप हैं और तू तो दुर्व्वासाके शापसे उपजी है तुझसे हमारा क्या प्रयोजन है–तू अब उसीके पासजा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमायापिञ्जरवर्णनंनामपञ्चाशीतितमस्सर्गः ८५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मदनिकानाम चुड़ालाने विचार किया कि, बड़ा कार्य्य हुआ जो राजा आत्मपद को प्राप्त हुआ। ऐसे सिद्ध और ऐश्वर्य्य देखे और क्रूरस्थानभी दिखाये तौभी राजा शुभ अशुभमें ज्योंकात्यों रहा। इससे बड़ा कल्याण हुआ कि, राजाको शान्ति प्राप्तहुई और रागद्वेषसे रहित हुआ। अब मैं इसे अपना पूर्व रूप चुड़ालाका दिखाऊं और सम्पूर्ण वृत्तान्त राजाको जताऊं। ऐसे बिचारकर जब मदनिका शरीरसे चुड़ाला रूप भूषण और बस्त्रसहित प्रकटहुई तब राजा उसे देखकर महाआश्चर्य्यको प्राप्तहुआ और ध्यानमें स्थितहोकर देखा कि, यह चुड़ाला

कहांसे आई है । फिर पूछा, हे देवि ! तू कहांसे आई है ? तुझे देखकर तो मैं आश्चर्य्य को प्राप्त हुआहूं क्योंकि; ऐसी मेरी स्त्री चुड़ाला थी । तू यहां किस निमित्त आई है और कबकी आई है ? चुड़ाला बोली, हे भगवन् ! मैं तेरीस्त्री चुड़ाला हूं और तू मेरा स्वामी है । हे राजन् ! कुम्भज से आदि इस चुड़ाला शरीर पर्य्यन्त सर्व चरित्र मैंने तेरे जगानेके निमित्त किये हैं । तू ध्यान में स्थित होकर देख कि, ये चरित्र किसने किये हैं ? मैंने अब पूर्वका चुड़ालाका शरीर धाराहै । हे रामजी ! जब ऐसे चुड़ाला ने कहा तब राजा ध्यान में स्थित होकर देखने लगा और एक मुहूर्त्त पर्यंत स्थित रहकर सबवृत्तान्त देखलिया । उसके उपरान्त राजाने आश्चर्यको प्राप्त होकर नेत्र खोले और रानीको कंठसे लगाकर मिला । निदान दोनों ऐसे हर्षको प्राप्त हुये जो सहस्र वर्ष पर्यन्त शेषनाग उस सुखको बर्णनकरें तौभी न कहसकेंगे । वे ऐसे सत्ता समानमें स्थित होकर शान्तिको प्राप्तहुये जिसमें क्षोभकदाचित् नहीं । राजा और रानी दोनों कण्ठलग के मिले थे इससे अंगों में उष्णता उपजी थी इसकारण शनैः२ करके उन्होंने अंगखोले और हर्षवान् होकर राजाकी रोमावलि खड़ीहोआई और नेत्रों से जल चलनेलगा । ऐसी अवस्थासे राजा बोला, हे देवि ! मुझपर तू ने बड़ा अनुग्रह किया है । तेरी स्तुति मैं नहीं करसक्ता । जो कुछ संसारके पदार्त्थ हैं वे सब मायामय और मिथ्या हैं । तूने मुझे सत्पदको प्राप्तकियाहै इससे मैं तेरी क्या उपमाउं । हे देवि ! मैंने अबजाना है कि, मैंने राज्यका त्यागकियाहै और इस चुड़ालाके शरीर पर्यन्त सब तेरे चरित्रहैं । तूनेमेरे वास्ते बड़ेकष्टसहे और बड़े यत्नकिये । आना और जाना, शरीरका स्वांग धारना और उड़ना इत्यादिक तूने बड़ाकष्टपायाहै और बड़े यत्नसे मुझे संसार समुद्रसे पारकरके बड़ा उपकार किया । तू धन्य है और जितनी देवियां अरुंधती, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, पार्वती, सरस्वती और श्रेष्ठकुल की कन्या और पतिव्रता हैं उनसबसे तू श्रेष्ठ है । जिसपुरुषको पतिव्रता प्राप्त होती है उसके सबकार्य सिद्धहोकर बुद्धि,शान्ति,दया,शक्ति,कोमलता और मैत्री प्राप्तहोतीहै । हेदेवि! मैं तेरे प्रसादसे शान्तपदको प्राप्तभयाहूं । अबमुझे कोईक्षोभनहीं और ऐसा पद शास्त्रों और तपसेभी नहींमिलता । चुड़ालाबोली, हेराजन् । तू काहेको मेरीस्तुति करता है मैंने तो अपना कार्य कियाहै । हे राजन् ! तू राज्यका त्यागकर वनमें मोह अर्थात् अज्ञानको साथही लियेआयाथा इससे नीचस्थानमें पड़ा । जैसे कोई गङ्गाजलत्यागकर कीचड़के जलका अंगीकारकरे तैसेही तूने आत्मज्ञान और अक्षयपद का त्यागकरतपका अङ्गीकार कियाथा । जब मैंने देखा कि,तू कीचड़में गिराहै तो मैंने तेरे निकालनेके लिये इतने यत्नकिये हैं । हे राजन् ! मैंने अपनाकार्य किया है । राजा बोले हे देवि ! मेरायही आशीर्वाद है कि, जो कोई पतिव्रतास्त्री हों वे सब ऐसेकार्य

करें जैसे तूने किये हैं। जो पतिव्रता स्त्रीसे कार्य होता है वह और से नहीं होता। हे देवि अरुन्धती आदि जितनी पतिव्रता स्त्रियां हैं उनमें तू प्रथम गिनी जायगी। मैं जानताहूं कि;ब्रह्माजीने क्रोधकर तुझे इसनिमित्त उपजाया है कि; अरुन्धती आदि देवियोंने जो ग किया होगा उस गर्वको मिटावें। इससे, हे देवि! तू धन्यहै। तू मेरे ऊपर बड़ाउपकार किया है। हे देवि! तू फिर मेरे अङ्गसे लग। तूने मेरे साथ बड़ाउपकारकिया है। हे रामजी! ऐसे कहकर राजाने रानीको फिर कंठलगाया। जैसे नेवला और नेवली मिलें और मूर्त्तिकी नाईं लिखेहों। चड़ालाबोली,हे भगवन्! एक तो मुझसे यहकह कि, ज्ञानरूपआत्मा के एकअंश में जगत् लीनहोजा हैं; ऐसा तूहै सो आपको अब क्याजानता है? अबतू कहां स्थितहै? राज्यतुझे कुछ दिखाई देता है वा नहीं, और अबतुझे क्या इच्छाहै? शिखरध्वज बोले, हे देवि! जो स्वरूपतूने ज्ञानसे निश्चय किया है वही मैं आपको जानताहूं और शांतरूपहूं। इच्छा अनिच्छा मुझको कोई नहींरही—केवल शान्तरूपहूं। हे देवि! जिस पदकी अपेक्षा करके ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकी मूर्त्ते भी शे संयुक्त भासती हैं तिस पदको मैं प्राप्त भयाहूं; जहां कोई उत्थान नहीं; जो निष्िचित् है और जिसमें किंचिन्मात्रभी जगत् नहीं। मैं जो था वही हुआहूं, इससे और क्याकहूं। हे देवि! तू ने संसार समुद्रसे मुझे पारकिया है इससे तू मेरीगुरु है। ऐसे कहकर राजा चुड़ालाके चरणों पर गिर पड़ा और बो मुझे अज्ञान कदाचित् स्पर्श न करेगा। जैसे तांबा पारस के सङ्गसे सुवर्ण होकर फिर तांबा नहींहोता, तैसेही मैं तेरे प्रसाद से मोहरूपी कीचड़से निकलाहूं और फिर कदाचित् न गिरूंगा। अब मैं इस जगत्के सुखदुःखसे तुष्टहुआ ज्योंका त्यों स्थितहूं और राग द्वेषके उठाने वाला चित्तमेरा नष्ट होग है। अब मैं प्रकाशरूप अपने आपमें स्थितहूं। जैसे जलमें सूर्य्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है और जलके नष्टहुये प्रतिबिम्ब भी सूर्य्यरूप होता है, तैसेही मेराचित्तभी आत्मरूप हुआ है। अब मैं निर्वाणपदको प्राप्तहो सबसे अतीत हुआहूं और सर्व में स्थितहूं। जैसे आकाश सर्व पदार्थोंमें स्थित है और सर्व पदार्थोंसे अतीत है, तैसेही मैंभी हूं। 'अहं' त्वं' आदिक शब्द मेरे नष्टहुये हैं और मैं शांतिकोप्राप्त हुआहूं। अब मुझमें ऐसा तैसा शब्द कोई नहीं। मैं अद्वैत और चिन्मात्रहूं औरन सूक्ष्म; न स्थूलहूं। चुड़ाला बोली, हे राजन्! जो तू ऐसे स्थित हुआ है तो तू अब क्या करेगा और अब तुझे क्या इच्छा है? राजा बोले, हे देवि! न मुझे कुछ अंगीकार करनेकी इच्छा और न त्याग करनेकी इच्छा है, जो कुछ तू कहेगी सो करूंगा। तेरे कहनेको अंगीकार करूंगा और जैसे मणि प्रतिबिम्बको ग्रहण करती है तैसेही मैं तेरे वचनोंको ग्रहण करूंगा। चुड़ाला बोली, हे प्राणपति—हृदयके प्रियतम राजा!

अ- तू विष्णुहुआ है। यह बड़ा उत्तम कार्य्य हुआ है कि, तेरी इच्छा नष्टहुई है। हे राजन्। अब उचित है कि, तू और हम मोहसे रहितहोकर अपने प्राकृत आचारमें बिचरें। अखेद जीवन्मुक्त होकर अपने प्राकृत आचारको क्यों त्यागें। हे राजन्! जो अपने आचारको त्यागेंगे तो और किसीको ग्रहण करेंगे। इससे हम अपनेही आचारमें विचरते हैं और भोग मोक्ष दोनोंको भोगते हैं। हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत हुआ और सायंकालकी संध्या राजानेकी फिर शय्या का आरम्भकिया उसपर दोनों सोये और रात्रिभर परस्पर चर्चाही करते एक क्षणकी नाईं रात्रि बिताई॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचुड़ालाप्राकट्यंनामषडशीतितमस्सर्ग्गः ८६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे रात्रि व्यतीत होकर सूर्य्य की किरणेंफैलीं और सूर्य्यमुखी कमल खिल आये तब राजाने स्नानका आरम्भ किया और चुड़ाला ने मनके संकल्पसे रत्नोंकी मटकी रच हाथमें ली और उसमें गङ्गादिक सम्पूर्ण तीर्थोंका जल डाला और राजाको स्नान कराके शुद्ध किया तब राजाने संध्यादिक सर्वकर्म किये। तब चुड़ालाने कहा, हे राजन्! मोहको नाशकरके सुखसेही अपने राज्य कार्य्य करने चाहिये कि, जिससे आनन्द और सुखभोगें। राजा बोले, हे देवि जो तुझे सुख भोगनेकी इच्छाहो तो स्वर्गमेंभी हमारा राज्य है और सिद्धलोक में भी हमारा राज्य है इससे स्वर्ग्गमें बिचरें? चुड़ाला बोली, हे राजन्! हमको न सुख भोगनेकी इच्छाहै, न त्यागनेकी इच्छाहै; हमतो ज्योंके त्योंहैं। इच्छा और अनिच्छातब होतीहै जबआगे कुछपदार्थ भासताहै पर हमको तो केवल आकाश आत्मादृष्टि आता है; स्वर्गकहां और नरक कहां—हम सर्वदा एक रस स्थितहैं। हे राजन्! यद्यपि हमको कुछ नहीं तौभी जबतक शरीरका प्रारब्ध है तबतक शरीर रहता है इससे चेष्टा भी होनी चाहिये और चेष्टा करनेसे अपने प्राकृत आचारको क्यों न कीजिये कि; राग द्वेषसे रहित होकर अपने राज्यको भोगें? इससे अब उठो और अष्टवसुके तेज को धारकर राज्य करनेको सावधान हो। राजाने कहा बहुत अच्छा और अष्ट वसु के तेजसंयुक्त हो बोला, हे देवि! तू मेरी पटरानी है और मैं तेरा भर्त्ताहूं तौ भी तू और मैं एकहीहूं। रज्य तब होता है जब सेना भी हो इससे सेनाभी रच। इतना सुन चुड़ालाने सम्पूर्ण सेना और हाथी, घोड़े, रथ, नौबत, नगारे, निशान इत्यादिक राज्य की सामग्री रची और सब प्रत्यक्ष आगे आन स्थितहुईं। नौबत, नगारे, तुरियां और सहनाई बजने लगीं और जो कुछ राज्यकी सामग्री हैं वे अपने अपने स्थान में स्थित हुईं। राजाके शिरपर छत्र फिरने लगा और राजा और रानी हाथी पर आरूढ़ होकर मन्दराचल पर्वतके ऊपर चले और आगे पीछे सब सेनाहुई। राजा

ने जिसजिस ठौरपर तपकियाथा सो रानीको दिखाता गया कि, इस स्थानमें मैं इतने काल रहाहूं; इसमें इतना रहाहूं। ऐसे दिखाते दिखाते तीक्ष्ण वेगसे चले। मंत्री, पुरबासी और नगर बासी राजाको लेनेआये और बड़ेआदर संयुक्त पूजन किया। इसप्रकार दोनों अपने मन्दिरपहुंचे और आठ दिनतक राजासे लोकपाल और मण्डलेश्वर मिलनेको आतेरहे। इसके उपरान्तराजा सिंहासनपर बैठकर दोनों राज्य करनेलगे और समदृष्टिको लिये दशसहस्रवर्षतक राज्यकिया। फिर चुड़ाला संयुक्त जीवन्मुक्त होकर विचरे और दोनोंविदेहमुक्त हुये। हे रामजी! दशसहस्रवर्ष पर्यंतराजा और चुड़ालाने राज्यकिया और दोनों सत्तासमान में स्थितरहे। किसी पदार्थ में वे रागवान् न हुये और किसी से द्वेषभी न किया ज्योंके त्यों शांतपदमें स्थित रहे। जितनी राज्यकी चेष्टाहैं सो करतेरहे परन्तु अन्तःकरणसे किसीमें बंधमान न हुये—केवल आत्मपद में अचल रहे। फिर राजा और चुड़ाला विदेहमुक्तको प्राप्त हुये—जैसे आपको जानतेथे उसी के बल परमाकाश अक्षोभपद में जायस्थित हुये और जैसे तेलबिना दीपक निर्वाण होता है तैसेही प्रारब्धवेगके क्षयहुये निर्वाण पदमें प्राप्तहुये। हे रामजी ! जैसे शिखरध्वज और चुड़ाला जीवन्मुक्त होकर भोगों को भोगते बिचरे हैं तैसेही तुमभी रागद्वेषसे रहित होकर बिचरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजचुड़ालाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमस्सर्गः ८७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शिखरध्वजका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा; ऐसी दृष्टिका आश्रय करो जो पापको नाशकरती है और उसदृष्टि के आश्रयसे जिसमार्ग केद्वारा शिखरध्वज तत्पदको प्राप्तहुआ और जीवन्मुक्त होकर राज्यव्यवहार करता रहा तैसेही तुमभी तत्पदका आश्रयकरो और उसीके परायणहो आत्मपदको पाकर भोग और मोक्ष दोनों भोगो। इसीप्रकार वृहस्पतिकापुत्र कचभी बोधवान् हुआ है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जिसप्रकार वृहस्पति का पुत्र कच बोधवान् हुआ है सोभी संक्षेपसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कचबालक जब अज्ञातअवस्था को त्यागकर पद पदार्थको जाननेलगा तब उसने अपने पिता वृहस्पतिसे प्रश्नकिया कि, हे पिता ! इससंसार पिंजरेसे मैं कैसे निकलूं ? जितना संसार है वह जीवितसे बांधाहुआ है—जीवित अनात्म देहादिकों में मिथ्या अभिमान करनेको कहते हैं जो 'अहं'; 'त्वं' मानता है उस संसारसे कैसे मुक्तहोऊं ? वृहस्पति बोले, हे तात! इस अनर्थरूप संसारसे जीव तबमुक्त होता है जब सर्वकात्याग करता है। सर्व त्याग किये बिना मुक्ति नहीं होती; इससे तू सर्व त्यागकर कि, मुक्तहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इसप्रकार वृहस्पति ने कहातबकच ऐसे पावनवचनों

को सुन ऐश्वर्यका त्यागकर वनकोगया और एक कन्दरामें स्थित होकर तप करने लगा। हे रामजी! बृहस्पतिको कचके जाने से कुछखेद न हुआ क्योंकि; ज्ञानवान् पुरुष संयोग बियोगमें समभाव रहते हैं और हर्षशोकको कदाचित् प्राप्तनहीं होते। जब आठवर्ष पर्यंत उसने तपकिया तब बृहस्पतिने जाकरदेखा कि, कच एक कन्दरा में बैठा है तब वह कचकेपास आन स्थितहुआ और कचने पिताका पूजन गुरुकी नाईं किया। बृहस्पतिने कचको कण्ठलगाया और कच ने गद्गदवाणी सहित प्रश्न किया; हेपितः! आठवर्ष बीते हैं कि, मैंनेसर्व त्यागकिया है तौभी शांतिको नहीं प्राप्त हुआ? जिससे मुझे शांतिहो सो कहो। बृहस्पतिने कहा, हेतात! सर्वत्यागकर कि, तुझे शांतिहो। ऐसे कहकर बृहस्पति उठखड़ा हुआ और आकाशको चलागया। हे रामजी! जब ऐसे बृहस्पति कहकर चलागया तब कच आसन और मृगछाला को त्यागकर और वनकोचला और एक कन्दरामें जाकर स्थितहुआ। तीनबर्ष वहां व्यतीतहुये तो फिर बृहस्पति आये और देखा कि, कच स्थितहै। तब कच ने भलीप्रकार गुरुकी नाईं उनका पूजन किया और बृहस्पतिने कचको कंठलगाया तब कचनेकहा, हेपितः! अबतक मुझे शांति नहींहुई और मैंने सर्व त्याग भी किया क्योंकि; अपने पास कुछनहीं रक्खा। इससे जिसकरके मेरा कल्याणहो वहीकहो। बृहस्पतिने कहा, हेतात! अबभी सर्वत्याग नहींहुआ; सर्वपद चित्तका जब त्यागकरेगा तब सर्वत्याग होगा; इससे चित्तका त्यागकर। वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! ऐसेकहकर जब बृहस्पति आकाश को चलेगये तब कच विचारने लगा कि, पिताने सर्वपद चित्तको कहा है सो चित्त क्याहै। प्रथम वनके पदार्थोंको देखकर बिचारनेलगा कि, यहचित्तहै; फिर देखा कि, यह भिन्नभिन्न हैं इससे यह चित्तनहीं और नेत्रभी चित्तनहीं क्योंकि; नेत्र श्रवणनहीं और श्रवण नेत्रोंसे भिन्नहैं और श्रवणभी चित्तनहीं। इसीप्रकार सर्वइन्द्रियां चित्तनहीं क्योंकि; एकमें दूसरेका अभावहै इससे चित्तक्याहै जिसको जानकर त्याग करूं। फिर बिचार किया कि, पिताके पास स्वर्गमेंजाऊं। हेरामजी! ऐसे बिचारकर उठखड़ा हुआ और दिगम्बर आकारसे आकाशको चला। जब पिताके पास पहुंचा तब पिताका पूजन करकेबोला, हे तेंतीसकोटि देवताओंकेगुरु! चित्तका रूप क्याहै? उसका रूप कहिये कि, मैं उसका त्यागकरूं। बृहस्पति बोले, हेपुत्र! चित्त अहंकार का नाम है। वह अज्ञानसे उपजा है और आत्मज्ञानसे इसका नाशहोता है। जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्पभासता है और रस्सीके जाननेसे सर्पभ्रम नष्टहोजाताहै। इस से अहंभाव का त्यागकर और स्वरूपमें स्थितहो। कचबोले, हेपितः! अहंभाव का त्याग कैसेकरूं? 'अहं' तो मैंहीहूं फिर अपना त्यागकरके स्थित कैसेहोऊं। इसका त्याग करनातो महा कठिन है। बृहस्पति बोले, हेतात! अहंकारका त्याग करना तो

महासुगम है। फूलके मिलने में और नेत्रों के खोलने और मूंदने भी कुछ यत्न है परन्तु अहंकारके त्यागने में कुछयत्न नहीं। हेपुत्र! अहंकार कुछ वस्तु नहीं; भ्रमसे उठा है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पताहै; रस्सीमें सर्प भासता है; मरुस्थलमें जलकी कल्पनाहोती है और आकाशमें भ्रमसे दो चन्द्रमा भासते हैं; तैसेही परिच्छिन्न अहंकार अपने प्रमादसे उपजा है। आत्मा शुद्ध आकाशसेभी निर्मल है और देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे रहित सत्ता सामान्य चिन्मात्र है, उसमें स्थित हो जोतेरा स्वरूप है; तू आत्माहै, तुझमें अहंकार कदाचित्नहीं है। हेसाधो! आत्मा सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वमें स्थितहै उसमें अहंभाव किंचित्नहीं। जैसे समुद्रमें धूल कदाचित्नहीं तैसेही उस में अहंकार कदाचित् नहीं। आत्मामें न एक ग्रहण है और न दोग्रहण-केवल अपने आप में स्थित है और जो आकार दृष्टआते हैं वे चित्तके फुरनेसे हैं। चित्तके नष्ट ये आत्माही शेषरहता है; इससे अपने स्वरूपमें स्थितहो जिसमेंतेरा दुःखनष्टहोजावे। जोकुछ यह दृष्टिआता है उसमें भी आत्माहै। जैसे पत्र, फूल, फल सब बीजसे उत्पन्न होते हैं तैसेही सब आत्माकाचमत्कार है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रहस्पतिबोधनंनामअष्टाशीतितमस्सर्ग्गः ८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार ब्रहस्पतिने उत्तम उपदेश किया तब कच उसे सुनके स्वरूपमें स्थितहुआ और आत्मा और परिच्छिन्न अहंकारकी एकता को प्राप्तहोकर आत्मस्वरूप हुआ और जीवन्मुक्त होकर विचरा। हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्तहोकर विचरा और निरहंकारहुआ है तैसेही तुमभी निराशहोकर बिचरो और केवल अद्वैत पदको प्राप्तहो जो निर्मल और शुद्धहै और जिसमें एक और दो कहनानहीं बनता। तुम उसीपदमें स्थितहो। तुम दुःखकोई नहीं; तुम आत्माहो और तुममें अहंकारनहीं; तुम ग्रहणत्याग किसकाकरो। जो पदार्थहोहीनहीं तो ग्रहण त्याग क्याकहिये? हे रामजी! जैसे आकाशके वनमें फूलनहींहै तो उसका ग्रहणक्या और त्यागक्या; तैसेही आत्मामें अहङ्कार नहीं। जो ज्ञानवान् पुरुषहैं वे अहंकारका ग्रहण और त्यागनहीं करते। मूर्खको एकआत्मामें नानाआकार भासतेहैं इससे किसी का शोककरताहै और कहींहर्षकरता । तुम कैसे दुःखका नाश चाहतेहो? दुःखतो तुममेंहैही नहींतो तुमकैसे नाशकरने को समर्थहुयेहो? जोकुछ आकार भासते हैं वे मिथ्याहैं पर उनमें जो अधिष्ठानहै वह सत्है। मूर्ख मिथ्याकरके सत्की रक्षाकरतेहैं कि, मेरेदुःखनाशहों। रामजी बोले, हे भगवन्! तुम्हारे प्रसादसे मैं तृप्तहुआहूं और तुम्हारे वचनरूपी अमृतसे अघायाहूं। जैसे पपीहा एकबूंदको चाहताहै और मेघ कृपाकरके उसपर वर्षाकरके उसको तृप्तकरताहै तैसेही मैं तुम्हारी शरणको प्राप्तहुआ था और तुम्हारे दर्शनकी इच्छाबूंदकी नाईं करताथा पर तुमने कृपाकरके ज्ञानरूपी अमृतकी

बर्षाकी; उस बर्षासे मैं अघायाहूं। अब मैं शान्तपदको प्राप्तहुआहूं; मेरे तीनों ताप मिटगये हैं और कोई फुरना मुझमें नहींरहा। तुम्हारे अमृतरूपी बचनों को सुनता मैं तृप्तनहीं होता। जैसे चकोर चन्द्रमाको देखकर किरणोंसे तृप्तनहीं होता; तैसेही तुम्हारे अमृतरूपी बचनों से मैं तृप्तनहीं होता; इससे एक प्रश्नकरता हूं उसका उत्तर कृपाकरके दीजिये? हे भगवन्! मिथ्याक्या है और सत्क्या है जिसकी रक्षा करते हैं? वशिष्ठजी बोले,हेरामजी! इसपर एक आख्यान है सोकहताहूं जिसकेसुननेसे हँसीआवेगी। आकाशमें एक शून्यबनहै और उसमें एकमूर्ख बालकहै जोआप मिथ्या है और सत्यके रखनेकी इच्छाकरता है कि,मैं इसकीरक्षा करूंगा। अधिष्ठान जो सत्य है उसको वह नहींजानता। मूर्खताकरके दुःखपाता है और जानता है कि, यह आकाश है; मैंभी आकाशहूं;मेरा आकाश है, और मैं आकाशकी रक्षाकरूंगा। ऐसे बिचारकर उसने एकदृढ़ गृह इस अभिप्रायसे बनाया कि, इसकेद्वारा आकाश की रक्षाकरूंगा। हे रामजी! ऐसेबिचार करके उसने गृहकी बहुत बनावटकी और वहजो किसीठौरसे टूटे तो फिरबनाले। जबकुछ काल इसप्रकारबीता तोवह गृह गिरपड़ा तब वह रुदन करने लगा कि, हाय मेरा आकाश नष्टहोगया! जैसे एकऋतु व्यतीत हो और दूसरीआवे तैसेही कालपाकर जबवह गृहगिरगया तो उसके उपरान्त उसने एककुआं बनाया और कहनेलगा कि, यह न गिरेगा क्योंकि; इसकी भलीप्रकार रक्षाकरूंगा। हे रामजी! इसप्रकार कुयेंको बनाकर उसने सुखमाना। जबकुछ कालबीता तो जैसेसूखापात वृक्षसे गिरता है तैसेही वह कुआं भी गिरपड़ा और वह बड़े शोकको प्राप्तहुआ कि; मेरा आकाश गिरपड़ा और नष्ट होगया अब मैं क्याकरूंगा ऐसे शोकसंयुक्त जबकुछ कालबीता तब उसने एकखांहीं बनाई—जैसे अनाजरखने के निमित्त बनाते हैं—और कहने लगा कि, अबमेरा आकाश कहां जावेगा? मैं अब इसकी भलीप्रकार रक्षाकरूंगा। ऐसी खांहीं बनाकर उसने बहुत सुख माना और अति प्रसन्नहुआ पर जबकुछकाल पाकर वह खांहींभी टूट पड़ी क्योंकि; उपजी वस्तुका बिनाश होना अवश्यहै—तो फिर वहरुदन करनेलगा कि, मेरा आकाश नष्ट होगया। जब कुछकाल शोक संयुक्त बीता तो उसने एकघटबनाया और घटाकाशकी रक्षा करनेलगा। कुछकालमें वह घटभी जब नष्टहोगया तब उसने एक कुण्डबनाया और कुण्डाकाशकी रक्षा करनेलगा। कुछ कालके उपरान्त कुण्डभी नष्ट होगया तब शोकवान् हो उसने एक हवेली बनाई और कहनेलगा कि अबमेरा आकाश कहां जावेगा! मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करूंगा। ऐसा विचार कर, वह बड़े हर्षको प्राप्तहुआ पर जबकुछकाल व्यतीतहुआ तब वहहवेली भी गिरपड़ी तो वह दुःखको प्राप्तहो कहनेलगा कि, हाय! हाय!! मेरा आकाश नष्ट होगया और

मुझे बड़ा कष्टहुआ है। हे रामजी! आत्मज्ञान और आकाशके जाने विनावह मूर्ख बालकइसीप्रकार दुःखपातारहा। जो आपकोभी यथार्थजानता और आकाशको भी ज्योंका त्यों जानता तो यहकष्ट काहेको पाता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणंनामएकोननवतितमस्सर्गः ८९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह मिथ्यापुरुष कौनथा; जिसकी रक्षाकरताथावह आकाशक्याथा और जो गृह,कूपआदिक बनाताथा सो क्याथा यहप्रकटकरके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मिथ्यापुरुष तो अहंकार है जो संवेदन फुरने से उपजा है;आकाश चिदाकाश है उसे वह उपजा जानताहै कि, मैं आकाशकी रक्षाकरूं और आकाश,गृह,घटादिक जो कहा सो देह है। उसमें आत्मा अधिष्ठान है उसआत्माकी रक्षाकरनेकी इच्छा वह मूर्खतासे करताहै और आपको नहीं जानता कि, मेरास्वरूप क्या है। उसअपने स्वरूपको न जानने से वह दुःखपाता है। आप मिथ्या है और मिथ्या होकर आकाशको कल्पकर रखनेकी इच्छा करता है अर्थात् देहसे देहीं के रखनेकी इच्छाकरता है कि, मैं जीता रहूं पर देहतो कालसे उपजा है–फिरदेह के नष्टहोनेसे शोकवान् होता है और अपने वास्तव स्वरूपकोनहीं जानता जिसकानाश कदाचित् नहीं होता ऐसे बिचारसे रहित क्लेशपाताहै हे रामजी! जिसमें भ्रम उपजता है उसकी अधिष्ठान सत्तानहीं होती। सर्वका अपनाआप आत्मा है सो कदाचित् नाश नहींहोता उसमें मूर्खता से अहंरूप संसारको जीव कल्पता है। अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति और दृश्य ये सब इसके नाम हैं पर मिथ्या हैं और इसका अत्यन्त अभाव है; अनहोताही उदय हुआ है और क्षत्रिय,ब्राह्मण इत्यादि वर्ण और गृहस्थादि आश्रम, मनुष्य, देवता, दैत्य इत्यादिक की कल्पना करता है, हे रामजी! यह कदाचित् हुआ नहीं, न होगा और न किसीका किसीको है केवल अबिचार सिद्ध है और बिचार कियेसे कुछ नहीं रहता। जैसे रस्सी के अज्ञान से जीव सर्प कल्पता है और जानने से नष्ट होजाता है; तैसेही स्वरूपके प्रमादसे अहंकार उदय हुआ है। तुम्हारा स्वरूप आत्मा है जो प्रकाशरूप, निर्मल, विद्या–अविद्याके कार्यसे रहित; चेतनमात्र और निर्विकल्पहै। वह ज्योंका त्यों स्थित है; अद्वैतहै और प्रमाणको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता आत्मतत्त्व मात्रहै उसमें संसार और अहङ्कार कैसे हो? सम्यक्दर्शी को आत्मासे भिन्नकुछ नहीं भासता और असम्यक् दर्शी को संसार भासताहै, वह पदार्थोंको सत् जानता है; संसारको वास्तव जानताहै और अपने वास्तव स्वरूपको नहीं जानताहै कि, मैं कौनहूं। इसके जानेसे अहंकार नष्ट होजाताहै। जितनीकुछ आपदाहै उसकीखानि अहंकारहै और सर्वताप अहंकार

सेही उत्पन्न होते हैं इसके नष्टहुये अपने स्वरूपमें स्थितहोताहै। और विश्वभी आ-त्माका चमत्कारहै–भिन्ननहीं, जैसे समुद्रमें पवनसे नानाप्रकारके तरङ्ग और सुवर्णमें नानाप्रकारके भूषण भासते हैं सो वही रूपहै–भिन्न कुछनहीं तैसेही आत्मासे विश्व भिन्न नहीं। सुवर्ण परिणामसे भूषण और समुद्र परिणामसे तरङ्ग होताहै पर आत्मा अच्युतहै और परिणामको नहीं प्राप्तहोता;इससे समुद्र और सुवर्णसेभी विलक्षणहै। आत्मामें संवेदनसे चमत्कारमात्र विश्व है सो आत्मस्वरूप है, न कदाचित् जन्मता है, न मृत्युको प्राप्तहोताहै; न किसी कालमें और न किसीसे मृतहोताहै ज्योंका त्यों स्थितहै। जन्म मृत्युतो तबहो जब दूसराहो पर आत्मातो अद्वैतहै। जिसको एकनहीं कहसक्ते तो दूसरा कहांहो इससे प्रत्येक आत्मा अपना अनुभवरूपहै उसमें स्थित हो कि दुःख और ताप सबनष्ट होजावें। वह आत्माशुद्ध और निराकारहै। हे राम जी! जो निराकार और शुद्धहै उसे किससे ग्रहण कीजिये, कैसे रक्षा करिये और किसकी सामर्थ्य है कि, उसकी रक्षाकरै। जैसे घटके नष्टहुये घटाकाशनष्ट नहींहोता तैसेही देहके नष्टहुये देही आत्माका नाशनहींहोता। आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है और जन्ममरण पुर्यष्टकासे भासते हैं। जब पुर्यष्टका देहसे निकल जाती है तब मृतक भा-सताहै और जब पुर्यष्टका संयुक्तहै तब जीवत् भासताहै। आत्मा सूक्ष्मसे सूक्ष्म है और स्थूलसे स्थूलहै उसकाग्रहण कैसेहो और रक्षा कैसे करिये। स्थूलभी उपदेशके जतानेके निमित्त कहते हैं आत्मातो निर्वाच्य और भाव अभावरूप संसारसे रहितहै। वह सबका अनुभव रूपहै उसमें स्थितहोकर अहंकारका त्यागकरो और अपने स्व-रूप प्रत्येक आत्मामें स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमिथ्यापरुषोपाख्यानसमाप्ति
नामनवतितमस्सर्ग्गः ९० ॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! यह संसार आत्मरूपहै और जैसे इसकी उत्पत्तिहुई है सोसुनो। निर्विकल्प शुद्धआत्मामें चेतन लक्षण मनसे विवर्त्त स्थित हुआहै और आगे उसने जगत् कल्पनाकी है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग; सुवर्णमें भूषण; रस्सीमें सर्प और सूर्यकी किरणोंमें जलाभासहै तैसेही आत्मामें विवर्त्तमनहै पर आत्मासे भिन्न नहीं। जिसको तरङ्गका ज्ञानहै उसको समुद्र बुद्धिनहीं होती, वह तरङ्गको और जा-नताहै; जिसको भूषणका ज्ञानहै वह सुवर्ण नहीं जानता; सर्पके ज्ञानसे रस्सीको नहीं जानता और जलके ज्ञानसे किरणोंको नहीं जानता; तैसेही नानाप्रकारके विश्वके ज्ञानसे जीव परमात्माको नहीं जानता। जैसे जिस पुरुषने समुद्रको जानाहै कि, जल है उसको तरङ्ग और बुद्बुदेभी जलही भासते हैं जलसे भिन्नकुछ नहीं भासता और जिसको रस्सीका ज्ञानहुआहै उसको सर्पबुद्धि नहींहोती; जिसको सुवर्णका ज्ञानहुआ

है उसको भूषण बुद्धिनहीं होती और जिसको किरणोंका ज्ञानहुआहै उसको जलबुद्धि नहीं होती ऐसापुरुष निर्विकल्पहै तैसेही जिस पुरुषको निर्विकल्प आत्माका ज्ञान हुआहै उसको संसारभावना नहीं होती—उसको ब्रह्महीं भासताहै। ऐसाजो मुनीश्वर है वह ज्ञानवान् है। हेरामजी! मनभी आत्मासे भिन्न नहीं। आदि परमात्मासे 'अहं' 'त्वं' आदिकमें मनफुरकर मात्रपदमें जो अहंभाव हुआ सो उत्थान है। उससे बहिर्मुख होनेसे अपनेनिर्विकल्प चिन्मात्र आत्मस्वरूप का प्रमादहुआहै और उसप्रमाद होनेसे आगे विश्वहुईहैं। मनभी कदाचित् उदय नहीं हुआ; आत्मास्वरूपहै इससे उदय हुयेकी नाईं भासता है। मन और संसार सत्भी नहीं और असत्भी नहीं; जो दूसरी वस्तुहो तो सत् अथवा असत् कहिये पर आत्मा तो अद्वैत ज्यों का त्यों स्थित है और उसका विवर्त्तमन होकर फुराहै। वहीमन कीटहै, और वही ब्रह्माहै। फिर ब्रह्माने मनोराजकरके स्थावर जंगम सृष्टिकल्पीहै सो न सत्यहै और न असत्य है। हे रामजी! सर्व प्रपञ्च मनने कल्पाहै और उसीने नानाप्रकारके विकार रचेहैं। मन,बुद्धि,चित्त,अहंकार,जीव सब मनके नामहैं। जब मननष्ट होजावे तब न संसारहै और न कोई विकारहै। यदि मनदृश्यसे मिलकर कहे कि,मैं संसारका अन्तलूं तोकदाचित् अन्तन पावेगा क्योंकि संसरनाही संसार है तो फिर संसरने संयुक्त संसार का अन्त कहां? अन्तलेनेवाला वाणीसे आगे फुरकर देखताहै—जैसे कोईपुरुष दौड़ता जावे और कहे कि,मैं अपनी परछाहीं का अन्तलूं कि,कहांतक जातीहै तो,हेरामजी! जबतक वह पुरुष चला जावेगा तब तक परछाहींका अन्तनहीं होता और जब ठहर जाताहै तब परछाहीं का अन्त होजाताहै;तैसेही जब तक फुरना है तबतक संसारका अन्त नहींहोता और जब फुरना नष्ट होजाताहै तब संसार का भी अन्तहोताहैऔर आत्माही दृष्टिआताहै और संसारका अत्यन्तअभाव होजाताहै पर जो स्फूर्त्तिसंयुक्त देखेगा तो संसारही भासेगा। हेरामजी! जिसपदार्थको मन देखता है वह पदार्थ पूर्व कोई नहीं चित्तके फुरनेसे उदय होता है। जब चित्तफुरा कि यह पदार्थ है तब आगे पदार्थ हुआ और फुरनेसे रहित होकर देखे तो पदार्थ कोई नहीं भासताकेवल शांत पदहै। हे रामजी! अहंकारका त्यागकरके यह जो नाना प्रकार की कल्पना है उससे रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदमें स्थितहो। अहंकारनामरूप है और देह और वर्णाश्रम में मायासे कल्पित है। जब उससेरहित होकर देखोगे तब केवल सत्चिदानन्द आत्मपदशेष रहेगा और जब उसपदको अपना आप जानोगे तब तुमहीं सर्वात्मा होकर विचरोगे और तुमको कोई दुःखन रहेगा। हेरामजी! मनही संसार है और मनही ब्रह्मासे कीट पर्यंत है; मनही सुमेरु है और मनहीतृण है और विश्वरूप होकर स्थितहुआ है और वहभी आत्मासे भिन्ननहीं। जैसे फलहीमें सम्पूर्ण वृक्ष हैं

तैसेहीमनआत्मस्वरूपहै;आत्मासे भिन्नमन कुछवस्तु नहीं। ऐसेजानकर आत्मस्वरूप होगे यह जो बन्ध और मोक्ष संज्ञाहै इनका त्यागकर,न बन्धकी वांछाकरो और न मोक्षकी इच्छाकरो। इसकल्पनासे रहितहो; ऐसेनहोवे कि, मुक्तहो और यह बन्धहै; केवल सत्तासमान आत्मपदमें स्थितहो। यहीभावना करो जिसमें तुम्हारा सर्वदुःख नष्टहोजावे। ऐसा जो पुरुषहै उसका चित्तभावनहीं रहता उसको सर्वआत्मा भासता है। जैसे जिसपुरुषने सूर्यकोजाना है उसको किरणें भी सूर्यही दृष्टि आती हैं तैसेही जिसको आत्माका साक्षात्कार हुआ है उसको जगत्भी आत्मस्वरूप भासता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनाम
एकनवतितमस्सर्गः ९१॥

वशिष्ठजीबोले, हेरामजी! महाकर्त्ता,महाभोक्ता और महात्यागी होरहो और सब शङ्काओं को त्यागकर निरन्तर धैर्य्य धारकर स्थितहो। रामजीनेपूछा, हे भगवन्! महाकर्त्ता; महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपाकरके कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्नपर एक आख्यान है सो सुनिये। एकसमय सुमेरु पर्व्वतकी उत्तरदिशाके शिखर से सदाशिवजी आये, जो चन्द्रमाको मस्तक में धारे थे और गणों संयुक्त गौरी बायें अङ्ग में जिनके साथथीं। तब भृङ्गी गण ने जो महातेजवान् था और जिसे आत्माजिज्ञासा उपजी थी हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि, हे भगवन्! देवों के देव! यह संसार मिथ्याभ्रमहै; इसमें मैं सत्य पदार्थ कोई नहीं देखता, यहसदा चलरूप भासता है और जो सत्पदार्थ है उसको मैं नहीं जानता; मेरे तापनष्ट नहींहुये और मैं शांतनहीं हुआ इससे आपको दुःखीदेखताहूं। जिससे शांतिहो सो कृपाकरके कहो जिसमें खेदसे रहितहोकर मैं चेष्टामें बिचरूं। परखेदसे रहित तब होता है जब कोई आसरा होता है। संसार तो मिथ्या है मैं किसका आसराकरूं? इससे मुझसे वह कहिये कि, जिसका आश्रयकिये मेरेदुःख नष्टहों? ईश्वर बोले, हे भृंगी! तुम महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी होरहो और सर्व शङ्काओं को त्यागकर निरन्तर धैर्यका आश्रयकरो; इससे तुम्हारेदुःख नष्टहोंगे। हे रामजी! ऐसे भृंगीगण ने जिसको शिवजी ने पुत्रकरके रक्खा है श्रवण करके प्रश्न किया है कि, हे परमेश्वर! महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपाकरके ज्योंकात्यों मुझसे कहिये? ईश्वर बोले, हे पुत्र! सर्वात्मा जो अनुभव रूप है उसका आश्रय करके बिचरो कि, दुःखसे रहित हो। इन तीनों वृत्तियों से तुम्हारे दुःख नष्टहोजावेंगे। जो कुछ शुभक्रिया आप्राप्तहो उसको शङ्कात्यागके करे वह पुरुष महाकर्त्ता है; धर्म अधर्म क्रिया जो अनिच्छित प्राप्तहो उसको राग द्वेषसे रहितहोकर जो करे; वह पुरुष महाकर्त्ता है; जो पुरुष मौनी, निरहङ्कार, निर्म्मल

और मत्सरसे रहितहै वह पुरुष महाकर्त्ताहै;जो अनिच्छित प्राप्तहुये का त्याग न करे और जो नहीं प्राप्तहुआ उसकी बांछा न करे वह पुरुष महाकर्त्ताहै; जो पुण्य पाप क्रिया अनिच्छित प्राप्तहों उनको अहंकारसे रहितहोकर करे,पुण्यक्रिया करनेसे आप को पुण्यवान् न माने और पापकियेसे पापी न माने सदा आपको अकर्त्ताजाने वह पुरुष महाकर्त्ता है; जो सर्वत्र में विगतस्नेह है; सत्यवत् स्थित है और निरिच्छित वर्त्तताहै वह महाकर्त्ताहै। जो दुःखके प्राप्तहुये शोक नहींकरता और सुखके प्राप्तहुये से हर्षवान् नहींहोता स्वाभाविक चित्त समताको देखताहै वह कदाचित् विषमताको नहीं प्राप्तहोता । सुख की जो भिन्न भिन्न विषमता हैं इससे जो रहित है वह पुरुष महाकर्त्ताहै और जिस पुरुषने सुख दुःखका त्यागकियाहै वह पुरुष महाकर्त्ताहै। हे भृंगी! जो पुरुष प्राप्तहुई वस्तुको रागद्वेषसे रहित होकर भोगता है सो महाभोक्ता है और जो बड़ाकष्ट प्राप्तहो उसमें भी द्वेष नहींकरता और बड़े सुखकी प्राप्तिमें हर्ष-वान् नहींहोता वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो बड़े राज्यके सुख भोगनेमें आपको सुखी नहीं मानता और राज्यके अभावहोने और भिक्षामांगने में आपको दुःखीनहीं मा-नता सदा स्वरूपमें स्थितहै वह महाभोक्ताहै। जो मान, अहंकार और चिन्तना से रहित केवल समतामें स्थितहै वह महाभोक्ताहै और जो कोईकुछदे तो आपको लेने वालानहीं मानता और शुभक्रियामें भोक्ताहुआ आपको कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो मीठा, खट्टा, तीक्ष्ण, सलोना, कटु छहों रसोंके भोगने में समचित्त रहताहै और समजानता है वह महाभोक्ता है। जो रसवान् पदार्थ प्राप्तहुये से हर्षवान् नहींहोता और बिरसके प्राप्तहुये से द्वेषवान् नहींहोता ज्योंकात्यों रहता है और जैसा बुराभला प्राप्तहो उसको दुःखसे रहित होकर भोगताहै वह पुरुष महाभोक्ता है। जो कुछ शुभ,अशुभ,भाव,अभाव क्रियाहै उसके सुखदुःखसे चलायमान नहींहोता सो पुरुष महाभोक्ताहै और जिसको मृत्युका भयनहीं और जीनेकी आस्थानहीं और उदय अस्तमें समानहै वह महाभोक्ताहै। जोबड़ेसुख प्राप्तमें हर्षवान् नहींहोता और दुःखकी प्राप्तिमें शोकवान् नहीं ज्योंकात्यों रहता है वह महाभोक्ता है। जोकुछ अनि-च्छित प्राप्तहो उसको कर्त्ताहुआ अहंकारसे जो रहितहै वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो पुरुष शत्रु,मित्र और सुहृदमें समबुद्धिरखताहै और विषमताको कदाचित् नहींप्राप्त होता वह पुरुष महाभोक्ताहै।जोकुछ शुभ,अशुभ,दुःख,सुख प्राप्तहो उसको जो धार लेताहै कदाचित् बिषमताको नहीं प्राप्तहोता—जैसे समुद्रमें नदियां प्राप्तहोतीहैं उनको धारकर वह समरहता है; तैसेही ज्ञानवान् शुभ अशुभको धारकर सम रहताहै। जो संसार, देह इन्द्रियां और अहंकारकी सत्ताको त्यागकर स्थितहुआहै और जानताहै कि, 'न मैं देहहूं'; 'न मेरीदेहहै' मैं इनका साक्षीहूं ऐसी वृत्तिके धारनेवाला महात्यागी

है और जो सर्वचेष्टा करता है और रागद्वेषसे रहित है वह महात्यागीहै। जो शुभ अशुभ प्राप्तहुयेको अहंकारसे रहित होकर करता है वह महात्यागीहै और जो मन, इन्द्रियां और देहभी इच्छासे रहितहुआहै वह सर्व चेष्टाभी करताहै पर महात्यागी है। जो पुरुष समचित्त, इन्द्रियजित् और क्षमावान्है वह महात्यागीहै। हेरामजी! जिस पुरुषने धर्म अधर्मकी देह और संसारके मद,मान, मनन इत्यादिक कल्पनाका त्याग किया है वह महात्यागी है। हे रामजी! इसप्रकार सदाशिवजी ने जो हाथ में खप्परलिये, बाघाम्बरओढ़े और चन्द्रमा मस्तकमेंधारेहुये परम प्रकाशरूपहैं भृङ्गीगणको उपदेश किया और जैसे भृङ्गीगण विचरा तैसेही तुम भी विचरो तो तुम्हारे सब दुःख नष्ट होंगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाकर्त्राद्युपदेशोनामद्विनवतितमस्सर्गः ९२॥

रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! जो आपने उपदेश किया वह मैं समझगया। आपने आगे उपशम प्रकरणमें उपदेश कियाथा कि,आत्मा अनन्त और शुद्धहै तब मैंनेप्रश्न किया था कि,जोआत्मा अनन्त और शुद्धहै तो यह कलना कैसे उपजीहै—जैसे समुद्र निर्मलहै उसमें धूड़कैसेहो—तो आपने प्रतिज्ञाकी थी कि, "सप्रश्नका उत्तर सिद्धांत कालमें कहेंगे सो मैं अब सिद्धान्त का पात्रहूं" मुझसे कहिये। जैसे स्त्रीभर्त्तासे प्रश्न करती है और भर्त्ता कृपाकरके उपदेश करता है तैसेही मैं आपकी शरणहूं कृपाकरके मुझे उत्तर दीजिये;क्योंकि;आशा और तृष्णाके फांसमेरे टूटेहैं और आशारूपी जाल से मैं निकलाहूं। मेरे हृदयसे संशयरूपी धूड़ उठगई है उसको बचनरूपी बर्षासे शांत करो और मेरे हृदयमें अन्धकार है उसे बचनरूपी क्रीड़ासे निवृत्तकरो। आपके वचनरूपी अमृतसे मैं तृप्तनहीं होता। हे भगवन्! गुरुके उपदेश किये बिना अपने विचार ज्ञानसे नहीं शोभता। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष शांतिमान्; क्षमावान् और इन्द्रियजित् है और जिसने मनके संकल्प विकल्पको जीता है वह सिद्धांत का पात्र है। हे रामजी! तुम अब सिद्धांतके पात्रहो इससे उपदेश करताहूं। जो पुरुष रागद्वेष सहित क्रियामें स्थित है और इन्द्रियोंके सुखसे जिसको आराम है वहसिद्धांतके वाक्य"अहंब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" को सुनकर भोगोंमें स्थित होता है और अधोगति पाताहै क्योंकि; उसको निश्चय नहीं होता और उसका हृदय मलिन है इससे इन्द्रियोंके सुख करके आपको सुखी मानता है और नीच स्थानोंको प्राप्त होता है। जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुआ है उसको "अहंब्रह्मास्मि"और"सर्वब्रह्म" के सुननेसे शीघ्रही भावनासे आत्मपदकी प्राप्ति होती है। तुम ऐसे जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुये हैं उनको स्वरूपकी प्राप्ति सुगम होतीहै और जिनका अन्तःकरण मलिन है उनको प्राप्तहोना कठिनहै।

जैसे भूने बीजको पृथ्वीमें बोइये तो उसका अंकुर नहीं होता तैसेही इन्द्रिया रामी पुरुषको आत्माकी प्राप्ति नहीं होती और तु सारिखे जिनका हृदय शुद्ध है उनको ज्ञानकी प्राप्तिहोती है और वेही इन बचनों को पाकर शोभते हैं। जैसे बर्षाकाल में धान पृथ्वीमें बर्षासे शोभापाते हैं तैसेही सि ांत बचनोंको पाकर वे ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाशते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष ऊंची बांह करके कह हैं और सब शास्त्र भी कहते हैं उन सर्व शास्त्रोंके सिद्धांतोंको और उनके दृष्टांतोंको मैं जानताहूं; इससे सर्व सिद्धांतोंकासार कहताहूं तुम सुनो तो जो तुम्हारा स्वरूपहै उसको जानोगे। हे रामजी! जिसको अभ्यास करके एकक्षणभी साक्षात्का हुआ है वह फिर गर्भमें नहीं आता और उसको सत् असत्में कुछ भेद नहीं होता संवेदनमें भेद है। जैसे जाग्रत् और स्वप्नके सूर्यके प्रकाश दोनों समान हैं; जाग्रत्में जाग्रत् सूर्यका प्रकाश अर्थाकार होता है और स्वप्नेमें स्वप्नेका सूर्य अर्थाकारहोता है पर प्रकाश दोनोंका सम है और संवित् भिन्न है। स्वप्नेको मिथ्या जानता है और जाग्रत्को सत् जानता है तो संवेदनसे भेदहुआ स्वरूप से भेद कुछ न हुआ। जैसे मनसे एक बड़ा पर्वत रचिये तो संकल्पसे दिखता है और एक पर्वत बाहर प्रत्यक्ष दिखता है तो संवित् का भेद हुआ स्वरूप दोनोंका तुल्य है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग हैं तो स्वरूपमें जल और तरङ्गों का भेद कुछ नहीं पर जिसको जलका ज्ञाननहीं सो तरङ्गही जान है, इससे संवित् में भेद है; तैसेही स्वरूपमें सत् असत् तुल्य है। वास्तवमें कुछ भिन्न नहीं केवल शांतरूप आत्मा है और शब्द अर्थ संवेदनमें है। शब्द अर्थात् नाम और अर्थ याने नामी संवेदन फुरनेसे हैं; जब फुरना नष्टहोजावेगा तब सर्व अर्थभी आत्माही भासेगा। जगत्की सत्ता तबतक है जबतक आत्माका प्रमाद है और प्रमाद तबतक है जबतक अहंभाव है। जब अहंभाव नष्टहो तब केवल आत्मा शेषरहेगा जो शुद्ध, विद्या-अविद्याके कार्य्यसे रहित और क ाचित् स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! अविद्याकी दो शक्ति हैं; एक आवरण और दूसरी बिक्षेप। आत्माके न जानने का नाम आवरणहै और कुछ जाननेको बिक्षेप कहते हैं। वह आत्मा सदा ज्ञान रूपहै, उसको आवरण कदाचित् नहींहोता और अद्वैत है, उससे कुछ भिन्न नहीं बना-इसीसे वह शुद्ध, केवल और ज्ञानमात्र है। हे रामजी! ो आत्ममात्र और चिन्मात्र है और जिसमें अहंका उत्थान नहीं केवल निर्वाण पद है और जहां एक और द्वैत कहनाभी नहीं केवल अपने आपमें स्थितहै उसमें कलनारूपी धूल कहां हो? रामजीने पूछा. हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्म है तो मन, बुद्धि आदिक कौन हैं जिनसे तुम यह शास्त्र उपदेश करतेहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्द हैं परमार्थमें कोई कल्पना नहीं। यह मन, बुद्धि आदिक कुछबस्तु नहीं; ब्रह्म-

सत्ताही अपने आपमें स्थित है । जैसे तरङ्गजल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं तैसेही मनादिक हैं । आत्मतत्त्व नित्य, शुद्ध और सन्मात्र है; नाहकी नाईं स्थित है । हे रामजी ! ऐसे आत्मामें संसार अविद्या का नाम आदिक कैसे हो ? आत्मा ब्रह्म है उससे भिन्न कुछनहीं । वह सर्वका अधिष्ठान, अविनाशी और देशकाल वस्तु के परिच्छेदसे रहित है । इसीसे ब्रह्म है । हे रामजी ! ऐसा जो अपना आप आत्मा है उसीमें स्थितहो । यह जगत् जो दृष्टि आता है सो सर्व चिदाकाशहै भिन्ननहीं । जैसे स्वप्नेमें विश्व देखताहै सो अनुभवमात्रहै तैसेही जाग्रत् विश्वभी आत्मरूपहै । ऐसाजो तुम्हारा शुद्ध, नित्यउदित और अविनाशी रूपहै उसमें जब स्थितहोगे तब कलना जो तुमको भासती है सो नष्ट होजावेगी ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकलनानिषेधोनामत्रिनवतितमस्सर्ग्गः ९३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! संसारकाबीज अहंकारहै । जब अहंभाव होताहै तब संसारहोताहै पर अहंकार कुछ वस्तुनहीं भ्रमसे सिद्धहुआहै । जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में पिशाच कल्पताहै सो पिशाच कुछवस्तु नहीं उसके भ्रमसे होताहै तैसेही अहंकार कछवस्तु नहीं स्वरूपके भ्रमसे होताहै । हे रामजी ! जो वास्तवकुछ वस्तु नहीं तो उसके त्यागनेमें क्यायत्नहै ? तुममें अहंकार वास्तवनहीं है, तुम केवल शांतरूप चेतनमात्रहो और उसमें अहंभावहोना उपाधिहै उससे सुमेरुपर्व्वत आदिकजगत् बनजाता है सो संवेदनरूप है । चित्तरूपी पुरुष चेतनके आश्रय से फुरता है और विश्वकल्पताहै । जैसे रस्सीकेआश्रयसे सर्पफुरताहै तैसेही चेतनकेआश्रय विश्व और चित्त फुरते हैं सो आत्मासे भिन्न नहीं । अहंकारहुयेकी नाईं हुआ है कि, 'मैंहूं' ऐसा जो अहंभावहै सो दुःखकी खानिहै । सर्व आपदा अहंकारसे होती है । जब अहंकार नष्ट होगा तब सब दुःखभी नष्ट होंगे । हे रामजी ! जैसे सूर्य्यके आगे बादल होतेहैं तो प्रकाश नहीं होता और जब बादलदूर होते हैं तब प्रकाशवान् भासताहै और कमल प्रफुल्लित होतेहैं; तैसेही आत्मरूपी सूर्य्यको अहंकाररूपी बादलका आवरण हुआहै मायाके किसी गुणसे मिलकर कुछ आपको मानने को अहंकार कहते हैं । जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होगा तब आत्मरूपी सूर्य्य का प्रकाशहोगा और ज्ञानवान् रूपी कमल उस प्रकाशको पाकर बड़े आनन्दको प्राप्तहोंगे । हे रामजी ! इससे अहंकारके नाशका उपाय करो जो तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें । वहकौन पदार्थ है जो उपाय किये सिद्ध नहींहोता ? अहंकार के नाशका उपाय करिये तो वहभी नष्ट होजाता है । अहंकारके नष्ट करनेका यह उपायहै कि, सत् शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्या के वारम्वार अभ्यास और सन्तके संगद्वारा कथाकी परस्पर चर्चा करने से अहंकार नष्ट होजाता है । जैसे पानीभरने की रस्सी से पत्थरकी शिला घिस जाती है

तैसेही ब्रह्मविद्याके अभ्याससे अहंकार नष्ट होता है बल्कि, शिलाके घिसनेमें तो कुछ यत्नभी है पर अहंकारके त्यागनेमें कुछ यत्ननहीं। हे रामजी! सदा अनुभवरूप जो आत्मा है उसका विचार करो कि, मैं कौनहूं? इन्द्रियां क्या हैं? गुणक्याहै और संसार क्या है? ऐसे विचारसे इनका साक्षीभूतहो कि,मुझमें 'अहंत्वं' कोईनहीं। इससे तुम अहंकार का नाश करो और शुद्धहो। मेराभी आशीर्वाद है कि, तुम सुखी हो जाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब कलना कोई न फुरेगी केवल सुषुप्तकी नाईं स्थितहोगे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जो आपका अहंकार नष्ट हुआहै तो प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे दिखते हो और जो अहंकार नहीं है तो सर्वशास्त्र और ब्रह्म विद्या कहांसे उपजे हैं और उपदेश कैसे होताहै?उपदेश में तो अन्तः करण चारोंसिद्ध होते हैं। प्रथम जब उपदेश करनेकी इच्छा होती है तब अहंकार सिद्ध होता है; जब स्मरण होता है कि, उपदेश करूं तब चित्तभी चैत्यसे सिद्ध होता है; फिर यह उपदेश करिये यह न करिये, ऐसे संकल्प कियेसे मनकी सिद्धि होती है। फिर जब निश्चय किया कि, यह उपदेश करिये तब बुद्धिकी सिद्धि होती है। इससे चारों अन्तःकरण सिद्ध होते हैं आप कैसे कहते हैं कि, अहंकार नष्ट होजाता है और सर्व चेष्टा होती हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मस्वरूपमें अहंकार आदिक अन्तःकरण और इन्द्रियां कल्पित हैं वास्तव में कुछनहीं। शास्त्रउपदेशभी कल्पना है, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है उससे सवेदन करके अहंकारादिक दृश्यफुरे हैं और उसके निवृत्त करनेको प्रवर्त्तते हैं। जैसेरस्सी भ्रमसे सर्पभासताहै तो उसके भयसे आदमी दुःख पाता है पर जब कोई कहे कि, यहसर्प नहीं रस्सी है तू भयमतकर, इसको भलीप्रकार देख; तो उसके उपदेशसे वह भलीप्रकार देखता है तबउसकाभय और शोक निवृत्त होजाता है क्योंकि, उसको भ्रमसे सर्पभान हुआथा सोभी मिथ्या है और उसको रस्सीका उपदेशकरनाभी मिथ्याहै क्योंकि, रस्सी तो आगेसे सिद्धहै उपदेशसे सिद्ध नहीं होती; तैसेही रस्सी की नाईं आत्माहै उसकी निवृत्ति जो चेतन लक्षण है उसको अहंभाव कहते हैं और उसअहंकारके निवृत्त करनेको शास्त्रहुये हैं। आत्मरूपी रस्सीके प्रमादसे अहंकाररूपी सर्प फुरा है और उसके निवृत्त करनेको शास्त्र उपदेश हुये हैं और आत्माको जतादेते हैं। जब भलीप्रकार रस्सीकीनाईं आत्माको जाना तब सर्पकी नाईं जो परिच्छिन्न अहंकार है सो नष्ट होजाता है। जैसे नेत्रका मैल जब अञ्जनके लगानेसे नष्ट होजाता है तब ज्योंकेत्यों निर्मलनेत्र होतेहैं; तैसेही अज्ञानरूपी मैल गुरु और शास्त्रके उपदेशरूपी सुरमें से नष्ट होजाता है। वास्तव में न कोई अहंकार है और न शास्त्र है क्योंकि; आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है परन्तु तौभी गुरुशास्त्रसे जानाजाताहै। हे रामजी! ज्ञानवान्‌केसाथ चारों अन्तःकरण

और इन्द्रियांभी दृष्टि आती हैं पर उनमें सत्यता नहीं होती—जैसे भूना बीज दृष्टि आता है परन्तु उगनेकी सत्यता नहीं रखता और जैसे जला वस्त्र देखनेमात्र है पर उसमें सत्यता कुछ नहीं होती तैसेही ज्ञानवान् को अभिलाषरूप अहंकार नहींहोता और उससे वहकष्ट नहीं पाता जैसे सूर्यकी किरणोंसे मरुस्थल में जलाभास होता है और उसको देखकर पान करनेके निमित्त मृग दौड़ता है और दुःखी होता है तैसेही दृश्यरूपी मरुस्थलमें पदार्थरूपी जलाभासको देखकर अज्ञानरूपी मृगदौड़ते हैं और दुःखपाते हैं। जब ज्ञानरूपी वर्षासे आत्मरूपी जलचढ़ा तब चित्तरूपीमृग कहां दौड़े। जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है और अनुभवरूपी जल चढ़ता है तब चित्त रूपी मृगमें यत्नरूपी जो फुरनाथा सो नष्ट होजाता है। हे रामजी! अहंकार अविचारसे सिद्ध है और विचारसे क्षीणहोजाताहै। जैसे बरफकी पुतली सूर्य्यकी किरणों से क्षीणहोती है और जबअधिक तेजहोता है तब जलरूप होजातीहै, बरफकीसंज्ञा नहीं रहती; तैसेही अहंकाररूपी बरफ विचाररूपी किरणोंसे क्षीणहोजाती है। जब दृढ़विचार होता है तब अहंकार संज्ञानष्ट होजाती है और केवल आत्माही रहता है रामजीने पूछा, हे सर्वतत्त्वज्ञभगवन्! जिसका अहंकार नष्ट होता है उसका लक्षण क्याहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानरूपीगढ़ा संसारहै उसमें पदार्थ की भावनासे वह नहीं गिरता और जैसे समुद्रमें नदियां स्वाभाविक आयप्राप्त होती हैं तैसेही उसकोक्षमा शान्ति आदिक शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं उसका क्रोधभी नष्ट होजाता है और देखने मात्रयदि भासताभी है तौभी अर्थाकार नहींहोता; विषमता करके भिन्न भावना हृदयमें नहीं फुरती और केवल सत्तासमान में स्थित होताहै। जैसे शरत्कालका मेघगर्जता है पर वर्षासे रहितहोता है तैसेही इन्द्रियोंकी चेष्टा वह अभिमानसे रहित होकर करता है। जैसे वर्षाऋतुके जानेसे कुहिरा नहीं रहता तैसेही उसकी अभिमान चेष्टानष्टहोजाती है और लोभभीमनसे जातारहता है। जैसे वनमें अग्नि लगती है तो मृग और पक्षी उसबनको त्यागजाते हैं तैसेही लोभरूपी मृगउसको त्यागजातेहैं और उसके मनमें कोई कामना नहीं रहती। जैसे दिन में उलूक और पिशाच नहीं बिचरते तैसेही जहांज्ञानरूपी सूर्य्य उदयहोताहै वहां सम्पूर्ण कामनारूपी तम नष्टहोजाताहै और शान्तरूपआत्मामें स्थितरहताहै। जैसे मजदूर दोपोटोंको ज्येष्ठ आषाढ़की धूपमें उठाताहै और गरमीमें थकता है तो उसको डारकर वृक्षके नीचे सुखसे स्थित होताहै तैसेही वासनारूपी पोटहै और अज्ञानरूपी धूपहै उससे दुःखी होता है पर ज्ञानरूपी बलकर वासनारूपी पोटको डार के सुखसे स्थित होताहै। हे रामजी! उस पुरुषकी भोग भावना नष्ट होजाती है और फिर उसे दुःखनहीं देती। जैसे गरुड़को देखकर सर्प भागताहै और फिर नि-

कट नहीं आता, तैसेही ज्ञानरूपी गरुड़को देखकर भोगरूपी सर्प भागते हैं और फिर निकटनहीं आते। आत्मपदको पाकर ज्ञानी शान्तिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होताहै और भाव-अभाव पदार्थ उसको स्पर्शनहीं करते और संसारभ्रम निवृत्त होजाताहै। ज्ञान समझने मात्रहै कुछ यत्ननहीं। सन्तों के पासजाकर प्रश्नकरना कि मैं कौनहूं? जगत् क्याहै? परमात्मा क्याहै? भोगक्याहै और इससे तरकर कैसे परम पदको प्राप्तहूं। फिरजो ज्ञानवान् उपदेशकरे उसके अभ्याससे आत्मपदको प्राप्त होगा अन्यथा न होगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसन्तलक्षणमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्नवतितमस्सर्गः ९४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसप्रकार तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु नामक बड़े राजा जीवन्मुक्तहोकर विचरे हैं तैसेही तुमभी विचरो क्योंकि, तुमभी उसीकुलमें उपजे हो। हे रामजी! वह सूर्यवंशी इक्ष्वाकुराजा मनुकापुत्र और सूर्यका पौत्र सब राजाओं से श्रेष्ठहुआहै-जैसे पितरोंका राजा धर्म्म है-और बर्फकीनाईं उसका शीतल स्वभाव था। जैसे सूर्यको देखकर मणिसे तेजप्रकट होताहै तैसेही उसको देखकर शत्रु तपायमान होते थे और साधु, मित्र और प्रजाको रमणीय भासताथा और वे सब उसको देखकर शांतिमान होते थे। जैसे चन्द्रमाको देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसेही उसको देखकर सब प्रसन्नहों। वह पापरूपी वृक्षोंका काटनेवाला कुल्हाड़ा और मित्रका सुखदायकथा-जैसे मोरोंको मेघ सुखदायक है। सुन्दर वह ऐसा कि, जिसको देखकर लक्ष्मी स्थित होरहीथी और उसके यशसे सम्पूर्ण पृथ्वी पूररहीथी। ऐसा राजा भलीप्रकार प्रजाकी पालना करताथा कि, एककाल उसके मनमें विचार उपजा कि, संसारमें जरा,मरण आदिक बड़ेक्षोभहैं इस संसार दुःखके तरने का क्या उपायहै। ऐसे वह विचारताथा कि, शम्भुमुनि ब्रह्मलोकसे आये और उसने उनका भलीप्रकार पूजन करके पूछा, हे भगवन्! आपकी कृपाका पराक्रम मेरे हृदय में बैठकर प्रश्न करनेको-प्रेरताहै इससे मैं प्रश्न करताहूं। हे भगवन्! मेरे हृदयमें संसार फुरता है और जैसे समुद्रको बड़वाग्नि जलाती है तैसेही मुझको जलाताहै। इससे आपवही उपाय कहिये जिससे मुझको शांतिहो। हे भगवन्! यह संसार कहांसे उपजा है; दृश्यका स्वरूप क्या है और कैसे निवृत्तहोता है? जैसे जालसे पक्षी निकल जाताहै; तैसेही जन्म,मरणमहाजाल संसारसे मैं निकलना चाहताहूं और जैसे वरुण समुद्रके सब स्थान जानता है तैसेही तुम जगत्के सब व्यवहारों को जानते और संशयके निवृत्त करने वालेहो। अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता तुम सूर्यहो और तुम्हारे अमृतरूपी बचनों से मैं शांतिको प्राप्तहूंगा। मुनिबोले, हेसाधु! मैं चिरकाल पर्यंत

जगत्में विचरता रहाहूं परन्तु ऐसा प्रश्न मुझसे किसीने नहींकिया—तुमने परमसार प्रश्नकिया है ? यहप्रश्न अनर्थका नाशकरनेवाला है और तेरीबुद्धि विवेकसे विकाशमानहुई दृष्टिआती है । हे राजन् ! जोकुछ जगत् तुझको भासताहै सो सब असत्है। जैसे रस्सीमें सर्प, स्वप्नमें गन्धर्वनगर; मरुस्थलमें जल; सीपी में रूपा; आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे भासते हैं; तैसेही यह जगत् असत्रूप है और जैसे जलमें चक्र और तरङ्ग असत्रूप हैं तैसेही जगत् असत्रूप है । जो मन सहित षट इन्द्रियोंसे अतीत है और शून्यभी नहीं सो सत् और अविनाशी आत्मा कहाता है । वह निर्मल परब्रह्म सर्वओरसे पूर्ण और अनन्तहै; उसीमें जगत् कल्पित है । हेराजन् ! जैसे सर्ववृक्षोंमे एकहीरस व्यापक है तैसेही सर्व पदार्थोंमें एक चिन्मात्र सत्ताव्यापक है और जैसे अचल समुद्रमे द्रवतासे तरङ्ग फुरतेहैं तैसेही परमात्मामें जगत् फुरते हैं । उस महादर्पणमें सर्वबस्तु प्रतिबिम्बित होती हैं जैसे समुद्र कोई तरङ्ग और कोई बुदबुदे चक्रादिक होते हैं तैसेही आत्मा में जीवादिक आभास होते हैं । प्रथम फुरनेरूप होते हैं और पीछे कारण कार्यरूप होते हैं सो चित्तशक्ति अपने सङ्कल्पसे भूतादिक देह रचकर उसमें स्वरूप के प्रमादसे आत्मा अभिमान करता है । जैसे कुसवारीकी क्रिया अपने बन्धनके निमित्त होती है तैसेही जीवको अपना सङ्कल्प बन्धनका कारण होता है । हे राजन् ! जीवकलाको स्वरूपका अज्ञान हुआ है । इससे जैसे बालकको अपनी परछाहीं यक्षरूप होकर भयदेती है तैसेही यह नानाप्रकारके आरम्भको प्राप्तहुआ है और अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरनेसे कारण भावको प्राप्तहुआ है । उसमें बन्ध और मोक्षभासते हैं तैसेही वास्तवमें न बन्धहै और न मोक्षहै; निरामय ब्रह्मही अपने आपमें स्थितहै और उसमें एक और अनेक कुछ नहीं कह सक्ते । इससे बन्धमोक्षकी कल्पनाको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थितहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम
पञ्चनवतितमस्सर्गः ९५ ॥

मनिबोले, हे राजन् ! जैसे द्रवतासे जलही तरङ्ग भावको प्राप्तहोता है तैसेही चिन्मात्रही सङ्कल्पके फुरनेसे जीवहोता है और वह जीव संसारमें कर्मोंके वशसे भ्रमता हुआ आप को कर्त्ता देखता है पर सवात्मा परब्रह्म करताहुआभी कुछनहीं करता । जैसे सूर्य्यके प्रकाशसे सब चेष्टाहोतीहैं और सूर्य्य अकर्त्ताहै तैसेही आत्माकी शक्ति से जगत् चेष्टाकरताहै और जैसे चुम्बक पत्थरके निकट लोहाचेष्टा करता है तैसेही आत्माकी चेतनतासे सब देहादिक चेष्टाकरते हैं और आत्मासदा अकर्त्ता है । जैसे जलमें तरङ्गफुरते हैं तैसेही आत्मामें देहादिक फुरते हैं । जैसे सुवर्ण में भूषणकल्पना

होतीहै तैसेही आत्मामें मोहसे सुख दुःखकल्पते हैं पर आत्मामें कुछ कल्पना नहीं। शुद्ध आत्मामें मूढ़ोंने सुख दुःखकी कल्पनाकीहै पर जो ज्ञानवान्हैं उनको मन,चित्त, सुख, दुःख सब आकाशरूपहैं। वे देहसे रहित केवल चिदाकाश भावको प्राप्त होते हैं, जरा,मरणको नहीं प्राप्तहोते और सब कार्यको करते दृष्टिआतेहैं पर हृदयसे सदा अकर्त्तारूपहैं। जैसे जल और दर्पणमें पर्व्वतका प्रतिबिम्ब पड़ता है परन्तु स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान्को क्रिया स्पर्शनहीं करती शरीरके व्यवहारमें भी वह सदा निर्मलभावहै। हेराजन्! आत्मासदा स्थितरूपहै परन्तु भ्रमसे चञ्चल भासता है। जैसे जलकी चञ्चलतासे पर्व्वतका प्रतिविम्ब भी चञ्चलहोताहै, तैसेही देहादिक से आत्मा चलताभासताहै पर आत्मा नित्यशुद्ध और अपने आपमें स्थितहै। जैसे घटके नाशहुयेसे घटनाश नहींहोता तैसेही देहके नाशहुये आत्माका नाश नहींहोता और जैसे शुद्धमणिमें नानाप्रकारके प्रतिबिम्बहोतेहैं पर उनसे वह रञ्जितनहीं होती तैसेही आत्मामें मन, इन्द्रियां और देहदृष्टि आते हैं पर स्पर्शनहीं करते। जैसे सब मिष्ठ पदार्थोंमें एकही मिठाई व्यापीहै तैसेही सब पदार्थों में एक आत्मसत्ता व्यापी है। हे राजन्! आत्मासदा अचलरूपहै परन्तु अज्ञानसे चलरूप भासताहै। जैसे दौड़ते बालकको सूर्य दौड़ता भासताहै तैसेही आत्मा देहके संगसे अज्ञानबश वि-कारवान् भासताहै और जैसे प्रतिविम्बका विकार आदर्शको नहीं स्पर्शकरता तैसेही देहका विकार आत्माको स्पर्श नहींकरता। जैसे अग्निमें सुवर्णडालिये तो मैल दग्ध होजाता है पर सुवर्णका नाशनहीं होता; तैसेही देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता जो नित्यशुद्ध अवाक् और अचिन्त्य रूपहै। हे राजन्! वह चितवनेमें नहीं आता परन्तु चेतन वृत्तिसे सब दिखताहै। जैसे राहु अदृष्टहै परन्तु चन्द्रमाके संयोग से दृष्टि आताहै, तैसेही आत्मा अदृष्टहै परन्तु चेतन वृत्तिसे जानाजाताहै। जैसे शुद्धदर्पणमें प्रतिविम्ब होताहै तैसेही निर्मल बुद्धिमें आत्मा साक्षात् भासताहै और संकल्पसे रहित अपने आपमें स्थितहै। जब बुद्धि निर्मल होतीहै तब अपनेआपमें उसको पाती है। हे राजन्! जबतक अपनी बुद्धि निर्मल न हो तबतक शास्त्र और गुरुसे ईश्वर नहीं मिलता और जब अपनी बुद्धि सत्पदमें निर्मल हो तब अपने आप से दिखताहै। जब संसारकी सत्यता हृदयसे दूरहो और आत्माका अभ्यासहो तब बुद्धि निर्म्मलहोती है। हे राजन्! सर्वभाव–अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं सो असत् और केवल भ्रममात्रहैं उनकी आस्थाका त्यागकरो। जैसे कोई मार्गमें चलता है तो अनेक पदार्थ मिलते हैं परन्तु उनमें वह कुछ राग,द्वेष नहीं करता तैसेही देह और इन्द्रियोंके स्नेहसे रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थितहै और उसमें देहादिक इन्द्रजालकीनाईं मिथ्याहैं उनकी भावना दूरसे त्यागकर नित आत्मा शीतल

चित्तमें स्थितहो रहो । हे राजन्! जीव आपही अपना मित्र है और आपही अपना शत्रुभी है क्योंकि; आत्मामें और का ठौरनहीं– आत्मामें आत्माकाही भाव है–द्वैत नहीं । जो दृश्य पदार्थकी ओरसे और अनात्म धर्म विषयसे खैंचकर चित्तको अपने आप में स्थित करता है वह अपना आपही मित्र है और जो अनात्म धर्ममें पदार्थों की ओर चित्त लगाता है वह अपना आपही शत्रुहै । वास्तवमें जोकुछ दृश्यजाल है वहभी आत्मरूप है आत्मासेभिन्न कुछवस्तुनहीं । जैसे समुद्रमें जलसे भिन्नकुछ वस्तु नहीं जलही जल है; तैसेही आत्मासेभिन्न जगत् कुछवस्तु नहीं–सर्व अनुस्यूत एक आत्मसत्ताही स्थित है । जैसेअनेक घटोंके जलमें एकही सूर्यका प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है, तैसेही अनेक देहोंमें एकही आत्मा व्यापरहा है । वह न अस्तहोता है और न उदय होता है; सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्योंकात्यों स्थित है और उस में अहंभावना करके संसार भासता है । जैसे सीपीमें रूपेकी बुद्धिहोती है तैसेही आत्मामें अहंबुद्धि संसारका कारण है और इसीबुद्धिसे सर्वदुःखकाभागी होताहै । जैसे वर्षाकालमें सब नदियां समुद्रमें प्रवेश करतीहैं तैसेही अनात्म अभिमानसे सब आपदा प्राप्तहोती हैं । वास्तवमें चिन्मात्र और जीवमें रंचकभी भेदनहीं एकहीरूप है । ऐसीजो बुद्धिहै सो बन्धनसे मुक्तिका कारणहै ।आत्मासर्व में अनुस्यूत व्यापाहै । जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वठौरमें होता है परन्तु जहांशुद्ध जलहै वहां भासता है तैसेही आत्मा सबठौर पूर्ण है परन्तु शुद्धबुद्धिमें भासता है।जैसे तरङ्ग और बुद्बुदोंमें जल ही व्यापरहा है तैसेही अविनाशी आत्मा दृश्य कलनासे सर्वत्र व्यापाहै पर जैसे सुवर्णमें भूषणनहीं तैसेही आत्मामें जगत्का अभाव है । हेराजन् ! यह संसार आत्मामेंनहीं है; केवल आत्माही है । जोएकवस्तु पात्रकी नाईंहोती है उसमें दूसरीवस्तु होती है पर आत्मातो अद्वैत है दूसरीवस्तु संसार कहां हो ? जैसे चित्तसे सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं–वास्तवमें कुछनहीं; तैसेही आत्मामें संसार अज्ञानसे कल्पित है और वास्तव कुछनहीं–केवल चिदाकाश है । जैसे नदियां और समुद्रनाममात्र भिन्न हैं, वास्तवमें जलही है, तैसेही केवल चिदाकाशमें विश्व नाममात्र है । जितने आकार भासते हैं उनको काल भक्षण करता है । जैसे नदियोंको समुद्र भक्षणकरके नहीं अघाता तैसेही पदार्थ समूहोंको काल भक्षण करके नहीं अघाता । हे राजन् ! ऐसे पदार्थों में क्या अभिलाषा करनी है ? कईकोटि सृष्टि उत्पन्न होती हैं और उनको काल भक्षण करता है–कोई पदार्थ कालसे मुक्तनहीं होता जैसे समुद्रमें तरङ्ग और बुद्बुदे उपजते हैं और नष्टहोजाते हैं । इससे तू कालसे अतीत पदकी भावना कर कि, कालकोभी भक्षणकरे । कैसे भावना करिये और कैसे भक्षणकरिये सोभी सुन । जैसे मन्दराचल अगस्त्य मुनिके आनेकी भावनाकरी है तैसेही तुमभी

अपने स्वरूपकी भावनाकरो तब कालको भक्षणकरोगे। जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्र को भक्षण कियाथा तैसेही आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्रको भक्षणकरेगा। हे राजन्! जन्म मरणादिक जो बिकार हैं सो भ्रम करके हैं और आत्मा के प्रमाद से भासते हैं। जब आत्माको निश्चय करके जानोगे तब कोई बिकार न भासेगा, क्योंकि; ये अज्ञानसे रचे हैं—आकाशमें कोईनहीं। जैसे भ्रमसे रस्सीमें सर्प भासता है सो तबतक है जबतक रस्सीको नहीं जाना और जब रस्सीको जाना तब सर्प भ्रम निवृत्त होजाता है; तैसेही जन्म मरणादिक बिकार आत्मामें तबतक भासता है जब तक आत्मा को नहीं जाना; जब आत्माको जानोगे तब सर्व बिकार नष्ट होजावेंगे। हे राजन्! ऐसा बिकारसे रहित आत्मा तेरा स्वरूप है उसकी भावना कर कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। आत्मपदको कहीं खोजने नहीं जाना है; न किसी वस्तुको जान कर ग्रहण करना है कि, यह आत्मा है और न किसीकालकी अपेक्षाही है, आत्मा तेरा अपना स्वरूप है और सर्वदा अनुभव रूप है। तुझसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं, तू आपको ज्योंका त्यों जान। आत्मा के न जानने से आपको दुःखी जानता है। मैं मरूंगा, मैं दरिद्रीहूं, मैं दासहूं इत्यादिक दुःख तबतक होते हैं जबतक आत्माकोनहीं जाना; जब आत्माको जानोगे तब आनन्दरूप होजावोगे। जैसे किसी स्त्री की गोद में पुत्रहो और वह स्वप्नमें देखे कि, बालक मेरे पास नहीं है तो बड़े दुःखको प्राप्तहो और रुदन करने लगे पर जब स्वप्नसे जागे और देखे कि,बालक मेरी गोदमें है तो बड़े आनन्दको प्राप्तहोती है और दुःख शोक नष्टहोजाते हैं। हे राजन्! उसीप्रकार तेरा आत्मा अपना आपहै और सदा अनुभव रूपहै; उसके प्रमादसे तू आपको दुःखी जानता है; जब अज्ञानरूपी निद्रासे तू जागेगा तब आपको जानेगा और तेरे दुःख और शोक नष्ट होजावेंगे। देह और इन्द्रियादिक जो दृश्यहैं उनसे मिलकर आपको यह जानना कि 'मैं हूं'; यही अज्ञान निद्राहै। इससे रहित होकर देख कि, आनन्दको प्राप्तहो। यह जो पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्याहैं जैसे बालक मृत्तिका में राजा, सेना, हाथी और घोड़ा कल्पताहै सो न कोई राजाहै, न सेनाहै, न कोईहाथी घोड़ाहै एक मृत्तिकाही है; तैसेही चित्तरूपी बालकने आत्मरूपी मृत्तिकामें जो राजा और सेना आदिक सम्पूर्ण विश्वकल्पाहै सो सब मिथ्याहै। हे राजन्! एक उपाय तुझसे कहताहूं उसे कर कि, तेरे दुःखनष्ट होजावें। एक वस्तु जो 'अहं अभिलाषा सहित फुरनाहै' उसका त्यागकरो; फिर जहां इच्छाहो वहां विचरो तुझे दुःखकास्पर्श न होगा। सङ्कल्पही उपाधि है और उपाधि कोईनहीं। जैसेमणि तृणसे अच्छादित होती है तब दृष्टिनहीं आती और जब तृणदूर करिये तबमणि प्रकट होआती है; तैसे ही आत्मारूपी मणि वासनारूपी तृणसे ढँपी है; जब वासनारूपी तृणदूर कीजिये

तब आत्मारूपी मणि प्रकटहो । हे राजन्! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसे रहित जो आत्मपदहै जब उसको प्राप्त होगे तब जानोगे कि, मैं मुक्तहूं। तेरा स्वरूप जो केवल आत्मरूपहै उस पदमें स्थितहो। वह अजन्मा और नित्यहै।और चेतनमात्र सर्वका अपना आपहै, उसके प्रमादसे दुःख होताहै जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौने बनाते हैं और हाथी, घोड़ा आदि उनकेनाम कल्पकर अभिमान करते हैं कि, मेरे हैं और उनके नाश होनेसे दुःखी होते हैं; तैसेही बालकरूप अज्ञानी स्वरूपके प्रमादसे अभिमान करताहै कि, यह मेरे हैं; मैं इनकाहूं और उनके नाश होनेसे दुःखी होताहै–ऐसे नहीं जानता कि, सत्कानाश नहीं होता । असत्के नाश होनेसे सत्कानाश मानताहै । जैसे घटके नाशहोनेसे घटाकाश नाश मानिये तैसेही मूर्खतासे दुःख पाताहै। हे राजन्! तू आपको आत्माजान । आत्मादिक संज्ञाभी शास्त्रोंने जताने के निमित्त कल्पी हैं नहीं तो आत्मा निर्वाच पद है; उसमेंवाणीकी गमनहीं और इनहींसे जाना जाताहै क्योंकि; मन और वाणीमें भी आत्मसत्ता है उसीसे आत्मादिक संज्ञा सिद्धि होती हैं । जैसे जितने स्वप्नके पदार्थ हैं उनमें अनुभव सत्ताहै उससे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं;तैसेही जितनी कुछ अर्थसंज्ञाहैं सो सब आत्मासे सिद्धहोती हैं। ऐसाजो तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो कि,जरा मृत्त्यादिक दुःख नष्टहोजावें। हे राजन्! निस्पन्द होकर देखेगा तब स्पन्दमेंभी वही भासेगा और स्पन्द–निस्पन्द तुल्यहोकर भासेंगे जो समाधिमें होवेगा अथवा ऐसेही चेष्टाकरेगा तौभी तुल्यहोवेगी और न समाधिमें शांतिभासेगी और नचेष्टामें दुःखभासेगा । दोनोंमें एकरस रहेगा । हे राजन्! देना अथवा लेना, यज्ञ, दान आदिक क्रिया जोकुछ प्रकृत आचार प्राप्तहो उनको मर्यादा और शास्त्रकी विधि संयुक्त कर पर निश्चय आत्म स्वरूपमेंही रख । जैसे नट स्वांगोंको धारकर सम्पूर्ण चेष्टा करता है पर उसमें निश्चय नटत्वहीका रहता है, तैसेही तुमभी सर्व चेष्टाकरो पर उसके अभिमान और सङ्कल्पसे रहितहो। ग्रहण अथवा त्याग जो कुछ स्वाभाविक आप्राप्त हो उसमें ज्योंकेत्यों रहो। जब निर्विकल्प होकर अपने स्वरूपको देखोगे तब उत्थानकाल मेंभी तुम्हेआत्माही भासेगा । जैसे जलकेजानेसे तरङ्ग फेन बुदबुदा सर्वजलहीभासतेहैं तैसेही जबतुम आत्माको जानोगे तब संसारभी आत्मरूप भासेगा । जो आत्माको नहीं जानता उसको जगतही दृष्टिआता है और उससे दुःखपाता है; इससे तू अन्तर्मुखहो और संकल्पको त्याग कर परम निर्वाण अच्युतपदमें स्थित हो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम षट्नवतितमस्सर्गः ९६ ॥

मुनिबोले, हे राजन्! यह जो संकल्पपुरुष है सो संकल्पसेही आप बँधाता है

और आपही मुक्त होता है। जब संकल्पसे दृश्यकी भावना करता है तब जन्ममरण को प्राप्तहोकर दुःखी होता है। आपही संकल्प करता है और आपही बन्धनको प्राप्त होता है जैसे कुसवारी आपही गुफा बनाकर और आपही उसको मूंदकर फँसती है तैसेही जीव अपने संकल्पसे आपही दुःखपाता है और जब संकल्पको अंत-र्मुख करता है तब मुक्तहोता है और मुक्तही मानता है। इससे हे राजन्! संकल्पको त्यागकर आत्मा जो सर्व का अपना आप है उसकी भावनाकर कि, तू सुखी हो। हे राजन्! आत्मा के प्रमादसे देह आस्थाकी भावना हुई है उससे दुःख पाता है; इससे आत्म स्वरूप की भावनाकरो। तुम आत्मा चिद्रूप हो। महा आश्चर्य माया है जिसने संसार को मोह लिया है। आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अंग अंग व्यापी है उसको जीव नहीं जानते यही आश्चर्य है। हे राजन्! आत्मासदा अनुभ-वरूप उसमें स्थितहो। संसारआत्माके प्रमाद और फुरनेसे हुआहै सो सत्भी नहीं। और असत्भी नहीं। जो आत्मासे भिन्न देखिये तो मिथ्या है—इससे सत्नहीं और जो आत्माकेसिवा दूसराहै नहीं इससे असत्भी नहीं। तू आत्माकी भावनाकर। जो कुछपदार्थ भासते हैं उन्हें आत्मासे भिन्न न जान—सर्वात्माहीहै। आत्माके सिवा जो और भावना है उसकात्यागकर। हे राजन्! जैसे जलमें तरंग और बुद्बुदे होते हैं सो जलसे भिन्ननहीं—जलही ऐसे भासते हैं; तैसेही जगत् जो दृष्टिआता है सो आत्मा हो ऐसे भासता है। जैसे सूर्य्य और किरणोंमें कुछभेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में भेदनहीं। आत्माही जगत्रूप है और भिन्न २ आकार चित्तशक्तिसे हैं सो भिन्ननहीं आत्मसत्ताही है। जैसे तप्तहुआ लोहा वस्त्रादिकको जलाता है; सो लोहेको अपनी सत्तानहीं अग्निकी सत्ता है; तैसेही चेतनकी सत्ताजगत्रूप होकर स्थित हुई है। आत्मासदा केवलरूप है जिसमें प्रकाश और तम दोनों नहीं और न सत् है; न असत् है; न कोई देश है; न काल है, न कोई पदार्थ है केवल चेतन मात्र गुणातीत है उसमें न कोई गण है, न माया है केवल शान्तरूप आत्मा है। हे राजन्! वह शास्त्रों और गुरूके वचनोंसे पायाजाताहै और तपसे नहीं मिलता। केवल अपने आपसे जानाजाताहै और शास्त्रादिक लखा देतेहैं परन्तु "यह है" ऐसा कहकर नहीं जानते। द्रष्टा पुरुष अपने आपमें जानताहै। जैसे सूर्यकी ज्योति जो नेत्रोंमेंहै वही सूर्यको देखतीहै, तैसेही आत्माही आत्मा को देखताहै और अन्तर्मुख होकर संकल्पसे रहितहुआ अपने आपको देखताहै। जब संकल्प बहिर्मुख होता है तब वही दृढ़होकर स्थितहोताहै और फिर उसकी भावनाहोती है। जब संकल्परूप जगत्दृढ़तासे स्थितहोताहै तब दुःखदायीहोताहै। हेराजन्! जीवको दुःखदायी और कोईनहीं; अपनेही संकल्पकरके असम्यकदर्शी दुःखीहोताहै और असम्यक्दर्शीको

जगत् दृष्टिभी आताहै तौभी दुःखदायी नहींहोता।जैसे रस्सीमें सर्पकी भावनाहोती है तो भयप्राप्त होताहै फिर जब रस्सीकेजाननसे सर्प भावनादूर होतीहै तब भयभी जातारहताहै; तैसेही जिसपुरुषको संसार की भावना होतीहै वह दुःखदायीहै। इससे आत्माकी भावनाकर कि,तेरे सबदुःख नष्टहोजावें। हे राजन्! तू सर्वदा आनन्दरूप और अद्वैत है; तेरे में कोई कल्पना नहीं और तू आत्मस्वरूप है आत्मा षट्विकारोंसे रहितहै; बिकारमिथ्यादेहकेहैं आत्माशुद्धहै और आत्मा के प्रमादसे बिकार भासतेहैं। जब तू आत्माको जानेगा तब कोई बिकार न दृष्टिआवेगा क्योंकि; आत्मा अद्वैतहै। राजानेपूछा, हे भगवन्! तुमकहतेहो कि, आत्मा अद्वैतहै। जो इसप्रकारहै तो पर्वत आदिक विश्वका कैसे भान होताहै और पत्थररूप बड़े आकार बनके कहां से उपजेहैं? इसकारूप क्याहै कृपाकरकेकहो? मुनिबोले, हे राजन्! आत्मामें संसार कोईनहीं वहसदाशान्तरूप और निराकारहै और उसमें स्पंद निस्स्पन्द दोनोंशक्तिहैं जब निस्स्पन्द शक्तिहोतीहै तब केवल अद्वैत भासताहै और जब स्पंदशक्तिफुरतीहै तब नानाप्रकारके जगत् आकार भासतेहैं पर वास्तवमें आत्माहीहै—कुछ भिन्ननहीं। जैसे समुद्रमें तरंगकुछ और नहीं वहीरूपहैं पर पवन के संयोगसे तरंगफुरते हैं तो भिन्न भिन्न दृष्टिआतेहैं; तैसेही फुरनशक्ति से अहंकार भिन्नभिन्न भासतेहैं—वास्तवमें आत्मस्वरूपहै—इतर कुछ नहीं। जैसे बटके बीजमें पत्र, डाल, फूल और फल अनेक दृष्टि आते हैं तैसेही आत्मसत्ताने जो नानाप्रकार के आकार धारे हैं यद्यपि वे दृष्टि आतेहैं तौभी कुछ बना नहीं केवल अद्वैत आत्मा ज्योंका त्यों स्थितहै और सूक्ष्म सेभी अतिसूक्ष्महै और पर्व्वत आदिक जो विश्वभासता सो आत्माका चमत्कार है जैसे स्वप्नमें पर्व्वत और वृक्षादिक नानाप्रकारके जो आकार भानहोते हैं वे अनुभव रूपहैं—उनसे इतर कुछनहीं; तैसेही जाग्रत् विश्वभी आत्माका अनुभवरूपहै—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इक्ष्वाकुने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है तो पर्वतादिक स्थूल असत्रूप सत् होकर कैसेभासते हैं सो कृपाकरकेकहो? मुनिबोले, हेराजन्! आत्मामें अनन्त शक्ति है सो आत्मासे भिन्ननहीं वहीरूप है। जैसे सूर्यकी किरणें सूर्य्य से भिन्न नहीं, तैसेही आत्माकी शक्ति आत्मा से भिन्ननहीं। जैसे पवन में दो शक्ति हैं—स्पन्द और निस्स्पन्द सो वहीरूपहै—स्पन्द शक्तिसे प्रकट भासता है और निस्स्पन्दसे प्रकट नहीं भासता;तैसेही आत्मामेंभी स्पन्द—निस्स्पन्ददो शक्तिहैं। जब स्पन्द शक्ति फुरतीहै तब अहंभाव प्रकटहोताहै और जब अहंभावहुआ तब चित्त उदयहोताहै। अहंही चित्तहै; जब चित्तहुआ तब आकाशकी भावनासे आकाशबन जाताहै; जब स्पर्शकी भावना हुई तब पवन उत्पन्न होताहै; रूपकी भावनासे अग्नि बनतीहै और जब रसकी भावनाहुई तबजल उत्पन्नहुआ।इसीप्रकार चित्तकी कल्प-

नासे तत्त्व उपजेहैं। जब चारोंतत्त्व इकट्ठेहुये तब एकअण्डहुआ और जब दृढ़ संकल्प किया तब स्वायंभूमनुहुआ। जब अण्डफूले तब स्वर्गमध्य और पाताल तीन लोक हुये वे तीनोंलोक राजस सात्त्विक और तामस तीनों गुण हुये। फिर पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ हुये। हे राजन्! केवल संकल्पमात्रही सबहुये हैं। जब स्पन्द शक्ति है तब इसप्रकार आत्मामें भासतेहैं परन्तु कुछबनानहीं। जैसे समुद्र में फेन और बुद्बुदे फुरतेहैं सो जलरूप हैं—जलसे कुछ भिन्ननहीं; तैसेही आत्मासेभिन्न कुछवस्तुनहीं। आदिमनु जोस्वायंभू हैं उनके संकल्पने आगेमन कल्पे हैं। इसीप्रकार त्रिगुणमय सृष्टि उत्पन्न होती है सो केवल संकल्पमात्र है। जबतक चित्त है तबतक विश्वहै;जब चित्त फुरनेसे रहितहुआ तब निस्स्पन्द शक्तिहोतीहै और जब निस्स्पन्द हुई तब फिर जगत्नहीं देखाईदेता। हे राजन्! यहविश्व मनके फुरनेसेहै और सत्य की नाईं स्थितहुआहै। सत् जोहै सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु सो नहीं भासता और असत् सत्की नाईं भासताहै।वह सत् कैसे असत्की नाईं हुआहै और असत् कैसे सत्कीनाईं हुआहै सोसुन। सत् जोहै सर्वदेश, सर्वकाल,सर्ववस्तु नहीं भासती और असत् जो परिच्छिन्नरूप देश,काल,वस्तु परिच्छेदसंयुक्तहै वह सत्कीनाईंहुईहै।जहां देखिये वहां दृश्यही गुणमय संसार भानहोता है। महाआश्चर्यरूप माया है जिसने सत्यको असत्यकी नाईंकियाहै और असत्यको सत्यकीनाईं स्थित किया है सो चित्त के सम्बन्धसेही संसार भासताहै आत्मामें संसार कोईनहीं। जबचित्तको स्थितकरके देखोगे तब तुम्हें संसार न भासेगा। जैसे गम्भीरजल होताहै तोचलता नहीं भासता तैसेही गम्भीर आत्मामें संसार नहीं जानाजाता कि, कहां फुरता है। संसार भी आत्मासे भिन्नकुछ वस्तुनहीं आत्मस्वरूपही है। जैसे अग्निके चिनगारे और जलके तरङ्ग जलसे भिन्न नहीं और मणिका प्रकाश मणिसे भिन्न नहीं; तैसेही आत्मासे संसार भिन्न नहीं केवल आत्मस्वरूप है। ऐसे आत्माको जानकर शांतिमान् हो कि, तेरे दुःखनष्ट होजावें। केवल शान्तपद आत्मा तेरा अपना आपहै। अपने स्वरूप को भूलके तू दुःखीहुआ है। जब आत्माको जानोगे तब संसार भी आत्मरूप भासेगा क्योंकि; आत्मस्वरूप है आत्मासे भिन्नकोई वस्तुनहीं। ऐसा आत्मातेरा स्वरूप है उसमें स्थितहो। हे राजन्! यहसर्व जगत् चिदाकाश रूपहै; यही भावना दृढ़करो जिसको ऐसी भावना दृढ़है और जिसकी सबइच्छा शांतहोगई उस पुरुषको कोई दुःख नहीं लगता। उसने निरिच्छारूपी कवच पहिनाहै। हे राजन्! जो अहंके अर्थ से रहित है, जिसका सर्वशून्य होगयाहै और जिसने निरालम्बका आसरा कियाहै वह पुरुष मुक्तिरूपहै॥

श्रीयो०नि०प्र०मनुइक्ष्वाकुआख्यानेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनामसप्तनवतितमस्सर्गः ९७

मनुबोले, हे राजन्! यह संसार आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल और तरंग; सूर्य और किरणें; अग्नि और चिनगारे भिन्ननहीं तैसेही आत्मा और संसार भिन्ननहीं—आत्मस्वरूपही है। जैसे इन्द्रियों के विषय इन्द्रियोंमें रहते हैं तैसेही आत्मामें संसारहै। जैसे पवनमें स्पन्द–निस्स्पन्द शक्तिहै सो पवनसे भिन्ननहीं; तैसेही संसार आत्मासे भिन्न नहीं—आत्मस्वरूप है। हे राजन्! विषयकी सत्यताको त्याग कर केवल आत्माकी भावनाकर कि, तेरे संशय मिटजावें। तुम आत्मस्वरूप और निर्गुणहो; तुमको गुणोंका स्पर्श नहीं होता और तुम सबसे परेहो। जैसे आकाशमें धूल धुवां, मेघ और बादल विकार भासते हैं पर आकाशको कुछलेप नहीं करते—आकाश अद्वैत रूपहै; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष जिनको आत्मज्ञान हुआहै उनको सुख, दुःख, राजस, तामस, सात्त्विक लेप नहींकरते। यद्यपि उनमें लोकदृष्टिसे ये गुण दीखते हैं पर वे अपनेमें नहीं दीखते। जैसे समुद्र में अनेक तरंग जलरूप होते हैं और शुद्धमणि में नील, पीत आदिक प्रतिबिम्ब पड़ते हैं सो देखने मात्रहैं, मणिको स्पर्श नहींकरते; तैसेही जिस पुरुषके हृदयसे वासनाका मल दूरहुआहै उसके शरीरको सम्बन्ध करके राजस, सात्त्विक और तामस गुणोंकेकार्य सुख दुःख देखनेमात्र होते हैं परन्तु स्पर्श नहींकरते। उसमें केवल सत्ता समान पदका निश्चय होताहै और उसको कोईरङ्ग स्पर्शनहीं करता। जैसे आकाशको धूलका लेपनहीं होता तैसेही आत्माको गुणोंका सम्बन्ध नहींहोता। जो पुरुष ऐसे जानताहै उसको ज्ञानी कहते हैं। जब जीव निस्स्पन्द होताहै तब आत्माहोताहै और जब स्पन्द होताहै तब संसारी होताहै। जब चित्त फुरताहै तब अनेक सृष्टि भासती हैं और जब चित्त फुरनेसे रहित होताहै तब संसारका अत्यन्ताभाव होता है और प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता। तब संसारभी केवल आत्मरूप होजाताहै। इससे हे राजन्! वासनाको त्यागकर चित्तको स्थिरकरो। यह वासनाही मलहै। जब वासनाका त्यागहोगा तब केवल आकाशकी नाईं आपको स्वच्छ जानोगे। आत्मा वाणीका विषय नहीं; वह केवल आत्मत्वमात्र है; अपने आपमें स्थित है और सर्वदा उदयरूप है। विश्व भी आत्माका चमत्कार है कुछ भिन्न वस्तु नहीं। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी है सो अज्ञानसे भासती है; आत्मा सर्वदा एकरूप और त्रिपुटीसे रहित है। फुरनेसे आत्माही त्रिपुटीरूप होकर स्थित हुआ है; इससे चित्तको स्थिर कर देख कि, आत्मासे भिन्न कुछवस्तु नहीं। फुरने में संसार है जब फुरना मिटता है तब संसार भी मिट जाता है। उस फुरनेकी निवृत्तिके लिये सप्तभूमिका कहताहूं। जब प्रथम जिज्ञासु होता है तब चाहता है कि; संतजनोंका संगकरूं और ब्रह्म विद्या शास्त्रकोदेखूं और सुनूं—यह प्रथम भूमिका है। भूमिका चित्तके ठहरानेके ठौरको कहते हैं। फिर जब

संतोंके संग और शास्त्रोंसे बुद्धिबढ़ी तब संतों और शास्त्रोंके कहनेको विचारना कि, मैं कौनहूं और संसार क्या है–यह दूसरी भूमिका है। उसके उपरांत यह विचारना कि, मैं आत्माहूं; संसार मिथ्या है और मुझमें कोई संसार नहीं; ऐसी भावना बारम्बार करनी तीसरी भूमिकाहै। जब आत्मभावनाकी दृढ़तासे आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सम्पूर्ण वासना मिटजाती हैं और जब स्वरूपसे उतर कर देखता है तब संसार भासता है परन्तु स्वप्न की नाईं जानता है–इससे वासना नहीं फुरती। ऐसे जो अवलोकन हैं सो चौथी भूमिका है। जब अवलोकन होता है तब आनन्द प्रकट होता है। ऐसे महा आनन्दका प्रकट होना पंचम भूमिका है। जब आनन्द प्रकट होता है और उसमें बलसे स्थित हुआ तो इसका नाम पञ्चम भूमिका है। तुरीयापद छठी भूमिका है। चित्तके दृ ताका नाम तुरीया है। जब तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है तब परमनिर्वाण होताहै–उसको सप्तम भूमिका कहते हैं। उस परमनिर्वाण पदकी जीवन्मुक्तिको गम नहीं क्योंकि; तुरीयातीत पद है उसको वाणी से नहीं कह सक्के। प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जाग्रत् अवस्था हैं; उनमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता है और संसार की सत्ताभी दूर नहीं होती। चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है उसमें संसार की सत्ता नहीं होती और पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्थाहै क्योंकि; आनन्द घनमें स्थित होता है। छठी भूमिका तुरीया पद है जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति तीनोंका साक्षी है; उसमें केवल ब्रह्महीं प्रकाशता है और निर्वाण पद में चित्तकी लय होजाती है। तुरीया पदमें जीवन्मुक्त विचरते हैं। सप्तम भूमिका तुरीयातीत पद है सो परमनिर्वाण पद है। तुरीया में ब्रह्माकारवृत्ति रहती है और ब्रह्माकारवृत्तिभी लीनहोजाती है जहां वाणी की गम नहीं वहांचित्त नष्ट होजाता है; वह केवल आत्मत्व मात्र है और अहंभाव नहीं होता। शांत और परमनिर्वाण तेरा स्वरूप है और सर्वविश्वभी वहीरूप है कुछ भिन्न नहीं। जैसे सुवर्णही भूषणहैं और और सुवर्णमें भूषण कल्पताहै। भूषणभी परिणामसे होताहै पर आत्मा सदा अच्युतरूप है और कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्तहोता। वह केवल एक रसहै; उसने चित्त के फुरने से विश्व कल्पा है इससे विकारसंयुक्त भासता है। हे राजन्! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित होकर अपने प्रकृत आचार में निरहंकार होकर विचरो बल्कि अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्यागकर केवल आत्मरूपहो रहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्र रणेपरमनिर्वाणवर्णनंनामअष्टनवतितमस्सर्गः ९८॥

मनुबोले, हे राजन्! सर्वचिदाकाश सत्ता आदि–मध्य–अन्तसे रहित अनाभास ज्योंकात्यों स्थितहै और आगेभी वही स्थिररहेगा। उसमें न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है और न कुछ उससे भिन्नहै। सर्व्वकी सत्ताहै जो चिन्मात्र परम

सार है उसने आपही संकल्पसे चिन्तनाकी तव जगत्हुआ । हे राजन् ! यह विश्व आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । जैसे जलमें तरङ्ग, मिरचमें तीक्ष्णता, शक्करमें मधरता; अग्निमें उष्णता; बरफ में शीतलता; सूर्यमें प्रकाश; आकाशमें शून्यता और वायु में स्पन्द है; तैसेही आत्मामें विश्व है सो आत्मस्वरूपहीहै कुछ भिन्ननहीं । हे राजन् ! जो स आत्मस्वरूपही है तो शोक और मोहकिसका करता है ? जैसे काष्ठकी पुतली यंत्रीके तागेसे अनिच्छित चेष्टाकरती है तैसेही नीतीरूप तागेसे अभिमान सेरहित हो कर तूभी विचार और यह निश्चयरख कि, न मैं कुछ करताहूं; न कराताहूं और किसीमें रागद्वेष न कर । जैसे शिलापर जो मूर्त्तिलिखी होतीहै उसको न किसी का राग है और न द्वेष है; तैसेही तूभी बिचर कि आत्मासे भिन्न कुछ न फुरे ऐसा निरहङ्कारहो । चाहेव्यवहारी गृहस्थहो, चाहे संन्यासीहो; चाहे देहधारीहो, चाहे देह त्यागी हो; चाहे बिक्षेपी हो; चाहे ध्यानी हो तुझे कोई दुःख न होगा ज्योंका त्योंही रहेगा । फुरनाही संसारहै और फुरनेसे रहित असंसारहै । जब फुरताहै तब संसारी होता है और जब फुरना मिटजाताहै तब केवल आकाशरूप भासताहै । हेराजन् ! यह जगत् सब आत्मरूपहै और आत्माही अपने आपमें स्थितहै । जो सर्वात्माही है तो शोक और मोह किसका कीजिये ? हे राजन् ! आत्मा सर्वदा एक रस है और विश्वआत्माका चमत्कारहै । जन्म मरणआदि नानाबिकार आत्माके अज्ञानसे भासते हैं; जब आत्माका ज्ञान होगा तब आत्मरूपही एकरस भासेगा और विषमता कुछ न भासेगी । संवेदन से आकार भासते हैं । संवेदन अहंकार और वासनाके संबंध को कहते हैं । अहंकार और चित्तदोनों पर्याय हैं । हे राजन् ! इसका अहंकार के साथहोनाही दुःखदायी है । केवल चिन्मात्र में अहंभाव मिथ्या है । जबतक संवेदन दृश्यकी ओर फुरती है तबतक दृश्यका अन्त नहीं आता और नाना प्रकारके बिकार भासते हैं परजब संवेदन आत्मा अधिष्ठानकी ओर आतीहै तब आत्मा शुद्धअपना आप होकर भासता है । संवेदनभी आत्माका आभास कल्पित है; आभासके आश्रय विश्वकल्पा है और फुरनेमेंभी और अफुरनेमें भी आत्मा ज्योंका त्यों है परन्तु फुरने में विषमता भासती है और अफुरनेमें ज्योंका त्यों भासता है । जैसे रस्सी के अज्ञानसे सर्प भासता है और जब रस्सीका ज्ञान होता है तब सर्पकी विषमता जाती रहतीहै और ज्योंकी त्यों रस्सी भासती है पर सर्प भासनेके कालमेंभी रस्सी ज्योंकी त्योंहीं थी; उस में कुछ नहीं हुआ था—जानने न जानने में एक समानही थी; तैसेही आत्माभी फुरनेकेकालमें जगत् भासताहै और फुरनेसे निवृत्तहुये आत्माही भासता है पर आत्मा दोनों कालमें एक समान है । जैसे सूर्य्यकी किरणें सूर्य्य से भिन्ननहीं और अग्निसे उष्णता भिन्ननहीं, तैसेही आत्मासे विश्वभिन्न नहीं—आत्म स्वरूप

हीं है। हे राजन्! अहंकार को त्याग करके अपने सत्ता समान स्वरूपमें स्थित हो तब तेरे सबदुःख निवृत्त होजावेंगे एक कवच तुझसे कहताहूं उसको धारण करके बिचर तो यद्यपि अनेक शस्त्रोंकी बर्षाहो तौभी तुझे दुःख न होगा।"जो कुछ देखता-सुनता है"उसे सर्व ब्रह्मजान और बारम्बार यही भावनाकर कि, ब्रह्मसे भिन्नकुछ नहीं। जब ऐसी भावना दृढ़करैगा तब कोई शस्त्र छेद न सकेगा। यह ब्रह्मभावनाही कवच है। जबइसको तू धारैगा तब सुखीहोगा। इतनाकह बाल्मीकिजी बोले कि, जब वशिष्ठजीने रामजीको मनु और इक्ष्वाकुका संवाद सुनाया तब सायंकालहोकर सूर्य्य अस्तहुआ और सम्पूर्ण सभा और वशिष्ठजी भी स्नानको उठे। फिर सूर्य्यकी किरणों के निकलतेही सबआपहुंचे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षरूपवर्णनंनामनवनवतितमस्सर्गः ९९॥

मनु बोले, हे राजन्! जिसका कारणही मिथ्या है उसका कार्य कैसे सत्हो! यह आभास जो संवेदन है सोही विश्वका कारण है। जो आभासही मिथ्या है तो विश्व कैसे सत्यहो और जो विश्वही असत् है तो भय और शोक किसका करता है! हे राजन्! न कोई जन्मता है न मरता है, न सुख है, न दुःख है ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है उसीसे संवेदन ने विश्व कल्पा है; इससे संवेदनका त्याग कर कि, न'मैंहूं', न यह है। जब तुझे ऐसा दृढ़ निश्चय होगा तब आत्माही शेष रहेगा और अहंकार निवृत्त होजावेगा क्योंकि; आत्माके अज्ञानसे हुआ है और आत्मज्ञानसे नष्ट होजाता है। हे राजन्! जो वस्तु भ्रम सिद्धहो और सत् दृष्टिआवे उसको प्रथम बिचारिये; जो विचार कियेसे रहे तो सत्य जानिये और आत्माजानिये और जो बिचार कियेसे नष्ट होजावे उसको मिथ्या जानिये। जैसे हीराभी श्वेत होता है और बरफ़ का कणकाभी श्वेत होता है और एक समान दोनों भासते हैं पर तिनकी परीक्षा के लिये सूर्य्य के सम्मुख दोनोंको रखिये तो जो धूपसे गलजावे सो झूठा जानिये और जो ज्योंका त्योंरहे उसको सत् जानिये; तैसेही विचाररूपी सूर्य्य के सम्मुख करिये तो अहंकार बरफ़ की नाईं नष्ट होजाता है क्योंकि; जो अहंकार अनात्म अभिमान में होता है सो तुच्छ है—सर्वव्यापी नहीं। जीव इन्द्रियोंकी क्रिया जो अपनेमें मानता है और परधर्म अपनेमें कल्पता है सोभी तुच्छ है; एवम् आपको भिन्न जानता है और पदार्थ आपसे भिन्न जानता है इससे बिचार कियेसे बरफ़के हीरेकीनाईं मिथ्या होता है दूसरे अविचार सिद्ध है विचार कियेसे नष्ट होजाती है पर आत्मा सर्वसाक्षी ज्योंकात्यों रहता है। वह अहंकार और इन्द्रियोंका भी साक्षी है और सर्व्वव्यापी है हे राजन्! जो सत् बस्तु है उसकी भावनाकर और सम्यक् दर्शीहो। सम्यक् दर्शी को कोई दुःख नहीं होता। जैसे मार्गमें रस्सी पड़ीहो उसको रस्सी जानिये तो कोई

दुःखनहीं और सर्प जानिये तो भय होता है। इससे सम्यक्दर्शीहो-असम्यक्दर्शी मतहो। हे राजन्! जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सुखदायी नहीं हैं दुःखदायीही हैं जब तक इनका संयोगहै तबतक सुखभासताहै पर जब बियोग होताहै तबदुःखको प्राप्त करतेहैं। इससे तू उदासीनहो; किसीदृश्य पदार्थको सुखदायी न जान और दुःख-दायीभी न जान। सुख और दुःखदोनों मिथ्या हैं इनमें आस्थामतकर और अहं-कारसे रहित जो तेरा स्वरूपहै उसमें स्थितहो। जब अहंकार नष्टहोगा तब आपको जन्म मरण बिकारोंसे रहित आत्मा जानोगे कि, मैं निरहंकार ब्रह्म चिन्मात्रहूं। ऐसे अहंभावसे रहित होनेपर अपना होनाभी न रहेगा, केवल चिन्मात्र; आनन्द और रागद्वेषके क्षोभसे रहित शान्तरूप होगा। जब ऐसा आपको जानातबशोच किसका करेगा? हे राजन्! इस दृश्यको त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थितहो और इसमेरेउप-देशको बिचारो कि, मैंसत्य कहताहूं अथवा असत्य कहताहूं। जो बिचारसे संसार सत्यहो तो संसारकी भावनाकरो और जो आत्मा सत्यहोतो आत्माकी भावना करो। हे राजन्! तू सम्यक्दर्शीहो सत्को सत्जान और असत्को असत्जान कि, जो अस-म्यक्दर्शी हैं वे सत्यको असत्य मानते हैं और असत्यको सत्य मानते हैं। ऐसे न जाननेसे असत्वस्तु स्थिर नहींरहती अज्ञानी दुःख पाताहै। जैसे कोई पुरुष एक कुटी रचकर चिन्तनेलगा कि, मैंने आकाशकी रक्षाकीहै तो जब कुटीनष्टहो तबशोक करताहै कि, आकाश नष्टहोगया क्योंकि; आकाशको वह कुटीके आश्रय जानताथा; तैसेही अज्ञानी पुरुष आत्माको देहके आश्रय जानकर देह के नष्टहुये आत्माका नाशमानता है और दुःखीहोता है। जैसे सुवर्णके भूषण कल्पितहैं; भूषणों के नष्ट हुये मूर्ख सुवर्णको नष्ट मानता है, तैसेही देह के नष्टहुये अज्ञानी आपको नष्ट जानता है पर जिसको सुवर्णज्ञान है वह भूषणोंके नाशसेभी सुवर्णको देखता है और भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है, पर ज्ञानवान् आत्माको अविनाशी जानता है और देह और इन्द्रियोंको असत् जानताहै। हे राजन्! तू देह और इन्द्रियोंके अ-भिमानसे रहितहो। जब अभिमानसे रहित इन्द्रियोंकी चेष्टाकरेगा तब शुभ अशुभ क्रिया तुझे बांध न सकेंगी और जो अभिमान सहित करेगा तो शुभ अशुभ फलको भोगेगा। हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी हैं वे ऐसीक्रियाका आरम्भ करते हैं जिसका कल्पपर्यंत नाश न हो और देह-इन्द्रियोंके अभिमानका प्रतिबिम्ब आपमें मानते हैं कि, मैं करताहूं, मैं भोगताहूं; इससे अनेक जन्म पाते हैं क्योंकि, उनके कर्मोंका नाश कभीनहींहोता और जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुषहैं वे आपको देह और इन्द्रियोंके गुणसे रहित जानते हैं और उनके संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट होजाते हैं। सं-चितकर्म वृक्षकीनाईं हैं और क्रियमाण फूलफलकी नाईं हैं। जैसे रुईसे लपेटकर

अग्नि लगायेसे वृक्ष, फूल, फल, सूखे तृणवत् दग्धहोते हैं तैसेही ज्ञानरूपी अग्नि से संचित और क्रियमाण कर्म दग्धहो जाते हैं। इससे हे राजन्! जो कुछ चेष्टा तू वासनासे रहितहोकर करेगा उसमें कोईबन्धननहीं। जैसे बालकके अंग स्वाभाविकही भली बुरीप्रकार हिलते हैं, उस े हृदयमें अभमान नहीं फुरता इससे उसको बन्धन नहीं; तैसेही तूभी इच्छासे हित होकर चेष्टाकर तो तुझे ोई बन्धन न होगा। यद्यपि सबचेष्टा तुझमें तबभी भासेंगी तौभी नासे रहितहोगा और और जन्म न पावेगा। जैसे भूनाबीज देखनेमात्र होताहै और उगतानहीं तैसेही तुझमें सर्वक्रिया दृष्टिआवेगी परन्तु जन्मकाकारण नहोंगी और पुण्यक्रियाका फल और सुख न भोगेगा और पाप क्रियासे दुःख न भोगेगा और पाप पुण्यका स्पर्श न होगा। जैसे जल में कमल स्थित होताहै और उसको जल स्पर्श नहीं करता तैसेही पाप पुण्य का स्पर्श तुझे न होगा। इससे अभिलाषसे रहित होकर जोकुछ अपना प्रकृत आचार है सोकर। हे राजन्! जैसे आकाशमें जलसे पूर्णमेघ भासते हैं परन्तु आकाश को लेप नहीं करते तैसेही तुझ को कोई क्रिया बन्धन न करेगी। जैसे विषके खानेवाले को विषनहीं मारसक्ता तैसेही ज्ञानीकी क्रिया हीं बांधसक्ती। ज्ञानवान् क्रिय करने में भी आपको अकर्त्ता जानताहै पर अज्ञानी न करनेमें भी अभिमानसे कर्त्ता होता है और देह और इन्द्रियों के न करते आपको कर्त्ता मानता है। जो देह इन्द्रियों से कर्त्ताहै और उसके अभिमानसे रहितहै वह अकर्त्ताहै और जो पुरुष कर्मसे इन्द्रियों को संयमकर बैठताहै पर मनमें विषय के भोगकी तृष्णा रखताहै और जिसका अन्तःकरण राग द्वेषसे मूढ़ है और बड़ी क्रियाको उठाता और ःखी होताहै वह मिथ्याचारीहै। जो पुरुष मनमें इन्द्रियोंके रागद्वेषसे रहित है—पर कर्म इन्द्रियोंसे चेष्टा करताहै वह विशेषहै अपने जाने में कुछ नहीं करता। वह मोक्ष पाता है। हेराजन्! अज्ञानरूप वासनासे रहित होकर विचरो। जो ऐसेहोकर विचरोगे तो आपको ज्योंका त्यों आत्माजानोगे और सदा उदयरूप सर्वका प्रकाशक आपको जानोगे और जन्म मरण बन्धमुक्ति विकार से रहित ज्योंका त्यों आत्माभासेगा। हे राजन्! उस पदको पाकर न शांतिमान् होगा। अन्य सर्वकला अभ्यास विशेषबिना नष्ट होती है। जैसे रसबिना वृक्ष होता है तो यद्यपि फैलाववाला होता तौभी उगतानहीं। ज्ञानकला अभ्यासबिना नहीं उपजती और उपजकर नाश नहीं होती। जैसे धानबोते हैं तो दिनप्रतिदिन बढ़ने लगते हैं, तैसेही ज्ञानकला प्राप्तकर दिनप्रतिदिन बढ़ती है। हे राजन्! ज्ञानउपजने से ऐसे जानता है कि, मैं न मरताहूं, न जन्मताहूं; निरहंकार, निष्किंचन रूपहूं; सर्वका प्रकाशहूं, अजरहूं और अमरहूं। हेराजन्! ऐसीज्ञानकला पाकर जीव मोहको नहीं प्राप्तहोता। जैसे धसे दही हुआ फिर दूध नहीं होता

और जैसे दूधको मथकर घृत निकाला तो फिरनहीं मिलता तैसेही जिसको ज्ञानकला उदय हुई है वह फिर मोहका नहीं स्पर्श करता । हे राजन् ! अपने स्वरूप में स्थित होकर और उपायके त्यागकरने का नाम पुरुष प्रयत्न है । जिसपुरुषको आत्माकी भावना हुई है वह संसार समुद्रसे पारहुआ है और जिसको संसारकी भावना है वह संसारी जरामृत्यु दुःखको प्राप्त होता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थोपदेशोनामशततमस्सर्गः १०० ॥

मनु बोले, हे राजन् ! बड़ा आश्चर्य है कि, शुद्ध चिन्मात्र आत्मा में माया से नानाप्रकारके दे‍‍, इन्द्रियां और दृश्यभासि आये हैं । हे राजन् ! दृश्यका कारण अज्ञान है । जिस आत्माके अज्ञानसे दृश्यरूप भासताहै उसीके ज्ञानसे लीनहोजाता है इससे इस संवेदनको त्यागकर आत्माकी भावना कर । यह मैं हूं, ये मेरे हैं ये संकल्प मिथ्याही फुरते हैं । हे राजन् ! प्रथम कारणरूपसे एक जीव उपजा और उस आदि जीवसे अनेक जीवगणहुये । जैसे अग्निसे चिनगारे निकल‍ हैं तैसेही उसने अनेकरूप धारे हैं और कोई गन्धर्व, कोई विद्याधर, कोई मनुष्य, कोईराक्षस इत्यादिक हुये हैं । फिर जैसे २ संकल्प होतेगयेहैं तैसेही रूप होतेगये, वास्तवमें जैसे जलमेंतरङ्ग स्वरूपके प्रमादसे अनेकभावको प्राप्तहोतेहैं तैसेहीअपने संकल्प आपही को बन्धनरूप होतेगयेहैं । इससे संकल्पनानात्व कलना मिथ्याहै।हे राजन्! इसभावना को त्यागकर आत्मपदकी शरणको प्राप्तहो जो आत्म अनन्तहै । कोई विश्व और प्रकारकी भान हो‍हिं । जैसे समुद्रसमहै पर उसमें कोई आवर्त्ततरङ्ग और बुदबुदेउठतेहैं सोजलसेभिन्न नहीं तैसेही आत्मामें अनेक प्रकारका विश्व फुरताहै सो आत्मासे भिन्न कुछनहीं आत्मस्वरूपही है इससे आत्माकी भावनाकर । कहीं ब्रह्मसत् संकल्प होकर फुरताहैतो जानता है कि, मैं ब्रह्म, शुद्धरूप और सदा मुक्तरूपहूं और इस संसार समुद्रसे पार होगयाहूं । जहां चेतनता शक्तिहै वहां आपको जीवता मानता है और दुःखीभी जानताहै । अन्तष्करण से मिलकर भोगकी भावना करना और सदा विषय की तृष्णाकरना जीवात्मा कहाता है और जहां वासना क्षयहुई है और शुद्ध आत्मा में आत्मप्रत्यक्ष है वहां जीवसंज्ञा नष्ट होजातीहै और केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है । हे राजन् ! चेतन जब अन्तष्करणसे मिलकर बहिर्मुख फुरता है तब संसारी हुआ जरा मरण से दुःखी होता है और जहां चेतनशक्ति अन्तर्मुख होती है तब जन्म, मरणकी भावनाको त्यागकर स्वरूपकी भावना करता है । और सर्व्व दुःखकी निवृत्ति होती है । जब इसकी भावना स्वरूपकी ओर लगती है तब कोई दुःखनहीं रहता और जब स्वरूपका प्रमाद होताहै तब दुःखपाताहै । स्वरूपके ज्ञानसे आनंद रूप मुक्त होताहै । हे राजन् ! तू संसाररूपी कूपकी गरारी न हो । जब गरारी रस्सी

तब कोईइच्छा तुझे न रहेगी । हे राजन् ! तू अहंकारका त्यागकर अथवा ऐसाजान कि, सर्वमेंहीं हूं। जरा मरणआदिकदुःखतबतकहैं जब तक आत्मबोध नहींप्राप्तहुआ; जब आत्मबोध होता है तब कोईदुःख नहींरहता । दोनोंही दुःख भारी हैं पर ज्ञानी को इन्द्र के बज्रसमान दुःखभी स्पर्श नहीं करता । हे राजन् ! जैसे पेड़से सूखकर फलगिरता है उसीप्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्तहोता है तब मन,बुद्धि, अहंकार पेड़कीनाईं गिरपड़ता है । जबतक मनकीचपलता है तबतक दुःखपाता है और जब मनकी चपलता निवृत्तहोती है तब कोईक्षोभनहीं रहता और शांतपदको प्राप्तहोताहै। शांति तबहोती है जब प्रकृतिका वियोगहोता है । प्रकृतिके संयोगसे संसारी होताहै और दुःखपाता है इससे प्रकृति अर्थात् अहंकारकात्यागकर और अहंकार से रहित होकर चेष्टाकर । जब तू अहंकारसे रहित होगा तब उसपदको प्राप्तहोगा जो नजड़ है, न चेतन है, न शून्य है. न अशून्य है, न केवल है न अकेवल है उसे न आत्मा कहसक्ते हैं न अनात्मा; न एक, होता है न दो । जो कुछनाम हैं सो प्रतियोगी से मिले हुए हैं । प्रतियोगीहुआ द्वैत होता है और आत्मा अद्वैतमात्र है जिसमें वाणी की गमनहीं और जो अवाच्यपद है उसको कैसे कहिये ? जितनी नाम संज्ञा हैं सो उपदेशमात्र हैं, आत्मा अनिर्वाच्यपदहै । इससे संकल्पका त्यागकर और आत्माकी भावनाकर । जब तू आत्मभावना करेगा तब केवल आत्माही प्रकाशेगा । जैसे फूल का कोई अंग सुगन्धसे रहित नहीं तैसेही आत्मासे कुछ भिन्न नहीं । हे राजन् ! जब अहंकार का त्याग करोगे तब अपने आपसे शोभायमान होगे और आकाश की नाईं निर्मल आत्मामें स्थित होगे । अहंकारको त्यागकर उसपदको प्राप्त होगे जहां शास्त्र और शास्त्रोंके अर्थ प्राप्त नहीं होते; जहां सम्पूर्ण इन्द्रियोंके रस लीन होजातेहैं और सब दुःखनष्ट होजातेहैं तब केवल मोक्ष पदको प्राप्तहोगे । हे राजन् ! मोक्ष किसी देशमें नहीं कि, वहां जाकर पावे, न किसी कालमेंही है कि, अमुककाल आवेगा तब मुक्त होगा और न कोई पदार्थही है कि, उसको ग्रहण करेगा; केवल अहंकारके त्यागसे मोक्ष होता है । जब तू अहंकारका त्याग करेगा तभी मोक्ष है । जब तू इस अनात्म अभिमान को त्यागेगा तब अपने आपसे शोभायमान होगा और जैसे धुवां बिना अग्नि प्रकाशमान होती है तैसेही अहंकार बिना प्रकाशेगा । जैसे बड़े पर्वत पर निर्मल और गम्भीर तालाब शोभता है तैसेही तू शोभेगा । हे राजन् ! तू अपने स्वरूपमें स्थित हो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसमाधानवर्णनंनामएकाधिकशततमस्सर्गः १०१॥

मनुबोले, हे राजन् ! तू शुद्ध और राग द्वेषसे रहित आत्मारामी नित अन्तर्मुख होरह । जब तू आत्मारामी होगा तब तेरी व्याकुलता नष्ट होजावेगी और शीतल

चन्द्रमा सा पूर्णवत् होजावेगा। ऐसाहोकर अपने प्रकृत आचारमें विचर और किसी फलकी बांछा न कर। जो पुरुष बांछासे रहित होकर कर्म करताहै वह सदा अकर्त्ता है और महा शोभापाताहै। ऐसी अवस्थामें स्थितहोकर जो भोजनआवे उसको भक्षणकर और जो अनिच्छित बस्त्रआवे उसको पहिर;जहां नींद्आवे वहां सोरह और रागद्वेषसे रहित हो। जब तू ऐसाहोगा तब शास्त्र और शास्त्रोंके अर्थसे उल्लङ्घित बरतेगा जो ऐसा पुरुषहै वह परम रसको पाकर मतवाला होताहै और उसको संसारकी कुछ इच्छा नहीं रहती। हे राजन्! ज्ञानवान् चाहे काशीमें देहत्यागे अथवा चाण्डालके गृहमें त्यागे उसे सब स्थानोंमें मुक्तिहै और वहसदा आत्मस्वरूपमें स्थित है। वर्त्तमानकालमें वह देहको नहीं त्यागता क्योंकि; जिसकालमें उसको ज्ञानहुआ उसीकालमें देहका अभावहुआ—ज्ञानसे देह दग्ध होजाती है। हे राजन्! ज्ञानवान् सदा मुक्तरूपहै; वह न किसीकी स्तुति करताहै और न निन्दा करताहै क्योंकि;उसके चित्तकी कलना मिटगई है। यद्यपि राग द्वेष ज्ञानवान्में भी दृष्टिआते हैं और वह हँसता रोताभी देखपड़ताहै परन्तु उसके अन्तःकरणमें न रागहै और न द्वेषहै; और वह न हँसताहै,न रोताहै—ज्योंका त्यों है। जैसे आकाश शून्यरूपहै और उसमें मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं परन्तु आकाशको कुछलेप नहींकरते;तैसेही ज्ञानवान्को कोई क्रिया बन्धननहीं करती पर अज्ञानी जानते हैं कि, ज्ञानवान्कोक्रिया बन्धन करतीहै। हे राजन्! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करने और पूजने योग्यहै। जिस स्थानमें ज्ञानवान् बैठताहै उस स्थानकोभी नमस्कारहै; जिससे बोलताहै उस जिह्वाको भी नमस्कारहै और जिसपर ज्ञानवान् दृष्टि करताहै उसकोभी नमस्कारहै; वह सबका आश्रयभूत है। हे राजन्! जैसा ज्ञानवान्की दृष्टि से आनन्द मिलता है वैसा आनन्द तप, दान और यज्ञकर्मोंसेभी नहीं मिलता और ऐसीदृष्टि किसीमें नहींहोती जैसी सन्तकी दृष्टि है वह ऐसे आनन्दको पाताहै जिसमें बाणीकी गमनहीं। जो पुरुषसंत की दृष्टिको पाकर सुखीहोता है उससेलोग दुःखनहींपाते और लोगोंसे वह दुःखी नहीं होता और न किसीका भय करताहै; न किसीका हर्षकरताहै। हे राजन्! सिद्धि पानेका सुख अल्प है, क्योंकि, उड़नेकी सिद्धिपाई तो अनेक पक्षी उड़ते फिरते हैं; इससे आत्मज्ञान तो नहीं मिलता और आत्मज्ञानबिना शांति नहींहोती। जब आत्मज्ञान प्राप्तहोताहै तब जरा, मृत्यु आदिक दुःखसे मुक्तहोताहै और कोई दुःखनहीं रहता। जैसे पिंजरेसे छूटा सिंह फिरपिंजरेके बन्धनमें नहीं पड़ता, तैसेही वह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेमें नहींफँसता। हे राजन्! इससे तू आत्माकी भावनाकर कि, तेरे दुःखनष्ट होजावें। अज्ञान से तुझेदुःख भासतेहैं—अज्ञानसे रहित सदाआनन्दरूप है इससे अनुभवरूप आत्मा में स्थितहो। जब तू आत्मामें स्थित होगा तब जैसे

गुद्धमणिके निकट श्वेत, रक्त, पीत, श्याम आदि रङ्गरखिये तो वह उनके प्रतिबिम्ब को ग्रहण करतीहै पर कोईरङ्गस्पर्श नहींकरता कल्पित से भासते हैं, तैसेही तू प्रकृत आचारको अङ्गीकार करता रहेगा पर तुझे पाप पुण्यका स्पर्श न होगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नाम द्व्यधिकशततमस्सर्गः १०२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार उपदेशकरके जब मनुजी तूष्णीहोगये तब राजाने भलीप्रकार उनका पूजन किया । फिरमनुजी आकाशको उड़के ब्रह्मलोक में जापहुंचे और राजाइक्ष्वाकु राज्यकरनेलगा । हे रामजी ! जैसे राजाइक्ष्वाकुने जीवन्मुक्त होकर राज्यकिया है तैसेही तुमभी इसदृष्टिका आश्रय करकेविचरो । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! आपने जो कहा कि, जैसेराजाइक्ष्वाकु ज्ञानपाकर राज्य चेष्टाकरता रहा तैसेही तू भी कर उसमें मेरा यहप्रश्नहै कि; जो अतिशय अपूर्व हो उसकापाना विशेषहै और जो पूर्वसे किसीनेपायाहै उसकापाना अपूर्व और अतिशयनहीं;इसलिये मुझसे कहिये कि; सर्वसे विशेष अपूर्व अतिशय क्याहै । वशिष्ठजी बाले, हे रामजी ! ज्ञानवान् सदाशान्तरूप और रागद्वेषसेरहितहै और वह अपूर्व अतिशयको पाताहै । जो कुछ और अतिशयहै वह पूर्व अतिशयहै पर ज्ञानवान् अपूर्व अतिशयको पाता है—ज्ञानीसे अन्य कोई नहींपाता आत्मज्ञानको ज्ञानीही पाताहै और वह ज्ञानएकही है । हे रामजी ! जो दूसरा नहीं पाता तो अपूर्व अतिशय हुआ । हे रामजी ! अपूर्व अतिशयको पाकर ज्ञानवान् प्रकृत आचार और सर्वचेष्टाभी करताहै तौभी निश्चय सर्वदा आत्मामें रखता है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! ऐसा ज्ञानवान् जो अज्ञानी की नाईं सर्व चेष्टाकरताहै उसकी किनलक्षणोंसे तत्त्ववेत्ता जानिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एकस्वसंवेद लक्षणहै और दूसरा परसंवेद लक्षण है । आपही अपनेको जाने और न जाने इसे स्वसंवेद कहते हैं और जिसको और भी जानते हैं उसे पर संवेद कहते हैं । हे रामजी ! परसंवेदके लक्षण कहताहूं सो सुनो । तप, दान, यज्ञ, व्रत इत्यादिक करना परसंवेद है और दुःख—सुखकी प्राप्तिमें धैर्य्य से रहना समान साधुके लक्षणहैं । महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी होना, क्षमा, दया इत्यादिक लक्षण साधुके हैं ज्ञानवान् के नहीं और उड़ना, छिपजाना, जो अणिमादिक सिद्धि हैं वेभी समान लक्षण हैं परन्तु ये स्वाभाविक आन फुरते हैं सो औरसे भी जाने जाते हैं पर जो ज्ञानीके लक्षणहैं वे स्वसंवेद हैं । इससेभिन्न उसके शिरमें सींगनहीं होते कि, उससेजानिये । जैसे और व्यवहारहैं तैसेही ज्ञानीको सिद्धिसमान है । यह भी ज्ञानवान् का लक्षण नहीं और पुण्य पापादिक क्रिया परसंवेदहैं सो मायाके कल्पे हैं ज्ञानीके नहीं । जितने लक्षण देखनेमें आवेंगे वे मिथ्या हैं और मायाके कल्पे हैं ।

ज्ञानीका लक्षण स्वसंवेदहै। वह सर्वदा आत्मामें स्थित है और अपने आपसे संतुष्ट है। उसे न किसीकाहर्षहै, न शोक है; जन्ममरणमें समानहै और काम,क्रोध, लोभ, मोहसर्वको जानता है। उसका लक्षण इन्द्रियोंका विषय नहीं क्योंकि;वह निर्वाच्य पदको प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जिसको ज्ञानप्राप्त होताहै उसकाचित्त स्वाभाविकही विषयोंसे विरसहोताहै और वह इन्द्रियजित होताहै—उसको भोगोंकी इच्छा निवृत्त होजाती है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेज्ञानिलक्षणविचारोनामत्र्यधिकशततमस्सर्गः१०२

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायाजालका काटना महाकठिन है। यह आदि कलना जीवको हुई है। जो कोई इसमें सत्बुद्धि करताहै वह पखेरूकी नाईं जालमें फँसा हुआ निकलनहीं सक्ताहै—तैसेही अनात्म अभिमानसे निकलनहीं सक्ता है। हे रामजी! फिर मेरेवचन सुनो क्योंकि; जैसे मेघका शब्द मोरको प्रियतम लगता है, तैसेही मेरे बचन प्रियलगते हैं। मैं भी तेरे हितके निमित्त कहता और उपदेशकरताहूं। रघुकुलका ऐसा गुरु कोई नहीं हुआ जो शिष्यका संशय निवृत्त न करे। हे रामजी! मेराशिष्यभी ऐसाकोई नहींहुआ जो मेरेउपदेशसे न जगाहो। इसनिमित्त मैं तप,ध्यान आदिककोभी त्यागकर तुझे जगाऊंगा—इससे मैं तुझको उपदेश करता हूं। हेरामजी! शुद्ध आत्मामें जो अहंभाव हुआहै और जोकुछ अहङ्कारसे भासता है सो मिथ्या है—इसमें कुछ सत्नहीं—और जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है वहसत्य है-उसका कदाचित् नाश नहींहोता। जो जो बस्तु फुरनेसे उपजी हैं वे सब नाशवंत हैं-यहबात बालकभी जानते हैं। जोसत्य है वह असत्य नहींहोता और जो बस्तु असत् है वहसत् नहींहोती। जैसेरेतसे घृत निकलना असत् है अर्थात् कदाचित् नहीं निकलता। जैसे एक मेढ़क के लाखकणका करिये अथवा शिलापर घिसिये पर जबउसपर वर्षाहोती है तबसर्व कणके दर्दुर होजाते हैं। हे रामजी! तो वे दर्दुरे तब उत्पन्नहुये जबउनमें सत्यताथी। इससे सत्यका कदाचित् नाशनहीं होता और असत्यका सद्भाव कदाचित् नहींहोता। हेरामजी! सत्ब्रह्मकी भावनाकरो। जो ब्रह्म की भावना करता है वह ब्रह्मही होता है। जैसे घृतमेंघृत; दूधमें दूध और जलमें जल मिलजाता है तैसेही यहजीव भावना करके चिद्घन ब्रह्मकेसाथ एक होजाताहै और जीवसंज्ञा निवृत्त होजाती है। जैसे अमृतके पानकियेसे अमर होता है तैसेही ब्रह्मकी भावना करनेसे ब्रह्महोता है। जो अनात्माकी भावना करता है तो पराधीन होकर दुःखपाता है। जैसे बिषके पानकियेसे अवश्य मरताहै तैसेही अनात्माकी भावनासे अवश्य दुःखपाता है और उसका नाशहोता है। इससे आत्म भावनाकरो। हे रामजी! जोबस्तु सङ्कल्पसे उदयहोती है वह थोड़ेकाल रहती है और जो चलबस्तु

है वहभी अवश्य नाशहोती है। यहदृश्य आत्मामें भ्रमसे सिद्ध है। जैसे मृगतृष्णा का जल; सीपीमें रूपा और आकाशसे दूसरा चन्द्रमा भ्रमसेसिद्ध है—वास्तव नहीं; तैसेही अहंकार देह इन्द्रियोंसे सुखभासता है सोसब मिथ्याहै। इससे दृश्यकी भावना त्यागकरके अपने अनुभव स्वरूपमें स्थितहो। जब आत्मामें स्थितहोगे तब मोह को न प्राप्तहोगे। जैसे पारसके स्पर्शसे सुवर्णहुआ तांबा फिरतांबा नहींहोता, तैसेही तूभी जब आत्मपदको जानेगा तबफिर इस मोहको न प्राप्तहोगा कि,मैंहूं,यह मेराहै अहं',त्वंभाव तेरा निवृत्त होजावेगा और यहभावना न रहेगी। रामजीने पूछा,हे भगवन् ! मच्छर और जूंआदिक जो प्रस्वेदसे उत्पन्नहोते हैं सोसब कर्मकरके उत्पन्नहोते हैं और देवता, मनुष्यादिक सब कर्मोंसे उत्पन्न होतेहैं अथवा कर्मों बिनाभी कुछहोते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आदि परमात्मासे जोसब जीव उत्पन्नहुये हैं सोचार प्रकारके हैं। एकतो कर्मोंसे उत्पन्नहुये हैं और एक कर्मोंबिना हुये हैं; एकआगे होंगे और एक अबभी उत्पन्नहोते हैं। रामजी बोले,हे संशयरूपी हृदय अन्धकारके निवृत्त करनेवाले सूर्य और संदेहरूपी बादलोंके निवृत्त करनेवाले पवन ! कृपाकरके कहिये कि, कर्मोंबिना कैसे उत्पन्नहोते हैं और कर्मोंसे कैसे उत्पन्नहोते हैं ? कैसे कैसेहुये हैं; कैसेहोते हैं और कैसेआगे होंगे ? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी ! आत्मा चिदाकाश अपने आपमें स्थितहै। जैसे अग्नि अपनी उष्णतामें स्थित है तैसेही आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है। वह अनन्त और अविनाशी है—उसमें फुरनशक्ति स्वाभाविक स्थितहै जैसे पवनमें स्पन्दशक्ति स्वाभाविकहोती है और जैसे फूलोंमें सुगन्धि स्वाभाविकरहती है,तैसेही आत्मामें फुरनशक्तिहै। हे रामजी ! फुरनशक्ति जैसेही आद्यफुरी है तोउस शब्दकी अपेक्षासे आकाश हुआ और जब स्पर्शकी अपेक्षाकी तब पवन प्रकटहुआ। इसीप्रकार पंच तन्मात्राहो आईं शुद्ध संवित्में जो आदि फुरनाहुआ उससे प्रथम अन्तवाहक शरीरहुये; उनका निश्चय आत्मामें रहा कि,हम आत्मा हैं और सम्पूर्ण विश्व हमारा संकल्प है। हेरामजी ! कई इसप्रकार उत्पन्न होकर अन्तवाहकसे फिर विदेह मुक्तिको प्राप्तहुये। जैसे जलसे बरफहोकर सूर्यके तेजसे शीघ्रही फिर जलहो जाती है तैसेही वे शीघ्रही विदेहमुक्ति हुये। कई अन्तवाहक से आधिभौतिक इस प्रकार होगये कि, जबतक अन्तवाहक में स्मरणरहा तबतक अन्तवाहकरहे और जब स्वरूपका प्रमादहुआ और संकल्प से जो भूत रचेथे उनमें दृढ़ निश्चयहुआ और जाना कि, हम ये हैं तब आधिभौतिक होगये जैसे ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करने लगे और उसके निश्चयमें होजावें कि, मेरा यहीकर्म है और जैसे शीतकरके जल से बरफ होजाती है तैसेही संवित्में जबदृढ़ संकल्पहुआ तबउन्होंने आपको आधिभौतिक जाना। हे रामजी ! आदि परमात्मा से जो कर्म बिना उत्पन्न हुये हैं उनका

कोई कर्मनहीं क्योंकि; जो अन्तवाहक में रहे उनकी ईश्वर संज्ञाहुई। उनके सङ्कल्प से जीव उपजे, उनका कारण ईश्वर हुआ और आगेजीव कलना से उनका फुरना कर्महुआ। आगे जैसे २ कर्म संकल्पसे करते हैं तैसे २ शरीर धारते हैं। हे रामजी! आत्मासे जोजीव उपजे हैं सो आदि–अकारण होते हैं; जो आजउपजे हैं तौभी और जो चिरकालसे उपजे हैं तौभी। वे पीछेकारण भावको कर्मके बशसे प्राप्त हुये हैं। हे रामजी! जिनका आदिफुरना हुआहै और स्वरूपमें दृढ़ निश्चय रहाहै उनकी संज्ञापुण्यहै और जो स्वरूपको बिस्मरण करके आधिभौतिकमें निश्चय करते रहे उनकी धनसंज्ञाहै। हे रामजी! पुण्यसे धनहोना सुगमहै और धनसे पुण्य होना कठिनहै– कोई भाग्यवान् पुरुषही यत्न करके धनसे पुण्यवान् होताहै। जैसे पर्वतसे पत्थर गिरना सुगमहै तैसेही पुण्यसे धनहोना सुगम है और जैसे पत्थरको पर्वतपर चढ़ाना कठिनहै तैसेही धनसे पुण्यहोना कठिनहै। कितने चिरकाल धनमें बहते हैं और कितने यत्न करके शीघ्रही पुण्यवान् होते हैं। हे रामजी! जो सदा अन्तवाहक रहते हैं उनकीसंज्ञा ईश्वरहै और जो अन्तवाहक को त्यागकर आधिभौतिक होते हैं वे जीव कहाते हैं और परतंत्र हैं–जैसे कर्म्म करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। जो धनसे पुण्य होते हैं वे ज्ञानवान् हैं और उनका फिरजन्म नहींहोता। अवभी जो प्रथम उत्पन्न होते हैं वे कर्म बिनाहोते हैं और जब अपने स्वरूपसे गिरते हैं तब जैसा संकल्प करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र है; इससे सङ्कल्पका त्याग करो। इस दृश्यकी आस्था न करो। हे रामजी! खाना,पीना इत्यादिक चेष्टा करो परन्तु उसमें अहंभाव न करो। अहंकार अज्ञानसे सिद्ध हुआहै सो दृश्य मिथ्या है। अहंभाव के होनेसे दुःखीहोता है। इससे अहंकारसे रहित चेष्टा करो। हे रामजी! बन्धन और मोक्षका लक्षण सुनो। विषय और इन्द्रियोंके संयोग से इष्टमें राग करना और अनिष्टमें द्वेष करनाही बंधन है। जैसे जलमें पक्षी बन्धायमान होता है। ग्राह्य ग्राहक इन्द्रियां और विषयके संबंधसे इष्ट अनिष्ट होता है। जिसमें इन्द्रियों का संयोग होता है उसमें समबुद्धि रहै, उनके धर्म अपनेमें न देखे और उनका जाननेवाला जो अनुभवरूप आत्मा है उसमें साक्षीरूपहोकर स्थित रहे: इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है वहसदा मुक्तिरूप है और जो इससे भिन्न हैं वहमूर्खजीव बन्धवान्है। तुमइस ग्राह्य ग्राहक संबंधसे सावधानरहो। इनकासंबंधही बन्धन है और इनसे रहित होना मुक्ति है। राग–द्वेष करनेवाला मन है; इस मनका त्याग करो; मनहीं दुःखदायी है। जैसे कुम्हारका चक्र फिरता है और उससे बासन उत्पन्न होते हैं तैसेही मनरूप चक्रसे पदार्थरूपी बासन उत्पन्न होते हैं। मनके फुरने से संसार सत्य होता है और जब फुरना निवृत्त होगा तब कोई दुःख न रहेगा।

हेरामजी ! जब फुरने और अफुरनेमें समान होगे तब राग द्वेषसे रहित होकर विचरोगे । यहहो और यह नहो; इससे रहित होकर चेष्टा करो । अभिलाषपूर्वक संसार में न फुरो । हे रामजी ! पूर्व जो ज्ञानवान् हुये हैं उनको चित् चिंतना न थी और आगे होनेकी आशा भी न थी । वर्त्तमानकालमें शास्त्रके अनुसार राग द्वेषसे रहित हो चेष्टा करते हैं; इससे तू भी सङ्कल्पका त्यागकर स्वरूपमें स्थितहो । हे रामजी ! ब्रह्मासे आदि तृण पर्यन्त किसी पदार्थमें राग हुआ तो बन्धन है । मेरा यही आशीर्वाद है कि, ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त किसी पदार्थमें तुम्हें रुचि नहो, अपने आपही में रुचिहो । हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है और इसमें कोई पदार्थ सत्नहीं है—सर्व मनके रचेहुये हैं; इससे मनको स्थित करो । जैसे धोबी साबुन मिलाके वस्त्रका मैल दूर करता है तैसेही मनसे मनको स्थिर करो । जब मनको स्वरूपमें स्थिरकरोगे तब मन अपने सङ्कल्पको आपही नाश करेगा । जैसे दुष्ट पुरुष की जब धन से वृद्धिहोती है तब वह अपने भाई आदिकके नाशकरनेका उपाय करता है, तैसेही मनजब आत्मपद में स्थित होता है तब अपने संकल्पको नाश करता है । जब तुम्हारा मन स्वरूपमें स्थित होगा तब तुम अमन होगे और तुम्हारे सब दुःख नष्टहोजावेंगे । मनके नाश बिना कोई सुखनहीं । हे रामजी ! यह मन ऐसा दुष्ट है कि, जिससे उपजता है उसीकेनाश का निमित्त होता है । जैसे बांससे अग्नि उपजकर उसीको जलाती है, तैसेही आत्मासे उपजकर यह मन आत्माही को तुच्छ करता है । जैसे राजा का नौकर राजाकी सत्ता पाकर राजाकोही मारकर आपराजा होता है, तैसेही मन आत्माकी सत्तापाकर और उसको ढांपकर आपही कर्त्ता भोक्ताहो बैठा है । इससे मनको मनही से नाश करो । जैसे लोहा तपाकर लोहे को काटता है तैसेही मनसे मनही को शुद्धकरो । हे रामजी ! वृक्ष, बेलि, फल, फूल, पशु, पक्षी, देवता, यक्ष, नाग जो कुछ स्थावर—जङ्गम पदार्थ हैं वे प्रथम कर्मों के बिना उत्पन्न हुये हैं और पीछे जब स्वरूपसे गिरते हैं और धन पदको प्राप्तहोते हैं तब कर्मों से शरीर होते हैं । कर्मों का बीज अहंकार है और अहंकार में शरीर है । जैसे बीजसे वृक्ष होता है और समय पाकर फूल, फल प्रकट होते हैं; तैसेही अहंकारसे शरीर प्रकटहोते हैं और जब अहंकार नष्ट हुआ तब कोई शरीर नहीं—केवल आत्मपद है । अहंकार है नहीं और प्रत्यक्ष दिखाईदेता है और आत्मा अच्युत है पर गिरेकी नाईं भासता है; निरावलम्ब है और अवलम्बकी नाईं दृष्टि आता है; निराकार है पर आकार सहित भासता है; निराभास है और आभास सहित दिखाई देता है । इससे केवल चिन्मात्रआत्मामें स्थितहो । यह सब चिन्मात्रहीरूप है । हे रामजी ! जब ऐसी भावनाहोती है तबचित् अचित् होजाता है और

जब चित् अचित्हुआ तब जगत् कलना मिटजातीहै केवलआत्मतत्त्वही भासताहै॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकर्म्माकर्म्मविचारोनाम
चतुरधिकशततमस्सर्ग्गः १०४॥
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जीवके तीन स्वरूपहैं–एक स्वरूप तो शुद्धात्मा चिदानन्द ब्रह्महै जिससे सर्व्व प्रकाशते हैं; दूसरा अन्तवाहक पुण्यनामहै जो आत्मा के प्रमादसे हुआहै। जो मात्रपदसे उत्थान हुआहै तौभी प्रमाद नहीं क्योंकि; आत्मा का स्मरण रहाहै और जब आत्मा का स्मरण भूला तब तीसरा अधिभौतिकहुआ और पंचतत्त्वको अपनाआप जाननेलगा है। हे रामजी! ये तीनस्वरूप जीवके हैं। आत्माके प्रमादसे जीव संज्ञा पाताहै और दुःखी और परतंत्र होताहै। इससे पञ्चभौतिक और अन्यवाहकको त्यागकर वास्तव स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! ये जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर हैं सो विचारसे नष्टहोजाते हैं पर तीसरा जो स्वरूप है वहसत्य है। तू उसीमें स्थित हो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ये तीनरूपजो तुमने जीवके कहे उनके मध्यमें नाशरूप कौनहै और सत्रूप कौनहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! हाथपांव संयुक्त जो देह है और भोगसे मिलीहुई है वह स्थूलरूप है और यह जीव अपनेही संकल्पसे सदा फैलाव रचता है। चित्तरूपी देह इस फुरने रूपसे अन्तवाहक है वह सदाप्राणवायुके रथपर स्थित रहताहै–देहहो चाहे न हो। हेरामजी! ये दोनों शरीर उपजते और नष्टभी होते हैं और आदिअन्तसे रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं। उसे जीवका परमरूप जानो। जो तुरियापद है उसीसे जाग्रतादिक उपजे हैं और उसीमें लीनहोते हैं। रामजीने पूछा,हे भगवन्! मैं तीनको जानताहूं–एकजाग्रतहै जो निद्रासे रहितहै और जिसमें इन्द्रियां और चार अन्तष्करण अपने अपने विषयको ग्रहण करते हैं; दूसरा स्वप्न है वहांभी इन्द्रियां विषयको जाग्रतकी नाईं संकल्पसे ग्रहण करती हैं और तीसरेमें इन्द्रियां अपने विषयसे रहित होती हैं और जड़ता आती है, तब कुछनहीं भासता शिलाकी नाईं जड़ता तमोगुण आता है–सोसुषुप्ति है। इनतीनोंको तो मैं जानताहूं पर तुरिया और तुरियातीतको कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अपनाहोना और न होना दोनोंको त्याग कर पीछे केवल तुरियापद रहता सो शान्त और निर्मल पदहै। हे रामजी! तुरिया जाग्रत नहीं क्योंकि; जाग्रत संकल्प जालहै और इसमें इन्द्रियोंसे राग द्वेष होताहै; तुरिया स्वप्न अवस्थाभी नहीं क्योंकि; स्वप्न भ्रमरूप होता–जैसे रस्सीमें सर्प भासता है सो औरका और संकल्प होताहै और तुरिया सुषुप्तिभी नहीं क्योंकि; उसमें अत्यन्त जड़ताहै और तुरिया चेतनरूप, उदासीन और शुद्ध है और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसे रहित है। जीवन्मुक्त तुरियापद में स्थित रहता है। हे रामजी! जो

तुरियापदमें स्थितहै उसको यह स्थितिभी है और वह जगत्सेभी शान्तरूप होजाताहै और अज्ञानीको बज्रसारवत् दृढ़है। ज्ञानीसदा शान्तरूपहै क्योंकि; वह तीनों अवस्थाओं का साक्षी है, उसको न उनके रागहैं,न द्वेषहैं उदासीनकी नाईं हैं। तुरियातीत पदको वाणीकी गमनहीं। जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होताहै तब इसीपद को प्राप्त होताहै जहां वाणीकीभी गमनहीं। जबतक जीवन्मुक्तहै तबतक तुरियापदमें स्थित रह राग द्वेषसे रहित होताहै और इन्द्रियांभी अपने विषयमें रागद्वेषसे रहित होकर स्वाभाविक वर्त्तती हैं। जिस पुरुषको राग द्वेष उत्पन्नहोताहै वह तुरियापदको नहीं प्राप्तहुआ और चित्त सहितहै और जिस पुरुषको रागद्वेष नहीं उत्पन्न होता उसका चित्त सत्पदको प्राप्तहुआहै। जिसका चित्त सत्पदको प्राप्तहुआ है उसको संसारकी सत्यता नहीं भासती; वह स्वप्नवत् जगत्को देखताहै। इससे तूभी सत्पद में स्थित होकर साक्षीरूप होरह ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेतुरीयपदविचारोनाम पंचाधिकशततमस्सर्गः १०५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! कर्त्ता, कारण और कर्म्म ये तीनों हों पर तू इनका साक्षीहो। इनका कर्त्तृत्व अभिमान तुझे न हो कि,मैं यह कर्त्ताहूं अथवा मैंने इसका त्यागकिया है, उदासीन की नाईं होरह। इसीपर एक आख्यान कहताहूं उसेसुनो। तुम प्रबुद्धहो तौभी दृढ़बोधके निमित्त सुनो। हे रामजी ! एकबनमें काष्ठमौन नामक एक मुनि रहताथा। निदान एकदिन एकबधिक किसी मृगपर बाण चलातेहुये उस के पीछे दौड़ताजाता था जब वह आगे गया तो मृग बधिककी दृष्टिसे अगोचर होगया। बधिकने देखा कि, एक तपस्वी बैठाहै;उससे पूछा, हे मुनीश्वर ! यहां एकमृग आयाथा सो किस ओरको गया तुमनेदेखा हो तो मुझसेकहो ? काष्ठमौन बोले, हे बधिक ! हमको कुछ सुधिनहीं क्योंकि; हम निरहङ्कार हैं, हमारे साथ चित्त और अहङ्कार दोनोंनहीं। जो तुम कहो कि, इन्द्रियोंकी चेष्टा कैसेहोतीहै; तोजैसे सूर्य्यके आश्रय लोगोंकी चेष्टा होतीहै और दीपककी मणिके आश्रय चेष्टा होती है और सूर्य्य दीपक मणिप्रकाशके साक्षीभूतहैं तैसेही हम इन्द्रियोंके साक्षीभूतहैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक होतीहै। हमको इनसे कुछ प्रयोजन नहीं। हे बधिक ! अहंभावकरने वाला अहङ्कारहै। जैसे मालाके भिन्नभिन्न दाने तागे के आश्रय होते हैं और सबमें एकतागाहोती है तब माला होता है पर जब तागा टूटपड़ताहै तब दाने भिन्न भिन्न होजाते हैं; तैसेही इन्द्रियां रूपी दाने हैं और अहङ्काररूपी तागाहै: उस अहङ्कार रूपी तागेके टूटनेसे इन्द्रियां भिन्नभिन्न होजाती हैं। जैसे राजाके नाशहुये सेना और

गोपालके नष्टहुये गौवें भिन्न भिन्न होजाती हैं और पिताके नष्टहुये बालक व्याकुल होते हैं तैसेही अहंकारबिना इन्द्रियां व्याकुलहोती हैं। इनका अभिमान मुझमें कु- नहीं। इनका अभिमानी अहंकारथा सो मेरानष्ट होगयाहै। इन्द्रियां अपने २ विषय में बिचरती हैं मुझको इनका न रागहै और न द्वेषहै। हे साधु! मुझे न जाग्रत है और न स्वप्न,सुषुप्तिभासतीहै;इनतीनोंसेरहित हम तुरियापदमें स्थितहैं और हमारा अहं त्वं मिटगयाहै। हमनहींजानते कि,मृग बायेंगया या दाहिने क्योंकि; नेत्रइन्द्रियां देखनेवाली हैं उनको बोलने की शक्ति नहीं। ये अपने २ विषयको ग्रहण करती हैं, एकइन्द्रियको दूसरेकी शक्तिनहीं फिर तुझसे कौनकहे? इनसबका धारनेवाला अहं- कारथा जो सबको अपनाआप जानताथा। जैसे शरत्कालमें मेघ नष्टहोते हैं तैसेही अहंकारकेनष्टहोनेसे हम स्वच्छ,निर्मल शान्त तुरियापदमें स्थितहैं। इन्द्रियोंका जीव और अहंकार मृतकहोगयाहै और इन्द्रियांभी मृतकहोगई हैं देखनेमात्र दृष्टिआती हैं। जैसे भीतपर पुतलियां लिखीहों पर उनके कार्यकुछनहों तैसेही हमारी इन्द्रियोंसे कुछकार्य नहींहोता तो तुझसे कौनकहे। वशिष्ठजीबोले,हे रामचन्द्र! जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा तब बधिक समझकर उठगया। हे रामजी! तुरियापद शान्तरूपहै जहांजाग्रत,स्वप्न और सुषुप्ति तीनोंका अभाव है। वह केवल अद्वैत पद है। ये जो ब्रह्म, आत्मा,चिदानन्द आदिसंज्ञा हैं सो तुरियापदमें हैं और तुरियातीत पदमें शब्द की गमनहीं वह अशब्द पदहै। विदेहमुक्त पुरुष उसी पदको प्राप्तहोतेहैं और जी- वन्मुक्त साक्षात् करके तुरियावस्थामें बिचरते हैं; जहांजाग्रत जो दीर्घ दुःख सुखका भानहै सो नहीं और स्वप्न जो राग द्वेषके लिये अल्पकालहै सोभी नहीं और जड़ता तामस अवस्थाभी नहीं। इनतीनोंसे रहित तुरियापदहै और शांतहै उसमें कोई क्षोभ नहीं। यह जगत् उसकाआभासहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग वास्तवमें कुछनहीं—जलहीहै, तैसेही केवल तुरिया स्वरूप सत्तासमान तेरास्वरूपहै उसमें स्थितहो। उसमें ब्रह्मा, विष्णु,रुद्र,सिद्ध,ज्ञानी इत्यादिक स्थित हैं और काष्ठमौन बधिकका उपदेश करनेवाला भी तुरियापदमें स्थितहै। उसकी विशेषकलना जो भिन्नभिन्न नामरूपको देखनेवाली थी निवृत्त हुईथी केवल सत्तासमानमें स्थितथा। इससेकलनाको त्यागकर तुमभी तुरियापद में स्थित होरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकाष्ठमौनवृत्तान्तवर्णनंनाम षडधिकशततमस्सर्गः १०६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह बिश्व केवल आकाशरूपहै पर आत्मासे भिन्न कुछ नहीं, आत्माकाही चमत्कारहै। जैसे मेघमें बिजलीका चमत्कार होता है तैसेही यह विश्वरूप चित्तकला आत्माका चमत्कार है। हे रामजी! वास्तवमें ब्रह्मही है

कुछभिन्न नहीं । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! यह विश्व आपने ब्रह्मरूपकहा कि, मेघ में बिजलीकी नाईं क्षणमें उपजता और क्षणमें लीनहोता है; पर मेघमें बिजली दृष्टि आतीहै । जहां मेघहोता है वहां बिजलीभी होतीहै इससे मेघसे बिजली उत्पन्न हुई तो उसका कारण मेघहै ? हे मुनीश्वर ! इसचित्तस्पंद कलाके कारणकी उत्पत्ति ब्रह्म से कैसेहुई है सो कृपाकरके मुझसे समझाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जो वितंडक होकर तुम तर्क करतेहो सो कुछनहीं—इस नाशबुद्धिको त्यागो। यह तो बालकभी जानते हैं कि, बिजली क्षणभंगुर रूपहै सत्य नहीं। तुम्हारा और क्या प्रयोजनहै सो कहो। यह तर्क कारण कार्यरूपका कैसा करतेहो ? रामजी बोले, हे भगवन् ! यह स्पंदकला सत्यहै वा असत्यहै ? इसका कारण कौनहै जिससे यह फुरती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सर्वप्रकारसे सर्वात्माही स्थितहै । चित्त और चित्तस्पंद यह भेद कल्पना वास्तवमें कुछनहीं; ब्रह्मही अपने स्वरूपमें आप स्थित है और सब भ्रमसे भासते हैं । जैसे भ्रमदृष्टिसे आकाशमें मोती भासते हैं और नेत्र मूंदकर खोलो तो तरुवरे आकार भासते हैं, तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै । हे रामजी ! हम इससंसार समुद्रके पारहुये हैं । हम प्रभृति ज्ञानवानों के यथार्थ वचन सुनकर हृदयमें धारो तो शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहो और जो मूर्खता करके मेरे वचनोंको न धारोगे तो तुम्हारे दुःखनष्ट न होंगे और वृक्ष, तृण, बेल आदिक योनि पाओगे । हे रामजी ! आकाश और काल आदिक पदार्थ सर्वकलनासे सिद्धहुये हैं—आत्मामें कोईनहीं। हे रामजी ! वायुसे रहित जो समुद्रकाचमत्कारहै उसकाकारणकौन है? दीपकमें जोप्रकाश और अग्निमें उष्णताहै तो उसप्रकाश और उष्णताका कारण कौनहै ? वायुके निस्स्पंद और स्पंदका कारण कौनहै ? जैसे इनका कारण कोईनहीं, वायुकारूप स्पन्द निस्स्पन्दहै, अग्निकारूप उष्णताहै और दीपककारूप प्रकाश है तैसेही कलनाभी आत्मस्वरूप है—कुछभिन्न नहीं । हे रामजी ! यह कलना जो तुझ को भासती है उसको त्यागकरो । जबअपने आपको देखोगे तब संशय मिटजावेंगे । जैसे जब प्रलय कालका जलचढ़ता है तब सर्व जलमय होजाता है—कुछ भिन्ननहीं होता, तैसेही अपने स्वरूपको जबतुम देखोगे तबतुमको सर्वआत्माही भासेगा—आत्म से भिन्न कुछ न दृष्टआवेगा। हे रामजी ! आत्मा एकरसहै; सम्यक्दर्शनसे ज्योंका त्यों भासेगा और असम्यक् दर्शनसे औरका और भासेगा । जैसे रस्सीको यथार्थ न देखिये तो सर्पभ्रम होताहै और भयवान् होताहै और जब ज्योंकी त्यों रस्सीजानी तबसर्पभ्रम निवृत्त होजाता है तैसेही आत्माके न जानेसे जीव संसारी होता है,भयभीत होताहै, आपको जन्मता मरता मानताहै और सर्वविकार देहके आत्मामें जानता है पर जब आत्माको जानता है तब सर्वभ्रम निवृत्त होजाते हैं । जैसे नेत्रोंसेतारे

दिखते हैं और जबनेत्र मूंदलो तो उनकाआकार अन्तःकरणमें भासताहै क्योंकि,उनकी सत्यता हृदयमें होती है—पर जब हृदयसे उनकी सत्यता उठजाती है तब फिर नहीं भासते, तैसेही चित्तके भ्रमसे संसारहुआ है उसको मिथ्याजानो। हे रामजी! फुरनेमें जो दृढ़भावना हुईहै सोही सत्यहोकर मिथ्या संसारहुआहै; जब चित्तका त्यागकरोगे तबसंसारकी सत्यता जाती रहेगी। रामजी बोले, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, यह विश्व कल्पनामात्र है सो मैंनेजाना कि, इसीप्रकार है—कुछसत्य नहीं। जैसे राजालवण,इन्द्र ब्राह्मणकेपुत्र और शुक्रकी कलना जबफुरनेमें दृढ़हुई तब उन्हें फुरनरूप विश्व सत्यहोकर स्थितहुआ और भासनेलगा। हे भगवन्! यह मैं जानताहूं कि, विश्व फुरनेमात्र है पर जबफुरन मिटजाती है तो उसके पीछे जो शान्तिरूप शेष रहताहै सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अबतुम सम्यक् बोधवान्हुयेहो और जो जाननेयोग्यहै वहतुमने जानाहै। हे रामजी! अध्यात्म शास्त्रका यह सिद्धांतहै कि, और सब दृश्य असंभव है एकचिद्घन ब्रह्म अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! आत्माशुद्ध, निर्म्मल और विद्या—अविद्यासे रहितहै और संसारका उसमें अत्यन्त अभाव है। जो कुछ शुद्ध आदिक संज्ञाकहाती हैं वेभी फुरनेमें हैं आत्मातो निर्वाच्य पदहै। उसकी संज्ञाइतनी शास्त्रकारोंने कही है। शून्यवादीतो उसीको शून्य कहते हैं; विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं; उपासनावाले उसीको ईश्वर कहते हैं; कोई कहते हैं, आत्मा सर्वका कारणहै,वहीशेष रहता है; कोई आत्माको सर्वशक्त कहते हैं; कोई कहते हैं कि, आत्मा निःशक्तहै और कोई साक्षीआत्मा और शक्तिको भिन्नमानतेहैं। हेरामजी! जितनेवादहैं सो सर्वही कलनासेहुये हैं और कलनाको मानकर सब वाद उठाते हैं, वास्तवमें कोई वादनहीं आत्मा निर्वाच्यपदहै। मेरा जो सिद्धान्तहै वहभी सुनो। आत्मा सर्व कलनासे अतीत है। जैसे पवनस्पन्द शक्तिसे फुरता है और निस्स्पन्दसे ठहरजाताहै क्योंकि, स्पन्दभी पवनहै और निस्स्पन्दभीपवनहै इतरकुछ नहीं, तैसेही आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है और कलनाभी आत्माके आश्रय फुरती है आत्मासे भिन्न नहीं। औरजो भिन्नप्रतीत होती है उसको मिथ्या जानकरत्यागो और अपने निर्विकार स्वरूप में स्थितरहो। जब तुम आत्मस्वरूप में स्थितहोगे तब जितने शास्त्रोंके भिन्नभिन्न मतवादहैं सो कोई न रहेंगे केवल अपनाआपस्वच्छ आत्माही भासेगा। हे रामजी! उस निर्विकल्प पदको पाकर तुम शांतिमान्हु‍े और असत्कीनाईं स्थितहुयेहो क्योंकि, उनकी द्वैतकलना कुछनहींफुरती। हे रामजी! आत्मा, ब्रह्म आदिक शब्दभी उपदेशनिमित्त कहेहैं पर आत्माशब्दसे अतीत है और सर्व्व जगत् आत्मस्वरूप है और संसाररूप विकार आत्मामें असम्यक् दर्शनसे भासते हैं जैसे शून्य आकाशमें तरुवरे मोतीवत् भासतेहैं सो अविदित हैं।

तैसेही आत्मा में जगत्‌द्वैत अविदित भासता है । इससे जगत्‌द्वैतकी भावना त्याग कर निर्विकल्प आत्मस्वरूप में स्थितरहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽविद्यानाशरूपवर्णनंनाम सप्ताधिकशततमस्सर्गः १०७ ॥

रामजीनेपूछा, हे भगवन् ! देह,इन्द्रियां और कलनामें सार वस्तु क्याहै ? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी ! जो कुछ यह अहंत्वं आदि जगत्‌दृश्यहै सो सब चिन्मात्र है । जैसे समुद्र जलहीमात्र है तैसेही जगत् चिन्मात्र है । मनसहित षट्‌इन्द्रियोंसे जो कुछ दृश्य भासता है सो भ्रममात्र है । हे रामजी ! देह,इन्द्रियां आदि सब मिथ्या हैं; आत्मामें कोई नहीं चित्तकेकल्पेहुये हैं और चित्तहीइनको देखताहै। जैसे मरुस्थल में मृगको जलबुद्धिहोतीहै तो जलके निमित्त दौड़कर दुःखपाताहै, तैसेही चित्तरूपी मृग आत्मरूपी मरुस्थलमें देहइन्द्रियां विषयरूपी जलकल्पकर दौड़ता है और दुःखपाता है सो देहइन्द्रियोंमें भ्रमकरके भासते हैं । जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में वैतालकल्पताहै तैसेही मूर्खचित्तने देहइन्द्रियादिक कल्पनाकी हैं। हेरामजी ! आत्मा शुद्धनिर्विकार है उसमें चित्तने भ्रमसे विकार आरोपण किये हैं। जैसे भ्रान्ति दृष्टिसे आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं, तैसेही चित्तने देहइन्द्रियां कल्पी हैं पर चित्तभी आपसे कुछनहीं आत्माकी सत्तालेकर चेष्टाकरताहै। जैसे चुम्बककी सत्तालेकर लोहा चेष्टाकरता है तैसेही निर्विकार आत्माकी सत्तालेकर चित्त नानाप्रकारके विकार कल्पता है। इससे चित्तका त्यागकरो जिसमें तुम्हारा विकारजाल मिटजावे। हेरामजी ! देहइन्द्रियों में सारक्या है सो सुनो। जो कुछ संसार है उसमें सार देह है क्योंकि, सब देहके सम्बन्धी हैं। जबदेह मिटजाता है तब सम्बन्धीभी नहीं रहते । देह में सारइन्द्रियां हैं; इन्द्रियों में सार प्राण है; प्राणों में सार मन है और मनका सार बुद्धि है। बुद्धिका सारअहंकार है, अहंकारकासार जीव है, जीवकासार चिदावली है— चिदावली वासनासंयुक्त चेतना को कहते हैं—और चिदावलीका सार चित्त से रहित शुद्ध चेतन है जिसमें सर्व विकल्पकी लय है और जो शुद्ध, निर्मल और चिन्मात्र ब्रह्मआत्मा है उसमें कोई उत्थान नहीं। हे रामजी ! चिदावली पर्यन्त सर्वको त्याग कर इनका जो सार चेतनमात्र आत्मा है उसमें स्थित हो । विश्व कलनामात्र है, आत्मामें कुछ नहीं सङ्कल्पकी दृढ़तासे सत्की नाईं भासती है । आगे भी शुक्र और लवणराजा और इन्द्रके पुत्रोंका वृत्तान्त कहा है कि, संकल्पकी भावनासे उन्हें जगत् दृढ़ होकर भासि आयाथा सो वास्तव में कुछ नहीं था; तैसेही यह विश्वभी चित्तके फुरनेमें स्थितहै । असम्यक् दृष्टिसे अद्वैतआत्मामें दृश्य भासता है। जैसे सूर्यकी किरणों में जलभासता है तैसेही आत्मामें अहंकार आदिक अज्ञानसे

दृश्यभासतेहैं। इससे इनको त्याग र अपने वास्तवस्वरूपमें स्थित हो। हे रामजी! एकगढ़तुमसे कहताहूं जिसमें किसीशत्रुकी गमनहीं उसमें स्थितहो। हमभी उसी गढ़में स्थित हैं और जितने ज्ञानवान् हैं वे भी उसीमें स्थित होते हैं। हे रामजी! काम, क्रोध, लोभ अभिमानादिक विकार आत्मामें नहीं पायेजाते। जैसे रात्रिमेंदिन नहीं होता, तैसेही विकाररूपी दिन गढ़रूपीरात्रिमें नहीं पायाजाता इससे अचिन्त्य रूप गढ़में जहां कोई फुरना नहीं और जो केवल शान्तरूप है उसमें अहंभावत्याग कर स्थितहो तो अहंत्वंभाव निवृत्त होजावें। जबस्वरूपका साक्षात्कार होताहै तब ज्ञानी फुरने अफुरनेमें स्वरूपको तुल्य देखताहै और संपूर्ण जगत् उसको आत्मरूप भासताहै। इससे चिदावलीसे आदि देहपर्यन्त जो अनात्म है उसको क्रमकरके त्यागो। प्रथम देहको त्यागो, फिर इन्द्रियोंके अभिमानको त्यागो; इसी क्रमसे सब को त्यागके अपने वास्तव स्वरूप में स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवत्वअभावप्रतिपादनंनाम अष्टाधिकशततमस्सर्गः १०८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार चेतनमात्र है। आत्मासे कुछ भिन्न नहीं, आत्माही विश्वरूप होकर स्थित हुआ है। जैसे सूर्य्यकी किरणेंहीं जलाभास होती हैं तैसेही आत्माका चमत्कार दृश्यरूपहोकर स्थितहुआहै। जैसेसंकल्प और संकल्प-कर्त्ता भिन्ननहीं और आकाशही भ्रमसे मोतीकी मालाहोकर भासता है, तैसेहीआ-त्माही दृश्यरूप होकर भासता है। जैसेबीजही वृक्ष, फूल और फल होता है तैसेही विश्वआत्माही है और दृश्यरूप होकर स्थितहुआ है। जैसेजलके तरङ्ग जलही हैं तैसेही विश्व आत्माही है। हे रामजी! चिदावलीभी जीव, अहंकार, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां, देह, विश्व, आकाश, काल, दिशा, पदार्थ, सब आत्माही है—आत्मासे कुछ भिन्ननहीं। इससे विश्वको अपना स्वरूप जानो। जैसे सूर्य्यका प्रकाश सूर्य्यही है तैसेही तुमजानो कि, सर्व मैंहींहूं। जो ऐसे न जान सकोतो ऐसेजानो कि, देह भी जड़ है और इन्द्रियोंसे पालित है; सो मैं नहीं। इन्द्रियांभी मैं नहीं क्योंकि, प्राण इन्द्रियोंका सार है, जो प्राण न होतो इन्द्रियां किसीकामकी नहीं। प्राणभी मैं नहीं क्योंकि, प्राणका सारमनहै जोमन मूर्च्छितहोता है और प्राणआते जातेभी हैं तौभी किसीकाम के नहीं। मनभी मैं नहीं क्योंकि मनके प्रेरनेवाली बुद्धिहै; जो निश्चयबुद्धि करती है मनभी वहींजाता है। बुद्धिभी मैं नहीं क्योंकि, बुद्धिका प्रेरक अहंकार है और अहंकारभी मैं नहीं क्योंकि, अहंकारका सार जीव है जीवबिना अहंकारकि-सीकामका नहीं। जीवभी मैं नहीं क्योंकि,जीवका सार चिदावली है। चिदावली शुद्ध चिद्में चैतन्योन्मुखत्व होनेको कहते हैं। जीवसंज्ञासेप्रथम ईश्वरभाव चिदावलीभी

मैं नहीं क्योंकि, चिदावलीकासार चिन्मात्र है सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है। ये सर्व अनात्म भ्रमसे सिद्धहुये हैं, मैं केवल शान्तरूप आत्मा हूं । हे रामजी ! जो तुम्हारा वास्तवस्वरूप है वहीहोरहो उससे भिन्न अनात्ममें अहंप्रतीतका त्यागकरो तुम देहसे रहित निर्विकारहो, तुममेंजन्म मरणादिक कोई विकारनहीं और शांतरूप ज्योंकेत्योंस्थितहो । तुम कदाचित् स्वरूपसे और नहींहुये—उसीस्वरूपमेंस्थितरहो ॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसारप्रबोधनंनामनवाधिकशततमस्सर्गः १०९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मा चिन्मात्रसे बढ़के और सार कुछनहीं । उसीमें स्थित रहो जिसमें सबताप मिटिजावें । हे रामजी ! सर्व आत्माही स्थितहै। जैसे बीजही फलफूल होकर स्थितहोताहै तैसेही सर्व्वआत्माही स्थितहै तो निषेध और त्यागकिसका करिये । इतनाकह बाल्मीकिजी बोले,हे शिष्य ! ऐसे वशिष्ठजीके वचन सुनके रामजी प्रसन्नहुये और जैसेकमल सूर्य्यको देखकर खिलआताहै तैसेही रामजीकी बुद्धि वशिष्ठजीके वचनरूपी सूर्य्यसे खिलआई। तबबोले हेभगवन् सर्वधर्मज्ञ ! आपकी कृपासे अबमैं जगा। बड़ा आश्चर्य है कि आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अपना आपहै पर उसके प्रमादसे मैंने इतनेकालदुःखपाया । अहंता और ममतारूपी बड़ाबोझा जो शिरपरथा उससे मैं दुःखीथा। जैसे किसी के शिरपर पत्थरकी शिलाहो और ज्येष्ठ आषाढ़की धूपमें वह पैदलचले तो दुःखपाताहै और जो उसके शिरसे कोई उस शिलाको उतारले और छायामें बैठावे तो बड़े सुखको प्राप्तहोताहै; तैसेही अज्ञानरूपी धूपमें अहंताममतारूपी शिलासे मैं दुःखीथा और आपने वचनरूपी बलसे उसशिला को उतार लिया और आत्मरूपी वृक्षकी छायामें विश्राम कराया। हे भगवन् ! अब मुझे शान्तिपद प्राप्तहुआहै और मेरे तीनोंताप मिटगये हैं। अब जो सुमेरु पर्वतका भारभी आन प्राप्तहो तौभी मुझेकोई कष्टनहीं। अबमेरे सर्वसंशय निवृत्तहुयेहैं। जैसे शरत्कालका आकाश निर्म्मल और स्वच्छरूप होताहै तैसे रागद्वेषरूपी द्वन्द्वमेरा नष्टहुआहै। अब मैं अपने स्वभावमें स्थित हुआहूं परन्तु एकप्रश्नहै कृपाकरके उसका उत्तर कहिये। महापुरुष बारम्बार प्रश्न करने में खेद नहीं मानते । हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, सर्व ब्रह्मही है तो शास्त्रका विधिनिषेध और उपदेश किसको कहते हैं कि, यह कर्म कर्त्तव्यहै और यह कर्म कर्त्तव्य नहीं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मासे कुछभिन्न नहीं। विश्वभी उसका चमत्कार है। जैसे समुद्रमें पवनसे नानाप्रकार के तरंग फुरते हैं पर जलसे कुछभिन्न नहीं, तैसेही चेतनमात्र आत्मासे चैतन्योन्मुखत्व अहंभावको लेकर फुराहै उससे देश, काल, वस्तु बनगये हैं और शास्त्र फुरे हैं। फिर फुरने में दोरूप हुये हैं—एकविद्या और दूसरा अविद्या। उसमें विद्यारूप जो जीवहुये हैं वे ईश्वर कहाते हैं और अविद्यारूप जीव

हैं। जिनको अपने स्वरूपमें अहं प्रत्यय वास्तवकी रही है सो ईश्वरहैं और जिनको स्वरूपका प्रमादहुआ और संकल्प विकल्पमें बहते हैं वे जीव दुःखी हैं। हे रामजी! इतनी संज्ञाफुरने में हुई है तौभी आत्मासे कुछ भिन्न नहीं। जैसे एकही रस फूल, फल और वृक्ष हुआहै रससे कुछभिन्न नहीं। आत्मा रसकी नाईंभी प्रमाणको नहीं प्राप्त हुआ; फुरनेसे ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुईहै—आत्मामें कुछनहीं। हे रामजी! जिनका संकल्प आधिभौतिकमें दृढ़नहींहुआ वे जीव शीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहोतेहैं। और उनको आत्माका साक्षात्कार शीघ्रही होता है। जिनका संस्कार आधिभौतिक में दृढ़हुआ है वे चिरकालमें आत्मपदको प्राप्तहोते हैं। आत्मपदकी प्राप्तिविना वे दुःख पाते हैं और जिनको आत्मपदकी प्राप्तिहोती है वे सुखी होते हैं। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी के स्वरूपमें और कुछभेद नहीं केवल सम्यक् और असम्यक् दर्शनका भेद है। हे रामजी! विद्याभी दोप्रकारकी है—एक ईश्वर बाद और दूसरा अनीश्वर बाद है। जो ईश्वरबादी हैं वे तुरीया पदको प्राप्तहोते हैं और जो अनीश्वर वादी हैं उनको जब ईश्वरकी भावना होतीहै तबवे शास्त्र और गुरुद्वारा ईश्वर को प्राप्त होते हैं। ईश्वरबादीभी दोप्रकारके हैं—एक वे जो और वासना त्याग कर ईश्वर परायण होते हैं। वे शीघ्रही ईश्वरको प्राप्तहोते हैं। आत्माही ईश्वर है जो सर्वका अपना आप है। दूसरे ईश्वरको मानते हैं पर उनकी वासना संसारकी ओर होती है। वे चिरकालमें आत्मपदको प्राप्त होते हैं। अनीश्वरबादीभी दोप्रकारके हैं—एक कहते हैं कि, कुछहोगा। उनको होतेहोतेकी भावनासे शास्त्र और गुरुके द्वारा आत्मपदकी प्राप्ति होगी। दूसरे कहते हैं कि, कुछनहीं; उनको चिरकाल में जब आस्तिक भावनाहोगी तब आत्मपदको प्राप्तहोंगे। हे रामजी! उनके निमित्त बिधि और निषेध कहे हैं कि, शुभकर्मको अंगीकार करो और अशुभकर्म त्यागो तो उससे जब अन्तःकरण शुद्धहोगा तब आत्मपदकी प्राप्तिहोगी। जोविधिनिषेध शास्त्र न कहें तो बड़ा छोटेको भोजन करलेवे। इस निमित्त शास्त्रकादंड है। हे रामजी! स्वरूप से किसीको उपदेश नहीं, भ्रम में उपदेश है। जिस पुरुषका भ्रम निवृत्त हुआ है वह फिर मोहमें नहीं डूबता—जैसे जलमें डूबा नहीं डूबता। और जिसका चित्त वासनासे घेराहुआ संसरता है उसको इससंसारसे निकलना कठिनहै। जैसे उजाड़के कुयें में गिरके निकलना कठिन है तैसेही चित्तसे मिलकर संसारसे निकलना कठिन होता है। हे रामजी! इस चित्तको स्थिर करो कि, तुम्हारेदुःख मिटजावें और सत्तासमान पदको प्राप्तहो। हे रामजी! जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है और अनात्ममें अहं प्रत्यय निवृत्त हुआहै वह पुरुष जो कुछ करताहै उस में बन्धायमान नहींहोता वह सदाअकर्त्ता आपको देखताहै और जिसको अहंप्रत्यय

अनात्ममें है वह पुरुष करे तौभी कर्त्ता है और जो न करे तौभी कर्त्ता है। हेरामजी! जो ज्ञानी शुभकर्म करताहै तो शुभ कर्मकरता हुआ स्वर्गकोप्राप्त होताहै और अशुभ कर्म करनेसे नरक को प्राप्त होताहै। जो शुभकर्मको त्यागताहै तौभी नरक को प्राप्त होताहै क्योंकि; अनात्ममें आत्म अभिमान है। इससे बुद्धि और इन्द्रियोंको मनसे निग्रहकरो और कर्म इन्द्रियोंसे चेष्टाकरो। देखने,सुनने,सूंघनेको मैं तुम्हें नहींबर्जता; यही कहताहूं कि,अनात्ममें अभिमानको त्यागो। जब अनात्म अभिमानकोत्यागोगे तबशांतपदको प्राप्तहोगे और जहां तुम्हारा चित्तफुरेगा वहां आत्माहीभासेगा-आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा। इससे चित्तकोत्यागो—चित्त अहंभावकानामहै—और आत्म-पदमें स्थितहो। जैसे विश्वकी उत्पत्ति हुईहै सो भी सुनो। शुद्धचेतनमात्र स्वरूप में चिदावलीरूप अहंतरंग फुराहै। उसचिदावलीरूपीसमुद्रमें जीवरूपीतरंग उपजता है और जीवरूपी समुद्रमें अहंकाररूपी तरंग भासित हुआहै। अहंकाररूपीसमुद्रमें बुद्धिरूपीतरंग उपजाहै,बुद्धिरूपी समुद्रमेंचित्तरूपीतरङ्गभासाहै औरचित्तरूपीसमुद्र में संकल्परूपी तरङ्गउपजाहै। उससंकल्परूपी समुद्रमें जगत्‌रूपी तरङ्गउपजाहै और जगत्‌रूपी समुद्रमें देहरूपी तरंग भासित हुआहै और उसके संयोगसे दृश्यकाज्ञान हुआहै कि; यह पदार्थहै, यहनहींहै, ये ऐसेहैं; उसीमें देश, काल, दिशा सबहुये हैं। हे रामजी! निदान वे सब संकल्पसे होगये हैं सो आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। केवल शान्तरूप एकरस आत्मा है उसमें नानाप्रकारके आचाररचे हैं। जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारहो भासतीहै सो अपनाही अनुभव होताहै तैसेही इसजगत्‌कोभी जानो; आत्मा सर्वदा एकरस, अद्वैत, शुद्ध, परम निर्वाण, अपने आपमें स्थित है और फुर-नेसे नानाप्रकारकी कल्पना उदय हुई है। हे रामजी! शुद्धआत्मामें चिदेव संज्ञाभी-संकल्पसे हुई है—"चिदेवपंचभूतानि; चिदेव भुवनत्रयं" आत्मा निर्वाच्यपद है उसमें बाणीकी गमनहीं और शुद्ध शांतरूप है। चिदेव जो फुरी है उस फुरनेमें संसार हुये कीनाईं स्थितहै। जैसे एकही बीजनेवृक्ष, फूल, फल आदिक संज्ञापाई है सो बीजसे भिन्न कुछनहीं और आत्मा बीजकीनाईंभी नहीं संकल्पसेही नानासंज्ञा कल्पीहै और जगत् स्थितहुआ है तौभी आत्मासे कुछभिन्ननहीं। जैसे वायुचलतीहै तौभी वायुहै और ठहरतीहै तौभी वायुहै; तैसेही आत्मामें नानात्व कुछनहीं केवल शुद्धअद्वैतहै। आत्मरूपी समुद्रमें नानाप्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं। हे रामजी! आकारभी आत्मासे कुछ भिन्ननहीं; जो आत्मासे भिन्नभासे उसे मिथ्याजानो और मृगतृष्णाके जलकीनाईं जानकर उसकी भावना त्यागो और स्वरूपकी भावना करो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकत्वप्रतिपादनंनाम
दशाधिकशततमस्सर्गः ११०॥

वशिष्ठजी बोले;हे रामजी ! मेरे बचनोंको धारो और हृदयमें आस्तिक भावनाकरो। जब सर्वत्याग करोगे तब चित्तक्षीण होजावेगा और जब चित्तक्षीण हुआ तब शांति होगी। हे रामजी ! काष्ठवत् मौनहोकर हृदयमें सर्वका त्यागकरो। बाहरसेकर्मोंको करो पर अभिमानसे रहित होकर अन्तर्मुखी होरहो। अन्तर्मुखी आत्मामें स्थित होनेको कहते हैं। जब आत्मामें स्थितहोगे तब बिद्यमान दृश्यभी तुम्हें न भासेगा क्योंकि; तब सर्व आत्माही भासेगा। जो तुम्हारे पास भेरीके शब्दहोंगे तौभी न सुन पड़ेंगे और जो सुगन्धिलोगे तौभी नहीं ली;निदान जो कुछक्रिया करोगे सो तुम्हें स्पर्श न करेगी–आकाशकी नाईं सर्वसे असंग रहोगे। हे रामजी ! स्वरूपसे भिन्न न देखना और आत्मासे भिन्न न फुरना, अन्धे गूंगेकी नाईं और पत्थरकी शिलावत् मौनहो रहो तब तुम्हारी चेष्टा यंत्रकी पुतलीवत् खड़ीहोगी। जैसे यंत्रकी पुतली तागेकी सत्तासे चेष्टा करती है तैसेही तुम्हारी नीति शक्तिसे प्राणोंकी चेष्टा होगी। स्वाभाविक क्रियामें अभिमान से रहित होकर स्थित होना, जो अभिमान सहित चेष्टा करताहै वह मूर्ख और असम्यक्दर्शी है और जो सम्यक्दर्शी है उसको अनात्ममें अभिमान नहीं होता। हे रामजी ! जिसको अनात्म अभिमान नहीं और जिसकाचित्त दृश्यमें लेपायमान नहीं होता वह सारी सृष्टिको संहारकरे अथवा उत्पन्नकरे उसको कुछ बन्धननहीं होता क्योंकि; वह सर्व्वकर्म अभिलाषसे रहित होकर करताहै। हे रामजी ! समाधिमें स्थितहो और जाग्रत्कीनाईं सबकर्म करो। तुममें सबकर्म दृष्टि भी आवैं तौभी उनमें सुषुप्तकीनाईं कोई फुरना न फुरे। अपने स्वरूपकी समाधि भी रहे। समाधिभीतब कहिये कि, कोई दूसराहो जो इसमें स्थितहो व इसका त्याग करे। हे रामजी ! जहां एक शब्द और दो शब्द भी नहीं कहसक्ते वह अद्वितीयात्मा परमार्थ सत्ताहै; उसमें चित्तन नानाप्रकारके बिकारकल्पे हैं–ज्ञानीको एकरस भासता है। ज्ञानीको ज्ञानीजानता है। जैसेसर्पके खोजको सर्पही जानताहै; तैसेहीज्ञानीको एकरस आत्माही भासताहै सो ज्ञानीही जानताहै। मूर्खको सङ्कल्पसे नानाप्रकारका जगत् भासताहै इससे सङ्कल्पको त्यागकर अपने प्रकृत आचारमें बिचरो। जैसे उन्मत्त और बालककी चेष्टा स्वाभाविक होती है कि, अंगहिलते हैं; तैसेही अभिमानसे रहित होकर चेष्टाकरो। जैसे पत्थरकी शिला जड़ होती है तैसेही दृश्यकी भावनासे ऐसे रहितहो कि, जड़कीनाईं कुछ न फुरे। जब ऐसेहोगे तब शांतपदको प्राप्त होगे। हे रामजी ! चित्तके सम्बन्धसे क्षोभ उत्पन्न होताहै। जैसे बसन्तऋतुमें फूल उत्पन्न होते हैं तैसेही चित्तरूपी बसन्तऋतु में दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं। जब तुम चित्तको शान्त करोगे तब परमपदको प्राप्त होगे जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है। इससे तुम असंग होरहो। जब तुम स्थूलसे स्थूलहोगे तबभी

असंगरहोगे । ऐसे पदकोपाकर काष्ठ पत्थरकी नाईं मौन होरहो । हे रामजी ! दृश्य पदार्थको त्यागकर जो द्रष्टा जाननेवालाहै उसमें स्थितहो ।-हे रामजी ! इन्द्रियांतो अपने २ विषयको ग्रहण करती हैं उनकी ओर तुम भावना मतकरो कि, यह सुन्दर रूप है और इसकी प्राप्तिहो । भले के प्राप्त होनेकी भावना मतकरो; इनके जाननेवाला जो आत्माहै उसीमें स्थितरहो । जो पुरुष द्रष्टामें स्थित होताहै वह गोपदकी नाईं संसारसमुद्रको लांघजाताहै । हे रामजी ! जो पदार्थ दृष्टि आते हैं उनमें अपनी अपनीसृष्टिहै सो संकल्पमात्रहीहै और अपनेअपने संकल्पमेंस्थितहै पर सर्वसंकल्प आत्माके आश्रय हैं । जैसे सब पदार्थ आकाशमें स्थित हैं तैसेही सर्व संकल्पकी सृष्टि आत्माके आश्रयहै । एकके संकल्पको दूसरा नहींजानता—सृष्टि अपनी अपनी है । जैसे समुद्रमें जितने बुदबुदे हैं उनको जलसे एकता है और आकारसे एकता नहीं, तैसेही स्वरूपसे सबकी एकता है; और संकल्पसृष्टि अपनी अपनी है । जो पुरुष ऐसे चिन्तताहै कि, मैं उसकी सृष्टिकोजानूं तब जानताहै । हे रामजी ! आत्मा कल्पवृक्षहै; उसमें जैसीकोई भावनाकरताहै तैसीही सिद्धिहोतीहै । जब ऐसीहीभावना करके जीव स्वरूपमें लगता है कि, सबसृष्टि मुझेभासे तो भावनासे भासिआतीहै । ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता क्योंकि, आत्मासे भिन्न वह कोई पदार्थ नहीं जानता और जानताहै कि, स्वरूपसे सबकी एकताहै पर संकल्परूपसे एकता नहीं होती । जैसे तरङ्गोंकी एकता नहीं पर जलकी एकता है और जो एक तरङ्ग दूसरे के साथ मिलजाता है तो उससे एकताहोती है, तैसेही एक का संकल्प भावनासे दूसरे के साथ मिलता है; इससे ज्ञानी जानता है कि, संकल्परूप आकार नहीं मिलते और स्वरूपसे सबकी एकता है । जिसकी भावना होती है कि, मैं इसकी सृष्टिको देखूं तो वह उसके संकल्पसे अपना संकल्प मिलाकर देखता है तब उसकी सृष्टि जानता है । जैसे दो मणियोंका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है और जब दोनों इकट्ठी एकही ठौरमें रखिये तो दोनोंका प्रकाश इकट्ठा होजाता है; तैसेही संकल्पकी एकता भावना से होती है । ज्ञानी को प्रथम संकल्पहो कि, मैं उसकी सृष्टि देखूं तो संकल्पसे देखता है और ज्ञानके उपजेसे बांछानहीं रहती । हे रामजी ! इच्छा चित्तका धर्म है । जब चित्तही नष्टहोगया तब इच्छा किसकी रहे । जब स्वरूपका प्रमाद होताहै तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होता है कि, यहमेरा आहार हुआ और मैं इसको भोजन करूंगा । हे रामजी ! जो पुरुष चित्तकी ओर हुआ है और जिसको स्वरूपकी भावना नहीं हुई सो चित्तरूपी दैत्य उसे जन्मरूपी बनमें लिये फिरता है; उसको भोजन करता रहता है; उसका पुरुषार्थ नाश करता है और आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न नहीं होने देता । जैसे वृक्षको अग्नि लगे तो फिर उसमें फल नहींलगते, तैसेही पुरुषार्थ-

उसको ज्ञान प्राप्तहोना कठिनहै—शास्त्रके अर्थ के न जानने वालोंको पशुधर्मा कहते हैं। वे अपनी इच्छासे विचरकर अशुभ को ग्रहण करते और विचार से रहित होते हैं। मनुष्य भी दो प्रकारके हैं—एक प्रवृत्तिके धारने वाले और दूसरे निवृत्तिके धारने वाले। प्रवृत्तिमार्ग इसे कहते हैं कि, जिसको शास्त्र शुभकहे उसको ग्रहण करना और जिसे अशुभ कहे उसका त्याग करना और कामना करके फलके निमित्त यज्ञादिक शुभकर्म करने कि, स्वर्ग, धन, पुत्रादिक मुझे प्राप्तहों। ऐसी कामना धारकर जो शुभ-कर्म करके इसप्रकार संसार समुद्र में बहते हैं वे चिरकाल में निवृत्तिकी ओर भी आते हैं तब स्वरूप पाते हैं। निवृत्ति यह है कि, जो निष्काम होकर और शुभकर्म करके अन्तःकरण शुद्धकरताहै उसको वैराग्यउपजताहै और वह कहता है कि, मुझे कर्मोंसे क्या है और फलोंसे क्या है; मैं किसीप्रकार आत्मपदको प्राप्तहोऊं। वह यही विचारता है कि, मैं संसारसे कब मुक्तहूंगा? यह संसार मिथ्या है और मुझे भोगसे क्याहै? यह भोगतो सर्प है। हे रामजी! इसप्रकार वह भोगोंकी निन्दाकरताहै; संसार से उपरत होता है; शम, दम आदिक जो ज्ञानके साधन हैं उनमें विचरता है; देश, काल और पदार्थको शुभ अशुभ विचारता है; मर्यादासे बोलता है; सन्तजनोंका सङ्ग करता है और सत् शास्त्र और ब्रह्मविद्याको बारम्बार विचारता है। इसप्रकार सन्त जनों के सङ्गसे उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है। जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमाकी कला दिन दिन प्रति बढ़ती है तैसेही उसकी बुद्धि बढ़ती है और विषयों से उपरत होती है तब वह तीर्थ, ठाकुरद्वारों आदि शुभ स्थानों को पूजता है; देह और इन्द्रियों से सन्तोंकी टहल करता है और सर्वसे मित्रता रखके दया, सत्य और कोमलता पूर्वक विचरता है। वह ऐसे वचन बोलता है कि जिससे सब कोई प्रसन्नहो और जो यथा शास्त्रहों; इससे भिन्न किसीको नहीं कहता। वह अज्ञानीका सङ्ग त्यागता है; स्वर्ग आदिक सुखकी भावना नहीं करता है—केवल आत्मपरायण होता; सन्त और शास्त्रोंकी दृढ़ भावना करता है और उनके अर्थों में सुरत लगाकर और किसीओर चित्त नहीं लगाता है। जैसे कादर्य दरिद्री सर्वदा धनकी चिन्तना करता है तैसेही वह सदा आत्माकी चिन्तना करताहै। जो पुरुष इतनेगुणों संयुक्त है उस को प्रथम भूमिका प्राप्त हुई है। वह पापरूपी सर्पको मोरके समान नाशकरता है; सन्तजन, सत्शास्त्र और धर्मरूपीमेघको गर्दनऊंची करके देखता है और प्रसन्न होता है। इसकानाम शुभेच्छा है। उसको फिर दूसरीभूमिका प्राप्त होती है तब जैसे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला बढ़तीजातीहै तैसेही उसकी बुद्धिबढ़ती जाती है। उसके ये लक्षण हैं; सत्शास्त्रों और ब्रह्मविद्याको विचारके दृढ़भावना करनी। उस विचार का कवच जो गलेमें डालता है उससे शस्त्रोंका कोई घाव नहीं लगता। इन्द्रियरूपी

चोर के हाथमें इच्छारूपीबरछीहै सो विचाररूपी कवच पहिरनेवालेको नहींलगती। हे रामजी ! इन्द्रियरूपी सर्पमें तृष्णारूपीविष है उससे मूर्खको मारताहै। विचारवान् पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंको नाशकर डालता है और सर्व ओरसे उदासीन रहता है और दुर्जनों की सङ्गतिका बलकरके त्याग करताहै। जैसे गधातृणको त्यागता है तैसेही मूर्खकी संगति वह त्यागता है। उसमें सर्वइच्छा का भी त्यागहोता है परन्तु एक इच्छारहतीहै, कि दया सबपर करताहै और सन्तोषवान् रहताहै। उसके शुद्ध-धगुण स्वाभाविक जातेरहतेहैं और दम्भ, गर्व, मोह, लोभ आदिक स्वाभाविक नष्ट होजातेहैं। जैसे सर्पकंचुकी को त्यागकर शोभायमान होता है तैसेही विचारवान् इन्द्रियों के विषयोंको त्यागकरके शोभता है। जो उसमें क्रोधभी दृष्टिआता है तो क्षणमात्र होताहै हृदयमें स्थित नहीं होसक्ताहै। वह खाना, पीना, लेना, देना आदि क्रिया विचारपूर्वक करताहै और सर्वदा शुद्धमार्ग्ग में विचरताहै; सन्तजनोंका संग और सत्शास्त्रोंके अर्थ विचारने से बोधको बढ़ाता और तीर्थोंके स्नानसे कालव्यतीत करताहै। हे रामजी ! यह दूसरी भूमिका है। जब तीसरी भूमिका आतीहै तब श्रुति जो वेद और स्मृति जो धर्म्मशास्त्र उनके अर्थ हृदयमें स्थित होते हैं और जैसे कमलपर भँवरे आनस्थित होतेहैं, तैसेही उसपुरुषके हृदयमें शुभगुण स्थितहोते हैं; तब उसे फूलोंकी शय्या सुखदायी नहींभासती, वन और कन्दरा सुखदायक भासतेहैं। निदान उसका वैराग्य दिन २ बढ़ताजाताहै और वह तालाब, बावलियों और नदियोंमें स्नानकरके शुभस्थानों में रहताहै; पत्थरकी शिलापर शयनकरताहै; देहको तपसे क्षीणकरताहै, धारणासे चित्तको किसीठौरमें नहींलगाता; आत्मभावना और ध्यान करके भोगों से सर्वदा उपराम होता है। भोगों को अन्तवन्त विचारके कि, यह स्थिर नहीं रहते और देहके अहङ्कारको उपाधी जानकर वह त्यागताहै, देहकोरक्त, मांस, पुरीषादिकसे पूर्ण जानकर उससे अहङ्कारको त्यागता है और निन्दाकरता है और सूखे तृणकी नाईं तुच्छजानकर त्यागताहै। जैसे विष्ठा संयुक्त तृणको पशुत्यागता है तैसेही देहके अहङ्कारको वह त्यागताहै और कन्दराओंमें विचरके फल फूलों का आहार करताहै, सन्तजनोंकी टहलकरके आयुर्बल बिताताहै और सदा असंगरहता है। यह तीसरी भूमिका है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रथम,द्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारोनाम द्वादशाधिकशततमस्सर्ग्गः ११२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ज्ञानका यह साधनहै कि, ब्रह्मविद्याको विचार के उसके अर्थको बारम्बार भावनाकरना और पुण्यक्रिया में विचरना; इससे भिन्न ज्ञानका कोई साधन नहीं—इसीसे ज्ञानकी प्राप्तिहोतीहै। जिस पुरुष को ऐसी भावना

होती है उसको यदि नाना प्रकारकी सुगन्ध-अगर, चन्दन, चोये आदि और अप्सरा अनिच्छित प्राप्तहों तो उनका निरादर करता है और जो स्त्रीको देखताहै तो माता समान जानता है; पराये धनको पत्थर के बट्टे समान देखकर बांछा नहीं करता और सब भूतोंको देखकर दयाही करताहै। जैसे आपको सुखसे प्रसन्न और दुःख से अनिष्टजानता है तैसेही वह और को भी आप जानकर सुखदेताहै और दुःख किसी को नहीं देता। इसप्रकार वह पुण्यक्रिया में विचरताहै। सत्शास्त्रों के अर्थका अभ्यास करताहै और सर्वदा असंग रहताहै। असंगतिभी दो प्रकारकीहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संग असंग का लक्षण क्याहै-इनका भेद समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! असंग दो प्रकारकाहै-एक समान और दूसरा विशेष; उनका लक्षण सुनो। समान असंग यह है कि मैं कुछ नहीं करता। न मैं किसी को देताहूं और न मुझे कोई देताहै। सर्वईश्वरकी आज्ञाहै,जिसको धन देनेकी इच्छाहोती है उसको धनदेताहै और जिससे लेना होताहै उससे लेताहै,अपने आधीन कुछनहीं। समानअसंगवाला जो कुछ दान,तप,यज्ञादिकरताहै वहईश्वरार्पण करताहै और अपना अभिमान कुछ नहीं करता और कहता है कि,सब ईश्वरकी शक्तिसे होताहै। इसप्रकार निरभिमान होकर वह धर्म चेष्टामें स्वाभाविक विचरताहै और जो कुछ इन्द्रियों के भोगकी सम्पदा है उसको आपदाजानता है, और भोगों को महा आपदारूपमानता है। संपदा आपदारूपहै; संयोग वियोगरूपहै और जितने पदार्थ हैं वे सब सन्निपातरूपहैं-विचारसे नष्टहोजातेहैं इससे सबको वह नाशरूपजानताहै। यह संयोग वियोग को दुःखदायी जानताहै; परस्त्री को विषकीबेलि समान रससे रहित जानताहै और सर्वपदार्थों को प्रणामी जानकर किसीकी इच्छा नहीं करता सम्पूर्ण विश्व का जो ईश्वर है उसे जिसको सुखदेना है उसको सुखदेताहै और जिसको दुःखदेना है उसको दुःखदेताहै; अपने हाथ कुछ नहीं करने कराने वाला ईश्वरहै। न मैंकरताहूं; न मैं भोक्ताहूं; और न मैं वक्ताहूं-सब ईश्वरकी सत्तासे होताहै। ऐसे निरभिमानहोकर वह पुण्यक्रिया करताहै। यह समान असंग है। उसके वचन सुनने से श्रवणको अमृत की प्राप्तिहोतीहै। इसप्रकार सन्तों के मिलने और तीसरी भूमिकाकी प्राप्ति से जिस की बुद्धिबढ़ी है और जो निरभिमानहै उसके उपदेश में अनुभवसे तब तक अभ्यास करे जब तक हाथपर आंवलेकीनाईं आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्षहै विशेष असंगवाला कहताहै कि; न मैं कुछकरताहूं,न कराताहूं; केवल आकाशरूप आत्माहूं न मुझमें करनाहै,न करानाहै;न कोई और है,न मेराहै;मै केवल आकाशरूप अद्वैत आत्माहूं। हेरामजी! वह पुरुष न भीतर,न बाहर,न पदार्थ,न अपदार्थ,न जड़,न चेतन, न आकाश न पाताल,न देश,न पृथ्वी,न मैं,न मेरेको देखताहै,वह निर्भास,अज,अविनाशी,सर्वशब्द

अर्थोंसे रहित,केवल शून्य आकाशमें स्थितहै। चित्तसे रहित चेतनमें जो प्रस्थितहै उस को श्रेष्ठ असंग कहतेहैं और उसकी चेष्टा दृष्टि भी आतीहै तौ भी उसमें हृदयसे पदार्थोंकी भावनाका अभावहै। जैसे जलमें कमलदृष्टि भी आताहै परन्तु ऊंचाही रहताहै,तैसेही वह क्रियामें विचरता दृष्टि भी आता है परन्तु असंग रहता है। उसको कोई कामना नहीं रहती कि,यह हो और यह न हो क्योंकि;उसको संसारका अभाव निश्चय हुआहै और सर्वकलनासे रहितहै। उसको आत्मासे भिन्न किसी पदार्थ की सत्ता नहीं फुरती। यह श्रेष्ठ असंग कहाता है। कार्य करनेसे उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करनेमें कुछ हानि नहीं होती; वह सर्वदा असंगहै और संसार में कदाचित् नहीं डूबता क्योंकि,वह तो संसार समुद्रके पार हुआ है और उसने अनात्ममें आत्म भावना त्यागी है; अहंभावका त्याग किया है; इष्ट अनिष्ट रूप जितने पदार्थ हैं उनके सुख दुःख की वेदना उसे नहीं फुरती और वह सदा मौनरूप है। उसे पैसा पत्थरके समानहै। यह श्रेष्ठ असंग कहाता है। हे रामजी! एक कमल है जो अज्ञानरूपी कीचड़से निकलकर आत्मरूपी जलमें विराजताहै उसका बीज संसारकी अभावनाहै। उस जलमें तृष्णा रूपी मछलियां हैं जो उस कमलके चहुंओर फिरती हैं और उसके साथ कुकर्म दुःख रूपी कांटे हैं। अज्ञानरूपी रात्रिसे उस कमलका मुख मूंदा रहताहै और विचार रूपी सूर्य के उदय हुयेसे खिलता और शोभताहै। उसमें सुगन्ध सन्तोष है और वह हृदय के बीच लगता है। उसका फल असंग है। यह तीसरी भूमिकामें उगताहै। हे रामजी! सन्तकी संगति और सत्शास्त्रों का विचारना सार को प्राप्त करता है और अमृत मोक्षको प्राप्त होताहै। बड़ा कष्टहै कि,ऐसे स्वरूपको विस्मरण करके जीव दुःखी होते हैं। इसका स्वरूप जो दुःखोंका नाश करता है और जिसमें कोई दुःख नहीं आनन्द रूपहै सो इन भूमिकाओं के द्वारा प्राप्त होताहै। हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञान के निकट बनतीहै और विचारवान् इन भूमिकाओंमें स्थित होकर बुद्धिको बढ़ाते हैं। जब इस प्रकार वह बोधको बढ़ाता है तो शास्त्रकी युक्तिसे रक्षा करता है और क्रम करके इस तीसरी भूमिका को प्राप्त होताहै जहां असंगता प्राप्त होतीहै। जैसे किसान खेतीकी रक्षा करके बढ़ाताहै तैसेही वह विचाररूपी जलसे बुद्धिको बढ़ाता है तब बुद्धिरूपी वल्ली बढ़तीहै। फिर चतुर्थ भूमिका प्राप्त होतीहै और अहंकार, मोहादिक शत्रुओंसे रक्षा करताहै। हे रामजी! इस भूमिकाको प्राप्त होकर ज्ञानवान् होता है सो यह भूमिका क्रम करके प्राप्त होतीहै अथवा बड़े पुण्य किये हो उनसे आन फुरती है वा अकस्मात् भी आन फुरती है। जैसे नदीके तटपर कोई आ बैठाहो और नदीके वेगसे बीचमें जापड़े तैसेही जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है तब बुद्धिको बढ़ाती है और जब बुद्धिरूपी वेलि बढ़तीहै तब ज्ञानरूपी फल लगताहै। जब ज्ञान

उपजता है तब उसमें प्रत्यक्ष क्रिया दृष्टि भी आवे तौ भी उसका वह अभिमान नहीं करता जैसे शुद्धमणि प्रतिबिम्बको ग्रहण भी करतीहै परन्तु उसमें कोई रंग नहीं चढ़ता॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेतृतीयभूमिकाविचारोनाम त्रयोदशाधिकशततमस्सर्गः ११३ ॥
रामजी बोले,हे भगवन् ! आपने भूमिका का वर्णन किया पर उसमें मुझे यह संशय है कि,जो भूमिकासे रहित और प्रकृतके सम्मुख हैं उनको भी कदाचित् ज्ञान उपजेगा अथवा न उपजेगा ? और जो एक, दो, वा तीन भूमिका पाकर शरीर छूटे और आत्माका साक्षात्कार न हुआ हो और उसको स्वर्गकी भी कामना नहीं तो वह कौन गति पाताहै? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! जो पुरुष विषयी हैं उनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है;वे वासना करके घटीयंत्रकी नाईं कभी स्वर्ग और कभी पाताल को जाते हैं और दुःख पाते हैं; कदाचित् अकस्मात् काकतालीय न्यायकी नाईं उनको सन्त केसंग और सत्शास्त्रोंको सुन्नेकी वासना फुरतीहै। जैसे मरुथलमें बेलि लगना कठिनहै तैसेही जिस परुषको आत्माका प्रमादहै और भोगकी भावनाहै उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है। परन्तु जब अकस्मात् उसे सन्तोंके संगसे वैराग्य उपजता है और उसकी बुद्धि निवृत्तिकी ओर आतीहै तब भूमिकाके द्वारा उसे ज्ञान प्राप्तहोता है और तभी मुक्त होता है। हे रामजी ! अकस्मात् यही भावना उपजे बिना योनियों में भ्रमता है। जिसको एक अथवा दो भूमिका प्राप्त हुई हैं और शरीर छूटगया तो वह और जन्म पाकर ज्ञानको प्राप्त होता है और पिछला संस्कार जाग आता है और दिन दिन बढ़ता जाता है। जैसे बीजसे प्रथम वृक्षका अंकुर होताहै, फिर डाल, फूल और फलसे बढ़ता जाता है तैसेही उसको अभ्यासका संस्कार बढ़ता जाता है और ज्ञान प्राप्त होताहै। जैसे पहलवान खेलकर रात्रिको सोजाताहै और फिर दिन हुये उठता है तब पहलवानही [illegible] अभ्यास आय फुरताहै और जैसे कोई मार्ग चलता चलता सोजावे और जागकर चलनेलगे तैसेही वह फिर पूर्वके अभ्यास को लगाता है। हे रामजी ! जिसको यह भावना होती है कि,मुझे विशेषता प्राप्तहो वह जन्म पाता है और ब्रह्मासे चींटी पर्यंत जिसको विशेष होने की कामना है सो जन्म पाता है। ज्ञानीको भोगों की और विशेष प्राप्त होनेकी इच्छा नहीं होती । जिसको भोगकी इच्छा होती है वह भोगसे आपको विशेष जानताहै और अनिष्टकी निवृत्ति की इच्छा करता है ज्ञानी को कोई वासना नहीं होती कि,यह विशेषता मुझे प्राप्तहो इसीसे वह फिर जन्म नहीं पाता जैसे भूनाबीज नहीं उगता तैसेही बासनासे [illegible] ज्ञानी जन्म नहीं पाता। हे रामजी ! जन्मका कारण वासना है। जैसी जैसी बासना होती है तैसी २ अवस्था को जीव प्राप्त होताहै। नानाप्रकार कि बासनाहैं; जब शरीर छूटने

का समय आताहै तब जो बासना दृढ़ होतीहै और जिसका सर्वदा अभ्यास होताहै वही अन्तकालमें दिखाई देतीहै चाहे वह पाठकी, तपकी, कर्मकी, देवता इत्यादिक की हो सबको मर्दन करके वही उस समय भासती है। हे रामजी! उस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं सो भी नहीं भासते और पांचो इन्द्रियोंके बिषय बिद्यमानहों तौ भी नहीं भासते पर वही पदार्थ भासताहै जिसका दृढ़ अभ्यास किया होताहै। बासना तो अनेक होती हैं परन्तु जैसी बासना दृढ़ होती है उसीके अनुसार शरीर धारता है। जब देह छूटता है तब मुहूर्त्त पर्यन्त सुषुप्ति की नाई जड़ता रहती है उसके उपरान्त चेतनताहोती है तब बासना के अनुसार शरीर देखताहै और जानता है कि, यहमेरा शरीर है; मैं उत्पन्नहुआहूं। कोई ऐसे होतेहैं कि, उसीक्षणमें युगका अनुभवकरते हैं; कोई ऐसे होतेहैं कि, चिरकाल पर्यंत जड़रहतेहैं तब उनको चेतनता फुरतीहै और उसके अनुसार संसारभ्रम देखते हैं और कोई जो संस्कारवान् होतेहैं उनको शीघ्रही एकक्षणमें चेतनता होती है और वे जानते हैं कि, हम उसठौर मुएथे और इसठौर जन्मे हैं; यह हमारी माता है, यह पिता है और यह कुलहै। इसप्रकार एकमुहूर्त्त में जागकर वे देखतेहैं और बड़े कुलको देखतेहैं। इसी प्रकार वे परलोक और यमराजके दूतोंको देखते हैं और जानते हैं कि, यहहमेंलिये जातेहैं और हमारे पुत्रोंने पिण्डकिये हैं उनमें हमाराशरीर हुआ है और दूत लेचलेहैं। तब आगे ये धर्मराज को देखते हैं और उसके निकट जाके खड़े होतेहैं और पुण्य पाप दोनों मूर्त्तिधार कर उनके आगे स्थित होते हैं। तब धर्मराज अन्तर्यामी से एक २ का हाल पूछता है कि, इसने क्या कर्म किये हैं! यदि पुण्यवान् होताहै तो स्वर्ग भोग भोगाकर फिर योनिमें डालाजाता है और जो पापी होता है तो नरक में डालदेते हैं। निदान सब प्रकार जन्मों को धारता है। सर्पकी योनि में कहता है कि मैं सर्पहूं और बैल, वानर, तीतर, मच्छ, बगला, गर्दभ, बेलि, वृक्ष इत्यादिक योनि पाता है, तो जानता है कि, मैं यहीहूं। अकस्मात् काकताली योगकी नाई कदाचित् मनुष्य शरीर पाताहै तो माताके गर्भ में जानताहै कि, यहां मैंने जन्म लियाहै; यह मेरी माता है, मैं पितासे उत्पन्न हुआहूं और यह मेराकुलहै। फिर बाहर निकलता है और बालक होताहै तब जानताहै कि, मैं बालकहूं; यौवन अवस्थ होती तब जानताहै कि, मैं जवानहूं और फिर वृद्ध होताहै त जानताहै कि, मैं वृद्धहूं। इस प्रकारकाल बिताकर जब मरता है तो सर्प, तोता, तीतर, वानर, मच्छ, कच्छ, वृक्ष, पशु, पक्षी, देवता इत्यादिक का जन्म धारण करताहै। हे रामजी! संसारमें वह घटीयंत्रकी नाई फिरता है और कभी ऊर्ध्व और कभी अधको जाताहै और इसी प्रकार स्वरूप के प्रमाद से दुःखपाताहै। हे रामजी! इतना बिस्तार जो तुमसे कहाहै सो बनाकुछनहीं

केवल अद्वैत आत्माहै पर चित्तके संयोगसे इतना भ्रम देखताहै और वासनाद्वारा बिमानों को देखताहै आकाश में जाताहै। जैसे पवन गन्धको लेजाता है तैसेही पुर्यष्टकाको लेजाताहै और शरीर देखता है। हे रामजी! आत्मासे भिन्नकुछ नहीं परन्तु चित्तके संयोग से इतने भ्रम देखता है। इससे चित्तको स्थितकरो तो भ्रम मिटजावेगा और आत्म तत्त्वमात्रही शेष रहेगा। जो शुद्ध और आनन्दरूपहै उसीमेंस्थितहोरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबिश्वबासनारूपवर्णनंनाम
चतुर्दशाधिकशततमस्सर्गः ११४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तो प्रवृत्तिवाले का क्रम कहा अब निवृत्तिका क्रम सुनो। जिसको भूमिका प्राप्त हुई है और आत्मपद नहीं प्राप्तहुआ उसके पापसब दग्ध होजातेहैं। जब उसका शरीर छूटताहै तब वह बासनाके अनुसारशून्याकार हुआ फिर अपने साथशरीर देखताहै और फिर बड़े परलोक को देखताहै जहां स्वर्गके सुख भोगताहै। फिर विमानपर चढ़के लोकपालोंके पुरोंमें विचरता है जहां मन्दमन्द पवन चलता है, सुन्दर वृक्षोंकी सुगंधि है और पांचों इन्द्रियों के रमणीय बिषय हैं। देवताओं में क्रीड़ा करताहै और भोगों को भोगकर संसार में उपजताहै और फिर भूमिका क्रमको प्राप्तहोता है। जैसे मार्ग चलता कोई सोजावे तो जागकर फिर चलताहै तैसेही शरीरपाकर वह फिरभूमिकाके क्रमको प्राप्तहोताहै और जैसी २ भावना दृढ़होतीहै तैसेही भासता है। यह सब जगत् संकल्पमात्रहै, संकल्प के अनुसारही भासताहै और वासना के अनुसार परलोक भ्रम सुखदुःख देखता है, वहां से भोगकर फिर संसारमें आनपड़ता है। इसीप्रकार संकल्प से भटकता है और जब आत्मा की ओर आता है तब संसारभ्रम मिटजाता है। जबतक आत्माकी ओर नहीं आता तबतक अपने संकल्प से संसारको देखता है। जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि भासती है देवता दैत्य भूमि लोक स्वर्ग सब संकल्प के रचेहुये हैं। जो कुछ संसार भासता है, ब्रह्मा बिष्णु रुद्रसे आदिलेकर वह सब मनोमात्र है, मनके संकल्प से उदय हुआ है और असत्‌रूप है। जैसे मनोराज, गन्धर्व नगर और स्वप्न सृष्टि भ्रमरूप हैं तैसेही यह जगत् भ्रमरूप है। यह सृष्टि परस्पर अदृष्टहै; कहीं उदय होती भासती है और कहीं लय होजाती है। जैसेमूर्ख और देशको जाताहै तैसेही देहको त्यागकर जीव परलोक जाताहै पर स्वरूप में आना, जाना, अहं, त्वं कल्पना कोई नहीं; केवल सत्तामात्र अपने आपमें स्थितहै और जगत् भी वहीहै। हेरामजी! यह विश्व आत्मस्वरूपहै। जैसे मणिका चमत्कार होता है तैसेही बिश्व आत्माका चमत्कार है और जो कुछ तुमको भासता है सो आत्माही है-आत्माबिना आभास नहींहोता। जैसे ईखमें मधुरताओर मिरचों में तीक्ष्णता होतीहै तैसेही आत्मामें बिश्व है। जो कुछ देखते, सुनते, स्पर्श

करो। और सुगन्धलो उसेसब आत्माहीजानो अथवा जो इनके जानने वाला अनुभवरूप है उसमें स्थितहो औरइन्द्रियां और बिषयको त्यागकर अनुभव रूपमें स्थित हो। हे रामजी! यह बिश्व संवित्रूपहै और संवित्ही बिश्वरूप है। जब संवित् बहिर्मुखहोकर रसलेतीहै तब जाग्रत को देखती है; जब अन्तर्मुख होकर रसलेती है तब स्वप्न होता है और जब शांत होजाती है तब सुषुप्तिहोती है। संसार को सत्यजानकर जबरस लेतीहै तब जाग्रत,स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था होतीहै और जब संवित्से रसकी सत्यता जातीरहती है तब तुरियापद होताहै। यह पदार्थहै,यह नहीं; जब यहनष्टहो तबतुरियापदहै। हे रामजी! यहबिश्व फुरनेमात्र है; जब फुरनानष्ट हो तब बिश्व देखानहींजाता। जैसे स्वप्नके देश,काल, पदार्थ जागेसे मिथ्याहोतेहैं तैसे ही यहजाग्रत जगत्भी मिथ्याहै। जीव जीव प्रतिजो अपनी अपनी सृष्टिहोतीहै उसमें आपभी कुछबनजाताहै इससे दुःखी होताहै। जब इस अहंकारको त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थितहो तब बिश्व कहीं नहीं है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसृष्टिनिर्वाणएकताप्रतिपादनंनामपंचदशाधिकशततमस्सर्गः ११५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस सृष्टिका स्वरूप संकल्प मात्रहै और संकल्प भी आकाशरूप है। आकाश और स्वर्गमें कुछभेदनहीं; जैसे पवन और स्पन्दमें भेदनहीं। सृष्टिमें अनेक पदार्थ हैं परन्तु परस्पर नहीं रोकती और वास्तवमें बिश्वभी आत्मा का चमत्कार है और आत्मरूपहै। जो आत्मरूपहै तोराग और द्वेष किसमें कीजिये? चेतन धातमें कोटिब्रह्मांड स्थितहैं और यह आश्चर्यहै कि,आत्मासे कुछ नहींहुआ। भिन्न भिन्न संवेदन दृष्टि आतीहै पर नानाप्रकार के पदार्थ भासतेहैं। हे रामजी!जीव जीवप्रति अपनी अपनी सृष्टिहै। एक सृष्टि ऐसीहै कि, उसका संकल्प एक दृष्टि आताहै परन्तु सृष्टि अपनी अपनी है और कई ऐसीहैं कि, भिन्न भिन्न हैं परन्तु समानता करके एकही दृष्टि आतीहैं। जैसे जलकीबूंदें इकट्ठी होतीहैं और धूलकेकण भिन्न भिन्न होतेहैं परन्तु एकही धूल भासतीहै। जैसे नदीमें नदी पड़तीहै तो एकही जल होजाताहै तैसेही समान अधिकरण करके सब संकल्प एकही भासते हैं; एक एकके साथ मिलते हैं और नहीं भी मिलते। जैसे क्षीरसमुद्रमें घृत डालिये तो नहीं मिलता तैसेही एक संकल्पऐसेहैंकि, औरसेनहींमिलते—जैसे सूर्य्य,दीपक और मणि का प्रकाश भिन्न भिन्न दृष्टि आताहै पर एकसे होतेहैं तैसेही कई सृष्टि एकही भासतीहैं और भिन्न भिन्न होतीहैं और कई इकट्ठी होतीहैं और भिन्न भिन्न दृष्टिआतीहैं। हे रामजी! इतनी सृष्टि जोमैंने तुमसे कहीहैं सोसब अधिष्ठान में फुरनेसे कई कोटि उत्पन्न होतीहैं और कईकोटि लीन होजातीहैं। जैसे जलमें तरंग और बुदबुदे उपज

कर लीनहोजाते हैं तैसेही सृष्टिउत्पन्न और लीनहोती है पर अधिष्ठान ज्योंका त्योंहै क्योंकि; उससे कुछ भिन्ननहीं । ब्रह्म, आत्माआदिक जोसर्व हैं सोभी फुरनेमें हुयेहैं ॥ जबतक शब्दअर्थकी भावना है तबतक भासते हैं और जब भावना निवृत्तहुई तब शब्द अर्थ,कोई न भासेगा केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेषरहेगा और संसारकाभाव किसी ठौर न होगा । जैसे पवन जबतक चलताहै तबतक जानाजाता है कि, पवनहै और गन्धभी पवनकरके जानीजाती है कि, सुगन्धआई अथवा दुर्गन्धआई और जब पवन नहींचलता तब नहींभासता और गन्धभीनहीं भासती; तैसेही जब फुरना निवृत्त हुआ तब संसार और संसारका अर्थ दोनोंनहीं भासते । फुरने में जीवजीव प्रति ज्यों ज्यों अपनी अपनी सृष्टिहै उससृष्टिमें सत्तासमान ब्रह्मस्थित है और सर्वका अपना आपहै—द्वैतभावको कदाचित् नहीं प्राप्तहुआ । हे रामजी ! इससे ऐसेजानो कि, आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि सर्व पदार्थ आत्माही हैं अथवा ऐसेजानो कि, सर्व मिथ्याहैं और इनका साक्षीभूत सत्त ब्रह्मही अपने आपमें स्थितहै उससे कुछ भिन्ननहीं और उसीब्रह्ममें अंशसे अनेक सुमेरु और मन्दराचल आदिक स्थितहैं । अंशांशी भावभी आत्मामें स्थूलताके निमित्त कहेहैं वास्तवनहीं—जनावने निमित्त कहेहैं । आत्मा एकरस है । हे रामजी ! ऐसापदार्थ कोईनहीं जोआत्मसत्ता बिनाहो । जिसको सत्यजानतेहो सोभी आत्माहै और जिसको असत्य जानतेहो वहभी आत्माहै; आत्मामें जैसे सत्यका फुरनाहै तैसेही असत्यका फुरनाहै—फुरना दोनोंका तुल्यहै । जैसे स्वप्नेमें एक सत्य जानताहै और दूसरा असत्य जानताहै तैसेही जो इन्द्रियों के बिषय होतेहैं उनको सत्य जानताहै और आकाशके फूल और शशेके शृंग को असत्य कहताहै सोसर्व अनुभवसे फुरेहैं इससे अनुभवरूप हैं । ऐसापदार्थ कोई नहीं जोआत्मामें असत्नहीं; जोकुछ भासते हैं सोसर्व फुरनेमें हुयेहैं सत्यक्या और असत्यक्या; सबमिथ्या और स्वप्नेकेसत् और असत्की नाईं हैं । जो अनुभव करके सिद्धहै सो सब सत्यहै और अनुभवसे भिन्न सत्यहै । हे रामजी ! गुणातीत परमात्म स्वरूपमें स्थितहो । हे रामजी ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनोंकालमें ज्ञानवान् पुरुष समहै और दशोंदिशा, आकाश, जल, अग्नि आदिक पदार्थ उसको सर्वआत्माही दृष्टिआताहै—आत्मासे भिन्न कुछनहीं भासता । सूर्य, चन्द्रमा, तारे सबआत्मा हैं यह विश्व आकाशरूप है और शुद्ध निर्मलहै; आकाशमें आकाश स्थितहै, कुछभिन्ननहीं। जोतुम्हें भिन्नभासें उन्हें मिथ्याजानो वे भ्रमकरके सिद्धहुयेहैं; कोई सत्नहीं । पर परमार्थसे देखो तो सर्वआत्मा है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्वआकाशएकताप्रतिपादनं नामषोड़शाधिकशततमस्सर्गः ११६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह विश्व स्वप्ने के समानहै । जैसे स्वप्नेकी सेना नानाप्रकारकी दिखती है और शस्त्रचलते भासतेहैं पर आत्मामें इनका रूप देखना और मानना और शब्दअर्थ कोईनहीं; वह जगत्से रहित है और जगत्रूप भान होताहै । अहं, त्वं जोकुछ भासताहै सोसब स्वप्नवत् है और भ्रमसे सिद्धहुआ है। जो सर्वका अधिष्ठान है वह सत्यहै और सब उसीमें कल्पितहैं। जो अनुभवसे देखिये तो सर्व आत्मास्वरूप हैं और भिन्न देखिये तो कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने के देश,काल,पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तो भी मिथ्याहैं तैसेही यह विश्व भ्रमकरके फुरताहै। उनकी अपेक्षासे वह और तूहै और उसकी अपेक्षा से वह अहं है वास्तवमें दोनों नहीं—जोहै सो आत्माही है। रामजीने पूछा,हे भगवन् ! आपने कहा कि त्वं आदिक अहंपर्यन्त और अहं आदिक त्वंपर्यन्त सर्वस्वप्न सेनाकी नाईं मिथ्याहैं और अनुभवसे देखिये तो आत्मरूप हैं तो हम स्वप्न सेना में हैं अथवा हमारा अहंआत्माहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! अनात्म देहादिकमें यह अहंभावना करनी कि,मैंहूं तो स्वप्न सेना के तुल्यहै और अधिष्ठान चिन्मात्रदृश्य और अहंकार से रहित अहंभावना करनी आत्मरूप है ।हे रामजी! तुम आत्मरूपहो । यह विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं; जो अधिष्ठानरूप से देखिये तो आत्मारूप है और जो अधिष्ठानसे रहित देखिये तो मिथ्या है। वह अधिष्ठान शुद्ध,आनन्दरूप,चित्तसे रहित, चिन्मात्र परब्रह्म है उसमें अज्ञानसे दृश्य दीखताहै। जैसे असम्यक् दृष्टिसे सीपीमें रूपाभासताहै तैसेही आत्मामें अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं। हे रामजी! दृश्य अविचार से सिद्धहै और विचार किये से कुछ बस्तु नहीं होती पर जिसके आश्रय कल्पित है सो अधिष्ठान सत्य है। जैसे सीपीके जानेसे रूपेकी बुद्धि जाती रहती है तैसेही आत्मा विचार से विश्व बुद्धि जाती रहती है। जैसे समुद्रमें पवनसे चक्रतरंग फुरते और प्रत्यक्ष भासते हैं पर विचार कियेसे चक्रसे भी जलबुद्धि होती है तैसेही आत्मरूपी समुद्रमें मनके फुरनेसे विश्वरूपी चक्रउठतेहैं और विचार कियेसे तुमको मनके फुरनेमें भी आत्मरूप भासेगा,विश्वरूपी चक्र न भासेंगे और भ्रम निवृत्त होजावेगा। जो बस्तु फुरनेमें उपजीहै सो अफुर करके निवृत्त होजाती है। यह विश्व अज्ञानसे उपजा है और ज्ञानसे लीन होजायगा। इस से विश्वको भ्रममात्र जानो। रामजीने पूछा,हे भगवन्! आपने कहा कि,ब्रह्मा,रुद्र आदि और उत्पत्ति,संहार करने पर्यंत सब विश्व भ्रममात्र है; इस जाननेसे क्या सिद्ध होता है, यह तो प्रत्यक्ष दुःखदायक भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ तुम देखतेहो सो सम्यक् दृष्टिसे सब आत्म रूपहै—कुछ भिन्ननहीं—और असम्यक् दृष्टिकरके विश्वहै तो दृष्टिका भेदहै—सम्यक् असम्यक् देखने का अधिष्ठान ज्योंका त्यों है। जैसे एक अन्धकारकी उपाधिसे रस्सी सर्पहो भासती है और भयदायक होती है और जो

प्रकाशसे देखिये तो रस्सीही भासती है; तैसेही जिसने आत्मा को जाना है उसको दृश्य भी आत्मारूपहै। अज्ञानीको विश्व भासता है और दुःखदायी ह ताहै। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पकर भयमान होता है और अप` न जानने से दुःख पाताहै जो जाने तो भय किस निमित्त पावै ? हे रामजी ! जीव अपनेही संकल्प से आप बंधायमान होताहै। जैसे कसवारी कीट अपने बैठने का स्थान बनाकर आ- ही फँसमरती है,तैसेही अनात्मामें अहं प्रतीत करके जी व आपही दुःख पाता है। हे रामजी ! जीव आपही संसारी होत` है और आपही ब्रह्म होता है। जब दृश्यकी ओर फुरताहै तब संसारी होता और जब स्वरूपकी ओर आताहै तब ब्रह्म आत्मा होताहै। इससे जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो; जो संसारी होनेकी इच्छाहो तो संसारी हो और जो ब्रह्म होनेकी इच्छाहो तो ब्रह्म होजावो। मुझसे पूछो तो दृश्य अहंका` को त्यागकर आत्मा में स्थित होरहो—विश्व भ्रममात्रहै, कुछ वास्तव नहीं। यही पुरुषार्थ है कि, संकल्पसे सं- कल्पको काटो। जब बाहरसे अन्तर्मुख होगे तब ब्रह्मही भासेगा और दृश्यकी कल्पना मिटजावेगी क्योंकि; आगे भी नहीं था। हे रामजी ! जो सत्‌वस्तु आत्माहै उसका अ- नेक यत्नोंसे नाश नहीं होता और जो असत्य अनात्माहै उसके निमित्त यत्न कीजिये तो सत् नहीं होता। जो सत्य वस्तुहै उसका कदाचित् अभाव नहीं औ` जो असत् है उसका भाव नहीं होता । असत् वस्तु तबतक भासती है जबतक उसको भले प्रकार नहीं जाना और जब विचारसे देखिये तब नाश होजाती है। अविद्याके पदार्थ विद्यासे नष्ट होजाते हैं—जैसे स्वप्नेका सुमेरु पर्वत सत्यहो तो जाग्रतमें भी भासे—इस से है नहीं। यह संसार जो तुमको भासताहै सो स्वरूपके ज्ञानसे नष्ट होजावेगा। `म से पूछो तो हमको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता, सर्व आत्माहीहै; यह भी नहीं कि, यह जीव अज्ञानीहै किसी प्रकार मोक्ष होवे। न हमको ज्ञानसे प्रयोजन है, न मोक्षहोने से प्रयोजन है क्योंकि; हमको सर्व आत्माही भासता है। हे रामजी ! जब तक चेतन है तब तक मरता और जन्म भी पाताहै; जब जड़ होताहै तब शांतिको प्राप्त होकर मुक्त होता है । चेतन `श्यकी ओर फुरनेको कहते हैं, इसीसे जन्म मरण के बन्धन में आताहै। जब दृश्यके फुरने से जड़ होजावे तब मुक्तहो । इसका होनाही दुःख है और न होनाही मुक्ति है । अहंकार का होना बन्धन है, और अहंकार का न होना मुक्तिहै। इससे पुरुष प्रयत्न यहीहै कि, अहंकार त्यागकरो और चेतन ब्रह्मघन अपने आप में स्थित हो । जिसको संसारकी सत् भावना है उसको संसारही है, ब्रह्म नहीं और जिसको ब्रह्मभावना हुईहै उसको ब्रह्मही भासता है । हे रामजी ! जो पाताल में जावे अथवा सम्पूर्ण पृ`वी, दशोंदिश, आकाश, देवताओं के स्थानमें फिरे तो भी सुख न पावेगा और आत्मा का दर्शन न होगा क्योंकि; अनात्मा में अहंकार

किये से सुख नहीं। जब आत्मदर्शी होकर देखोगे तो सर्व आत्माही भासेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्वविजयोनाम
सप्तदशाधिकशततमस्सर्गः ११७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार संकल्पमात्र और तुच्छहै। पर्वत,नदियां, देश और काल स भ्रमसे सिद्ध हैं। जैसे स्वप्ने में पर्वत,नदियां, देश, काल, निद्रादोष से भासते हैं; तैसेही अज्ञान निद्रासे यह संसार भासता है। हे रामजी! जागकर देखो तो संसार हैनहीं, इसका तरना महासुगम है और सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं सो कमलकी नाईं कोमल हैं। जैसे कमलके मुंदने में कुछ यत्न नहीं तैसेही यह कोमल निवृत्त होते हैं। आकारभूत प्राणियोंकी स्थूलदृष्टि हैं और आकार को देखरहे हैं। जैसे पवनका चलना जाना जाताहै और जब चलनेसे रहित होताहै तब मूर्ख नहीं जानता तैसेही भूतप्राणी आकारको जानते हैं; और इसमें जो निराकार स्थित है उसको नहीं जानते। जैसे पवन चलताहै तो भी पवनहै और ठहरताहै तौभी पवन है तैसेही विश्व फुरताहै तो भी आत्माहै और अफुरने में भी वहीहै। इससे विश्व भी आत्मरूपहै,कुछ भिन्न नहीं;जो सम्यक्‌दर्शी हैं उनको फुरने न फुरनेमें आत्माही भासता है। जैसे स्पन्द निस्पन्दरूप पवनही है,तैसेही ज्ञानीको सर्वदा एकरसहै और अज्ञानीको द्वैत भासता है। जैसे वृक्षमें बालक पिशाचबुद्धि करता है तैसेही आत्मामें जगद्‌बुद्धि अज्ञानी करताहै और जैसे नेत्रदोषसे आकाशमें तरुवरे भासते हैं तैसेही मनके फुरने से जगत् भासताहै। हे रामजी! जैसे वायुकारूप कदाचित् नहीं तैसेही जगत्‌के रूपका अत्यन्त अभावहै और जैसे मरुथलमें जलका अभावहै तैसेही आत्मामें जगत्‌का अभावहै। हे रामजी! सुमेरुपर्वत,आकाश,पाताल,देवता,यक्ष,राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्मांड इकट्ठे करके विचाररूपी कांटेमें रक्खे और पीछे आधीरत्ती डालें तौभी पूरे नहीं होते क्योंकि; हैंनहीं;अविचार सिद्धहैं।स्वप्नेके पर्वत जागेपर चावल प्रमाणभी नहींरहते क्योंकि, हैंनहीं; भ्रममात्र है। हेरामजी! इससंसारकी भावना मूर्खकरतेहैं। ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुषहैं उनको ऐसे जानो कि,जैसे लुहारकी फुकनीसे पवन निकलताहै तैसेही उन पुरुषोंके स्वासवृथा आते जाते हैं। जैसे आकाशमें अँधेरी व्यर्थ उठतीहै तैसेही उन पुरुषोंका जीना और सर्वचेष्टा व्यर्थहै औरवेआत्मघातीहैं अर्थात् अपना आप नाशकरते हैं और उनकी चेष्टा दुःखके निमित्तहै।हेरामजी! यह अपने आधीनहै। जो दृश्यकी ओर होता है तो संसार है । है और जो अन्तर्मुख होता है तो सर्व आत्माही होता है। यह संसार मिथ्याहै, न सत् कहिये; न असत् कहिये; भ्रमसे हुआहै ये जीव भूत, भविष्य और वर्त्तमानकालमें बन्धहोतेहैं और अग्नि शीतल होतीहै, आकाश पातालमें, पाताल आकाश में, तारे पृथ्वीपर, पृथ्वी आकाश के ऊपरभी होतीहै; बादल

विना मेघ वर्षाकरताहै और आकाशमें हल फिरतेहैं ऐसेकौतुकमें देखताहूं । हे रामजी ! इसमें कुछ आश्चर्यनहीं; मनकरके सबकुछ होताहै । जैसे मनोराज किया तैसाहीआगे स्थित होताहै और सिद्धि होतीहै । पर्वत पुरमें भिक्षुक के समान भिक्षा मांगते फिरते हैं; ब्रह्माण्ड उड़ते फिरतेहैं; बालूसे तेल निकलता है और मृतक युद्धकरतेहैं; मृगगातेहैं और बननृत्य करतेहैं । हे रामजी ! मनोराज करके सब कुछ बनता है । चन्द्रमा की किरणों से पर्वत भस्म होतेहैं, इसमें क्या आश्चर्य है ? ऐसेही यह संसार भी मनोराज है और शीघ्रसंवेगहै इससे इसको जीव सत् मानताहै और आगे जो बालूसे तेलादिक कहेहैं उनकोसत् नहीं जानता क्योंकि; उसमेंमृदुसंवेगहै पर दोनों तुल्य हैं। हे रामजी ! जिनकोसत् और असत् कहतेहो सो आत्मा में दोनों नहीं । ये जो तुमको सत् पदार्थ भासते हैं तो अग्नि आदिक शीतल भी सत् हैं और जो ये मिथ्या भासतेहैं तो वे भी मिथ्या हैं, केवल तीव्र और मृदुसंवेग का भेदहै । जब तीव्रसंवेग दूर होताहै तब सब मिथ्या मानतेहैं । जैसे स्वप्ने से जागाहुआ स्वप्ने को मिथ्याकहता है और जाग्रत को सत्यकहता है पर दोनों मनोराजहैं । हे रामजी ! जितने आकार दृष्टिआते हैं उन सबको मिथ्याजानो; न तुम हो, न मैंहूं और न यह जगतहै । परमार्थ सत्ता ज्यों की त्यों है, उसमें अहं त्वं का उत्थान कोई नहीं; वह केवल शांतरूप; आकाशरूप और निराकाश रूप है जिसमें कुछ द्वैतनहीं—केवल अपने आपमें स्थित है । जैसे बालक मृत्तिकाके हाथी,घोड़े और मनुष्य बनाकर उनके नाम कल्पता है कि, यह राजाहै; यहहाथीहै; यह घोड़ाहै सो मृत्तिकासे भिन्न नहीं पर बालकके मनमें उनके नाम भिन्न भिन्न दृढ़ होतेहैं; तैसेही मनरूपी बालक नाना प्रकारकी संज्ञाकल्पता है पर आत्मा से कुछ भिन्ननहीं । इससे हे रामजी ! तुम किसका भय करतेहो ? निर्भय हो रहो । तुम्हारा स्वरूपशुद्ध, निर्भय और अविद्याके कारण कार्य से रहित है उसमें स्थित रहो । यह संसार तुम्हारे फुरने में हुआहै; आत्मा न सत्य है, न असत्यहै, न जड़ है, न चेतन है, न प्रकाश है, न तम है, न शून्यहै, न अशून्यहै । शास्त्र ने जो विभाग कहेहैं कि, यह जड़ है, यह चेतन है सो इस जीव के जगाने के निमित्त कहेहैं । आत्मामें कोई वास्तव संज्ञा नहीं—केवल आत्मत्वमात्र हैं । इससे दृश्यकी कलना त्यागकर आत्मा में स्थित हो । ब्रह्मासेआदि स्थावरपर्यन्त सर्वकलनामात्रहैं; इसमें क्याआस्था करनी है ? संसार के भाव दोनों तुल्यहैं । फुरना जैसा भावका है, तैसाही अभावकाहै—स्वरूप में दोनों की तुल्यताहै और व्यवहार कालमें जैसाहै तैसाही है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्वप्रणाशवर्णनंनाम अष्टदशाधिकशततमस्सर्गः ११८ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! भूमिका प्रसंग यहां चलाथा; उसमें जो सार आपने

कहा वह मैं समझगया; अब भूमिकाओंका विस्तार कहिये । योगी का शरीर जब छूटता है और स्वर्गके भोगोंको भोगकर गिरता है तो फिर उसकी क्या अवस्थाहोती है सोभी कहिये। वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! जिसयोगी को भोगकी वांछा होतीहै वह स्वर्ग में जाकर भोग भोगता है परयदि उसको और भी भोगने की इच्छा होती है तो वह मध्य मण्डल मनुष्य लोक में पवित्रस्थान और धनवानोंके गृहमें जन्मलेता है और जो उसको भोगकी वांछा और नहींहोती तो ज्ञानवानों के गृहमें जन्मलेता है। थोड़े काल के उपरांत उसका पिछला संस्कार आफुरता है वह स्मरण करके आत्माकी ओर होताजाताहै। जैसे कोई पुरुष लिखताहुआ सोजाताहै पर जब जागताहै तब उस लिखेको देखकर फिरआगे लिखता है तैसेही वह योगी पूर्व के अभ्यासको पाकर दिन दिन बढ़ाता जाता है। वह अज्ञानका संगनहीं करता क्योंकि; वह भोगों के सम्मुख है और आत्ममार्ग से बहिर्मुख है; जो चुगुली करने वालेहैं उनका संग नहींकरता; उसके सर्व अवगुण त्यागजाते हैं और दंभ, गर्व, राग,द्वेष, भोगकी तृष्णा आदि स्वाभाविक छूटजाते हैं।वह शान्तिको प्राप्तहोताहै और उसको कोमलता,दया आदि शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होतेहैं । हे रामजी ! इसनिश्चय को पाकर वह वर्ण आश्रमके धर्म यथा शास्त्रकरताहुआ संसार समुद्रके पारके निकटप्राप्त होताहै पर पार नहीं होता यह भेदहै सो तीसरी भूमिका है—फिर मोहको नहीं प्राप्त होता। जैसे चन्द्रमाकी किरणें कदाचित् तापको नहीं प्राप्तहोतीं तैसेही तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गढ़े में नहीं गिरता। हे रामजी ! यह सप्तभूमिका ब्रह्मरूप हैं पर इतनाहीभेद है कि तीन भूमिका जाग्रत अवस्था हैं, चतुर्थ स्वप्न है, पंचम सुषुप्तिहै, षष्ठ तुरीयहै और सप्तम तुरीयातीत है। हे रामजी ! प्रथम तीन भूमिकाओं में संसारकी सत्यता भासती है इससे जाग्रत कही है और पिछली चारों में संसारका अभावहै इससे जाग्रत से विलक्षण है। जाग्रत में घट,पट आदिक सत्भासते हैं कि, घटघटहीहै और पटपटही है अन्यथा नहीं, अपनाही अपना कार्यसिद्ध करते हैं, इससे अपने काल में ज्यों के त्यों हैं। इसीप्रकार सर्व पदार्थहैं । तीसरी भूमिकावाला स्थावर-जंगमको जानता है और नाम और रूपसे ग्रहण करता है पर हृदय में राग द्वेपनहीं धारता क्योंकि; विचार करके तुच्छ जानेहै पर इससे संसार का अत्यन्त अभाव नहीं जाना और ब्रह्म स्वरूप भी नहीं जानता क्योंकि; उसके स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ। जबस्वरूपको जाने तब संसारका अत्यन्त अभाव होजावे । इनतीनों भूमिकाओंसे संसारकी तुच्छता होती है नष्टता नहींहोती । इनको पाकर जबशरीर छूटता है तब और जन्म में उसको ज्ञान प्राप्त होताहै और दिनदिन में ज्ञानपरायण होताहै। जब दृढ़बुद्धिहोती है तब ज्ञान उपजताहै।जैसे बीजसे प्रथम अंकुर होताहै और फिर डाल

फूल,फल निकलतेहैं तैसेही प्रथम भूमिका ज्ञानकाबीजहै, दूसरी अंकुरहै; तीसरी डाल हैं और चतुर्थसे ज्ञानकी प्राप्ति होतीहै सोही फल है। प्रथम तीन भूमिकाओंवाला धर्मात्मा होताहै और पुरुषोंमें श्रेष्ठहै। उसका लक्षणयहहै कि, वह निरहंकार, असंगी और धीरहोता है। उसकी बुद्धिसे विषयोंकी तृष्णा निवृत्त होजाती है और वह आत्मपदकी इच्छा रखता है। यह पुरुषश्रेष्ठ कहाता है, प्रकृत आचार में यथाशास्त्र विचरता है और शास्त्रमार्ग को कदाचित् नहीं छोड़ता जो शास्त्र मार्गको मर्य्यादाके साथ अपने प्रकृत आचारमें विचरताहै सो पुरुषश्रेष्ठहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! पीछे आप ने कहा है कि, जब मनुष्य शरीर छोड़ताहै तब एक मुहूर्त्त में उसको युग व्यतीत होता है और जन्मसे आदिमरण पर्यंत जैसी किसीको भावना होतीहै तैसाआगे भासताहै सो एक मुहूर्त्तमें युग कैसे भासताहै यहकहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् जो तीनों कालमें संयुक्त भासताहै वह ब्रह्मस्वरूपही है भिन्न कुछ नहीं—समानही है। जैसेइक्षुमें मधुरता है तैसेही ब्रह्ममें जगत् है और जैसे तिलोंमें तेलहै और मिरचोंमें तीक्ष्णताहै तैसेही आत्मामेंजगत्है। जैसे तिलोंमें तेलहोताहै तैसेही ब्रह्ममें जगत्है। कहीं सत्, कहीं असत्; कहीं जड़, कहीं चेतन; कहीं शुभ, कहीं अशुभ; कहीं नरक; कहीं मृतक; कहींजीवत; ब्रह्मासे काष्ठ पर्यंत भाव अभावरूपहोताहै। वह सत् असत्से विलक्षणहै। आत्मसत्तासे सर्व सत्यहै और भिन्नदेखिये तो असत्यहै। हेरामजी! जिनको सत्यअसत्य जानतेहो कि, पृथ्वी आदिकपदार्थसत्य और आकाश के फूलादिक असत्य हैं सो दोनों तुल्य हैं। जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानिये तो आकाशके फूल भी सत् मानिये। जैसे स्वप्नेमें कई पदार्थ सत् और असत् भासते हैं तैसेही जाग्रत्में भासते हैं पर फुरना दोनोंका समान है। जैसे सत्य पदार्थोंका फुरना हुआहै तैसाही असत्का भी हुआहै; फुरनेसे रहित सत् असत् दोनोंका अभाव होजाता है। इससे यह विश्वभ्रमसे सिद्ध हुआ है। जैसे जलमें पवन से चक्र उठते हैं तैसेही आत्मामें फुरने से संसार भासता है; इसकी भावना त्यागकर स्वरूपमें स्थित हो रहो। तुमने जो प्रश्न किया कि, एकमुहूर्त्त में युग कैसे भासता है उसका उत्तर सुनो। जैसे किसी पुरुषको स्वप्ना आता है तो एकक्षणमें बड़ाकाल बीताभासता है और और का और भासता है सो आश्चर्य तो कुछ नहीं; मोहसे सब कुछ उत्पन्न होताहै और भ्रम से दृष्टि आताहै। हे रामजी! जैसे पुरुष सोयाहै तो एक आपही होता है पर उसमें नानाप्रकारका जगत्भ्रम से भासता है तैसेही स्वरूपके प्रमाद से जीव कई भ्रम देखताहै। स्वरूपके जाने बिना भ्रम का अन्त नहीं होता इससे तुम और प्रश्न किस निमित्त करते हो? एक चित्तको स्थिर करके देखो तो न कोई संसार भासेगा; न कोई जन्म—मरण होंगे; न कोई बन्धहै; न मोक्षहै केवल आत्माही भासे-

गा। जब संकल्प फुरता है तब अविद्यासे आपको बन्धजानता है और संकल्प से रहित मुक्तजानता है और विद्यासे मुक्तजानता है पर आत्मस्वरूप ज्योंका त्योंहै उसे न बन्ध है, न मुक्त है, न विद्या है और न अविद्याहै—केवल शांतरूप है। इससे सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वओरसे ब्रह्महीं है दूसरा कुछनहीं। हे रामजी! जब स्वरूपकी भावना होती है तब संसारकी भावना जाती रहती है—ये सर्व शब्द कलना में हैं। यह पदार्थ है, यह नहीं है आत्मामें यह कोई नहीं। जैसे पवन चलने और ठहरने में एकहीहै तैसेही विश्वचित्तका चमत्कार है। ब्रह्मासे चींटी पर्य्यंत ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है और आत्माहीके आश्रय सर्वशब्द फुरते हैं पर आत्मा फुरने और न फुरनेमें सम है क्योंकि; दूसरा कोईनहीं। हे रामजी! जो ब्रह्मसत्ताहीहै तो आकाश क्याहै; पृथ्वीक्याहै: मैं क्याहूं यहजगत्क्याहै; ये प्रश्न बनतेहीनहीं। एकमनकोस्थिर करकेदेखो कि, ब्रह्मासे चींटीपर्यंत कुछभी पदार्थ भासताहै;जो भासे तो प्रश्न कीजिये। इससे जैसे भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही जगत् भी भ्रमसे भासताहै। रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां; मनस्कार अर्थात् मनकी स्फूर्त्ति, ये शब्द कलनामें फुरे हैं सो सब मिथ्याहैं—आत्मामें ये कोई नहीं। हे रामजी! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं सो भावना में स्थितहुये हैं। जैसी भावना करता है तैसेही पदार्थ सिद्ध होते और भासतेहैं। जब संसार की भावना उठजावे तब कोई पदार्थ न भासे। हे रामजी! सुषुप्तिमेंही जब इसका अभाव होजाताहै तो तुरीयामें कैसे भानहो। जब जीवस्वरूपसे गिरताहै तब उसको संसारभासताहै और संसारमें वासना और प्रमाद से घटी यंत्रकी नाईं फिरता है। स्वरूपसे उतरकर अनात्ममें इस अभिमान करने को प्रमाद कहतेहैं कि, मैंहूं। यही अज्ञानहै जिससे दुःखपाताहै; जब अज्ञाननष्टहो तब संसारके शब्द अर्थका अभावहोजावे। अहंकारसे संसारहोताहै; संसारका वीज अहंकारही है। अहंकार अनात्मामें आत्म अभिमान करनेको कहते हैं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा अहंकारके उत्थानसे रहित केवल शांतरूपहै और विश्वभी वहीरूपहै। इसकी भावनामें दुःखहै। यह संवित् शक्ति आत्माके आश्रय फुरतीहै। जैसे तेलकी बूंदी जलमें डालिये तो चक्रकी नाईं फिरती है तैसेही संवेदन शक्ति आत्माके आश्रित फुरती है और ब्रह्म एक स्वरूप है उसका स्वभाव ऐसेहै। जैसेमोरका अण्डा और उसका वीर्यएकरूप है अपने स्वभाव से वीर्यही नानाप्रकारके रंग धारता है तौभी मोरसे कुछ भिन्न नहीं; तैसेही आत्माके संवेदन स्वभाव से नानाप्रकारका विश्व भासता है परन्तु आत्मासे कुछ भिन्न नहीं—आत्मरूपही है। सम्यक्दर्शीको नानाप्रकारमें एक आत्माही भासता है और अज्ञानीको नानाप्रकार का जगत् भासताहै! हेरामजी! ब्रह्मरूपी एकशिलाहै उसमें त्रिलोकीरूपी अनेकपुतलियां कल्पित

हैं । जैसे एक शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पता है कि, इसमें इतनी पुतलियां होंगी सो वे पुतलियां उसके चित्त में हैं और शिलामें कुछ नहीं हुआ तैसेही आत्मरूपी शिला में चित्तरूपी शिल्पी नानाप्रकार के पदार्त्थरूपी पुतलियां कल्पता है सो सर्व आत्मरूप है । इससे पदार्थोंकी भावना त्यागकर आत्मामें स्थितहो । यह संसारभी निर्व्वाच्य है क्योंकि; ब्रह्मही है ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं । न कोई उपजता है, न कोई विनशता है ज्योंका त्यों आत्माही स्थित है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदभावप्रतिपादनंनामशताधिकै-
कोनविंशातितमस्सर्गः ११९ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! तो इस संसारका बीज अहंकार हुआ । इसका पिता अहंकार है तो मिथ्यासंसार जो अविद्यमानही विद्यमानभासताहै सो भ्रमरूपहुआ ? और जो भ्रमरूपहै तो लोग और शास्त्र;श्रुति और स्मृति क्योंकहतेहैं कि,इसकाशरीर पिंडसे होताहै ? और जो पिंडसेहोताहै तो आप कैसे भ्रमकहतेहैं? जोभ्रमहै तो लोग, शास्त्र, श्रुति और स्मृति क्यों पिंडसे कहते हैं ? इससे मेरे संशयको निवृत्त कीजिये । वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! मेरा कहना सत्यहै । ऐसेहीहै । ब्रह्ममें ब्रह्मतत्त्व स्वभावहै और जगत्का लक्षणभी वहीहै । हे रामजी! आदि जो किंचनहुआहै और चित्तशक्ति फुरीहै वहीब्रह्मरूपहुआहै और उसमें पदार्थका मनोराजहुआहै । यहआकाशहै; यह पवनहै; यहकर्त्तव्यहै; यहअकर्त्तव्यहै; यहसत्यहै; यहझूठहै इत्यादि जबतक मनोराज है तबतक सर्वमर्यादा ऐसेहीहै । फिर ब्रह्मामें ऐसेहुआकि, जगत्की मर्यादाके निमित्त वेदकहता है कि, यह पदार्थ शुभ है और यहअशुभ है । हे रामजी ! आत्मामें कुछ द्वैतनहीं; मायारूप जगत्में मर्यादा है; तो अध,ऊर्द्ध, नीच,ऊंच कौनकहे ? यहमर्यादा भी वेदमें नीति निश्चयहुई है कि, ये शुभकर्म हैं; इनके कियेसे स्वर्ग सुखही भोगते हैं और ये अशुभकर्म हैं इनके कियेसे नरकदुःख भोगते हैं । हे रामजी ! जैसे वेदमें निश्चय किया है तैसेही जीव अपनी वासना के अनुसार भोगता है । हे रामजी ! यह रचित शक्तिनीति होकरब्रह्मादिक में फुरी है परन्तु उनको सदास्वरूपमें निश्चय है इससे वे बन्धायमाननहीं होते और ब्रह्मा विष्णु रुद्रने यहवेदमाला धारी है कि; जैसा कोईकर्मकरे तैसाही फल देतेहैं।यहवेद सर्वकीनीति है । हे रामजी ! जिनपुरुषों को संसारकी सत्यता दृढ़हुई है वे जैसे कर्मशुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसेही शरीरको धारते हैं । इसमें संशयनहीं कि, जो शास्त्र मर्यादाको अपनी इच्छासे उल्लं- घित वर्त्तते हैं सो शरीर त्यागकर कोई काल मूर्च्छित होजाते हैं और आत्मज्ञान विना एक मुहूर्त्त में जागकर बड़े नरकोंको चलेजाते हैं । जिनको शून्य भावना हुई है कि, आगे नरकस्वर्ग कोई नहीं और जो लोक-परलोकके भयको त्यागकर शास्त्र

बाहरसे वर्त्तते हैं सो मरकर पत्थर वृक्षादिक जड़योनि पाते हैं और चिरकालसे उन की वासना प्रणमती है फिर दुःखभागी होते हैं और जिनको आत्मभावना हुई है और संसारकी भावना निवृत्तहुई है वे शास्त्र विहितकरें अथवा अविहित करें उन को कोई बन्धननहीं। हे रामजी! चित्तरूपीभूमिमें निश्चयरूपी जैसाबीज बोता है तैसाही कालपाकर उगता है—यहनिःसंशय है। इससे तुमआत्मभावनारूप बीज बोओ कि, सर्वआत्माहै। ऐसीभावनाकरो तब सिद्ध आत्माही भासेगा और जिनको संसारका निश्चय हुआ है उनको संसार है। हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा हैं उन को उसीवासना के अनुसार भासता है। धर्मात्माभी दो प्रकारके हैं—एक सकामी और दूसरे निष्कामी। जो धर्मकरते हैं और पापरूपी कामना सहित हैं तो वे स्वर्ग भोग भोगकर फिर गिरते हैं और जो निष्काम ईश्वरार्पण कर्मकरतेहैं उनका अंतः-करण शुद्ध होकर ज्ञानकी प्राप्तिहोती है। यहभी संसार में मर्यादा है कि, जैसाकिसी को निश्चय होता है तैसाही संसारको देखताहै। पिंडकरकेभी शरीरहोता है क्योंकि, यह भी आदि नीति में निश्चय हुआ है। जैसे आदि नीति में निश्चय हुआ है तैसेही होता है। जो पवन है सो पवनही है और जो अग्नि है सो अग्निही है। इसी प्रकार कल्पपर्यंत जैसे मनोराज हुआ है तैसेही स्थित है। जैसेजल नीचेहीकोजाता है—ऊंचेनहीं जाता; तैसेही जो आदि किंचनमें निश्चयहुआ है वही कल्पपर्यंत है। हे रामजी! जगत् व्यवहारमें तो ऐसे हैं और परमार्थ से दूसरा कुछहुआनहीं, इस जीवने आकाश में मिथ्यादेह रची है। परमार्थ से केवल निराकार अद्वैत आत्मा है शरीर इसके साथ नहीं है इससे जगत् कैसे हो?

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपिंडनिर्णयोनामशताधिकविं-
शतितमस्सर्गः १२०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्नपर एक इतिहास बृहस्पति और बलि राजाका है सो सुनो। जब छः कल्प व्यतीत हुये तो दूसरे परार्द्धमें राजाबलिहुआ। वह महापराक्रमकी मूर्त्तिथा। उस राजा बलि ने सम्पूर्ण दैत्यों और राक्षसों को जीतकर अपनेवश किया और उनपर अपनी आज्ञा चलाई। इन्द्रकोभी जीतकर अपनेवशकिया और उसकासम्पूर्ण ऐश्वर्य्य एक नगरकीनाईं लेलियाथा। देवता और किन्नरोंपर उसकी आज्ञाचली और भूलोकभी उसने लेलिया। जबवह सबको लेचुका तब उसने धर्म आचारको ग्रहण किया। एकसमय सबसभा बैठीथी और यह कथाचली कि; जन्मकैसे होता है और मरण कैसे होता है। तब राजाबलिने देवगुरु बृहस्पतिसे प्रश्न किया कि; हे ब्राह्मण! यह पुरुष जब मृतक होताहै तब शरीर तो भस्म होजाताहै फिर कर्मोंकेफल कैसे भोगताहै और शरीर बिना कैसे आता जाताहै

सो कहिये ? बृहस्पति बोले, हे राजन्! जीवके देह नहीं है। जैसे मरुस्थलमें जल भासता है पर है नहीं; तैसेही जीवके साथ शरीर भासता है और है नहीं। जीव न जन्मताहै; न मरताहै;न भस्महोताहै; न जलके दुःखी होताहै। यहसदा अच्युतरूप है पर स्वरूपके प्रमादसे आपको दुःखी जानताहै कि; मैं इनको भोगताहूं और जन्मा हूं; इतनाकाल हुआ है; यहमेरी माता है; यह पिता है; मैं इनमे उपजाहूं और फिर आपको मृतक हुआ जानता है। हे राजन्! भ्रमसे ऐसे देखता है। जैसे निद्रा भ्रमसे स्वप्नेमें देखता है तैसेही अज्ञानसे जीव आपको मानताहै। जब मृतक होताहै तब जानता है कि;मेरा शरीर पिण्डसे हुआ है और अब मैं दुःख सुख भोगूंगा। जैसे स्वप्नमें आकाश होताहै और वहां वासनासे अपनेसाथ शरीर देखताहै और सुख दुःख भोगता है;तैसेही मरकर जीव अपने साथ शरीर देखताहै और दुःख सुखका भागी होताहै। परमार्थ से इसके साथ शरीरही नहीं तो जन्म मरण कैसेहो? स्वरूपसे प्रमाद करके देहधारी की नाईं स्थित हुआहै और उस देहसे मिलकर जैसी जैसी भावना करता है तैसाही फल भोगता है और वासनाके अनुसार जैसी भावना होती है तैसेही आगे शरीर देखताहै और पंचभौतिक संसारको देखताहै। इसप्रकार भ्रमताहै और जन्मता मरता आपको देखता है। जैसे समुद्रसे तरंग उठता और मिटजाता है तैसेही शरीर उपजता और नष्ट होताहै। शरीरके सम्बन्धसेही उपजता और विनशता भासता है। यह आश्चर्य है कि,आत्मा ज्योंका त्यों स्वाभाविक स्थितहै उसमें वासनाके अनुसार विश्व देखता है। हे राजन्! विश्व इसके हृदय में स्थित है और भावना के अनुसार आगे देखताहै। इस जीवमें विश्वहै और विश्वमें जीव नहीं। जैसे तिलमें तेलहै और तेल में तिलनहीं और सुवर्णमें भूषण कल्पित है भूषणमें सुवर्ण कल्पित नहीं वैसेही विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं।सत् इसकारण नहीं कि, चलरूप है स्थित नहीं और असत् इससे नहीं कि, विद्यमान भासता है। इससे इसकी भावना त्यागो; यह दृश्य मिथ्या है और इसका अनुभव मिथ्याहै और इसका जाननेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है। जैसे मरुस्थल में जल मिथ्या है तैसेही आत्मा में अहंकार और जीव मिथ्याहै। हे राजन्! जबतक शास्त्रके अर्थ में चपलता है और स्थितसे रहितहै तबतक संसारकी निवृत्ति नहींहोती और जब दृश्यके फुरने और अहंकारसे जड़हो तबइसको आत्मपदकी प्राप्तिहो। जबतक दृश्यकी ओर फुरताहै और चेतन सावधानहै तबतक संसारमें भ्रमताहै। हे राजन्! आत्मा न कहीं जाताहै; न आता है; न जन्मता है; न मरताहै। जब चेत और चित्तका सम्बन्ध मिटजावे तब आनन्द रूपही है। चेतदृश्यको कहते हैं और चित्तअहंकार संवित्का नामहै। जब दोनों का सम्बन्ध आपसमें मिटजावेगा तब शेष आत्माही रहेगा। वह ब्रह्म आत्मा और शिव-

पदहै जिसमें बाणीकी गमनहीं और अनुभव निर्वाच्य पद है उसीमें स्थितहो । हे रामजी ! जिसयुक्तिसे इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्तहो सोयुक्ति श्रेष्ठ है। जबतक फुरना उठताहै कि, यहभावहै, यह अभाव है; तबतक इसको जीव कहते हैं और जब भाव अभावका फुरना मिटजाता है तब जीव संज्ञाभी जातीरहतीहै । शिवपदआत्मा को प्राप्तहो जहां बाणीकी गम नहीं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवृहस्पतिवलिसम्वादवर्णनं नामशताधिकैकविंशतितमस्सर्गः १२१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार वृहस्पतिने बलिराजासे कहाथा वह तेरे प्रश्नके उत्तरनिमित्त मैंने कहाहै । जबतक हृदयमें संसारकी सत्यता है तबतक जैसे कर्मकरेगा वैसाही शरीर धरेगा । हेरामजी ! जिसवस्तुको चित्त देखताहै उसकीओर अवश्य जाताहै; उसका संस्कार उसके हृदयमें होताहै और जिसपदार्थको सत्जानताहै उस पदार्थका संस्कार स्थितहोजाताहै । जैसे मोरके अंडेमें शक्तिहोती है और जब समय आताहै तब नाना प्रकारके रंग उसमें प्रकट भासते हैं; तैसेही चित्तका संस्कारभी समय पाकर जागताहै । हे रामजी ! चित्त अज्ञानसे उपजा है। फिर वृहस्पतिने कहा, हे राजन् ! बीज पृथ्वीपर उगता है आकाशमेंनहीं उगता; जैसाबीज पृथ्वीमें बोयाजाता है तैसाही फलहोता है। यहां अहंरूप अपनाहोना यही पृथ्वी है; जैसी जैसी भावनासे कर्मकरता है तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होताहै और फिर उसमें फलहोता है । उनकर्मों के अनुसार धारके सुख दुःखको भोगता है। ज्ञानवान् आकाशरूप है आकाशमें बीजकैसे उपजे ? बीजभावनासे अज्ञानरूपी पृथ्वी में उगता है । बलिनेपूछा, हे देवगुरु ! आपने कहा कि, जीव जीताहो अथवा मृतकहो इसे अपनी भावनाही से अनुभव होताहै तो जब यह मृतकहुआ और इसकी पिण्डादिकमें भावना न हुई तो फिर इसका शरीर कैसे होताहै ? वृहस्पति बोले, हे राजन् ! पिण्डदान आदिकक्रिया न हों पर उसके हृदयमें भावनाहो और उसी समय किसीने किया तौभी वह जो हृदय में भावना है वही कर्मरूप है और उसीसे भासिआता है और जो उसके हृदय में भावनानहीं और किसीबांधवने इसके निमित्त पिण्डदान किया तोभी इसको भासिआताहै क्योंकि; वहभी इसकी वासनामेंस्पन्दहै । हे राजन्! जो अज्ञानी जीवहैं और जिनको अनात्ममें आत्मबुद्धि है उनकेकर्म कहांगये हैं, वे जो कर्म करते हैं वही उनके चित्तरूपी भूमियें उगते हैं । उनके शरीरकी क्यासंख्या है ? वे वासनारूपी अनेक शरीर ज्ञानबिना स्वप्नवत् धारते हैं । बलिबोले, हे देवगुरु ! यह निश्चयकरके मैंने जानाहै कि, जिसको निष्किंचनकी भावना होतीहै वह निष्किंचन पदको प्राप्तहोता है और संसारकी ओरसे शिलाकी नाईं होजाता है ।जि-

सकी जैसी भावना होतीहै तैसाही स्वरूप होजाताहै । जब संसारसे पत्थरवत्हो तब मुक्तहो । वृहस्पति बोले, हे राजन् ! निष्किंचन को जब जानता है तब संसारकी ओरसे जड़होजाता है । संसारके न फुरनेहीका नाम जड़है और केवल सारपदकेस्थित होताहै । जिसेगुण चला न सकें उसे जानिये कि, निष्किंचनपदको प्राप्तहुआहै । वही निःसंदेह मुक्तहै । हेराजन् ! जबतक संसारकी सत्यता चित्तमेंस्थित है तबतक वासना है और जबतक वासनाहै तबतक संसारहै।संसारके अभाव बिना शान्तिनहींहोती । स्वरूपके प्रमादसे चित्तहुआहै; चित्तसे वासना हुईहै और वासना से संसार हुआहै; इससे इसवासनाको त्यागकरो । कोई फुरना फुरेतो निष्किंचन भावहो और शांतभागी हो । हेराजन् ! जिसयुक्ति और क्रमसे यह निष्किंचन रूपहो वही करे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकारसे सुरपुर में असुरनायकको सुरगुरुने जो पिंडदानादि क्रिया कही वह मैंने तुमको सुनाई ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवृहस्पतिवलिसम्वादोनाम
शताधिकद्वाविंशतितमस्सर्गः १२२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चाहै जीताहो चाहै मृतकहो जो कुछ इसके चित्त के साथ स्पर्शहोगा उसका अनुभव अवश्य करेगा। जैसे मोरके अंडे में रस होता है तो वह समय पाकर विस्तार पाताहै तैसेही इसके भीतर जो वासना का बीजहै वह यदि प्रगट नहीं भासता तो भी समय पाकर विस्तारवान् होताहै । जब तक चित्तहै तब तक संसार है और जब चित्त नष्टहो तब सब भ्रम मिटजावे । हे रामजी ! चित्त भी असत्है तो विश्व भी असत्य है । जैसे आकाशरूपमें नीलता भ्रमसे भासतीहै तैसेही आत्मामें विश्वभ्रमहै । हे रामजी ! हमको न चित्त भासता है न विश्व भासता है;मैंभी आकाशहूं और तुम भी आकाशरूपहो । यह चित्तस्वरूपके प्रमाद करके उपजताहै । जैसे जहां का-जल होताहै वहां श्यामता होती है तैसेही जहां चित्त होताहै वहां वासना होती है । जब ज्ञानरूपी अग्निसे वासना दग्धहो तब चित्त सत्पदको प्राप्त होताहै और जीवतसंज्ञा निवृत्त होती है । हे रामजी ! चित्तके उपशमका उपाय मुझसे सुनो तो उससे चित्त नि-र्वाण होजावेगा । जो सात भूमिका ज्ञानकी हैं उनसे चित्त नष्ट होजावेगा । उनमेंसे तीन भूमिका तो तुमसे क्रमसे कहीहैं और चार कहनेको रही हैं । हे रामजी ! प्रथम तीन भू-मिकाओं मेंसे जिसको एक भी प्राप्त होती है; उसको महापुरुष जानो । उसके मान और मोह निवृत्त होजाते हैं और उसे संगदोष नहीं लगता । उसमें विचार स्थितिसे कामना नष्ट होजाती है और रागद्वेष न रहकर सुख दुःखमें सम रहताहै । ऐसा अमूढ़ पुरुष अव्यय पदको प्राप्त होता है । इतने गुण तीसरी भूमिकामें प्राप्त होते हैं और

चित्त नष्ट होजाता है तब संसार को नहीं दृष्टि आता है जैसे दीपक से देखिये तो अन्धकार नहीं मिलता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तअभावप्रतिपादनंनाम शताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः १२३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब तीसरी भूमिका दृढ़पूर्ण होके दृढ़अभ्यास से चौथी भूमिका उदय होती है तो अज्ञान नष्टहोजाता है और सम्यक्ज्ञान चित्त में उदय होता है। तब वह पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शोभापाताहै और आदिअन्त से रहित निर्विभाग चेतनतत्त्वमें उसयोगी का चित्त स्थित होताहै और वह सब को सम देखताहै। जिसयोगीको चतुर्थभूमिका प्राप्तहोतीहै उसके नाना प्रकारके भेद भाव निवृत्तहोजाते हैं और अभेद सर्व आत्माभाव उदयहोताहै। उसको जगत् स्वप्नकी नाईं भासता है और इन्द्रियों का व्यवहार स्वप्नवत् होजाता है। जैसे जिसको अर्द्धसुषुप्ति होती है उसे उसकालमें खानापीना रससे रहित होजाता है तैसेही चतुर्थभूमिकावाले का व्यवहार रससे रहित होताहै। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रकाशताहै तैसेही उसको आत्माका प्रकाश उदयहोता है और उसकी सब कल्पना नाशहोजाती हैं; न किसी पदार्थ में रागरहता है, न किसी में द्वेषरहताहै। संसार समुद्रमें डुबानेवाले राग और द्वेष हैं। इष्टपदार्थ में राग होताहै और अनिष्टमें द्वेषहोता है। इससे वह संसार समुद्र में गोतेनहींखाता और उसके चित्तको कोई मोहित नहींकरसक्ता। हे रामजी! जबतक तृतीय भूमिका होती है तबतक उसको जाग्रत अवस्था होती है और जब चतुर्थ भूमिका प्राप्तहोती है तब जगत् स्वप्न होजाता है। तब वहसर्व जगत् को क्षणभंगुर और नाशवन्त देखता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भावनाका अभाव होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिका लक्षण कहिये और तुरिया और तुरियातीत मुझसे कहिये। गुरूशिष्यको उपदेश करते खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तत्त्वका विस्मरण, पदार्थों की भावना और नाशवन्त पदार्थों कोसत्कीनाईं जाननाही जाग्रत है। पदार्थों में भाव—अभावकी सत्यता और जगत् को मिथ्या भावनामात्र जानना स्वप्ना कहाता है और जाग्रत और स्वप्न जिसमेंलय होजावें सो सुषुप्तिहै। यदि ज्ञानभाव से भेदकी शांति होजावे और जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों का अभाव हो ऐसी जो निर्मल स्थितिहै सो तुरिया है। हे रामजी! अज्ञानीजीव संसारको वर्षाकाल के मेघकी नाईं देखते हैं क्योंकि, उनको दृढ़होकर भासताहै पर जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्तहुईहै वह शरत्कालके मेघकी नाईं संसार को देखताहै और जिसको पंचमभूमिका प्राप्त हुईहै वह शरत्काल के मेघ नष्टहुये की नाईं देखताहै। जैसे निर्मल अकाश होताहै तैसेही उसको निर्मल भासताहै। इन

तीनोंका वृत्तान्त सुनो । अज्ञानी जगत्को जाग्रतकी नाईं देखताहै और उसको जगत् की दृढ़ सत्यता भासतीहै इससे उसे राग द्वेष उपजताहै । चतुर्थ भूमिकावाला जगत् को ऐसे देखता है जैसे शरत्कालका मेघ वर्षा से रहित होता है । जैसे स्वप्नेकी सृष्टि होती है तैसेही उसको जगत् की सत्यता नहीं भासती क्योंकि; उसकी स्मृति स्वप्नेकी होनी है और वह जगत् को स्वप्नवत् देखता है इससे उसको राग द्वेष नहीं उपजता । पंचम भूमिका की प्राप्तिवाला जगत् को सुषुप्तिकी नाईं देखता है । जैसे शरत्कालका मेघ नष्टहोके फिर नहीं दीखता तैसेही उसको संसार का भान नहीं होता और उसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है । जैसे कमल स्वाभाविकही खुलता और मूंदजाताहै तैसेही उसको कुछयत्ननहीं—चेष्टामें जैसा प्रतियोगी स्वाभाविक प्राप्तहोताहै सो करता है । जैसे कमल के खुलने का प्रतियोगी जब सूर्य उदयहुआ तब खुलगया और जब मूंदने का प्रतियोगी रात्रिहुई तब मूंदजाता है—उसको कुछ खेद नहीं; तैसेही उस पुरुष की अहंममतासे रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है । हे रामजी ! अहंता ममतारूपी जाग्रतसे वह पुरुष सुषुप्त होजाताहै और सम्पूर्ण भावरूप जो शब्द और अर्थ हैं उनका उसको अभाव होजाता है; उसका अशेष शेषका मनन नष्ट होजाता है और उसको पशु,पक्षी,मनुष्य,देवता;भला,बुरा इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थोंकी भावना नहीं रहती; उसकी द्वैतकलना नष्ट होजाती है और एक ब्रह्मसत्ताही भासतीहै—संसार नहीं भासता । हे रामजी ! अहंतारूपी तिलसे संसाररूपी तेल उपजता है और अहंतारूपी फूलसे संसाररूपी गन्ध उपजतीहै । संसारका कारण अहंताही है । जिस पुरुषकी अहंता नष्ट होजातीहै वह इन्द्रियोंके इष्टको पाकर हर्षवान् नहींहोता और अनिष्टके प्राप्त हुये द्वेष नहीं करता । वह ऐसे आपको नहीं जानता कि,मैं खड़ाहूं वा बैठाहूं अथवा चलताहूं; वह आपको सर्वदा आकाशरूप जानता है और न भीतर देखताहै,न बाहर देखता है; न आकाशको देखता है और न पृथ्वीको देखताहै सर्वब्रह्मही देखताहै । उस को भिन्न कुछ नहीं भासता और वह द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनोंका साक्षी रहता है । वह अहंकारकाभी साक्षी; इन्द्रियोंकाभी साक्षी और विश्वकाभी साक्षीहै और इनके साथ स्पर्श कदाचित् नहीं करता । जैसे ब्राह्मण चाण्डालसे स्पर्श नहीं करता । जैसे बीजसे अंकुर होताहै और फिर अंकुरसे डाल होते हैं; इसीप्रकार सब पदार्थोंका परिणामहै पर उनमें आकाश ज्योंका त्यों रहता है क्योंकि, उनके साथ स्पर्श नहीं करता; तैसेही वह पुरुष द्रष्टा,दर्शन, दृश्य से अतीत रहताहै । जैसे मरुस्थलमें जल असत् है तैसेही उस पुरुषको त्रिपुटी असत्यहै । त्रिपुटी और अहंता उस पुरुषकी नष्ट होजाती है इससे भेद बुद्धि भी नहीं रहती और इसीसे वह शान्त; निर्मल,संसारसे सुषुप्त; चेतन घनता से पूर्ण और सर्वदा शान्तरूप है । जिन नेत्रोंसे लोग संसार देखते हैं उनसे वह अन्धा

न्न्या है—अर्थ यह कि, जिस मनसे फुरना होता है उसको उसने नाश किया है और यदि भय, क्रोध, अहंकार, मोह इत्यादि उस पुरुषमें दीखते भी हैं पर उसके हृदय में कुछ स्पर्श नहीं करते। जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करसक्ता तैसेही उस पुरुष को कोई विकार स्पर्श नहींकरता। हे रामजी! उस पुरुष के संपूर्ण संशय नष्टहोगये हैं और वह सर्वदा स्वरूपमें स्थित और शान्तरूप है; आत्मासे भिन्न वह किसी सुखकी बाञ्छा नहीं करता और उसके सर्व संकल्प नष्ट हुये हैं। उसे आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता; जाग्रत की नाईं दृष्टि आता है पर सर्वदा जाग्रत से सुषुप्त है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रक णेपंचमभूमिकावर्णनंनाम चतुर्विंशतिशताधिकतमस्सर्ग्गः १२४॥

वशिष्ठजी बोले, हे राम ी! तीसरी भूमिका पर्यंत जाग्रत है और चतुर्थ भूमिका में जाग्रत अवस्था को स्वप्नवत् देखता है। पंचम भूमिका वाला संसार से सुषुप्त होताहै और छठी भूमिका वाला तुरिया पदमें स्थि होताहै औरसर्वदा अक्रिय है अर्थात् किसीक्रिया में बन्धमान नहींहोता। वह सर्वकाल आनन्दरूप है; भिन्न होकर आनन्दको नहीं भोगता आपही आनन्द है; केव अपने आप स्वतः स्थित है और सर्वदा निर्वाणहै। हे रामजी! सर्वक्रियामें वह यथाशास्त्र बिचरता दृष्टिआता है परन्तु हृदयमें शून्य है—उसको किसीसे स्पर्शनहीं। जैसे ाकाशमें सर्वपदार्थ भासतेहैं और आकाशका स्पर्श किसीसे नहीं; तैसे ी सर्वक्रिया उसमें विद्यमान दृष्टि भी आतीहैं तौभी वह हृदयसे किसीसेस्पर्शनहीं करता क्योंकि; उसको क्रियामें बन्धमान करनेवाला जो अहंकारथा सो उसकानष्ट ोगयाहै—केवल शान्तरूप । उसमें अहं ा फुरना चिन्मात्रमें से निवृत्तहुआ है। चिन्मात्रसे अहंभावका उत्थानही अज्ञान है और वही दुःखदायी है। जब अहंभाव निवृत्त होता है तब कोई कर्म स्पर्श नहींकरता। यद्यपि उसको बिश्व दृष्टिभी आताहै तौभी वास्तवसे नहीं देखता क्योंकि उसको सर्वब्रह्मही भासता है; खाताहै और नहीं खाता; ेता भी है और कदाचित् नहीं देता; लेता है तौभी कदाचित् किसीसे कुछनहीं लेता और चलता है परन्तु कदाचित् नहींचला। हे रामजी! जो देशकाल—वस्तु पदार्थ हैं न सबमें वह आत्मभाव रखता है। यद्यपिउसमें प्रत्यक्ष चेष्टा दीखती है तौभी सके हृदय में कुछ नहीं। जैसे सुपनेमें खात, पीता, लेता, देता आपको भासता है और जागेसे सबका अभाव होजाता है तैसेही जोपुरुष परमार्थ सत्तामें जगाहै उ को गुणकीक्रिया अपने से नहीं भा ती औ जो करताहै उसमें अभिलाषा नहीं रखता, उसकी बचेष्टा स्वाभाविक होतीहै। अपने निमित्त उसे कुछ कर्त्तव्य नहीं। ऐसे भगवान्‌नेभी कहा

वह पुरुष एक रस है। संसार में जाग्रत होकर चेष्टा करताहै पर हृदय में संसारकी भावना से रहितहै। उसपदमें वाणीकी गमनहीं परन्तु कुछकहताहूं सुनो; कोई उसे ब्रह्मकहते हैं; कोई चेतन कहते हैं; कोई आत्माकहते हैं; कोई साक्षी कहते हैं; कालवाले उसीको कालकहते हैं; ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं; सांख्यवाले प्रकृति इत्यादिक संज्ञाओं से कहते हैं। ये सब उसी के नाम हैं—उससे भिन्न नहीं। उसपद को सन्तजन जानते हैं। हे रामजी! ऐसे पदको पायके वह अपने आपसे शोभताहै। जैसे मणिके भीतर बाहर प्रकाश होताहै तैसेही वह पुरुष भीतर बाहरसे शोभताहै और अपने स्वरूपसे सदाघूर्म रहताहै। जो पुरुष छठी भूमिकामें स्थितहै उसके ये लक्षण होते हैं कि, संसारसे सुषुप्त होकर स्वरूपमें चेतन होताहै और उसका जीवत्वभाव जातारहताहै। जैसे घटकी उपाधिसे घटाकाश प्रच्छिन्न भासताहै और जब घटभग्न हुआ तब घटाकाश महाकाश एक होजाताहै; तैसेही अहंकाररूपी घटके भग्नहुये आत्माही भासता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेषष्ठभूमिकाउपदेशोनाम शताधिकपंचविंशतितमस्सर्गः १२५॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! इसके अनन्तर जब सप्तम भूमिका उस पुरुषको प्राप्त होती है तब आपको आत्माही जानताहै और भूतोंका ज्ञान जाता रहताहै। तब केवल आत्मत्वमात्र होताहै और दृश्यका ज्ञान नहीं रहता; बल्कि यह भी ज्ञान नहीं रहता कि,विश्व मेरे आश्रय फुरतीहै। देहसहित हो अथवा विदेहहो उसको आत्मा से उत्थान कदाचित् नहीं होता। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही वह आत्म स्वरूप में स्थित होता है और उसकी चेष्टा भी स्वाभाविक होतीहै। जैसे बालकपालने में अपने अंग स्वाभाविक हिलाता है तैसेही उसकी खान, पान आदिक चेष्टा स्वाभाविकही है और जैसे काष्ठकी पुतली तागे से चेष्टा करती है तैसेही प्रारब्ध वेग के तागे से उसकी चेष्टा होती है—उसको अपनी कुछ इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! सप्तम भूमिकावाला जैसी अवस्थाको प्राप्त होताहै सो आपही जानताहै और कोई नहीं जानसक्ता जिसका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआ है वह भी उसअवस्था को नहीं जानसक्ता; जिसको वह पद प्राप्त हुआहै वही जानैहै। हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त सत्पदको प्राप्त होताहै और यह तुरीया पदमें स्थितहोता है। उसका चित्त निर्वाण होजाता है और तुरीयातीत पदको प्राप्तहोकर विदेहमुक्त होता है। उसको अहंभावका उत्थान कदाचित् नहीं होता और सत्रूपहै पर असत्कीनाईं स्थितहै। हे रामजी! वह पुरुष उसपदको प्राप्तहोता है जिसको वाणीकी गमनहीं परन्तु कुछ कहता हूं। वह पद, शुद्ध, निर्मल, अद्वैत, चेतन, ब्रह्म और कालका भी काल केवल

चिन्मात्रहै और ज्योंकात्यों अच्युत पदहै। उसपदको पाकर ऐसेहोताहै। जैसे वस्त्रके ऊपर मूर्त्तिलिखीहो तैसेही यह उत्थान से रहितहै और उसको अहंब्रह्म का उत्थान भी नहीं रहता ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसप्तभूमिकालक्षणविचारोनाम षड्विंशाधिकशततमस्सर्ग्गः १२६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सप्त भूमिका जो तुमसे कही हैं, ज्ञानकी प्राप्ति इनहीं से होती है; अन्य साधनसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! जब पुरुष ज्ञानवान् हो तब जानिये कि, उसकी वृत्ति प्रथम भूमिका में स्थित हुई है। इससे तुम भूमिका की ओर चित्तरूप चरण रक्खो तब तुमको स्वरूपकी प्राप्ति होगी। हे रामजी! तीसरी भूमिका पर्यंत सर्व कामना निवृत्त होती हैं केवल एक आत्मपदकी कामना रहती है। यदि उस अवस्था में शरीर छूटजावे तो और जन्म पाकर ज्ञानको प्राप्त होता है और यदि चतुर्थ भूमिका में प्राप्तहोकर शरीर छूटेतो फिर जन्मनहीं पाता क्योंकि; आत्मपद की प्राप्तिहुये से फिर कुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती। जन्म का कारण इच्छाहै; जब कुछ इच्छा न रही तब जन्म भी न रहा। जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसको स्वरूपकीभी प्राप्ति होतीहै तो फिर इच्छा कैसेहो? जैसे भूनाबीज नहीं उगता तैसेही उसका चित्तज्ञान अग्निसे दग्ध होता है क्योंकि; वह सत्पद को प्राप्त होता है; इसीसे वह जन्म नहीं लेता और मरता भी नहीं—संसार को स्वप्नवत् देखता है। पञ्चम भूमिका वाला सुषुप्ति की नाईं होता है और छठीभूमिका साक्षीरूप तुरीयापद है; सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्य पद है। हे रामजी? मुझे इतने कहने का प्रयोजन यहीहै कि, वासनाका त्यागकरो और अचित् पद को प्राप्त हो। इसका अभिमान होनाही वासना है; जब इसका अभिमान निवृत्तहो तब शांति होगी यह परिच्छिन्न अहंकार न रहेगा। आत्माके अज्ञानसे हुआ है और आत्मज्ञान से लीन होजाता है। हे रामजी! संसाररूपी एक नदी में आधि–व्याधि उपाधि रोग तरंगें हैं; राग द्वेषरूपी छोटे मच्छ हैं और तृष्णारूपी बड़ेमच्छ हैं उसमें जीव दुःखपाते हैं। जैसे जलनीचे को चलाजाता है तैसेही मृत्युके मुख में संसार चला जाता है और अज्ञानरूपी जल है। हे रामजी! तृष्णासे पुरुष बांधे हैं; इससे तुम हाथी की नाईं बैराग्य और अभ्यासरूपी दांतोंसे [illegible]ष्णारूपी जंजीरकाटो। हे रामजी! तृष्णारूपी सर्पिणी विषयरूपी फुत्कारे से विचाररूपी बेलिको जलाती है इससे जीवरूपी [illegible] दुःखपाता है। इससे तुम बैराग्यरूपी अग्निसे उस सर्पिणी को जलाओ। हे रामजी! तृष्णा दुःखदायी है। जबतक तृष्णा है तबतक सन्तों के वचन स्थित नहीं होते। जैसे दर्पणपर मोती नहीं ठहरता तैसेही तृष्णावान् के हृदय में सन्तों के

वचन नहीं ठहरते। तृष्णाके इतने नाम हैं तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरना, संसरना, इत्यादिक सर्व इसीके नामहैं इच्छारूपी मेघने ज्ञानरूपी सूर्य्यको ढांका है इससे वह नहीं भासता जब विचाररूपी पवन चले तब इच्छारूपी मेघ नष्ट होजावे और आत्मरूपी सूर्य्य का साक्षात्कारहो। हे रामजी! यह जीव आकाशका पक्षी है पर कर्म में इच्छारूपी तागे से बँधा है इससे नहीं उड़सक्ता और परमात्मपद को भी प्राप्त नहीं होता—इच्छाहीसे दीन है जब इच्छानष्टहो तब आत्मस्वरूप है। इससे तुम इच्छाको नाशकर आत्मपरायणहो अर्थात् विषय संसार से वैराग्य और आत्माभ्यासकरो। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे भूमिका का क्रमकहा है जब इसमें आवे तब ज्ञानकी प्राप्ति हो पर इनको तब प्राप्त होताहै जब कि, एक हथिनीको जीते तो एकवनमें रहती और महामत्तरूप उसके दो पत्र हैं जो अनेक जीवों को मारकर अनर्थ प्राप्त करते हैं। उसके जीते से सर्व जगत् जीताजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसी मत्तरूप हथिनी कौनहै और कहांरहती है? उसके दांत और पुत्र कौन हैं? कैसे वह मारतीहै, कैसे उत्पन्न हुई है और कौन बन है? यह सब मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इच्छारूपी हथिनी शरीररूपी वनहै और मनरूपी गुफामें रहती; इन्द्रियांरूपी उसके बालक हैं और संकल्प बिकल्परूपी दांतहैं उनसेछेदतीहै। हे रामजी! एकनदीहै जिसका प्रवाह सदा चलाजाताहै और जिसमें दो मच्छरहते हैं जो कभी नाशनहीं होते संसाररूपी नदीहै जिसमें रागद्वेष मच्छरहतेहैं सो नाशनहींहोते। हे रामजी! वे मच्छ तब नाशहों जब संसरणरूपी जलनष्टहो जिसके सुकृत दुष्कृतरूपी किनारे हैं; चिन्तारूपी ग्राह हैं और कर्मरूपी लहरें हैं उनमें जीवरूपी तृणआकर भटकता है। इस तृष्णारूपी विषवेलिका नाशकरो। हे रामजी! तृष्णारूपी अंकुर का बढ़ाना घटाना अपने ही आधीनहै; जो अंकुरको जलदीजिये तो बढ़ताजाता है और जो न दीजिये तो जल जाता है। फुरनरूपी जलदेनेसे तृष्णारूपी अंकुर बढ़ताजाताहै और न देनेसे स्वरूप के अभ्यास द्वारा जलजाता है। हे रामजी! तृष्णारूपी बड़ा मच्छहै जो धैर्य आदिक मांसको भक्षण करने वालाहै; उसे वैराग्यरूपी कण्डी और अभ्यासरूपी दांतोंसे नाश करो। हे रामजी! इच्छा का नाम बन्धन है और निरिच्छा का नाम मुक्ति है। हे रामजी! एक सुगमउपाय कहताहूं जिससे तृष्णा नष्ट होजावेगी निज अर्थकी भावना करो तो उसभावना से शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी, एवम् तुम्हारी जयहोगी और सबसे उत्तम पदको प्राप्त होगे; फिर तुम्हें वासना न रहेगी और शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और सर्व संकल्प नष्टहोजावेंगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसरणभावप्रतिपादनंनाम शताधिकसप्तविंशतितमस्सर्ग्गः १२७॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं कि, निजअर्थ की भावनासे वासना नष्ट होजावेगी और शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होगी सो वासना तो चिरकाल की चित्त में स्थितहै एकही बार कैसे नष्ट होगी ? तथा आप कहते हैं कि;वासनाके नष्टहुये जीवन्मुक्त होताहै पर जिसकी वासना नष्ट होगी उसका शरीर कैसे रहेगा; वासना बिन चेष्टा क्योंकर होगी और जीवन्मुक्तपद कैसे होगा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मेरे वचनों को जो कानों के भूषण हैं सुनेसे दरिद्र न रहेगा। निज अर्थ के धारने से संशय नष्ट होजावेंगे और आत्मपदकी प्राप्ति होगी। उस निज अक्षरके तीन अर्थ हैं-एक तो अन्यके अर्थ हैं कि, पंचभौतिक शरीरसे तेरा स्वरूप बिलक्षणहै और दूसरा अर्थ विरुद्ध है अर्थात् शरीर जड़ और तमरूप है और तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण और तम से परे है। हे रामजी ! जब तूने ऐसे धारणा की कि, मैं आत्मा हूं और यह देहादिक अनात्माहै तब देहसे मिलकर अभिलाषा कैसे रहेगी ? अर्थ यह कि, अभिलाषा न करेगा क्योंकि, जब तक जाना नहीं तब तक अभिलाषा है। तीसरा अर्थ यह है कि, अभाव है अर्थात् न मैंहूं और न कोई जगत्है। जब ऐसे जाना तब किसकी इच्छारहेगी ? अर्थात् किसीकी न रहेगी। अथवा जो तुम आपको देहसे विलक्षण आत्मा जानोगे तौभी अविद्यक तमरूप शरीरकी अभिलाषा न रहेगी। देहतमरूपहै और तुम आदित्य वर्णहो अर्थात् प्रकाशरूप हो; तुम्हारा और इसका क्या संयोग जैसे सूर्यके मण्डल में रात्रिनहीं दिखती तैसेही जब तुम आपको प्रकाशरूप जानोगे तब तमरूप संसार न दीखेगा। तब शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होगी और तुममें कुछचेष्टा न होगी । जैसे अर्द्धनिद्रावालेकी चेष्टाहोती है तैसेही चेष्टाहोगी और तुमको बालककी नाईं अभिमान न होगा। जैसे बालककी उन्मत्त चेष्टाहोतीहै तैसेही तुम्हारी चेष्टाभीस्वाभाविक होगी। हे रामजी ! यदि तुम यह इच्छाकरो कि, यहसुखहो और यहदुःख न हो तो कदाचित् न होवेगा। जोकुछ शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्यहोती है परन्तु ज्ञानवान्के हृदयसे संसारकी सत्यता जातीरहती है और स्वाभाविक चेष्टा होती है, इच्छा नहीं रहती। हेरामजी ! जैसे कोई पुरुष किसीदेशको जाताहै और पहुंचनेका समय थोड़ाहो तो वह मार्गके स्थानदेखताभी जाताहै परन्तु बंधवान् किसीमें नहीं होता; तैसेही चित्तको आत्मपदमें लगावो। ऐसाशरीर पाकर यदि आत्मपद न पाया तो कबपावेगा ? जो आत्मपदसे विमुखहै वह वृक्षादिक जन्मोंको पावेगा इससे; हे रामजी ! चित्त आत्मपदमें रक्खो और स्वाभाविक इच्छाबिना चेष्टाकरो इच्छाही दुःखदायकहै। जब इच्छा नष्टहोती है तब उसीको ज्ञानवान् तुरीयापद कहते हैं- जहां जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिका अभावहो सो तुरीयापदहै। हे रामजी ! यह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइये सो तुरीयापदहै। जब संवेदनफुरना

अहंकारका अभावहोजावे तब तुरीयापद प्राप्त होताहै। हेरामजी! अहंकारकाहोना दुःखदायक है। जब इसका नाशहो तबहीं आनन्दहै। आत्मपदसे भिन्न जो मायाकी रचनाहै उससे मिलकर आपको जानता है कि,'मैंहूं;' यही अनर्थहै। इससे अहंकार का त्यागकरो। जिसको देखकर यह फुरताहै उसको निजअर्थकी भावनासे नाशकरो और जो आत्मपदसे भिन्न भासता है उसे मिथ्या जानो। यही निज अक्षरका अर्थ है। जो कुछ संसार भासता है उसको स्वप्नमात्र जानो। इसको सत्य जानकर इसकी इच्छा करनाहीं अनर्थहै और मिथ्या जानकर इच्छा न करनी कल्याण है। हे रामजी! मैं ऊंची बाहु करके पुकारताहूं पर मेरे वचन कोई नहीं सुनता कि;इच्छाही संसारका कारणहै और इच्छासे रहित होनाही परमकल्याणहै। जब जीव इच्छासे रहित होता है तब शान्तपदको प्राप्त होताहै और निरिच्छित हुये से आत्माही भासता है जो आनन्दरूप, सम और अद्वैत है और उसमें जगत् का अभाव है। हे रामजी! मोह का बड़ा माहात्म्य है। हृदय में जो आत्मरूपी चिन्तामणि स्थित है उसको बिस्मरण करके मूर्ख अहंकाररूपी कांचको ग्रहण करते हैं। हे रामजी! तुम निरभिमान होकर चेष्टा करो। जैसे यंत्रीकी पुतली में अभिमान कुछ नहीं होता और उसकी चेष्टा होती है; तैसेही प्रारब्ध वेगसे तुम्हारी चेष्टा होगी। यह अभिमान तुम न करो कि, ऐसे हो और ऐसे न हो। जब ऐसे होगे तब शांतपदको प्राप्त होगे; जहां वाणीकी गमनहीं ऐसे आनन्दको प्राप्त होगे। जब तक इन्द्रियों के अर्थ की तृष्णा है तब तक जन्म मृत्युके बन्धनमें है। इससे पुरुष प्रयत्न यही है कि,तृष्णाका नाश करो;कर्मके फलकी तृष्णा न हो और कर्मके करने की भी इच्छा नहो। इन दोनों को त्यागकर स्वरूप में स्थित होरहो बल्कि ऐसा भी निश्चय नहो कि; मैंने त्याग कियाहै। हे रामजी! जिस पुरुषने कर्मको त्याग कियाहै और अहंकार सहित है उसने पुण्य और पाप सब कुछ कियाहै और जिसमें अहंभाव नहीं है वह चाहे जैसे कर्म करै तौ भी कुछ नहीं करता और वह बन्धनको नहीं प्राप्त होता। जो कर्म में आपको अकर्त्ता जानता है और न करने में अभिमान सहित है उसको कर्त्ता देखते हैं वह बन्धवान् है। हे रामजी! ऐसे आत्मा को जानकर अहंममका त्याग करो। ऐसे संवेदन के त्यागने में कुछ यत्न नहीं है। स्मृति उसकी होती है जिसका अनुभव होताहै पर जिसका अनुभव नहीं उसका त्याग करना सुगम है। अनुभव प्रत्यक्ष देखनेको कहते हैं। तुम्हारे स्वरूप में विश्व नहीं है तो अनुभव क्या हो। ये पदार्थ जो तुमको भासते हैं उनके कारण को जानो। इनका कारण अनुभव है;जो अनुभवही इनका मिथ्याहै तो स्मृति कैसे सत् हो? रस्सी में सर्पका अनुभव हुआ और फिर स्मरण किया कि, वहां सर्प देखा था; जो सर्प का अनुभवही मिथ्या है फिर उसका स्मरण कैसे सत्हो? इससे जो वस्तु मिथ्या है

उसके त्यागने में क्या यत्न है? जब प्रपंच को मिथ्या जाना तब तुझको कोई क्रिया वन्धन न करेगी; चेष्टा स्वाभाविक होगी और राग द्वेष जाता रहेगा । जैसे शरत्काल की बेलि सूखजाती है और उसका आकार दृष्टि आताहै; तैसेही तुम्हारा चित्त देखनेमें आवेगा और चित्तका धर्म जो रागद्वेषहै वह जाता रहेगा—वह चित्त सत्पदको प्राप्तहोगा। जब सब विस्मरण होताहै उसको शिवपद कहते हैं । वह परमपद ब्रह्मशब्द-अर्थसे रहित केवल चिन्मात्र अद्वैतपद है; उसमें अहंममका त्याग करके स्थित रहो । संसार इसीका नाम है कि, अहंहूं और यह मेरा है । इसको त्याग कर अपने स्वरूप में स्थित हो । हे रामजी ! जब तक अहंमम का संवेदन है तब तक दुःख नहीं मिटते और जब यह संवेदन मिटा तब आनन्द है । आगे जो इच्छा हो सो करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइच्छाचिकित्सोपदेशंनाम शताधिकाष्टविंशतितमस्सर्गः १२८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अद्वैत आत्मा जिसको एक दो नहीं कहसक्ते अपने आप स्वभावमें स्थितहै और अन्तष्करण चतुष्टय बाह्य पदार्थ सब चेतनमात्रहैं कुछ भिन्न नहीं । रूप, इन्द्रियां और मनका फुरना; देश, काल सर्व आत्मारूपही है । जैसे बालकमट्टीकी सेना बनाकर हाथी, घोड़े, राजा, प्रजा नाम कल्पताहै सो सब मट्टीही हैं-भिन्न कुछ नहीं ; तैसेही अहं मम आदिकभी सर्व आत्मरूपहै—कुछ पृथक् नहीं । जैसे मट्टीमेंहाथी, घोड़ा आदि नाम कल्पितहैं; तैसेआत्मामेंही जीव जगत् कल्पताहै-आत्मासे भिन्नकुछनहीं । इसअहंकारको त्याग करो कि, आत्मपदसेभिन्न कुछ न फुरे । हे रामजी ! रूप, अवलोक और मनस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिका के नामहैं और मान; मेय; प्रमाण आदिक यह सब वही रूप हुये तो किससे किसको संचित कहिये? यह अहं मम आदिक भी चिदाकाशसे कुछ भिन्न वस्तु नहीं । इसको ऐसे जानकर अफुर शिलावत् निःसंग होरहो । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! आपने कहा कि; अहं मम फुरनेका त्यागकरो यह मिथ्या है और अहं मम असत् है । ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं कि, इनकी सत्ता कुछ नहीं और तुम असंग होरहो पर असंग निष्कर्म से होताहै अथवा सकर्मसे होताहै यहकहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह तुमहीं कहो कि; कर्म क्या है और निष्कर्म क्या है ; इनका कारण कौन है और इनका नाश कैसे हो और नाश होनेसे क्या सिद्धि होगी; जो तुम जानतेहो तो कहो? रामजी बोले, हे भगवन् ! जैसे आपसे सुनाहै और समझा है सो मैं कहताहूं । जो वस्तु नाशकरनी हो उसको निश्चय करके मूलसे नाश कीजिये तभी उसका नाशहोताहै, शाखा और पत्र काटेसे उसका नाश नहीं होता – इससे इनका क्रम सुनो । इस संसाररूपी बनमें देहरूपी वृक्ष है जिसका बीज कर्म है ; पाणि पाद आदिक पत्र हैं ; रुधिर, श्वास और

वासना रस हैं और सुख दुःख फूल हैं। जाग्रत कर्म वासनारूपी वसन्त ऋतु है उससे वह प्रफुल्लित होताहै और सुषुप्ति पापकर्म रूपी शरत्काल है उससे सूखजाता है। ऐसा शरीररूपी वृक्ष है। तरुणपनरूपी उसकी कलीहै सो क्षणक्षण सुन्दरहै; जरा रूपी फूल इसको हँसते हैं और द्वेषरूपी वानर क्षण क्षणमें क्षोभते हैं। जाग्रतरूपी वसन्तऋतु है जो सुषुप्तिरूपी हिम करती है और वासनारूपी रस से बढ़ता है। पुत्र, कलत्र आदिक तृण और घास हैं और इंद्रियोंके गढ़रूपी मुखहैं जिनसे शरीरकी चेष्टा होती है। ज्ञान इंद्रियां पंचथम्भ हैं जिनसे वृक्ष सधा है और इच्छारूपी बेलिहै जो अपने अपने को चाहती हैं। बड़ा थम्भ इसका मन है जो सबको धारता है और पंचप्राण इसके रसहैं उनसे प्रत्यक्ष सबको ग्रहणकरता है। इनका बीज जीवहै — जीव चैत्योन्मुखत्व चेतनको कहते हैं; जीवका बीज संवित् है जो मात्रपदसे उत्थान हुआ है और उस संवित्का बीज ब्रह्महै—उसका बीज कोईनहीं। हे भगवन्! सबकामूल संवित्का फुरना है; जब इसका अभाव होता है तब आत्माही शेष रहताहै। हे भगवन्! यहतो मैं जानताहूं आगे आपभी कुछ कृपाकरके कहिये। हे भगवन्! जबतक चित्तसे संबंध है तबतक संसारमें जन्म मरण होता है और जब चित्तसे रहित होता है तब परब्रह्म है — वह शिवपद अनिच्छित, शान्त और अनन्त रूप है। चिन्मात्र में जो अहंका उत्थान है वही कर्मरूपी वृक्षका कारण है। जबतक अनात्मा से मिलकर कह हैं कि, '' हूं' वही संसारका कारण है। यह आपके वचनोंसे मैंने समझाहै सो प्रार्थना कीहै आगे कुछ कृपा करके आपभी कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार कर्मका बीज सूक्ष्म संवित् है। जबतक संवित् है तबतक कर्मोंका बीजनाश नहीं होता और ये सब संज्ञा इसीकी हैं। कर्मों का बीज इच्छा, तृष्णा, अज्ञान, चित्त और ग्रहण त्यागकी बुद्धि इत्यादिक बहुत संज्ञाहैं; क्या किसीमें हेयोपादेय बुद्धि करे? हे रामजी! जबतक अज्ञान है तबतक इच्छा नाश नहीं होती और कर्मभी नाश नहीं होते। नाश दोनोंका नहीं होता परन्तु भेद इतनाही है कि, अज्ञानीको भासता है कि, यह इच्छा है, यह कर्म है। ज्ञानवान् को सब ब्रह्मही भासता है इससे वह सुखी रहता है और अज्ञानीको कर्ममें कर्म भासता है इसलिये बन्धमान होता है। कर्मसे कर्मबुद्धि जानेको त्यागकहते हैं; क्रियाका त्यागकरनेको त्याग नहींकहते। हे रामजी! बड़ीउपाधि अहंकार है। जिसकाअहंकार नष्टहुआ है वह पुरुष कर्म करता है तौभी उसने कभी कुछनहीं किया और जो अहंकार सहितहै वह पुरुष जो तूष्णीहो बैठाहै तौभी सबकर्म करताहै। इस अहंके त्यागका नाम सर्वत्यागहै; क्रियाके त्यागका नाम सर्वत्याग नहीं। सबकर्मोंके बीज अहंकारका त्यागना और परमशांतिको प्राप्तहोना ी पुरुषप्रयत्नहै॥

इ ि योगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकर्मबीजदाहोपदेशंनामशताधिकनवविंशस्सर्गः १२९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस संवेदनका होनाही अनर्थ है कि , आपको कुछ जानता है। जब यह निवृत्त हो तबहीं इसको आनन्द है। हे रामजी ! ज्ञानीकी चेष्टा अहंकारसे रहित स्वाभाविक होतीहै। जैसे अर्द्धनिद्रित पुरुष होताहै तैसेही ज्ञानी अपने स्वरूपमें घूर्म है। जैसे हाथी मदसे उन्मत्त होताहै तैसेही ज्ञानवान् स्वयं ब्रह्म लक्ष्मीसे घूर्महै। जैसे कामीको काम व्यसन होताहै तैसेही सुखरूपी स्त्रीको पाकर ज्ञानी घूर्म रहता है क्योंकि ; निरहंकार है। सब दुःखोंका बीज अहंकार है,जब अहंकार नष्ट हो तब आनन्दहो। हे रामजी! संसाररूपी बिषकी बेलिका बीज अहंकार है; जब अहंकारका अभाव हो तब संसारका भी अभाव होता है। हे रामजी ! अहंकारही दुःखका मूलहै। इस संवेदनका बिस्मरण करना बड़ा कल्याणहै और अनात्मासे मिलकर आपको माननाही अनर्थ है। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो बस्तु असत्य है वह नहीं होती और जो सत्य है उसका अभाव नहीं होता फिर आप कैसे कहते हैं कि; अहं संवेदनका नाश करो ? येतौ सत् भासती है संवेदन कैसे हो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम सत्य कहतेहो कि, जो बस्तु असत्य है वह नहीं होती और जो सत्य है उसका नाश नहीं होता। हे रामजी ! यह जो अहंकार दृश्य तुमको भासता सो कदाचित् नहीं हुआ-मिथ्या कल्पित है। जैसे रस्सी में सर्प होता है तैसेही आत्मा में अहंकारहै और जैसे सूर्य्य की किरणों में जलाभास होता है तैसेही आत्मामें अहंकार शब्द अर्थ फुरता है। यह शब्द और अर्थ मिथ्या है। इसका लक्षण यह है कि, मैं हूं सो कल्पित है; आत्मा केवल शुद्धस्वरूपहै उसमें अहं त्वं का शब्द अर्थ कोई नहीं। यह अबोधसे भासतेहैं और बोधसे लीनहोजातेहैं। वेदनाका बोध अनर्थका कारण है और अबोध तम है। जबयह निर्वाणहो तबकर्मका बीजमूलसे कटे। हे रामजी! जो कर्मोंका त्यागकर एकान्त जाकर बैठताहै और ऐसे मानताहै कि,मैं कर्म नहीं करता सो कहताहीहै पर वास्तवमें अहंकारसेहै इससे फलको भोगताहीहै क्योंकि; अहंकार सहित फिर अहंकार करेगा। वह आत्मज्ञान बिना अनात्मसे मिलकर आप को मानता है। जो पुरुष कर्म इन्द्रियों से चेष्टाकरताहै और आत्माको लेपनहीं जानता वह अकर्त्ताही है-उसके करने से कुछअर्थ सिद्धनहीं होते और न करनेसे भी नहीं होते। ऐसा पुरुष परम निर्वाण पदको प्राप्त होताहै-जिसको वाणी की गमनहीं। हे रामजी ! उसमें फुरना कोई नहीं-केवल चमत्कारहै अर्थात् हुआ कुछनहीं और भासताहै। जैसे बिल्वी की मज्जा बिल्वी से भिन्न नहीं तैसेही जगतहै। जैसे सोनेसे भूषण भिन्ननहीं तैसेही निज शब्दका अर्थहै पर ये भिन्नभिन्न शब्द अर्थ तबतक भासतेहैं जबतक अहंवेदनाकारहै। हे रामजी! आत्मपदसदा अपने आपमें स्थितहै। जैसे पत्थर अपनी जड़तामें स्थितहै तैसेही आत्मा अपनी चेतन घनतामें स्थितहै। उसको मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं और उस अपने

स्वरूपके प्रमादसे दुःख पाता है। हे रामजी! जो पुरुष गृहस्थी में स्थित है पर अहं-
कारसे रहित है उसको वनवासी जानो और सदा एकांत है और जो वनवासी अहं-
कार सहितहै वह सदा जनें में स्थितहै। प्रथम तो वह एक गढ़ेमें था फिर उसको त्याग
कर दूसरे गढ़ेमें प ाहै कि वेषधारी है और वनवास लिया है। ईश्वर चाहे तो निकसे
नहीं तो बड़े कूपमें पड़ा है। हे रामजी! जो पुरुष अर्द्ध त्याग करता है वा एक अंग
का त्याग करत है और दूसरे का अंगीकार करता है ऐसा पुरुष आपको निष्कामी
मानता है पर उसको यह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है। हे रामजी! यह जीव नि-
ष्कर्म तबहीं होताहै जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है—अन्यथा नहीं होता। इससे
कर्मको मूलसे उखाड़ो। जैसे सुरदण्ड बेलि और वृक्षको मूलसेकाटते हैं, तैसेही काटो।
अहंवेदनाही मूल है उसकी मूल काटना चाहिये। हे रामजी! पुरुष प्रयत्न इसी का
नाम है कि, अपने आपका नाश करना और आपही रहना। देहसे मिलाहुआ आप
को जानता है उसका नाशकरना और शिवपद को प्राप्त होना जो सर्वदा सत्स्वरूप
अद्वैत है—यह विश्व भी उसका चमत्कार है। जैसे नारियल में खोपरा होता है और
उसके बहुत नाम रखते हैं सो नारियल से कुछ भिन्न नहीं, तैसेही संसार आत्मा से
भिन्न नहीं। जैसे थम्भे में काष्ठसे भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह संसार है। यह नानात्व
भी चेतनघन आत्माही है निज अक्षर का अर्थ जो कहा है सो भी वही है तो विधि
निषेध किसका कीजिये? सब परमात्मतत्त्व है दूसरा किंचिन्मात्र भी नहीं। हे रामजी!
ऐसे आत्मा को जानकर सुख से विचरो। जैसे अर्द्धनिद्रित की चेष्टा होती है और
जैसे बालक पालनेमें सोकर स्वाभाविक अंगहिलाता है तैसेही तुम्हारी चेष्टा होगी।
अपना अभिमान तुम न करो। हे रामजी! जो कुछ भाव-अभाव पदार्थ भिन्नभिन्न भा-
सते हैं वे असत्य हैं; आत्मा के साक्षात्कार हुयेसे परमात्मतत्त्वही भासेंगे, तब अहं-
कार उत्थान निवृत्तहोगा। हे रामजी! एक और युक्तिसुनो जिससे आत्मज्ञान हो
यह जो अहं अहं क्षणक्षण में फुरती है सो जब फुरे तबहीं उस क्षणमें जानो कि, मैं
नहीं। जब ऐसे दृढ़हुआ तब अहंकाररूपी पिशाच नाशहोजावेगा और आत्मतत्त्वका
साक्षात्कारहोगा। इससे अहंकारके नाशकायत्नकरो कि, 'न मैंहूं' "नजगत्है'। हे रामजी!
ज्ञान इसी का नाम है कि, 'अहं' 'मम' न रहे। उसको मुनीश्वर परब्रह्म और सम्यक्पद
कहतेहैं। और जहां(अहंमम)है वहां अविद्यारूपी तमखड़ाहै। हेरामजी! अज्ञानीकेहृद-
य में सर्वपदार्थों का भाव स्थितहै इससे उसको देश, काल, घर, नगर, मनुष्य, पशु, पक्षी
आदिक त्रिगुणसंसार भासताहै। जब इनका अभावहोजावे तब शान्तिपदकीप्राप्तिहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽहंकारनाशविचारो
नामशताधिकत्रिंशतितमस्सर्गः १३० ॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! जिसकेमनसे 'मैं' और 'मेरे' का अभिमान गयाहै उसको शान्तिहुईहै और जिसके हृदयमें 'मैं देह' 'मेरेसम्बन्धी' 'गृह' आदिकका अभिमान है, उसको कदाचित् शांति नहीं और शांति बिना सुख नहीं। हे रामजी ! प्रथम आप बनता है तब जगत् है। जो आप न बने तो जगत् कहांहो ? इसका होनाही अनर्थका कारण है। जिस पुरुषने अहंकार का त्याग किया है वह सर्वत्यागी है और जिसने अहंकार का त्याग नहीं किया उसने कुछ नहीं त्यागा। जिसने क्रिया का त्याग किया और आपको सर्वत्यागी मानता है सो मिथ्या है । जैसे वृक्षकी डालैं काटिये तो फिर उगताहै नाश नहीं होता; वैसेही क्रियाके त्यागकिये त्याग नहीं होता। जो त्यागने योग्य अहंकार नष्ट नहीं होता तो क्रिया फिर उपजती है। इससे अहंकार का त्याग करो तब सर्वत्यागी होगे। इसकानाम महात्याग है और स्वप्ने में भी संसार न भासेगा, जाग्रत्का क्या कहना है–उसको संसार का ज्ञान कदाचित् नहीं होता। हे रामजी ! संसारका बीज अहंभाव है; उसी से स्थावर जंगम जगत् भासता है; जब इसका नाश हुआ तब जगत् भ्रम मिटजाता है–इससे इसकेअभाव की भावना करो। जब तुम्हें अहंभाव की भावनाफुरे तो जानना कि, मैं नहीं। जब इसप्रकार अहंका अभावहुआ तब पीछे जो शेषरहेगा सोही आत्मपद है। हे रामजी ! सब अनर्थों का कारण अहंभाव है उसका त्यागकरो। हे रामजी ! शस्त्रके प्रहार और व्याधि रोगको यह जीव सहसक्ता है तो इसअहं के त्यागने में क्या कदर्थना है ? हे रामजी ! संसार का बीज अहं का सद्भावहै, उसका नाशकरना मानों संसारका मूलसंयुक्त नाशकरना है–इसी केनाशका उपायकरो। जिसका अहंभावनष्टहुआहै उसको सबठौर आकाशरूपहै और उसके हृदयमें संसारकीसत्ताकुछनहींफुरती। यद्यपि वह गृहस्थमें हो तौभी उसको यह प्रपंच शून्य बन भासताहै। जो अहंकारसहितहै और बनमें जा बैठे तौभी वह जनोंकेसमूहमें बैठाहै क्योंकि; उसका अज्ञान नष्टनहीं हुआ। जिसने मन सहित षट् इंद्रियोंको बश नहीं किया उसको मेरी कथाके सुननेका अधिकार नहीं–वह पशुहै। जिस पुरुषने मनको जीताहै अथवा दिन प्रतिदिन जीतनेकी इच्छाकरताहै वह पुरुषहै और जो इंद्रियोंका विश्रामी अर्थात् क्रोध, लोभ, मोहसे संपन्नहै वह पशुहै और महाअंधतमको प्राप्तहोताहै। हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञानवान् है उसमें यदि कर्मकी इच्छादृष्ट आतीहै तौ भी वह उस की इच्छा अनिच्छाही है और उसके कर्म अकर्महीहैं। जैसे भूना दाना फिर नहीं उगता पर उसका आकार भासता है तैसेही ज्ञानवान् की चेष्टा दृष्ट आतीहै सो देखने मात्र है उसके हृदयमें कुछ नहीं। हे रामजी ! जो पुरुष कर्मेन्द्रियोंसे चेष्टा करताहै और हृदय में जगत् की सत्यता नहीं मानता उसे कोई बन्धन नहीं होता और जो जगत् को सत्य मानकर थोड़ा भी कर्म करता है तौ भी वह फैलजाता है–जैसे थोड़ी अग्नि जागकर

बहुत होजातीहै—ज्ञानीको नहीं होता। उसकी प्रारब्ध शेषहै सो भी हृदय में नहीं मानता और जानता है कि, ये कर्म शरीरके हैं आत्मा क नहीं। जैसे कुम्हारके चक्रका वेग उतरता जाता है तैसेही प्रारब्ध वेग उसका उतरता जाताहै और फिर जन्म नहीं होता क्योंकि;उसको अहंकाररूपी चरण नहीं लागता। इससे अहंकारका नाश करो; जब अहंकार नाश होगा तब सबके आदि पदकी प्राप्ति होगी जो परम निर्वाणपद है और जिसमें निर्वाण भी निर्वाण होजाता है। हे रामजी! जब वर्षाकाल होताहै तब बादल होते हैं जब शरत्काल आताहै तब बादल जाते रहते हैं। हे रामजी! जब तक अज्ञानरूपी वर्षाकाल है तब तक अहंकाररूपी वर्षा है और जब विचाररूपी शरत्काल आवेगा तब अहंकाररूपी मेघ जाते रहेंगे और आत्मरूपी आकाश निर्मल भासेगा। हे रामजी! जैसे मलिन आदर्श में मुखका प्रतिबिम्ब उज्ज्वल नहीं भासता और जब मैल निवृत्त होताहै तब मुखका प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष भासता है तैसेही; अहंकाररूपी मैलसे जीव ढांपा हुआ है इससे आत्मा नहीं भासता;जब अहंकाररूपी मैल निवृत्तहो तब आत्मा ज्योंकात्यों भासे। जैसे समुद्रमें नानाप्रकार के तरंग उठते हैं तो सम्यक्दर्शी को सब जलमय दृष्ट आते हैं और भूषणमें सुवर्णही भासता है तैसेही नानाप्रकारके प्रपंच उस समदर्शीको चैतन्यघन आत्माही दृष्टआते हैं—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं देखता। वह सबसे पत्थरकी शिलावत् होजाता है क्योंकि; उसका अहंकार नष्ट होगया है और जो अहंकार संयुक्त है और क्रियाका त्यागकर आपको सुखी मानता है वह मूर्ख है। जैसे कोई लकड़ी लेकर आकाशको नाश किया चाहे तो वह नष्ट नहीं होता तैसेही क्रिया के त्यागसे दुःख नष्ट नहीं होते—जब सम्पूर्ण संसार क्रियाके बीज अहंकारका नाशहो तब अक्रिय आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है। जैसे तांबा अपने ताम्रभाव को त्यागकर सुवर्ण होताहै तैसेही जब जीव अपना जीवत्वभाव त्यागे तब आत्मा होता है और जैसे तेलकी बूंद जलमें फैलजाती है और नानाप्रकार के रंग जलमें भासते हैं तैसेही ब्रह्ममें अहंता प्रकार की कलना दिखाई देतीहैं—आत्मा ब्रह्म निराकार,निरंजन इत्यादिक नाम भी अहंकार से शुद्धमें कल्पे हैं; वह अफुर केवल सत्तामात्र है और सत्य और असत्यकी नाईं स्थित है। हे रामजी! संसाररूपी मिरच का पेड़है अथवा संसाररूपी फूलहै उसमें अहंतारूपी सुगन्धिहै;जब अहंता उदयहोती है तब संसार क्षणमें उदय होता है और अहंता के नाश हुये संसार क्षणमें नाश होजाता है। क्षणमें उदय होता है और क्षणमें नाश होता है सो अहंताका होनाही उदय होनेका क्षणहै और अहंताका लीन होना नाश का क्षण है। हे रामजी! जैसे मृत्तिका में जल के संयोगसे घट बनता है तब मृत्तिका घटसंज्ञा पाती है; तैसेही पुरुषको जब अहंकार का संग होताहै तब संसारी होता है और जीवसंज्ञा पाता है और देश,

काल, पृथ्वी, पर्वत आदिक दृश्यको प्रत्यक्ष देखताहै; और जब अहंता नाश होती है तब सुखी होताहै; निद न जो कुछ मानरूप और उसका अर्थहै सो अहन्तासे भासता है और जब अहन्ताको त्यागे तब शान्तरूप आत्माही शेष रहताहै। जैसे पवनसे रहित दीपक प्रकाशताहै तैसेही अहंकाररूपी पवनसे रहित जीव अपने भावमें स्थित होकर आनन्द पदको प्राप्त होताहै; अनादि पद पाताहै; सबका अपना आप होता है और देश, काल, वस्तु अपने में देखता है। हे रामजी! जब तक अहन्ताका नाश नहीं होता तब तक मेरे वचन हृदय में स्थित न होंगे। जैसे रेतमें तेल निकलना कठिन है तैसेही जिस पुरुषने अपना स्वभाव नहीं जाना उसको ब्रह्मका पाना कठिन है। अपना स्वभाव जानना अति सुगमहै। जब अहन्ताका त्यागकरे कि, न मैं हूं और न जगत् है तब कल्याण होताहै और तभी अहन्ताका नाश होताहै और कोई भ्रमनहीं रहता। जैसे रस्सीके जानेसे सर्पभ्रम निवृत्त होजाता है। जब तक अहन्ता फुरती है तब तक उसको उपदेश नहीं लगता। जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसेही जिसको अहन्ता फुरती है उसके हृदय मेरे वचन नहीं ठहरते और जिसका हृदय शुद्ध है उसको मेरे वचन लगते हैं। तेलकी बूंद जलमें फैलजाती है तैसेही उसको थोड़े वचन भी बहुत लगते हैं। हे रामजी! इसी पर एक पुरातन इतिहास कहता हूं सो तुम सुनो; वह मेरा और काकभुशुण्ड का सम्वाद है। एक समय मैं सुमेरु पर्वत के शिखर पर गया तो वहां भुशुण्ड बैठा था, उससे मैंने प्रश्न किया कि, हे अंग! ऐसा भी कोई पुरुष है जिसकी आयुर्बल बड़ी हो और ज्ञानसे शून्य रहा हो? जो उसको देखा हो तो कहो। भुशुण्ड बोले, हे भगवन्! एक विद्याधर हुआहै जिसकी बड़ी आयुर्बल थी और जिसने बहुत विद्या अध्ययनकी थी। वह सत्कर्मों में बहुत विचरता था; उसने बहुत भोग भोगे थे और चारयुग पर्यन्त जप, तप, नियम आदिक सकाम कर्म किये थे। जब चतुर्थ युग का अन्त हुआ तब उसको विचार उपजा और जितने भोग सुख रूप जानकर भोगता था उनमें उसको वैराग्य हुआ; तब उनको त्यागकर लोकालोक पर्वत पर जा विचरा और विचारा कि; यह संसार असार रूप है किसी प्रकार इससे छूटूं। इसमें बारम्बार जन्म और मरण है, और कोई पदार्थ सत्य नहीं; किसका आश्रय करूं? ऐसे विचारकरके वह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत पर मेरेपास आया और शिर नीचाकरके मुझे दण्डवत् की। मैंनेभी उसका बहुत आदर किया तब हाथ जोड़कर उसने कहा, हे भगवन्! इतने काल पर्यन्त मैं विषयों को भोगता रहा परन्तु मुझे शान्ति न हुई इससे मैं दुःखी हूं तुम कृपा करके शांति का उपाय कहो। हे भगवन्! चित्ररथ के बागमें जिसमें सदा शिवजी रहते हैं और जहां बहुत कल्पवृक्ष हैं उसमें मैं चिरकाल रहा; फिर विद्याधरों के स्वर्गमें रहा; फिर

इन्द्र के नन्दनवन और सुवर्ण की कन्दरा में रहकर सुन्दर अप्सराओंके साथ स्पर्श किया और विमानपर बहुत आरूढ़ रहाहूं। हे भगवन्! बहुत स्थान मैंने देखे हैं और तप, दान, यज्ञ, व्रतभी बहुत किये हैं। सहस्र वर्ष तक ऐसे सुन्दर रूप देखता रहाहूं जिन की सुन्दरतानहीं कहसक्ता तौभी नेत्रोंको तृप्ति न हुई; बहुत सुगन्ध सूंघी पर नासिका को तृप्ति न हुई; रसना से भोजन बहुत प्रकार के खाये पर शांति न हुई बल्कि तृष्णा बढ़तीगई; कानोंसे बहुत प्रकार शब्द और राग सुने और त्वचासे बहुत स्पर्श किये हैं तौभी शांति न हुई। हे भगवन्! मैं जिसओर सुखजानकर प्रवेशकरूं उसीओर दुःख प्राप्त होवे—जैसे मृग क्षुधा निवारनेके लिये घासखाने जाताहै और रागसुनकर मूर्च्छित होजाता है तब उसको बधिक पकड़लेता है तो मृग दुःख पाता है तैसेही मैं सुखजानकर विषयोंको ग्रहणकरताथा और बड़ेदुःखोंको प्राप्तहोता था हेभगवन्! मैंने चिरकालतक पांचों इन्द्रियों और छठेमनसहित दिव्यभोग भोगे हैं जो कुछकहेनहीं जाते परन्तु मुझे शान्ति न हुई और न इन्द्रियां तृप्तहुईं। जैसे घृत से अग्नितृप्त नहीं होती तैसेही दिन दिन प्रति तृष्णा दृढ़ होतीजाती है और हृदय जलाती है। जो पुरुष इनभोगों के निमित्त यत्न करता है कि, मैं इनसे सुखीहूँगा वह मूर्खहै और उसको धिक्कार है—वह समुद्रमें तरंगका आश्रय करता है। ये तबतक सुखरूप भासतेहैं जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है; जब इन्द्रियों से विषयों का वियोगहोता है तब महादुःख को प्राप्तहोता है क्योंकि; तृष्णा हृदय में रहती है और भोग जाते रहतेहैं तब जो २ विषय भोगेहोतेहैं वे दुःखदायक होजातेहैं। हेभगवन्! मैंने इसीसे बहुत दुःख पायाहै। यद्यपि इन्द्रियांकोमलहैं तौभी सुमेरुकीनाईं कठिन हैं। कोमल भासती हैं परन्तु ऐसी हैं जैसे सर्पिणी और खड्गकीधार कोमल होतीहै पर स्पर्शकियेसे मरजाताहै। जैसे जलमेंनाव पवनसे भ्रमतीहै; तैसेही अज्ञानरूपी नदी में पवनरूपी इन्द्रियोंने मुझेदुखःदियाहै। हेभगवन्! ऐसेभी मैंनेदेखे कि, सारादिन मांगते रहे और भोजन खाने निमित्त इकट्ठानहींहुआ और ऐसेभीदेखेहैं कि, उन्होंने ब्रह्मासे आदिकाष्ठपर्य्यन्त सबभोग एकदिनमें भोगेहैं पर जिसको दिनमें भोजनमात्रभी प्राप्त नहींहोता और जो सबमें इन्द्रियोंकेइष्टरूप भोगताहै उनदोनोंको भस्महोते देखाहै और भस्मदोनोंकी तुल्यहोजातीहै—विशेषताकुछ नहीं। इन्द्रियोंके बन्धनसे बारम्बार जन्मते मरते अज्ञानी शांति नहींपाते। जो तुम कहोकि, तूतो सुखी दृष्ट आताहै तुझे क्या दुःखहै तो हे भगवन्! यह दुःखदेखनेमें नहींआता परन्तु मेरे हृदयकी इन्द्रियां जलती हैं। हे भगवन्! ब्रह्मा के लोकमें मैंने बड़े सुख देखे हैं परन्तु वहां भी दुःखीही रहाहूं क्योंकि; क्षय और अतिशय वहांभी रहतीहै इससे वेभी जलतेहैं। इन्द्रियों का शस्त्रसे भी कठिन घावहै जो नानाप्रकारकी संसारकी विषमता दिखाती हैं और उनमें सर्वदा

रागद्वेष रहताहै जिससे मैं बहुत जलतारहाहूं। इससे मुझसे वहीउपाय कहिये जिस से मैं शांतिपाऊं। वह कौनसुखहै जिससे फिर दुःखी न होऊं और जिसका कदाचित् नाशनहीं और जो आदि अन्तसे रहितहै। जो उसके पानेमें कष्टहै तौभी मैं यत्न करताहूं कि; किसीप्रकार प्राप्तहो। हे मुनीश्वर! इन्द्रियों ने मुझे बड़ाकष्ट दिया है। ये इन्द्रियां गुणरूपी वृक्षको अग्निहैं; शुभगुणोंको जलाती हैं और विचार, धैर्य्य, सन्तोष और शांति आदिक गुणरूपी वृक्षके नाशकरनेवाली हैं। हे भगवन्! इन्होंने मुझे दुःखदियाहै। जैसे मृगका बच्चा सिंहके वशपड़े तो वह उसको मर्दन करताहै; तैसेही इन्द्रियोंने मुझे मर्दनकियाहै। भगवन्! जिस पुरुषने इन्द्रियोंको वशकियाहै उसका पूजन सबदेवता करतेहैं और उसके दर्शनकी इच्छाकरतेहैं और जिसने मनको नहीं वश किया उसको दीन जानते हैं। जिस पुरुष ने इन्द्रियों को वश किया है वह सुमेरु पर्वतकी नाईं अपनी गम्भीरतामें स्थितहै और जिसने इन्द्रियां वश नहींकीं वह तृण की नाईं तुच्छ है। जिसको इन्द्रियों के अर्थमें सदा तृष्णा रहती है वह पशु है; उसको मेरा धिक्कार है। हे मुनीश्वर! जो बड़ा महन्त भी हो, यदि उसके इन्द्रियां वश नहीं तो वह महानीच है। हे मुनीश्वर! इन्द्रियोंने मुझे बड़ा दुःखदियाहै। जैसे महाशून्य उजाड़में चोर लूटलेते हैं तैसेही इन्द्रियोंने मुझे लूटलियाहै। इन्द्रियांरूपी सर्पिणीमें तृष्णारूपी विषहै इससे इनमें साराविश्व मोहित देखपड़ता है और कोई बिरला इन से बचाहोगा। ये इन्द्रियां दुष्ट हैं जो अपने २ विषय को लेती हैं और को नहींदेतीं और तुच्छ और जड़ हैं। जैसे बिजलीका चमत्कार होताहै और फिर छिपजाता है तैसेही इन्द्रियों के सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं और फिर छिपजाते हैं। जब तक इन्द्रियों और विषयोंका संयोग है तब तक सुखभासता है और जब इनका बियोग होताहै तब दुःख उत्पन्नहोता है क्योंकि; तृष्णारहती है। यह सेना है उसमें इन्द्रियों के भोग उन्मत्तहाथीहैं; तृष्णारूपी जंजीर है; इन्द्रियरूपी रथ हैं; नानाप्रकार के विषय घोड़ेहैं और संकल्प बिकल्परूपी खड्गों का धारनेवाला अहंकार है और यह जो क्रिया अहंकार सहित होती है सो शस्त्रों के समूह हैं। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने इस सेनाको नहीं जीता वह मोहरूपी अन्धेकुयें में गिरके कष्टपाता है और जिसने जीताहै वह परमसुखको प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! ये इन्द्रियां भोगकी इच्छारूपी खाईं में अहंकाररूपी राजाको डालती हैं और उसमें से निकलना कठिन होताहै। जिस पुरुषने इनको जीता है उसकी त्रिलोकी में जय होती है और जिसने नहीं जीता वह महादीनता को प्राप्त होताहै और जन्म जन्मान्तर पाता है। इन इन्द्रियों में रजोगुण और तमोगुण रहता है। ये तब तक दाह देती हैं जब तक रज-तम वृत्तिहै। यहभी मनकी वृत्ति है। जबइनका अभाव होताहै तब शांति प्राप्तहोती

है। यह शोधकरके देखा है कि, इंद्रियां तप, यज्ञ,व्रत, तीर्थ और किसी औषधसे वश नहीं होतीं और न इनके वशकरने का कोई उपाय है; केवल सन्तके संगसे निरवासी हो तव वश होती हैं। इससे मैं तुम्हारी शरणहूं; कृपाकरके मझे आपदा के समुद्रसे निकालो क्योंकि; मैं डूवताहूं। मैं इससंसार समुद्र में दीनहूं, तुमपारकरो और तम्हारी महिमा सन्तोंने भी सुनी है। हे भगवन्! जो कोई आयुर्वल पर्यंत विषय के दिव्यभोग भोगतारहे और इनसे शांतिचाहे तो न प्राप्त होगी। वड़े सुखदुःख समान हैं। आकाश में उड़नेवालेभी इन्द्रियों को वशनहीं करसके इससे दीन और दुःखी रहते हैं। कोई पुरुष वीर्यवान् हो और फूलकी नाईं महामत्त हाथी के दांतको चूर्ण करसक्ता हो परन्तु इन्द्रियों को अन्तर्मुख करना महा कठिन है। हे मुनीश्वर! इतने कालतक मैं महा अध्यात्मतप से दुःखी रहाहूं। तुम कृपाकरके निकालो, मैं तुम्हारी शरण हूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरवैराग्यवर्णनंनाम शताधिकएकत्रिंशतितमस्सर्गः १३१॥

भुशुण्डिबोले, हे वशिष्ठजी! जब इसप्रकार विद्याधर ने मेरे आगे प्रार्थना की तो मैं ने कहा, हे अंग! तू धन्य है। अव तू जागा है। जैसे कोई पुरुष अन्धे कुयें में पड़ाहो और उसकी इच्छा हो कि; निकले तो जानिये कि, निकलेगा। हे विद्याधर! मैं उपदेश करताहूं सो तू अंगीकारकरियो और सत्य जानके मेरे वचनों में संशय न करना। जो सवके सारवचन हैं सो तुझसे कहता हूं। जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिविम्ब को यत्नबिना ग्रहण करतीहै तैसेही मेरे वचन शीघ्रही तेरेहृदयमें प्रवेशकरेंगे। जिसका अन्तःकरण शुद्धहोताहै उसको सन्त उपदेश करें अथवा न करें उसको सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं। जैसे शुद्धआदर्श प्रतिविम्बको यत्नविनाग्रहण करता है तैसेही मेरे वचनों को तू धारलेगा तो तेरे दुःखनाश होजावेंगे और परमानन्द को जो अविनाशी सुख और आदिअंत से रहितहै सो प्राप्त होगा। इन्द्रियों के सुखआगमापायीहैं सो दुःखकेतुल्यहैं—इनसे रहित परमसुखहै। हे विद्याधरोंमेंश्रेष्ठ! जो कुछ तुझे सुखरूप दृष्टआवे उसका त्यागकर तवतुझे परमसुख प्राप्तहोगा। सवदुःखोंका मूल अहंभाव है; जब अहंकार नाश हो तब शांति होगी। संसार का बीजभी अहंकार है और संसार मृग तृष्णाके जलवत् है। तवतक संसार नष्टनहीं होता जबतक अहंतारूपी संसार का बीज है; जब अहंतारूपी बीज नष्टहोजावे तब संसार भी निवृत्त होजावे। संसाररूपी वृक्षके सुमेरु आदिक पर्वतपत्र हैं; तारागणकली और फूल हैं; सातों समुद्ररस हैं; जन्ममरण बेलहैं; सुख दुःख फलहैं और वह आकाश, दिशा, पातालको धारके स्थित हुआहै। अहंकाररूपीवृक्ष पृथ्वीपर उत्पन्न हुआहै; अहंकारही उसका बीज है और वृक्ष मिथ्या भ्रममात्र असत्य और सत्यकी नाईं स्थितहुआ

है। इससे अहंकार के बीजका नाशकरो और निरहंकाररूपी अग्नि से इसको जलाओ तब अत्यन्त अभाव होजावेगा। यह भ्रमकरके भयदेता है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रम और भय देताहै निरहंकाररूपी अग्निसे इसका नाशकरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसाररूपवृक्षवर्णनंनामशताधिकद्वात्रिंशतितमस्सर्गः १३२॥

भुशुण्डि बोले, हे विद्याधर! यहज्ञान जैसे उत्पन्न होताहै सो सुनो। ब्रह्मविद्याशास्त्रके सुनने और आत्मविचार से यह उपजताहै। उस आत्मज्ञानरूपी अग्निसे संसाररूपी वृक्षको जलाओ। यह आगेभी नहींथा, अनहोताही उदयहुआहै और मनके संकल्प से हुयेकी नाई स्थितहै। जैसे पत्थरमें शिल्पी कल्पता है कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी सो हुई कुछनहीं; तैसेही मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियां कल्पता है। जब मनका नाशकरोगे तब संसारभ्रम मिटजावेगा; आत्मविचार करके परमपद को प्राप्तहोगे और अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासेगा। इससे अहंताको त्याग करके अपने स्वरूपमें स्थित होरहो। हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्षहै सो अहंतारूपीबीजसे उपजाहै; उसको जब ज्ञानरूपी अग्निसे जलाइये तब फिर यहजगत् न उपजेगा। यदि इसको विचार करके देखिये तब अहं त्वं नहीं रहता। हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या है—इनके अभावकी भावना करो, यही उत्तम ज्ञान है। हे साधु! जब गुरुके वचनसुनकर उनके अनुसार पुरुषार्थ करे तब परमपदको प्राप्त होता है और जय होती है। हे विद्यारूपी कन्दरा के धारनेवाले पर्व्वत और विद्यारूपीपृथ्वी के धारनेवाले! यह संसाररूपी एक आडम्बरहै और उसके सुमेरुऐसे कईथम्भेहैं जो रत्नोंकी पंक्तिसे जड़ेहुयेहैं और वन, दिशा, पहाड़, वृक्ष, कन्दरा, वैताल, देवता, पाताल, आकाश इत्यादिक ब्रह्मांड उसके ऊपर स्थित हैं। रात्रि, दिन, भूत, प्राणी और इनके जो घर हैं सो चौपड़ के खाने हैं; जो जैसा कर्म करताहै वह उसकेअनुसार दुःख सुख भोगता है। ऐसेही संपूर्णप्रपंच जो क्रियासंयुक्त दिखाई देताहै सो भ्रमसेसिद्ध है—इससे मिथ्याहै। जैसे स्वप्ने की सृष्टि संकल्प से भासतीहै तैसेही यह सृष्टि भी भ्रमसे भासती है और अज्ञानकी रचीहुई है; आत्मा के अज्ञानसे भा और आत्मा के ज्ञान से लीन होजाती है। जब सृष्टिहै तबभी परमात्मतत्त्वहीहै और जब सृष्टिहोगी तबभी परमात्मतत्त्वही होगा; आगेभी वहीथा और जो कुछ प्रपंच तुझे दृष्टआता है सो शून्य आकाशही है। त्रिगुणमय प्रपंचगुणोंका रचाहुआ अपने स्वरूप के प्रमादसे स्थित हुआहै और आत्मज्ञानसे शून्य होजावेगा। जब प्रपंचही शून्यहुआ तब आत्मा और अनात्मा का कहना भी न रहेगा और पीछे जो शेषरहेगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है और तेरा अपना आपहै, उसमें स्थित होरह और दृश्यकात्यागकर कि, न मैंहूं और न

जगत् है। जबतू ऐसा होगा तबतेरी जयहोगी। आत्मपद सबसे उत्तमहै जब तू आत्मपद में स्थित होगा तब सब से उत्तम होगा और तेरी जय होगी—इससे आत्मपद मेंही स्थित होरह॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसारआडम्बरउत्पत्तिर्नामशताधिकत्रयस्त्रिंशतितमस्सर्गः १३३॥

भुशुण्डि जी बोले, हे विद्याधर! यह प्रपंचभी आत्मा का चमत्कारहै। आत्मा शुद्ध चेतन है जिसमें जड़ और चेतन स्थितहैं और वह सबका अधिष्ठानहै सोसत्तामात्र तेरा अपना आपहै और अहं त्वं शब्द—अर्थ से रहित आत्मत्व मात्र है पर सत्यस्वरूप होके असत्यकी नाईं स्थितहै। हे विद्याधर! तू इस जड़ और चेतन से अबोध होरह। जब तू अबोध होगा तब शान्त और चिद्घन होगा। ये जो जड़ और चेतनहैं इन दोनोंका परमार्थ चेतनके आगे अन्तर रहताहै; यद्यपि वह अदृश्य है तौ भी इनके भीतरही रहताहै। जैसे समुद्रके भीतर बड़वाग्नि रहतीहै। इन जड़ चेतनरूप का कारण रूप वहीहै, उत्पत्ति भी उसीसे होतीहै और नाश भी वही करताहै। हे विद्याधर! जब ऐसे जाना कि; मैं चेतनरूप भी नहीं और जड़ भी नहीं तो पीछे जो रहेगा वह तेरा स्वरूपहै। जब तेरे भीतर इन जड़ और चेतन दोनोंका स्पर्श नहीं हुआ तब सबके भीतर जो चेतनहै वही ब्रह्म तुझे भासेगा और विश्व आत्मामें कुछ नहीं हुआ। जैसे सूर्यकी किरणोंका चमत्कार जलाभास होता है तैसेही शुद्ध चेतन का चमत्कार विश्वहो भासताहै। हे अंग! जैसे भीति पर पुतलियाँ लिखी होती हैं सो भीति से कुछ भिन्न नहीं, चितेरे ने लिखी हैं; तैसेही शून्य आकाश में चित्तरूपी चितेरे ने विश्वरूपी पुतलियाँ कल्पीहैं सो आत्मरूपी भीतिसे भिन्न नहीं। जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पित है सो सुवर्ण से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मामें अज्ञानसे विश्व देखते हैं वह आत्मासे भिन्न नहीं, जगत्, ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल सब उसी तत्त्वकी संज्ञाहैं। वही शुद्ध चेतन आकार है जिसका चमत्कार ऐसे स्थितहै। उसी तत्त्वमें तूभी स्थित होरह। यह जगत् ऐसे है जैसे दूरदृष्टिसे आकाश में बाल हाथीकी सूंड़से भासते हैं। यह जो अहं त्वं रूप जगत्है सो अबोधसे भासताहै और बोधकरके लीन होजाता है—जैसे मरुथल में सूर्यकी किरणों से जल भासताहै और गन्धर्व नगर है तैसेही यह जगत् है—इससे इसका त्याग करो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तचमत्कारोनाम शताधिकचतुस्त्रिंशतितमस्सर्गः १३४॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह स्थावर जंगम जगत् सब आत्मासे उत्पन्न हुआ है और आत्माहीमें स्थितहै और आत्माही विश्वमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेका विश्व स्वप्ने

वाले में स्थितहै। आत्मा किसीका कारण नहीं क्योंकि; अद्वैत है। हे अंग! जो तू उस पदके पानेकी इच्छा करता है तो तू ऐसे निश्चयकर कि, न मैंहूं और न यह जगत् है। जब तू ऐसा होगा तब आत्मपद की प्राप्ति होगी जो देश, काल और वस्तुके अच्छेदसे रहित है और सर्ववही परमात्मतत्त्व स्थित है। जगत् का कर्त्ता संकल्पही है क्योंकि; संकल्प से जगत् उत्पन्न होता है। जैसे पवनसे अग्नि उत्पन्न होताहै और पवनही से दीपक निर्वाण होता है, तैसेही जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है तब संसार उदय हो भासता है और जब संकल्प अन्तर्मुख होताहै तब आत्मपद प्राप्त होता है और सर्व प्रपंच लय होजाता है। इससे संसार की नाना प्रकारकी संज्ञा फुरनेसेही होतीहैं स्वरूप में कुछनहीं, न सत्यहै; न असत्य है; न स्वतःहै; न अन्यहै। यह सब कल्पनामात्र है सत्,असत् और स्वतः, अन्य का अभावहुआ तो वहां अहं त्वं कहां पाइये? वह है नहीं और बालक के यक्षवत् भ्रममात्र है। हे साधो! जहां अहं त्वं नष्ट होगये तहां जो सत्ता है सो परमपद है और जहां जगत् है वहां विचारसे लीन होजाता है। वास्तव में पूंछो तो ब्रह्म और जगत् में कुछभेद नहीं—नाममात्र दोहैं—जैसे घट और कुंभ हैं—परन्तु भ्रमसे नानात्व भासते हैं। जैसे समुद्र में आवर्त्त और तरंग उठतेहैं सो जलसे कुछभिन्ननहीं और पवनकेसंयोगसे आकारभासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् कुछ भिन्ननहीं; संकल्पके फुरनेसे नाना प्रकार का जगत् भासताहै। हे अंग! संकल्प के साथ मिलकर चित्त जैसी भावना करता है तैसाही रूप अपना देखता है स्वरूपसे कुछ भिन्न नहीं परन्तु भावना से और का और देखता है। जैसे शुद्ध मणि के निकट कोई रंगरखिये तो तैसाही रूप भासता है और मणिमें कुछ रंग नहीं तैसेही चित्त शक्ति में कुछहुआ नहीं और हुये की नाईं स्थित है। इससे अपने स्वरूप की भावना करो और जड़ चैतन्य को छोड़कर शुद्ध चैतन्य में स्थितहोरहो। जब ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित होगे तब तुम्हें उत्थानमें भी अपना स्वरूप भासेगा जैसे स्थिर समुद्र में तरंग फुरते हैं सो कारण रूप जलबिना तो नहींहोते, तैसेहीब्रह्म कारणरूप बिना जगत् नहीं परन्तु ब्रह्मसत्ता अकर्त्तारूप, अद्वैत और अच्युत है इसी से कहाहै कि, अकर्त्ता है और जगत् अकारणरूपहै। जो जगत् अकारणरूप है तो न उपजता है और न नाशहोता है—मरुस्थल के जलवत् है। इसीसे कहाहै कि, जगत् कुछ वस्तुनहीं केवल अज, अच्युत और शान्तरूप आत्मतत्वही अखण्डित स्थित है और शिलाकोशवत् अचैत्य चिन्मात्र है। जिसके हृदयमें चिन्मात्रकी भावनानहीं उसमूर्ख से हमारा क्या है? हे साधो! परमार्थसे कुछ नहीं बना पर जहां जहां मनहै तहांतहां अनेक जगत् हैं और तृण सुमेरु आदिक सब में जगत् है। जो विचार कर देखिये तो वहीरूपहै और कुछनहीं। जैसे सुवर्णके जानेसे भूषणभी सुवर्णभासतेहैं तैसेही

केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है भिन्न कुछ नहीं और भिन्न भिन्न संज्ञाभी वहीहै॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्गोपसर्गोपदेशोनाम
शताधिकपंचत्रिंशत्तमस्सर्गः १३५॥

भुशुण्डिजीबोले, हेविद्याधर! जब आत्मपद प्राप्तहोताहै तब ऐसी अवस्थाहोतीहै कि, जो नग्नशरीर हो और उसपर बहुतशस्त्रों की वर्षाहो तो उससे दुःखी नहींहोता और सुन्दर अप्सरा कंठसे मिले तो हर्षवान् नहीं होता; अर्थात् दोनों ही में तुल्य रहता है। हे विद्याधर! तबतक आत्मपद का अभ्यास करे जबतक संसार से सुषुप्त की नाईं नहो। अभ्यासहीसे आत्मपदको प्राप्तहोगा। जबआत्मपद की प्राप्तिहोगी तब पंचभौतिक शरीर को ज्वरस्पर्श न करेंगे और यद्यपि शरीर में प्राप्ति भी हों तौ भी उसके भीतर प्रवेश नहीं करते। वह केवल शांतपद में स्थित रहता है—जैसेजल में कमलको स्पर्श नहीं होता। हे देवपुत्र! जबतक देहादिकों में अभ्यास है तबतक आत्मा के प्रमाद से सुख दुःख स्पर्श करतेहैं और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सब प्रपंचभी आत्मरूप होजाते हैं। हे विद्याधर! जैसे कोई पुरुष विषपान करता है तो उसको जलन और खाँसी होती है—यह अवस्था विषकी है—सो विष से और कुछ नहीं परन्तु नाम संज्ञा हुई है। विष न जन्मता, न मरता है और धूप खाँसी उसमें दृष्टि आतीहै तैसेही आत्मा न जन्मताहै और न मरताहै और गुणोंके साथ मिलकर अवस्था को प्राप्तहुआ दृष्टिआताहै। आत्मा जन्म मरणसे रहितहै पर गुणों के संकल्प के साथ मिलने से जन्मता मरता भासता है और अन्तःकरण, देह, इन्द्रियादिक भिन्न भिन्न भासतेहैं। हे साधो! यहजगत् भ्रमसे भासताहै; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस जगत् को गोपद की नाईं अपने पुरुषार्थ से लांघजाते हैं और जो अज्ञानीहैं उनको अल्पभी समुद्रसमान होजाताहै। इससे आत्मपद पानेका यत्न करो जिसके जानेसे संसारसमुद्र तुच्छहोजावे। वह आत्मतत्त्व सबमें अनुस्यूत और सबसे अतीतहै, उसके जानेसे अन्तःकरण शीतल होजाताहै और सब ताप नष्टहोजातेहैं। हे साधो! फिर उसका त्यागकरना अविद्या है और बड़ी मूर्खताहै। हे साधो! ये सबपदार्थ ब्रह्मस्वरूपही हैं और जो ब्रह्मस्वरूपहुये तो मन, अहंकार, कलंकआदिकभी वहीहै—किसींसे किसीको कुछ दुःख सुख नहीं। हे विद्याधर! जब आत्मपद को जाना तब अन्तःकरणभी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। जो संकल्प से भिन्नभिन्न जानते हैं वे संकल्पके होतेभी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। इससे निःसंकल्प होकर स्थितहो कि, न मैंहूं; न यहजगत्है और न दृश्यहै। इनशब्दोंऔरअर्थोंसेरहितहोकर स्थितहोरहकि; सबसंशय मिटिजावें। हे विद्याधर! जब तू ऐसे निरहंकार और निःसंकल्प होगा तब उत्थानकाल मेंभी बुद्धि, बोध, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, यश, कीर्त्ति इत्यादिक जो शुभ शुभ अवस्थाहैं

सब आत्मस्वरूप भासेंगी और सर्वआत्मबुद्धि रहेगी । इनके प्राप्तहुयेभी केवलपरमार्थ सत्तासे भिन्न न भासेगा—जैसे अन्धकारमें सर्पके पैरका खोज नहींभासता क्योंकि; है नहीं; तैसेही तुमको सर्व अवस्था न भासेंगी—सर्व आत्माही भासेगा—और जितने कुछ भावरूप पदार्थ स्थित हैं सो अभाव होजावेंगे । हे अंग ! जिस पुरुष ने विचारकर आत्मपद पानेका यत्नकिया है वह पावेगा और जिसने कहा कि, मैं मुक्तहो रहूंगा और ईश्वर मुझपर दयाकरेंगे वहपुरुष कदाचित् मुक्तनहोगा । पुरुष के प्रयत्न विनाकदाचित् मुक्तिनहोगी। आत्मस्वरूपमें न कोईदुःख है और न किसीगुणसे मिला हुआ सुखहै वह केवलशांतरूपहै। किसीसे किसीको कुछसुख दुःखनहीं; न सुखहै और न दुःखहै, न कोई कर्त्ता है और न भोक्ताहै केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशो नामशताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३६॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर ! जैसे कोई कलनाकरे कि; आकाशमें और आकाश स्थितहै तो मिथ्याप्रतीति है; तैसेही आत्मामें जो अहंकार फुरता है सो मिथ्या है। जैसे आकाश में और आकाश कुछवस्तुनहीं। परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्महै कि; उसमेंआकाश भी स्थूलहै और ऐसास्थूलहै कि, जिसमें सुमेरुआदिकभी सूक्ष्मअणुरूपहैं और राग द्वेषसेरहित चेतन केवल शांतरूपहै—गुण और तत्त्वके क्षोभसे रहित है । हे देवपुत्र ! अपना अनुभवरूपी चन्द्रमा अमृतका वर्षनेवालाहै।हे अंग! जितने दृश्यपदार्थ भासते हैं सो हुये कुछनहीं । हे अंग ! आत्मरूप अमृत की भावनाकर कि, तू जन्म मरण के बन्धन से मुक्तहो । जैसे आकाशमें दूसरे आकाश की कल्पना मिथ्याहै तैसेही निराकार चिदात्मामें अहं मिथ्याहै; और जैसे आकाश अपनेआपमें स्थितहै तैसेही आत्मसत्ता अपनेआपमें स्थित है और अहं त्वं आदिकसे रहितहै । जब उसमें अहं का उत्थान होताहै तब जगत् फैलजाताहै—जैसे वायु फुरनेसे रहित हुई आकाशरूप होजाती है तैसेही संवित् उत्थान अहंसे रहित हुई आत्मरूप होजाती है और जगत् भ्रम मिटताहै । फुरनेसे जगत् फुरआयाहै; वास्तवमें कुछ नहीं । ज्ञानवान्को आत्माही भासताहै और देश, काल, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, कीर्त्ति सब आकाशरूपहैं—ब्रह्मरूपी चन्द्रमाके प्रकाशसे प्रकाशतेहैं । जैसे बादलों के संयोगसे आकाश धूम्रभाव को प्राप्त होताहै; तैसेही प्रमादसे संवित् दृश्यभावको प्राप्तहोतीहै परन्तु और कुछनहीं होती। जैसे तरंग उठनेसे जल और कुछ नहींहोता और जैसे काष्ठ छेदेसे और कुछ नहींहोता; तैसेही द्रष्टा से दृश्य भिन्न नहींहोता । जैसे केलेके थम्भ में पत्रबिना और कुछनहीं निकलता और पत्रशून्यरूपहै तैसेही क्रूररूपजगत् भासताहै परन्तु आत्मासे भिन्ननहीं शून्यरूपहै । शीश,भुजा,नेत्र,चरण आदिक नानाप्रकार भिन्नभिन्न भासते हैं

परन्तु सब शून्यरूप केलेके पत्रोंकी नाईं भासतेहैं और सब असाररूप हैं। हे विद्याधर! चित्तमें रागरूपी मलिनताहै; जब वैराग्यरूपी झाड़ से झाड़िये तब चित्त निर्मलहो। जैसे दीवारपर चित्र लिखेहोते हैं तैसेही आत्मामें जगत् भासता है और देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य आदिक सबजगत्संकल्परूपी चितेरेने चित्रलिखेहैं; स्वरूपकेविचार से निवृत्त होजातेहैं। जब स्नेह रूप संकल्प फुरता है तब भाव अभाव रूप जगत् फैलजाता है। जैसे जलमें तेल के बूंद फैलजाते हैं और जैसे बाँससे अग्नि निकल कर बाँसको दग्धकरती है तैसेही स्नेह इससे उपजकर इसीको खाते हैं। आत्मा में जो देश काल पदार्थ भासतेहैं यही अविद्या है—पुरुषार्थ से इसका अभावकरो। दो भाग साधु केसंग और कथा सुनने में व्यतीत करो; तृतीयभाग शास्त्रका विचारकरो और चतुर्थभाग में आत्मज्ञानका आपही अभ्यास करो। इसउपायसे अविद्या नष्ट होजावेगी और अशब्द और अरूपपदकी प्राप्तिहोगी। विद्याधरनेपूछा, हे मुनीश्वर! भागमें जो उपायसे अशब्दपद प्राप्त होता है सो सबकाल क्याहै? नाम अर्थके अभाव हुये शेष क्या रहताहै? भुशुण्डि बोले, हे विद्याधर! संसार समुद्र के तरने को ज्ञानवानोंका संगकरना और जो विकृत निर्वैर पुरुषहैं उनकी भलीप्रकार टहलकरना; इससे अविद्याका अर्द्धभाग नष्ट होगा; तीसरा भाग मनन करके और चतुर्थ भाग अभ्यास करके नष्टहोगा। जो यह उपाय न करसको तो यह युक्ति करो कि, जिसमें चित्त अभिलाषा करके आसक्तहो उसीका त्याग करो। एकभाग अविद्या इस प्रकार नष्टहोगी। तीनभाग शास्त्र विचार और अपने यत्नसे शनैःशनैः नष्ट होवेगी। साधुसंग; सत्शास्त्र विचार और अपना यत्न होवे तो एकही वार अविद्या नष्ट होजावेगी। यह समकाल कहे। एक एकके सेने से एक एक भाग निवृत्त होता है। पीछे जो शेषरहताहै उसमें नाम अर्थ सब असत्रूपहैं और वे अजर, अनन्त, एकरूप हैं। संकल्पके उपजेसे पदार्थ भासते हैं और संकल्पके लीनहुये लीनहोजातेहैं। हेविद्याधर! यहजगत् संकल्पसे रचाहै—जैसे आकाशमें सूर्य निराधारस्थित होता है तैसेही देश काल की अपेक्षासे रहित यह मननमात्र स्थितहै। तीनों जगत् मनके फुरने से फुर आते हैं और मनके लय हुये लय होजाते हैं—जैसे स्वप्नेके पदार्थ जागेसे अभाव होजाते हैं। हे विद्याधर! ब्रह्मरूपी बनमें एक कल्पवृक्ष है जिसकी अनेक शाखाहैं। उसकी एक शाखासे जगत्रूपी पुरैनका फलहै जिसमें देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु आदिक मच्छरहैं। वासनारूपीरससे पूर्णमज्जा पहाड़है, पंचभूत मुखद्वारा उसका निकलनेका खुला मार्ग इत्यादिक सुन्दर रचना बनी हैं। उसमें त्रिलोकी का ईश्वरइन्द्र एक हुआ और गुरुके उपदेशसे उसका आवरण नष्टहोगया। फिर इंद्र और दैत्यों का युद्धहोनेलगा और इन्द्र अपनी सेनाको लेचला पर उसकी हीनता हुई इसलिये

वह भागा और दशोंदिशाओंमें भ्रमतारहा पर जहां जावे वहां दैत्य उसके पीछेचले आवें। जैसे पापी परलोकमें शोभा नहीं पाता तैसेही इन्द्रने जब शांति न पाई तबअ-न्तवाहक रूपकरके सूर्यकी त्रिसरेणुमें प्रवेश करगया। जैसे कमलमें भँवरा प्रवेशकरे तैसेही उसने प्रवेश किया तो वहां उसको युद्धका वृत्तान्त विस्मरण होगया तब एक मन्दिरमें बैठा आपको देखताहुआ। जैसेनिद्रासे स्वप्नसृष्टि भासआवे तैसेही उसे वहां रत्न और मणियों संयुक्त संवित् नगर दीखा—व उसमेंगया और पृथ्वी,पहाड़,नदि-यां,चन्द्र,सूर्य,त्रिलोकी इसको भासनेलगी और उसजगत्का इन्द्र आपको देखा कि, दिव्य भोग और ऐश्वर्यसे संपन्न मैं इन्द्रस्थितहूं। वहइन्द्र कुछ कालके उपरांत शरीर को त्यागके निर्वाणहुआ—जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होताहै—तब कुन्दनाम उसका पुत्र इन्द्रहुआ और राज्य करनेलगा। फिर उसके एकपुत्रहुआ तबकुन्दभी इन्द्र शरीर को त्यागकर परमपदको प्राप्तहुआ और उसका पुत्रराज्य करनेलगा। फिर उसके भी एकपुत्रहुआ; इसीप्रकार सहस्रपुत्र होकर राज्य करतेरहे उन्हीं के कुल में यह हमारा इन्द्र राज्य करता है। इससे यह जगत् संकल्पमात्रहै और उसत्रिसरेणुमें यह सृष्टिहै। इसलिये इसजगत्को संकल्पमात्रजानकर इसकीआस्था त्यागो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्रोपाख्यानेत्रिसरेणुजगत् वर्णनन्नामशताधिकसप्तत्रिंशतितमस्सर्गः १३७॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! फिर उनके कुलमें एकबड़ाअभिमान् इन्द्रहुआ जो त्रिलोकी का राज्य करतारहा और फिर निर्वाण हुआ। उसके एक पुत्रथा जिसको बृहस्पति जीके वचनोंसे ज्ञानरूप प्रतिभा उदयहुई तब वह विदितवेद होकर स्थित हुआ; यथा प्राप्ति में इन्द्र होकर राज्य करनेलगा और दैत्यों को जीता। एक काल में वह किसी कार्य्य के निमित्त कमलकी तन्तु में घुसगया तो वहां उसको नानाप्रकारका जगत् भासने लगा और अपनी इन्द्रकी प्रतिभाहुई इससे उसेइच्छा उपजी कि; मैं ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त होजाऊं और दृश्यपदार्थकी नाईं उसेप्रत्यक्षदेखूं। इसलिये वह एकान्त बैठकर समाधिमें स्थितहुआ तो उसको भीतर बाहर ब्रह्म साक्षा-त्कारहुआ और उसप्रतिभाके उदयहोनेसे यह निश्चयहुआ कि; सर्व ब्रह्महीहै और सबओर पूजने योग्यहै। सब उसीको पूजतेभीहैं और सर्व हैं। सर्वशब्द,रूप,अवलोक और मननसे भी रहित केवल शुद्धआत्मपद है और सर्व ओर उसीके प्राणपद हैं। सबशीश और मुख उसीके हैं; सब ओर उसीके श्रवण हैं; सबओर उसीके नेत्रहैं और सबमें आत्मत्वसे वही स्थित होरहा है। सब इन्द्रियों और विषयोंको वही प्रका-शताहै और सब इन्द्रियों से रहितहै और अशक्तहुआ भी सबको धाररहाहै। वह निर्गुण है और इन्द्रियों के साथ मिलकर गुणोंका भोक्ता है और सब भूतोंके भीतर

बाहर व्यापरहा है। सूक्ष्महै इससे दुर्विज्ञेयहै और इन्द्रियोंका विषय नहीं। अज्ञानी को अज्ञानसेदूरहै और आत्मत्वद्वाराज्ञानीकोज्ञानसेनिकटहै और अनन्त,सर्वव्यापीकेवल शांतरूपहै जिसमें दूसरा कोई नहीं। घट,पट,दीवार,गाय,आवा,बरा,नरा,सबमें वही तत्त्व भासताहै और पर्वत,पृथ्वी,चन्द्र,सूर्य,देश,काल,वस्तु सबब्रह्मही है-ब्रह्मसेभिन्न नहीं। हेविद्याधर! इसप्रकार इन्द्रको ज्ञानहुआ और जीवन्मुक्तहुआ। तब वह सब चेष्टाकरै परन्तु अन्तःकरणमें बन्धमान न हो। ज कुछ कालबीता तब इन्द्र उस निर्वाण-प को प्राप्तहुआ जिसमें आकाशभी स्थूल है। फिर उस इन्द्रका एक बड़ा शूरवीर पुत्र सब दैत्योंको जीतकर देवता और त्रिलोकीका राज्यकरनेलगा और उसकोभी ज्ञान उत्पन्नहुआ। सत्शास्त्र और गुरू के वचनों से कुछकालमें वहभी निर्वाणहुआ तब उसका जो पुत्ररहा वहराज्यकरनेलगा। इसीप्रकार कईइन्द्र हुये औरराज्यकरतेरहे और नाना प्रकारके व्यवहारोंको देखतेरहे। फिर उसके कुलमें कोई पुत्रथा उसको यह मारी सृष्टि भासि आई तो वहभी ब्रह्मध्यानीहुआ और इसत्रिलोकीका राज्यकरनेलगा और अबतक विश्वका इंद्रवहीहै। हेविद्याधर! इसप्रकार जोविश्वकी उत्पत्तिहै सोसंकल्पमात्रहै और सबमैंने तुझसे कहीहै। पहिले उसको त्रिसरेणुमें सृष्टिभासी; फिर उससृष्टिके एक कमलकी तन्तुमेंभासी और फिर उसमें कई वृत्तांत जो संकल्पमात्र थे उसने देखे और उस अणुमें अनेक अवस्थादेखीं। हेविद्याधर! पर वास्तवमें वहकुछहुईनहीं। जैसे आ-काशमें नीलता भासती है और है नहीं; तैसेही यह विश्व है। आत्मा में विश्वका अत्यन्त अभाव है। यह विश्व अहंभाव से उपजा है। जब अहंभाव फुरता है तब आगे सृष्टि बनतीहै और जब अहंका अभाव होताहै तब विश्वकोई नहीं। इस विश्व का बीज अहंहै, इससे तू ऐसी भावनाकर कि, न मैं हूँ और न जगत्है। जब ऐसी भावना की तब आत्माही शेषरहेगा जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है। हे विद्याधर! इसमेरे उपदेशको अंगीकार कर॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंकल्पासंकल्पैकताप्रति पादनन्नामशताधिकअष्टत्रिंशतितमस्सर्गः १३८॥

भुशुण्डि बोले, हे विद्याधर! जब अहंका उत्थान होताहै तब आगे सृष्टि बन कर भासताहै और जब अहंका अभावहोताहै तबविश्वकुछनहींभासता केवल शुद्धआत्माही भासता है। हे विद्याधर! इन्द्रने कहा कि,'मैंहूं,'उसको सूर्यकी किरणों के अणुमें ऐसे अहंहुआ तो उसमें नाना विस्तारदेखा और कष्टपाया। जोउसको अहं न होता तो दुःख न पाता। दुःखरूपीवृक्षका अहंरूपीबीजहै और आत्मबिचारसे इसकानाश होताहै। जब अहं का नाशहोता है तब आत्मपद का साक्षात्कार होता है और आ-त्मपद के साक्षात्कार हुये से प्रच्छन्न अहंका नाशहोता है। हे विद्याधर! आत्मरूपी

एकपर्वतहै जिसपर आकाशरूपी वन है और उसमें संसाररूपी वृक्षलगाहै। उसमें वासनारूपी रसहै; अज्ञानरूपी भूमिसे उत्पन्नहुआहै; नदियां–समुद्र उसकी नाड़ी हैं; चन्द्रमा और तारे फूलहैं; वासनारूपी जलसे बढ़ताहै और अहंकाररूपी वृक्षकाबीज है। सुख–दुःखरूपी इसके फलहैं; आकाश इसकीडालैहैं और जड़ पातालहै। तुमइस वृक्षको ज्ञानरूपी अग्निसेजलावो और अहंरूपी वृक्षके बीजका नाशकरो। हे विद्याधर ! एकखाई है जिसके जन्म मरणरूपी दो किनारे हैं; अनात्मरूपी उसमें जल है; वासनारूपी तरंगहैं और विश्वरूपी बुदबुदे होतेभीहैं और मिटभीजातेहैं। शरीररूपी झाग है और अहंकाररूपी वायुहै; जब वायुहुई तब तरंग और बुद बुदे सब होते हैं और जब वायुमिटगई तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है। हे विद्याधर ! जो वायुहुई तो जलसे भिन्न कुछ न हुआ और जो न ई तौभी जलसे भिन्न कुछनहीं–जलही है; तैसेही अज्ञानके होते और निवृत्तहुयेभी आत्मपद ज्योंकात्यों है परन्तु सम्यक् दर्शनसे आत्मपदभासताहै और अज्ञानसे जगत्भासताहै। अहंका होनाही अज्ञान है। जब अहंहुआ तबममभीहोताहै। सो 'अहं' 'मम' नाम संसारकाहै, जब अहं मम मिटताहै तबजगत्का अभाव होताहै। अहंकेहोते दृश्यभासताहै और दृश्यमें अहंहोताहै; इससे संवेदनको त्यागक निर्वाणपदमें प्राप्तहो। इतनाकह भुशुण्डिजीने मुझसेकहा कि, हे वशिष्ठजी! इसप्रकार जबमैंनेविद्याधरको उपदेशकिया तो वहसमाधिमेंस्थितहुआ और परम निर्वाणपदकोप्राप्तहुआ। जैसे दीपक निर्वाणहोजाताहै तैसेही उसका चित्त क्षोभ से रहित शांतिको प्राप्त हुआ। हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्धथा इसकारणमेरे बचन शीघ्रही उसके हृदयमें प्रवेशकरगये। जब वह समाधिमें स्थितहुआ तो मैंने उसको बारम्वार जगाया परन्तु वह न जागा–जैसे कोई जलता जलता शीतलसमुद्रमेंजाय बैठे और उससे कहिये कि, तू निकल तो वह नहीं निकलता, तैसेही संसारतापसे जलता हुआ जब आत्मसमुद्रको प्राप्त होता है तब वह अज्ञानरूपी संसार के प्रवाहको नहीं देखता। हे वशिष्ठजी ! जिसका अन्तःकरण शुद्धहोताहै उसको थोड़े बचन भी वहुतहो लगतेहैं। जैसे तेलकी एक बुंदजलमें वहुतफैल जातीहै तैसेही जिसका अन्तःकरण शुद्धहोताहै उसको थोड़ाबचनभी वहुतहोकर लगताहै और जिसका अन्तःकरण मलिनहोताहै उसको वचन नहीं लगते। जैसे आरसीपर मोती नहीं ठहरता तैसेही गुरुशास्त्रके बचन उसको नहीं लगते। जब विषयोंसे वैराग उपजै तब जानिये कि; हृदय शुद्धहुआ है। हे वशिष्ठजी ! जब मैंने विद्याधरको उपदेश किया तब वहशीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहुआ क्योंकि; उसका चित्त निर्मलथा। हे मुनीश्वर ! जो तुमने मुझसे पूछाथा सो कहा कि, उसविद्याधर को मैंनेज्ञानसे रहित चिरकाल जीतादेखा। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे कहकर कागभुशुण्डि चुपहोरहा और मैं

नमस्कार करके आकाशमार्गसे अपने घरआया। हे रामजी! मेरे और कगभुशुंडि के इससम्वाद को एकादशचौकड़ी युगबीते हैं। हे रामजी! यह नियम नहीं है कि; थोड़े काल में ज्ञान उपजे वा बहुत कालमें यह हृदय की शुद्धताकी बातहै; जिसका हृदय शुद्धहोताहै उसको गुरु और शास्त्रोंका वचन शीघ्रही लगताहै—जैसे जल नीचेको स्वाभाविक जाता है। हे रामजी! इतना उपदेश जो तुमको मैंने क्रमसे कियाहै उसका तात्पर्य यही है कि; फुरने को त्यागकरो कि; न मैं हूं और न कोई जगत् है—तब पीछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहेगा जो सबका अपना आप है और उसका साक्षात्कार तुमको होगा। जैसे मलिन दर्पणमें मुख नहीं दीखता तैसेही आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलसे ढपा है; जब इसका त्यागकरो तब आत्मपद की प्राप्तिहोगी और जगत् भी अपना आप भासेगा। आत्मा से कुछ भिन्न नहीं क्योंकि; केवल आत्मत्वमात्र है और जो कुछ भासता है उसे मृगतृष्णा के जलवत् और बन्ध्याके पुत्रवत् जानो, यह जगत् आत्मा के प्रसाद से भासता है—जैसे आकाश में नीलता भासती है परहै नहीं; तैसेही जगत् प्रत्यक्ष भासताहै और है नहीं। जैसे रस्सीमें सर्पमिथ्या है तैसेही आत्मामें जगत् मिथ्याहै। जब आत्माका ज्ञान होगा तब जगत् का अत्यन्त अभावहोगा और केवल आत्मत्व मात्र अपना आप भासेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डिविद्याधरोपाख्यान
समाप्तिर्नामशताधिकनवत्रिंशतितमस्सर्गः १३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम अहंवेदनासे रहितहोरहो। संसाररूपी वृक्षका बीज अहंहीहै। वासनासे शुभ अशुभरूप कर्मका सुखदुःख फलहै और वासनाहीसे प्रफुल्लित होताहै; इससे अहंभावको निवृत्तकरो। जब अहंफुरता है तब आगे जगत् भासता है; जब अहंतासे रहितहोगे तब जगत् भ्रम मिटजावेगा। अहंता आत्मबोधसे नष्टहोता है। आत्मबोधरूपी खंभारीसे उड़ाया अहंतारूपी पाषाण न जानोगे कि, कहांगया और सुवर्ण पाषाण तुल्य तुमको होजावेगा शरीररूपी पत्रपर अहंतारूपी अणुस्थित है; जब बोधरूपी वायुचलेगी तब न जानोगे कि, कहांगया। शरीररूपी पत्रपर अहंता रूपी बरफका कणका स्थितहै; बोधरूपी सूर्यके उदयहुये न जानोगे कि वह कहांगया बोध विना अहंता नष्ट नहीं होती चाहे कीचड़में रहे और चाहे पहाड़में जावे; चाहे घर मेंरहे और चाहे स्थलमेंरहे; चाहे स्थूलहो और चाहे सूक्ष्महो चाहे निराकारहो और चाहे रूपान्तरको प्राप्तहो; चाहे भस्महो और चाहे मृतकहो; चाहे दूरहो अथवा निकटहो जहांरहेगा वहांही अहंता इसके साथहै। हे रामजी! संसाररूपी बटकाबीज अहंताहै उसीसे सब शाखा फैली हैं। सब अर्थोंका कारण अहंताहै; जब तक अहंताहै तबतक दुःख नहीं मिटता और जब अहंभावनष्टहो तब परमसिद्धिकी प्राप्ति

हो । हे रामजी ! जो कुछ मैंने उपदेश किया है उसको भली प्रकार विचार र उसका अभ्यासकरो तबसंसाररूपी वृक्षका बीज जल जावैगा और आत्मपदकी प्राप्तिहोगी ।

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽहंकारअस्तयोगोपदेशोनाम शताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः १४० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! संसार संकल्प मात्र सिद्ध है और भ्रमसे उदयहुआ है । आत्मस्वरूप में अनेक सृष्टि बसती हैं; कोई लीनहोती ; कोई उत्पन्न होती हैं और कोई उड़ती हैं; कहीं इकट्ठी होती हैं और कहीं भिन्न २ उड़ती हैं सो सब मुझको प्रत्यक्ष भासती हैं । देखो वे उडती जाती हैं सो ये सब आकाशरूप हैं और आकाशही से मिलती हैं । जैसे के का वृक्ष देखनेमात्र सुन्दर होता है पर उसमेंकुछ सार नहीं होता तैसेही विश्व देखने मात्र सुन्दर है पर आकाशरूप है । जैसे जलमें पहाड़ का प्रतिविम्ब पडता है और हिलता भासता है तैसेही यह जगत् है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि ,सृष्टि मुझेप्रत्यक्ष उडती भासती हैं–तुमभी देखो; यह तो मैंने कुछनहीं समझा कि, आप क्याकहतेहैं? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! अनेक सृष्टि उडतीहैं सो सुनो । पंचभौतिक शरीरमें प्राणस्थितहैं; प्राणमेंचित्तस्थितहै औरउसचित्तमें अपनी२सृष्टिहै । जबयह पुरुष शरीरका त्यागकरताहै तब लिंगशरीर जो वासना और प्राणवायु हैं वे उडते हैं । उस लिंगशरीर में जो विश्व है सो सूक्ष्म दृष्टिसे मुझको भासती है । हे रामजी ? आकाश की जो वायु है जिसका रूपरंग कुछ नहीं वही वायु प्राणों से मिलकर मुझे प्रत्यक्ष दिखाईदेती है–इसीका नाम जीव है । स्वरूप से न कोई आता है न जाताहै परन्तु लिंगशरीर के संयोग से आता–जाता ौर जन्मता–मरता दीखता है और पनी वासना के अनुसार आत्मा में विश्व देखता है और कुछ नहीं बना । यह वासना मात्र सृष्टिहै; जैसी वासनाहोती है तैसाही विश्व भासता है । हे रामजी ! यह पुरुष आत्मस्वरूप है परन्तु लिंग शरीर के मिलने से इसका नाम जीव हुआ है और आप को प्रच्छिन्न जानता है; बास्तव में ब्रह्मस्वरूप है । देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित ब्रह्म है पर उसके प्रमाद से आपको कुछ मानता है इसीका नाम लिंगशरीर है । जैसे घ ाकाश भी महाकाश है परन्तु घटके खप्पर से परच्छिन्न हुआ है तैसेही यहपुरुष भी आत्मस्वरूप है और अहंकारके संयोग से प्रच्छिन्न हुआ है । जैसे घटको एक देशसे उठाकर शांतर में लेजारक्खो तो आकाश तो न कहीं गया और न आया परन्तु आता जाता भासता है, तैसेही आत्मा अखंडरूप है परन्तु प्राण चित्तसे चलता भासता है । जब अहंकाररूप चित्त नष्ट हो तब अखण्डरूपहो; जबतक अहंकार नहीं जाता तबतक जगत्भ्रम दिखताहै और बासनाकरके भटकताफिरताहै । बासनाकीसृष्टि अपने२चित्त

में स्थितहै। जब शरीरका त्यागकरता है तब आकाशमें उड़ताहै और प्राणवायुउड़कर जो आकाशमें शून्यरूपवायुहै उससेजामिलतीहै। वहां सबको अपनी २ वासनाके अनुसार सृष्टि भासिआतीहै और अपनी सृष्टिलेकर इसप्रकार उड़तेहैं जैसे बायुगन्धको लेजातीहै सोहीमभको सूक्ष्मदृष्टिसे उड़ते भासतेहैं। हेरामजी! स्थूलदृष्टिसेलिंगशरीर नहीं भासता; सूक्ष्म दृष्टिसे दिखता है। जिसपुरुषको सूक्ष्म दृष्टि से लिंगशरीर देखने की शक्ति है और ज्ञानसे रहित है वह भी मेरे मत में मूर्ख और पशु है। हे रामजी! जब मनुष्य बासनाका त्यागकरताहै–अर्थात् इस अहंकार को कि, मैं हूं त्यागकरताहै तो आगे विश्वनहीं दिखाईदेता केवल निर्विकल्प ब्रह्मभासताहै और उसके प्राणनहीं उड़ते वहांहीलीन होजातेहैं क्योंकि; उसकाचित्त अचित्तहोजाताहै। जबतक अहंकार कासंयोगहै तबतक बिश्वभी चित्तमेंस्थितहै। जैसे बीजमें वृक्ष और तिलोंमेंतेल स्थित होताहै तैसेही उसके हृदयमें विश्वस्थितहै। जैसे मृत्तिकामें बड़े छोटे बासन; लोहेमेंसुई और खड्ग और बीजमें वृक्षभावस्थितहै चैतन्य अथवा जड़हो तैसेही यह संकल्प कलनामें भेदहै, स्वरूपसे कुछनहीं और वैसेही यह जगत्भी है। हे रामजी! बिश्वसंकल्प मात्रहै क्योंकि; दूसरी अवस्थामें नाशहोजाताहै। यह जाग्रत जो तुमको भासती है सो मिथ्याहै।जब स्वप्नआताहै तब जाग्रतनहींरहती और जब जाग्रतआतीहै तबस्वप्ना नष्ट होजाताहै; जब मृत्युआतीहै तब सृष्टिका अत्यन्त अभाव होजाताहै और देश, काल, पदार्थ सहित बासनाके अनुसार और सृष्टि भासतीहै। हे रामजी! यह विश्व ऐसा है जैसे स्वप्न नगर। जैसे संकल्पपुर होतेहैं तैसेही ये सब संकल्प उड़ते फिरते हैं। कई सृष्टि परस्पर मिलतीहैं; कईनहीं मिलतीं परन्तुसब संकल्परूप हैं और भ्रमसे और का और भासताहै। जैसे कोई पुरुष बड़ा होताहै और कोई छोटा भासताहै तो छोटे को बड़ा भासताहै और जैसे हाथी के निकट और पशुतुच्छ भासते हैं और चींटीके निकट और बड़ेभासतेहैं तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको बड़े पदार्थ देश ,काल संयुक्त विश्वतुच्छभासता है और वह उन्हें असत्यजानता औ॰ जो अज्ञानीहै उसको संकल्प सृष्टि बड़ीहोकर भास॰॰ी है। जैसे पहाड़ बड़ाभी होताहै परन्तु जिसकी दृष्टिसे दूर है उसको महालघु और तुच्छसा भास॰॰ा है और चींटीके निकट तुच्छमृत्तिका का ढेला भी पहाड़ के समान है तैसेही ज्ञानी की दृष्टिसे यह जगत् रहित है इससे बड़ा जगत् भी उसको तुच्छरूप भासता है और अज्ञानी को तुच्छरूप भी बड़ा भासता है। हे रामजी! य॰ विश्व भ्रमसे सिद्ध हुआ है। जैसे भ्रमसे सीपीमेंरूपा और रस्सीमेंसर्प भासता है तैसेही आत्माके प्रमाद से यह विश्वभासता है पर आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे निद्रादोषसे जीव अपनेअंग भूलजातेहैं और जागेहुये सबअंगभासते हैं तैसेही अविद्यारूपी निद्रामें सोयाहुआ जब जगताहै तबउसे सबविश्व अपनाआप दिखाई

देताहै। जैसे स्वप्ने से जगाहुआ स्वप्ने के विश्वको अपना आपही देखता है तैसेही यह विश्व अपना आपही भासेगा। हे जी! जब मनुष्य निद्रामें होताहै तब उसे शुभ अशुभ विश्वमें राग कुछनहीं होता और जब जगता है त इष्ट में राग और अनिष्टमें द्वेष होताहै इसीप्रकार जबतक विश्वमें हेयोपादेय बुद्धिहै तबतक जो सर्वज्ञ भीहोतोभी मूर्खहै। हेरामजी! जब जड होजावे तब कल्याणहो। जडहोना यहीहै कि, दृश्यसे रहित आत्मामें स्थितहो वहआत्मा चिन्मात्रहै। जबतक आत्मासे भिन्न जोकुछ सत्य अथवा असत्य जानता है तबतकस्वरूप की प्राप्ति नहीं होती और जब संवित् फुरनेसे रहित हो तब स्वरूपका साक्षात्कारहो। इससे फुरने का त्यागकरो। यहस्थावर जंगम जगत् ो तुमको भासताहै सो सर्व ब्रह्मस्वरूपहै। जब तुमऐसे निश्चयकरोगे तब सर्व विवर्त्त का अभाव होजावेगा और आत्मपदही शेषरहेगा। रामजीनेपूछा, हे भगवन्! यह जीव जो आपने कहा सो जीवकास्वरूप क्याहै; वह आकारको कैसे ग्रहण करता है; उसकाअधिष्ठान परमा ा कैसेहै और उसके रहनेका थान कौन है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जीव शुद्धपरमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्र पद है; उसमें चैत्योन्मुखत्वहुआ कि, 'मैं हूं;ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूपफुरीहै और उसको चि का सम्बन्धहुआहै उसीका नाम जीवहै। वह जीव न सूक्ष्महै; न स्थूलहै; न शून्यहै; न अशून्य है; न थोड़ाहै; न बहुत है; केवल शुद्ध आत्मत्वमात्रहै। वह न अणुहै, न स्थूल है; अनन्त चैतन्य आकाशरूप है उसी को जीवकह हैं। स्थूलसे स्थूल वही है और सूक्ष्म से सूक्ष्म वही है। अनुभव चैतन्य सर्वगत रूपजीवहै; उसमें वास्तव शब्दकोई नहीं और जो कोई शब्द है सो प्रतियोगी से मिलकर हुआ है। जीव अद्वैत है उसका प्रतियोगी कैसे हो। यही जीवका स्वरूप है। चैत्य के संयोग से जीव हुआ है और उसका अधिष्ठान चैतन्यआकाश, निर्विकल्प, चैत्य से रहित, शुद्ध, चैतन्य परमात्मतत्त्व है; उसमें जो संवित् फुरी है उसी का नामजीव है वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल और सर्व का बीज है। इसी का नाम वैराट कहते हैं और उसका शरीर मनोमय है। आदि परमात्मतत्त्वसे फुराहै और और अवस्थाको प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् प्रच्छिन्नता को नहीं प्राप्तहुआ—आपको सर्व आत्माजानता है। इसका नाम विराटहै उसका प्रथम शरीर मनोमात्र और शुद्ध प्रकाशरूप रागद्वेषरूपीमलसे रहित अनन्त आत्माहै और सर्वमन, कर्मों और देहोंकाबीजहै; सबमें व्यापरहाहै और सबजीवों का अधिष्ठाताहै। उसीके संकल्प से ये जीव रचे हैं और पंचज्ञान इन्द्रियों, अहंकार; मन और सं ल्प इन आठोंके आकार धारे है और आपही ग्रहण किये है। परमार्थरूप को त्याग फुरनेसे जो आकार उत्पन्नहुये हैं उनको ग्रहण करना इसीका नाम पुर्यष्टका है। फिरइन इन्द्रियोंके छिद्ररचे और स्थूलरूप रचकर

उनमें आत्मप्रतीत किया। जैसे जीव शयन कालमें जाग्रत शरीरको त्यागकर स्वप्न शरीरका अंगीकारकरताहै,तैसेही शुद्ध, चिन्मात्र,निर्विकार,अद्वैत स्वरूपको त्यागकरउसने वासनामय शरीरका अंगीकार कियाहै पर वास्तव स्वरूप का कुछ त्याग नहीं किया और स्वरूपसे नहीं गिरा शुद्ध निर्विकल्प भावको त्यागकर बिराट भावहुआ है। इसीप्रकार आगे उसपुरुषने ज्ञानसे चारोंवेदरचे और नीतिको निश्चय किया। नीति इसे कहतेहैं कि; यह पदार्थ ऐसेहो और इतने कालतकरहे—निदान यह रचना रची और जोजो संकल्प करता गया सोसो देश,काल,पदार्थ,दिशा,ब्रह्मांड सब आगेहुये। ईश्वर,वैराट,आत्मा,परमेश्वर इत्यादिक जीवके नामहैं परजीवका वासनारूप स्वरूप कुछ झूठनहीं। बासनाके शरीर ग्रहण करनेसे बासनारूप कहाहै पर वास्तवरूपशुद्ध,निर्विकार और अद्वैतहै और कदाचित् स्वरूपसे अन्य अवस्थाको नहीं प्राप्तहुआ; सदा ज्ञानरूप, अद्वैत और परम शुद्ध है। उसको अपने चैतन्य स्वभावसे चैत्यका संयोगहुआ है इससे कहा है कि; उसका वपु वासनारूपहै। उसीआदि जीवसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता, दैत्य, आकाश, मध्य, पाताल और त्रिलोकी उत्पन्नहुई हैं। जैसे दीपक से दीपक होताहै और जलसे जलहोता है तैसेही सब विराट स्वरूप है। महाआकाश उस विराट का उदर है; समुद्र रुधिर है; नदियां नाड़ी हैं और दिशा वपु हैं। उसके उदर में कई ब्रह्मांड सुमेरु पर्वत सहित समाये रहते हैं पवन उसका मूंड़ है उञ्चास पवन प्राणवायु हैं; पृथ्वी मांस है; सुमेरु आदिक पर्वत हाथ हैं; तारे रोमावली हैं; सहस्र शीश नेत्र हैं और अनन्तऔरअनादि है। चन्द्रमा उसकाकफहै जिससे अमृत स्रवताहै और भूत उपजते हैं और सूर्य पित्त है जो सर्व का उत्पन्नकर्त्ता है और सब मन; सबकर्मों और सबशरीरोंका आदि बीज बिराट है। हे रामजी! इस चित्त के सम्बन्ध से तुच्छ हुआ है पर वास्तव में परमात्मस्वरूप है। जैसे महाकाश घटके संयोग से घटाकाश होता है तैसेही विराट परमात्मा ने फुरने से सृष्टि रची है और उसमें अहं प्रत्यय की है इससे तुच्छ हुआ है; सो इसको मिथ्या भ्रम हुआ है। जैसे स्वप्ने में कोई अपना मरना देखता है तैसेही आपको दृश्य देखताहै। लघुता भी आत्मा की अपेक्षा से है; दृश्यमें विराटहै और आत्मा में इसका अनुभव है। हे रामजी! इसीप्रकार उसने उपजकर सृष्टि रची है। जैसे एक विराट पुरुषने आदि निश्चय कियाहै तैसेही अबतक है। यह आपही उपजा है और आपही लीन होजाताहै। हे रामजी! जिस प्रकार विराटकी आत्मासे हुई है तैसेही सब जीवोंकी है। यह सब विराटरूप है परन्तु जो स्वरूपसे उपजकर दृश्यसे तद्रूप हुये हैं और जिनका वास्तवस्वरूप भूलगयाहै सो तुच्छरूप जीवहुये और जो स्वरूपसे फुरकर स्वरूपसे न गिरे और जिसे आगे अपनाही संकल्परूप

विश्व देखकर प्रमाद न हुआ उसका नाम बिराट आत्माहै। हे रामजी ! जीव चैतन्य और निराकार रूपहै इसको शरीर का संयोग कल्पनासे हुआ है । जब आपको दृश्य संयुक्त देखताहै तब महा आपदा को प्राप्तहोता है और जब द्वैतसे रहित निर्विकल्प होकर देखे तब शुद्ध चैतन्य आत्मपद को प्राप्त होताहै । हे रामजी ! यह विराट सबको उत्पन्न करता है । ऐसे कई बिराट आत्मपदसे उदय हये हैं; कई मिटगयेहैं और कई आगेहोंगे । जैसे समुद्रसे कईतरंग बुदबुदे उठते हैं और लीनहोते हैं तैसेही आत्मारूपी समुद्रसे कई विराट उठतेहैं;कई लीनहोतेहैं और कई उपजेंगे । ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है और सबके भीतर बाहर पूर्णज्ञान स्वरूप है । ऐसा तेरा अपना आप अनुभव रूप है । हे रामजी ! इस सम्वेदन को त्यागकर देखो वही परमात्म स्वरूप है यह जो कुछ तुमको भासता है उसको बिचारकर त्यागो । जब तुम इसका त्याग करोगे तब चिन्मात्र जो परमशुद्ध तुम्हारा स्वरूप है सो तुमको भासेगा–इसके आगे चैतन्यताही आवरणरूप है । जैसे सूर्यके आगेबादलोंका आवरण होताहै और जबतक बादल होतेहैं तबतक सूर्य्यका प्रकाश ज्योंका त्यों नहीं भासता परजब बादल दूर होतेहैं तब प्रकाश स्वच्छ भासताहै, तैसेही जब फुरना निवृत्त होवेगा तबशुद्ध आत्माही प्रकाशेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराटआत्मावर्णनं नामशताधिकैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह परमात्मा पुरुष फुरने से जीव संज्ञाको प्राप्त हुआहै । फुरनेमें भी वहीहै पर अपने स्वरूपको नहीं जानता इसीसे दुःख पाता है । जैसे पवन चलता है तौभी वहीरूपहै और जब ठहरता है तौभी वहीरूप है–दोनोंमें तुल्यहै–तैसेहीआत्मा सर्वदा एकरसहै कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्तहुआ । जीव प्रमाद से दृश्यको कल्पताहै और दृश्यको आप जानता है इसीसे दुःख पाताहै पर जो इसको अपना स्वरूप स्मरण रहे तो दृश्यमेंभी अपना रूपभासे और जो निःसंकल्पहो तौभी विश्व अपना रूप भासे । विश्वभी इसीका रूप है परन्तु अविचारसे भिन्न भिन्न भासता है । जैसे स्वप्नेका विश्वस्वप्ने वाले का रूपहै परन्तु निद्रादोषसे नहीं जानता और जब जागता है तब जानता है कि; मैं हीथा; तैसेही यह प्रपंच सबतुम्हारा स्वरूप है । तुम अपने स्वरूपमें निरहंकार स्थित होकर देखो तो कुछनहीं बना । जो आत्मासे भिन्न तुम कुछ बनोगे तो प्रपंच विश्वभासेगा और जो आत्म स्वरूपमें स्थितहो तो अपना आप भासेगा और प्रपंचका अभाव होजावेगा । हे रामजी ! शून्याशून्य; जड़, चैतन्य; किंचन–निष्किंचन; सत्य–असत्य सब आत्माही पूर्ण है तो निषेध किसका करिये ? हे रामजी ! वह ऐसा अनुभव रूपहै जिससे सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं पर

ऐसे आत्माको मूर्ख नहीं जानते। जैसे जन्मका अंधा मार्गको नहीं जानता तैसेही अज्ञानी महाअन्ध जागती ज्योति आत्माको नहीं जानते और जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुयेको नहीं जानते तैसेही वासनासे घेरेहुये आपको नहीं जानसक्ते। जैसे जालमें पक्षी फंसा होताहै तैसेही जीव फँसेहुये हैं। इसीका नाम बन्धन है। जबवासनाका वियोगहो तो इसीका नाम मुक्ति है। हे रामजी! विषमता से जीव संज्ञाहुईहै; जब समहुआ तब ब्रह्महै सो ब्रह्म अहंकारको त्यागकर होताहै। जैसे खप्परके संयोग से घटाकाश कहाता है और जब खप्पर टूटजाता है तब महाकाश होजाता है; तैसेही जब अहंकार नष्टहोताहै तब आत्मस्वरूप है। हे रामजी! अज्ञानसे एक देशी जीव हुआहै;जब प्रच्छिन्नताका वियोगहो तब आत्मस्वरूपहीहै। हे रामजी! अपने वास्तव निर्गुण स्वरूपमें गुणोंकासंयोग उपाधिसे भासताहै सो अनर्थरूपहै। जब निर्गुण और सगुणकी गांठटूटे तब केवल अद्वैत तत्त्व अपनाआप भासेगा जो अनामय और दुःख से रहितहै और सत् असत्से परे ज्ञानरूप और आदि-अन्तसे रहितहै। जिसकेपायेसे फिर कुछ पाना नहींरहता और जिसके जानेसे और कुछ जानना नहीं रहता। ऐसा जो उत्तम पदहै उसको आत्म तत्त्वसे प्राप्तहोगे। हे रामजी! यह जो ज्ञान तुम से कहाहै उसका आश्रयकरके तुम ज्ञानवान् होना; ज्ञानबन्ध न होना। ज्ञानबन्धसे तो अज्ञानीभला है क्योंकि; अज्ञानीभी साधुओं के संग और सत्शास्त्रोंके सुनने से ज्ञानवान् होताहै पर ज्ञानबन्ध मुक्त नहीं होता। जैसे रोगीकहै कि,मुझको कोई रोग नहीं है, मैं अरोगहूं; तो वह वैद्यकी औषधिभी नहीं खाता क्योंकि; वह आपको अरोग जानताहै तैसेही जो ज्ञानबन्ध है उससे सन्तोंका संग और सत्शास्त्रों का श्रवणभी नहीं होता इससे वह अन्धतमको प्राप्त होताहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ज्ञान और ज्ञानबन्ध का लक्षण क्या है और ज्ञानबन्धका फल क्याहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसपुरुषने आत्माके विशेषणशास्त्रोंसे श्रवण कियेहैं कि; आत्मा नित्य,शुद्ध, ज्ञान स्वरूप और तीनों शरीरोंसे भिन्नहै और ऐसे सुनकर आपको मानताहै पर विषयों के भोगनेकी सदा तृष्णा करता है कि किसीप्रकार इन्द्रियोंके विषय मेरेलिये प्राप्तहों ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है। वह बोधशिल्पी है जो कर्मफलके विचारसे रहितहै अर्थात् भला बुरा विचार नहीं करता और उसमें बिचरता है और जो मुख से शुभ अशुभ निरूपण करताहै वह शास्त्रशिल्पी है और फलके अर्थ कर्म करता है। कोई ऐसाहै कि,शास्त्रोक्त आपको उत्तम मानताहै; शास्त्रोंके अर्थ बहुत प्रकारभी कहताहै, पढ़ता और पढ़ाता भी है पर विषयों से बन्धमान है और सदा विषयों की चिन्तना करता है-ऐसा पुरुष ज्ञानबन्धहै और इसी निमित्त अर्थशिल्पीभी कहाताहै अर्थात् चितेरा करनेको समर्थ है और धारनेको समर्थ नहीं। हे रामजी! एकप्रवृत्तिमार्ग है

और एक निवृत्तिमार्ग है । प्रवृत्ति संसारमार्ग है और निवृत्ति आत्मज्ञानमार्ग है । जिस पुरुषने निवृत्ति मार्ग धारण किया है पर प्रवृत्तिमार्गमें अर्थात् बहिर्मुख विषय की ओर वर्त्तताहै; इन्द्रियोंके विषयोंकी वाञ्छा करता और विषयोंसे उपरामनहीं होता एवम् उनसे तुष्टमान होकर स्वरूपका अभ्यास नहीं करता वह ज्ञानबन्ध कहाता है । हे रामजी ! जोपुरुष श्रुतिउक्त शुभकर्म फलकी हृदय में कामना धारताहै वह पुरुष ज्ञानके निकटवर्त्ती है तौभी ज्ञानबन्ध है । जिसको आत्मा में प्रीतिभी है पर विषयको चिन्तताहै और आपको उत्तम मानता है वह ज्ञानबन्ध कहाता है और जो आत्म-तत्त्व का यथार्थ निरूपण करताहै और स्थितनहीं वह ज्ञान आभासहै और ज्ञानका फल उसको साक्षात्कार नहीं । जिस पुरुषने सिद्धि और ऐश्वर्य पायाहै और उससे आपको बडा जानताहै पर आत्मज्ञानसे रहितहै वह ज्ञानबन्ध कहाताहै । हेरामजी! निदिध्यास से ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उससे शांतिका प्रकाश होता है । जब तक शांति प्राप्त नहीं होती तबतक आपको बडा ज्ञान न माने । हे रामजी ! ज्ञान से बडाहोताहै; जबतक ज्ञान नहींउपजा तबतक आत्मपरायणहो; अभ्यास और यत्नक-रो; शुभ व्यवहारसे प्राणोंकी रक्षाके निमित्त उपजीविका उत्पन्नकरो और ब्रह्मजिज्ञा-सा के अर्थ प्राणोंकी धारणाकरो । ब्रह्मजिज्ञासा इस निमित्त है कि, दुःखरूप संसार समुद्र से मुक्त हो; फिर संसारी न हो और आत्मपरायण हो । जब आत्मपरायण होगे तब सब दुःख मिटजावेंगे । जैसे सूर्य्य के उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मपद के प्राप्तहुये सबदुःख नष्ट होजाते हैं । उस पदके प्राप्त होनेका उपाययहहै कि, सत्शास्त्रोंसे जो विशेषण सुनेहो उनको समझकर बारम्बार अभ्यास करना; दृश्य के उपरान्त होना और उनको मिथ्या जानकर वैराग्य करना । इसी से आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेज्ञानवन्धयोगोनामशताधिक
द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः १४२ ॥

वशिष्ठजीबोले, हेरामजी ! जिज्ञासीहोकर ज्ञाननिष्ठ होना और जो कुछ गुरुशास्त्रों से आत्मविशेषणसुनेहैं उनमें अहंप्रत्यय करके स्थित होना इसीकानाम ज्ञाननिष्ठाहै । इस ज्ञाननिष्ठा से परम उच्चपदको प्राप्त होताहै जो सब का अधिष्ठानपद है । जब उस पदमें स्थितहुआ तब कर्म्मोंके फलका ज्ञान नहीं रहता क्योंकि; शुभकर्म्मों में फलका राग नहीं रहता और अशुभ कर्म्मोंके फल में द्वेष नहीं रहता । ऐसा पुरुष ज्ञानी कहाता है और वह शीतल चित्त रहता है; अकृत्रिम शांति को प्राप्त होताहै; किसीविषयके सम्बन्धसे नहींफँसता और उसकी वासनाकी गांठ टूटजातीहै । हे राम-जी! बोधवही है जिसके पायेसे फिर जन्मनहो और जो जन्ममरणसे रहितहो उसीको

ज्ञानी कहतेहैं। जब संसार से विमुखहो और संसारकी सत्यता न भासे तब जानिये कि, फिर जन्म न पावेगा क्योंकि; उसकी संसार की वासना नष्ट होगई है। हे रामजी! जिससे ज्ञानी की वासना नष्ट होती है वह भी सुनो। वह इस संसार का कारण नहीं देखता। जो पदार्थ कारण से उत्पन्न नहीं हुआ वह सत्य नहीं होता; इससे संसार मिथ्याहै। जैसे रस्सी में सर्प भासताहै तो उसका कारण कोई नहीं भ्रम से सिद्ध हुआ है, तैसेही यह विश्व कारण बिना दृष्टि आताहै इससे मिथ्याहै। जो मिथ्या है तो उसकी वासना कैसे हो? हे रामजी! जो प्रवाह पतित कार्य्य प्राप्तहो उसमें ज्ञानी विचरता है और संकल्प से रहित होकर अपना अभिमान कुछनहीं करता कि, इसप्रकार हो और इसप्रकार न हो। वह हृदय से आकाश की नाईं संसार से न्यारा रहता है और फुरनेसे शून्य है। ऐसा पुरुष पण्डित कहाता है। हे रामजी! यह जीव परमात्म रूप है। जब अचेतन अर्थात् संसार के फुरने से रहित हो तब आत्मपद को प्राप्तहो। जैसे आंबकावृक्ष फलसे रहितहै तौभी उसका नाम आंब है परन्तु निष्फलहै तैसेही यह जीव आत्मस्वरूप है परन्तु चित्तके सम्बन्धसे इसका नाम जीव है। जब चित्तको त्यागकरे तब आत्माहो। जैसे आंबके पेड़में फललगनेसे शोभताहै और सफलकहाता है तैसेही जब जीव आत्मपदको प्राप्तहोता है तब महाशोभासे विराजताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष कर्मके फलकी स्तुति नहीं करता अर्थात् इन्द्रियोंके इष्ट विषयकी वाञ्छा नहीं करता। जैसे जिस पुरुषने अमृतपान कियाहो वह मद्यपानकरने की इच्छा नहीं करता तैसेही जिसको आत्मसुख प्राप्तहोता है वह विषयों के सुखकी इच्छानहीं करता। जो किसी पदार्थ को पाकर सुखमानतेहैं वे मूढ़हैं। जैसे कोई पुरुषकहे कि; बन्ध्या के पुत्रके कांधेपर आरूढ़होकर नदीके पारउतरते हैं तो वहपुरुष महामूढ़ है क्योंकि; जो बन्ध्या का पुत्र हैहीनहीं तो उसके काँधेपर कैसे आरूढ़होगा; तैसेही जो कोई कहे कि, मैं संसारके किसी पदार्थ को लेकर मुक्तहूँगा तोवह महामूढ़ है। हेरामजी! ऐसा पुरुष ज्ञानसे शून्य है। उसकी इन्द्रियां स्थिर नहीं होतीं और वह शास्त्रोंके अर्थ प्रकटभी करता है परमात्माके ज्ञानसे रहित है उसको इन्द्रिय बलसे विषयों में गिरादेती हैं। जैसे चीलपक्षी आकाशमें उडता २ मांसको देखकर पृथ्वीपर गिरपडता है तैसेही अज्ञानी विषयको देखकर गिरपडता है। इससे इन इन्द्रियों को मनसंयुक्त वशकरो और युक्तिसे तत्परायण और अन्तर्मुख होरहो। यह जो संवेदन फुरती है उसका त्यागकरो। जब फुरना निवृत्तहोगा तब परमात्माका साक्षात्कारहोगा और जब परमात्माका साक्षात्कारहोगा तब, रूप अवलोक और मनस्कार, जो त्रिपुटीहै उसके सबअर्थकीभावना जातीरहेगी; केवल आत्मतत्त्वही प्रत्यक्षभासेगा और संसार का अत्यन्त अभाव होजावेगा। हे रामजी! संसारकाआद्य परमात्मतत्त्व है

और अन्तभी वहीहै। जैसे स्वर्ण गलाइये तौभी स्वर्णहै और जो न गलाइये तौभीस्वर्ण है; तैसेही जब सृष्टिका अभाव होताहै तौभी आत्माही शेषरहताहै; जब उपजीनथी तब भी आत्माही था और मध्यभी वहीहै परन्तु सम्यकदर्शीको भासताहै और असम्यक् दर्शी को आत्मसत्ता नहीं भासती। हे रामजी! विश्व आत्माका परिणाम नहीं, चमत्कार है। जैसे सुवर्ण गलता है तो उसकी रेणी संज्ञा होतीहै अथवा शलाका कहाता है। यद्यपि उसमें भूषण नहींहुये तौभी उसका चमत्कार ऐसाही होताहै कि, उससे भूषण उपजकर लीन होजाता है और जैसे सूर्यकी किरणें जलाभासहो भासती हैं, तैसेही विश्व आत्माका चमत्कारहै और बनाकुछ नहीं आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों है और उसका चमत्कार विश्व होकर स्थितहुआ है। हे रामजी! जब तुमने ऐसेजाना कि केवल आत्मसत्ता है तब वासना क्षय होजावेगी और चेष्टा स्वाभाविक होगी। जैसे वृक्षके पत्र पवन से हिलते हैं तैसेही शरीरकीचेष्टा प्रारब्ध वेगसे होगी। हे रामजी! देखने मात्र तुम्हारेमें क्रियाहोगी और हृदयमें शून्य भासेगा। जैसे यंत्रीकीपुतली संवेदन विनातागे से चेष्टाकरतीहै तैसेही शरीर की चेष्टा प्रारब्धसे स्वाभाविक होवेगी और तुमको अभिमान न होगा। जैसे कोई पुरुष दूधके निमित्त अहीर के पास बासनले जाय और उसको दूध दुहने में कुछ विलम्ब हो तो कहे कि, बासन यहां रक्खा है मैं गृहसे कोई कार्य शीघ्रही करआऊं तो यद्यपि वह गृहका कार्य करने लगता है पर उसका मन दूधकी ओरही रहता है कि, शीघ्रही जाऊं, ऐसा न हो कि; वह दुहता हो, तैसेही तुम्हारी क्रिया प्रारब्धवेगसे होगी पर मन आत्मतत्त्व में रहेगा और अहंकार से रहित होगे। जबतक अहंकार फुरताहै तबतक प्रच्छिन्न अर्थात् तुच्छजीवहै और उसको शरीरमात्रका ज्ञानहोता है और अन्तःकरण में जो प्रतिबिम्ब जीव है उसको नखशिख पर्यन्त शरीरका ज्ञानहोताहै। इसीमें आत्म अभिमान होता है औरज्ञान नहीं होता इससे जीवहै और बिराटजो आगे तुमसे कहाहै सोईश्वरहै; सर्वशरीर और अन्तःकरणका ज्ञाताहै; सर्वलिंगशरीर का अभिमानी है और सबको अपना आप जानताहै। हे रामजी! यद्यपि विश्वरूप है तो भी अहंकार से तुच्छसा हुआ है। जैसे मेघसे भिन्नहुआ एकबादर कहाता है और घटसे घटाकाश कहाता है परवह बादल भी मेघहै और घटाकाशभी महाकाशहै तैसेही अहं फुरनेसे प्रच्छिन्नहुआहै सो फुरना दृश्यमें हुआहै और दृश्यफुरनेमें हुईहै। जैसे फूलोंमें गन्ध और तिलों में तेलहै तैसेही फुरनेमें दृश्यहै। हे रामजी! आत्मामें बुद्धिआदिक फुरनाहै कि; 'मैंहूं', जब ऐसे फुरता है तब आगे दृश्यहोतीहै और जब अहंकारहोताहै तब आगेदेह इन्द्रियादिक विश्वरचता है; इससे फुरनेमें दृश्यहुई और फुरना दृश्यमेंहुआ। देह, इन्द्रियां, मनआदिक जो दृश्य हैं उसमें अहंप्रत्ययसे फुरनाहुआहै इसीकारणसे इसकीजीव संज्ञाहुईहै; जबफुरनानष्ट

होजावे तब आत्मा का साक्षात्कारहो । यह जन्म, मरण, आना, जाना आदिक विकार संयुक्त प्रपंचभासता है तौ भीमिथ्या है क्योंकि; विचारकिये से कुछनहीं रहता । जैसे केलेके थंभेमें कुछसार नहीं तैसेही बिचारकियेसे प्रपंच नहीं रहता और जैसे स्वप्ने में जन्म, मरण, आना, जाना देखताहै परन्तुमिथ्याहै तैसेही जाग्रतक्रियाभी सर्व मिथ्याहैं। हे रामजी ! जो पारावारदर्शी है वह इतनीअवस्थाओंमें निर्विकल्पहै और जन्मताभी है परन्तु नहीं जन्मता और सर्वक्रिया करताभीहै परन्तु नहीं करता—वहसबको स्वप्नवत् समझताहै और स्वरूपसेकदाचित् कुछनहींहुआ । हे रामजी ! ज्ञानीजाग्रतमें भी ऐसेही देखताहै । जब यह आत्मपदमें जागताहै तब सर्वविकारका अभावहोजाताहै कोई विकार नहीं भासता हे रामजी ! जो पुरुष इन्द्रियोंके विषयकी चिन्तना करता रहता है सोबन्ध है क्योंकि; अभिलाषही दुःखदायक है । यद्यपि वह राजा हो पर उसके हृदय में अभि-लाषहै इससे उसे दरिद्रीजानो और जिस पुरुषका छादन, भोजन, शयन, कष्टसे देखतेहो कि; भोजन तो भिक्षा से होता है अथवा किसी और यत्नसे होताहै और छादन भी निर्गुणसा पहिरताहै और शयनकरने का स्थानभी जैसातैसा हो पर ज्ञानसे सम्पन्न है तो उसको चक्रवर्त्तीजानो—यथा ॥

दो० सातगांठकोपीनकी, साधु न मानैशंक । रामअमलमाताफिरे, गिनैइन्द्रकोरंक ७ ॥

हे रामजी ! उसको चक्रवर्त्तीसेभी अधिकजानो । यद्यपि वह आरम्भ क्रिया करता भी दृष्टआता है पर संकल्प से रहित है तो कुछ नहींकरता; उसका करना, न करना दोनों तुल्य हैं क्योंकि; वह निरभिमानहै और शुभकर्म्मोंके करनेसे स्वर्गनहीं भोगता और अशुभकर्मसे नरक नहीं भोगता—उसको दोनों एकसमानहैं । हे रामजी ! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टासमान है परन्तु अज्ञानी अहंकार सहित करताहै इससे दुःखपाता है । इससे तुम अहंकार का त्यागकरो और अपना स्वरूप जो चैत्यसे रहित चैतन्य है उसमें स्थित होरहो कि, सब संशय मिटजावें । जितने जीव तुमको भासते हैं सो सब संवित् अर्थात् ज्ञानरूप हैं परन्तु बहिर्मुख जो फुरतेहैं उससे भ्रमको प्राप्त हुये हैं और जब अन्तर्मुख हो तब केवल शांतरूपहो जहांगुणों और तत्त्वोंका क्षोभ नहीं। वह शांतपद कहाताहै।हेरामजी ! जैसे विराटकामन चन्द्रमा है तैसेही सब जीवोंका है अर्थात् सब विराटरूपहैं परन्तु प्रमादसे वास्तव स्वरूप नहीं भासता । हे रामजी ! जैसे गुलाब की सुगन्ध संपूर्ण वृक्षमें व्यापक है परन्तु फूलही में भासती है तैसेही चैतन्य सत्ता सब शरीरमें व्यापक है परन्तु हृदय में भासती है जो त्रिकोणरूप निर्मल चक्र है वहांहीं अहंब्रह्मका उत्थान होताहै; वहांसे वृत्तिफैलकर पंचइंद्रियोंके छिद्र से निकल कर विषयको ग्रहण करती है और उन इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष मानता है । इससे, हे रामजी ! इतनाकष्ट प्रमाद से है; जब बोध होताहै तब संसारभ्रम

मिटजाताहै। हे रामजी! बासनारूप जोसंसारहै उसकाबीज अहंभावहै और वहप्रत्यक्ष संताशमेंफुरताहै। जबइसकी अचिन्तनाहो और स्वरूपमें अहंप्रत्ययहो तब संसारभ्रम मिटजावे। अहंभाव के शांतहुये ज्ञानवान् यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टाकरता है। हे रामजी! जो पदार्थ सत्य है उसका कदाचित् अभाव नहींहोता और जो असत्य है वह सत्य नहीं होता और यद्यपि होनेकी भावना कीजिये तौभी नहीं होता। जैसे अग्नि को जानकर स्पर्श कीजिये तौभी जलातीहै और अजान स्पर्श करिये तौभी जलाती है क्योंकि;सत्य है और जैसे जलकी भावनासे मृग मरुस्थलमें धावताहै परन्तु जलनहीं पाता क्योंकि; असत्य है; तैसेही हे रामजी! अहंकार जो फुरता है सो असत्यहै; भ्रमसे सिद्ध है और विचारसे नष्टहोजावेगा। हे रामजी! यह अहंकाररूपी कलंकउठा है। यदि निरहंकार होकर देखो तो मुक्तरूपहो और यदि अहंकार संयुक्त हो तो बन्धहै। इससे निरहंकार होकर परमनिर्वाण को प्राप्त होरहो यही हमारा सिद्धान्तहै और परमभूमिकाभी यही है। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा शोभताहै तैसेही तुम ब्राह्मी लक्ष्मी से शोभा पावो गे। हे रामजी! ज्ञानवान् का चित्त सत्पदको प्राप्त होता है इससे अहंकार नहीं रहता और उसके चित्त की चेष्टा फलदायक नहींहोती। जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही उसको जन्मफल नहीं होता और अज्ञानी का चित्त जन्म मरण का कारण होताहै। जैसे कच्चा बीज उगता है तैसेही अज्ञानीकी चेष्टा जन्मफल देतीहै। हे रामजी! जितने पदार्थ हैं उन सबसे निराश होरहो कि, हृदय में किसीकी अभिलाषा न फुरे और न किसीका सद्भाव फुरे और पाषाणकी नाईं तुम्हारा हृदयहो। हे रामजी! जिसका हृदय कोमल स्नेह संयुक्त है वह अज्ञानी है और जिसका हृदय पाषाण समान और स्नेह से रहित है वह ज्ञानी है; इससे निर्मम और निरहंकाररूप होकर स्थित होरहो। ये भोग मिथ्या हैं—इनकी इच्छा में सुख नहीं। हे रामजी! जब संसार से उपरान्त और अन्तर्मुख आत्मपरायण होगे तब अहंकार निवृत्त होजावेगा और आत्माही भासेगा। जैसे बसन्तऋतुआती है तो वृक्षप्रफुल्लित होतेहैं और पुरातन पत्रत्यागकर नूतन होआते हैं तैसेही जब तुम अन्तर्मुख होगे तब अहंकार निवृत्त होजावेगा, विभुताको प्राप्तहोगे; अहंप्रत्यय जातीरहेगी और परमनिर्वाण पद पावोगे। इससे एक अहंकार संवेदनका त्यागकरो और कोई यत्न न करो। तुमको यही हमारा उपदेशहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुखेनयोगोपदेशःशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो वासनारूपी संसार है उससे तुम मंकीऋषि के सदृश तरजाओ। रामजीने पूछा, हे भगवन्! मंकीऋषि किसप्रकारतरेहैं सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मंकीऋषि का वृत्तांत सुनो, उसने महा

तीक्ष्णतपकियेथे। एकसमय मैं आकाशमें अपनेगृहमेंथा और तुम्हारेपितामह राजा अजने मेरा आवाहनकिया तब मैं राजाअजकेनिमित्त आकाशसेउतरा तो मार्गमेंएक बनदेखा जिसमें अनेकबनके समूहथे जो भयानक और शून्यथे। वहां न कोईमनुष्य दृष्टिआताथा और न कोईपशु केवल महाशून्यवनथा—मानो एकांतब्रह्मस्थानहै—और कईयोजनपर्यन्त मरुस्थलही दृष्टिआताथा। मध्याह्नकासमयथा और अतितीक्ष्णधूप पड़तीथी,ऊरुपर्यन्त तपीहुईरेतमें मैंनेप्रवेशकिया और कईवृक्ष वहांदग्धहुयेदृष्टिआये। हे रामजी! उसशून्यस्थलमें एकअतिदुःखित विदेशी मुझे आताको दृष्टिआया और उसने यहवाक्य मुखसे निकाला कि, हायहाय! मैंने महाकष्टपाया है। जैसे किसी को दुष्टजनदुःखदेतेहैं और दयानहींकरते तैसेही मुझकोधूप और मंजिलनेजलायाहै और मैं अतिदुःख को प्राप्तहुआहूं। हे रामजी! ऐसेवचन कहताहुआ वह मेरेसाथ चला-जाताथा। जब कुछमार्ग आगेगया तो एक धीवरका गांवदृष्टिपड़ा जहां पांचअथवा सातगृहथे; उसको देखकर वह शीघ्र चलनेलगा कि, वहां मुझको शांतिहोगी और मैं जल पान करके छायाकेनीचे बैठूंगा। हे रामजी! उसको देखकर मुझे दयाउपजी तो मैंने कहा कि, हे मार्ग के मीत! तू कहांजाता है ? जिनको सुखदायी जानकर तू धावताहै सो तो दुःखदायकहैं। जैसे मरुस्थलको नदीजानकर मृगजलपानके निमित्त धावता है कि, शांतिपाऊं सो अतिदुःख पाता है तैसेही जिस स्थान को तू सुखरूप जानता है सो दुःखरूप है। हे अंग! ये जो इसगांव के बासी हैं उनका संग कदा-चित् न करना। इनकासंग दुःखरूप है जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टाकरता है उसको दुःख नहीं होता और जो विचारे बिना चेष्टा करता है सो दुःखपाता है। ये जो न-गरवासी हैं वे आप जलते हैं तो तुझको सुख कैसे देंगे। जैसे कोई पुरुष अग्नि-कुण्ड में जलता हो और उससे कहिये कि, तू मेरी तपन शांतकर तो कहनेवालामूढ़ होता है क्योंकि, वह तो आपही जलता है और की तपन कैसे शांतकरेगा; तैसेही वे तो आप इन्द्रियों के विषयकी तृष्णारूपी अग्नि में जलते हैं तुझको कैसे शांत करेंगे? हे मार्ग के मीत! पृथ्वीके छिद्रमें सर्प होना; मरुस्थल का मृग होना और पा-षाणकी शिलामें कीटहोकर रहना अंगीकार कीजिये परन्तु अज्ञानी का संग न की-जिये; जिनको इन्द्रियों के सुखकी तृष्णारहती है। इन्द्रियोंके सुख कैसे हैं कि, आपा-तरमणीयहैं अर्थात् यह कि, जबतक इन्द्रियोंका विषयके साथ संयोग है तबतकसुख है और जब वियोग होता है तब दुःख होता है। विषयीजनों की प्रीतिभी विषवत् है और विचारवती बुद्धिरूपी कमलिनी के नाश करनेवाली बरफ है। इनकी संगति में वचनरूपी पवन से राख उड़ती है और पास बैठनेवाले को अन्धकार में डालती है। इससे इन ग्रामवासी अज्ञानियों का संग न करना। ये अज्ञानी विचारवती बुद्धि-

रूपी सूर्य के आवरण करनेवाले बादल हैं। जैसे बेलिपर अग्नि डालिये तो जलाती है तैसेही वैराग्य को ग्रहण करनेवाली बुद्धि के नाश करनेवाली इनकी संगतिहै–इस से इनका संग न करना। हे साधो ! संग उसका कर जिसके संग से तेरा ताप मिटे। इनके संग से शांति न पावेगा। हे रामजी ! इस प्रकार जब मैंने कहा तब वह मेरे निकट आकर बोला; हे भगवन् ! तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे वचन सुनकर मैं शांति को प्राप्तहुआ हूं। तुमशून्य ऐसे दृष्टि आतेहो; पर सर्वगुणों से पूर्णहो और तुम्हारा दिव्य प्रकाश मुझको भासता है। तुमआदि पुरुष बिराट् हो और तुम सुन्दर दृष्टिआतेहो। हे भगवन् ! जो सुन्दरहोता है उसको देखकर राग उपजता है और चित्त क्षोभ को भी प्राप्त होता है। तुम ऐसे सुन्दरहो कि; तुम्हारे दर्शन से मुझको शांति आतीजाती है। तुमदिव्यतेजको धारेहुये दृष्टि आतेहो और ऐसे तेजवान् हो कि, देखने नहींदेते–अर्थ यह है कि, तुम्हारे समान किसीकी सुन्दरता नहीं और तुम्हारा तेज हृदय में शांति उपजाता है और शीतल प्रकाश है। हे भगवन् ! तुम धर्म से उन्मत्तवत् दृष्टि आतेहो सो तुम कैसी शांति को लेकर एकांत में स्थित हो ? अपने स्वरूप प्रकाश को तुम दयाकरते दृष्टि आतेहो और पृथ्वी पर स्थित भी दृष्टि आतेहो परन्तु त्रिलोकी के ऊपर विराजमान भासते हो। एकही दृष्टि आतेहो परन्तु सर्वात्मा हो और किंचित्–अकिंचित् और सर्वभाव पदार्थों से शून्य दृष्टि आतेहो पर सर्व पदार्थ तुम्हारी सत्तासे प्रकाशतेहैं। तुम सर्वपदार्थोंके अधिष्ठान हो और तुम्हारे नेत्रों के खोलने से उत्पत्तिहोती और मूंदनेसे लयहोजातीहै;इससे ईश्वर हो। तुम सकलंक दृष्टिआते हो परन्तु निष्कलंकहो अर्थात् तुम्हारे में फुरना दृष्टि आताहै परन्तु हृदयसे शून्य हो। तुम किसी अमृतको पानकरके आयेहो और बड़े ऐश्वर्यसे सम्पन्न दृष्टि आतेहो। इससे, हे भगवन् ! तुम कौनहो ? यदि मुझसे पूछो कि, तू कौन है तो मैं मांडव्य ऋषि के कुलमें हूं और मेरानाम मंकीहै। मैं ब्राह्मण हूं और तीर्थयात्रा के निमित्त निकलाथा। मैं सर्वदिशाओंमें भ्रमा और अति भयानक स्थानों में जो तीर्थ हैं वहां भी गया परन्तु मुझको शांति न हुई। ऐसी शांति कहीं न पाई कि, इन्द्रियों की जलनसे रहित होरहूं–अब मैं अपने गृहको चलाहूं। हे भगवन् ! अबगृहसे भी मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि; यह संसार ही मिथ्या है तो गृह किसका है ? संसार में सुख कहीं नहीं। यह प्राण ऐसे हैं जैसा दामिनी का चमत्कार होता है और तैसेही यह संसारभी नष्ट होता दृष्टि आता है। शरीर उपजतेभी हैं और मिटभीजाते हैं–दृष्टिमात्र हैं। जैसेरात्रि आतीहै और फिर नहीं जानपड़ती कि; कहां गई। हे भगवन् ! इस संसार को असार जानकर मैं उदासीन हुआहूं क्योंकि; अनेक जन्म पायेहैं सो नष्टहोगयेहैं और इसीप्रकार भ्रमता फिरताहूं। अबतुम्हारी शरणागत

हूं और जानताहूं कि, तुमसे मेरा कल्याण होगा। तुम कल्याणरूप दृष्टि आते हो इससे कृपा करके कहो कि, कौनहो ? हे रामजी ! इतना सुन मैंने कहा; हे मंकीऋषि ! मैं वशिष्ठ ब्राह्मणहूं और मेरागृह आकाश में है। मुझको राजाअजने स्मरण किया है इसलिये मैं इसमार्गसे जाताहूं। अब तुम संशय मतकरो ज्ञानमार्ग को पावोगे । हे रामजी ! जब मैंने ऐसेकहा तब वह मेरेचरणोंपर गिरपड़ा और उसके नेत्रों से जल चलनेलगा; और महाआनन्दको प्राप्तहुआ। तब मैंने कहा कि; हे ऋषि ! तू संशय मतकर। मैं तुझको अकृत्रिम शान्तिको प्राप्तकरके जाऊंगा। जो कुछ तू पूंछाचाहता है सो पूंछ; मैं तुझको उपदेशकरूंगा और मैं जानताहूं कि; तू कल्याणकृतहै इसलिये जो कुछ मैं कहूंगा सो तू धारेगा। तू कुछ प्रश्नकर क्योंकि; तेरेकषाय परिपक्क हुये हैं। और तू मेरे वचनोंका अधिकारीहै तुझको मैं उपदेशकरूंगा। अब तू संसारके तटको प्राप्तहुआहै और अब तुझको निकालने का बिलम्ब है अर्थात् तू वैराग्यसे पूर्ण है और संसारका तट वैराग्यहीहै; इससे संशय मतकर॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नामशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४४॥

मंकीबोले; हे भगवन् ! अब मैं जानताहूं कि; मेराकार्य सिद्धहुआहै। मुझको अज्ञानसे मोहथा उसके नाशकरनेको तुम समर्थ दृष्टिआते हो और मेरे हृदयके तम नाश करने को तुम सूर्य उदय हुयेहो । हे भगवन् ! यह संसार असार है पर लोगों की बुद्धि विषयों की ओरही धावती है जहां दुःखही होते हैं । जैसे जल नीचे स्थान को चलाजाता है तैसेही हमारी बुद्धि नीचे स्थानों में धावती है और वही चाहती है । हे भगवन् ! जितने भोग हैं उनको मैंने भोगा है परन्तु शान्ति न पाई बल्कि, उलटी तृष्णा बढ़ती गई। जैसे तृषा लगे और खारा जल पान करिये तो तृषा नहीं मिटती बल्कि बढ़तीही जातीहै; तैसेही विषयोंके भोगनेसे शान्तिनहीं प्राप्तहोती—तृष्णा बढ़ती जाती है। हे मुनिराय ! देह जर्जरीभाव होजाती है; दांत गिरपड़ते हैं और अतिक्षोभ होताहै तौभी तृष्णा नहीं मिटती; इससे अब मैं दुःख चाहताहूं, सुख कोई नहीं चाहता क्योंकि; संसार के जितने सुख हैं उनका परिणाम दुःख है । जो प्रथम दुःखहैं उनका परिणाम सुखहै इसीसे दुःख चाहताहूं और संसार के सुखनहीं चाहता। हे भगवन् ! अपनी वासनाही दुःखदायक है। जैसे कुसवारी गुफा बनाकर उसमें आपही फँसमरती है तैसेही अपनी वासनासे जीव आपही बन्धमान होताहै। हे मुनि ! वह कौनकाल था जब अज्ञानरूपी हाथीने मुझको वशकियाथा और उसकानाश करनेवाला ज्ञानरूपी सिंह कब प्रकटहोगा ? कर्मरूपी तृणोंका नाशकर्त्ताविवेकरूपी बसन्त कब प्रकटेगा और वासनारूपी अन्धेरी रात्रिका नाशकर्त्ता ज्ञानरूपी

ूर्य कब उदयहोगा ? हे भगवन् ! बैताल तबतक भासता है जबतक निशा है और जब सूर्य उदय होताहै तब निशा जाती रहती है और बैताल नहीं भासता तैसेही अहंकाररूपी बैताल तबतक है जबतक अज्ञानरूपी रात्रिदूर नहीं हुई । हे भगवन् ! जब सन्तजनोंके उपदेशसे आत्मज्ञानरूपी सूर्यप्रकट होताहै तबअहंकाररूपी बैताल वहांनहीं विचरता।सन्तजनोंकासंग औरसत्शास्त्रोंका देखना चांदनीरात्रिवत्है;उनसे जब स्वरूपका साक्षात्कारहो तब दिनहुआ जानिये और जबतकसन्तजनोंका संग न करे औरसत्श स्त्रोंको न देखे तबतकअंधेरी रात्रिहै।हे भगवन्! जोसत्शास्त्रोंकोभी सुने और फिर विषयोंकी ओ भी गिरे उसे बड़ा अभा ी जानिये सो मैंहूं; परन्तु अब मैं तुम्हारी श ण आयाहूं मेरे हृदयरूपी आकाशमें जो अज्ञानरूपी कुहिराहै सो तुम्हारे वचनरूपी शरत्कालसे नष्ट होजावेगा और हृदयाकाश निर्मल होगा। हे भगवन् ! मैंने त्रिदण्ड साधे हैं अर्थात् मन, शरीर और बाणीसे तीनतप दीर्घकाल पर्यन्त किये हैं परन्तु आत्मप्रकाश नहीं हुआ। अब मैं तुम्हारी शरणागत होके तरूंगा इसलिये कृपा करके उपदेश करो कि, मेरे हृदय का तम दूर ो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभंकीवैराग्ययोगोनाम
शताधिकपंचचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४५॥

वशिष्ठजीने कहा;हे त त ! संवेदन, भावना, वासना और कलना ये चारों अनर्थ के कारणहैं। जब इनका अभावहो ब कल्याणहो। शुद्ध चिन्मात्रपद प्रत्यक्ष चैतन्य अपने आप में स्थितहै। जो अहंकारका उत्थान है सोही संवेदनहै। भावना यह है कि; पहिले आप कुछ बना फिर चेता और अपना आप चित्त स्मरण हुआ तब भ्रम मिटजाता है और जो कुछ बना उसकी भ वना हो ीहै कि,मैं यहहूं तो इससे संसार दृढ़ होता है फिर तैसेही वासना दृढ़ होती है और अपने शरीरके अनुसार नानाप्रकारकी कलना होती हैं और फिर संसारके संकल्प बिकल्प उठते हैं। हे ब्राह्मण ! ये चारों अनर्थ के कारण हैं। जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो। जितने कुछ शब्द अर्थ हैं उनका अधिष्ठानप्रत्येक चैतन्यहै; सर्व शब्द उसीके आश्रित हैं और सर्व वहीहै । जब तू ऐसे जानेगा तब वासना क्षयहोजावेगी। जब अहंसंवेदन फुरती है तब आगे संसार भासताहै । जैसे जब वसन्तऋतु आती है तब बेलें प्रफुल्लित होती हैं तैसेही जब संवेदन फुरती है तब आगे संसार सिद्धहोताहै और जब संसारहुआ तब नानाप्रकार की वासना फुरती हैं और संसार नहीं मिटता। हे अंग ! संसार इसीकानाम है कि, संसरता है। जब संसरता मिटे तब आत्मपदही शेषरहेगा सो तेरा अपना आपहै। इससे इसफुरनेको त्यागकर अपने आपमें स्थितहोरह—सब तेराहीरूपहै। जबतक वासना फुरती है तबतक संसार दृढ़ रहता है। जैसे वृक्षको जलदीजिये तो बढ़ता

जाताहै तैसेही वासनारूपी जलदेनेसे संसाररूपी वृक्ष वृद्ध होजाताहै। इससेवासना का नाशकरो कि, यहसंवेदन न फुरे। जब जलसे रहित होताहै तब आपही जलजाताहै। हे पुत्र! आत्मामें जगत् कुछहुआ नहीं केवल परमार्थ सत्ताहै। जैसे रस्सी में सर्प कुछ वस्तु नहीं रस्सीके अज्ञानसेही भासता है तैसेही आत्माके अज्ञानसेससार भासताहै। जबतू आत्मपदको जानेगा तब परमार्थ सत्ताही भासेगी। जैसे बालक अपनी परछाहीं में भूतकल्पकर भयपाताहै और जब बिचारकर देखता है तब भूत कोईनहीं सब भयदूर होजाताहै; तैसेही आत्माके अज्ञानसे संसारके राग द्वेष जलाते हैं। ज्ञानवान्के वासना संयुक्त संसारका अभाव होजाता है और केवल अद्वैत आत्म सत्ताही भासतीहै। जैसे स्वप्नेसेजागकर स्वप्ने के प्रपंचका वासना संयुक्त अभाव होजाताहै; तैसेही जब आत्माका साक्षात्कारहोता है तब वासनासंयुक्त संसारकाअभाव होजाता है क्योंकि; है नहीं। जैसे घटादिक में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं तैसेही सर्व प्रपंच चिन्मात्रस्वरूप है कुछ भिन्ननहीं। जितने शब्दअर्थ हैं सर्वआत्माही हैं। हे मित्र! जो कुछ आत्मासे इतर भासताहै उसको भ्रममात्र जानो। जैसे आकाश में नीलता भासती है सो भ्रममात्र है तैसेही विश्व असम्यक् दृष्टिसे भासता है और सम्यक् दृष्टिसे सर्व प्रपंच आत्म स्वरूपहैं और दृष्टि, दर्शन, दृश्य—त्रिपुटीभी बोध स्वरूपहै। बोधही त्रिपुटीरूपहोकर स्थितहोता है। जैसे स्वप्नमें एकही अनुभव त्रिपुटी रूपहो भासताहै तैसेही यह जाग्रतकी त्रिपुटीभी आत्मस्वरूपहै। हेअंग! जितनेस्थावर—जंगम पदार्थ हैं सो सर्व आत्म स्वरूप हैं—जो परमात्म स्वरूप न हों तो भासें नहीं। द्रष्टारूप जो अनुभव करताहै सो एक अद्वैतरूप है—उसी स्वरूपके प्रमादसे भिन्नभिन्न त्रिपुटी भासती है तो भी कुछ भिन्न नहीं। जैसे स्वप्नमें त्रिपुटी अपने अनुभव से भासतीहै; जो अनुभव न हो तो क्योंकर भासे? तैसेही यह त्रिपुटीभी अनुभवआत्मासे भासती है। इससे सर्व परमात्म स्वरूपहै कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्ननहीं तो है नहीं क्योंकि; सबकी एकता परमार्थ स्वरूपमें होतीहै। हेऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलजाती है। जैसे जलमें जलकी बुन्दडालिये तो मिलजाती है क्योंकि; एकरूप है; तैसेही बोधसे सर्व पदार्थोंकी एकता भासती है क्योंकि; द्वैतसत्ता नहीं है। जैसे स्पंद और निस्पंद दोनों पवनहीहैं और जल और तरंग अभेदरूपहै तैसेही विश्वपरमार्थस्वरूपहै। इससे ऐसे निश्चय करो कि, सर्वब्रह्म स्वरूपहै अथवा आपको उठादो कि, मैं नहीं—जब तू न होगा तब विश्वकहांसे होगा। हे मंकीऋषि! प्रथम जो अहं होता है तो पीछे ममत्वभी होताहै; इसलिये जो अहंही न रहेगा तो ममत्व कहांरहेगा? इसअहंका होनाही बंधनहै और इसके अभावका नाम मुक्तिहै। हे मित्र! इसयुक्ति में क्यायत्नहै? यहतो अपने आधीनहै कि मैं नहीं। जब अहंकारको निवृत्त किया तब शेषवही रहेगा

जो सर्वका परमार्थ रूपहै और उसीको ब्रह्मकहते हैं। हे मुनीश्वर! जब अहंकार फुरता है तब नानाप्रकारकी वासना होती हैं और उनबासनाके अनुसार अनेक जन्म पाताहै जो बर्णन नहीं किये जाते। जैसे पवनसे तृण भटकते फिरते हैं तैसेही वासना करके जीव भटकते फिरतेहैं। जब पर्वतसे कंकड़ गिरताहै तब चोटैं खाता नीचे को चलाजाताहै तैसेही स्वरूपके प्रमादसे जीव जन्म जन्मान्तर पाते चलेजाते हैं और वासनानुसार घटीयंत्रकी नाईं कभी ऊर्द्ध और कभी अधको जाते हैं। जैसे हाथसे ताड़नाकिया गेंद कभी ऊर्द्ध और कभी अधकोजाताहै। हेअंग! इससंसारका बीज वासना है। जब बासना निवृत्तहो तब सबकी एकता होजातीहै और जबतक संसार की बासना दृढ़है तब तक एकता नहीं होती। जैसे दूध और जल मिलता है तो उनका संयोग होजाताहै तैसेही आत्मा और विश्वका संयोग नहीं—आत्मा केवल अद्वैत और सबका अपना आप है। जैसे मृत्तिकाही घटादिकरूप होभासती है तैसेही आत्मासत्ताही जगत्रूपहो भासतीहै—इससे आत्मासे भिन्न कुछ बस्तु नहीं। हे साधो! आत्मा और दृश्यका काष्ठ और लाखवत् अथवा घट और आकाशवत् कुछ संयोग नहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है और सर्व दृश्य बोधमात्रहै। हे साधो! जो जड़है सो चैतन्य नहींहोता और चैतन्य जड़नहीं होता; इससे न कोई जड़है,न चैतन्यहै; चैतन्य आत्माही भावनासे जड़ दृश्यहो भासताहै और उसके बोधसे एक अद्वैतरूप होजाताहै तो जानताहै कि; सर्ववही है भिन्न कुछनहीं। हे मित्र! अज्ञानसे नानाप्रकारका विश्व भासताहै। जैसे मेघकीवर्षा से नानाप्रकारके बीज प्रफुल्लित हो आते हैं तैसेही अहंरूपी बीजसे संसाररूपी वृक्ष बासना मुखसे प्रफुल्लित होताहै। जब अहंकाररूपी बीज नष्टहो तब संसाररूपी वृक्षभी नष्ट होजावेगा। हे अंग! जैसे वानर चपलता करताहै तैसेही आत्मतत्त्वसे विमुख अहंकाररूपी वानर बासनासे चपलता करता है। जैसे गेंद हाथके प्रहारसे अध और ऊर्द्धको उछलता है तैसेही जीव वासनाके प्रहारसे जन्मान्तरों में भटकता फिरताहै और कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी भूलोक में आताहै स्थिर कदाचित् नहीं होता। इससे बासना का त्यागकर आत्मपद में स्थितहो रहो। हेतात! यह संसाररात्रिकी मंजिलहै देखते २ नष्ट होजातीहै। इसको देखकर इसमें प्रीति करनी और सत्य जाननाही अनर्थ है। इससे संसारको त्याग करके आत्मपदमें स्थितहो रहो। चित्तकी वृत्ति जो संसरती है इसीका नाम संसारहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमंकीऋषिप्रबोधोनामशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे तात! यह संसारका मार्ग गहनहै और इसमें जीव भटकते

हैं। यह चैतन्य वृत्ति जो संसरती है। यही संसारहै। जब यह संसरनामिटे तब स्वच्छ अपना आपही स्वरूप भासै। चेतनावृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बन्धन है; और कोई बन्धन नहीं। हे साधो! यह गत् वासनासे बांधा है। जैसे बसन्त ऋतुसे रस फैलताहै तैसेही वासनासे जगत् फैलताहै। बड़ाआश्चर्य्य है कि; मिथ्या वासनासे जीव भटकते फिरते हैं; दुःख भोगते हैं और बारम्बार जन्म मृत्यु पाते हैं। बड़ा आश्चर्य्य है कि, विषमरूप वासनासे बशहुये जीव अविद्यमान जगत् को भ्रमसे सत्य जानते हैं। हे साधो! जो इसवासनारूप संसारसे तरगये हैं वे धन्य हैं और वे प्रत्यक्ष चन्द्रमाकी नाईं हैं। जैसे चन्द्रमा अमृतरूप,शीतल और प्रकाशवान् है और सबको प्रसन्न करताहै; तैसेही ज्ञानीपुरुषहै। इससे तू धन्यहै जिसको आत्मपदकी इच्छाहुई है। हे अंग! यह संसार तृष्णासे जलता है। जिनकी चेष्टा तृष्णा संयुक्तहै उनको तू बिल्ला जान। जैसे बिल्ला तृष्णासे चूहेको ग्रहण करता है तैसेही वेभी अपनी तृष्णा संयुक्त चेष्टा करते हैं। इसमनुष्य शरीरमें यही विशेषता है कि, किसी प्रकार आत्मपदको प्राप्तहो। जो नर देहपाकर भी आत्मपद पानेकी इच्छा न करे तो वह पशुसमान है। हे मित्र! मूढ़जीव ऐसी चेष्टाकरते हैं कि; प्राणों के अन्त पर्य्यन्तभी तृष्णा करते रहते हैं। हे अंग! ब्रह्मलोकसे काष्ठ पर्यन्त जितने इन्द्रियोंके विषय हैं उनके भोगनेसे शान्ति नहींहोती क्योंकि, आपातरमणीय हैं—इन में सुख कदाचित् नहीं—जो ानवान् पुरुषहैं उनकी शान्तिऐसी है। जैसे चन्द्रमामें और वे सूर्य्यकीनाईं प्रकाशतेहैं बिषयोंकीतृष्णा कदाचित् नहींकरते। जैसे कोईपुरुष अमृतपानकरके तृप्तहुआहो तो वहखली खानेकीइच्छा नहींकरता, तैसेही जिसपुरुष को आनन्दप्राप्त होताहै वह विषयों के भोगनेकी इच्छानहीं करता। इससे इसीवासनाका त्यागकरो। वासनाका वीज अहंकार है उसको निवृत्तकरो कि, मैंनहीं' क्योंकि; मेराहोनाही अनर्थ है। हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पदमें जोकुछ तू आपको प्रसन्न जानताहै कि, 'मैं ब्राह्मणहूं' अथवा किसी प्रकृतिसे मिलकर आपको मानताहै कि, 'मैं यहहूं' यही अनर्थहै। हे ऋषे! तेरेनेत्रोंके खोलनेसे संसार उत्पन्नहोताहै और नेत्रोंके मूंदनेसे नष्टहोजाताहै; सो नेत्र अहंकारकाफुरनाहै; इसीसे आगे विश्व सिद्धहोता है। इससे तेराहोनाही अनर्थहै। हे अङ्ग! जैसे रस्सीमें सर्प्प भ्रममात्र उदय होता है तैसेही आत्मामें अहंकार उदयहुआ है। इसीके अभावसे भयशांत होती है। जब अहंकारहोताहै तब आगे स्त्री,कुटुम्ब,और धनहोतेहैं सोही बन्धनहैं। इनके चमत्कार ऐसेहैं जैसे दामिनीकाचमत्कार क्षणमेंउदयहोकर नष्टहोजाताहै; इससेइनमें बन्धवान् न होनाचाहिये। हे अङ्ग! जबतू कुछबना तबसब आपदा तुझे प्राप्तहोंगी और यदि तू अपना अभावजानेगा तो पीछे आत्मपदही शेषरहेगा जो परमशांतरूप है और

जिसकी अपेक्षासे चन्द्रमाभी अग्निवत् जानपड़ताहै । वह परमशून्य और सर्वपदार्थोंकी सत्ता और आकाशरूप है । हे मित्र! मेरेइन बचनोंको धारणकर कि, तेरामोह नष्टहोजाय । यह विश्वकुछ हुआनहीं । जैसे आकाशमें दूसराचन्द्रमा भासता है पर हैनहीं तैसेही विश्व नहीं आत्माकेप्रमादसे भासताहै । हे ऋषि ! तू उसीकोजान जिसके अज्ञानसे विश्वभासताहै और जिसके ज्ञानसे लयहोजाताहै। हेमंकी ! जैसेआकाश शून्यमात्रहै; पवन स्पन्दमात्र है और जल तरङ्गमात्रहै तैसेही जगत्संवित्मात्र है उससंवित्आकाशसे जो भिन्न भासताहै उसे भ्रममात्र जानो। जैसे असम्यक् दृष्टिसे जलपहाड़ रूप भासता तैसेही असम्यप् दृष्टिसेजगत् भासताहै और सम्यक् अवलोकनसेपरमार्थ सत्ताही भासती है । जिसके अज्ञानसे विश्व भासता है उसको भी ज्ञानव न् ब्रह्मशब्द कहते हैं । उस ब्रह्मपदके अहंकारही व्यवधानहैं सो ज्ञानवान् का नष्ट भया है इससे वह सर्वका अधिष्ठान एक परमार्थ स्वरूप देखता है उसी में तू भी एकत्र होरह जैसे आकाश अनेक घटके संयोगसे भिन्न भिन्न भासता है औ घटको फोड़िये तो सर्व एकही होजाता है तैसेही अहंकाररूपी घट फोड़िये तो सर्व पदार्थ एकत्र होजाते हैं । हे अंग ! सर्वकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद हैजो अजन्मा, अच्युत, आनन्द, शांतरूप, निर्विकल्प, अद्वैत, सर्वका अधिष्ठान है; उसशिलावत् आत्मसत्ता से भिन्न कुछ न फुरे; इससे निर्बोध बोधहोजावो । हे मंकीऋषि ! ये जो पदार्थ दुःखके देनेवाले हैं और ऐसे जो शब्द अर्थ हैं सो आकाश के फूलहैं; इससे शोकमत कर क्योंकि; सर्व परमार्थ सत्ताही है । जैसे पुरुष निराकार है पर उसकी भावनासे अंगका संयोग होता है तैसेही विश्वभी इसकी भावनासे होता है और जैसी जैसी संसारकी भावना दृढ़होती है तैसाही रूप आगे दृष्टि आता है। जोविश्व उपादान से नहींहुआ तो प्रारम्भ परिणामसे भी कुछ नहीं बना । हे मित्र ! शुद्ध परमात्मा का पाना साधनहै, विश्वउपादान है सो शब्द है । आत्मा अद्वैत है सो इनकाहेतुहै और अचिन्त्यहै इसीसे विश्व निरुपादान स्वप्नवत्है। जैसेस्वप्नेकी सृष्टि निरुपादान होती है तैसेही जाग्रत् सृष्टिभी है । जैसे मृत्तिकासे घटकार्य बनता है आत्मा विश्वका उपादान ऐसेभीनहीं क्योंकि,मृत्तिका परिणामसे घटाकार होतीहै और आत्मा अच्युत है । जैसे भीतविना चित्रहो सोहैहैनहीं—इससे यह विश्व आकाशमें चित्रहै। जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकारका विश्वआधार भीतविना चित्रहोता है तैसेही विश्वभी आकाश में चित्रहुआ है । इसीसे आत्मा अकर्त्ता है और विश्व जो दृष्टि आताहै सो निरुपादानहै इसका शोक और हर्षक्याकरें ? यहप्रपंच सर्वआत्मरूप है प्रमादसे नहीं जानाजाता । हे साधो ! संवेदनसे जो अहंकार फुरताहै तबविश्वभासताहै । जैसे स्वप्नेमें जो कुछ बनताहै सो अपने स्वरूपसे भिन्न देखताहै और उसी में

रागद्वेष भासते हैं पर जागेहुये और कुछनहीं सब कल्पनाहीका अनुभवथा,तैसेहीजब संवेदन उठगई तबसब बिश्वअपनाआप होजाताहै। यहअहंकार होनाही विश्वहै;जब अहङ्कार नष्टहो तब सर्वशब्द अर्थ कि,मैं दुःखीहूं;मैं सुखीहूं;यहनरकहै; यहस्वर्ग है इत्यादिकपरमार्थ सत्ताहीमें फुरतेहैं।सर्वकाअधिष्ठान आत्माहै इससे सर्वआत्मस्वरूप हैजोदृश्यसे रहित द्रष्टाहै,ज्ञेयसे रहित ज्ञाताहै और निर्बाधबोधहै;इच्छासे रहितइच्छा है;अद्वैतहै और नानात्वभीवही है; निराकारहै और आकारभी वहीहै; अकिंचन और किंचनभी वही है औरअक्रिय है और सर्वक्रियाभी वही करताहै। ऐसे आत्मज्ञानको पाकर आत्मवेत्ता विचरते हैं और जगत्का भानउनको किंचित् भी नहींहोता। जैसे सुवर्णके भूषण जलके तरङ्ग होतेहैं तैसेही सब विश्व उसको आत्मस्वरूप भासताहै। ऐसे जानकरवे सर्व चेष्टाकरते हैं। जैसे यंत्रीकी पुतलीमें संवेदन नहीं फुरती तैसेही उनको जगत्में सत्यता नहीं फुरती क्योंकि; वे निरहंकार हुये हैं। हे मंकीऋषि! जैसे सुवर्ण में भूषण बन आये हैं तैसेही आत्मामें विश्व फुरआया है सो अहंकार फुरा है; इससे इसके अभावकी भावना करो और निरहंकार होकर चेष्टा करो। जैसे पालने में बालकके अंग स्वाभाविक हिलते हैं तैसेही ज्ञानी की निर्बेदन चेष्टा होती है। हे ऋषि! जब तू इस मेरे उपदेशको धारेगा तब सुखसेही आत्मपद्की प्राप्ति होगी और यह विश्वभी आत्मस्वरूपही भासेगा। जो कुछ विश्वभासता है सो सब आत्मरूपही है। हे रामजी! जब मैंने इसप्रकार कहा तब मंकीऋषि परमनिर्वाण पद्को प्राप्तहुआ और परम समाधिमें एक वर्ष स्थित रहा शिलावत् कुछ न फुरा। हे रामजी! जैसे मंकीऋषि स्वरूपको प्राप्त हुआ है तैसेही तुमभी स्थितहोरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमङ्कीऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नामशताधिकसप्त चत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्वआत्माका चमत्कार है और सर्व वही चिन्मात्र स्वरूप है। हे रामजी! मेरा आशीर्वाद है कि, तुम चिन्मात्र स्वरूप को प्राप्त हो रहो और जो तुम्हारा अपना शाप है उसको अपना आप जानो कि, तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें। हे रामजी! तुम निर्वाण शांत आत्मा होरहो; यथालाभमें सन्तुष्ट रहो, सत्यहुये-- भी असत्यकी नाईं स्थित होरहो और राग द्वेषकारङ्ग तुमको स्पर्श न करे। हे रामजी! यह सर्व जगत् एकही स्थित है और बास्तव में एक में कुछ स्थित नहीं—आदि अन्तसे रहित एक चिदाकाश अपने आपमें स्थित है और शरीरादिक के नाशमेंभी अखण्डरूपहै उसीका यह जगत् चमत्कारहै जो उपजउपज कर लयहोजाताहै। हे रामजी! ध्याता, ध्यान, ध्येय,त्रिपुटी भ्रान्तिमात्र सिद्ध है और

वास्तव में द्रष्टा,दर्शन,दृश्य सर्व आत्मस्वरूपहै;उससे भिन्न कुछ नहीं और सदा एक रस है कदाचित् क्षोभको नहीं प्राप्तहोता । यद्यपि यह दशा हो कि; अमावसका चन्द्रमा दृष्टि आवे और प्रलयकाल बिना प्रलयकालकी वायु चले तौभी आत्माको क्षोभ नहीं होता–आत्मपद सदा ज्योंकात्यों है । हे रामजी ! ऐसे आत्माके प्रमाद से जीव दुःखपाते हैं । जब आत्माका प्रमाद होता है तब देह और इन्द्रियां अपनेआप में प्रत्यक्ष भासती हैं पर जैसे वालूसे तेल नहीं निकलता; आकाशमें वन नहीं होता और चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता तैसेही आत्मामें देह–इन्द्रियां कदाचित् नहीं । हे रामजी ! ये सर्व जीव आत्मरूप हैं, इससे इनको देह इन्द्रियों का सम्बन्ध कुछ नहीं; परन्तु इनको जो क्रियामें अभिमान होता है इसी से बन्धवान् होते हैं । हे रामजी ! जैसे नावपर बैठेहुये पुरुष को भ्रान्ति से नदीतट के वृक्ष चलते भासते हैं तैसेही मन के भ्रमसे आत्मा में चित्त और देह इन्द्रियां भासती हैं । वास्तव में चित्त,देह और इन्द्रियां कुछ भिन्न वस्तु नहीं ये भी आत्मस्वरूपही हैं तो निषेध किसका कीजिये ? हे रामजी ! मन और इन्द्रियादिक को अपनी सत्ता कुछ नहीं भ्रान्ति से भासती हैं । जैसे पर्वतपर उज्ज्वल मेघ होता है और उस में बस्त्र बुद्धि निष्फल होती है तैसेही देहादिक हैं; इनमें अहंबुद्धि निष्फल है । इससे हे रामजी ! एक अखण्ड आत्मतत्त्व है और द्वैत कुछनहीं जब तुम ऐसे धारो तो निरंजन स्वरूप हो । हे रामजी ! ये सर्व शरीर चित्त के फुरनेसे स्थित हैं जैसे चित्त के फुरने से शरीर है तैसेही जीवमें चित्त है और परमात्मामें जीव है । हे रामजी ! इसप्रकार फुरने मात्र दृश्य हुई तो द्वैत तो कुछ न हुआ ? इस प्रकार विचारपूर्वक दृश्य भ्रम को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो । हे रामजी ! ऐसे धारणकर सुखसे विचरो और जो कुछ चेष्टानीतिसे प्राप्तहो उसको करो परंतु अपना अभिमान न हो । जब अपना अहंभाव दूरहोगा तब स्पंदहो अथवा निस्स्पंदहो,समाधिमें स्थितहो अथवा राज्य करो तुमको दोनों तुल्य होजावेंगे । जब अपनी अभिलाषा दूर होती है तब जैसी चेष्टाप्राप्तहो तैसाहीहो वह फुरनाभी अफुरहै और एक अद्वैत का सत्ताही भान होगा । जैसे सम्यक्दर्शीको तरङ्ग और सोम जल एक भासता है तैसेही तुमको भी एकही भासेगा । चाहे जीवन्मुक्त होरहो अथवा विदेहमुक्त हो; समाधिहो अथवा राज्यहो तुमको दोनों तुल्य हैं । हे रघुकुल आकाशके चन्द्रमा रामचन्द्रजी ! जीवको अपनी अभिलाषाही बन्धन करतीहै । जब अभिलाषा मिटतीहै तब कर्मकरो अथवा न करो कुछ बंधन नहीं क्योंकि; करनेमेंभी आत्माको अक्रिय देखता है और न करनेमेंभी वैसेही देखता है और उसकी द्वैत भावना निवृत्त होजाती है इससे उसको चित्त, देह, इन्द्रियादिक सर्वपदार्थ आत्मरूपही भासते हैं । हे रामजी ! मैं जानता हूं

कि, तुम्हारे हृदयका मोह निवृत्त हुआ है अब तुम जागेहो। यदि कुछ तुमको संशय रहाहो तो फिर प्रश्नकरो कि, मैं उत्तर दूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुखेनयोगोपदेशोनाम
शताधिकअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४८॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! एक संशय मुझको और है उसको भी आप निवृत्त कीजिये। कोई कहते हैं कि, वीर्य्यसे अंकुर होता है और कोई कहते हैं कि, अंकुरसे वीर्य्य होता है; कोई कहते हैं कि,जो कुछ कर्त्ता है सो दैवही कर्त्ता है और कोई कहते हैं कि,कर्म्म करते हैं तब जन्म पाते हैं और कर्म्महीसे सब कुछ होता है किसी के अधीन नहीं, कोई कहते हैं कि, जब देह होती है तब कर्म्म करते हैं और कोई कहते हैं कि, कर्म्मोंसे देह होती है; काजे कहते हैं कि, देहसे कर्म्म होते हैं और कोई पुरुष प्रयत्न मानते हैं सो यह जैसे है तैसे तुम कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एकएक मैं तुमको क्याकहूं; कर्म्मसे दैव और घटसे आकाश पर्य्यन्त जितने क्रिया, कर्म और द्रव्य हैं, ये सब बिकल्पजाल भ्रान्तिमात्र हैं केवल आत्मस्वरूप अपने आपमें स्थित है—द्वैत कुछ नहीं हुआ। हे रामजी! जब संवेदन फुरती है तब सब कुछ भासताहै और निःसंवेदनहये कुछ नहीं। जैसे शीत,श्वेत आदिक बरफकेपर्याय हैं तैसेही कर्म्म, पुरुष प्रयत्नआदि सब आत्मा के पर्याय हैं। दैव पुरुष है और पुरुष दैव है; कर्म्म देह है और देह कर्म्म है; वीर्य्य अंकुर है और अंकुर वीर्य्य है; दैव कर्म्म है और कर्म्म दैव है और वही पुरुष प्रयत्न है; जो इनमें भेद मानते हैं वे पण्डितों में पशुहैं क्योंकि; उनका वीर्य्य अहंकार है—जब अहंकारहुआ तब सब कुछ सिद्धहुआ। जैसे वीर्य्यसे वृक्ष, फल, फूल और डाल होते हैं पर जो वीर्य्यही न हो तो वृक्ष कैसे उपजे। हे रामजी! इनका वीर्य्य संवेदन है। अहंकार, संकल्प और संवेदन तीनों पर्याय हैं। जब फुरना हुआ तब कर्म, देह, दैव सर्व सिद्ध होतेहैं और जब फुरना मिटगया तबकुछ नहीं भासता। इसीको ज्ञान अग्निसे जलाओ कि, फूल, फल, टहनी सब जल जावें। यह जो संवेदन फुरतीहै कि, 'मैंहूं'; यही संसारका वीर्य्य है; इसे ज्ञानरूपी अग्निसे जलाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब द्वैत कुछ न भासेगा। हे रामजी! यहजो प्रपंच भासता है उसका वीर्य्य संवेदन है और संवेदनका वीर्य्यशुद्ध संवित्तत्त्व है पर उसका वीर्य्य और कोईनहीं। हे रामजी! आदि जो स्पंद संवेदन फुरना हुआहै उसीका नाम दैवहै क्योंकि; वह कर्मसे आदिही फुरताहै; फिर जो आगे क्रिया करती है सो कर्म है और इसी का नाम पुरुषप्रयत्न है। वह जो कर्मसे आदिस्वरूप फुरा है सो क्यारूप है? इसीका जो प्रकृत कर्महुआ है उसी का नाम दैव कहते हैं। इन सबका वीर्य्य संवेदन है। हे रामजी! वह स्वतः पुरुष

चिन्मात्रपद एकही था; जब उससे विकार संयुक्त उत्थान हुआ तब प्रपंच भासने लगा और फिर जब उत्थान का अभाव हो तब प्रपंच का भी अभाव होजावे। हे रामजी! जब जीव कुछ बनता है तब सर्व आपदा उसको प्राप्त होती हैं। जैसेसुई वस्त्रमें प्रवेश करती है तो उसके पीछे तागाभी चलाजाताहै और जो सुई प्रवेश न करे तोतागा कहांसेजावे;तैसेही जबअहंकार प्रवेशकरताहै तबसब आपदाभीआतीहैं और जब अहङ्कार निवृत्त हो तबसब विश्व आनन्दरूप और अपना आपभासताहै। इससे अहङ्कारका अभावकरो क्योंकि;विश्वभ्रांतिसे सिद्धहै,आगे कुछ हुआनहीं;सर्व आत्म स्वरूपहै। हे रामजी! विश्व वासनामात्र है; जब वासना नष्टहो तब परम कल्याण है। जिसप्रकार वासनाक्षयहो वही युक्ति श्रेष्ठहै। जब युक्तिसे वासना क्षयहोगी तब चेष्टाभी होगी परन्तु फिर जन्म न देगी। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य दृष्टिआतीहै परन्तु ज्ञानीका संकल्पदग्ध वीर्य्यवत् है—फिर जन्म नहींदेता और अज्ञानी का संकल्प कच्चेवीर्य्यवत् है—फिर जन्म देता है पर वास्तव में देखिये तो न कोई जन्मभी पाता है और न कोई मृतक होता है केवल अपने आपभाव में स्थित है और भ्रांति करके भिन्न भिन्न भासते हैं। स्वरूपसे सब अपनाही आप है—द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो भासता है सो मिथ्याहै। जैसे केलेके थम्भमें सार कुछनहीं होता तैसेही सर्व प्रपंच मिथ्या है इसमें सार कुछ नहीं—इस से इसकी वासना त्यागकर अपने आपमें स्थित हो। हे रामजी! जिसप्रकार तुम्हारी वासना निर्मूल हो उसी यत्न से निर्मूल करो तब परम शिवपदही शेष रहेगा। हे रामजी! पुरुष प्रयत्न से जब निरहंकार होगे तब वासना आपही क्षय होजावेगी। वासनाक्षय का उपाय अपने पुरुष प्रयत्न के सिवा और कोई नहीं। इससे हे रामजी! पुरुषार्थ करके इसी एक देवके परायण होरहो, कर्म, दैव आदिक वही पुरुष होकर भासताहै और कुछ हुआ नहीं—जैसे एकही पुरुष देवनका स्वांग धारे। हे रामजी! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईक्षणा को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिराशयोगोपदेशोनाम शताधिकनवचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान्की बुद्धि निर्म्मल होजातीहै। उसके हृदय में शीतलता होतीहै और उसकी बुद्धि चैतन्यसे पूर्णहोती है और दूसरा भान उठजाता है। इससे तुमभी नित अंतर्मुख और वीतराग निर्वासी हो रहो और चिन्मात्र, निर्मल और शांतरूप सर्वब्रह्मकी भावनाकरो। उसब्रह्मपदको पाकर नीतिके अनुसार अज्ञानी के समान चेष्टाकरो; जो हर्षका स्थानहो उसमें हर्षकरो और शोकके स्थानमें शोककरो पर हृदयमें आकाशकीनाईं रहो। हे रामजी! जबइष्टकी प्राप्तिहोतो

उससे स्पर्शकरो परन्तु हृदयमें तृष्णा न करो; जब युद्धप्राप्तहो तब शूरमाहोकर युद्ध करो; जो दीनहो उसपर दयाकरो; जो राज्य प्राप्तहो तो उसको भोगो और जो कोई कष्टप्राप्तहोतो उसकोभी भोगो—येसब चेष्टा अज्ञानीकी नाईं करो पर हृदयमें समता रक्खो; आत्मासे भिन्न कुछ न फुरनेदो और राग द्वेषसे रहित सदानिर्मल होरहो। जबतुम ऐसे निश्चयको धारोगे तब तुमकोकुछ खेद न होगा। यद्यपि बड़ादुःख और इन्द्रका वज्रपड़े तौ भी तुमको स्पर्श न करेगा। हे रामजी! तुम्हारारूप न शस्त्रसे कटताहै न अग्निसे जलताहै; न जलसे गलताहै और न पवनसेसूखताहै-केवल निराकार, अजर, अमर और सबका अपनाआपहै। हे रामजी! कष्टतबहोताहै जब विलक्षण वस्तु होतीहै और अग्नि तब जलती है जब काष्ठ आदिक भिन्न बस्तु होती हैं; अग्निको अग्नितो नहीं जलाती और जलको जलतो नहीं गलाता? इससे तुम अपने आपमें स्थित होरहो। हे रामजी! संवित्‌रूप आलयवत् स्थिर स्थान है उसी में स्थित होरहो—जैसे पक्षी सर्वओरसे संकल्पको त्यागकर आलय में स्थित होताहै तब सुखपाताहै तैसेही जब तुम सर्वकलनाको त्यागकर अन्तर्मुख संवित् में स्थित होगे तब राग द्वेषरूपीधुंधकोई न रहेगा। हेरामजी! संसाररूपी समुद्रका बड़ा प्रबाह है, आश्रय बिनाउससे नहीं निकलसक्ता; सो आश्रय मैं तुमसे कहताहूं कि; अनुभवरूप आत्माको आश्रय करके संसार समुद्रके पार होरहो; बिलम्ब न करो और अपने आपमें स्थितहोरहो। हे रामजी! यदिकोई संसाररूपी वृक्षका अन्तलियाचाहे तो नहींलेसक्ता। संसाररूपी एकवृक्षहै उसमें चैतन्यमात्र सुगन्धि है सो तेराअपना आपहै उसको ग्रहणकर। जो सर्बका अधिष्ठानहै जब उसको ग्रहणकिया तबसबको ग्रहणकिया। हे रामजी! जो कुछ प्रपंचतुमको भासताहै सो सबआत्मरूपहै—उसीकी भावनाकरो जाग्रतमें सुषुप्तहोरहो और सुषुप्तिमें जाग्रत होरहो। संसारकी सत्ता जो जाग्रतहै उसकी ओरसे सुषुप्तहोरहो अर्थात् फुरनेसे रहितहोकर तुरियापदमें स्थित होरहो जहांगुणका क्षोभ कोईनहीं और निर्मल शांतिरूपहै और जहां एक और दोकी कलना कोईनहीं। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! ऐसे जो शांतिरूप तुरियापदमें स्थित होना तुमने कहासो तुम्हारेमें यहनहीं फुरता कि, मैं वशिष्ठहूं; उसकारूपक्या है कि, अहंप्रतीति तुमको नहींहोतीहै? इतनाकह बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजीने प्रश्नकिया तब वशिष्ठजी चुपहोगये और सबसभा संशयके समुद्रमें मग्नहुई। तब रामजी बोले, हेभगवन्! चुपहोना तुम्हारा अयोग्यहै। तुमसाक्षात्‌विश्व गुरु औरब्रह्मवेत्ताहो। ऐसी कौनबातहै जो तुमको न आवै? क्या मुझको समर्थ नहीं देखते? जब ऐसे रामजीने कहा तब वशिष्ठजी एकघड़ीके उपरांतबोले, हे रामजी! असामर्थ्यसे मैं चुपनहींहुआ परन्तु जैसा तेरे प्रश्नकाउत्तरहै वही दिखाया कि; तेरे प्रश्नका

चुपही उत्तरहै। जो प्रश्नकरनेवाला अज्ञानहो तो उसको अज्ञानलेकर उत्तर देते हैं और जो ज्ञानवान्हो उसको ज्ञानसे उत्तरदेतेहैं। आगे तुम अज्ञानी थे तब मैं सविकल्प उत्तर देताथा और अब तुम ज्ञानवान्हो तुम्हारे प्रश्नका उत्तर तूष्णीही है। हे राम जी ! जो कुछ कहनाहै सो प्रतियोगीसे मिलाहुआहै; प्रतियोगी बिनाशब्द मैंकैसेकहूं? आगे तुम सविकल्प शब्दके अधिकारीथे और अबतुमको निर्विकल्पका उपदेशकियाहै । हे रामजी ! शब्द चारप्रकारकेहैं—एक सूक्ष्म अर्थका; दूसरा परमार्थका; तीसरा अल्प और चौथा दीर्घ । तीनिकलंक इनमें रहते हैं—एकसंशय; दूसरा प्रतियोग और तीसराभेद । जैसे सूर्य्यकी किरणों में त्रसरेणु रहते हैं तैसेही शब्दमें कलंक रहते हैं पर जो पद मन और वाणीसे अतीत हैं उनको कलंकित शब्द कैसे ग्रहण करें ? हे रामजी ! काष्ठमौन उसको कहते हैं जहां इन्द्रियां न फुरें; न मनफुरे और कोई फुरना न फुरे— ऐसेपदको मैं वाणीसे कैसे कहूं ? जो कुछ बोला जाता है सो सविकल्प होता है—तुम्हारे उस प्रश्नका उत्तर तूष्णी है। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, बोलना सविकल्प और प्रतियोगी सहित होता है तो जो कुछ ब्रह्ममें दूषण है उसका निषेधकरके कहो मैं प्रतियोगीको न विचारूंगा । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं चिदाकाश स्वरूप; चैत्यसे रहित; चिन्मात्र; शान्तरूप; सम और सर्व कलनासे रहित केवल आत्मत्वमात्रहूं; और तुम और जगत्भी चिदाकाश है अहंत्वंकोई नहीं क्योंकि; दूसरीसत्ता कोईनहीं सब अहंसंवेदनसे रहित शुद्ध चिदाकाश है। जो सापेक्षक अहं अहं फुरती है और मोक्षकीभी इच्छा होती है तो सिद्धनहीं होती क्योंकि; आपको कुछ मानकर फुरती है इससे एक अहंकारके कईअहंकारहो जाते हैं। यही अहं गलेमें फांसी पड़ती है; जब अहंतासे रहितहो तब आत्मपदकोप्राप्तहो। हे रामजी ! जब शवकीनाई होजावे और कुछ अपना अहंता अभिमान न फुरे तब संसार समुद्रसे पारहो और जबतक द्वैतसे मिलाहुआ जीताहै तबतक जन्म मरण के बंधनमें है कदाचित् मुक्तनहीं होता। जैसे जन्मकाअन्धा चित्रकी पुतली को नहीं देखसका तैसेही अहंता संयुक्त मुक्ति नहीं पाता। जब अहंताका अभाव हो तब कल्याणहो—स्वरूप के आगे अहंताही आवरण है। हे रामजी ! जब जीव चैतन्यहुआ फुरा तब उसको बंधनपड़ा और जब जड़—अफुर हो तब कल्याण हो। जब चैतन्योन्मुखत्व होताहै तब इसका नाम पशुहोता है और पशुका शरीरपा जब चैत्यसे रहित शुद्ध चैतन्य प्रत्यक् आत्मामें स्थित होताहै तब मनुष्य जन्मसफल होताहै। मनुष्य जन्मपा जो कुछ पाना है सो पाताहै। हे रामजी ! यदि मनुष्य जन्मको पाकर न जानेगा तो और किस जन्म में जानेगा ? यह संसार चित्तके फुरने से उत्पन्न हुआ है; जब चित्त संसरने से रहित हो तब केवल केवलीभाव स्वरूप भासे। ज्ञानवान् की

दृष्टि में अबभी कुछ नहींहुआ केवल आत्म स्वरूपही भासता है और फुरना न फुरना दोनों तुल्य दिखाई देतेहैं। अन्तःकरण चतुष्टय आत्मस्वरूप है और अज्ञानी को भिन्न भिन्न भासते हैं इसीसे चित्त आदिक जड़ और मिथ्या हैं और आत्मस्वरूप से सब आत्मस्वरूप हैं। आत्मा देश,काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित है–ज्ञानी को सर्व आत्माही भासता है चाहै वह कैसीही चेष्टाकरै वह, लोक, धन, पुत्र आदि सर्वईक्षणासे रहित है; केवल आत्म अनुभवरूप में स्थित है और सबको अपना आप जानता है। हे रामजी! जिसपद को वह प्राप्त होताहै उसपद को मेरीवाणी नहीं कह सक्ती वह अनिर्वाच्य पदहै। जो पुरुष कहताहै कि, अहंब्रह्म अस्मि–अर्थात् मैं ब्रह्महूं और यह जगत् है तो जानिये कि, उसको ज्ञाननहीं उपजा–उसको शास्त्र श्रवण का अधिकार है। जैसे कोई कहै कि, मेरे हाथ में दीपक है और अन्धकार भी मुझको दृष्टि आता है तो जानिये कि, इसके हाथ में दीपक नहीं; तैसेही जबलगजगत भासता है तबलग ज्ञान नहीं उपजा यह जीव निर्वाण होजावेगा। जब प्रत्यक् चैतन्य में स्थित हो तब जड़ होजावेगा और संसार का भास कुछ न रहेगा–ऐसीभी दृष्टि न रहेगी कि;मैं सम्यक्दर्शी हूं; केवल निर्वाणहोजावेगा । हे रामजी! अबभी निर्वाणपद है, किससे किसको कौन उपदेशकरे ? केवल एकरस शून्य है; शून्य और आत्मामें कुछ भेदनहीं और जो कुछ भेद है उसको ज्ञानवान् जानते हैं वाणीकी गम नहीं। उसमें जो अनंत संवेदन फुरतीहै तिससे संसार फुरताहै और संवेदनहीसे लीन होता है। जैसे पवन से अग्नि प्रज्वलित होता है और पवन ही से लीन होता है तैसेही जब संवेदन बहिर्मुख फुरतीहै तब संसार भासताहै और जब अन्तर्मुख होतीहै तब जगत्लीन होजाता है–इसमें संसार फुरनेमात्र है। जैसे आकाशमें नीलताभ्रम से भासती है तैसेही आत्मामें जगत् कुछ बनानहीं केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों है–उसीमें स्थितहोरहो। जब उसमें स्थितहोगे तब अशेषभाव मिटजावेगा। हे रामजी? तब ग्राह्य और ग्राहक संबंधभी जातारहेगा और केवल परमात्म तत्त्व जो शुद्ध,अजर और अमर है उसमें खाते, पीते, चलते, फिरते वृत्तिरहेगी ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभावनाप्रतिपादनोपदेशोनाम
शताधिकपंचाशत्तमस्सर्गः १५० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसप्रकार पुरुष आत्मपदको प्राप्तहोताहै सो सुनो। जब निरहंकार होता है तब आत्मपद को प्राप्त होता है। जो सर्वात्मा है उसको आवरणकरनेहारी अविद्याही है। जैसे सूर्यमण्डल को बादलढाँपलेता है तैसेही अविद्या आत्मा में आवरण करती है। उस अविद्या से उन्मत्त की नाईं मूर्खचेष्टा करते हैं और जो अहंसत्ता से रहित ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको कोई दुःख नहीं स्पर्शकरता–

संदेहभी निर्दुःख होता है। जैसे भीतपर लिखी युद्धकीसेना देखनेमात्र क्षोभित दृष्टि आतीहै परन्तु शांतरूप है; तैसेही ज्ञानवान् की चेष्टा में भी क्षोभ दृष्टि आता है परन्तु सदा अक्षोभ और निर्वाण रूप है और वासना सहित दृष्टि आताहै पर सदा निर्वासनिक है। जैसेजलमें लहर और चक्रक्षोभ दृष्टिआतेहैं परन्तु जलसे भिन्ननहीं; तैसेही ज्ञानवान्को ब्रह्मसे भिन्नकुछ नहीं भासता। जिसके हृदय से दृश्यभाव शांत होगया है और बाहर से क्षोभवान् दृष्टि आता है तौभी वह मुक्तरूप है। जैसे धुयें के बादल आकाश में हाथी, घोड़ा और पहाड़ रूप दृष्टि आते हैं परन्तु हैं कुछनहीं तैसेही जगत् दृष्टि आता है परन्तु है कुछनहीं; अहंकार से भासता है और अहंकार से रहित निर्विकार शांतरूप होताजाता है। ऐसा जो निरहंकार आत्मपदहै उसको पाकर ज्ञानवान् शोभता है। शरत्काल का आकाश, क्षीरसमुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा भी ऐसा नहीं शोभता जैसा ज्ञानवान् पुरुष शोभताहै। हे रामजी! अहंताही इसपुरुष को मल है; जब अहंता नष्ट हो तब स्वरूप की प्राप्ति हो और संसार के पदार्थों की भावना निवृत्त हो क्योंकि; भ्रम से उपजी थी। जो वस्तु भ्रमसे उपजी होती है उसका भ्रमके अभावहुये अभाव होजाताहै। जैसे आकाश में धुयेंका बादल नानाप्रकार के आकार हो भासता है पर है नहीं; तैसेही यह विश्व अनहोता भासता है और विचार कियेसे नहीं रहता। हे रामजी! जबतक संसार की वासना है तब तक बन्ध है और जब बासना निवृत्त हो तब आत्मपद की प्राप्ति हो; संपूर्ण कलना मिटजावे और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में तुल्य होजावे। तब वह यद्यपि ब्यवहार कर्त्ताहो तौभी शांतरूप है। जैसे शब्दको राग द्वेष नहीं फुरता तैसेही ज्ञानी निर्वाण पद को प्राप्तहोता है जिस में सत् असत् शब्द कोई नहीं केवल ब्रह्म स्वरूप है बल्कि ब्रह्म कहना भी वहां नहीं रहता केवल आत्मतत्त्व मात्र है और अद्वैत है। हे रामजी! विश्वभी वहीरूप चैतन्य आकाश है। जैसी जैसी भावना होती है तैसा तैसा चैतन्य होकर भासता है। जब जगत् की भावना होती है तब नानाप्रकार के आकार दृष्टि आते हैं और ब्रह्म की भावना से ब्रह्म भासता है। जैसे बिष में यदि अमृत की भावनाहोतीहै और विधिसंयुक्त खाते हैं तो वह विष भी अमृत होजाता है और जो विधिविना खाइये तो मृत्यु का कारण होताहै; तैसेही इससंसार को यदि विधिसंयुक्तदेखिये अर्थात् बिचारकरकेदेखिये तो ब्रह्मस्वरूपभासताहै और जो बिचार विना देखिये तो जगद्रूपभासता है। पर बिचार तब होताहै जब अहंकार निवृत्तहोता है। अहंकार आकाश में उपजा है; आकाश शून्यता में उपजाहै और शून्यता आत्माके प्रमाद से उपजी है। फिर अहंकार से जगत् हुआहै और अहंकार मिथ्या है। हे रामजी! शरीर आदिक चित्त पर्यंत बिचारकर देखिये तो दृष्टि कहीं नहीं आते;

इनमें जो अहंप्रत्ययहै वह भ्रांतिमात्रहै। जब तुम विचारकरके देखोगे तब मरीचिका के जलवत् भासेगा। हे रामजी! जैसे स्वप्नेके पर्वतके त्यागनेमें कुछयत्ननहीं तैसेही मिथ्या संसार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं—फिर इसका निर्णय क्याकीजिये? जैसे बन्ध्या के पुत्रकी बाणी विचारिये कि, सत्य कहता है अथवा असत्य कहता है तो मिथ्याकल्पनाहै क्योंकि, बन्ध्याका पुत्र हैहीनहीं तो उसका विचार क्याकरिये; तैसेही प्रपंचहै नहीं तो इसका निर्णय क्या कीजिये? इससे तुम ऐसे होरहो जैसे मैं कहताँ तब आत्मपदकी प्राप्तिहोगी। हे रामजी! ऐसीभावनाकरो कि, न मैं हूँ और न जगत् है। जब अहंकार ही न रहा तब कलना कहां हो; इसका होनाही अ र्थहै। जब ऐसा बिचार उत्पन्नहोताहै तब भोगोंकी वासना क्षयहोजातीहै और सन्तोंकी संगति होती है—अन्यथा भोगकी वासना नष्ट होती। हे रामजी! जबतक अहंता उठती है अर्थात् दृश्य और प्रकृति से मिलाप है तबतक द्वैत भ्रम नहीं मिटता और जब अहंकार का उत्थान मि जावे तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ता होरहे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहंससंन्यासयोगोनाम शताधिकएकपंचाशत्तमस्सर्गः १५१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब अहंताका उत्थानहोताहै तब स्वरूपका आवरण होताहै और जब अहंता मिटजाती है तब स्वरूप की प्राप्ति होतीहै। इस संसार का वीर्य्य अहंताही है; सो अहंकारही मिथ्या है तो उसका कार्य्य कैसे सत्यहो और जो प्रपंच मिथ्याहुआ तो पदार्थ कहांसे सत्यहों? हे रामजी ऐसा जो ब्रह्महै उसकीयुक्ति क्याहै? संकल्पपुरुषभी असत्यहै; उसकासंशयभी मिथ्याहै और जिसप्रति प्रश्नकरता है सोभी मिथ्याहै। जैसे स्वप्नेमे द्वैत कलना होतीहै सो असत्है तैसेही यह जगत्द्वैत भी असत्यहै। हे रामजी! यह सब जगत् स्के भीतर स्थितहै और प्रमादसे बाहर भासता है। यह अपनाही स्वप्ना दृष्टिआताहै कि, भीतर की बाहर सृष्टि भासती है। इससे यह जगत् सब चिद्रूपहै—भिन्नकछनहीं। यह चैतन्यसत्ता आकाशसेभी अति सूक्ष्म और स्वच्छ है। हे रामजी! यहजगत् चित्तसे चेताहै इससे कहींहुआनहीं और न किसीका नाशहोताहै; न कोईउत्पन्नहोताहै; न कहींजन्महै और न मरणहै—सर्वब्रह्म-हीहै। हे रामजी! जगत् के ाशहुये कुछनाश नहींहोता क्योंकि; हुआकुछनहीं। जैसे स्वप्नेकेपहाड़ और संकल्पपुर नष्टहुये तोक्यानष्टहुये वेतोकुछ उपजेही नहीं; तैसेही यह जगतहै। य बिचारकर देखा है कि जोवस्तु अबिचारसे उप होतीहै सो विचार करनेसे नहींरहत । जैसे जो पदार्थ तमसे उपजाहोताहै सो प्रकाशहुयेसे नहीं रहता तैसेही यह जगत् है; अबिचारसे भासता है और विचार करेसे नाशहोजाता है। हे रामजी! यह ज ात् संकल्पहीमात्र है—जैसे संकल्पनगर होताहै तैसेही यह संसार है

इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं; इससे रूप, इन्द्रियां और मन के अभाव की चिन्तना करना । यह संसार ऐसाहै जैसे समुद्रमें चक्र; इसमें प्रीति भावना करनी अज्ञानता है। हे रामजी! कोई ऐसे हैं कि, बाहरसे शांतरूप दृष्टि आतेहैं पर उनके हृदयमेंक्षोभ होताहै और कोई पुरुष ऐसेहैं कि,हृदयसे शीतल हैं और बाहर नानाप्रकारकी चेष्टाकरतेहैं पर जिनके दोनों मिटजातेहैं वे मोक्षकेभागी होतेहैं और उनकेभीतर बाहर एकताहोती है–जैसे समुद्रमें घटभरकेरखिये तो उसकेभीतर बाहर जलही होताहै। हे रामजी! जिस पुरुषने आत्माको ज्योंकात्योंजानाहै उसको भय, शोक और मोह नहींहोता वह केवल स्वच्छरूप शांत आत्मामें स्थितहै। भय तब होताहै जब दूसरा भासता है सो उसको सर्वद्वैतका अभाव होकर शांतरूपहोताहै।हेरामजी!सम्यक्‌दर्शीको जगत् दुःखनहींदेता और असम्यक्‌दर्शीको दुःख देताहै।जैसे रस्सीको जो जानताहै उसको रस्सीही भासती है और जो नहींजानता उसको सर्पभासताहै और भयपाताहै; तैसेही जिसको आत्माका साक्षात्कारहै उसको जगत् कल्पना कोईनहीं भासती केवल चिदानन्दब्रह्म अधिष्ठानरूप भासताहै और जिसको अधिष्ठानका अज्ञानहै उसको जगत् द्वैतरूप होकरभासताहै और वह रागद्वेषमें जलताहै। हे रामजी! और जगत् कोईनहीं इसके अनुभवमेंही जगत् कल्पनाहोतीहै और अज्ञानसे द्वैतरूपहो भासताहै पर जब अपने स्वभावसत्ता में जागताहै तबसब अपना आप भासताहै।जैसे स्वप्नेमें अपना आपही द्वैतरूपहो भासता है और राग द्वेष उपजता है पर जब जागता है तबसब आत्मरूपहो भासताहै; तैसेही यह जगत्‌है; न इस जगत्‌का कोई निमित्त कारणहै और न कोई उपादान कारणहै। जो पदार्थ कारणबिना भासे उसे असत् जानिये वह बास्तवमें उपजानहीं भ्रमसेसिद्धहुआ है। जैसे स्वप्न सृष्टि अकारणहै तैसेही यहजगत् अकारणहै और भ्रमकरकेभासताहै। हेरामजी! शास्त्रकी युक्तिसे बिचारकरके देखो तो द्वैतभ्रम मिटजावे रंचकमात्र भी कुछ बनानहीं। जैसे आकाशमें नीलता नहीं और मरुस्थलमें नदीनहीं तैसेही इस जगत्‌ कोभी जानो। आत्माशुद्ध और अद्वैतहै उसमें अहंकृतका फुरनाही दुःखहै और दुःख का कारण है। जो स्वरूप का प्रमाद न हो तो अहंकृत भी दुःखका कारण नहीं और जो स्वरूप भूला तो अहंकृतादिक दृश्य बिषकीबेलि बढ़तीजातीहै और नानाप्रकार के आकार धारती है और वासना दृढ़ होती है। जब तक वासना होती है तब तक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तबहीं कल्याण होताहै। हे रामजी! जिसदृश्य की जीव भावना करता है वह ऐसे समुद्रमें तरंग और चक्र होतेहैं सो समुद्रसे भिन्न कुछ नहींहोते तैसेही अहंकारआदिक जो दृश्यहैं सो हैं नहीं और जोहैं नहीं तो उनकी इच्छा करनी मूर्खता है। ज्ञानवान् की वासना क्षय होजाती है और उसको बन्धनका कारण नहीं होता क्योंकि; संसारकी सत्यता उसके हृदय में नहीं रहती और सत्यता

इससे नहीं रहती कि; आत्मा का साक्षात्कार हुआहै। जब आत्माका प्रमाद होता है तब अहन्ता उदय होती है और दृश्य भासती है। जैसे नेत्रके खोलने से दृश्यका ग्रहण करताहै और जब नेत्र मूंदलिये तब दृश्यरूपका अभाव होजाताहै तैसेही जब अहंता उदय होतीहै तब दृश्य भी होती है और जब अहन्ता नष्ट होती है तव संसारका अभाव होजाताहै। हे रामजी! अहन्ताका उदय होनाही अज्ञानताहै और अहन्तासेही बन्धहै; अहन्तासे रहित मोक्ष है—आगे जो इच्छाहो सो करो। हे रामजी! देह, इन्द्रियादिक मृगतृष्णाके जलवत् हैं; इनमें अहन्ता करनी मूर्खता है। ज्ञानवान् अहन्ताको त्यागकर आत्मपदमें स्थित होताहै और संसारके इष्ट अनिष्ट में हर्ष और शोक नहीं करता। जैसे आकाश में बादल हुआ तौभी वह ज्योंकात्यों है; तैसेही ज्ञानी ज्योंकात्यों है। उसमें अहंकार नहीं होता इससे वह सुखरूप है। हे रामजी! रूप, दृश्य, इन्द्रियां और मन उसके जाते रहते हैं। जैसे बन्ध्याके पुत्रकी नृत्य नहीं होती तैसेही ज्ञानी के रूप, अवलोक, मनस्कार नष्ट होजाते हैं क्योंकि; उसको सर्वब्रह्म भासताहै और द्वैत भावना उसकी नष्ट होजातीहै। संसारका वीज अहन्ता अज्ञानियों में दृढ़है। हेरामजी! अहन्तासे जीवकी बुद्धि बुरी होजाती है अर्थात् स्थूल होजाती है इससे वह दुःख पाता है। इस दुःखके नाशका उपाय यहहै कि, सन्तजनोंके वचनों की भावना करना और विचार करके हृदयमें धारणा—इससे अहन्तारूपी दुःख नष्ट होजाताहै। सन्तोंके वचनों का निषेध करना मुक्तिफल के नाश करनेवालाहै और अहन्तारूपी बेतालके उपजाने वालाहै—इसलिये सन्तोंकी शरणमें जाओ और अहन्ताको दूरकरो इसमें कछु खेद नहीं; यह अपने अधीन है। अपने अभावके चिन्तनेमें क्याखेदहै? हेरामजी! आत्मपद सन्तोंकी संगति द्वारा बहुत सुगमतासे प्राप्त होताहै। ज्ञानवानोंकी पृथक् पृथक् सेवा करो और उनके वाक्य विचार करके बुद्धिको तीक्ष्ण करो; जब बुद्धि तीक्ष्णहोगी तब अहन्तारूपी विषकी बेलिका नाशकरेगी। यह विचार करना चाहिये कि; 'मैं कौन हूं;' और 'यह जगत् क्याहै;' इसप्रकार सन्तोंके वचनों और शास्त्रोंके वचनोंके निर्णय कियेसे सत्य सत्य होताहै और जो असत्यहै वह असत्य होजाता है। सत्य जानकर आत्माकी भावना करना और असत्य जगत्को मृगतृष्णाके जलवत् जानकर भावना त्यागना तो जिनको सुख जानकर पानेकी भावना करता था वो दुःखदाई भासते हैं। जैसे अधिष्ठानके अज्ञानसे मरुस्थलमें जल जानकर मृग दौड़ताहै तो दुःख पाता है तैसेही सबका अधिष्ठान आत्मतत्त्व है; सो शुद्धरूप, परमशान्त और परमानन्द स्वरूपहै जिसको पाकर फिर दुःखी नहीं होता। हे रामजी! बन्धनका कारण भोगकी वासनाहै पर भोगों से शांति नहीं होती; जब सन्तों की संगति होती है तब कल्याण होताहै और अनात्ममें अहंभाव छूटजाता है; और प्रकार शांति नहीं होती। हे रामजी!

बालककी नाईं हमारे वचन नहीं हैं,हमारा कहना यथार्थ है क्योंकि; हमको स्वरूपका स्पष्ट भानहै। जब अहन्ता मिटजावे तब सुखीहो। इससे अहन्ताका नाशकरो। जब अहंता नाशहो तब जानिये कि, चैत्यकी भावना मिटजाती है। हे रामजी! जब ज्ञान रूपी सूर्य्य उदय होताहै तब अहंतारूपी अंधकार नष्ट होजाता है। ज्ञान तब होता है जब सन्तोंका विचार; विषयोंसे वैराग्य और स्वरूपका अभ्यास करे—इससे स्वरूप की प्राप्ति होती है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणयुतयुक्तुयपदेशोनाम शताधिकद्विपंचाशत्तमस्सर्गः १५२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिन पुरुषोंने ज्ञानसे अपना अज्ञान नष्ट नहीं किया उन्होंने करने योग्य कुछ नहीं किया। अज्ञानसे पहिले अहंभावना होतीहै तब आगे जगत् भासता है और लोक परलोक की भावना करता है और इसी वासनासे जन्म मरण पाताहै। हे रामजी! जब तक हृदय में संसारका शब्द अर्थ दृढ़है तब तक शब्द अर्थके अभावकी चिंतना करे और जहां जगत् भासताहै तहां ब्रह्मकी भावनाकरे। जब ब्रह्म भावना करेगा तब संसारके शब्द अर्थसे रहित होगा और आत्मपद भासेगा। हे रामजी! इस संसारमें दो पदार्थ हैं—एक यह लोक और दूसरा परलोक। अज्ञानी इस लोकका उद्यम करते हैं और परलोकका नहीं करते इससे दुःख पाते हैं और तृष्णा नहीं मिटती और विचारवान् पुरुष परलोक का उद्यम करतेहैं इससे यहां भी शोभा पाते हैं और परलोक में भी सुख पाते हैं और उनके दोनों लोकों के कष्ट मिटजाते हैं। जो इसी लोक का उद्यम करते हैं उनको दोनोंही दुःखदायक होते हैं अर्थात् यहां तृष्णा नहीं मिटती और आगे जाकर नरक भोगते हैं। जिन पुरुषों ने आत्मा का यत्न किया है उनको वही सिद्ध होता है और वे सुखी होते हैं और जिसने यत्न नहीं किया वह दुःखी होता है। इससे अहंकार से रहित होनेसे ही आत्मपद की प्राप्ति है। जब तक अच्छिन्न अहंकार होताहै तब तक दुःखी होताहै और नाम इस का जीव है। जो कुछ फुरता है उससे विश्व की उत्पत्ति होती है। जैसे नेत्रोंके खोलने से रूप भासता है और नेत्रों के मूंदने से रूप का अभाव होजाता है; तैसेही जब अहंता फुरती है तब दृश्य भासती है और जब अहंता का अभाव होता है तब दृश्यकाभी अभाव होजाता है। अहंता अज्ञान से सिद्धहोती है और ज्ञानके उपजे से निवृत्त होजाती है। हे रामजी! यदि पुरुष अपना प्रयत्न करे और साथही सत्-संगकरे तो इस संसार समुद्र से उतर जावेगा: और किसी प्रकार नहीं तरता। हे रामजी! युक्ति करके जैसे विषभी अमृत होजाता है तैसेही पुरुषार्थ से सिद्धि प्राप्त होती है। हे रामजी! इस जीवको दो व्याधि रोगहैं—एक यहलोक और दूसरा पर-

लोक है उनसे दुःखपाता है। जिनपुरुषों ने सन्तों के मिलापरूपी औषधि से चिकित्सा की है वे मुक्तरूप हैं और जिन्होंने वह औषधि नहीं की वे पुरुष पण्डितहों तौ भी दुःखपाते हैं। सो औषधिक्या है? शम, दम और सत्संग; इन साधनों के यत्नसे जिसने आत्मपदपायाहै वह कल्याणमूर्त्तिहै। हे रामजी! चिकित्साकी औषधि भी यही है। जिसनेकियाहै उसनेकिया और जिन्होंने न किया वे भोगमेंलंपटरहे। व वेमूर्ख हां पड़ेंगे जहां फिर कोई औषधि न पावेंगे। इससे, हे रामजी! इन भोगोंका त्यागकरो और आत्मविचारमें सावधान होरहो—यही औषधि है। हे रामजी! जिसपुरुषने मन नहीं जीता वह मूढ़है—वह भोगरूपी कीचड़में मग्नहै और आपदाका पात्रहै। जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं, तैसेही उसको आपदा प्राप्त होती है। जिसकी तृष्णा भोगसे निवृत्तहुई है और वैराग्य उपजा है वह मुक्त होताहै। जैसे जीवनेकी आदि बालक अवस्थाहै तैसेही निर्वाणपदकी आदि वैराग्यहै। हेरामजी! जैसे दूसरा चन्द्रमा, संकल्पनगर और मृगतृष्णाका जल भ्रमसे भासताहै तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै। संसारका बीज अहंताहै; जब अहंता उदय हो है तब रूप और अवलोक भासतेहैं, इससे यही चिन्तनाकरो कि, मैं नहीं। जब यही भावना क गे त शेष जो रहेगा सो तुम्हारा शान्तरूपहै; जिसमें आकाश भी शून्यहै और अहंके उत्थानसे रहित जड़-अजड़ केवल आत्मत्वमात्रहै। जड़ताका उसमें अभाव है इससे अजड़ है और केवल ज्ञानमात्रहै। उसमें विश्वऐसे हैं जैसे जलमें तरंग; पवनमें स्पन्द और आकाशमें शून्यता। आत्मासे भिन्न कुछनहीं जो आत्मासे कछ भिन्नहोता तो प्रलयमें श होजाता पर आत्मा तो प्रलयकालमेंभी रहताहै। जैसे सूर्यकी किरणोंमें सदा जलाभास रहता है तैसेही आत्मामें विश्वका चमत्कार रहताहै और जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है तैसेही यह जाग्रत सृष्टिभी अनुभव है। आत्मा भीतर बाहरसे रहित, अद्वैत, अजर, अमर, चैत्यसेरहित, चैतन्य और सर्वशब्द अर्थक अधिष्ठानहै; फुर से दू रा भासता है और फुरना न फुरना वही है। जैसेचलना और ठहरना दोनोंपवनके रूपहैं—जब चलता है तब भासताहै और जब ठहरता है तबनहीं भासता; तैसेही जब चित्त शक्तिफुरती है तब विश्वरूप होकर भासती और जब अफुरहोती है तबकेवलमात्र पद रहता सो निराभास, अविनाशी, निर्विकल्प और सबका अपना आपहै और सत्य, असत्य; जड़, चैतन्य आदिक शब्दअर्थ सब उसी अधिष्ठानसत्तामें फुरते हैं। इससे उसी अपने स्वरूप में स्थितहोरहो जो परमार्थसत्ता आत्मतत्त्व अपने स्वभाव में स्थित और अहं त्वंसे रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेश ांतिस्थितियोगोपदेशो-
नामशताधिकत्रिपंचाशत्तमस्सर्गः १५३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिनको दुःख सुख चलाते हैं और जो इन्द्रियों के इष्ट में सुखी और अनिष्ट में दुःखीहोते हैं और राग द्वेषके आधीन वर्त्तते हैं उनको ऐसे जा ो कि, वे नष्ट हुये । जिनका पुरुष प्रयत्न नष्टहुआ है वे बारम्बार जन्म पावेंगे और जिनको सुखदुःख नहीं चलाते उनको अबिनाशी जानो । वे जन्ममरणकी फांसी से मुक्तहुये हैं और उनको शास्त्रका उपदेश नहीं है । हे रामजी ! रागद्वेष तब फुरताहै ज मनमें इच्छा होती है और च्छा तब होतीहै जब संसारकी सत्यता दृढ़होती है । जिसको असत जानता है उसको बुद्धि नहीं ग्रहण करती और इच्छाभी नहीं होती और जिसको सत्य जानता है उसमें बुद्धि दौड़ती है । हे रामजी ! अज्ञानीको संसार सत्य भासता है इससे वह दुःख पाता है । जब वह शांतपदका यत्नक तब दुःखसे मुक्तहो । जिसमें अहं, त्वं, जगत्, ब्रह्मआदि शब्द कोई नहीं और जो केवल चिन्मात्र आकाशरूप है उसमें ये शब्द कैसेहों ? ये सब शब्द विचार के निमित्त कहे हैं परं वास्तवमें शब्द कोईनहीं अद्वैत और चैत्यसे रहित चिन्मात्र है । जबसर्व शब्द का बोधकिया तब शेषशांतपद रहता है—अभावसे नहीं—इसीसे आत्मत्वमात्र कहा है और जगत् फु नेसे उसी में भासता है । उस जगत्में जहां ज्ञप्तिजाती है उसका ज्ञान होता है । हे रामजी ! ए अधिष्ठान ज्ञानहै और दूसरा ज्ञप्तिज्ञानहै; अधिष्ठान ज्ञान सर्वज्ञ ईश्वरको है और ज्ञप्तिज्ञान जीवको है । एक लिंग शरीर का जिसको अभिमान है वह जीव है और सर्व लिंग शरीर का अभिमानी ईश्वर है । जहां इस जी की ज्ञप्तिपहुंचती है उसको जानताहै । जैसे एक शय्यापर दो पुरुषसोयेहों और एकको स्वप्न आवे उसमें मेघगर्ज्जते हैं और दूसरा वह मेघका शब्द नहीं सुनता क्योंकि; ज्ञप्ति उसकेमें नहीं आई परंतु मेघतो उसके स्वप्नेमें है । जैसे सिद्ध विचरते हैं और जीवको दृष्टनहीं आते क्योंकि; सकी ज्ञप्तिनहीं जाती और सब सृष्टिबसती है तिसका ज्ञान ईश्वरको है सोसृष्टिभी संकल्प मात्रहै; कुछ बनी नहीं और भ्रम से भासती है । जैसे बादलमें हाथी, घोड़े, मनुष्य आदिक विकार भासते हैं वे भ्रांति-मात्र हैं तैसेहीं आत्माके अज्ञानसे यह सृष्टि नानाप्रकारकी भासती है, हे रामजी ! यह आश्चर्य्य है कि, आत्मामें अहंकारका उत्थान होता है कि, मैंहूं और अपने को वर्णाश्रम मानताहै पर विचार करके देखिये तो अहं कुछबस्तु नहीं सिद्धहोती है और अहं अहं फुरती है । यह आश्चर्य है कि, भूत कहांसे उठा है और शुद्ध आत्म ब्रह्म यह कैसेहआहै ? अनहोते अहंकारने तुमको मोहितकियाहै इसके त्यागनेमें तो कुछ यत्न नहीं इसका त्यागकरो । हे रामजी ! यह मिथ्या संकल्प उठाहै । जब अहंकारका उत्थान होताहै तब जग त्होताहै और बअहंता मि जातीहै तब जगतकाभी अभाव होजाताहै क्योंकि; कुछ बनानहीं भ्रममात्रहै । जैसे संकल नगर और स्वप्नेकी सृष्टि

भ्रममात्रहै तैसेही यह विश्वभी भ्रममात्रहै। कुछ बनानहीं और आत्मतत्त्वरूपहै–भिन्न नहीं। जैसे पवनके दोरूप हैं चलताहै तौभी पवनहै और ठहरताहै तौभी पवन है; तैसेही विश्वभी आत्मस्वरूप है। जैसे पवन चलताहै तब भासताहै और ठहरजाता है तब नहीं भासता, तैसेही चित्त चैत्यशक्ति का चमत्कार है; जब फुरताहै तब विश्व भासता है पर तौभी चिद्घनहै और जब ठहरजाताहै तब विश्व नहीं भासता परन्तु आत्मासदा एकरसहै। जैसेजलमें तरंग और सुवर्ण में भूषण हैं सो भिन्ननहीं; तैसेही आत्मामें विश्वकुछहुआ नहीं–आत्मस्वरूपही है। ज्ञप्तिभी ब्रह्म है और ज्ञप्तिमें फुरा विश्वभी ब्रह्महै तो विधि, निषेध और हर्ष,शोक किसकाकरें? सबवही है। हेरामजी! संकल्पको स्थिरकरके देखो कि,सब तुम्हाराही स्वरूपहै। जैसे मनुष्य शयनकरताहै तो उसको स्वप्नसृष्टि भासतीहै और जब जागताहै तब देखताहै कि;सब मेराहीस्वरूपहै; तैसेही जाग्रत् विश्वभी तुम्हारा स्वरूपहै। जैसे समुद्रमें तरंग उठतेहैं सो जलरूप हैं तैसेही विश्व आत्मस्वरूपहै और जैसे चितेराकाष्ठमें कल्पनाकरताहै कि;इतनी पुतलियां निकलेंगी और जैसे मृत्तिकामें कुम्हार घटादिक कल्पताहै कि, इसमें इतने पात्र बनेंगे पर काष्ठ और मृत्तिकामें तो कुछ नहीं; ज्योंका त्यों काष्ठहै और ज्योंकी त्यों मृत्तिका है परन्तु उनके मनमें आकारकी कल्पना है; तैसेही आत्मामें संसाररूपी पुतलियां मन कल्पताहै। जब मनका संकल्प निवृत्त हो तब ज्योंका त्यों आत्मपद भासे। जैसे तरङ्गजल रूप है; जिसको जलका ज्ञानहै सो तरंगभी जलरूप जानता है और जिसको जलकाज्ञाननहीं सो भिन्नभिन्न तरंगके आकार देखताहै; तैसेही जबनिस्संकल्प होकर स्वरूप को देखतब फुरनेमेंभी आत्मसत्ता भासेगी। अहंत्वमादिक सबजगत् ब्रह्मस्वरूपहीहै तो भ्रमकैसेहो और किसकोहो।सबविश्व आत्मस्वरूपहै और आत्मा निरालंब अर्थात् चैत्य और अहंकारसे रहित केवल आकाशरूपहै। जबतुम उस में स्थितहोगे तब नानाप्रकारकी भावना मिटजावेगी क्योंकि, नानाप्रकारकी भावना जगत्में फुरतीहै। जगत्का बीज अहंताहै; जब अहंता नष्टहोतब जगत्काभी अभाव होजावेगा। हे रामजी! अहंताका फुरनाही बंधनहै और निरहंकार होनाही मोक्ष है। एकचित्त बोधहै और दूसरा ब्रह्मबोधहै– चित्तबोध जगत्है और ब्रह्मबोध मोक्ष है। चित्तबोध अहंता का नामहै, जबतक चित्तबोध फुरताहै तबतक संसारहै और जब चित्तका अभाव होताहै तब मुक्तहोताहै।इसचित्तके अभावकानाम ब्रह्मबोधहै। हेराम जी! जैसेपवन फुरताहै तैसेही ब्रह्ममें चित्तबोधहै औरजैसे पवन ठहरजाताहै तैसे चित्तकाठहरना ब्रह्मबोधहै।जैसेफुरअफुरदोनों पवनहीहै तैसेहीचित्तबोध औरब्रह्मबोध ब्रह्महीहै-भिन्नकुछनहीं।हमकोतोब्रह्महीभासताहै जो तन्मात्र और शांतरूपअपने स्वभाव में स्थितहै। जिसको अधिष्ठान का ज्ञानहोता है उसको निवृत्तभी वहीरूप

भासताहै और जिसको अधिष्ठानका ज्ञान नहींहोता उसको भिन्नभिन्न जगत् भासता है। जैसे एक बीजमें पत्र, डाल फूल और फल भासते हैं पर जिसको बीजका ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न भासते हैं। हे रामजी! हमको अधिष्ठान आत्मतत्त्वका ज्ञान है इससे सब विश्व आत्मस्वरूप भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकारका विश्व और जन्ममरण भासते हैं। हे रामजी! सब शब्द आत्मतत्त्व में फुरते हैं और सब का अधिष्ठान निराकार, निर्विकार, शुद्ध आत्मा सबका अपना आपहै; इससे सब विश्व आकाशरूपहै कुछ भिन्ननहीं। जैसे तरङ्ग जलरूपहै तैसेही विश्व आत्मस्वरूप है। चित्त जो फुरता है उसके अनुभव करनेवाली चैतन्य सत्ताहै सोईब्रह्म है और तुम्हारा स्वरूपभी वहीहै; इससे अहं त्वं आदिक जगत् सब ब्रह्मरूपहै तुम संशय त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थितहो। आगे तुमसे जो द्वैत अद्वैत कहाहै वहसब उपदेश मात्रहै। एकचित्तकी वृत्तिको स्थित करके देखो सबब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं तो निषेध किसका कीजिये? हे रामजी! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं—एक मोक्षरूपहै और दूसरी बन्धरूपहै। जो वृत्ति स्वरूपकी ओर फुरतीहै सो मोक्षरूप और जो दृश्यकी ओर फुरतीहै सो बन्धरूपहै। जो तुमको शुद्ध भासती हो वही करो। जो द्रष्टाहै सो दृश्यनहीं होता और दृश्यहै वह द्रष्टा नहींहोता पर आत्मातो अद्वैत है इससे द्रष्टा दृश्य पदार्थकोई नहीं। तुमक्यों दृश्यकी ओर फुरतेहो और अनहोती दृश्यको ग्रहण करतेहो? द्रष्टाभी तुम्हारा नाम दृश्यसे होताहै। जबदृश्यका अभाव जानो तव अवाच्यपदहै उसको वाणीसे कुछ कहानहींजाता। हे रामजी! जैसे अंगी और अंगवाले; आकाश और शून्यता; जल और द्रवता और बरफ और शीतलता में कुछभेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछभेद नहीं। कोई जगत् कहे अथवा ब्रह्म कहे एकही पर्यायहै; जगत्ही ब्रह्म है और ब्रह्मही जगत् है। इससे आत्मपदमें स्थितहोरहो; अमकरके जो आपकोकुछ और मानतेहो उसको त्यागकर ब्रह्मही की भावना करो और आपको मनुष्य कदाचित् न जानो जो आपको मनुष्य जानोगे तो यह निश्चय अधोगतिको प्राप्त करनेवाला है इससे अपने स्वरूपमें स्थितहोरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनामशताधिक चतुःपंचाशत्तमस्सर्गः १५४॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जब देशसे देशांतरको वृत्तिजातीहै तो उसके मध्यजो संवित्तत्त्वहै उसको जो अनुभव करताहै सो तुम्हारा स्वरूप है उसमें स्थितहोरहो और जैसी चेष्टाआवे तैसीकरो। देखो, सुनो, स्पर्श करो, गन्धलो, बोलो, चलो, हँसो, सबक्रियाकरो परन्तु इनके जाननेवाली जो अनुभव सत्ता है उसीमें स्थित हो रहो। यहजाग्रत्में सुषुप्तिहै। चेष्टाशुभकरो और हृदयमें फुरनेसे रहित शिलावत् हो

रहो। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप निराभास; निर्मल और शांत रूपहै। जैसे सुमेरु पर्वत स्थितहै सेही होरहो। यह दृश्य अज्ञानसे भासता है पर तमरूप है और आत्मा सदा प्रकाशरूपहै; उसप्रकाशमें अज्ञानीको तमभासता है। जैसे सूर्य्य सदा प्रकाशरूप है पर उलूकको नहीं भासताहै और अज्ञानकरके तमही भास हे तैसेही अज्ञानी को जो अविद्यारूप जगत् भासता है सो अविचारसे सिद्धहै। अविद्यासे इसकी विपर्यय दृष्टिहुई है पर इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है अर्थात् जायते, अस्ति, वर्द्धते, परिणमते, विपक्षीयते, नश्यते इनषट् विकारों से रहितहै पर उसको विकार जानताहै; आत्मा निर्विकार निराकारहै पर उसको साकार जानताहै; आत्मा आनन्दरूपहै प उसको दुःखी जानताहै; आत्मा शान्तरूप है पर उसको अशान्त जानता है; आत्मा महत्है पर उसको लघुजानता है; आत्मा पुरातनहै पर उसको उपजा मानताहै; आत्मा सर्व व्यापकहै पर उसको प्रच्छन्न मानताहै; आत्मा नित्य है पर उसको अनित्य देखता है; आत्माचैत्यसे रहित शुद्ध चिन्मात्रहै पर यह उसे चैत्यसंयुक्त देखताहै; आत्मा चैतन्यहै यह उसे जड़ देखताहै; आत्मा अहंसे रहित सदा अपने स्वभाव में स्थितहै और यह अनात्म अहंकार में अहंप्रतीत करता है और आत्मा में अनात्मभावना करता है और अनात्म में आत्मभावना करता है; आत्मा निरवयवहै उसको यहअवयवीदेखताहै; आत्मा अ यहै उसको यहसक्रिय देखताहै; आत्मा निरंशहै उसको अंशांशी भावकरके देखताहै; आत्मा निरामय है पर उसको रोगी देखताहै;आत्मा निष्कलंकहै पर उसकोकल ङ्कसहित देखताहै;आत्मा सदा प्र क्ष है उसको परोक्ष जानता है और जो परोक्षहै उसको प्रत्यक्ष जानता है। हे रामजी! यह सब विकार आत्मा अज्ञानसे देखता है र आत्माशुद्ध और सूक्ष्म से सूक्ष्म; स्थूल से स्थूल, बड़ेसे बड़ा और लघुसे लघु है औ सर्वश ब्द और अर्थ का अधिष्ठान है।हे रामजी! ब्रह्मरूपी एकडब्बा है उसमें जगत्रूपी रत्न है। पर्वत और वनसहि भी जगत् दृष्टआता है परन्तु आत्माके निकट रुई के रोम सा लघुहै। आत्मरूपी वनहै उसमें संसार रूपी मंजरी उपजीहै! पांचों तत्त्व–पृथ्वी,अप,तेज,वायु औ आकाशउसके पत्रहैं उनसे शोभती है सो अहंताके उदयहुये उदय होती है और हंताके नाशहुये नाशहोतीहै। आत्म रूपी समुद्रहै उसमें जगत्रूपी तरंगहैंसो उठते भी हैं और लीन भी होजाते हैं। आत्मा काशमें संसार भ्रम मात्र है और आकाशवृक्ष की नाईं है और आत्माके प्रमाद से भासता है। हे रामजी! मायारूपी चन्द्रमा की किरणें जगत् है और नेतिशक्ति नृत्य करने वाली है सो ती नों अविचार सिद्ध हैं और बिचार कियेसे शांतहोजाते हैं। जैसे दीपक हाथ में लेकर अन्धकार देखिये तो दृष्ट नहीं आता तैसेही बिचार करके देखिये तो जगत् का अभाव होजाताहै और केवल

शुद्धआत्माही प्रत्यक्ष भासता है । हे रामजी ! जगत् कुछ बनानहीं–जैसे किसीनेबरफ कही और किसीने शीतलता कही तो उसमें भेदनहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में कुछभेद नहीं और जो भेद भासता है सो भ्रममात्र है । जैसे तागे और पटमें भेद कुछ नहीं तैसेही आत्मा और जगत्है। हे रामजी ! आत्मरूपी रंग में जगत्रूपी चित्र पुतलियां हैं और आत्मरूपी समुद्रमें जगत्रूपी तरंगहैं सो जलरूप हैं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं–आत्माहीहै आत्मासे भिन्न कुछनहींबना । जिससे सर्व पदार्थ सिद्ध होतेहैं; जिससे सर्वक्रिया सिद्ध होतीहैं और जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ़ है उसको प्रौढ़जाननाही मूर्खता है । हे रामजी ! यह विश्व तुम्हाराही स्वरूप है; तुम जागकर देखो तुमहीं खड़ेहो और स्वच्छ आकाश, सूक्ष्म, प्रत्यक्ष ज्योति अपने आपमें स्थित है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनाम
शताधिकपंचपंचाशत्तमस्सर्गः १५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे जलमें लहर और तरंग उठतेहैं सो जलरूप हैं; तैसेही आत्मामें रूप, अवलोक और मनस्कार फुरतेहैं सोसब आत्मरूपहैं–भिन्ननहीं। हे रामजी ! यहशुद्ध परमात्माका चमत्कारहै और आत्मादृश्यसे रहित, शुद्ध, चिन्मात्र, निर्मल और अद्वैतहै उसमेंजगत् कुछनहींबना । हमको तो सदावही भासताहै–जगत् कुछनहीं भासता । जैसे कोई आकाशमें नगर कल्पताहै और उसमें सबरचनादेखता है सो उसके हृदय में दृढ़होजाती है और जो संकल्पकी सृष्टिको मिथ्याजानताहै उस-को शून्याकाशही भासताहै! तैसेही यहविश्वमूर्खके हृदयमें दृढ़होताहै और ज्ञानवान् को आत्मरूपही भासताहै । जैसे मट्टीके खिलौने की सेना होतीहै तो जिसको मट्टीका ज्ञानहै वह उसमें राग द्वेष नहींकरता और बालक मट्टीके ज्ञानसे रहितहै इससे वह उसमें रागद्वेषकरताहै; तैसेही ज्ञानवान् इसजगत्में रागद्वेष नहींकरते और अज्ञानी रागद्वेष करतेहैं । जैसे खिलौनेमें सारभूत मृत्तिका होतीहै तैसेही इसजगत्में सारभूत चैतन्य आत्मा है । जो कुछपदार्थ भासते हैं वे आत्माके विवर्त्त हैं । और मिथ्याही भ्रमसे सिद्ध हुयेहैं । जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र हो उसमें सुखके निमित्त इच्छा करना ही मूर्खताहै । हे रामजी ! हमकोतो इच्छा कुछनहीं क्योंकि, हमको जगत् मृगतृष्णा के जलवत् भासता है किसकी इच्छा करें । जिसमें सत्यप्रतीति होतीहै उसमें इच्छा भी होती है और जो सत्यही न भासे तो इच्छा कैसे हो ? हे रामजी ! इच्छाही बन्धन है और इच्छासे रहित होनेका नाम मुक्तिहै। इससे ज्ञानवान् को इच्छाकुछनहीं रहती उसकी अनिच्छितही चेष्टाहोती है । जैसे सूखेबांस के भीतरबाहर शून्य होताहै और संवेदन उसको कुछनहीं फुरती तैसेही ज्ञानवान् के अन्तःकरण और बाह्यकरण में

भी शांति होती है; अन्तःकरण में संकल्पकोई नहीं उठता और बाहरभी कोई उपाधि नहीं निःसंकल्प निरुपाधि उसकी चेष्टा उसकी होतीहै। हे रामजी! जिसपुरुषके हृदय से संसारका रससूखगया है वह संसार समुद्र से पारहुआ है और जिसका रसनहीं सूखा उसको रागद्वेष फुरते हैं उसे संसार बन्धन में जानो। हे रामजी! मैं तुमसे ऐसी समाधि कहताहूं कि, जो सुखसे प्राप्त हो और जिससेमुक्तहो। सर्व इच्छा से रहित होनाही परमसमाधि है। जिस पुरुष को इच्छा फुरती है उसको उपदेशभी नहीं लगता। जैसे आरसीके ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसेही उसके हृदय में उपदेश नहीं ठहरता। इच्छाही जीव को दीनकरती है और इच्छासे रहित हुआ शांतरूप होताहै और फिर शांतिके निमित्त कर्त्तव्य कुछनहीं रहता। हे रामजी! हमतो निरीच्छित हैं इससे हमको भीतरबाहर शांति है और हमको कर्त्तव्य करने योग्य कुछनहीं—यह सब प्रारब्ध के अनुसार रागद्वेष से रहित चेष्टाहोती है और बोलते हैं परन्तु बांसुरी की नाईं। जैसे बांसुरी अहंकार से रहित बोलती है तैसेही ज्ञानवान् अहंकार से रहित हैं और स्वादको ग्रहण करतेहैं। जैसे करछी सर्व व्यंजनोंमें डालीजाती है और उसीके द्वारा सब व्यंजन निकलते हैं परन्तु उसको कुछरागद्वेष नहींफुरता; तैसेही ज्ञानवान् स्वादलेता है। जैसे पवन भली बुरी गन्ध को लेताहै परन्तु रागद्वेषसे रहित है तैसेही ज्ञानवान् रागद्वेषकी संवेदन से रहित गन्धको लेताहै और इसी प्रकार सर्व इन्द्रियों की चेष्टाकरता है परन्तु इच्छा से रहित होताहै इसीसे परमसुखरूपहै। जिस की चेष्टा इच्छासहित है वह परमदुःखीहै। हे रामजी! जिस पुरुष को भोगरस नहीं देते वही सुखी है और जिसको रसदेतेहैं और जिसकी रागसे तृष्णाबढ़ती जाती है उसको ऐसे जानो जैसे किसी के मस्तक पर अग्निलगे और उसपर तृणबुझाने के निमित्त डाले तो वह बुझती नहीं बल्कि बढ़ती जाती है; तैसेही विषयों की इच्छा भोगने से तृप्तिनहीं होगी। इच्छाही बन्धनहै और इच्छाकी निवृत्तिका नाम मोक्षहै। हे रामजी! संसार रूपी विषका वृक्ष है और उसका बीज इच्छाहै जिसकी इच्छा बढ़ती जाती है उसका संसार बढ़ता जाता है और उससे वह बारम्बार जन्मपाता है। हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्माके लोक में भी नहीं जैसा सुख इच्छा की निवृत्ति में है और ऐसा दुःख नरक में भी नहीं जैसा दुःख इच्छा के उपजाने में है। इच्छाके नाशका नाम मोक्ष है और इच्छा के उपजाने का नाम बन्धन है। जिस पुरुषको इच्छा उत्पन्न होती है वह दुःखपाता है और संसाररूपी गढ़े और खत्ते में पड़ता है इच्छा रूपी विषकी बेल है उसको समतारूपी अग्नि से जलावो। सम्यक् दर्शनसे जलाये विना बड़ादुःख देगी और बढ़तीजावेगी। हे रामजी! जिसपुरुषने इच्छाके दूरकरने का उपाय नहींकिया उसने अन्धेकूपमें प्रवेशकियाहै। शास्त्रका श्रवण और तप,दान,

यज्ञ इसीनिमित्त है कि, किसीप्रकारइच्छा निवृत्तहो जो एकहीवार निवृत्त न करसको तो शनैःशनैः निवृत्तकरो । हेरामजी ! यह विषकीवेल वढ़ीहुई दुःखदेतीहै । जो पुरुष शास्त्रोंको पढ़ता और इच्छाको वढ़ाताहै वह मानो दीपक हाथमें लेकर कूपमें गिरता है । इच्छारूपी कँटिआरी का वृक्ष है जिसमें सर्वदा कंटक लगेरहते हैं—उसमें कदाचित् सुखनहीं । जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयनकरके सुखीहुआचाहे तो नहींहोता; तैसेही संसारसे कोईसुख पायाचाहे तो कदाचित् न होगा । जिससे इच्छा निवृत्ति हो वही उपाय किया चाहिये । इच्छाके निवृत्त होनेमें सुखहै और इच्छा के उत्पन्न होने में वड़ादुःखहै । हे रामजी ! जो अनिच्छित पदमें स्थित हुआहै उसको यदि एकक्षण भी इच्छाउपजती है तो वह रुदनकरता है । जैसे चोरसे लूटा रुदन करता है तैसेही वह रुदन और पश्चात्ताप करता है और उसके नाशकरनेका उपाय करताहै । हेरामजी ! इच्छारूपी क्षेत्रमें रागद्वेषरूपी विषकीवेलहै । जो पुरुष उसके दूरकरनेका उपाय नहीं करता वह मनुष्योंमें पशु है यह इच्छारूपी विषकावृक्ष वढ़ाहुआ नाशका कारण है । इससे तुम इसका नाशकरो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइच्छानिषेधयोगोपदेशोनामशताधिकषट्पंचाशत्तमस्सर्गः १५६ ॥

वशिष्ठजी वोले, हेरामजी ! इच्छारूपी विषके नाशकरनेका उपाय तुमसे आगेभी कहाहै और अव फिर स्पष्टकरके कहताहूं । इच्छा त्यागकरनेके योग्य संसारहै; यदि आत्मसत्तासे भिन्न कीजिये तो मिथ्याहै उसमें क्या इच्छा उसकी करनी है और जो आत्माकी ओर देखिये तो सर्व आत्माही है क्या इच्छाकरनी है; इच्छा दूसरे में होतीहै पर दूसरा तो कुछहैही नहीं तो इच्छा किसकी कीजिये ? हे रामजी ! द्रष्टा और दृश्यभी मिथ्याहै; दृष्ट । इन्द्रियां और दृश्य विषय; ग्राहक इन्द्रियां और ग्राह्यविषय अविचार सिद्धहै और भ्रमकरके भासतेहैं आत्मामें कोई नहीं । जैसे स्वप्नेमें भ्रमसे रूपभासते हैं तैसेही यहग्राह्य—ग्राहकभ्रमसे भासतेहैं और सुख दुःखभी इनहींसे होताहै आत्मामें कोई नहीं । हे रामजी ! द्रष्टा,दर्शन और दृश्यतीनों ब्रह्ममें कल्पित हैं और वास्तवमें ब्रह्मही है; चिरकाल से हम खोज रहे हैं परन्तु द्वैत हमको कुछदृष्टि नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ताही ज्योंकीत्यों भासती है जो निराभास,फुरनेसे रहित और ज्ञानरूप है; आकाशसेभी सूक्ष्महै और सर्वजगत्‌भी वही है—सो मैं हूं । हे रामजी ! जैसे जलमें तरंग;आकाशमें शून्यता; पवनमें स्पन्द और अग्निमें उष्णताहै सो सवही अनन्यरूपहै तैसेही आत्मामें जगत् अनन्यरूपहै । आत्माही विश्वआकार होकर भासताहै और कुछ नहींहुआ । हे रामजी ! जो वहीहै तो इच्छा किसकी करतेहो । यह जो मैं तुमसे मोक्ष उपायकहताहूं तो तुम आपको क्यों वन्धनकरतेहो ? वड़ावन्धन

इच्छाही है जिसपुरुषकी इच्छा बढ़ती जातीहै वह जगत्रूपी वनका मृगहै, उसमृग और पशुका संग कदाचित् न करना; मूर्खका संग बुद्धिको विपर्ययकर डालताहै इस से विपर्ययबुद्धिको त्यागकर आत्मपदमें स्थितहोरहो। विश्वभी सब तुम्हारा अनुभवरूपहै और इसका सुखदुःख विद्यमानभी दिखताहै परन्तु आत्मा में भ्रममात्र भासताहै—कुछहै नहीं। विश्वभी आनन्दरूप शिवही है; तुम विचारकरके देखो दूसरा तो कुछ नहींहै जैसे मृत्तिकामें नानाप्रकारकी सेना,हाथी,घोड़ा आदिक होती हैं परन्तु मृत्तिकासे भिन्नकुछ नहीं तैसेही सब विश्व आत्मरूपहै,भिन्न नहीं और उसमें कारण कार्यभाव देखनाभी मूर्खताहै।क्योंकि जो दूसरी वस्तुहीनहीं तो कारणकार्य किसकाहो और इच्छा किसकी करतेहो? जिससंसारकी इच्छा करतेहो वहहैही नहीं। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जलाभास होताहै और सीपीमें रूपा भासताहै सो दूसरी वस्तु कुछ नहीं अधिष्ठान किरण और सीपीहै, तैसेही अधिष्ठान रूप परमार्थ सत्ताही है। न सुखहै, न दुःखहै; यह जगत् केवल शिवरूपहै। उसशिव चिन्मात्रसे मृत्तिकाकी सेनावत् अन्यकुछनहीं तो इच्छाकैसे उदयहो? रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! जो सर्व ब्रह्मही है तो इच्छा अनिच्छाभी भिन्ननहीं? इच्छा उदयहो चाहे न हो। फिर आप कैसे कहतेहैं कि;इच्छाका त्यागकरो? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! जिसपुरुषकी ज्ञप्तिजागीहै अर्थात् जो ज्ञानरूप आत्मामें जागाहै उसको सर्वब्रह्मही है और इच्छा अनिच्छा दोनोंतुल्य हैं। इच्छाभी ब्रह्महै और अनिच्छा भी ब्रह्म है। हे रामजी! ज्यों ज्यों ज्ञानसंवित्होतीहै त्यों त्यों वासना क्षयहोतीहै जैसे सूर्यकेउदयहुये रात्रिनष्ट होजातीहै तैसेही ज्ञानके उपजेसे वासना नहीं रहती। हे रामजी! ज्ञानवान्को ग्रहण और त्यागका कर्त्तव्य नहीं और उसे इच्छा अनिच्छा तुल्यहै। यद्यपि ऐसेही है परन्तु स्वाभाविकही उसेवासना नहीं रहती। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार नहीं रहता तैसेही आत्माके साक्षात्कारहुये द्वैतवासना नहीं रहती। ज्यों ज्यों ज्ञानकला जागती है त्यों त्यों द्वैत नाशहोता जाताहै और द्वैतके निवृत्तहोनेसे वासनाभी निवृत्त होजातीहै। हेरामजी! ज्यों ज्यों स्वरूपानन्द उसको प्राप्तहोताहै त्यों त्यों संसार विरसहोता जाताहै और जब संसार विरस होगया तब वह वासना किसकी करे? हे रामजी! अमृतमें इसको विषकी भावना हुईथी इससे अमृत विषभासताथा परजब विषकी भावनाका त्याग हुआ तब अमृत तो आगेहीथा सोई होजाताहै; तैसेही जो कुछ तुमको भासताहै सो सबब्रह्मरूपी अमृतही है। जब उसब्रह्मरूपी अमृतमें अज्ञानसे जगत्रूपी विषकी भावना होतीहै तब दुःख पाताहै और जब संसारकीभावना त्यागी तब आनन्दरूपही है और उसको करना, न करना दोनों तुल्यहैं। यद्यपि ज्ञानवान्में इच्छादृष्टिआतीहै तोभी उसके निश्चयमें नहीं उसकी इच्छाभी अनिच्छाहीहै क्यों कि; उसकेहृदय

म संसारकी भावना नहीं तो इच्छा किसकी रहे ? हे रामजी ! यह संसार है नहीं; हम को तो आकाशरूप भासताहै। जैसे औरके मनोराजके संकल्प में आने जाने का खेद नहीं होता तैसेही यह जगत् हमको औरकी चिंतनावत् है। जैसे किसी पुरुषने मनोराजसे मार्गमें कोईस्थान रचकर उसमें किवाड़ लगायेहों और नानाप्रकारका प्रपंच रचाहो तो दूसरे पुरुषको उसमें जानेकेलिये कोईनहीं रोकता और न कोई किवाड़हैं, न कोई पदार्थ है; उसको शून्य मार्गका निश्चय होताहै; तैसेही हमको तो सब प्रपंच शून्यही भासता है। अज्ञानीके हृदयमें हमारी चेष्टाहै पर हमको ब्रह्मसे भिन्नकुछनहीं भासता। हे रामजी ! जिसको जगत्ही न भासे उसको इच्छा किसकी हो ? जिसके हृदयमें संसारकी सत्यता है उसको इच्छाभी फुरती है और रागद्वेषभी उठता है। जिसको रागद्वेष उठताहै तो जानिये कि, संसारसत्ता उसके हृदयमें स्थित है और जिसको नानापदार्थ सहितसंसार सत्यभासता है सो मूर्ख है और वह अज्ञान निद्रा में सोया हुआ है। जैसे निद्रादोष से कोई स्वप्ने में अपना मरण देखता है तैसेही जिसको यहजगत् सत्यभासता है सो निद्रामें सोयाहै। हे रामजी ! मैंने बहुत प्रकारके स्थान देखे हैं जिनमें रोग और औषधभी नानाप्रकारके हैं परन्तु इच्छारूपी छुरीके घावकी औषध नहीं दृष्टिआई। वह जप, तप, पाठ, यज्ञ, दान और तीर्थसे निवृत्त नहीं होती और जितने संसार के पदार्थ हैं उनसेभी इच्छारूपी रोगनष्ट नहींहोता; जब आत्मरूपी औषध कीजावे तबहीं नाशहोताहै अन्यथा किसीप्रकार यह रोगनहीं जाता। हे रामजी ! जिस पुरुष को ज्ञानप्राप्त होताहै उसकी इच्छा स्वाभाविकही निवृत्त होजातीहै और आत्मज्ञानबिना अनेकयत्नसे भी न जावेगी। जैसे स्वप्नेकी वासना जागेबिना नहींजाती और अनेक उपायकरिये तौभी दूरनहींहोती। हेरामजी ! ज्योंज्यों वासना क्षीणहोती है त्योंत्यों सुखकी प्राप्तिहोतीहै और ज्योंज्यों वासनाकी अधिकता है त्योंत्यों दुःखअधिकहै। यह आश्चर्य्यहै कि, मिथ्या संसार सत्यहो भासताहै। जैसे बालकको वृक्षमें वैताल हो भासताहै और उससे वह भयपाताहै परवह हैनहीं;तैसेही मूर्खतासे आत्मामें संसार कल्पनाहै उससे जीव दुःखी होताहै। हेरामजी ! स्थावर-जंगम जोकुछ जगत् भासताहै सो सब ब्रह्मरूपहै, ब्रह्मसे भिन्ननहीं पर भ्रमसे भिन्न भिन्न हो भासताहै। जैसे आकाशमें शून्यता जलमें द्रवता और सत्यतामें सत्यता ही है; तैसेही आत्मामें जगतहै सो न सत्यहै और नअसत्यहै—आत्मा अनिर्वाच्यहै। हेरामजी ! दूसरा कुछ बनानहीं तो क्याकहिये ? केवलब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै सोसबका अपनाआप वास्तवरूपहै। जब उसका साक्षात्कार होताहै तबअहंरूप भ्रममिट जाताहै। जैसे सूर्य्यकेउदयहुये अन्धकारका अभाव होजाताहै तैसेही आत्माकेसाक्षात्कारहुये अनात्मअभिमानरूपी अन्धकारका अभाव होजाता है और परमनिर्वाण

भासताहै। उसको एक और दोभी नहीं कहसक्ते; वह केवल शान्तरूप परम शिवहै। जैसे आकाशमें नीलता भासतीहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै। हेरामजी! जिन्हों ने ऐसे निश्चय कियाहै उनको इच्छा अनिच्छा दोनोंतुल्यहैं तौभी मेरेनिश्चयमें यहहै कि; इच्छाके त्याग में सुख है। जिसकी इच्छा दिन दिन घटतीजावे और आत्माकी ओर आवे उसको ज्ञानवान् मोक्षभागी कहतेहैं क्योंकि; संसार भ्रमसे सिद्ध है और अपनीही कल्पना जगत्रूपहोकरभासतीहै; विचारकियेसे कुछनहींनिकलता। संसारके उदय होनेसे आत्माको कुछ आनन्दनहीं और नाश होनेसे खेद नहींहोता क्योंकि; कुछभिन्न नहीं। जैसे समुद्रमें तरंग उपजते और बिनशते हैं तो जलको हर्ष और शोक कुछनहींहोता क्योंकि; वे जलसे भिन्न नहींहैं; तैसेही संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है तो इच्छाक्या और अनिच्छाक्या? हेरामजी! आदिजो परमात्मासेचित्तशक्ति फुरीहै उसमें जब अहंहुआ तबस्वरूपका प्रमादहुआ और यहीचित्तशक्ति मनरूपहुई; फिर आगे देह इन्द्रियां हुईं और अज्ञानसे मिथ्याभ्रम उदयहुआ इसीप्रकार अपनेसाथ मिथ्याशरीर देखताहै। जैसे जल दृढ़जड़तासे बरफरूप होजाताहै तैसेही चित्तसंवित् प्रमादकी दृढ़तासे मन, इन्द्रियां, देहरूप होताहै। जैसे कोई स्वप्नेमें अपना मरना देखताहै तैसेही अपनेसाथ जीव शरीर को देखताहै। जब चित्तशक्ति नष्टहोतीहै तब शरीर कहां और मन कहां—यह कोई नहीं भासता? जैसे स्वप्नेमें भ्रमसे शरीरादिक भासते हैं तैसेही इस जाग्रत्को भी जानो कि, मिथ्या भ्रमसे उदयहुये हैं। जबअपनेस्वरूपकी ओरआवे तब सबहीभ्रम मिटजाते हैं। हे रामजी! जैसे भ्रमसे आकाश में नीलता भासतीहै तैसेही विश्वभी अनहोताही भ्रमसे भासता है; आत्मामें कुछआरम्भ और परिणाम करकेनहींबना—वहीस्वरूपहै। जैसे आकाश और शून्यता और पवनऔर स्पन्दमें भेदनहीं; तैसेहीआत्मा और जगत्में भेदनहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभवरूप है—कुछ भिन्न नहीं; तैसेही जगत् औरआत्मा अनुभवसे कुछभिन्ननहीं। हे राम[illegible]! चेतन आकाशपरमशांतरूपहै; उसमें देह और इन्द्रियां भ्रमसे भासती हैं और क्रिया, काल, पदार्थ सबभ्रममात्रहैं जब आत्मस्वरूपमें जागकर देखोगे तब द्वैतभ्रम निवृत्तहो जावेगा और कैवल्य, अद्वैत. आत्माही भासेगा—दृश्यका अभावहो[illegible]वेगा। यहपृथ्वीआदिक तत्त्व जो भासतेहैं सो अविद्यमान हैं और इनकी प्रतिभा मिथ्या उदयहुईहै। जैसे स्वप्नेमें अनहोते पृथ्वीआदिक तत्त्वभासतेहैं परन्तु हैं नहीं तैसेही आत्मामें यह जगत् भासताहै-हे रामजी! पृथ्वी, दीवार, कीट, पर्वत आदिप्रपंच आकाशरूप हैं तो ग्रहणत्याग किस काहो? आकाशरूपी दीवार पर संकल्पने चित्ररचे हैं और रंग आत्म चैतन्यता है इससे विश्वसंकल्पमात्रहै और जैसाजैसा निश्चयहोताहै तैसीहीतैसी सृष्टिभासतीहै। यदि कुछ बनाहोता तो और का और न भासता; इससे कछबना नहीं जैसा संकल्प

होताहै तैसाही आगे रूप होभासता है । हे रामजी ! सिद्धोंके पास एकचूर्ण होताहै उससे वे जो चाहते हैं सो करतेहैं पर्वतको आकाश और आकाशको पर्वतकरते हैं—वह चूर्ण मैं तुमसे कहताहूं । जब चित्तरूपी सिद्धसंकल्परूपी चूर्णसे फुरता है तब आत्म-रूपी आकाशमें पर्वत होभासतेहैं और जब चित्तरूपी सिद्धका संकल्प उलटताहै तब पर्वतभी आकाशरूपहो भासताहै । जैसे स्वप्नेमें संकल्पफुरता है तब अनुभवमें पर्व-तआदिक पदार्थ भासिआते हैं और जब संकल्पसे जागताहै तब स्वप्नेके पर्वत आकाशरूप होजातेहैं तो आकाशही पर्वतरूप हुआ और पर्वतही आकाशरूप होताहै; तैसेही हे रामजी ! यह सृष्टि कुछ बनी नहीं संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प होता है तैसा भासताहै । जब विश्वके अत्यन्त अभावका संकल्प किया तब तैसेही भासता है । जैसे विश्वका अभ्यास कियाहै और विश्व भासाहै तैसेही आत्माका अभ्यास की-जिये तो क्यों न भासे ? वह तो अपना आप है, जब आत्माका अभ्यास कीजियेगा तव आत्माही भासेगा विश्वका अभाव होजावेगा । अनेक सृष्टि अपने अपने संकल्प से आकाशमें भासतीहैं; जैसा किसीका संकल्प होताहै तैसीही सृष्टि उसको भासती है । जैसे और कल्पवृक्षमें दृढ़ संकल्प होता है तो यथाइच्छित पदार्थ निकल आते हैं पर वे कुछ बने नहीं और चिंतामणि भी परिणामको प्राप्तहुई ज्योंकी त्यों पड़ी है केवल संकल्पकी दृढ़तासे भासि आते हैं; तैसेही यह प्रपंच भी आकाशरूपहै । जैसे आकाशमें शून्यताहै तैसेही आत्मामें जगत् है । हे रामजी ! सिद्धके जो वचन फुरते हैं सोही संकल्पकी तीव्रता होतीहै; जो चित्तशुद्ध होताहै तो दूसरी सृष्टिको भी जानता । जो पुरुष वचन सिद्धि होनेके निमित्त वासनाको सूक्ष्म करता है अर्थात् रोंकताहै तो उससे वचन सिद्धि पाता है और जैसा संकल्प करता है तैसाही सिद्ध होता है । हे रामजी ! जितना यह दृश्यकी ओरसे उपरांत होकर अंतर्मुख होता है उतनीही वचन सिद्धिहोती जातीहैं—चाहे वरदे, चाहे शापदे वह सिद्ध होताहै । हेरामजी ! एक प्रमाण ज्ञानहै कि, यह पदार्थ इस प्रकारहै । उसका जो नामरूपहै वह सब आकाशरूप भ्रम-मात्रहै—आत्मामें और कुछ नहीं । आत्मरूपी समुद्रमें जगत्‌रूपी तरंग उठते हैं सो आत्मरूपही है; जिनको ऐसा ज्ञान हुआहै उनको इच्छा और अनिच्छा का ज्ञान नहीं रहता और सव आकाशरूप भासताहै । हे रामजी ! आत्मरूपी फूलमें जगत्‌रूपी गन्धहै । जैसे पवन और स्पन्दमें भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्‌में भेद नहीं । पत्थर पर लकीर खैंचिये तो वह पत्थरसे भिन्ननहीं होती तैसेही ब्रह्मसे जगत् भिन्न नहीं । हे रामजी ! देश, काल, पृथ्वी आदिक तत्त्व औरमैं, मेरा सब आत्मरूपहै और अविनाशीहै । जिन को ऐसे निश्चय हुआहै उनको राग द्वेष नहीं रहता, उन्हें सब आत्मरूपही भासताहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदुपदेशोनामशताधिकसप्तपंचाशस्सर्गः १५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्वमें जो संवेदन फुरी है उससे आगे जगत् भासित हुआहै। जैसे किसीके नेत्रमें एक अंजन डालकर आकाशमें पर्वत उड़ते दिखाते हैं तैसेही अनहोता जगत् फुरनेसे भासताहै। हेरामजी! ब्रह्म स्वर्ग और चित्त स्वर्गमें कुछ भेदनहीं परमार्थसे एकहीहै और दृष्टि,सृष्टि और वस्तुपर्यायहै और नाना तत्त्व भी इसकी भावनासे भासते हैं आत्मामें दूसरा कुछ नहीं बना। चित्त और चैत्त्य आत्मासे भिन्न नहीं; चित्तही चैत्त्य होकर भासताहै और ज्ञानसे इनकी एकता होती है—इसीसे दृश्य भी द्रष्टारूपहै। जैसे स्वप्नेमें शुद्ध संवित् ही दृश्यरूप होकर स्थित होती है और जागेसे एक होजातीहै। एकता भी तब होतीहै जब वही रूपहो,इससे तुम अब भी वही जानो। दृश्य,दर्शन और द्रष्टा त्रिपुटी भी सब वही रूपहै। हे रामजी! जो सजाति है उसकी एकता होती है, विजाति की एकता नहीं होती। जैसे जलमें जलकी एकता होतीहै, तैसेही बोधसे सबकी एकता होतीहै-इससे दृश्यभी वही रूपहै कि,एकता होजातीहै। जो दृश्य कुछ आत्मासे भिन्न होती तो एकता न होती। हे रामजी! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं। जिससे ये हुए हैं; जो यह सर्व है और जो सर्वव्यापी सर्वगत सबको धार रहाहै और सब वही है ऐसे सर्वात्माको मेरा नमस्कारहै। जो कुछ भासताहै सर्व वही है। जैसे जलमें गलानेकी शक्तिहै और काष्ठमें नहीं तैसेही ब्रह्ममें भावना स्वभावहै और में नहीं। ब्रह्मभावनासे सर्व ब्रह्मही भासताहै। हे रामजी! जड़ पदार्थ भी ब्रह्मही हैं क्योंकि; जो भासताहै सो ब्रह्मही है जड़हो तो भासे नहीं। जड़भी चेतनता शुद्ध संवित्में है; उसमें शब्द चेतनहै भिन्न कुछ नहीं भासता। जैसे शुद्ध संवित्में स्वप्ना फुरताहै और उसमें जड़ और चेतन भी भासते हैं परन्तु जो जड़ भासते वेभी उस संवित्में चेतनहैं क्योंकि चेतन हैं तब फुरते हैं। जिनको शुद्ध संवित् में अहंप्रयत्न नहीं वह जान नहीं सक्ता अज्ञानी है परन्तु सब ब्रह्महै। जैसे समुद्रमें जल होताहै सो ऊंचे आवे तौभी जलहै और नीचेको जावे तौभी जल है तैसेही जो कुछ दिखता और भासताहै सो सब ब्रह्मस्वरूपहै भिन्न नहीं और इन्द्रियोंका ग्रामभी आत्मा है। पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरेहैं उनमें प्रथम आकाश फुराहै, फिर वायु फुरी है; फिर अग्नि,फिर जल और फिर पृथ्वी फुरीहै सो सब अनिच्छित चमत्कारकी नाईं फुरेहैं-इस से सब आत्मरूपहैं। जैसे वट बीजमें वृक्षहोताहै तैसेही आत्मरूपी बीजमें जगत् होता है और नानाप्रकार भासते हैं। हेरामजी! जैसे एक बीजही नानाप्रकारके रूपधारता है परन्तु बीजसे भिन्न कुछ नहीं तैसेही आत्मसत्ता नानाप्रकारहो भासतीहै परन्तु बीजकी नाईं भी प्रमाण नहीं। विश्व आत्मा का चमत्कार है इससे वही रूप है। जैसे सुवर्ण में अनेक भूषण होतेहैं सो सुवर्णसे भिन्न नहीं तैसेही विश्व आत्मस्वरूपहै द्वैत नहीं और जो आत्मासे इतरहो तो भासे नहीं; इससे जो भासताहै सो चेतनरूपहै और दृश्य और

द्रष्टा एकही रूपहै;द्रष्टाही दृश्यकी नाईं होभासताहै। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष तुम्हारे निकट सोयाहो और उसको स्वप्ना आवे कि, मेघ गर्ज्जते हैं और नानाप्रकारकी चेष्टा होतीहै तो वह सब उसीको भासताहै और तुमको नहीं भासता; तैसेही यहदृश्य तुम्हारी भावनामें स्थितहै और हमको आकाशरूप है। हे रामजी! चेतन आकाश शांतरूप है; उसमें सृष्टि कुछ बनीनहीं और जो कुछ उपजा नहीं तो नष्ट भी नहीं होता केवल शांतरूपहै पर भ्रमसे जगत् भासताहै। जैसे कोई बालक मनोराजसे आकाशमें पुतलियां रचे तो आकाशमें कुछ नहीं बना परन्तु उसके संकल्पमें है; तैसेही यह विश्व मनरूपी बालकने रचा है उसके रचेहुये में ज्ञानवान्को शून्यता भासती है। हे रामजी! संकल्पमात्रही सृष्टिहुईहै;जब इसका संकल्प नष्ट होताहै तब शांतपद शेष रहताहै। निरहकार सत्तामात्र असत्की नाईं स्थित है फिर उस चिन्मात्र अद्वैत में अहन्ता करके जगत् भासि आताहै। जब अहन्ता फुरतीहै तब जगत् भासताहै और जब स्वरूप का साक्षात्कार होताहै तब अहन्तारूप भ्रम मिटजाताहै। जब अहन्तारूप भ्रम मिटजाताहै तब जगत् और इच्छाकाभी अभाव होजाताहै, इससे ज्ञानीको इच्छा और वासना कोई नहीं रहती। जब प्रच्छन्नरूप अहंता नष्टहोती है तब उसपदको प्राप्त होताहै जिस पदमें अणिमा आदिक सिद्धियांभीसूखे तृणकी नाईं भासती हैं और वह ऐसा आनन्दरूपहै जिसमें ब्रह्मादिकका सुखभी तृणसमान भासताहै। हे रामजी! जिसको ऐसा ब्रह्मानन्दपद प्राप्तहुआ है उसको फिर किसीकी इच्छा नहीं रहती और उसको मारनेवाले विषयादिक पदार्थ मृतकनहीं करते और जिलानेवाले पदार्थ अमृतआदिक नहीं जिलाते केवल निर्वाणपदमें उसकी स्थिति है। हे रामजी! जिसपुरुषको संपूर्ण संसारसे वैराग्य हुआहै उसको संसारके पदार्थ सुखदायक नहींभासते, मिथ्याभासते हैं और वह संसारसमुद्रसे पारहुआ है। जिनको संसारकी वासना और अहंता नष्ट हुईहै उनकी मूर्त्ति देखनेमात्र भासती है और वे निर्वासी ज्ञानवान् शांतरूप हैं। हे रामजी! इच्छाही बन्धन है। जब इच्छाका अभावहो तब आनन्दहो। इच्छाभी तब फुरती है जब संसारको सत्यजानताहै और संसारकी सत्यता अहंतासे भासती है। जब अहंतारूपी बीज नष्टहो तब निर्वाणपदकी प्राप्तिहो। हे रामजी! संसार कुछ बनानहीं-भ्रमसे सिद्धहुआहै। सर्वही ब्रह्महै; उसपरमात्मामें जो प्रच्छन्न अहंताफुरी वही उपाधि है। हे रामजी! बुद्धिसे आदिलेकर जितनी दृश्यहै यह जिसको अपनेमें स्वादनहीं देती और जो आकाशकी नाईं रहताहै उसको संत मुक्तरूप कहते हैं। हे रामजी! यह अहं बिचारसे सत्य भासती है और बिचार कियेसे असत्य होजाती है। अनहोती अहन्ताने दुःखदियाहै; इससे तुम निरहंकार होकर चेष्टाकरो। जैसेयंत्रीकी पुतली अभिमानसे रहित चेष्टाकरती है तैसेही तुम निरहंकार होकर चेष्टाकरो और

अपनेस्वरूप में स्थितहोरहो तब व्यवहार और अव्यवहार तुमको तुल्य होजावेगा। जैसे पवनकोस्पन्द निस्स्पन्ददोनों तुल्यहोते हैं तैसेही तुमको होजावेगा और अहंकार से रहित तेरी चेष्टाहोगी। अहन्ताही दुःखहै; जब अहन्ताका नाशहोगा तब तुमशांत, निर्मल और अनामय पदको प्राप्तहोगे जो सर्वपदार्थका अधिष्ठान है और सबका अपना आपहै; उसमें न कोई सुख है; न दुःख है; न कोई इन्द्रियोंका विषय है परम शांतरूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमनिर्वाणयोगोपदेशो नामशताधिकअष्टपंचाशत्तमस्सर्गः १५८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह निरावरण है अर्थात् दोनों आवरणों से रहितहै। एक असत्यत्वापादक आवरणहै और दूसरा अभावनापादक आवरण है। जो आत्मब्रह्मकी सत्यता हृदयमें न भासे सो असत्यत्वापादक है और जो आत्माकी सत्यता हृदय में भासे परंतु दृढ़ प्रत्यक्ष न भासे सो अभावनापादक आवरण है। असत्यत्वापादक आवरण अज्ञानी को भासताहै और अभावनापादक आवरण जिज्ञासीको होताहै पर ज्ञानवान् को ये दोनोंआवरण नहींरहते इससे वह निरावरण; शांतरूप, आकाशवत् निर्मल और निरालम्ब किसी गुणत्वके आश्रयनहीं होता और एकद्वैतभ्रम उसकानष्ट होजाता है क्योंकि, उसने आत्मरूपी तीर्थकास्नान कियाहै जो अपवित्रको भी पवित्र करता है। जिस पुरुषने शरीरमें आत्माका दर्शन कियाहै उसका शरीरभी पवित्र होता है। ऐसे पुरुषको शरीरकी सत्यता नहीं रहती और संसारभी नहीं रहता। आत्मा के साक्षात्कार हुयेसे सब इच्छानष्ट होजातीहैं और सर्व ब्रह्मही भासता है—द्वैत कुछनहीं भासता। सर्व आत्मस्वरूप है पर उसमें संकल्पसे नाना प्रकारकी सृष्टिभासती हैं। हे रामजी! तुमसंकल्पकी ओर मतजाओ क्योंकि; चित्तकीवृत्ति क्षणक्षणमें प्रणमतीहै और अनन्तयोजन पर्यंत चलीजाती है। जो उसके अनुभव करनेवाली सत्ता मध्यमें है और जिसके आश्रय वह जाती हैसो चिन्मात्र तेरास्वरूपहै। जब तुम उसमें स्थितहोकर देखोगे तब फुरनेमेंभी ब्रह्मसत्ता भासेगी। हे रामजी! यहसंवित् सदा प्रकाशरूप; चित्तकेक्षोभसे रहित और द्वैतरूप विकारसे रहित शुद्ध है। जितने प्रकाशहैं उनके विरोधीभी हैं जैसे दीपकका विरोधी पवनहै जो निर्वाण करताहै और सूर्यका विरोधी राहुकेतुहै जो घेरलेताहै और महाप्रलयमें सर्वप्रकाश तमरूप होजातेहैं पर आत्मप्रकाश तत्त्वसिद्धहै;तमकोभी प्रकाशता है और सदा ज्ञानरूप एक रसहै। उसको त्यागकर और किसीओर न लगना। हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्याहै; जैसेरस्सीमें सर्प और सीपीमें रूपा कल्पित है। जब तुम जागकर देखोगे तब सबका अभाव होजावेगा—जैसे वंध्याके पुत्रके रूपका

अभावहै तैसेही सबविश्व मिथ्याभासेगा क्योंकि; है नहीं-भ्रममात्र स्वप्नेकी नाईं अविचार सिद्धहै और विचार कियेसे आत्माही है; भिन्न कुछनहीं । जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभवसे कुछ भिन्ननहीं तैसेही यह आत्मस्वरूप विश्वभी ज्ञानमात्र है और अहं, मम, देह, इन्द्रियादिक भी सबज्ञानमात्र हैं-दृश्यकुछ दूसरी वस्तुनहीं । जब ऐसे निश्चयधारोगे तब निश्शोक और मोहसेभी रहितहोगे और परमार्थ सत्ता ज्यों की त्यों भासेगी । जैसेसमुद्रमें तरंग उठते हैं; तैसेही आत्मामें दृश्य उठतीहैं सो वही रूपहै और जो भिन्नभासे सो मिथ्या है । सबसृष्टि इसके हृदयमें स्थितहै पर अज्ञान से बाह्य भासती है । जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने भीतर होती है और अपना स्वरूप होताहै पर निद्रादोष से बाहर भासती है और जब जागताहै तब अपनाही स्वरूप भासता है; तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी विचार किये से अपने अनुभव में भासती है । इ-ससे स्थित होकर देखो कि, सर्वदा जागती ज्योति है; उसको त्यागकर और यत्न क-रना व्यर्थ है । हे रामजी ! अपने अनुभव में स्थित होना क्या कष्टहै? जो इसे कठिन जानते हैं वे मूढ़ हैं और उनको मेरी धिक्कार है क्योंकि; वे गऊके पगको समुद्रवत् जानतेहैं उनसे और कौनमूर्ख है । अनुभव में स्थित होना गऊ के पगकी नाईंही तरना सुगम है और जो और पदार्थों के पाने की इच्छाकरेगा तो उनमें व्यवधानहै पर आत्मा में व्यवधान कुछ नहीं क्योंकि, अपना आप है । हे रामजी ! जिन पुरुषों ने आत्मा में स्थितिपाई है उनको मोक्षकी इच्छाभी नहीं तो स्वर्गादिक की इच्छा कैसे हो ? मोक्ष और स्वर्ग आत्मा में रस्सी के सर्पवत् मिथ्या भासते हैं-उनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है । हे रामजी ! स्वप्ने में सुषुप्ति नहीं और सुषुप्ति में स्वप्ना नहीं-इनके अनुभव करनेवाली शुद्धसत्ताहै और ये दोनों मिथ्या हैं । उनको निर्वाण और जीनादोनों तुल्यहैं । ऐसेजानकर वे इच्छा किसीकी नहीं करते-प्रपंच उनको शशेकेसींग और वंध्याके पुत्रवत् भासतेहैं । हे रामजी ! हमको तो संसार सदा आकाशरूप भासताहै । यदि तुमकहो कि, उपदेश क्यों करतेहो ? तो हमको कुछ भास नहीं तुम्हारीही इच्छा तुमको वशिष्ठरूपहोकर उपदेश करतीहै । हमको विश्वसदाशू-न्यरूप भासताहै और हमको चेष्टाकरतेभी अज्ञानी जानतेहैं पर हमारे निश्चयमें चेष्टा भी नहीं और हमारी चेष्टा कुछ अर्थाकारभी नहीं । अज्ञानीकी चेष्टा अर्थाकारहोती है हमारी चेष्टासत्य नहीं इससे अर्थाकार भी नहीं होती । जैसे ढोलके शब्दका अर्थ नहीं होता कि, क्या कहताहै और वाणीसे जो शब्द बोलाजाताहै उसका अर्थहो-ताहै; तैसेही हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं अर्थात् जन्मनहीं देती और अज्ञानी की चेष्टाजन्मदेती है । हमको संसार ऐसे भासताहै जैसे अवयवी सर्व अवयवोंको अपना स्वरूपही देखताहै अर्थात् हस्त,पाद,शीश आदिक सबको अपनेहीअंग देखता है ।

हे रामजी! जगत्में एक ऐसेजीव दृष्टिआते हैं कि, उनको हम स्वप्नेके जीवभासते हैं और हमको वे शून्य आकाशवत् दृष्टिआते हैं और उनके हृदयमें हम नानाप्रकार की चेष्टा करते औरकी नाईं भासतेहैं। हमको तो जगत् ऐसे भासताहै जैसे समुद्रमें तरंग। मैंभी ब्रह्महूं; तुमभी ब्रह्महो, जगत्भी ब्रह्महै और रूप,अवलोक,मनस्कार सब ब्रह्मरूपहै; इससे तुमभी ब्रह्मकी भावनाकरो। अपने स्वभावमें स्थितहोना परमकल्याणहै और पर स्वभावमें स्थितहोना दुःखहै। हे रामजी! अपना स्वभाव साधनेका नाम मोक्षहै और न साधनेकानाम बन्धनहै। हे रामजी! धन, मित्र,क्रियाआदि कोई पदार्थ उपकारनहीं करता केवल अपना पुरुषार्थही उपकार करताहै सो यहीहै कि,अपने चैतन्य स्वभावमें स्थितहोना और पर स्वभावका त्यागकरना। जबअपने स्वभावमें स्थित होगे तब सब अपना स्वरूपही भासेगा। जो स्वरूपसे भिन्नहोके देखो तो न मैंहूं; न तुमहो औ न जगत्है; सब भ्रममात्र है और मृगतृष्णाके जलवत् भासताहै। ऐसे जा कि, मैंभी ब्रह्महूं; तुमभीब्रह्महो और जगत भी ब्रह्महै; वा ऐसेजानो कि, न तुम हो, न मैंहूं और न जगत् है तो पीछे जो शेषरहेगा सो तुम्हारा स्वरूपहै। हे राम ी! जिन पुरुषोंको ऐसे निश्चयहुआ है कि; मैं, तू और जगत् सब ब्रह्महै अथवा मैं, तू और जगत् सब मिथ्याहै; उनको फिर कोई इच्छा नहीं रहती और जिनको इच्छा उठतीहै उनकोजानिये कि,ब्रह्मआत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ। जबभोगोंकी वासना निवृत्तहो और संसार विरस होजावे तब जानिये कि, यह संसारसे पारहुआ अथवा होगा। हे रामजी! यह निश्चयकरके जानो कि; जिसको भोगोंकी वासना क्षीणहोती है उसको स्वभावरूपी सूर्य उदय होताहै और भोगोंकी तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है। यद्यपि उसमें प्रत्यक्षभोगोंकी तृष्णा दृष्टिआती है तौभी उसकी भास जाती रहती है और ब्रह्मसत्ताही भासतीहै। संसारकी ओरसे वहसुषुप्त और मृतककी नाईं होजाता है,अपनेस्वरूपमेंसदा जाग्रत् रहताहै औरअपने स्वभावरूपी अमृतमें मग्नहोताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्र रणेवशिष्ठगीतोपदेशोनाम शताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः १५९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! रूप,अवलोक और मनस्कार यह परस्वभाव है; इन को ब्रह्मरूप जानो। परस्वभाव क्याहै और ब्रह्मरूप क्याहै सोभी सुनो। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप शुद्ध आकाश है औ उसमें जोरूप, अवलोक और मनस्कार फुरे हैं सो प्रकृतिकी मायासे फुरेहैं। माया स्वभावसे परस्वभावहै परन्तु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ताहै इससे आत्मस्वरूप है। आत्माके जानेसे इसका अभाव होजाताहै। हे रामजी! जब ज्ञानउपजताहै तब संसार स्वप्नवत् होजाताहै और उसकी सत्ता कुछ नहीं भासती। जब दृढ़ताहोती है तब सुषुप्त होजाताहै इनका भावभी नहीं रहता

और तुरियामें स्थितहोताहै । जब तुरियातीत होताहै तब अभावकाभी अभा हो जाताहै और परमकल्याणरूप सत्ता समान पदको प्राप्तहोताहै जो आदि अन्तसे रहि परमपद है । ऐसा मैं ब्रह्मस्वरूप; परमशांतरूप और निर्दोषहूं और जगत्भी सब ह्मरूप है। हमको सदा यही निश्चय रहताहै और ऐसा उत्थान नहीं होता कि; मैं वशिष्ठ हूं । हमारा प्रच्छन्न अहंकार नष्ट होगया है इससे हम निरहंकारपदमें स्थित हैं । जब तुम ऐसे होकर स्थित होगे तब परम निर्मल स्वरूप होजाओगे । जैसे शरत्काल आकाश निर्मल शोभताहै तैसेही तुमभी शोभोगे।हे रामजी ! कैसेपुरुष को बन्धन है सो भी सुनो जिससे वह आत्मपदको नहीं प्राप्त होता । प्रथम धन मणिका बन्धन है, दूसरे भोगकी तृष्णा और तीसरे बाँधवोंका बन्धन है । जिसको इनतीनों की वासना रहती है उसको मेरा धिक्कार है । बड़े अनर्थ के देनेवाली यह वासना है । यह भोग महारोग है; बांधव दृढ़बन्धनरूपहै और अर्थकी प्राप्ति अनर्थ का कारण है । इससे इसवासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित होरहो । यह संसार भ्रममात्र है,इसकी वासना करना व्यर्थहै और इसको सत्य न जानना । यह जो तुम को संग और मि ाप भासता है सो कैसा है जैसे बैठेहुये स्मरण आवे कि, मैं अमुक से मिलाथा तो वह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदय में भासती है । जैसे संकल्प से नगर रच लिया तो उसमें मनुष्यादिक के चित्र भासनेलगते हैं तैसेही इस जगत्को भी जानो। हे र मजी ! तुम,मैं और यह जगत् भ्रममात्र संकल्पनगरके समानहै। जैसे भविष्यत न-गरकीर ना है तैसेही यह जगत्है।कर्त्ता क्रिया कर्म जोभासतेहैं सोभी भ्रममात्रहैं केवल आत्मस ही अपनेआपमें स्थितहै। आत्मरूपी आकाशमें यह जगत्रूपी पुतलियां हैं और संकल्पमात्र प्रत्यक्षहुआहै वास्तवमें केवल शांतरूप आत्मतत्त्वहै। हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं उनको आत्मतत्त्वही भासताहै और जिनको आत्मतत्त्वका प्रमाद है उनको नानाप्रकारका जगत् भासता है पर आत्मामें यह जगत् कुछ आरम्भ परि-णाम से नहींवना । जैसे सूर्य की किरणों में अज्ञान से जलाभास भासते हैं तैसेही आत्मामें अज्ञान से जगत् की प्रतीति होतीहै । जब आत्मा कासम्यक् ज्ञान हो तब जगत् भ्रम निवृत्त होजाता है—जैसे सूर्य की किरणों के जानेसे जलभ्रम निवृत्त हो-जाता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठगीतासंसारोपदेशोनामशताधिकषष्टितमस्सर्गः १६० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! रूप, अवलोक, मनस्कार सब ब्रह्मरूप हैं । जिसको ज्ञान प्राप्त होताहै उसको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है—यही ज्ञानका लक्षण है । ज्यों ज्यों ज्ञानकला उदय होती है त्यों त्यों भोगों की वासना क्षीणहोतीजाती है और जब

पूर्णबोध की प्राप्ति होतीहै तब किसीको इच्छानहीं रहती। जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशता है त्यों त्यों अन्धकार नष्ट होताजाताहै और जब पूर्णप्रकाश होताहै तब रात्रिका अभाव होजाताहै; तैसेही जिसको ज्ञान उत्पन्नहुआ है उसको भोगोंकी वासना नहीं रहती और संसार उसको जलेवस्त्रकी नाईं भासता है पर अज्ञानी को सत्य भासता है। जैसे स्वप्नेमें सुषुप्ति नहींहोती और सुषुप्तिमें स्वप्ना नहीं होता और स्वप्नेका पुरुष सुषुप्ति को नहीं जानता और सुषुप्तिवाला स्वप्नेवालेकोनहीं जानता तैसेही जिसको तुरियापदकी प्राप्तिहोतीहै उसको संसारका अभाव होजाताहै और वह अपनेस्वभाव में स्थित होताहै । जो संसारको सत् जानतेहैं वे स्वप्ननरहैं—सुषुप्तिको नहींजानते। हेरामजी! तेरास्वरूप जो तुरियापदहै उसको अज्ञानीनहीं जानसक्के और जोजानेंतो उनका प्रच्छन्न अहंकार नष्टहोजावे।जब अहंकार नष्टहो तब सर्वआत्माहुआ।हे राम जी! जीवको अहंताने तुच्छकियाहै; इससेतुम अहंतारूप दृश्यका त्यागकरके अपने स्वभावमें स्थितहोरहो। संसाररूपी एक पुतलीहै जोभ्रमसे उठीहै; उसका शीश ऊर्ध्व ब्रह्मलोकहै; टखने और पांव पाताललोक हैं; दशोंदिशा वक्षस्स्थलहै; चन्द्रमा और सूर्य नेत्रहैं; तारागण रोमहैं;आकाश वस्त्रहै; सुख दुःखरूपी स्वभावहै; पवन प्राणवायुहै; बगीचे भूषणहैं; द्वीप और समुद्र कंकणहैं और लोकालोक पर्वत मेखलाहै। हे रामजी! ऐसीजो पुतलीहै सो नृत्य करतीहै। जैसे समुद्रमें तरंग उपजते और नाशहोतेहैं परन्तु जल ज्योंकात्योंहीहै तैसेही जलकीनाईं सर्व ब्रह्मरूपहै और भ्रमसे विकार दृष्टिआते हैं।हेरामजी! कर्त्ता, क्रिया और कर्मभी आत्मस्वरूपहैं। जब तुम आत्माकी भावना करोगे तब तुम्हारा हृदय आकाशवत् शून्य होजावेगा। जैसे पत्थरकी शिला जड़होती है; तैसेही तुम्हारा हृदय जगत्से जड़ और शून्यहोजावेगा। हे रामजी! आत्मपदशांत रूप और आकाशवत् निर्मल है। जैसे आकाशमें आकाश स्थितहै तैसेही आत्मामें जगत्है; न उदय होताहै और न अस्तहोताहै केवल शान्तरूपहै। उदय अस्तभी तब होताहै जब कुछ दूसरीवस्तु होतीहै पर जगत् कुछभिन्ननहीं आत्मा स्वरूपहीहै। द्वैत और एक कल्पनासे रहित आत्मा अपनेआपमें स्थितहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्उपशमयोगोपदेशोनाम शताधिकएकषष्टितमस्सर्गः १६१॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कारहै। जैसे मृत्तिकाकी पुतली मृत्तिकारूप और कागज की पुतली कागजरूप होती है तैसेही विश्व आत्मरूप है। जैसे मृत्तिकाका दीपक देखनेमात्रहोताहै और प्रकाशका कार्य नहींकरता तैसेही यह जगत् देखनेमात्रहै विचार कियेसे आत्माकेसिवा भिन्नसत्ता कुछनहीं; इससे जगत् की सत्यता आत्मासे कुछभिन्ननहीं। जगत् की आस्था आत्माके आश्रितहोती है। जैसे

जलमें तरंग; आकाश में शून्यता और पवन में फुरना है तैसेही आत्मा में जगत् अभिन्नरूपहै; और जैसे बायु चलतीहै तबभी पवनहै क्योंकि, उसको बायुकानिश्चय है; तैसेही चैतन्यमें निश्चयहै कि, जगत् वहीस्वरूपहै—इससे चैतन्यहै। ज्ञानवान् जानताहै कि, जगत् मेराहीस्वरूपहै। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि, जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं और भ्रम करके भिन्न भासता है। जैसे कथा में कथा के पुरुष विद्यमान भासतेहैं और क्रिया करतेहैं तैसेही इसजगत्कोभी मनोमात्रजानो। हे रामजी! जो विद्यमानहै सो अविद्यमान होजाताहै और जो अविद्यमानहै सो विद्यमानहोजाताहै। जैसे स्वप्नेमें जगत् अनुभवस्वरूपहै—भिन्ननहीं तैसेही जाग्रत जगत् विचारकरदेखोगे तव ब्रह्मस्वरूपही भासेगा। जैसे जो पुरुष सोयाहोता है और स्वप्न जगत् उसी का रूपहै परन्तु जबतक निद्रादोष है तबतक भिन्न भासता है पर जब जागा तब सब अपनाही आप भासताहै, तैसेही जब मनुष्य अपने स्वरूपमें स्थित होकर देखता है तब सब अपना आपहीभासताहै। हे रामजी! रूप, अवलोक, नमस्कारभी ब्रह्मस्वरूप है पर आत्मा इंद्रियोंका विषयनहीं, वहतो निराकारहै और मनके चिंतनेसे रहितहै। संकल्पसे आपही रूप, अवलोक और नमस्कार करके स्थितहुआ है, भिन्न नहीं। सर्ववही है और शास्त्रकारोंने शिव, ब्रह्म, आत्मा, शून्य आदि उसके नाम संकल्प में कहेहैं। आत्मा केवल चिन्मात्रहै; वह वाणीका विषय नहीं और शांतरूप, चैत अर्थात् दृश्यसेरहित और सर्वशब्द-अर्थोंकाअधिष्ठानहै और जगत् उसका चमत्कारहै। हे रामजी! आत्मामें एक और द्वैतकल्पना कोईनहीं क्योंकि; वह आत्मत्वमात्रहै और जगत् भी आत्मरूपहै। जैसे आकाश और शून्यतामें भेदनहीं तैसेही आत्मा और जगत् में भेदनहीं। हे रामजी! यदिऐसाभी किसीदेश अथवा कालमेंहो कि; सवर्ण और भूषणमें कुछभेदहो अर्थात सवर्ण भिन्नहो और भूषणभिन्नहो परन्तु आत्मा और जगत्में भेद नहीं; आत्माही ऐसे प्रकारताहै और अपने स्वभावमें स्थितहै दूसरीवस्तु कुछनहीं। जैसे मृत्तिकाकी सेना नानाप्रकारकी संज्ञाधारतीहै परन्तु मृत्तिकासे भिन्नकुछ दूसरी वस्तु नहींहै तैसेही फुरने से नानाप्रकारकी संज्ञा दृष्टि भी आती हैं परन्तु आत्मा से भिन्ननहीं—वहीरूपहै। हे रामजी! यह सर्वपदार्थ अनुभवसे भासतेहैं। पदार्थकीसत्ता अनुभवसे भिन्ननहीं। जब तुम अनुभवमें स्थितहोकर देखोगे तब अनुभवरूप अपना आपही भासेगा। अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है; उसीके जाननेका नाम ज्ञानहै हे राम जी! ज्ञानबिना जो तप, यज्ञ, दानआदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं। सब क्रियोंकी सिद्धि ज्ञानसे होतीहै। हे रामजी! जो कुछ क्रिया ज्ञानके निमित्त कीजिये सोही पुरुष प्रयत्न श्रेष्ठहै और इससे अन्यथा व्यर्थ है। धनके उपजाने में भी और रखनेमें भी कष्ट है परन्तु जो ज्ञान के साधन निमित्त इसको रखिये और दीजिये तो यह अ-

मृत होजाता है। हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है। जैसे मलीन नेत्रवाले को रूप विपर्यय भासता है और स्वप्नेकी सृष्टिमें अज्ञ तज्ञभी भासते हैं परन्तु असत्यरूप हैं; तैसेही यह जगत् विद्यमान भासताहै पर अविद्यमान है और आत्मा सदा विद्यमानहै। हेरामजी! विद्यमान देव जो विष्णु हैं उनको त्यागकर जो और देवका पूजन करते उनकी पूजा सफल नहीं होती और विष्णु उनपर कोपमान भी होतेहैं इसी तरह आत्मा जो अनुभव रूप विद्यमान है उसको त्यागकर जो और की पूजन करते हैं वे जन्म मरण के बन्धनसे मुक्तनहीं होते—मूढ़ता में रहते हैं। आत्मदेवकी पूजा सुनो। जो कुछ अनिच्छित आवे सो उसको अर्पण कीजिये और इसके जाननेवाले में अहंप्रत्यक्ष करना यही बड़ी पूजाहै। हे रामजी! इस आत्मदेवसे भिन्न जो सूर्य्य, चन्द्रमा आदिक भेदपूजा है सो तुच्छ है। जब तुम आत्म पूजा में स्थित होगे तब और पूजा तुमको सूखे तृणकी नाईं भासेगी। दानभी आत्म देवकोही करना है सो बोधसे करने योग्य है और वैराग्य, धैर्य और संतोष बोधका कारण है। यथालाभ में संतुष्टरहकर ब्रह्मविद्याका विचारकरो और संतोंका संगकरो। इन साधनों से जब बोधरूपी सूर्यउदय होगा तब द्वैतरूपी अन्धकार नष्ट होजावेगा और ज्ञानरूपही भासेगा। फिर जो ज्ञान उपजा है वह भी शांत होजावेगा—इससे उसी देव की पूजा करे जिससे आत्मपद को प्राप्तहो। आत्म देवकी पूजा के निमित्त फूल भी चाहिये इसलिये आत्म विचार करके चित्तकी वृत्ति अन्तर्मुख करना और यथालाभ में संतुष्टरहकर संतोंकीसंगत करना—इन फूलोंसे निवेदन करना। यह पूजाभी तब होती है जब अन्तःकरण शुद्धहोता है; उससे ज्ञान उत्पन्नहोता है और जब ज्ञान उपजता है तब आत्मदेवका साक्षात्कार होता है। ज्ञानका लक्षण सुनो। गुरु और शास्त्र से जो वस्तु सुनी है उसमें स्थित होती है और संसारकी वासना क्षीणहोजातीहै तब ज्ञानी कहाता है। जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है तब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूपही भासता है और तब उसको शस्त्रकाटनहींसक्के और सिंह, सर्प, अग्नि और विषका भी भयनहीं होता। हेरामजी ! यह विश्व सब आत्मरूप है। जैसी भावना कोई करता है तैसाही आगे होभासताहै। जब शस्त्रमें शस्त्रके अर्थकी भावना होतीहै तब शस्त्रही भासते हैं; इसीप्रकार सर्प और अग्नि सब अपने २ अर्थाकार भासतेहैं। जोसर्व आत्म भावना होतीहै तब सर्व आत्माही भासता है क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं तो दिखाई कैसेदे। जो पुरुष कृतकृत्य नहीं हुआ और आपको कृतार्थ मानताहै पर दुःख की निवृत्ति का उपाय नहीं करता तो दुःखके आयेसे दुःखही होवेगा और दुःख उस को चलालेजावेगा और जब सुख आवेगा तब सुखभी चलालेजावेगा। हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म है पर निश्चय से रहित है और शास्त्रभी बहुत देखता है

वह महामूर्ख है। जैसे जन्मका अन्धा सूर्यकोनहीं जानता तैसेही वह आत्म अनुभव से रहित है। जब आत्मपद्का साक्षात्कार होगा तब ऐसा आनन्द प्राप्तहोगा जिसकेपायेसे और पदार्थ रससेरहित भासेंगे और ब्रह्मासे काष्ठपर्यन्त सबपदार्थ विरस होजावेंगे। इससे आत्मपरायण होकरसदा आत्मपदकी भावनाकरो। हे रामजी! जैसे शुद्ध मणि के निकट जैसी वस्तु रखिये तैसाही प्रतिबिम्ब होता है तैसेही जीव जैसी भावना करता है तैसाहीरूप भासता है। इससे जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानो औरजो दूसराभासे उसे भ्रममात्रजानो। जैसे पत्थर की शिलापर पुतलियां लिखते हैं सो शिलारूपही हैं तैसेही यह सब जगत् आत्मस्वरूप है। जब आत्मपद की तुमको प्राप्ति होगी तब सब पदार्थ विरस होंगे। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है। जो पुरुष इस जगत् को पदार्थ जानता है और कहता है कि, हम मुक्तहोंगे सो ऐसा है जैसे अंधेकूपमें जन्मका अन्धागिरे और कहे कि,अन्धकारके साथमें सचक्षुहूंगा। वह मूर्ख है क्योंकि, आत्मज्ञान विना मुक्तनहीं होता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपुनर्निर्वाणोपदेशोनाम शताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः १६२॥

वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! अहंता आदि जो जगत् भासता है सो मिथ्या भ्रम करके उदय हुआ है; इसको त्यागकर अपने अनुभवस्वरूप में स्थित हो। इस मिथ्या जगत् में आस्था करनी तो मूर्खता है। जो ज्ञानवान् है उसको जगत् भ्रम का अभाव है। अब ज्ञानी और अज्ञानी का लक्षण सुनो। हे रामजी! जैसे किसी पुरुष को ताप चढ़ता है तो उसका हृदय जलता है और तृषा बहुत होती है पर जिसका ताप नष्टहोगया है उसका हृदय शीतलहोता है और जलकी तृषाभी नहीं होती; तैसेही जिस पुरुष को अज्ञानरूपीताप चढ़ाहुआ है उसका हृदय जलता है और भोगरूपी जलकी तृष्णा बहुत होती है पर जिसके हृदय में अज्ञानरूपी ताप मिटगया है उसका हृदय शीतल होता है और भोगरूपी जलकी तृष्णा मिटजाती है। अबताप निवृत्त करने का उपाय सुनो। शास्त्रोंके अर्थवाद से तो बुद्धिभ्रम होजाताहै और मैं तुमसे सुगम उपाय कहताहूं कि; निरहंकार होनाही सुगमउपाय है। 'न मैंहूं' और 'न यह जगत् है'; जब तुम ऐसा निश्चय धारोगे तब सबजगत् तुमको ब्रह्मस्वरूप भासेगा और किसी पदार्थ की वांछा न रहेगी। जबसब पदार्थों को मिथ्या जानकर अपना भी अभाव करोगे तब पीछे प्रत्येक चैतन्य परमानन्द स्वरूप सबका अधिष्ठान शेषरहेगा। हे रामजी! यह अहन्तारूपी यक्षजो उठाहै सो मिथ्या है और उस मिथ्या पुरुषने नानाप्रकारका जगत् कल्पाहै। अहंकार भी मिथ्या है और जगत् भी मिथ्याहै। जब तुम अपने स्वरूपमें स्थितहोगे तब जगत्भ्रम मिटजावेगा। जैसे

स्वप्न के जगत्में सुन्दरपदार्थ भासते हैं और मनुष्य उनकी इच्छाकरताहै। जबतक जागतानहीं तबतक नताहै कि, येपदार्थ कदाचित् नाश न होंगे और कहताहै कि, अमुकरूप देखिये और अमुक भोजन कीजिये पर जब जाग उठा तब जानता है कि, मेराही संकल्प था और फिर वे पदार्थ सुन्दर स्मरण भी होते हैं अथवा भासतेहैं तोभी उनको मिथ्या जानताहै; तैसेही जब आत्मस्थितिमें जागताहै तब सर्वब्रह्महीं भासता है।हेरामजी! इस जगत्का बीज अहंताहै। जैसे दुःखका बीज पाप होताहै तैसेही जगत् का बीज अहंताहै,इससे तुम निरहंकार पदमें स्थित होरहो। यह सब तुम्हाराही स्वरूप है पर भ्रमसे जगत् भासताहै। हे रामजी! जगत्का अत्यन्ताभावहै। जैसे रस्सीमें सर्प का अत्यंताभावहै पर भ्रमदृष्टि से सर्प भासताहै और जब विचाररूपी दीपकसे देखिये तो सर्पका अभाव होजाता है तैसेही आत्मा में यहजगत् भ्रमसे भासता है। जब विचार करके जगत्का अभाव निश्चय करोगे तब आत्मपद ज्योंका त्यों भासेगा। जैसे जब बसन्तऋतु आती है तब सबफूल, फल और डालें दृष्टि आते हैं सोएकही रस इतनी संज्ञाको धारता है; तैसेही तुम जब आत्मपद में स्थितहोगे त तुमको सब आत्मरूपही भासेगा। और सर्वनामभी आत्माही भासेगा। हे रामजी! आदि भी आत्माही है और अन्तमेंभी आत्माहीहोगा पर मध्यमें जो जगत्के पदार्थ भासते हैं उनकीओर मतजावो—जो इनकाजाननेवाला है और जिससे सबपदार्थप्रकाशते हैं उसमेंस्थित होरहो। ये सब मनुष्य मृगकी नाईं हैं।जैसे मरुस्थलमें जल जानकर मृग दौड़तेहैं तैसेही जगत्रूपी मरुस्थलकी भूमिका शून्यहै और तीनोंलोकमृग तृष्णा के जलहैं उनमें मनुष्यरूपी मृग दौड़तेहैं और दौड़ते दौड़ते हारजातेहैं कदाचित् शान्ति नहींहोती क्योंकि; जगत्केपदार्थ सब असत्यहैं। हे रामजी! रूप,अवलोकऔरमनस्कार सब मृगतृष्णाके जलहैं; इनको जो सत्य जानता है वह मूर्खहै। यहजगत् गन्धर्व नगरकी नाईं है तुमजागकर देखो; इनको सत्यजानकर क्यों तृष्णा करतेहो। इनको सत्यजानकर तृष्णाकरनाही बन्धन है। हे रामजी! तुम आत्माहो। इसकी इच्छासे बन्धवान् क्यों होतेहो? जैसेसिंह पिंजरेमें आकर दीन होताहै पर बलकरके जब पिंजरेको तोड़डालताहै तब बड़े जाय निवास करता है और निर्भय होता है; तैसेही तुमभी वासनारूपी पिंजरेको तोड़कर आत्मपदमें स्थित होरहो जो सर्वका अधिष्ठान और सबसे उत्कृष्टहै। जब तुम उस पदको प्राप्तहोगे तब इस संसारकी वासना नष्टहोकर आनन्द होगा और तुम निर्वाणपदको प्राप्तहोकर अफुर होगे; परम उपशम ज्ञेयपदको प्राप्तहोगे और द्वैतभाव मिटकर केवल परमार्थ सत्ता भासेगी—इसीका नाम निर्वाणहै। जैसे कोई मार्ग चलकर तपता आवे तो वह शीतल स्थानमें आकर शांति पाताहै तैसेही यह चारों भूमिका शांतिका स्थानहै। निर्वाणता, निरहंकारता, वासनाका

त्याग और परम उपशम इनसे ज्ञेयमें स्थित होना। जब तुमभी इन शांतियों में स्थित होगे तब द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपटीका अभाव होजावेगा और केवल द्रष्टाही रहेगा। हे रामजी! द्रष्टा भी उपदेश जतानेके निमित्त कहाहै; जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा किसकाहो; केवल अपने आपमें स्थितहो जो शुद्धहै। यह जगत् बुद्धिजन्मका देनेवालाहै। जो जगत्के पदार्थ सुखदायी भासतेहैं सो दुःखके देनेवालेहैं; इनको विषजानकर त्याग करो। जैसे आकाशमें तरुवरे भासतेहैं तैसेही यह जगत् अनहोता भासता है—आत्मा में दृश्य नहीं। एकही पदार्थमें दो दृष्टिहैं-ज्ञानी उसको आत्मा और अज्ञानी जगत् जानतेहैं॥

दो० सन्भूतनकीरात्रिमेंसन्तनकादिनहोय। जोलोकनदिनमानियांसंतरहेतबसोय१॥

ज्ञानी परमार्थ तत्त्वमें जागते हैं और संसारकी ओरसे सो रहे हैं और अज्ञानी परमार्थ तत्त्वमें सोये हुयेहैं और संसारकी ओर सावधानहैं। हे रामजी! यह जगत् मनसे फुराहै और ज्ञानीका मन सत्पदको प्राप्त हुआ है इससे उसे जगत्की भावना नहीं फुरती। जैसे बालकको संसारके पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता तैसेही ज्ञानी के निश्चयमें जगत कुछ वस्तु नहीं। हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है तब जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं भासता। जैसे जलकी बूंदें जलमें डालिये तो भिन्न नहीं भासतीं तैसेही ज्ञानीको जगत् भिन्न नहीं भासता। जैसे बीजमें वृक्ष होता है तैसेही मनमें जगत् स्थित होता है और जैसे वृक्ष बीजरूप है तैसेही जगत् मनरूप है; जब जगत् नष्टहो तब मनभी नष्ट होजावेगा और मन नष्ट हो तब दृश्यभी नष्ट होगी—एकके अभाव हुये दोनों का अभाव होजाता है—मन नष्टहो तो फुरना भी नष्टहो और फुरना नष्टहो तो मन भी नष्ट होताहै। हे रामजी! जगत्के भीतर बाहर जो भासताहै वही मन है। इससे जब मनको स्थित करके देखोगे तब जगत्की सत्यता न भासेगी। अज्ञानीके हृदयमें जगत् दृढ़ स्थितहै इससे वह दुःख पाताहै। जैसे बालकको अपनी परछाहीं में भूतभासता है तिससे वह दुःख पाताहै और जो कोई निकट खड़ाहै उसको नहीं भासता इससे वह दुःख नहीं पाता। हे रामजी! यह जगत् कुछ सत्य वस्तु होती तो ज्ञानवान्को भी भासता पर ज्ञानीको नहीं भासता इससे जगत् कुछ वस्तु नहीं है। जैसे एकही स्थान में दो पुरुष बैठेहों और एक को निद्रा आवे तो उसको स्वप्नेका जगत् भासताहै और नानाप्रकारकी चेष्टा होतीहै पर दूसरा जो बैठा जागताहै उसको उसका जगत् नहीं भासता; तैसेही जो पुरुष परमार्थ सत्तासे जाग्रत्है उसको जगत् शून्य भासताहै। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है; उसकी तृष्णा तुम काहेको करते हो—अपने स्वभाव स्थित होरहो। यह जगत् परस्वभाव है—ऐसे जानकर चाहे जैसी चेष्टाकरो तुमको बन्धन न करेगी और पूर्वपदकी प्राप्ति होगी। जैसे अग्निसे जले सूखे तृणको पवन उड़ा लेजाता है और नहीं जाना जाता कि, कहांगया; तैसेही ज्ञानरूपी अग्निसे जलाया

और निरहंकारतारूप पवन से उड़ाया हुआ संसाररूपी तृण न जाना जायगा कि; कहां गया? जैसे लाखयोजन पर्यंत चलाजावे तौभी यही दृष्टि आताहै कि आकाशही सब सृष्टिको धार रहाहै; तैसेही सब दृश्य जगत्को आत्मा धारताहै। संसार का शब्द अर्थ आत्मामें कोई नहीं,इसको छोड़कर देखो कि,सर्व शब्दअर्थका अधिष्ठा आत्मा ी है। हे रामजी! रूप,अवलोक और मनस्कार मिथ्या उदय हुयेहैं—इनका त्याग करो। जैसे मरुस्थलमें जलाभास मिथ्याहै तैसेही आत्मामें जगत् मिथ्या भ्रममात्रहै। इसका सम्बन्ध करके जीव दुःखी होताहै। जैसे रस्सीमें सर्प और सीपीमें रूपा मिथ्याहै, तैसेही आत्मामें जगत्है। तुम आत्मब्रह्महो, दुःखसे रहित अपने स्वभावमें स्थितरहो और आत्मदृष्टि से देखो कि, सर्व आत्माहो; अथवा जगत्को मिथ्या जानो तौ भी शेष आत्मपदही र गा। जैसे जाग्रत्,स्वप्न और सुषुप्तिके अभाव हुयेसे शांतपद शेषरहता है, तैसेही जगत्के अभाव किये से आत्मपद शेषभासेगा। इस जगत् का अत्यन्ताभावहै और जो दृष्टि आताहै सो भ्रममात्रहै। जो एक कालमें होताहै वह दूसरे कालमें नष्ट होजाता है। स्वप्ने में ज ग्रत् का अभाव होजाताहै और जाग्रत् में स्वप्ने का अभाव होजाता है पर सुषुप्ति में दोनों का अभाव होजाता है इस से वे भ्रममात्र हैं विश्व आत्माका चमत्का है। जैसे समुद्रमें तरंग होतेहैं तैसेही आत्मामें जगत् है। अहंतासे यह उदय ोताहै और अहंताके अभावसे अभाव होजाताहै। जिनकी अहंता का अभाव हुआ है वेही सन्त और उत्तम पुरुष हैं; उन महानुभाव पुरुषों का अभिमान और भोगों की आशा नष्टहोजाती है वे निर्भ्रान्तिरूप नित्यही समाधिरूप होते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकताप्रतिपादन ामशताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः १६३॥

रामजी बोले; हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकता है और बनमें जलताहै; वह समाधानरूप को वृक्षहै जिसके नीचे आकर शांतहो? उसके फूल, फल और लता कैसे हैं और वह वृक्ष कहां होत है। सो कृपाकरके कहिये? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! जिस प्रकार समाधानरूप ृक्ष उत्पन्न होताहै सो सुनो। इसके पत्र, पुष्प और लता आदि सब समाधा रूप हैं। हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवोंको कल्याणके निमित्त साधना योग्यहै। अब तुम इसका क्रम सुनो। बलसे तो यह उत्पन्नहोताहै ौर संतनोंके वनमें यह वृक्ष उपजताहै; चित्तरूपी पृथ्वीमें लगता है ्और वैरागरूपीइसका बीज है। वैराग दो प्रकारसे प्राप्तहोता है—एकतो दुःर और कष्ट प्राप्त ह नेसे वैराग उपजआत है; दूसरे शुद्ध निष्काम हृदय होताहै तौभी वैराग उपजताहै। उसवैरागरूपी बीजको जब चित्तरूपी भूमिका डालते हैं; वासनारूपी हलफेरते हैं और सन्तों की

संगति और सत्शास्त्ररूपी जल जो निर्मल; शीतल और हृदयागम्य है मनरूपीक्यारी में पड़ता है तब उसवृक्षके बढ़ने की आशाहोती है। क्रियारूपी झाडू से जब अशुभ-वरूपी कूड़ेको दूरकरते हैं; बहुत जलसेभी उसकी रक्षाकरते हैं अर्थात् आत्मविचार रूपी सूर्यकी किरणोंसे सुखातेहैं और उसके चहुंफेर धैर्यरूपी बाड़ी करतेहैं और तप, दान, तीर्थ, स्नानरूपी चौतरेपर उसबीजको रखके बैठतेहैं कि, जल न जावे और आशा रूपीपक्षीसे रक्षाकरतेहैं कि; वैरागरूपी बीजको काढ़ न लेजावे और अभिलाषारूपी बूढ़ेबैलसे रक्षाकरतेहैं कि, क्षेत्रमें प्रवेशकरके उसको मर्दन नकरे उसके निमित्त संतोष और सन्तोषकीस्त्री मुदिता दोनों बैठारखतेहैं और इसबीजका नाशकर्त्ता जो मेघसे उपजता है कुहिरा उससे भी रक्षाकरते हैं। संपदा, धन और सुन्दरस्त्रियों की प्राप्ति होनीही वैरागरूपी बीजका नाशकर्त्ता ओलाहै। इसकी रक्षाका एकसामान्य उपायहै और एक विशेषउपायहै। तपकरके इन्द्रियोंको सकुचाना; दुःखीपरदयाकरना और सन्तोषमात्र पाठ और जापकरना इत्यादिक शुभ क्रियारूपी यंत्रीकी पुतली इसके विद्यमान रखिये तो सबविघ्न दूरहोजाताहै। दूसरा परमउपाय यहहै कि, सन्तोंकी संगतिकरके सत्शास्त्रोंका सुनना; प्रणव जो ओंकारहै उसका ध्यान और जपकरना और उसका अर्थ विचारना यही त्रिशूलरूप ओलों के नाश का परमउपाय है। जब इतने शत्रुओंसे रक्षाकरे तब उसबीजकी उत्पत्तिहो। सन्तोंकेसंग और सत्शास्त्रोंके बिचाररूपी वर्षाकालके जलसे सींचिये तब अंकुरनिकलताहै और बड़ाप्रकाशहोताहै। जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको सबकोई प्रणामकरताहै तैसेही सन्तोषदया और यशरूपीअंकुर निकलताहै। उसके दोपत्र निकलतेहैं—एकवैराग दूसराबिचार और वे दिन प्रतिदिन बढ़तेजातेहैं। शास्त्रोंसे जोसुनाहै कि; आत्मासत्यहै और जगत् मिथ्याहै उसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये इसजल के सींचने से वे अंकुर दिन प्रतिदिन बढ़ते जावेंगे और उनकेथंभ बड़ेहोंगे। हे रामजी! जबडालें बड़ी होती हैं तब रागद्वेषरूपी वानर उनपर चढ़करतोड़डालतेहैं इससे इसवृक्षको दृढ़वैराग, सन्तोष और अभ्यासरूपी रससे पुष्टकरना योग्यहै। जैसे सुमेरु पर्वतहै तैसेही सन्तोषसे उसेपुष्टकरना। जब ऐसे होगा तब उसमें सुन्दरपत्र, डालें, फूल और मंजरीलगेंगी; बड़े मार्ग्गपर्यंत इसकीछाया होगी और शांति, शीतलता, शुद्धता, कोमलता, दया, यश और कीर्त्ति इत्यादिक गुण प्रकटहोंगे। उसकेनीचे मनरूपीमृग बिश्राम पाकर शीतलहोताहै और आध्यात्मिक; आधिभौतिक और आधिदैविक ताप मिटजाते हैं और परमशांति पाताहै। हे रामजी! यहमैंने तुमसे समाधानरूपीवृक्षकहाहै। जहां यहवृक्षउत्पन्नहोताहै उसस्थानकी शोभा कही नहीं जाती और जो इसवृक्षकी शरणजाता है उसके तापमिटजाते हैं और शान्तिमान् होताहै। यहवृक्ष ब्रह्मरूपी आकाशके आश्रय बढ़ताहै और वैरागरूपी रस

और सन्तोषरूपी डालसे पुष्ट होताहै। जो पुरुष इसका आश्रय लगा सो शांतिमान् होगा। हे रामजी! जबतक मनरूपी मृग इस समाधान रूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता तब तक भटकता फिरताहै पर शान्तिनहीं पाता। जैसे मृगवनमें भटकता है तैसेही मनमृग भटकताहै और द्वैत,अज्ञान और प्रमादरूपी बंधक मारने लगतेहैं उससे दुःखपाताहै जबभयसे इन्द्रियरूपी गांववासियोंके निकटजाताहै तबवे आपही इसको खेदकर पकड़ लेते हैं अर्थात् विषयोंकी ओर खींचतेहैं और उससे बड़ा कष्ट पाता है। इनके भयसे जब फिर वनमें जाताहै तो वहां विषयकी अप्राप्तिरूपी तपनसे दुःखी होताहै। जब उसको भी त्यागकर रसरूपी स्थानोंको शांतिकेनिमित्त दौड़ताहै तो कामरूपी श्वानमारने को दौड़ता है और उसके भयसे जब फिर वैरागरूपी वनकी ओर धावताहै तब क्रोधरूपी अग्निजलाती है; वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं और लोभ और मोहरूपीअँधेरीमें अन्धाहोजाताहै। निदान पुत्र और धनरूपी हरेहरेतृणों को देखकर ग्रहण करताहै तब गढ़े में गिरपड़ताहै। वह गढ़ा तृणसे ढपाहुआ है सो तृणपुत्र धनहैं तिनको सुन्दर देख तब ममतारूपी गढ़ेमें गिरपड़ता है। इसप्रकार दुःखपाताहै। हे रामजी! जब यहमन झूंठ बोलताहै तब मृत्तिकामें लोटतेकीसी चेष्टा करता है और जब मनरूपी भेड़िया आता है तब उसको भक्षणकरजाता है। जब समाधानरूपी वृक्षसे जीव विमुख होताहै तबइतने कष्टपाता है। और जब मनरूपी भेड़ियेसे छूटताहै तब आशारूपी जंजीरमें बन्धवान् होताहै; निदान जबतक इसवृक्ष के निकट नहीं आताहै तबतक बड़े कष्टस्थानोंको जाताहैं। तमाल वृक्षादिकके तलेभी जाता है और कंटक के वृक्षोंके तलेभी जाताहै परन्तु शान्तिमान् किसी स्थानमें नहीं होता—बड़े २ कष्टों कोही पाताहै।

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहरिणोपाख्यानेवृत्तान्तयोगो-
पदेशोनामशताधिकचतुष्षष्टितमस्सर्गः १६४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार मूढ़बुद्ध मनरूपी हरिण भटकताहै। इससे मेरा यही आशीर्वाद है कि, तुमको उस वृक्षका संगहो। जब उसवृक्षके निकट जीव जाताहै तब शान्ति होतीहै और जब इसके नीचे आबैठताहै तब तीनों ताप अन्तः-करण से मिटजाते हैं। जितने विषयरूपी वृक्षहैं उनके निकटगया मनरूपीमृग शांति नहीं पाता पर जब समाधानरूपी वृक्षके निकटआताहै तब शान्ति पाताहै और बुद्धि खिलआती है—जैसे सूर्यमुखीकमल सूर्य को देखकर खिलआताहै। उस वृक्षके अनु-भवरूपी फल और शास्त्रके विचाररूपी पत्र और फूलों को देखकर वह बड़े आनन्द को पाताहै और उसवृक्षके ऊपर चढ़जाताहै और पृथ्वीका त्यागकरताहै। जैसे सर्प अपनी पुरानी कंचुकीका त्याग करताहै और नूतन सुन्दर शरीरसे शोभताहै। जब उस

वृक्षपर चढ़ताहै तब गिरता नहीं।क्योंकि,उसकेपत्र बहुत बलीहैं उनके आश्रय ठहरता है। समाधानरूपी वृक्षके सत्शास्त्ररूपी पत्रहैं। जब समाधानरूपी वृक्षसे उतरता है तब शास्त्रके अर्थ में ठहरता है और जितने पदार्थ देखता है वे उसे क्षारवत् दृष्टआते हैं और अपनी पिछली चेष्टाको स्मरणकरके पछताता है । जैसे कोई मद्यपान करके उलटे नीचचेष्टाकरे तो जब मद उतरताहै तब पछताताहै तैसेही मनरूपी मृग अपनी पिछली चेष्टाको धिक्कार करताहै और कहताहै कि; बड़ा आश्चर्य है जो मैं इतने काल इस वृक्षसे विमुख हुआ भटकता रहा—अब मुझको शांति हुईहै। जैसे दिनकी तपन के अभाव हुयेसे चन्द्रमुखी कमलिनी को शांति होती है तैसेही मनरूपी मृगको शांति होतीहै। हे रामजी! पुत्र,धन,स्त्रियादिक जो दीखतेहैं उनको वह संकल्पपुर और स्वप्नवत् देखताहै। जैसे स्वप्नेसे जागकर कोई स्वप्नपुरको स्मरण करताहै परन्तु उसमें अभिमान नहीं होता तैसेही उसमें भी अभिमान नहीं होता। जब जीव अनुभवरूपी फलको पान करताहै तब बड़े आनन्द पाताहै जिसको वाणी नहीं कहसक्ती और शांत; निर्मल और निरतिशयपदको प्राप्त होताहै। जो मनका विषयहो सो सातिशयपदहै और जो मनका विषय नहीं वह निरतिशयपदहै। जो इन्द्रियोंका विषयहै उसका नाश भी होताहै और जो इन्द्रियां और मनका विषय नहीं उसका नाश नहींहोता। वह उसी अविनाशी पदको पाताहै। जैसे किसीको बाणलगताहै और उसकी विरोधीबूटी उसके सन्मुख रखिये तो निकल आताहै तैसेही अनुभवरूपी बूटीके सन्मुखहुये मोह बन्धनरूपी शर खुलपड़ते हैं और परमपद पाताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् जगत् से मृतक होजाताहै; उसको संसारका कुछ लेप नहीं लगता। जैसे लकड़ी बिना अग्नि शांत होजाती है तैसेही वासनासे रहित ज्ञानवानकी चेष्टा शांत होजाती है अर्थात् संसार की सत्यतासे रहित चेष्टा होती है और फिर संसाररूपी अग्नि नहीं उदय होती। तब द्वैत और एक कल्पना भी मिटजाती है और उन्मत्तकी नाईं अपने स्वरूपमें घुर्म रहता है जैसे मरुस्थलकामार्ग चलनेवाला धूपकीइच्छा नहींकरता तैसेही ज्ञानी विषयकीतृष्णा नहीं करता। जिसने आत्मअनुभवरूपी अमृतपान कियाहै उसको विषयरूपी कांजी की इच्छा नहीं रहती—वह पुरुष सदा निर्वासी है। जब जीव निर्वासी होताहै तब चंचल जो मनकी वृत्तिहै सो सब लीन होजातीहै और केवल आत्मत्वमात्रपद रहता है 'मैं' 'मेरा'इत्यादि भावना नष्ट होजाती है। जब तक चित्तका सम्बन्ध होताहै तबतक 'मैं' और 'मेरा' भासताहै और जब चित्तका सम्बन्ध मिटजाताहै तब एकाकार होजाता है। जैसे एक सूखा काष्ठ होताहै और एक गीला काष्ठ होताहै;सूखा तो शुद्ध कहाता है और गीला उपाधिक कहाताहै और जब जल सूखगया तब वह भी शुद्ध होताहै;तैसेही जब मनकी उपाधि नष्ट होतीहै तब शुद्ध आत्माही रहताहै और एकरस भासताहै।

हेरामजी! संसार द्वितीय भ्रमसे भासताहै। जैसे पत्थरकी शिलामें पुतली अनउपजीही भासती हैं सो न सत्हैं और न असत्हैं; यदि पत्थरसे भिन्न करके देखिये तो सत्नहीं और जो शिलामें देखिये तो वेही रूपहै; तैसेही जगत् आत्मा से भिन्न सत्य नहीं और आत्मसत्तामें आत्मरूपहै। जैसे छोटे बालकके हृदयमें जगत्का शब्द अर्थ नहीं होता; तैसेही ज्ञानीकी चेष्टा भी प्रारब्ध वेगसे होतीहै और उसके हृदयमें जगत्के शब्द अर्थ का अभावहै। हेरामजी! जो कुछ प्रारब्ध होतीहै सो अवश्य उसको भी प्राप्त होतीहै, मिटती नहीं; शुभहो अथवा अशुभहो। जैसे मेघसे गिरतीहुई बूंद नहीं नष्ट होती मेघ मंत्रशक्ति से नष्ट होताहै; तैसेही प्रारब्ध कर्म उसका भी नष्ट नहींहोता परन्तु वह उनमें बन्धायमान नहीं होता। अज्ञानीके हृदयमें संसार सत्य भासताहै और भिन्नभिन्न पदार्थ संयुक्त भासताहै; क्योंकि, उसे पदार्थका ज्ञानहै पर ज्ञानीके हृदयमें आत्माका ज्ञानहै उस को संसारकी सत्यता नहीं भासती। हेरामजी! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैंने तुमसे कहा है उसकी विधि संयुक्त सेवाकरनेसे अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है और जो बोधसे रहित होकर सेवन करताहै तो अनेक यत्नसे भी फलकी प्राप्ति न होती क्योंकि; उसे ऐसी भावना नहीं होती कि; आत्माशुद्ध है और सत्-चित्-आनन्द है। जिनको यहभावना प्राप्त होतीहै उनको भोगोंकी इच्छा नहीं रहती। जैसे किसीने अमृतपान कियाहो तो अमल और कटुक फलकी बांछा नहीं करता तैसेही ज्ञानी किसीकी इच्छा नहीं करता। जैसे रुई के फाहे को अग्नि लगे और ऊपर से तीक्ष्ण पवन चले तो नहीं जाना जाता कि, कहां जापड़ा; तैसेही जगत्रूपी रुईका फाहा ज्ञान अग्निसे दग्ध किया हुआ और वैरागरूपी पवन से उड़ाया नहीं जाना जाता कि, कहां जापड़ा। तब आकाशही आकाश भासताहै और जगत् सत्यनहीं भासता तो फिर तृष्णा किसकीकरे-तब वह तृष्णासे रहित स्थित होताहै। हेरामजी! दुःखका मूल तृष्णाहै; तृष्णाहीसे भटकताहै। जैसे जबतक पर्वतोंके पंखथे तबतक वे उड़तेथे, पंख विना उड़नेसे रहित होकर गंभीरस्थित होरहे हैं; तैसेही जबमनसे बासना नष्ट होती है तबमन स्थिर होजाता है। हे रामजी! बांछित देशको बिदेशी तबजा प्राप्त होता है जब एकदेशका त्याग करताहै; तैसेही शुद्धस्वरूप परमानन्द अपना आप आत्मा तब प्राप्तहोताहै जब धन, लोग और पुत्र इषणाका त्यागकरे। जब आत्मा की प्राप्ति होती है तब निर्विकल्प समाधि से निर्विकल्प चैतन्यका साक्षात्कार होताहै और जब समाधिमें उसका साक्षात्कार होताहै तब उत्थान कालमेंभी समाधिमें स्थित रहताहै; परम निर्वाणपदको प्राप्त होताहै और चित्तरूपी बेलि दूरहोजाती है। जैसे रस्सीमें जो बलहोता है तो उसको खेंचकर फिर छोड़ते हैं तब वह सीधी होजाती है; तैसेही जिसको समाधिमें चैतन्य का साक्षात्कार होताहै उसको उत्थानकालमेंभी वही भासताहै और जिसको उसका

प्रमादहै उसको जगत् भासताहै। हे रामजी! वस्तुएकहै परन्तु उसमें दो दृष्टि हैं। जैसे रस्सीएकहै पर सम्यक्‌दर्शीको रस्सी भासती है और असम्यक्‌दर्शी को सर्पहो भासताहै; तैसेहीज्ञानवान्‌को आत्मा भासताहै और अज्ञानीको जगत् भासताहै। जिस पुरुषने ज्ञानसे जगत्‌को असत्य नहींजाना वह मानो चित्रकी अग्नि है उससे कोई कार्यसिद्धनहींहोता और जिसको स्वरूपकीइच्छाहै औरजोतृष्णाके नाशकरनेका प्रयत्न करताहै और जगत्‌को मिथ्या विचारता है वह आत्मपदको प्राप्तहोगा और उसकी तृष्णाभी निवृत्त होजावेगी। हे रामजी! ज्ञानवान् की तृष्णा स्वाभाविक मिटजाती है। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार मिटजाता है तैसेही वस्तुकी सत्तापाकर उसकी तृष्णा नष्ट होजाती है और परमपदमें स्थितहोता है। हे रामजी! जिसको दृश्य में निरसता है वह उत्तम पुरुष है, वह मनुष्य शरीरपाकर ब्रह्महोता है; उसको मेरा नमस्कार है और वह मेरा गुरुहै। हे रामजी! जब जीवकी बुद्धि विषय से विरस होती है तब कल्याण होता है। वैराग से बोधहोता है और बोध से वैराग होता है क्योंकि; परस्पर दोनों सम्बन्धी हैं—जबएक आताहै तब दूसराभी आताहै। जब यह आतेहैं तब तीनोंईषणा निवृत्त होजाती हैं और जब तीनों ईषणा होती हैं तबअमृत की प्राप्तिहोतीहै। हे रामजी! सन्तोंके संग और सत्‌शास्त्रोंके सुननेसे अपने स्वरूप का अभ्यासकरो—इससे आत्मपदकी प्राप्तिहोती है। यहतीनों परस्पर श्रेष्ठहैं। जैसे आठपांव वाला कीट प्रथमचरण को रखकर और चरणको रखताहै तबसुखसे चला जाताहै, तैसेही सन्तोंके संग और सत्‌शास्त्रोंके सुननेसे जो आत्मपदका अभ्यासकरता है वह शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होताहै और उसेजगत् का अभाव होजाताहै। हे रामजी! जगत्‌के भाव और अभावको ज्ञानी जानताहै। जैसे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिको तुरीयावाला जानताहै; तैसेही जगत्‌के भाव अभावको ज्ञानी जानता है। जैसे अग्निमें सूखातृण डाला दृष्ट नहीं आता, तैसेही ज्ञानवान्‌को जगत् नहीं दृष्ट आता। हेरामजी! ज्ञानवान्‌को सर्वदा समाधिहै, कदाचित् उत्थान नहींहोता। जबतक उसपदको प्राप्त न हो तबतक साधनामें लगारहे और जब उसपदको प्राप्तहो तबफिर कोई यत्ननहीं रहता। हे रामजी! इसचित्तके दोप्रवाहहैं—एकतो जगत्‌की ओरजाताहै और दूसरास्वरूपकी ओर जाताहै। जो जगत्‌की ओर जाताहै सो उपाधिकहै और जो स्वरूपकी ओर जाताहै सो उपाधिको दूरकरनेवाला है। जैसे एक लकड़ी गीली और एकसूखी होतीहै; जो गीलीहै उसमें उपाधि जलहै सो फैलजाताहै और जब जल नष्टहोजाताहै तबवह शुद्धहोतीहै फिर प्रफुल्लित नहीं होती; तैसेही संसार की सत्यतासे चित्तबद्ध होताहै और जब संसारकी वासना नष्टहोती है तब शुद्धपद पाताहै। हे रामजी! वाद जो करतेहैं सो भी दो प्रकारके हैं; जो वाद किसीको दुःख

दे उसेमूर्ख करते हैं और जो परस्पर मित्रभावसे निरूपण तत्त्व का करे सो ज्ञानवान् करतेहैं। जैसा जो वादकरतेहैं उसका उन्हें दृढ़अभ्यास होताहै और तैसाही रूपहोजाताहै। जो कष्ट और झगड़ा करतेहैं उनका वहीरूपहोजाताहै और जो मित्रतासे स्वरूप का वाद करतेहैं तोवही रूप होताहै—उसपदको पाकर परमशांतिहोतीहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमनमृगोपाख्यानयोगोपदेशो-
नामशताधिकपंचषष्टितमस्सर्गः १६५॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपूर्वार्द्धसमाप्ताः॥

——*——

श्रीगणेशायनमः ॥
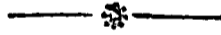
अथ श्रीयोगवाशिष्ठे ॥

निर्वाणप्रकरणेउत्तरार्द्धंप्रारभ्यते ॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! जिस पुरुषने समाधान रूपी वृक्षके फलको जानकर पान कियाहै और उसको पचायाहै उसे परमस्थिति प्राप्तहोती है। जैसे पंखटूटेसे पर्वत स्थित होरहेहैं; तैसेही तृष्णारूपी पंखके टूटेसे जीवास्थितहोताहै। हे रामजी ! जब उसको फल प्राप्तहोता है तब उसका चित्तभी आत्मरूप होजाताहै। जैसे दीपकनि-र्वाणहोताहै तब जाना नहीं जाता कि,कहांगया; तैसेही आत्मपदके प्राप्तहुये चित्त भिन्नहोकर दिखाई नहीं देता। हे रामजी ! जबतक वहअकृत्रिम आनन्द प्राप्तनहीं हुआ और उसपदमें विश्रांति नहीं पाई तबतक शांतिप्राप्त नहीं होती। वहपद नि-र्गुण,शुद्ध,स्वच्छ और परमशांत है जबउस पदमें स्थितिहोती है तबपरम समाधिहो जातीहै। ऐसात्रिलोकीमें कोई नहीं जो उसको उतारे। जैसे चित्रकी मूर्त्तिहोती है तैसेही उसकी अवस्था होतीहै और उसकी सब चेष्टा इच्छासे रहित होतीहै। जैसे पंखसे रहित पर्वत स्थितहोताहै तैसेही मन अमन होजाताहै और शांतिपदकोप्राप्त होताहै। हे रामजी ! जिसके मनमें संसारका अभावहुआ है वह शांतिपदको प्राप्त होता है और जो वासना संयुक्त है तो मनहै। जिसक्रम और युक्तिसे वासनाक्षयहो सोही कर्त्तव्यहै। हे रामजी ! जब वासना क्षयहोती है तबबोधरूप शेषरहताहै, इस-लिये जिस क्रमसे वहप्राप्तहो वही किया चाहिये क्योंकि; उसपदके प्राप्तहुये बिना शांतिकदाचित् न होगी। जब चित्तउसपदकी ओर आवे तब शांतहोकर दुःखसे रहित और अविनाशीहो क्योंकि; सर्व आत्मानिर्विभाग; अनन्त परम शांतिरूप और सब को कर्मकेफल का देनेवालाहै। हे रामजी ! जब ऐसेपदको जीव प्राप्तहोताहै तबउस को उत्थानकालमें भी आत्माही भासताहै द्वैतनहीं भासता तो समाधिसे उत्थान कैसे हो ? ऐसा कोई समर्थ नहीं कि,उसको समाधिसे उतारे। जब ऐसापद प्राप्त होताहै तब संसार बिरस होजाताहै। हे रामजी ! जबतक मनुष्य मूर्त्तिवत् नहीं होता तबतक

ऐसा जो पुरुषहै उसको सदासमाधिहै। हे रामजी! जिसको समाधिका सुखआताहै वह स्वाभाविक समाधिकी ओर आताहै। जैसे वर्षाकालकी नदी स्वाभाविक समुद्र को जातीहै तैसेही वह पुरुष समाधिकी ओर लगारहता है। जो पुरुष विषयोंसे निरीच्छित और आत्मारामी होताहै उसको वज्रसारकी नाईं स्थितिहोती है। जैसेपंख से रहित पर्वतस्थित होतेहैं तैसेही जिस पुरुषने संसारको विरसजानकर त्यागकिया है और आत्मामें क्रीड़ाकरके तृप्तहुआ है उसकाध्यान चलायमान नहीं होता। हे रामजी! जिस पुरुषकी चेष्टाभी होती है पर संकल्प विकल्पसे रहितहै वह सदा मुक्त रूपहै; उसको कोई क्रिया बन्धमान नहीं करतीं क्योंकि:क्रिया और साधनका अभाव होजाता है। जिसपुरुषको जगत् विरस होगया है उसको विषयोंकी तृष्णा कैसे हो और जब तृष्णा न रही तब दु:ख कैसेहो? दु:ख तबतक होताहै जबतक विषयों की तृष्णाहोतीहै और विषयों की तृष्णा तब होती है जब अपने स्वभावको त्यागता है। हे रामजी! जब अपने स्वभावमें स्थितहो तब परस्वभाव जो इन्द्रियोंके विषय हैं सो रससंयुक्त कैसे भासें और दु:ख और तृष्णा कैसेहो? हे रामजी! जब अपने स्वभाव को जानताहै तब उसपरम निर्वाणपद को प्राप्तहोताहै जो आदि और अन्त से रहित है। तिसकी प्राप्तिका उपाय यहहै कि, वेदका अध्ययन करना और प्रणवका जपकरना। जब इनसेथके तब समाधिकरे और जब फिरथके तब वहींजा पाठकरे। जब ऐसेदृढ़ अभ्यासहो तब उस पदको प्राप्तहोवेगा जो संसारके पार गमनका मार्ग है और जब उसको पाया तब परम शांतिको प्राप्तहोवेगा और स्वच्छ निर्मल अपने स्वभावमें स्थितहोवेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वभावसत्तायोगोपदेशो-
नामशताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः १६६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार बड़ा गम्भीरहै और इसका तरना कठिन है जिसको इससे तरनेकी इच्छाहो उसको यहकर्त्तव्यहै कि, वेदका अध्ययन; प्रणवकाजाप और चित्तको स्थितकरे। जब ऐसा उपायकरे तब ईश्वर उसपर प्रसन्नहोंगे और उसके हृदयमें विवेकरूपकण उत्पन्नहोगा जिससे संसार असत्यभासेगा और संतजनोंका संग प्राप्तहोगा; जिनका शुभ आचारहै और जो परमशीतल और गंभीर ऊंचे अनुभवरूपी फलसंयुक्त वृक्षहैं और यश, कीर्त्ति और शुभआचाररूपी फूल और पत्रोंसहितहैं। ऐसे संतजनोंकी संगति जबप्राप्त होतीहै तब जगत्के रागद्वेषरूपी तमभिटजाते हैं। जैसे किसी मजूरके शिरपर भारहो और तपनसे दु:खीहो परजब वृक्षकी शीतल छाया प्राप्त हो तब शीतलहोता है और फलके भक्षणसे तृप्तहोताहै और थकानका कष्ट दूर होजाताहै, तैसेही सन्तोंके संगसे सुखको प्राप्त होताहै। जैसे चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल

होताहै तैसेही सन्तजनोंके वचनोंसे शांतिहोती है। हे रामजी ! सन्तजनोंके दर्शनकिये से पापदग्ध होजातेहैं जो पुरुष सकाम तप, यज्ञ और व्रत करते हैं उनकी संगति न कीजिये क्योंकि; वे ऐसे हैं जैसे यज्ञका थंभा जो पवित्रभी होता है परन्तु उसकी छाया कुछ नहीं इससे उसके नीचे कोई सुख नहीं पाता । हे रामजी ! सब सकाम कर्म जन्ममरण देनेवाले हैं । यद्यपि यज्ञ, व्रत और तप जिज्ञासी भी करते हैं तौभी उनसे विशेष हैं क्योंकि; निष्काम हैं । उनको विषयों में विरसभावना है और उनका शुभ आचार है । हे रामजी ! ऐसे जिज्ञासी की संगति विशेष है जिसकी चेष्टा की सब कोई स्तुति करता है और जो सबको सुखदायक भासता है । जो जिज्ञासी नवनीतवत् कोमल, सुन्दर और स्निग्ध होता है उसको सन्तों की संगति प्राप्त होती है । हेरामजी ! फूलोंके बगीचे और सुन्दर फूलोंकीशय्या आदिक विषयोंसे भी ऐसा निर्भय सुख नहीं प्राप्त होता जैसा निर्भय सुख सन्तों की संगति से प्राप्त होता है क्योंकि, उनका निश्चय सदा आत्मा में रहता है । हे रामजी ! ऐसे ज्ञानवानों की संगति करके जब हृदय शुद्धहोता है तब आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है और जबतक हृदय मलिन है तबतक प्राप्ति नहीं होती । जैसे उज्ज्वलआरसी प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है और लोहेकी शिलाप्रतिबिम्ब को नहीं ग्रहण करती; तैसेही जब हृदय उज्ज्वल होता है तब सन्तों के वचन हृदय में ठहरते हैं। और जैसे वर्षाकालका बादल थोड़ेसे बहुत होजाता है तैसेही जब हृदय शुद्ध होता है तब बुद्धि बढ़ती जाती है । जैसे वनमें केलेका वृक्ष बढ़ताजाता है तैसेही बुद्धि बढ़तीजाती है । जब आत्म विषयिणि बुद्धि होतीहै तब वहीरूप होजाता है और बुद्धिकी भिन्नसंज्ञा का अभाव होजाता है जैसे लोहेको पारसका स्पर्श होता है तब सुवर्ण होजाता है और फिर लोहेकी संज्ञा नहीं रहती तैसेही आत्मपदकी प्राप्तिहुये बुद्धि की संज्ञा नहीं रहती और विषय भोगकी तृष्णा भी नहीं रहती। हे रामजी ! विषयों की तृष्णा और अभिलाषाने जीवको दीन किया है; जब तृष्णा का त्यागकरे तब परम निर्मलता को प्राप्तहोता है । जैसे हस्ती शिरपर मृत्तिका डालताहै तबतक मलीन है और जब नदीमें प्रवेशकरता है तब निर्मल होजाता है; तैसेही जब जीव तृष्णारूपी राखका त्याग करता है और आत्मा में स्थित होता है तब निर्मल होताहै । हे रामजी ! जब भोगोंकी इच्छा त्यागताहै तबबड़ी शोभा धारताहै। जैसे सुवर्ण को अग्नि में डालनेसे उसका मैल जलजाता है और उज्ज्वलरूप धारता है । हे रामजी ! भोगरूपी बड़ा विषहै; उसको दिन दिन त्यागकरना विशेष है । जब तृष्णाका त्यागकरता है तब मुख भी बड़ी शोभा से शोभताहै जैसे राहु दैत्य से रहितहुआ चन्द्रमाका मुख शोभापाता है तैसेही तृष्णाके वियोगहुये पुरुषका मुखशोभताहै । हे रामजी ! जब भोगों से वैराग

होता है तब दो पदार्थों की प्राप्ति होती है। जैसे नूतन अंकुर के दोपत्रहोतेहैं तैसेही तृष्णाके त्यागसे एकतो सन्तोंकी संगति और दूसरा सत्शास्त्रका विचार उत्पन्नहोता है। और उनमें जब दृढ़भावना होतीहै तब अभ्यासकरके वही परमानन्द रूप होता है जिसकोवाणी की गम नहीं। तब भोगों की इच्छासे मुक्त होता है और परमशांत सुख पाता है। जैसे पिंजरेसे निकलकर पक्षी सुखी होता है तैसेही वह सुखीहोता है। हे रामजी! जीवको भोगकी इच्छानेही दीनकिया है। जब इच्छा निवृत्त होती है तब गोपदकी नाईं संसार समुद्रको लांघजाताहै और तब उसको तीनों जगत् सूखे तृणकी नाईं भासते हैं। हे रामजी! जब वह भोगकी इच्छासे मुक्तहोता है तब ईश्वरहोता है। जिसपुरुष को आत्मसुख प्राप्तहुआहै वह भोगोंकी इच्छा कदाचित् नहींकरता और जबवे आन प्राप्तहोते हैं तब भी उसको विरस और मिथ्या भासतेहैं इससे उनके भोगको नहीं चाहता। जैसे जालसे निकला हुआ पक्षी फिर जाल को नहीं चाहता तैसेही वह पुरुष भोगों को नहीं चाहता। जब विषयों की तृष्णा निवृत्त होती है तब परम शोभा पाता है और संतों के वचन उसके हृदय में शीघ्रही प्रवेश करते हैं। हे रामजी! मोक्षरूपी स्त्री के कानों के भूषण संतोंकी संगति है। जब साधुकी संगति होती है तब अशुभ क्रियाका त्याग होजाता है और बिरानेधनकी इच्छा नहीं रहती। तब जो कुछ अपना होता है उसके भी त्यागने की इच्छा होती है और भलेभोग जो भोगने के निमित्त आतेहैं उनको विभागदेकर खाता है। निदान बड़े उत्तम भोगोंसे लेकर सागपर्यंत जो कुछ प्राप्त होता है उसमें से देकरखाता है। तथाशक्ति जब ऐसे प्रमाण हुआ तब फिर ऐसा होजाताहै कि; यदि कोई शरीर मांगता तो शरीर भी देता है क्योंकि; उसको देनेका अभ्यास होजाताहै पर और से साग मांगनेकी भी इच्छा नहीं रखता उसीमेंसंतोषसे यथा प्राप्त चेष्टा और तप, दानकरताहै; यज्ञ, व्रत और ध्यान करके पवित्र रहताहै और तृष्णाका त्यागकरताहै। हे रामजी! ऐसादुःख क्रूरनरकमें भी नहीं होता जैसा दुःख तृष्णासे होताहै। जो धनवान्हैं उनको धनके उपजनेकी चिन्ताहै; रखनेकी चिन्ताहै और उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते, सोते सदाधनकीही चिन्तारहती है। इसही चिन्तामें वे मचिमचि मरजाते हैं और फिरजन्मते हैं। हे रामजी! निर्द्धन को भी चिन्ता रहती है परन्तु थोड़ीहोती है। जबतक चिन्ता रहती है तबतक दुःखी रहताहै परजब चिन्ता नष्टहोती तब परमसुखी होताहै। हे रामजी! यद्यपि धनीहो और उसे संतोष नहीं तो वह परम दरिद्री है और जो धनसे हीन है परन्तु संतोष-वान् है वह परम ईश्वर है। जिसको संतोष है उसको विषय बन्ध नहीं करसक्ते। हे रामजी! जबतक धनकी इच्छा नहींकी तबतक भोगरूपी विषनहीं लगता और जब धनकी इच्छा उपजतीहै तब परम विष लगताहै; विपरीत भावनामें दुःख होताहै और

जोदुःखदायक पदार्थ हैं उनको सुखदायक जानताहै । हेरामजी! जोकुछ अर्थ है वही अनर्थ है; जिसको संपदा जानाहै वही आपदाहै और जिनको भोगजानाहै वहीसब रोगरूप हैं । इनको संपदा जानकर बिचरताहै इससे बड़ादुःखी होताहै । हे रामजी ! रसायन सबदुःख नाशकरती है परन्तु वह देवताओंके पास होती है । यदि अमृत चाहिये तो संतोष परम रसायन है । जब विषयोंमें दोषदृष्टि होती है और संतोषधारण करता है तब मूर्खता दूरहोजाती है और गोपदकी नाईं संसार समुद्र से शीघ्रही तरजाता है । जैसे गोपदको सुगमही लंघजाते हैं तैसेही संसार समुद्रको वह सुगम तरजाताहै । हे रामजी ! जिसको संतोष प्राप्त होताहै उसको परम शान्ति होती है । कदाचित् बसन्तऋतुभी सुखका स्थानहो; नन्दनवनभी सुखका स्थानहो; उर्वशी आदिक अप्सराहों; चन्द्रमा विद्यमान बैठाहो; कामधेनु विद्यमानहो और इन्द्रियोंके सब सुख विद्यमानहों तो भी शान्तिनहोगी परन्तु एक संतोषसेही शांतिहोगी । संतोषवान् को यह विषय चला नहींसक्के । हे रामजी ! जैसे अर्घा भरभर छोड़नेसे तालाब नहीं भराजाता और जब मेघके जलकी बर्षा होतीहै तब शीघ्रही भरजाताहै; तैसेही विषयके भोगनेसे शांति नहीं होती पर संतोष से पूर्ण आनन्द और ओजकी प्राप्ति होतीहै । गम्भीर, निर्मल, शीतल, हृदयगम्य और सबका हितकारी ओज संतोषीपुरुषोंको प्राप्तहोता है । और जो ओज हैं वे सात्विकी, राजसी और तामसी होतेहैं पर यह शुद्धसात्विकी है । जिस पुरुषको संतोष होताहै वह ऐसे शोभताहै जैसे वसन्तऋतुका वृक्ष फूल, फल और पत्रों से शोभापाता है और जिसको तृष्णाहै वह चरणों के नीचे आये कीटवत् मर्दन होताहै । हे रामजी ! जिसको तृष्णाहै उसको संतोष और शान्ति कदाचित् नहीं होती । जैसे जलमें डाला तृणोंका पूला तीक्ष्ण पवनसे बड़ेक्षोभको प्राप्त होताहै तैसेही तृष्णावान् पुरुषको क्षोभहोताहै । हेरामजी ! जोपुरुष अर्थके निमित्त सदाइच्छा करता है वह अग्निमें प्रवेश करताहै अर्थात् सर्वदाकाल तपता रहताहै और जैसे गर्दभविष्ठाके स्थानमें प्रवेश करता है तैसेही तृष्णावान् जो विषयरूपी स्थान में प्रवेश करता है सो गर्दभहै । जैसे गर्दभ के साथ स्पर्श करना योग्य नहीं तैसेही तृष्णावान् गर्दभ से स्पर्श करना योग्य नहीं है । हे रामजी ! यह संसार मिथ्याहै; जो इस संसारके पदार्थों को चाहताहै वह मूर्खहै । इस जगत् के अधिष्ठानके प्राप्तहोनेसे निर्वासनिक होता है और जब निर्वासनिक होताहै तब संतोष को प्राप्त होताहै । तब ऐसा होताहै जैसे त में चन्द्रमा शोभापाताहै—इससे इच्छा के नाश करनेका उपाय करो । हे रामजी ! जब इच्छा नष्ट होती है और संतोषरूपी गंभीरता प्राप्त होकर द्वैत कलना मिटती है तब उसीको पण्डित परमपद कहते हैं । यहपद कैसे प्राप्त होताहै सोभीश्रवणकरो । हे रामजी ! जब संसारसे बैराग, संतोंकीसंगति और सत्शास्त्रोंके अर्थों और आत्मा

में दृढ़भावना होती है तब जगत् बिरस होजाताहै अर्थात् जगत् असत् भासताहै, हृदयमें शांति होतीहै; स्वाभाविक आपको ब्रह्म जानने लगताहै और प्रच्छन्नता मिटजाती है। जबतक आपको प्रच्छन्न जानता था तबतक सब दुःखका अनुभव करता था और जब संतोंकी संगति और सत्शास्त्रों से जगत् बिरस हुआ तब परमपदको प्राप्त होता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षोपदेशोनामशताधिक सप्तषष्टितमस्सर्गः १६७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब संसारसे वैराग होताहै तब संतोंकी संगतिहोती है; फिर शास्त्र सुनता है तब संपूर्ण जगत् बिरस होजाता है। जब जगत् बिरस हुआ और आत्मा में दृढ़ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभाव सत्ता प्रकाशित होतीहै, उसी स्वभाव सत्तामें स्थितहुये तब परमानन्द की प्राप्तिहोतीहै जिसमें बाणीकी गमनहीं। हे रामजी! जब यह अवस्था प्राप्त होतीहै तब मन अमन होजाताहै; अर्थोंकीतृष्णा नहीं रहती; जो अपने पास होताहै उसको रखनेकी भी इच्छा नहीं रहती—सहज त्याग होजाता है—और पुत्र, धन, स्त्रियादिक सब बिरस होजाते हैं। यद्यपि वह इनके बीच भी रहता है तोभी इनमें, 'अहं, 'मम, अभिमान नहीं करता। जैसे मजदूर किसीमार्गमें आ उतरता है और मार्गवालेसे कुछ संबन्ध नहीं रखता तैसेही वह किसी विषयसे सम्बन्धनहीं रखता और जो अनिच्छित इन्द्रियोंके सुखप्राप्त होते हैं उनमें रागद्वेष नहीं करता। जैसे किसी पत्थरकी शिलापर जल चला जाता है तो उसको कुछ राग द्वेष नहीं होता, तैसेही ज्ञानवान् को राग द्वेष किसीमें नहींहोता। हे रामजी! उसके शरीरकी यह स्वाभाविक अवस्था होजाती है कि, वह एकांत को चाहताहै और वन और कन्दरामें रहनेकी इच्छा करताहै। मुमुक्षु को अज्ञानके स्थान स्त्रीभोग, राग—द्वेष के इष्ट—अनिष्ट भी जो दैवसंयोग से प्राप्त होते हैं तौभी शीघ्रही त्यागदेता है। हे रामजी! जब क्षेत्रमें बीज डालना होताहै तब पहिले जो कांटा आदि होतेहैं उन्हेंफडुवे से काटकर दूर कियाजाता है तब खेत अच्छा और सुन्दर फलता है; तैसेही जिस पुरुष को मनरूपी क्षेत्रमें अनुभवरूपी फल देखना हो सो इच्छारूपी कंटक और वृक्षों को अनिच्छारूपी फडुवेसे काटे और सन्तोषरूपी बीजको बोवे तो क्षेत्र भी सुन्दर फलेगा। हेरामजी! जब अनुभवरूपी फल प्राप्त होताहै तब मनुष्य सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल होजाताहै और सर्वआत्मा होकर स्थित होता है। हे रामजी! जब चित्त अदृश्य होताहै तब द्वैतभावना मिटजातीहै और जब द्वैतभावना मिटी तब चित्त अदृश्यको प्राप्त होताहै। उस चित्तको जो उपशमका सुख होताहै सो वाणीसे कहा नहीं जाता—उसका नाम निर्वाण पद है। जब ईश्वरकी भक्ति करता है और दिन रात्रि

चिरकाल पर्यन्त भक्ति करतारहताहै तब ईश्वर प्रसन्नहोताहै और निर्वाणपदकी प्राप्ति होतीहै। रामजीने पूछा,हे भगवन्! सर्व तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! वह कौन ईश्वर है और उसकी भक्ति क्याहै जिसके करनेसे निर्वाणपदको प्राप्त होताहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह ईश्वर दूर नहीं;उसमें भेदभी कुछ नहीं और दुर्लभ भी नहीं क्योंकि;अनुभव ज्योतिहै और परमबोध स्वरूपहै। सर्व जिसके वशहै; जो सर्वहैं और जिससे सर्वहै उस सर्वात्माको मेरा नमस्कारहै। हे रामजी! सब कोई उसीको पूजते हैं। जाप, मंत्र,तप,दान,होम जो कुछ कोई करताहै सो सर्वही उसको पूजतेहैं। देवता,दैत्य, मनुष्य जो कुछ स्थावर–जंगम जगत्है वे सब उसीकोपूजतेहैं और सबको फलदेनेवाला भी वहीहै। उत्पत्ति और प्रलयमें जो पदार्थ भासते हैं वे सब उसीसे सिद्ध होतेहैं–ऐसा वह ईश्वरहै। जब उस ईश्वरकी प्रसन्नता होतीहै तब वह अपना एकदूत जो शुभक्रिया संयुक्त पवित्रहै भेजताहै। रामजीनेपूछा,हे भगवन्! ईश्वर जो अद्वैतआत्मा शुद्धब्रह्महै उसका दूत कौनहै और वह कैसे आताहै सो मुझे कहिये? वशिष्ठजीने कहा,हे रामजी! वह ईश्वर जो परमदेवहै उसका दूत विवेकहै और हृदयरूपी गुफा में उदयहोताहै। जब वह उदय होताहै तब उससे परम शोभा प्राप्त करताहै। जैसे चंद्रमाके उदयहुये आकाश शोभा पाताहै तैसेही वहपुरुष शोभापाताहै। हे रामजी! जब विवेकरूपी दूतआताहै तब जीवको संसारसेपवित्रकरताहै। प्रथम बासनारूपीमैलसे भराथा और चिन्तारूपी शत्रुने बांधाथ परजब विवेकरूपी दूत आताहै तब चित्तरूपी शत्रुको मारता है और बासनारूपी मैलको नाश करके देवकेनिकट लेजाताहै। जब उस देवका दर्शन होता है तब परमानन्दको प्राप्तहोता है और बड़ा सुख पाता है। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र में मृत्युरूपी भँवर है; तृष्णारूपी तरंग है, अज्ञानरूपी जल है और इन्द्रियां रूपी तँदुये हैं। उसीसमुद्रमें यह जीवपड़े हैं जब विवेकरूपी नौका अकस्मात् प्राप्त होती है तब संसार समुद्रसे पारहोते हैं। हे रामजी! जीवप्रमादसेही जड़ताको प्राप्त हुये हैं। जैसे जलशीतलता से ओलेकी संज्ञाको पाताहै तैसेही प्रमादसे जीव संज्ञा को पाताहै और बासना से ढपगयाहै पर जब अन्तर्मुखहोताहै तब उसदेवके सन्मुख होता है और वह देवप्रसन्न होता है। उसजीवके सहस्रशीश, सहस्रपद, सहस्रभुजा, सहस्रनेत्र और सहस्रकर्ण हैं। सर्वचेष्टाका वहीकर्त्ता है और देखता, सुनता, बोलता और चलताभी वही है और अपने स्वभाव सत्तासे प्रकाशताहै। जैसे सब घटोंमें चलनाशक्ति पवनकी है तैसेही प्रकाश शक्ति उसदेवकी है जब जीव उसकेसन्मुख अन्तर्मुख होताहै तब वह प्रसन्नहोके विवेकरूपी दूत भेजताहै तब इसको संत की संगति होती है और सत्शास्त्रोंको सुनकर उनके अर्थमें दृढ़भावना होती है और वह विवेकरूपी दूत इसको अदृश्यतामें प्राप्तकरताहै तब यहशून्य होजाताहै। फिर

यहशून्यकोभी त्यागकर बोधमात्रमें स्थितहोताहै तब पूर्णआनन्द प्राप्त होताहै। हे रामजी! मनुष्य आनन्द स्वरूप है और यहविश्वभी अपना आपहै परंतु अज्ञान से भिन्न भासताहै। जैसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा; मरुथल में जल और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रांतिसे जगत् भासताहै पर भूतोंके भीतर बाहर और अध-ऊर्ध्वमें सब ब्रह्मदेवही व्यापरहाहै और स्थावर; जंगमआदि सब जगत् उसीआत्म-तत्त्वके आश्रय फुरताहै; इससे वहीस्वरूपहै और वही सबकोधाररहाहै। वही ईश्वर ब्रह्महै और गम्भीर, साक्षी, आत्मा, ओंकार, प्रणव सब उसी के नाम हैं। जब ऐसे ईश्वरकी कृपाहोती है तब जीव अंतर्मुखहोकर शुद्ध और निर्मल होताहै। हे रामजी! जब हृदय शुद्धहोताहै तब आत्मपदकी ओर भावनाहोती है कि; सब आत्माहीहै। जब यहभावना होती है सोही भक्तिहै—तब वह ईश्वर कृपाकरके विवेकरूपीदूत भेजताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविवेकदूतवर्णनंनाम
शताधिकअष्टषष्ठितमस्सर्गः १६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब विवेककी दृढ़ता होती है तब जीव उस परमपदको प्राप्तहोताहै जो चेतसे रहित चैतन्यघनहै। तब चेतका सम्बन्ध टूटजाताहै और जब चेतका सम्बन्धटूटा तब विश्वका क्षयहोजाताहै;जब विश्वक्षयहुआ तब बासनाभी नहीं रहती। हे रामजी! यह जगत् भी फुरने से है। जब जीव शुद्ध चैतन्यमें चैत्योन्मुखत्व होताहै तब मनोमात्र शरीर होता है जिसको अन्तवाहक कहते हैं और जब बासना की दृढ़ता होती है तब अधिभौतिक भासने लगता है। हे रामजी! इसका उत्थानही अनर्थका कारणहै;जब यह चेतनभावहोताहै तब इसको अनर्थकीप्राप्तिहोतीहै और मैं-मेरा इत्यादिक जगत् भासि आता है; जो यह न हो तो जगत् भी न हो;इसके होने सेही जगत् भासताहै। इससे मेरा यही आशीर्वादहै कि,तुम चेतनतासे शून्य होजाओ और अहंतारूपी चेतनतासे रहित अपने बोधमें स्थितरहो। हे रामजी! मनसेही ज-गत् हुआहै सो मन और जगत् दोनों मिथ्या और शून्यहैं। रूप,अवलोक और नम-स्कार तीनोंका नाम जगत् है सो मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या शून्य है। जब इनका अभाव होताहै तब शून्यभी नहींरहता केवल बोधमात्र चेतनहोता है। हे रामजी! दृश्य, दर्शन और द्रष्टा ये तीनों भावनामात्र हैं; जब ये होतेहैं तब जगत् भासता है और जब अहंताका अभाव होताहै तब आत्मपद शेष रहताहै। जैसे सुवर्णमें भूषण होतेहैं तैसेही आत्मामें जगतहै दूसरीबस्तु कुछ नहीं बनी। वासनासे दृश्य भासतीहै सो वासना मनसे फुरीहै और मन अज्ञानसे हुआ है। जब मन अमनपदको प्राप्त होताहै तब दृश्यसब एकहीरूप होजाती है। जबतक वासना उठतीहै तबतक मन में शांति नहींहोती। जैसे कोई पुरुष भँवरी घुमाता है तो बलचढ़ते जाते हैं और जब

ठ.रताहे तब वह बल उतरजाताहै;तैसेही जबतक चित्तवासनाकरके भ्रमता है तबतक जन्मरूपी बल चढ़ते जातेहैं और जब चित्त ठहरताहै तब जन्मका अभावहोजाता है। हे राम ! जबतक चित्तका दृश्यके साथ सम्बन्ध है तबतक कर्मसे नहीं छूटता और जब चित्तका दृश्य से सम्बन्ध टूटताहै तब शुद्ध अद्वैतपद को प्राप्त होताहै। हे रामजी ! जब शुद्धचिन्मात्र में उत्थान होताहै तब उसका नाम चैत्योन्मुखत्व होता है; वही अहन्ता दृश्य की ओर फुरती जाती है तब प्रमाद होजाता है और जड़ता होतीहै। जैसे जल ओला होजाता है तैसेही चित्त शक्ति प्रमादसे जड़ होजाती है। जब दृढ़ वासना ग्रहण करताहै तब अन्तवाहक से अधिभूतिक अपना शरीर दृष्टि आताहै; फिर पृथ्वी आदिक भूत भासने लगते हैं और ज्योंज्यों चित्तशक्ति बहिर्मुख फिरतीजाती है त्यों त्यों संसार होताजाताहै । जब चित्तवृत्ति फुरने से रहित होकर अपने स्वरूपकी ओर आतीहै तब अपना आपही भासता है; द्वैत मिटजाताहै और परमानन्द अद्वैत पद भासता है । जब पूर्णबोध होताहै तब द्वैत और एक संज्ञा भी जाती रहती है केवल आत्ममात्र शुद्ध चैतन्य रहता है और ईश्वरसे एकताहोती है और जगत् की भास जातीरहतीहै। जब उसपद की प्राप्ति होतीहै तब दृश्यका अभाव होजाता है क्योंकि; जगत् भावनामात्र है। जैसे भविष्यकाल का वृक्ष श में हो तैसेही यह जगत् है क्योंकि; इसका अत्यन्त अभाव है–कुछ बना नहीं भ्रांति करके भासताहै। हे रामजी ! मेरे वचनोंका अनुभव तब होगा जब स्वरूपका ज्ञान होगा और तभी ये वचन हृदय में फुरेंगे । जैसे कथा वाले के हृदयमें कथा के अर्थ फुरते हैं तैसेही मेरे ये वचन आनफुरेंगे। हे रामजी ! जबतक मन फुरता है तबतक जगत् का अभाव नहींहोता और जब मन उपशम होताहै तब जगत्का अभाव होजाता है। जैसेस्वप्नेको जब स्वप्नाजानता है तब फिरस्वप्नेकेपदार्थोंकी इच्छानहींकरता पर जब तक सत्य जानता है तबतक इच्छा करता है। हे रामजी ! सब जीव वासना से ढँपे हुये हैं। जब वासना का क्षयहोता है उसीका नाम ज्ञान है । अज्ञानरूपी भूत इनको लगा है उससे उन्म होक जगत् भासता है और जगत् के भासने से नानाप्रकार की वासना दृढ़होगई है उससे दुःखपातेहैं। जब यह चित्तउलटकर अन्तर्मुखहो और आत्मा में दृढ़भावना करे तब ज्ञानरूपी मंत्र प्राप्त होता है और अज्ञानरूपी भूत जाता रहताहै । हे रामजी ! अनुभवरूपी कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही भानहोता है । हे रामजी ! प्रथम इसका शरीर अन्तवाह था और अपनास्वरूप भूला न था इससे आपको आत्माही जानताथा और जगत् अपना संकल्पमात्र भासताथा। जब उस संकल्प में दृढ़भावनाहुई तब वह शरीर अधिभूतिक भासनेलगा और जब उसमें दृढ़भावनाहुई तब देह और इन्द्रियां सब अपने में भासनेलगीं तो

इनके सुख दुःख को जाननेलगा और जब जगत् के सुख दुःख भासे तब सर्वआपदा प्राप्त हुईं पर वास्तवमें न कोई सुख है, न दुःख है और न जगत् है केवल भावना मात्र है। जैसी चित्तकी भावना होतीहै तैसेही आगे भासताहै। हे रामजी! जब यह भावना उलटकर अन्तर्मुख आत्माकी ओर होती है तब एकही बोधका भानहोताहै और जब एक बोधका भानहोता है तब द्वैत सब मिटजाता है। हे रामजी! आत्मामें अन्तवाहकभीनहींहै। यह जो ब्रह्माहै वहभीबोधस्वरूपहै; यदि बोधसेभिन्न अंतवाहक कुछहोता तो भासता। अन्तवाहकभी उसीसेहै—अंतवाहक शुद्धचिन्मात्रमें चैत्योन्मुख होना और चित्तशक्ति फुरनेका नामहै जब उसको पंचतन्मात्राका सम्बन्ध होताहै तो यही जड़—चेतन ग्रंथि है। चित्तशक्ति चेतनहै और पंचतन्मात्रा जड़ है—इनके इकट्ठा होने का नाम अन्तवाहक शरीर है। यदि यहभी आत्मा में कुछहुआ होता तो ये वचन न होते—इससे चिन्मात्र है, कुछ बनानहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है। हे रामजी! दूसरा कुछ बनानहीं पर भ्रमसे द्वैतभासता है; तैसेही यह जाग्रतभी भ्रान्तिसे भासता है—कुछ है नहीं। हे रामजी! जड़है नहीं तो किसकी इच्छा करता है? इतना सुख इन्द्रियों के इष्टभोगसे नहींहोता जितना इनके त्यागने से होता है। हे रामजी! एकयज्ञ है जिसके किये से पुरुष परमपदको प्राप्त होता है पर वह यज्ञ तब होता है जब एक थम्भा गड़े और उसके नीचे बलिकरे। जब यज्ञ करचुके तब सर्व त्याग करनाहोता है तब फलकी प्राप्ति होतीहै। इस क्रमके किये बिना यज्ञ सफल नहीं होता। सो वह थंभा क्या है; बलि क्या है; यज्ञ क्या है; त्याग क्याहै और फल क्याहै सो श्रवणकरो। हे रामजी! ध्यानरूपी तो थंभागाड़े कि; आत्मपदका सदाअभ्यासहो और उसके आगे तृष्णारूपी बलि करे और ज्ञानरूपी यज्ञ करे—अर्थात् आत्माके जो नित, शुद्ध, बोधरूप; अद्वैत, निर्विकल्प, देह, इन्द्रियां, प्राण आदिकसे रहित इत्यादि विशेषण वेदशास्त्र में कहे हैं ऐसे जाननेका नाम ज्ञानहै। यही यज्ञहै। ध्यानरूपीथंभे, तृष्णारूपीबलि और मनरूपी दृश्यको जीतकर यह यज्ञ पूर्ण होताहै। जब ऐसा यज्ञ समाप्तहोताहै तब उसके पीछे दक्षिणाभी चाहिये तब यज्ञका फलहो। सर्वस्वदेनाही दक्षिणाहै—सो अहंकार त्यागकरनाही सर्वस्वत्यागहै। जब सर्वस्वत्याग होता है तब यह यज्ञ सफल होता है। इसकानाम विश्वजित् यज्ञ है। जब इसप्रकार यज्ञ होता है तब इसकाफल भी होता है—सो फल यह है कि, यद्यपि अंगारकी वर्षा हो, प्रलयकालका पवन चले और पृथ्वी आदिक तत्त्वनाश हों तो ऐसे क्षोभों मेंभी चलायमान नहीं होता। यह फल प्राप्त होता है कि, कदाचित् स्वरूप से नहीं गिरता—यह शत्रु नाश वज्र ध्यान है। हे रामजी! अहंता का त्याग करना सबसे श्रेष्ठ त्याग है। जो कार्य अहंता के त्याग किये से होता है सो और उपायसे नहीं होता

और तप, दान, यज्ञ, दमन, उपदेश इन उपाधियों से भी अहंता का त्याग करना बड़ा साधन है; और सर्व साधन इसके अन्तर्भूत होतेहैं । हे रामजी ! जब तुम अहंता का त्याग करोगे तब तुमको भीतर बाहर ब्रह्मसत्ताही भासेगी और द्वैत भ्रम संपूर्ण मिटजावेगा । हे रामजी ! मनके सर्व अर्थरूपी तृणोंको ज्ञानरूपी अग्निलगाइये और बैराग्यरूपी वायु से जगाइये । जब इनतृणोंको भस्म करडालो तब तुम परम शान्तिको प्राप्तहोगे । मनके जलाने से परम संपदा प्राप्तहोतीहै—इससे भिन्न सब आपदाहै । मन उपशम करनेमें कल्याणहै । यह जो भीतर बाहर नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं सो मनके मोहसे उत्पन्नहुयेहैं; जब मन उपशमको प्राप्तहो तब नानाप्रकार जो भूतों की संज्ञाहै अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप होजातेहैं । हे रामजी ! यह सर्वब्रह्महै; ज्ञानीको एकसत्ता भासती है क्योंकि, दूसरा कुछ बनानहीं भ्रमसे जगत्भासताहै । उसमें जब नानाप्रकारकी बासना होती है तो अपनी अपनी बासनाके अनुसार जगत् को देखता है । इससे तुम जागो और बासनाके पिंजरेको काटकर आत्मपदको प्राप्तहोरहो । हे रामजी ! अज्ञानसे जो आत्मपदकी तरफसे सोयेपड़े हैं और बासनाके पिंजरेमेंपड़े हैं उन अज्ञानियोंकी नाईं तुम न होना । अज्ञान से जीवका नाश होता है; जो कुछ जगत् देखतेहो सो भ्रममात्र है । जैसे बांसुरीमें पवनका शब्द होताहै तैसेही यहभी प्राणवायुसे बोलते दृष्टिआते जानो । जगत् भ्रममात्र है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वसत्ताउपदेशोनाम
शताधिकनवषष्टितमस्सर्गः १६९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! सम्पूर्ण जगत्में सप्तप्रकारकी सृष्टि है और सातही भांति के जीवहैं उनको भिन्न भिन्न सुनो । एक स्वप्नजाग्रत हैं; दूसरे संकल्पजाग्रत हैं; तीसरे केवलजाग्रत हैं; चौथे चिरजाग्रत हैं; पंचम दृढ़जाग्रत हैं; षष्ठम जाग्रतस्वप्न हैं और सप्तम क्षीणजाग्रत हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! आपने जो यह सातप्रकार की सृष्टि कही सो बोधके निमित्त मुझसे खोलकर कहिये । यह ऐसे है जैसे नदियों के जल का समुद्र भेद हो और इनका पूछना भी ऐसेही जैसे एक जल से फेन, बुद्बुदे और तरंग वायु से होते हैं इसलिये बिस्तार से कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक तो यह है कि; किसी जीव को किसी कल्प में अपनी जाग्रतमें सुषुप्ति हुई और उसमें जो स्वप्न हुआ तो उसको हमारी जाग्रतका जगत् भासिआया और वह उसको शब्द अर्थ संयुक्त सत्जानकर ग्रहण करनेलगा तो उसके स्वप्न में हम स्वप्न नरहें परन्तु उसके निश्चयमें नहीं क्योंकि,वह अपनी जाग्रत मानताहै पर हमारा और उसका कल्प एक होगयाहै इसीसे वह भी जाग्रत जानता है और पूर्व कल्प में

भी उसका शरीर चैतन्य फुरता था परन्तु सोया पड़ा है। रामजीने पूछा; हे भगवन्! जब वह पुरुष अपने कल्पमें जागताहै तब यह उसको क्या भासता है और जब वह जागे और वहां कल्पका प्रलयहो तब उसके शरीरकी क्या अवस्थाहो? एवम् यदि यहां ज्ञानकी प्राप्तिहो तो उस शरीरकी क्या अवस्थाहो सो क्रम करके कहो! वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! यदि वह पुरुष अपने कल्पमें जागे तो यह जाग्रत उसको स्वप्ना भासे और जो वहां न जागे और उस कल्प का प्रलयहो तो वह जीव वही चेष्टाकरे। यदि ज्ञानकीप्राप्तिहो तो उसशरीर और इसशरीरकी वासना इकट्ठीहोकर निर्वाणको प्राप्तहो और जो ज्ञान न प्राप्तहो तो उस जीवके शरीरको त्यागकर और जगत् भ्रम भास आवे। आपको पूर्ववत् जाने चाहे न जाने परन्तु जगत् भ्रमबिना ज्ञान नहीं मिटता। हे रामजी! यह और वह दोनों तुल्यहैं; ब्रह्मसत्ता सर्व ठौर समान प्रकाशतीहै। हे रामजी! जैसे गूलरमें मच्छर होतेहैं तैसेही ये जीव भी भ्रमसे फुरते हैं। यह जाग्रत कही स्वप्नमें जो जाग्रत है उसकानाम स्वप्नजाग्रतहै। पुरुष बैठाहो और एकऐसी चित्त की वृत्ति ठहरजाय पर निद्रा नहीं आई पर उसमें जो मनोराज हुआ और उस मनोराजमें जगत् होके उसीमें दृढ़ वासना होगई और पूर्वकी वासना विस्मरण हुई; यह सत्ताभासी और उसमें मनोराजका शरीर रचा वही अधिभौतिकता दृढ़ होगई उसका नाम संकल्प जाग्रतहै। आदि परमात्मतत्त्वसे फुरा और निश्चयात्मपदमें जो और जगत् भासित हुआ उसको संकल्पमात्र जाना उसका नाम केवल जाग्रतहै। आदि परमात्म तत्त्वसे फुरना हुआ; उससे सृष्टिहुई और उसको सत्जानकर ग्रहण किया; स्वरूपका प्रमाद हुआ और आगे जन्मांतरको प्राप्त हुआ उसका नाम चिरजाग्रतहै। जब इसमें दृढ़ घनभूत वासना हुई और पापकर्म करनेलगा उसके वशसे स्थावर योनि पाई तो उसका नाम घन जाग्रत और सुषुप्त जाग्रतहै। जब इसमें सन्तोंकी संगति और सत्शास्त्रोंके विचारसे बोध प्राप्तहुआ तब यह जाग्रत उसको स्वप्न होजाती है उसका नाम स्वप्नजाग्रत है। जब बोधमें दृढ़ स्थिति हुई तब उसको तुरिया पद कहते हैं—इसका नाम क्षीणजाग्रतहै। जब इस पदको प्राप्त होता है तब परमानन्दकी प्राप्ति होतीहै। हे रामजी! ये सात प्रकारके जीव और सृष्टि मैंने तुमसे कहीहैं इनको विचार करके देखो कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्त होजावे। यह भी क्या कहना है कि, यह जीव है और यह सृष्टिहै; सर्व ब्रह्मसत्ताहै, दूसरा कुछ हुआ नहीं; मनके फुरनेसे दृश्य भासती है और मनको स्थिर करके देखो तो सब शून्य होजावेगी और शून्य भी न रहकर शून्य का कहना भी न रहेगा—इस गिनती को भी स्मरण करो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनंनाम शताधिकसप्ततितमस्सर्गः १७०॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! आपने जो केवल जाग्रतकी उत्पत्ति अकारण, अकर्मक और बोधमात्रमें कही सो असम्भव है–जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होसक्ता तैसेही आत्मामें सृष्टि नहीं होसक्ती–क्योंकि; आत्मा निराकारहै और निष्क्रियहै; वह न समवाय कारणहै और न निमित्त कारण है। जैसे मृत्तिका घट आदिकका कारण होती है तैसेही आत्मा सृष्टिका समवाय कारण भी नहीं क्योंकि; अद्वैतहै और जैसे कुलालघटादिकका निमित्त कारण होताहै तैसे आत्मा सृष्टिका निमित्त कारण भी नहीं क्योंकि; अक्रियहै। उस अकारणक और अकर्मकमें सृष्टि कैसे होसक्ती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुम धन्यहो और अब तुम जागेहो। आत्मामें सृष्टिका अत्यन्त अभाव है क्योंकि; वह निर्विकार और निष्क्रियहै। वह न भीतरहै, न बाहरहै; न ऊर्ध्वहै, न अध है; केवल बोधमात्रहै और उसमें न कोई आरम्भहै और न परिणामहै; केवल बोधमात्र अपने आपमें स्थितहै। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जलकल्पितहै; तैसेही आत्मामें जगत् मिथ्या है। हे महाबुद्धिवान् ! आत्मा अकारणरूपहै उसमें कार्यरूप जगत् कैसेहो ? उसमें जगत् कुछ नहीं उत्पन्नहुआ। उसके अभावसे सबका अभावहै, न कुछउपजा है; न भासहोता है; उपदेश और उसका अर्थ आरोपितहै और कुछ हैहीनहीं। आरोपित शब्दभी जिज्ञासीके जतानेके निमित्तकहाहै, हैकुछनहीं; आत्मासदा अद्वैतरूप है। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! जो आत्मामें सृष्टिहैही नहीं तो पिंडाकार कैसे भासते हैं ? उनकोकिसने रचाहै और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का भान क्याहोताहै ? चैतन्यको स्नेह और रागसे किसने मोहित कियाहै और आत्मामें आवरण कैसेहोताहै सोमुझे समझाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! न कोई पिंडहै, न किसीने इनकोकियाहै; न कोई भूतहै, न किसीने इनको मोहित कियाहै और न किसीको आवरणकिया है; भ्रांतिसे आवरणभासताहै। जोआत्माको आवरणहोता तो किसीप्रकार नष्टहोता परन्तु आवरणही नहीं तोनष्ट कैसेहोवे ? हे रामजी ! जिसको आवरणहोताहै उसका स्वरूप एक अवस्थाको त्यागकर दूसरी अवस्थाको ग्रहणकरताहै पर आत्मा तो सदाज्ञान स्वरूपहै इससे अन्य अवस्थाको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता सदा ज्योंका त्योंहै। उसमें मन, बुद्धि आदिक भी कुछनहीं बने तबमोह कहां और आवरण कहां ? सदा एकरस आत्मतत्त्वहै; ज्ञानीको ऐसे भासताहै और अज्ञानीको नानाप्रकार का जगत् भासताहै। वह आत्मा ज्ञानकालमें और अज्ञानकालमें एकरसहै पर उसमें दोदृष्टिहोती हैं; ज्ञानदृष्टिसे तो सर्वआत्मा है और अज्ञानसे नानाप्रकारका जगत् भासताहै। हे रामजी ! जैसे एकसमुद्रसे अनेक तरंग और बुद्बुदे उठते और लीन होतेहैं पर उनका उत्पन्न और लीनहोना जलमेंहै, जलसे भिन्न कुछनहीं; तैसेही जितनेविचार और इच्छाभासतेहैं सो सब आत्मामें होतेहैं और दूसरीवस्तु नहीं। विकार

और अविकार सब परमात्मतत्त्व है समुद्रमें लहरें और बुद्बुदे परिणामसे होतेहैं; आत्मा सदा ज्योंकात्यों है और नानाप्रकारके आकारभासते हैं सो भी वहीरूप है। जैसे सुवर्ण में नाना प्रकारके भूषणहोते हैं सो सब सुवर्णही हैं दूसरी वस्तु कुछ नहीं और भ्रांतिसे नानाप्रकारकी संज्ञाहोती है। जैसे कोई पुरुष जाग्रत बैठाहो और नींदआनेसे स्वप्नसृष्टिभासे तो चाहे वह जाग्रतके अज्ञानसे स्वप्नसृष्टि भासीहो पर जबनिद्रा निवृत्तहोतीहै तब जाग्रतही भासती है सो जाग्रतभी परमात्मतत्त्वकेअज्ञान से भासती है। जब उसपदमें जागोगे तब जाग्रत भ्रमनिवृत्त होजावेगा। हेरामजी! यहसंसार अपने फुरने से हुआहै। जब फुरनादृढ़हुआ तब दुःखपानेलगा। जैसे बालक अपनी परछाहींमें वैतालकल्पितकर आपही दुःख पाता है तैसेही जीव अपने फुरनेसे आपही दुःखपाताहै।जब आत्मबोध होताहै तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। हे रामजी! यह संसार जो रससंयुक्त भासताहै सो भावनामात्रहै। जब यही भावना उलटकर आत्माकी ओरआवे तब जगत् भ्रम मिटजावेगा। देह, इन्द्रियादिक जो आत्माके अज्ञानसे फुरे हैं और उनमेंअहंकारहुआहै सो आत्मभावनासे निवृत्त होजावेगा। जैसे वर्षाकालमें मेघ घनहोते हैं और जब शरत्काल आताहै तब नष्ट होजाते हैं तैसेही जब बोधरूपी शरत्काल आताहै तब अनात्ममें आत्म अभिमान रूपी मेघ नष्टहोजाताहै और परमस्वच्छता प्रकट होती है। हेरामजी! जितनाजगत् पिण्डरूपहोकर भासताहै सो जब आत्माका साक्षात्कार होगा तब पिण्ड बुद्धि जाती रहेगी और सब जगत् आकाशरूप होजावेगा। जैसे शरत्कालमें मेघकीघनता जाती रहती है और आकाशरूप होजाताहै। हे रामजी! यह भ्रान्तिकी कठिनता तबतक भासती है जबतक स्वरूपसे सुषुप्तिवत्‌है, जब जागेगा तब जगत् सब आकाशरूप होजावेगा। जैसे स्वप्नेसेजागकर स्वप्न जगत् आकाशरूप होजाताहै। हे रामजी! यह विकार; क्षोभ और नानात्व प्रमाद से भासते हैं, जब आत्मबोध होताहै तबसब क्षोभ और विकार मिटजाते हैं और सर्व प्रपंच एकताको प्राप्तहोकर द्वैतभाव मिट जाताहै। जैसे प्रज्वलित अग्निमें घृत अथवा ईंधन और मिष्ठान्न जोकुछडालिये सो एकरूप होजाता है; तैसेही जब बोधकी प्राप्ति होती है तब सब जगत् एकरूप होजाताहै; और जैसे नानाप्रकारके भूषण अग्निमेंडालिये तो एक सुबर्णही होजाता है और भूषणकीसंज्ञा नहीं रहती है तैसेही मनको जब आत्मबोध में स्थितकिया तब जगत् संज्ञा नहीं रहती केवल परमात्मतत्त्व होजाता है। हे रामजी! इन्द्रियां और जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूपमें सोयापड़ा है; जब जागेगा तब संसारकी सत्यता मिटजावेगी और इच्छाभी कोई न रहेगी। जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है और जब उसस्वप्नेसे जागताहै तब स्वप्नेके स्मरणकीइच्छा नहीं करता कि,मुझ

कोप्राप्तहो क्योंकि;उसकीसत्यता नहींभासती तो इच्छाकैसेकरे;तैसेही जबतक स्वरूप से सोयापड़ाहै तबतक संसारके पदार्थोंको मिथ्या नहीं जानता उनकीइच्छा करताहै। जब तुम स्वरूपमें जागोगे तब सबपदार्थ विरसहोजावेंगे और जब ज्ञानसे जगतको मिथ्या स्वप्नवत्जानोगे तब इच्छाभी न करोगे। हे रामजी! जीवन्मुक्तकी चेष्टा सबदृष्टि आतीहै परन्तु उसकेहृदयमें जगत्की सत्यता नहीं होती क्योंकि, उसको आत्मानुभव हुआहै। जैसे सूर्यकीकिरणोंमें जल भासताहै पर जिसने सूर्यकी किरणेंजानीहैं उसको जल नहींभासता किरणेंहीभासती हैं और जिसने किरणें नहींजानी उसको जलभासता है। दृष्टिदोनोंकीतुल्यहै परन्तु ज्ञानवान्के निश्चयमें जगत् जलवत्नहीं और अज्ञानी को जगत् जलवत् दृढ़भासताहै। हे रामजी! मनरूपीदीपक प्रज्वलितहै; उसमें ज्ञान रूपी जलडालिये तो निवारणहोजावे। जब मन निर्वाणहोगा तब उसपदकोप्राप्तहोगे जहां जगत् और अहंकारका अभावहै;वह न शून्यहै, न अशून्यहै और केवल,अकेवल; उदय,अस्तभी नहीं। हे रामजी; जो पुरुष ऐसेपदको प्राप्तहुआहै वह कृतकृत्य होताहै और रागद्वेषसेरहित परम शान्तिपदको प्राप्तहोता है। उसका अहंकार निर्वाण होजाताहै और केवल निर्वाच्यपदको प्राप्तहोताहै जहां कोई उत्थान नहीं। हे रामजी! आत्मामें जगत् के पदार्थ कोई नहीं परन्तु मनके संकल्पसे भासते हैं।जैसे थंभेमें चितेरा कल्पना करताहै कि; इतनी पुतलियां इसथंभेमेंहैं सो उसके निश्चयमें हैं, थंभेमें पुतलियोंका अभाव है; तैसेही मनके निश्चयमें जगत्है; आत्मामें कुछनहीं बना जिसपुरुषका मन सूक्ष्म होगयाहै उसको जगत् स्वप्नभासताहै; जब उसने स्वप्न जाना तब वह इच्छा और त्याग किसकाकरे। हे रामजी! जगत् तबतक भासताहै जब तक स्वरूपका साक्षात्कार नहींहुआ; जब आत्मानुभव होगा तब जगत् रससंयुक्त कदाचित् न भासेगा। जैसे धूप और छाया इकट्ठी नहीं होतीं तैसेही ज्ञान और जगत् इकट्ठे नहीं होते–आत्मज्ञानहुये जगत्का अभावहोजाता है और जैसे पूर्वकाल वर्त्तमानकालमें नहीं होता; तैसेही आत्मामें जगत् नहीं होता। हे रामजी! यह जगत् भ्रमसे भासताहै और बिचारकियेसे इसका अभाव होजाताहै। द्रष्टा–दर्शन–दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी मिथ्याहै। जैसे निद्रादोषसे स्वप्नमें तीनों भासते हैं और जागेसे अभावहो जातेहैं तैसेही अज्ञानसे ये भासते हैं और ज्ञानसे त्रिपुटीका अभाव होजाताहै। हेरामजी! जैसे मनोराजकरके मनमें जगत् स्थितहोताहै तैसेही ये पर्वत, नदियां,देश,काल,जगत्भी जानो। इससे इसजगत् भ्रमका त्यागकर अपने स्वभावमें स्थितहोरहो। यह जगत् भ्रमसे उदय हुआहै। बिचार कियेसे नष्ट होजावेगा और तुमको परमशांति प्राप्तहोगी। हे रामजी! जिसका मन उपशमभावको प्राप्त हुआहै, वह पुरुष मौनीहै। वह निरोधपदको प्राप्तहुआ है और संसारसमुद्रसे

तरकर कर्मोंकेअन्तको प्राप्तहुआहै। उसको संपूर्ण जगत्, पहाड़, नदियां संयुक्तलीन होजाताहै। अज्ञानकेनष्टहुये विद्यमान जगत् भी नष्टहोजाताहै क्योंकि;वहशांत अन्तः-करणऔर परमशांतिरूप अमृतसेतृप्तहै। व ज्ञानवान् निरावरणहोव र स्थितहोताहै॥ श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वशांत्युपदेशोनामशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः १७१॥

रामजी ने पूंछा,हे भगवन्! जिस क्रमसे बोध आत्मा जगत्रूपहो भासताहै सो क्रमभेदके निवृत्तके अ फिर मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितना जगत्दृष्टि आताहै उसका चित्तमें निश्चयहोता है। ज्ञानवान्को भी चित्तसे भासताहै और अज्ञानी कोभी चित्तसे भासताहै परन्तु तना भेदहै कि, अज्ञानी जगत्को देखता है तब सत् मानता है और ज्ञानवान् शास्त्रयुक्तिसे देखकर पूर्व अपर अर्थके विचारसे भ्रांतिमात्र जानताहै। यह जगत् अविद्यासे भासताहै सो अविद्या भी कुछ बस्तुनहीं। जैसे सू की किरणोंमें जल भासताहै सो कुछहै नहीं, तैसेही अविद्या कुछबस्तु नहीं है। जितना स्थावर—जंगम जगत् भासताहै सो कल्पके अन्तमें नष्ट होजाता है। जैसे समुद्रसे एक बुन्द निकालिये तो नष्ट होजातीहै क्योंकि; बिभागरूप है, तैसेही माया, अबिद्या, सत्, असत् आदिक सर्व सम्बन्ध का अभाव होजाता है क्योंकि; सब शब्द जगत्में हैं; जब जगत् लीनहुआ तब शब्द कहांरहे? और वास्तवमें न कुछ उपजा है; न लीन होताहै—एकही चिदाकाश है जो तुमकहो कि, देह उपजतीहै सो देह और तत्त्व को स्वप्नवत् जानो। जो तुमकहो कि,जगत् प्रलयमें लीन होताहै इससे कुछ है; तो नाश वही होताहै जो असत्य होताहै। जो तुमकहो कि, असत्यहै तो फिर क्यों उपजताहै तो उपजी बस्तुभी सत्नहीं होती। जो तुमकहो कि, महाप्रलयमें चिदाकाशही रहता है और वही जगत्रूप हो भासता है तो जगत् कुछभिन्नवस्तु नहींहुआ—बोधमात्रही इस प्रकार हो भासता है जैसे बीज और वृक्षमें कुछ भेदनहीं तैसेही जिससे जगत् भासता है वही रूप है, कुछ उपजानहीं; जो उपजा नहीं तो विकार और भेद कैसेहो—इससेबोध मात्रही अपने आपमें स्थित है। कारण कार्यसेरहित परम शां रूप अपने आपमें आत्मसत्ता स्थितहै, वही जगत्रूप होकर भासताहै और देश,काल, पदार्थ भी सब महाप्रलय रूप हैं। जब म ाप्रलय होता है तब ब्रह्मदेव पर्यंतसबपदार्थ नष्टहोजाते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वीका नामभी नहीं रहता और अर्थभी नहीं रहता; तब केवल बोधमात्र और बोधसे भी रहित शेष रहताहै जो परमशांतरूप है और उसमें वाणी और मनकी गमनहीं—केवल अचेत चिन्मात्र सत्ताही है। उसीको तत्त्ववेत्ता अनुभव कहते हैं और कोई न ीं जानसक्ता। हे रामजी! जो पुरुष अवि-द्यारूपी निद्रासे जागाहै वह निराभास होताहै अर्थात् चित्तसे चैत्यका सम्बन्ध टूट जाताहै और उसको परम प्र ागरूप आत्मपद प्राप्त होकर स्वभावमें स्थितिहोती

है और परभाव जो प्रकृतिहै उसका अभाव हो जाता है। हे रामजी ! जो कुछ जगत् परभाव से भिन्न भिन्न भासताथा सो सब एकरूप होजाता है । जैसे स्वप्ने में सब पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं और जागे से सब एकरूप होजाते हैं, अपना आपही भासता है; तैसेही जब आत्माका अनुभव होताहै तब जगत् अपना आपहीभासता है। हे रामजी ! एकरूप तबही भासता है जब और कुछ नहीं बना। जैसे सुवर्ण के भूषण अग्नि में डालिये तो अनेक भूषणों का एक पिंड होजाता है और एकही आकार भासता है; तैसेही जब बोधका अनुभव होताहै तब सर्व एकरूप होजाता है। हे रामजी ! भूषणों के होतेभी सुवर्णही था इसीसे सब एकरूप होगया, तैसेही जब बोधका अनुभव होताहै तब सर्व एकरूप हो भासताहै इससे जगत्के होते भी जगत् आत्मरूप है। जगत् है नहीं और हुयेकी नाई भासित होकर भिन्न भिन्न दृष्टिआता है—जैसे सोमजलमें तरंगहैं नहीं और भासते हैं तौभी जलरूप हैं—असम्यक् दृष्टि करके भिन्न भिन्न भासते हैं। हे रामजी ! ज्ञानी को जीवन्मुक्त और बिदेहमुक्त तुल्य हैं। जैसे भूषणके होतेभी स्वर्णहै और भूषणके अभाव हुये भी स्वर्णहै तैसेही ज्ञानवान् को देहके होतेभी ब्रह्महै और देहके अभावहुयेभी ब्रह्महै। जोअज्ञानीहै उसको नानाप्रकारका जगत् फुरताहै। अज्ञानी वहीहै जिसको मनका सम्बन्धहै। हे रामजी! यह जगत् भिन्न भिन्न फुरताहै। जैसे काष्ठके थंभेमें चितेरा पुतलियां कल्पता है सो और को नहीं भासतीं उसीके मनमें होतीहैं; तैसेही भिन्न भिन्न पदार्थरूपी पुतलियां अज्ञानीके मनमें फुरती हैं और ज्ञानवान् को नहीं भासतीं। जब काष्ठका आधारहोता है तब चितेरा पुतलियां कल्पताहै पर यह आश्चर्य देखो कि, मनरूपी ऐसाचितेरा है कि,आकाश में पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है और बिन खोदी भासतीहैं। हे रामजी! और दूसरा कुछ नहीं बना; जैसे किसी पुरुषने कागजपर पुतली लिखीहो सो कागज रूपहै और कुछनहीं बनी; तैसेही यह जगत् भी वहीस्वरूप है। हे रामजी ! जबतुमको आत्मपदका अनुभव होगा तब जितने जगत् के शब्दअर्थ हैं वे सब उसीमें भासेंगे जैसे जिसने स्वर्णको जाना उसको भूषणके शब्द—अर्थ स्वर्णही भासते हैं, तैसेही जब आत्मपद को जानोगे तब तुमको जगत् के शब्द अर्थ आत्माहीमें दृष्टि आवेंगे। हेरामजी ! यह जीव महासूक्ष्मरूप हैं। और इनमें अपनी २ सृष्टिहै। जबतक फुरनाहै तबतक सृष्टिहै; जब सृष्टि फुरना अपनी ओर आताहै तब सब सृष्टि एक आत्मरूप होजाती है और आकाश, काल, दिशा,पदार्थ सर्व आत्मा है; आत्मासे भिन्न कुछनहीं, वह अपने आपमें स्थितहै—जो अद्वैत चिन्मात्रपद है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनन्नाम शताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः १७२॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! सर्व तत्त्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रष्टा और दृश्यका सम्बन्ध कैसेहुआ है? कालमें कालत्व; आकाशमें शून्यता; और वायुमें स्पन्द कैसेहुई है? जड़में जड़ता; भूतोंमें भूतता; संकल्पमें स्पन्द; सृष्टिमें सृष्टिता; मूर्त्तिमें मूर्त्तिता; भिन्नमेंभिन्नता और दृश्यमें दृश्यता किससे हुयेहैं सो मुझसे कहिये क्योंकि; अर्द्ध प्रबुद्धिको बोधके निमित्त कहना योग्य है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर आदिक जो सब हैं सो प्रलयकाल में जिसमें लीन होतेहैं उसका नाम प्रलय है। उसका शब्द 'प्रलय, शब्द है और सर्व 'निर्वाण' होजाते हैं यह अर्थ है। हेरामजी! ऐसा जोअनंत आकाश है सो मम, शुद्ध, आदि–अन्त–मध्यसे भी रहित; चैतन्य, घन और अद्वैत है जहां एक और दो शब्द भी नहीं और जिसमें आकाश भी पहाड़ के समानस्थूल है और ऐसा सूक्ष्म है कि,'है,'नहीं,'दोनों', शब्दोंसे रहित अपने आपमें स्थित है। जैसे पाषाण का शिलाकोश होताहै तैसेही वह चित्त के फुरनेसे रहित है। ऐसे परमात्म तत्त्व अकारण से सृष्टि का उपजना कैसे कहिये? जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है तैसेही ब्रह्म अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! एक निमेष के फुरने से जो वृत्ति अनेक योजन पर्यन्त जाती है उसके मध्यजो अनुभव करनेवाली सत्ता है उसमें तुम स्थित होकर देखो कि, जगत् और उसकी उत्पत्ति कहां है? हे रामजी! उत्पत्ति जो होती है सो समवाय कारण और निमित्त कारण से होती है पर आत्मा निराकार, अद्वैत और सन्मात्र है–न समवाय कारणहै और न निमित्त कारण है। इससे आत्मा अच्युतहै अर्थात् स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा तो समवाय कारण कैसे होवे? निमित्त कारण भी नहीं क्योंकि, निराकार है; इससे आत्मा में जगत् कोई नहीं भ्रांति मात्र और अविद्या करके भासता है। जो वस्तु होवे नहीं और प्रत्यक्ष भासे उसे अविद्या से जानिये। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है। जलमें जो तरंग और आवर्त्त उठते हैं सो जल रूप हैं जलसे भिन्न कुछ नहीं। जब तुम अपने आपमें स्थित होगे तब जगत् का शब्द अर्थ भिन्न न भासेगा क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ नहीं है। हे रामजी! ब्रह्म अमूर्त्ति है; उसमें यह मूर्त्ति कैसे उत्पन्न हो? यह भ्रान्ति मात्र है। जो वस्तु कारण से उपजी हो सो सत् होती है और जो कारण विना दृष्टिआवे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है उसका कोई कारण नहीं इससे मिथ्या भ्रमसे भासता है, तैसेही यह जगत् मिथ्या मात्र है विचार किये से नहीं रहता। हे रामजी! आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं सो सब शून्य हैं; आत्मामें न उदय हुयेहैं और न अस्त होते हैं–ज्यों का त्यों आत्माही स्थित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः १७३

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आकाश अपनी शून्यतामें स्थितहै तैसेही ब्रह्म-रूपी आकाश अपने आपमें स्थित है सो कैसे किसीका कारणहो? कारण और कार्य तब होता है जब द्वैत होता और आरंभ, परिणाम होता है पर आत्मातो अद्वैत, अच्युत और निर्गुण है उसमें आरंभ कैसे हो ? हे रामजी ! जो कुछ जगत् तुमको भासताहै सो सब काष्ठवत् मौनहै अर्थात् वहां मनका फुरना शून्यहै। हे रामजी! जो कुछ द्वैत भासता है सो भ्रममात्र है । जो कुछ हुआ होता तो ज्ञानी को भी प्रत्यक्ष होता पर ज्ञानकाल में नहीं भासता इससे भ्रममात्र है। हेरामजी! पृथ्वी,जलआदि जो पदार्थ हैं तिनका फुरना स्वप्नेकी नाईं है । जैसे स्वप्नेमें चेष्टा होती है सो पास बैठेकी नहीं भासती क्योंकि,है नहीं; तैसेही सृष्टिअकारण संकल्पमात्रहै। हेरामजी! जैसे शशेके सींगोंका कारण कोई नहीं तैसेही जगत्का कारण कोई नहीं। जो कुछ हो तो उसका कारणभी हो पर जो कुछ होही नहीं तो किसका कारण कौनहो। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जैसे वटके बीजमें वृक्षका भाव होता है पर काल पाकर बीजसे वृक्ष हो आता है तैसेही इस जगत्का कारण परमाणु क्यों न हुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सूक्ष्म में स्थूल संकल्पमात्र होता है । मैं भी कहता हूं कि, सूक्ष्म में स्थूल होता है परन्तु संकल्पमात्र होता है-कुछ सत्यनहीं होता। जो कहिये कि, सत्य होता है तो नहीं होसक्ता । जैसे राई के कणके में सुमेरुपर्व्वतकाहोना नहीं हो सक्ता तैसेही सूक्ष्म परमाणु से जगत् का उत्पन्न होना असम्भव है । हे रामजी! सूक्ष्म परमाणुका कार्य्यभी जगत् तब कहाजाय जब सूक्ष्म अणुभी आत्मा में पायाजावे; आत्मातो अद्वैतहै और उसमें एक और दोकहनेका अभाव है। आत्मा में जाननाभी नहीं-केवल आत्मतत्त्वमात्र है और आधार आधेयसे रहित है । बीजभी तब प्रणमता है जब उसको जल देतेहैं और रक्षा करनेका स्थान होता है पर आत्मा आधार आधेयसे रहित केवल अपने भाव में स्थित है और अद्वैत सत्तामात्र है। जैसे बंध्याके पुत्रका कारण कोईनहीं, तैसेही जगत्का कारण कोई नहीं; जो बंध्याका पुत्रही नहीं तो उसका कारण कौनहो तैसेही जगत् है नहीं तो ब्रह्म इसका कारण कैसेहो ? जिसको तुम दृश्य कहतेहो सो द्रष्टाही दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। हे रामजी! जैसे सूर्यकी किरणोंमें जलाभास होकर स्थितहै; तैसेही ब्रह्मही जगत् आकार होकर दृष्टि आता है; दृश्य भी कुछ दूसरी बस्तु नहीं। जैसे समुद्रही तरंग और आवर्त्तरूप होकर भासताहै तैसेही अनन्तशक्ति होकर परमात्मसत्ताही स्थित है। हे रामजी ! मैं और तुम आदि जगत्के पदार्थ सब फुरनेमात्रहैं। जैसे संकल्प नगर होताहै जो मनसे रचाहै; तैसेही यहजगत् आत्मा में कुछ बनानहीं केवल ब्रह्म आपने आपमें स्थित है-हमकोतो सदा वही भासता है। हे रामजी ! आत्मामें यह

जगत् न उ होताहै और न अस्त होता है सदा ज्योंकात्यों निर्मल शान्त पद है॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेद्वैतएकताप्रतिपादनंनाम
शताधिकचतुःसप्ततितमस्सर्ग्गः १७४॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जगत्का भाव-अभाव; जड़-चैतन्य; स्थावर-जंगम; सूक्ष्म-स्थूल; शुभ-अशुभ कुछ हुआ नहीं तो मैं तुमसे क्याकहूं कि, यहकार्य है और सका यह कारण है? यह हुआही नहीं तो फिर कारणकार्यकैसे हो? जो सर्व देश, सर्वकाल और सर्व वस्तुहो सो कारणकार्य कैसे हो? आत्मा केवल अपनेआप में स्थितहै औरजो है और नहींकी नाईं स्थित हुआहै; उसमें संवेदनहै और उसके फुरने से जगत् भासताहै। वह फुरना चैतन्यमात्र का विवर्त्त है और उस विवर्त्त से जगत् भ्रमहुआ है; जब यही फुरना उलटकर अपनी ओर आताहै तब जगत्भ्रम मिटजाता है और जब फुरता है तब ध्यान, ध्याता और ध्येयरूप होकर स्थित होता है। इसहीका नाम जगत् है और इसीमें बन्ध और मुक्तहोता है; आत्मामें न बन्ध है और न मोक्ष है। हे रामजी! जब तरंग घनभूत होकर बहता है तब एकनदी होकर चलताहै; तैसेही जब बासना दृढ़ होती है तब जगत्रूप होकर स्थित होता है और भासताहै। जब ऐसी वासना दृढ़हुई तब रागद्वेष संकल्पसे बन्धवान् होताहै और जब वासना क्षयहोतीहै तब जगत्का अभाव होकर स्वच्छ आत्मा भासताहै। जैसे शरत्काल का आकाश स्वच्छहोताहै-उससेभी निर्मलभासताहै। हेरामजी! जीव जो निकलजाताहै सो मरतानहीं; मुआ तब कहाजाय जब अत्यन्त अभावको प्राप्तहो और न जानाजाय; इससे यह मरना नहीं क्योंकि; फिर जगत् भासता है। यह मरना सुषुप्ति की नाईं हुआ-जैसे सुषुप्ति से जागे हुये जगत् भासताहै औरवही चेष्टाकरने लगता है और जैसे स्वप्न और जाग्रत् होता है तैसेही मृत्यु और जन्मभी है। यदि मरनेका शोक उपजे तो जीनेका सुखभी मानिये और जो जीनेका हर्ष उपजे तो उसमें मरनेका शोक मानिये-दोनों अवस्था शरीरकी सम रचीहैं। जब यह अवस्था शरीर

जानी तब तुम्हारा हृदय शीतल होजावेगा। जब संवेदन फुरने का अत्यन्त अभाव हो तब परमशांति होतीहै। ध्यान, ध्याता और ध्येय तीनोंका अभाव होजाताहै और अज्ञानभी नहीं रहता। जब ऐसा अभाव होताहै तब पीछे स्वच्छ निर्मलपद रहताहै। हे रामजी! अबभी निर्मलपद है परन्तु भ्रमसे पदार्थसत्ता भासती है। जैसे निद्रा दोषसे केवल अनुभव में पदार्थ सत्ता होकर भासती है और जागेसे कहता है कि, केवल भ्रममात्रही था; तैसेही इसजगत् कोभी भ्रममात्र जानो। परमार्थ स्वरूप के प्रमादसे यह जगत् भासता है और स्वरूप में जागेसे इसका अभाव होजाताहै। हे रामजी! जैसे स्वप्नमें जीव अनहोताही राज्य देखताहै तैसेही तुम इस जगत् को

जानो। इसका फुरनाही इसको बन्धन का कारण है । जैसे कुसवारी आपही स्थान-बनाकर आपही फँस मरती है और जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करके मुखसे औरका और बोलता है और उससे बन्धमान होताहै; तैसेही जीव अपने संकल्पही से बन्धता है और जब संकल्प मिटता है तब परमानन्द को प्राप्त होकर परम स्वच्छशांति उदय होती है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमशांतिनिर्वाणवर्णनंनाम शताधिकपंचसप्ततितमःसर्गः १७५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जहां आकाश होताहै वहां शून्यताभी होतीहै; जहां अवकाश होताहै वहां आकाशभी होता है और जहां आकाश है वहां पदार्थ भी होते हैं; तैसेही जहां चैतन्यसत्ताहै वहां सृष्टि भी भासती है परबनी कुछ नहीं और सदा रहतीहै। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल कदाचित् नहीं उत्पन्नहुआ और जलाभास सदा रहता है क्योंकि, उसीका विवर्त्तहै; तैसेही सृष्टि आत्माका विवर्त्त है–जहां चैतन्यसत्ता है वहां सृष्टिभी है। इसीपर मैं एक इतिहास तुमसे कहताहूं जिसकेसुने और समझे से जरामृत्यु से रहित होगे। वह इतिहास परमसुन्दर और चित्तका मोहनेवाला आश्चर्यरूप है और मेरादेखाहुआहै। हे रामजी ! एककाल में मेराचित्त जगत् से उपरत हुआ तो मैंने विचारकिया कि; किसी एकान्त स्थान में जाकर समाधान करूं क्योंकि; जगत् मोहरूप व्यवहार से दृढ़ हुआ है और जितना कुछ जाननेयोग्यहै उसको मैं जाननेवालाहूं परन्तु व्यवहारकरकेभी शांतरूपहोऊं। तब ऐसा मैंने विचार किया कि, निर्विकल्प समाधिकरके परमशांतिपाऊं और जो आदि, अन्त औ मध्यसे रहित परमानन्दस्वरूप और अविनाशीपद है उसमें विश्रामकरूं। हे रामजी ! तब भी मैं ज्ञान वृत्तिवान् और परमात्मस्वरूपहीथा परन्तु चित्तकीवृत्ति जब जगत्भा‍से उपरतहुई तो व्यवहारसेभी एकान्त समाधिकी इच्छाकी कि; जहां कोई क्षोभ न हो वहां स्थितहूं। ऐसे विचारकरके मैं आकाशमें उड़ा और एकदेवता केपर्वतपर जाबैठा तो वहां बहुतप्रकारके इन्द्रियोंके बिषय देखे कि; अंगनागानकरती हैं। शिर पर चमर होते हैं; और मन्दमन्द पवन चलताहै। पर वहभी मुझको आपात रमणीय भासे क्योंकि, किसी कालमें किसीको सुखदायक नहीं–समाधि वाले के ये शत्रु हैं। उनको विरसजानकर मैं फिर उड़ा और एक पर्वतकी कन्दरामें जो बहुत सुन्दरथी और जहां एक सुन्दर वनथा और उसमें सुन्दर पवन चलताथा पहुंचा। ऐसेस्थानको मैंनेदेखा तो वहभी मुझको शत्रुवत् भासितहुआ क्योंकि; पक्षियों के शब्द होते थे और पवनका स्पर्श होताथा व और भी अनेक विघ्नथे। उनको देखकर

में आगेचला तो नागोंकेदेश और सुन्दर नागकन्या देखीं और इन्द्रियोंके बहुत सुन्दर विषयभी देखे पर वहभी मुझको सर्पवत् भासे। जैसे सर्पके स्पर्शकियेसे अनर्थ होता है तैसेही मुझको विषय भासे। हे रामजी! जितने इन्द्रियों के विषय हैं वे सब अनर्थ के कारण हैं; उनमें प्रीति मूढ़ और अज्ञानी करते हैं। फिर मैं समुद्र के किनारेगया और उसके पास जो पुष्पके स्थानथे उनमें विचरा और कन्दरा और वनको देखताहुआ पर्वत, पाताल और दशोंदिशा देखताफिरा परन्तु एकांत स्थान मुझको कोईदृष्ट न आया। तब मैं फिर आकाशकोउड़ा और पवन; मेघों; देवगणों; विद्याधरों और सिद्धोंके स्थान लांघतागया तो आगे देखा कि, कई ब्रह्माण्ड भूतों के उड़ते थे उनमें मैंने अपूर्वभूत और नानाप्रकारके स्थान देखे। फिर गरुड़ के स्थानलांघे तो कहीं सूर्यका प्रकाश होताथा और कहीं सूर्यका प्रकाशही न था। फिर मैं चन्द्रमा के मण्डलको लांघगया और अग्निके स्थानलांघकर महाआकाश में गया जहां इन्द्रियोंका रोकना भी न था क्योंकि; इन्द्रियों के विषय कोई दृष्ट न आते थे केवल एक आकाशही आकाश दृष्ट आता था और वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी चारोंका अभाव था। हे रामजी! निदान मैं उसस्थान में गया जहां भूत स्वप्नमें भी दृष्ट न आते थे और सिद्धोंकी भी गम न थी। वहां मैंने संकल्प की एक कुटीरची और उसके साथ फूल और पत्रोंसे पूर्ण कल्पवृक्ष रचे और उसके एक ओर मैंने छिद्ररक्खा। मेरातो सूक्ष्मसंकल्प था इसलिये सब प्रत्यक्ष आन हुआ। उस कुटीकोरचकर उसमें मैंनेप्रवेशकिया और संकल्पकिया कि;एकवर्ष पर्यंत मैं समाधिमें रहूंगा और उससे उपरान्त समाधिसे उतरूंगा। ऐसे विचारकर मैंने पद्मासन बांधा और समाधिमें स्थित होकर परमशांति में एकवर्ष पर्यंत स्थित हुआ जहां कोई क्षोभ न था जब वर्ष व्यतीत हुआ तब वह भावी समाधिके उतरनेकी थी इसलिये वहसंकल्प आन फुरा। जैसे पृथ्वीमें बोयाहुआ बीज कालपाकर अंकुरलेताहै तैसेही वह संकल्प आनफुरा। प्रथम, जैसे सूखावृक्ष वसन्तऋतुमें हरा हो आता है तैसेही प्राण फुरिआये; फिर, जैसे वसन्तऋतुमें फूल खिलआते हैं तैसेही ज्ञान इन्द्रियां खिलआईं और फिर स्पन्द जो अहंकार रूपी पिशाचहै सो फुरा कि, मैं वशिष्ठहूं;और उसकी इच्छारूपी स्त्री फुरी। हे रामजी! वहवर्ष मुझको ऐसे व्यतीत हुआ जैसे निमेषका खोलनाहोताहै। कालभी बहुतप्रकारसे व्यतीत होता है; किसी को थोड़ाही बहुत होजाताहै और किसीको बहुत थोड़ा होजाताहै। जब सुखहोता है तब बहुत कालभी थोड़ाहो भासता है और जब दुःख होता है तब थोड़ाकालबहुत होजाताहै। हे रामजी! इससमाधिका जो मैंने वर्णनकिया यह शक्ति सब जीवों में है परन्तु सिद्धनहीं होती क्योंकि; नानाप्रकार की वासनासे अन्तष्करण मलीन है। जब

अन्तष्करण शुद्धहो तब जैसा संकल्पकरे तैसाही सिद्धहोताहै और मलीनअन्तष्करण वालेका संकल्प सिद्ध नहीं होता ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेआकाशकुटीवशिष्ठसमाधिवर्णनन्नाम शताधिकषष्ठसप्ततितमस्सर्गः १७६ ॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! तुमतो निर्वाण स्वरूपहो तुमको अहंकाररूपी पिशाचकैसे फुरा—यहमेरा संशय दूरकीजिये ? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी ! ज्ञानीहो अथवा अज्ञानी जबतक शरीरका सम्बन्धहै तबतक अहंकारदूर नहीं होता । जैसे जहांआधारहोता है वहां आधेयभी होताहै और जहां आधेयहोता है वहां आधारभीहोताहै; तैसेही जहां देहहोती है वहां अहंकारभी होताहै और जहां अहंकार होताहै वहांदेह भी होती है । हे रामजी ! अहंकार बिना शरीर नहीं रहता पर वह अहंकार अज्ञानरूपी बालकने कल्पाहै और ज्ञानीको अहंकारनष्टहोजाताहै । हे रामजी ! यह अहंकार अविद्याने कल्पाहै । जो वास्तवमें मिथ्याहो और भासे वह अविद्याहै । और जो अविद्याही मिथ्याहै तो उसका कार्य अहंकार कैसेसत्हो ? यह केवलमिथ्या भ्रमसे उदयहुआहै । जैसे भ्रमसे वृक्षमेंबैतालभासताहै तैसेही भ्रमसेअहंकाररूपी वैताल उदय हुआहै और इसका कारण अविचार सिद्धहै; विचार कियेसे इसका अभाव होजाता है । जहां विचार होता है वहां अविद्या नहीं रहती । जैसे जहां दीपक होता है तहां अन्धकार नहीं रहता क्योंकि; दीपकके जागते अन्धकारका अभाव होजाताहै; तैसेही विचारके उदयहुये अविद्याका अभाव होजाताहै । जो वस्तु विचार कियेसे न रहे उसे मिथ्या जानिये और जो आपही मिथ्याहै तो उसका कार्य कैसेसत्यहो ? इससे अहंकारको मिथ्याजानो । हेरामजी ! जैसे आकाशके वृक्षका कारणकोई नहीं; तैसेही अहंकारका कारण कोईनहीं । मनसहित जो षट्इन्द्रियां हैं शुद्ध आत्मा उनका विषय नहीं क्योंकि; वे साकार और दृश्यहैं । साकारका कारण निराकार आत्मा कैसेहो ? जो कुछ आकारहै सो सबमिथ्याहै । जो बीजहोताहै उससे अंकुर उत्पन्नहोताहै तब जानाजाताहै कि, बीजसे अंकुर उत्पन्नहुआ है परन्तु बीजही न हो तो उसका कार्यअंकुर कैसे उत्पन्नहो ? तैसेही जगत्का कारण संवेदनही नहो तो जगत्कैसेहो ? जैसेआकाशमें दूसरा चन्द्रमाहो तो उसका कारणभी मानिये और जो दूसरा चन्द्रमाही न हो तो उसकाकारण कैसे मानिये ? हे रामजी ! ब्रह्म आकाश, अद्वैत, शुद्ध, फुरनेसे रहित, अच्युत और अविनाशी है, वह कारणकार्य कैसेहो ? हे रामजी ! पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान हैं पर भ्रमसे भासतेहैं । केवलशुद्ध आत्मा अपने आपमें स्थितहै । जो तुमकहो कि, अविद्यमानहैं तो भासते क्यों हैं तो उसका उत्तरयहहै कि; जैसेस्वप्नमें अनहोती सृष्टिभासती है तैसेही यह जगत् भी अनहोता भासताहै । जैसे भ्रमसे आ-

काशमें वृक्ष अनहोते भासतेहैं तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं और संकल्प नगर रच-लीजे तो चेष्टाभी होतीहै परन्तु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है वास्तवमें अर्थाकारकुछ नहीं होता और अपनेकालमें सत्यभासताहै पर जबसंकल्पका लयहोता है तबउसका भी अभाव होजाताहै—इससे आकाशके वृक्षकी नाईंहुआहै। जैसे आकाशके वृक्ष भावनासे भासतेहैं। तैसेही यहजगत् संकल्पमात्र है। स्वरूपसे कुछनहींहै जो विचा-रकरके देखिये तो इसका अभाव होजाताहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व अपने आप में स्थितहै वही जगत्का आकारहो भासताहै—दूसरी वस्तु कुछनहीं। जैसे स्वप्ने में जितने पदार्थ भासतेहैं सो सब अनुभवरूप हैं तैसेही जगत्भी ब्रह्मरूपहै। हेरामजी! हमको सदावही भासताहै तो अहंकार कहांहो? न मैं अहंकारहूं और न मेरा अहंकार है केवल आकाशमें अहंकार कहांहो? हे रामजी! न मैंहूं और न मेरेमें कुछफुरना है; अथवा सर्व आत्मसत्ता मैंहीहूं तौभी अहंकार न हुआ। हे रामजी! हमारा अहंकार ऐसाहै जैसे अग्निकी मूर्त्ति लिखीहोती है तो उससे कुछअर्थ सिद्धनहींहोता—दृश्यमा-त्रहोतीहै। तैसेही ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र है उन्हें कर्त्तृत्व भोक्तृत्वका नहीं होता और वे अपने स्वभावमें स्थितहैं। सर्व ज्ञानवानोंका एकही निश्चय है कि, ब्रह्महीभा-सताहै और अहंकारका अभावहै। अहंकार न आगेथा, न अबहै और न फिरहोगा—भ्रमसे अहंकार शब्द जानाजाता है। हे रामजी! जब ऐसे जानोगे तब अहंकारनष्ट होजावेगा। जैसे शरत्कालमें मेघ देखनेमात्र वर्षासे रहित होताहै, तैसेही ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र होताहै। औरकी बुद्धिमें भासताहै परन्तु ज्ञानीके निश्चयमें असं-भवहै क्योंकि;उसका अहंप्रत्यय आत्मामें रहताहै और प्रच्छन्न अहंकारका अभाव होजाताहै। जब अहंकार नाशहोता है तब अविद्याका भी नाशहोजाता है और यही अज्ञानका नाशहै—यह तीनों पर्यायहैं। हे रामजी! अपने स्वभावमें स्थितरहो और प्रकृत आचारकरो; हृदयसे शिलाकोशवत् होरहो और बाहर इन्द्रियोंकी सब क्रिया हों; अपने निश्चयको गुप्तरक्खो और सब इन्द्रियों को इसप्रकार धारो जैसे आकाश सबको धाररहाहै; अन्तरसे शिलाके जठरवत् रहो और देखनेमात्र तुम्हारेमें भीअहं-कार दृष्ट आवेगा। जैसे अग्नि की मूर्त्ति लिखीदृष्टि आतीहै तैसेही तुम्हारेमें अहंकार दृष्टआवेगा परन्तुअर्थ कारणहोगा और केवलब्रह्मसत्ताही भासेगी और कुछनभासेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविदितवेदअहंकारवर्णनं
नामशताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः १७७॥

रामजीने पूँछा; हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि, तुमने अहंकारके त्यागेसे परम सात्त्विकी प्राप्ति का उपदेश कियाहै। यह परम दशा है और राग द्वेष मलसे रहित; निर्मल; उत्तम;अविनाशी और आदि—अन्त से रहितहै। यह दशा तुमनेपरम बिभुता

के अर्थ कहीहै । हे भगवन्! सर्वदाकाल और सर्वप्रकार सर्वबस्तु वहीब्रह्मसत्ताहै और समरूप सत्ताके अनुभवसे परम निर्मल है तो शिलाख्यान किसनिमित्त कहा है सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वहतो सर्वमें; सर्वदाकाल और सबसे रहितहै पर उसके बोधके अर्थ मैंने तुझको शिलाख्यान का दृष्टांतकहा है ।हे रामजी! ऐसा स्थान कोई नहीं जहां सृष्टिनहो । सबस्थानमें सृष्टि भासती है पर आदि से कुछनहीं बना और सर्वदाकाल बसती है–शिलाके कोशमें भी अनेक सृष्टि भासती हैं। जैसे आकाश में शून्यताहै तैसेही शिलाकोशमें भी सृष्टि बसतीहैं। श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! जो सर्वमें सृष्टि बसतीहै तो आकाशरूप क्यों न हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यही मैं भी तुमसे कहताहूं कि;जो कुछ सृष्टिहै वह सब आकाशरूप है । स्वरूपमें तो सृष्टि उपजीही नहीं;सर्वदा आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और आकाशकी वार्त्ता क्या कहनीहै कि; शिलाकोशमें सृष्टि बसती है और आकाशरूप है–अर्थात् कुछ हुई नहीं हे रामजी! पृथ्वीमें ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो। अणुअणुमें सृष्टिहै और सर्व ओरसे बसतीहै परन्तु परमार्थसे कुछ नहीं बना केवल आत्मरूपहै और सर्वसृष्टि शब्दमात्रहै। जैसे यह सृष्टि भासती है तैसेही वह भीहै। जो यह शब्दमात्र है तो वह भी शब्दमात्र है और जो यह सत्य भासतीहै तो वहभी सत्य भासती है। हे रामजी! ऐसा कोई जलका कण नहीं जिसमें सृष्टि नहो;सर्वमेंही सृष्टिहै और यह आश्चर्य देखो कि, इस बिना कुछ नहीं और ऐसा कोई अग्नि और वायुका कण नहीं जिसमें सृष्टि नहो । सबमें सृष्टिहै और आकाशरूपहै, कुछ बना नहीं–ब्रह्मसत्ता अपने आपमें सदा ज्योंकीत्यों स्थितहै। हे रामजी! आकाशमें ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि नहो परन्तु कुछ उपजा नहीं। ऐसा ब्रह्मअणु कोई नहीं जहां सृष्टि नहो परन्तु स्वरूपसे कुछ हुई नहीं–ब्रह्मसत्ता अपने आपमें सदा स्थितहै। हे रामजी! ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें ब्रह्मसत्ता नहीं और ऐसा कोई चिदअणुनहीं जिसमें सृष्टिनहीं पर जैसे किसीने अग्निकही और किसीने उष्णताकही तो उसमेंभेद कोईनहीं तैसेही कोई ब्रह्मकहतेहैं और कोईजगत्कहतेहैं। शब्ददो हैं परन्तु वस्तुएकही है–जगत्ही ब्रह्महै और ब्रह्महीं जगत्है–कुछ भेद नहीं। जैसे बहतेजलका शब्दहोताहै पर उसमें कुछ अर्थ सिद्धनहीं होता; तैसेही जगत्मुझको कुछपदार्थ नहींभासताहै क्योंकि;दूसरीबस्तु बनीनहीं। मैं, तुम और यह जगत्, सुमेरु आदि पर्वत, देवता, किन्नर, दैत्य, नाग इत्यादिक जगत् सब निर्वाण स्वरूपहैं-आत्मतत्त्वमें कुछ नहीं बना। यह बोलते और चालते जो भासते हैं उसे स्वप्नेकी नाई जानो। जैसे कोई पुरुष सोया हो और स्वप्नेमें उसे नानाप्रकारके युद्ध होते वा यंत्र बजते और चेष्टा होती दिखाईदें पर जो उसके निकट जाग्रत पुरुष बैठा हो उसको कुछ नहीं भासता क्योंकि; बना कुछ नहीं और उसको सबकुछ भासता है;

तन्य का आभासही दृष्टआया । जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभासहोताहै और बना कुछ नहीं;तैसेही सृष्टि बनी कुछ नहीं और जैसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही अनहोती सृष्टि भासे । जैसे मरुथलमें जल और गन्धर्व नगर की सृष्टि भासती है तैसेही संपूर्ण सृष्टि भासी हैं । हे रामजी ! ब्रह्मरूपी आ-काश में चित्तरूपी गन्धर्व ने सृष्टिरची है पर स्वरूपसे भिन्नकुछ उपजानहीं—सबअ-कारण है । जो समवाय कारण बिना सृष्टिभासे उसे भ्रममात्र जानिये । जैसे स्वप्ने की सृष्टि कारण बिना होती है और अर्थाकार हो भासती है तौभी अजातजात है अर्थात् उपजेबिना उपजी भासती है; तैसेही संपूर्णसृष्टि आभासमात्रहै । हे रामजी ! आभासमें भी अधिष्ठानसत्ता होती है जिसके आश्रय आभास फुरता है । सच्चि-दानन्द ब्रह्मसबका अधिष्ठान है और सर्व आत्मता सेही स्थित हैं—ब्रह्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं । चेतना करकेही नानात्व भासता है परन्तु नानात्व हुआ कुछनहीं; आत्माही सर्वदा अपने आपमेंस्थितहै । जैसे क्षीरसमुद्रमें वायुसे नानाप्रकारके तरंग उपजते भासते हैं तौभी क्षीर से भिन्ननहीं—ऐसा क्षीरसमुद्र का तरंग कोईनहीं जिस में घृत न हो; तैसेही जो कुछ पदार्थ हैं उन सब में ब्रह्मसत्ता अनुस्यूतहै । जैसे क्षीर मथन किये से घृतनिकलता है; तैसेही विचार कियेसे जगत् ब्रह्मस्वरूप भासताहै—कुछ भिन्ननहीं दिखता क्योंकि; कारण द्वारा कुछ नहीं उपजा परमार्थसे केवल आत्म-सत्ता अपने आपमें स्थित है । फुरनरूपी भ्रम से कुछ हुआ दृष्टआता है और जब फुरनरूपी भ्रम निवृत्तहोताहै तब ब्रह्मही भासताहै; इससे अविद्यारूप फुरनेको त्याग कर अपने निर्विकल्प स्वरूप में स्थितहोरहो तब जगत् भ्रम निवृत्त होजावेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्जालसमूहवर्णनन्नाम
शताधिकसप्तनवतितमस्सर्गः १७९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जबइस प्रकार मैंने सृष्टि देखी तब फिरबिचार हुआ कि, वह शब्द करनेवाला कौन था उसको देखूं । तब मैं देखने लगा तो देखते देखते तीतरी की नाईं शब्दसुना परन्तु उसको न देखा । तब फिर देखा तो शब्दका अर्थ भासने लगा और फिर देखा तो एक अंगनादृष्ट आई जिसकाशरीर सुवर्णवत्था; बहुत सुन्दर वस्त्र पहिरे हुयेथी और सब अंग भूषणों से पूर्णथे; मानो लक्ष्मी वा भवानी थी । जब मैंने उसको देखा तब वह मेरे निकट आई और कहनेलगी; हे मुनी-श्वर ! और संसार जो मैंने देखा है वह सामन्य धर्म्मा मुझको दृष्ट आया है पर तुम उत्तम धर्म्मा और संसार समुद्र के पारहुये दृष्ट आतेहो । तुम संसार समुद्रपार के वृक्षहो; जो कोई तुम्हारी ओर आता है उसके आश्रय भूतहो और उसको निकाल भी लेतेहो पर और जीव संसार समुद्र में बहेजाते हैं और तुम पारहुयेहो; इससे

तुमको नमस्कार है। हे रामजी ! जब इस प्रकार उस अंगनाने कहा तब मैं आश्चर्य में हुआ कि; इसने मुझे कदाचित् देखाभी नहीं और सुनाभी नहीं फिर इसने क्योंकर जाना ? तब मैंने ऐसे विचारकिया कि, यहमायाका कोई चरित्रहै और सब ब्रह्मांड मुझको इसकरके दृष्टआये हैं । हे रामजी ! ऐसे विचारकर मैं फिर आकाश को उड़ा तब और सृष्टि भासने लगी। जैसे स्वप्ने की सृष्टि संकल्प की सृष्टि और गन्धर्व नगरकी सृष्टि होती हैं तैसेही यह सृष्टि है—वास्तव में कुछबना नहीं। जैसे स्वप्नादिक की सृष्टि अनहोती भासती है तैसेही यह जगत्है—केवल बोधमात्र आत्मा अपने आप में स्थित है। हे रामजी ! जब मैं बोधमें स्थित होकर देखूं तब मुझको आत्माही भासे और जब संकल्प करके देखूं तब नानाप्रकार के जगत् भासें कहीं नष्ट होते भासें और कहीं नष्टहोकर उत्पन्नहोते भासें। जैसेपीपलकेपत्ते गिरते हैं और तैसे ही उपजते हैं; तैसेही जगत् उपजते भासें। कहीं ऐसे दृष्ट आवें कि; नाशहोकर और के और उत्पन्न हों; कहीं उत्पन्नहोतेही दृष्टआवें और कहीं भिन्न भिन्न सृष्टि और भिन्न भिन्न शास्त्र दीखे। कहींसूर्य चन्द्रमा और तारोंकाचक्र ऐसेही फिरता दृष्टआवे और कहीं और प्रकार दृष्टआवे; कहीं नरककी सृष्टि और कहीं स्वर्ग के स्थान दृष्टआवें। इसीप्रकार अनन्त सृष्टियां देखीं; अनन्तही रुद्र देखे; अनन्तही ब्रह्मादेखे और अनन्तही विष्णु देखे। कहीं प्रलयके मेघगर्जते थे; कहीं सुमेरादिक पर्वत उड़ते दृष्टआतेथे; कहीं ब्रह्माण्ड जलते और द्वादशसूर्यतपतेथे और कहीं ऐसे स्थान दृष्टआतेथे कि, जन्मतेही पुष्टहोजावें। कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आई कि;एकसृष्टि में मुआ और दूसरी सृष्टिमें आया और दूसरीसृष्टिमें मुआ उसी सृष्टिमें आया। कहीं प्रलय होती दृष्टि आवे; कहीं ज्योंकीत्यों सृष्टि दृष्टि आवे और उनके निकट उनको कुछकष्ट न हो। जैसे दो पुरुष एकही शय्यापर सोयेहों और दोनोंको स्वप्ना आवे तो एककी सृष्टि में प्रलय होतीहै और दूसरेकी ज्योंकीत्यों रहे—इसमेंकुछ आश्चर्य नहीं। हे रामजी ! इसप्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं परन्तु उनमें सारब्रह्म सत्ताहीथी और सब स्वप्नवत् थे जैसे केलेके वृक्षमें सार कुछनहीं निकलता, तैसेही उसस्थानमें सार कुछनदेखा। हे रामजी ! क्रिया—काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप है। जैसे समुद्रमें तरंग बुदबुदे सब जलरूप हैं;तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूपहै,भिन्ननहीं। जैसे क्षीर समुद्रमें तरंगआवर्त क्षीरसेभिन्न कुछनहींहोते,तैसेहीतुम और मैं,सब जगत् ब्रह्मही है। जब मैं बोध की ओर देखूं तब सर्व ब्रह्मही दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नानाप्रकार का जगत् दृष्टिआवे। इस प्रकार मैंनेअनन्तसृष्टियां देखीं। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि,अधही है, कहीं गुणकी सृष्टि देखी और कहीं ऐसी सृष्टि थी कि,धर्म अधर्म को जानतीही न थी। हे रामजी ! एक सौ पचास सृष्टियां

त्रेतायुग की मैंने देखीं जो भिन्न भिन्न थीं और भिन्न ही भिन्न जगत्‌भी थे। उनमें ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठ भिन्न भिन्न देखे जिसको मेरे समान ज्ञानथा और मेरेही समान मूर्त्ति थी। फिर कोई २ मुझसे उत्तम भी थे और उन सबके आगे उपदेश लेनेके निमित्त रामजी बैठेथे। त्रेतायुगमें अनेकयुग और अनेक द्वापर,त्रेता और सतयुग देखे कि; सब चैतन्य आकाश के आश्रय हैं। हे रामजी! हुये बिनाही यह सब दृष्टिआये। जैसे मरुथल में जल; आकाश में अनहोती नीलता और रस्सी में सर्प्प भासता है तैसेही ब्रह्मसे अनहोता जगत् भासताहै। हे रामजी! मनके फुरनेसे जगत् भासता है और फुरनेके मिटे से सब ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जैसे सूर्य्यकी किरणों में अनन्त त्रसरेणु दृष्टि आतेहैं; तैसेही अनन्त सृष्टि देखीं जो एक चैतन्यसे अनेक चैतन्य दृष्टिआई। जैसे वृक्षसे फल प्रकट होतेहैं,तैसेही संकल्परूपी वृक्षसे सृष्टिरूपी फल दृष्टि आये। जैसे एक गूलरके फलमें अनन्त मच्छर होतेहैं; तैसेही एक आत्मसत्ताके आश्रय अनन्त सृष्टि संकल्पके फुरनेसे मुझको दृष्टि आई। कहीं महा प्रलयके क्षोभ होतेथे और समुद्र उछलते थे उनके तरंग देवलोक को गिराते; कहीं श्यामरूप चन्द्रमा उष्ण और सूर्य्य शीतल दृष्टि आताथा, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आई कि, दिनको अन्धेरा होजावे और रात्रिको जीव उलूकादिक की नाईं चेष्टा करते थे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि,उनको रात्रि और दिनका कुछज्ञान नहीं; कालकाज्ञान भी नहीं और धर्म अधर्म का भी ज्ञान नहीं; जैसी अपनीइच्छाहो तैसेही करतेथे। कहीं ऐसी सृष्टिदेखी कि, पुण्य करनेवाले नरकको प्राप्तहोते थे और पापकर्त्ता स्वर्ग को जातेथे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, बालू से तेल निकलता था; बिषपान कियेसे अमर होतेथे और अमृत पानकियेसे मरजाते थे। हे रामजी! जैसे किसीकानिश्चय होताहै तैसाही आगे भासता है। यह जगत् संकल्पमात्र है। जैसी भावना होती है तैसाही आगेहोकर भासता है। कहीं पत्थरों में कमल उपजतेथे और कहीं वृक्षों में रत्न और हीरे दृष्टि आते थे और बड़े प्रकाश संयुक्त आकाश में वृक्षोंके वन दृष्टि आये। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, मेघके बादलही उनके वस्त्र हैं और वस्त्रोंकी नाईं बादलों को पकड़लें; कहीं शीशपर भारलिये सब चेष्टा करतेथे। निदान अन्धे, काने, बहरे इत्यादिक नानाप्रकारकी सृष्टि देखी। हे रामजी! जब मैं स्वरूप की ओर देखूं तब सब सृष्टि शून्यरूप दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नानाप्रकार का जगत् भासे। कहीं ऐसेही सृष्टि दृष्टि आवे कि, वे चन्द्रमा और सूर्य्य को जानतेही नहीं, कहीं एक पृथ्वी की सृष्टि पृथ्वीमें; अग्नि की सृष्टि अग्नि में और जल की सृष्टि जलमें देखी; कहीं पांचभूतकी सृष्टि देखी—जैसे यह बिद्यमान हैं और कहीं काष्ठ की पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी—जैसे यह बिद्यमानहै और भोजन करती है

और कहीं कहीं प्राणोंबिना यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टाकरतीहैं। हेरामजी ! जबऐसे सृष्टि देखी तो मैं महाआकाशमें अनन्तयोजनपर्यंत चलागयापरन्तुएकआकाशहीदृष्टिआताथा और कोईतत्त्व नदीखा। फिर ऐसीसृष्टि देखी कि,वे खाना, पीना आदि सब चेष्टा वैतालकी नाईं करतेथे परन्तु दृष्टिनआतेथे। जैसे बैताल सबचेष्टा करते हैं और दृष्टि नहींआते तैसेही वेदृष्टि नआवें। कहीं ऐसीसृष्टि देखी कि, जहांमैं औरतुमकी कल्पना भी नहीं केवल निश्चितपदथा और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, उनका मनही नहीं। कहीं अहंकार सृष्टिदेखी; कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि; वे सबमें आत्म भावना करते हैं, कहीं सब अपना आपही जानें और भेदभावना किसीकी न करें कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, सब मोक्षकी लक्ष्मीसे शोभते हैं; कहीं ऐसीसृष्टि देखी कि; उपजकर नाश होजावें—जैसे नख और केश उपजते हैं—औरकहीं ऐसेदेखे कि, चिरकालपर्यंत रहें। हे रामजी ! इसप्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखी जो अनहोतीही फुरती हैं और सङ्कल्पमात्र हैं। और जब सङ्कल्पलय होजाता है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाताहै। चित्त केस्पंदसे सब जगत्जाल देखेपर वास्तवमें मैं ऊर्ध्वगया, अधगया और दशोंदिशा गया परन्तु सब चेतनरूपी समुद्रके बुद्बुदे हैं और कुछन भासा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्जालवर्णनंनाम शताधिकाशीतितमस्सर्गः १८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चिदाकाश ब्रह्म अपने आपमें स्थित है—जैसे जल अपने जल भावमें स्थित है—और उसमें जो चैत्योन्मुखत्व होता है मुनीश्वर उसको चिदाकाश कहते हैं। उस मनमें संकल्प बिकल्प फुरनेसे जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड बनगये हैं उनका नाम भूताकाश है। मनसेउपजेहैं इसकारणइनकानाम भूताकाशहै ये संकल्पमात्रहैं—आत्मासे भिन्ननहीं। श्रीरामजीने पूछा,हेभगवन् ! यहजो संकल्प है कि,ब्रह्माकेदिनमें भूतउत्पन्नहोते हैं; रात्रिमें प्रलय होजाते हैं और जब महाप्रलय होता है तब कोई भूत नहीं रहता सब ब्रह्मसत्तामें लीन होजाते हैं और सब जीवन्मुक्त होजाते हैं केवल सूक्ष्म ब्रह्मही शेष रहता है; तो उस सूक्ष्म ब्रह्मसे फिर कैसे सृष्टि उत्पन्न होती है सो कृपाकरके कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब महा प्रलय होता है तब सबभूत नष्ट होजाते हैं और ब्रह्मसत्ताही शेष रहती है उसको तुम मानते हो क्योंकि; तुमनेभी कहा कि, पीछे ब्रह्मसत्ताही शेष रहती है। जब तुमने माना कि, सबकाकारण ब्रह्मशेषरहताहै तो वह ब्रह्मसत्ताशुद्धस्वरूपहै और आकाश से भी सूक्ष्म है; वरन आकाशके हजारहवें भागसेभी अतिसूक्ष्म है। हे रामजी ! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्मसे जगत्कीउत्पत्ति कैसेकहूं ? और जो उत्पत्तिहीनहींतो उसकाप्रलय कैसे हो ! यहजगत्जो दृष्टिआता है सो ब्रह्मकाहृदय है। अपनी जो स्वभावसत्ता है

तिसका नाम हृदय है सो यह और जगत् ब्रह्मकावपु है। जैसे स्वप्नेमें अपनी संवित्ही देश, काल, पर्व्वत आदिकरूप होती है तैसेही यह जगत् संवित्रूप है और अपने स्वरूपके अज्ञानसे हुयेकीनाईं दुःखदायक भासताहै। जैसे अपनी परछाईंमें अज्ञानसे भूतकल्पके बालकभयपाता है पर जब बिचारसे देखता है तब भय निवृत्त होजाता है, तैसेही यहजगत् कुछउपजानहीं। हे रामजी ! चेतन–संवित्ही जगत् आकार होकर भासती है और कुछवस्तु नहीं। जो सब वही हुआ तो आदि सर्गका होना और प्रलय सबउसीके अङ्गहैं भिन्ननहीं। 'अस्ति', 'नास्ति', 'उदय', 'अस्त' आदि जो शब्दहैं वे सब आकाशरूपहैं और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ताहै। सर्वशब्द ब्रह्महीमें होते हैं और ब्रह्म सर्वशब्दोंसे रहितभी है। जो वह सर्वशब्दोंसे रहितहुआ तो जगत्की उत्पत्ति और प्रलय क्योंकर कहीजावे। आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, और अदृश्यहै इन्द्रियोंका विषय नहीं और जगत् भी अविनाशी है क्योंकि; उपजाही नहीं। हे रामजी ! जगत् भी आत्मासे भिन्ननहीं–आत्मरूपही है और जो आत्मरूपहै तो विकार कहां हो ? सर्व्वशब्द और अर्थका अधिष्ठान आत्मसत्ता है इससे जगत् ब्रह्मस्वरूप है। जैसे अंगवाला सर्व्वअंग अपनेही जानताहै तैसेही सब जगत् ब्रह्मके अंगहैं और वह सबको जानताहै। वास्तवमें सुस्वच्छ; आकाशवत् और देश, काल, वस्तु, सुख, दुःख; जन्म, मरण; साकार, निराकार; केवल, अकेवल; नाशी, अविनाशी इत्यादिक सर्व्व शब्द और अर्थ उसहीके नामहैं। जैसे अवयव अवयवी पुरुषके हैं जो फैलावे तो भी अपना स्वरूपहै जो संकोचे तौभी अपने अवयव हैं; तैसेही उत्पत्ति और प्रलय सब ब्रह्महीके अवयव हैं; भिन्ननहीं परन्तु भिन्नकीनाईं जगत्हुआ भासताहै। जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें जल कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु हुयेकीनाईं दृष्टि आताहै और किरणेंही जल होकर भासती हैं; तैसेही आत्मा जगत् आकार होकर भासताहै सो आत्मा स्वरूपही है। हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्षहै उसमें जो संवित् फुरना हुआहै सोही दृढ़मूलहै; चित्तशरीररूपी थंभहै; लोकपालडालें हैं; शाखाजगत्है; फलप्रकाशहै जिससे जगत् प्रकाशताहै; अन्धकार श्यामता है; पोल आकाशहै; फूलोंके गुच्छे प्रलय हैं; गुच्छोंके हिलानेवाले भँवरे विष्णु, रुद्रादिक हैं और जड़ता त्वचाहै। इस प्रकार सम और सत् आत्मब्रह्म है। ब्रह्मत्वभावसे भी कुछ नहीं बना सर्वदा अपने स्वभावमें स्थित है। हे रामजी ! जगत्का भाव, अभाव; उत्पत्ति प्रलयादिक सर्व्वस्वभाव अनुभवरूप ब्रह्मस्थितहै और उसमें कोई विकार नहीं; वह केवल, शुद्ध; निरञ्जन, आत्म आकाश निर्मलहै ! जैसे चन्द्रमाके मंडलमें विषकी वेलनहीं होती, तैसेही आत्मामें कोईविकार नहीं होता निर्मल आकाशरूपहै और आदि– अन्त–मध्यकी कलनासे रहित है तो

लोकपाल भ्रमकैसे हो ? यह संपूर्ण विकार आत्माके अज्ञानसे भासते हैं; जबतुम एकाग्रचित्त करके देखोगे तब जगत्भ्रम शांत होजावेगा । यह जगत् भ्रम फुरने से भासितहुआ है, जबफुरना उलटकर आत्माकी ओर आवेगा तबयह जगत्भ्रम मिट जावेगा । जैसे पवनसे अग्नि जागता है और पवनहीसे दीपक लीनहोजाता है तैसे ही चित्तके फुरनेसे जगत् भासता है और जब चित्तका फुरना अन्तर्मुख होता है तब जगत्भ्रम मिटजाता है । हेरामजी ! जबज्ञानसे देखोगे तब अज्ञानरूप फुरने का त्रिकाल अभाव होजावेगा और बन्धमुक्ति आत्मामें न भासेगी—इसमें कुछसंशय नहीं । यह जगत्जाल आत्मामें कुछ उपजानहीं अज्ञानसे भासता है; जब विचार कर के देखोगे तब अष्टसिद्धिका ऐश्वर्य तृणवत् भासेगा ॥

इतिश्रीयोगबाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबोधजगदेकताप्रतिपादनंनाम शताधिकैकाशीतितमस्सर्गः १८१ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! यह जगत्जाल तुमने चिद्रूप होकर एकस्थान में बैठ करदेखा अथवा सृष्टिमें जाकरदेखा ? वशिष्ठजी बोले , हेरामजी ! मैंअनन्त आत्मा सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वव्यापी चिदाकाशहूं मुझमें आनाजाना कैसेहो ? न एक स्थानमें बैठकर देखी और न सृष्टिमें जाकरदेखी । हेरामजी ! मैंचिदाकाशहूं मैंने चिदाकाशमें देखी । हे रामजी ! जैसे तुम अपने अङ्गोंको शिखासे लेकरनखपर्यन्त देखतेहो तैसेही मैंने ज्ञाननेत्रसे अपने आपही में जगत्देखा जो निराकार, निरवयव, आकाशरूप, निर्मल; सावयव और फुरनेसे दृष्टिआये हैं; बास्तवमें कुछनहीं केवल आकाशरूप है । जैसे स्वप्नेमें सृष्टिकाअनुभवहो परन्तुसंवित्रूपहै बनाकुछनहीं और जैसे वृक्षकेपत्र, टास, फूल, फलसबवृक्षके अङ्गहोतेहैं तैसेही ज्ञाननेत्रसे मैंने जगत्को देखा । हे रामजी ! जैसेसमुद्रतरङ्ग, फेन,बुद्बुदे औरजलकोअपनेआपहीमें देखताहै; तैसेहीमैं अपनेआपमें जगत्को देखताहूं औरअबभीमैं इसदेहमें स्थितहुआ पर्वतकी सृष्टिको ज्ञानसे देखताहूं । जैसे कुटीके भीतरबाहर आकाश एकरूपहै तैसेही मुझको आगे और अबभी जगत् आकाशरूप अपने आपमें भासते हैं । जैसेजल अपनेरस को जानता है; बरफअपनी शीतलता को जानताहै और पवनअपनी स्पन्दताको जानता है तैसेही मैं ज्ञानसे सृष्टि अपनेमें देखताभया । जिस ज्ञानवान् पुरुषको शुद्ध बुद्धिमें एकताहुई है वह अपनेको सर्वात्मा देखता है और जिसको आत्मस्थिति हुईहै वह वेदनको भी अवेदन देखताहै और कदाचित् उपजानहींमानता । जैसे देवता अपने अपने स्थानोंमें बैठेहुये दिव्यनेत्रसे कोटियोजन पर्यंत अपने विद्यमान देखतेहैं तैसेहीजगतोंको मैंने सर्वात्महोकर देखा । जैसे पृथ्वीमें निधि; औषध और रससहित पदार्थहोतेहैं सो पृथ्वीअपनेमेंही देखतीहै, तैसेही मैंनेजगत्को अपनेमेंही देखा।रामजी

नेपूछा, हे भगवन्! वहजो कमलनयनी कांता छन्दकेपाठ करनेवाली थी उसने फिर क्याकिया? वशिष्ठजी बोले,हेरामजी! वह आकाश वपुको धारकेमेरे निकटआई और जैसेभवानी आकाशमें आन स्थित हों तैसेही आन स्थित हुई। जैसेमैं आकाश वपु था तैसेही उसकोभी मैंने आकाश बपुदेखा। प्रथम मैंने आकाशमें इस कारण न देखा कि, मेरा आधि भौतिक शरीरथा। जब चित्तपद होकर मैं स्थित हुआ तबवह कांता देखी। मैं आकाशरूपी हूं और वह सुन्दरीभी आकाश रूप है और जगत् जाल जो देखे सो भी आकाश रूपहैं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमभी आकाशरूप थे और वहभी आकाशरूप थी पर वचन विलास तो तब होता है जब शरीर होता है और उसमें बोलने का स्थान कंठ, तालु, नासिका, दन्त, होठ और हृदयमें प्रेरनेवाले प्राणहोते हैं और अक्षरका उच्चार होता है और तुमतो दोनों निराकारथे; तुम्हारा देखना और बोलना किस प्रकार हुआ? बोलना रूप,अवलोक और मनस्कार से होता है—रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां और मनस्कार अर्थात् मनका फुरना—इनतीनों बिनातुम्हारा बोलनाकैसेहुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे स्वप्ने में रूप, अवलोक और मनस्कार; शब्दपाठ और परस्पर वचन होते हैं सो आकाशरूप होते हैं तैसेही हमारा देखना. बोलना और आपसमें सम्वाद हुआथा। जैसे स्वप्नेमें रूप अवलोक और मनस्कार आकाशरूप होतेहैं और प्रत्यक्षभासते हैं तैसेही हमारा देखना और बोलना हुआ। यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता कि, देखना और बोलना कैसे हुआ? जैसे आकाश में सृष्टि देखी है तैसे यह सृष्टिभीहै और जैसे उनके शरीर थे तैसेही इनके और हमारे शरीर हैं। जैसे यह जगत् है तैसेही वह जगत्है। हे रामजी! यह आश्चर्य है कि, सत् वस्तु नहीं भासती और असत् वस्तु भासती है। जैसे स्वप्नेमें पृथ्वी, पर्व्वत, समुद्र और जगत् व्यवहार है नहीं पर प्रत्यक्ष भासता है और सत्वस्तु अनुभव रूप नहीं भासती तैसेही हम तुम जगत् सब आकाश रूपहैं। जैसे स्वप्ने में युद्ध होते भासते हैं और शब्द होते हैं और आनाजाना भासता है वह सब आकाशरूप है और हुआ कुछनहीं तैसेही यह जगत्भीहै। हे रामजी! स्वप्नसृष्टि मिथ्याहै, कुछ बनी नहीं और जो कुछहै सो अनुभवरूपहै—भिन्न कुछनहीं। जो तुम पूछो कि, स्वप्ना क्याहै और कैसे होताहै तो सुनो; आदि परमात्मतत्त्व में स्वप्न वचन हुआ है सो विराट्आत्माहै और फिर उससे यह जीव हुयेहैं सो आकाशरूपहैं क्योंकि; विराट् आकाशरूप है और ये सब आकाशरूप हैं। स्वप्ने का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे बोध के निमित्त कहाहै क्योंकि; स्वप्नाभी कुछ हुआनहीं केवल आत्ममात्र है; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! वहकान्ता जब मैंने देखी तो मैंने उससे पूछा

क्योंकि; सङ्कल्प मेरा और उसका एकथा। जैसे स्वप्नेमें स्वप्नाहोता है तैसेही हमारा हुआ। हे रामजी ! जैसे स्वप्नेकी सृष्टि आकाशरूप होतीहै तैसेही हम, तुम और सब जगत् आकाशरूपहैं कुछहुआ नहीं। स्वप्न जगत् और जाग्रत् जगत् एकरूपहै परन्तु जाग्रत् दीर्घकाल का स्वप्ना है इससे इसमें दृढ़व्यवहार; उत्पन्न और प्रलय होतेभासते हैं। हे रामजी ! स्वप्नेमें भोग होते भासते हैं सो भ्रांतिमात्र हैं; निर्मल आकाशरूप आत्मासे भिन्नकुछ नहीं बना । दृश्य और द्रष्टा स्वप्नेकी नाईं अन-होते भासतेहैं। जो हम तुमआदिक दृश्यको मनरूपी द्रष्टासत्य मानता है सो दोनों अज्ञानसे भ्रममात्र उदयहुये हैं औरजो शुद्धद्रष्टा है सो दृश्यसे रहित है । जैसेद्रष्टा आकाशरूप है तैसेही दृश्यभी आकाशरूप है और जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभवसे भिन्न कुछ नहीं तैसेहीयह जाग्रत्भी अनुभवरूप है। हे रामजी ! चिदाकाश जो अ-नन्तआत्माहै वह इसजगत्का कारण कैसेहो ? जैसे स्वप्नेकी सृष्टिकाकारण कोईनहीं; तैसेही इसजाग्रत् जगत्का कारणभी कोई नहीं क्योंकि; हुआ कुछ नहीं और जो कुछहै सो अनुभवरूप है—इससेयह जगत् अकारण है। हे रामजी ! सबजीवसाका-ररूप हैं और इनके स्वप्नेकी सृष्टि जो नानाप्रकारकी होती है सोभी आकाशरूपहै कुछ आकार नहीं। जो निराकार अद्वैतआत्मसत्ता है उसमें आदि आभासरूपजगत् फुराहै तो वह आकाशरूप क्योंन हो ? अब साकार और निराकार का भेद कहते हैं सो सुनो। एकचित्तहै और दूसरा चैत्यहै—चित्त शुद्ध चिन्मात्र का नामहै और चैत्य दृश्यफुरनेको कहतेहैं। जिसचित्तको दृश्यकासंबन्धहै उसकानाम जीवहै।जिसचित्तको अज्ञानसे द्वैतका संबन्ध है और अनात्ममेंआत्म अभिमानकरताहै ऐसाजीवसाकार रूप है और उसके स्वप्नेकी सृष्टि आकाशरूपहै सो अचैत्य चिन्मात्र निराकारसत्ता है तो उसका स्वप्ना आभासरूप जगत् आकाशरूप क्योंन हो ? हे रामजी ! यह जगत् निरुपादान रूपहै अर्थात् कुछ बनानहीं और चिदाकाश निराकाररूपहै। जैसे स्वप्नेमें जगत् अकृत्रिम होताहै तैसेही यह जगत्है ; न इसको कोई निमित्तकारणहै और न समवाय कारणहै पर आत्मा अच्युत और अद्वैतहै सोदृश्यका कारण कैसे कहिये ? हे रामजी ! न कोई कर्त्ता है; न भोक्ता है और न कोई जगत् है और नाहीं कहना भी नहीं बनता। ऐसाजो ज्ञानवान् है सो पाषाणवत् मौन स्थित होताहै और जब प्रकृत आचार आन पड़ताहै तब उसको भी करताहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदेकताप्रतिपादनंनाम
शताधिकद्व्यशीतितमस्सर्ग्गः १८२ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! वहजो तुम्हारे निकट आकाशरूप कान्ताआई सोवह शरीर बिना अनेक क,च,ट,तादिक अक्षर कैसे बोली और जो तुम स्वप्नेकीनाईं कहो

तो स्वप्नेमेंभी केवल आकाश होता है वहां य, र, ल, वादिक कैसे बोलते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्वप्नेमें जो शरीर होताहै सो आकाशरूपहै; उसमें क,च, ट, तादिक अक्षर कदाचित् उद्देश नहीं हुये। जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता तैसेही आकाशरूप आत्मामें शब्द कदाचित् नहींहोता। जो तुमकहो कि, स्वप्नेमेंजो य,र,ल,वादिक अक्षर प्रवृत्तहोतेहैं; तो उसका उत्तर यह है कि; जो कुछशब्द वहां सत्हुये होते तो निकट बैठेभी सुनते। हे रामजी! निकट बैठे जगत्को नहीं सुना तो ऐसे मैं कहताहूं कि; आकाशरूप है कुछ हुआ नहीं और जो हुआ भासताहै सो भ्रान्तिमात्र केवल चिन्मात्र आकाशका किंचन है और आकाशमें आकाशही स्थित है; तैसेहीयह जगत्भी कुछहुआ नहीं। हे रामजी! जैसे चन्द्रमामें श्यामता;आकाशमें वृक्ष और पत्थरमें पुतलियां नृत्य करती भासेंतो मिथ्याहै तैसेही इस जगत्का होना भी मिथ्या है। हे रामजी! स्वप्नेमें जो जगत्भासताहै सो चिदाकाशका किंचनहै सो भी आकाशरूपहै—भिन्न कुछनहीं। जैसे स्वप्नेका जगत्आकाशरूपहै तैसेही यहजगत् भीआकाशरूपहै और जैसे यह जगत्है तैसेही वे जगत्भीथे और यह जो आकाश है सो आत्माकाशमें अनाकाश है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टिभ्रम से प्रवृत्तभासती है तैसे ही जगत्भी भ्रम से प्रत्यक्ष भासताहै। रामजीनेपूछा, हे भगवन्! जो यह जगत् स्वप्न है तो जाग्रत् क्यों भासताहै और जो असत् है तो सत्यकी नाईं क्यों भासता है? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! एक मृदुसंवेग है; दूसरा मध्यसंवेगहै और तीसरा तीव्रसंवेगहै—संवेग संकल्पके प्रमाणको कहतेहैंसो त्रिविध है। जैसे कोई पुरुषअपने स्थानमें बैठाहुआ मनोराज से किसीव्यवहारको रचताहै सो उसको जानताहै कि; संकल्पमात्र है और नटस्वांग धारताहै तबवह जानताहै कि, मेरा स्वांगहै और अपने स्वरूपको सत्य जानता है। इसकानाम मृदुसंवेगहै क्योंकि; अपना स्वरूप नहीं भूला। मध्यसंवेग यह है कि, जैसे किसी पुरुषको स्वप्नाआताहै तो उसमें स्वप्नसृष्टि भासतीहै और एक शरीर अपना भासताहै; तब अपने शरीरको सत्यजानताहै और जगत्कोभी सत्यजानताहै क्योंकि; स्वरूप का प्रमाद है इससे स्वप्नकालकी सृष्टिको सत्य जानता है और आगे हुये को असत्य जानता है। इसकानाम मध्यसंवेग है क्योंकि; सोया हुआ शीघ्रही जागउठता है और जो सोया और जागे नहीं उसका नाम तीव्रसंवेग है। हे रामजी। आदिसंकल्प स्वप्न में रूपभासते हैं और उसमें नानाप्रकारकी सृष्टि होकर स्थित है। जिनको आदिस्वरूप का प्रमादनहीं हुआ उन को यहजगत् मृदुसंवेग है क्योंकि; वे अपनी लीलामात्र असत्य जानते हैं और जिनको आदिस्वरूप का प्रमादहुआ है वे फिर शीघ्रही जागउठते हैं तब उनको वह जगत् असत्य भासताहै और इसजगत्में सत्यप्रतीति नहीं होती। जिनको

प्रमादहुआ है और फिर नहीं जागे । उनको यह जगत् सत्यही भासताहै क्योंकि; उनकी चित्तकी वृत्तिका प्रमाण तीव्रहोगया है इसकारण अज्ञानी को यहजगत् स्वप्न जाग्रत्हो भासता है-जैसे स्वप्नकालमें स्वप्नेकी सृष्टि सत्यहो भासती है । हे रामजी ! चित्तके फुरनेका नाम जगत्है; जब चित्त बहिर्मुख होता है तब जगत् हो भासताहै और स्वरूप का अज्ञान होताहै और जब अज्ञान होताहै तब जगत्भ्रम दृढ़होता जाताहै- इससे इसजगत् का कारण अज्ञानहै । हे रामजी ! आत्माके अज्ञानसे जगत् भासताहै; जब आत्मज्ञानहोगा तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा । वह आत्मा अपनाआपहै इससे आत्मपदमें स्थितहोरहो तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा । हे रामजी ! अज्ञानसे इस जगत्की सत्य प्रतीति होती है और उसमें जैसी जैसी भावना होतीहै तैसेही जगत्हो भासता है । हे रामजी ! जिसप्रकार जगत्भ्रम सत्यहो भासताहै सो भी सुनो कि, जो अज्ञानी जीव है वह जबमृतक होताहै तब मुक्त नहींहोता बल्कि अज्ञानके वशसे जड़पत्थरवत् होताहै क्योंकि;चेतनरूप है । हे रामजी ! जबमृत्यु होतीहै तब आकाशरूप चित्तमेंही जगत् फुर आताहै और अपनी वासनाके अनुसार नाना प्रकार का जगत् हो भासता है , एवम् नाना प्रकार के व्यवहाररचना क्रियासहितहोकर भासतेहैं । कल्पपर्यंत सबक्रिया जीवोंकी अन्तबाहक होतीहैं-जैसी हमारीहै । हे रामजी ! तुमदेखो वह जगत् क्यारूपहै-किसीकारणसेतो नहीं उपजा ? जैसे वह जगत् कलनामात्र सत्होभासता है; तैसेही इसजगत् कोभी जानो । हे रामजी ! यह जो तुमको स्वप्नाआता है और उसमें पुरुष पदार्थ हैं वेभी सत्य हैं क्योंकि; ब्रह्मसत्ता सर्वात्मकहै । हे रामजी ! प्रबोध हुये से भी स्वप्नके पदार्थ विद्यमान भासतेहैं, इसीसे कहाहै कि; स्वप्न संकल्प और जाग्रत् तुल्यहै । जैसेआगे शुक्र, ब्राह्मणकेपुत्र इन्द्र, लवण और गाधिका उदाहरण कहा है, इनको मनोराजभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है और दीर्घतपाको जिसका उदाहरण आगे कहेंगे प्रत्यक्ष स्वप्नहुआ है । जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है क्योंकि; संकल्प अपना अपना है इससे सृष्टि भिन्नभिन्न है और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है । सर्व सृष्टि का प्रतिबिम्ब आत्मरूपी आदर्शमें होता है और सर्वसृष्टि आत्माका अनुभवहै । जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है और उस वृक्षसे और वृक्षहोते हैं तौभी विचारसे देखो कि, बीजतो एकही था और सब वृक्षआदि उसी बीजसे उपजे हैं; तैसेही एक आत्मासे अनेक सृष्टि प्रकाशती हैं परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं । जैसे एक पुरुष सोया है और उसको स्वप्नेकी सृष्टि भासती है और फिर स्वप्नेमें जो बहुत जीवभासते हैं उनको भी अपने अपने स्वप्ने की सृष्टि भासती है । हे रामजी ! जिससे आदि स्वप्नेकी सृष्टि भासती है वह पुरुष एकही है और उस एकही में अनन्त सृष्टि चित्त के फुरने

से होती हैं; तैसेही आत्मसत्ता के आश्रय अनन्त सृष्टि फुरती हैं परन्तु स्वरूपसे कुछ हुआ नहीं सब आकाशरूप हैं और जीवोंको अपनी अपनी सृष्टि अज्ञान से भासनी है। हे रामजी! जीवोंको और सृष्टि का ज्ञान नहींहोता अपनीही सृष्टिको जानते हैं क्योंकि; संकल्प भिन्न भिन्न हैं। कितनोंको हम स्वप्नों के नरहैं और कितने हमको स्वप्नेके नरहैं; वे और सृष्टि में सोयेहैं और हमारी सृष्टि उनको स्वप्नेमें भासतीहै तिनको हम स्वप्नेके नरहैं और जो हमारी सृष्टिमें सोये हैं उनको स्वप्नेमें और सृष्टि भासिआई है सो हमारे स्वप्ने के नरहैं। हे रामजी! इस प्रकार आत्मतत्त्वके आश्रय अनन्त सृष्टि भासती हैं। जो जीव सृष्टिको सत् जानकर विचरते हैं वे मोक्ष मार्गसे शून्यहैं। जैसे मनुष्य जो शयन करताहै तो उसको स्वप्नेमें प्रमाण होताहै और उसमें जो जीव होतेहैं उनको फिर स्वप्ना होताहै तब अपनी अपनी सृष्टि उनकोभासती है तो वह अनन्त सृष्टि अनुभव के आश्रय होतीहै; तैसेही एक आत्माके आश्रय असंख्य सृष्टिफुरती हैं सो कई समान; कई अर्द्ध समान और कई विलक्षण भासती हैं पर अपनी अपनी सृष्टिको जीव जानते हैं। जैसे एक मन्दिरमें दश पुरुष सोये हैं और उनको अपना अपना स्वप्ना आवे तब उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता उसकी सृष्टि को वहनहीं जानता; तैसेही यह सृष्टिभी और को नहीं भासती क्योंकि; संकल्प अपना अपना है। जैसेपत्थर को पत्थरनहीं जानता और जो अन्तवाहक शरीर योगेश्वर हैं उनको सृष्टिका ज्ञान होता है। हे रामजी! वास्तवमें सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है। जैसे सूर्यकी किरणोंमेंजलाभास होताहै तैसेही आत्मा में सृष्टिहै और जैसे रस्सीमें सर्पभासताहै तैसेहीआत्मामें सृष्टिभासतीहै। हे रामजी! वास्तव में कुछहुआ नहीं; सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्माही अपने आपमें स्थितहै; जिनको आत्माका प्रमादहुआहै उनकोजगत् भासताहै वास्तवमें जगत् किसी कारण से नहीं उपजा—आभासरूप है। सम्यक् ज्ञानकेहुयेसे ब्रह्मअद्वैत भासता है और असम्यक्ज्ञानसे अद्वैतरूप जगत्हो भासताहै। जैसे रस्सीके सम्यक्ज्ञानसे रस्सीही भासतीहै और असम्यक्ज्ञानसे सर्प भासताहै; तैसेही आत्माके असम्यक् ज्ञान से जगत् भान होता है। हे रामजी! मैंने उस देवीसे प्रश्न किया कि; हे देवि! तुम कहांसे आईहो; तुम्हारा स्थान कहां है; तुमकौनहो और यहां किसनिमित्त आईहो? तब वह देवी बोली, हे मुनीश्वर! ब्रह्मरूपीमहाकाश के अणुकाभी जो अणुहै और उसकेछिद्रमें भी जो छिद्रहै तिसमें तुमरहतेहो और तुम्हारा यह जगत्भी उसी में है। तुम्हारी सृष्टिकाजो ब्रह्माहै तिसकी संवेदनरूपी कन्याने यह जगत् रचाहै। उस तुम्हारे जगत्में पृथ्वीहै और उसके ऊपर समुद्रहै जिनसे पृथ्वी घेरीहुईहै; उसके ऊपर दूना और द्वीपहै और उसद्वीप के ऊपर दूनासमुद्रहै। इसीप्रकार पृथ्वी को

लंघके आगे सुवर्णकी पृथ्वी आतीहै जो दशसहस्रयोजन पर्यन्त महासुन्दर प्रकाश रूपहै और उसने सूर्य्य चन्द्रमाके प्रकाशको भी लज्जित कियाहै । उसके परे और लोकालोक पर्व्वतहैं जो सब ठौरप्रसिद्ध हैं और उन में बहुत नगर बसतेहैं । कहीं ऐसेस्थान हैं जहां सदा प्रकाशही रहता है—जैसे ज्ञानीके हृदयमें सदाप्रकाश रहता है; कहीं ऐसेस्थान हैं जहां सर्वदा अन्धकारही रहताहै—जैसे अज्ञानीके हृदयमें अन्धकार रहताहै; कहीं ऐसेही स्थान हैं जहांप्रत्यक्ष पदार्थ मिलते हैं—जैसे पण्डित के हृदय ' अर्थ प्रत्यक्ष होतेहैं; कहीं ऐसे स्थानहैं जहां पदार्थ नहीं मिलते—जैसे मूर्खके हृदयमें श्रुतिका अर्थ नहींहो ा; कहीं ऐसे स्थानहैं जिनके देखनेसे हृदय प्रसन्नहोता है—जैसे सन्तोंके दर्शनसे दयप्रसन्न होताहै; कहींऐसेस्थान हैं जिनमें सदा दुःखही रहताहै—जैसे अज्ञानी की सङ्गतिमें सदा दुःखरहताहै; हीं ऐसेस्थानहैं जहां सूर्य्य उदय नहींहोता; कहीं सूर्य न्द्रमा दोनों उदयहोते हैं; कहीं पशुही रहते हैं; कहीं मनुष्यही रहते हैं; कहीं दैत्य और कहीं देवताही रहतेहैं;कहीं किसान रहते हैं; कहीं धर्म्मका व्यवहार होताहै; कहीं विद्याधरही रहतेहैं; कहीं उन्मत्तहाथी हैं; कहीं बड़े नन्दनबन हैं; कहीं ऐसे स्थानहैं जहां शास्त्रका बिचारही नहीं; कहीं शास्त्रके विचारवान्हैं; कहीं राज्यही करतेहैं; कहीं बड़ी बस्तियां हैं; कहीं उजाड़ बन हैं; कहीं पवन चलताहै; कहीं बड़े खात छिद्रहैं;कहीं ऊर्ध्वशिखर हैं जहां विद्याधर और देवता रहते हैं;कहीं मच्छ,यक्ष और राक्षसहैं और कहीं विद्याधरी देवियां महामत्त रहती हैं । इसी प्रकार अनन्त देशों और स्थानोंकी बस्तियां हैं । उस लोकालोकके शिखर पर सात योजनका एक तालावहै जिसमें फूले कमल लगेहैं; सब ओर कल्पवृक्ष हैं और वहां के सब पत्थर चिन्तामणिहैं । उसके उत्तर दिशामें एक सुवर्णकी शिला पड़ीहै जिसके शिखर पर ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र बैठते हैं और विलास करतेहैं उसके ऊपर शिलामें मैं रहतीहूं और मेरा भर्त्ता और सम्पूर्ण परिवार भी वहांही रहता है । हे मुनीश्वर ! उसमें एक वृद्ध ब्राह्मण रहताहै जो अब तक जीताहै और एकांत जाकर सदा वेदका अध्ययन करताहै । उसने मुझको अपने विवाहके निमित्त अपने मनसे उपजाया है और अब मैं बड़ीहुईहूं तो वह मेरे साथ बिवाह नहीं करता । वह जबसे उपजाहै तब से ब्रह्मचारीही रहताहै और वेदका अध्ययन करके विरक्त चित्तहुआहै । हे मुनीश्वर ! मैं वस्त्रों और भूषणों संयुक्तहूं; न्द्रमाकीनाईं मेरेसुन्दरअंगहैं और मैं सबजीवोंके े-हनेवालीहूं । मुझको देखकर कामदेव भी मूर्च्छित होजाताहै; फूलोंकी नाईं मेरा हँसना है और सब गुण मेरेमें हैं । महा लक्ष्मीकी मैं सखीहूं पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकांत जाकर बैठाहै और सदा वेदका अध्ययन करताहै । वह बड़ा दीर्घसूत्री है;जब मैं उत्पन्नहुई थी तब वह कहता था कि;मैं तुझको बिवाहूंगा पर अब मैं यौवन अवस्था

को प्राप्तहुईहूं तब त्यागकर एकांत जाबैठाहै। हे मुनीश्वर! स्त्रीका सदा भर्त्ता चाहिये। अब मैं यौवन अवस्थासे जलती हूं और बड़ेतालाब जो कमल सहित दृष्टि आते हैं वे भर्त्ताके वियोगसे मुझे अग्निके अंगारे भासते हैं और नन्दनवन आदिक बड़े बाग मुझको मरुस्थलकी नाईं भासतेहैं। इनको देखकर मैं रुदन करतीहूं और नेत्रों से ऐसा जल चलता है जैसे वर्षाकालका मेघ वर्षता है। जब मैं मुख आदिक अपने अंगोंको देखतीहूं ̄ब नेत्रोंके जलसे कमलिनी डूब जाती है और जब कल्पतरु और तमाल वृक्षके फूल और पत्र शय्यापर बिछाकर शयन करतीहूं तब अंगोंके स्पर्शसे फूल जलते हैं। जिस कमलसे मेरा स्पर्शहोताहै सो जलजाताहै। हे भगवन्! भर्त्ता के वियोगसे मैं तपी हुईहूं। जब मैं बर्फके पर्वत पर जाबैठतीहूं तब वह भी अग्निवत् हो-जाताहै और मैं नानाप्रकारके फूलोंको गलेमें डारतीहूं तबभी तप्तता निवृत्तनहींहोती। मेरे भर्त्ताकी देह त्रिलोकी है और उसके चरणोंमें सदा मेरी प्रीति रहतीहै। मैं गृहके सब आचार करतीहूं और सब गुणोंसे सम्पन्नहूं; सबको धार रहीहूं; सबकी प्रतिपालक हूं और ज्ञेय की मुझको सदा इच्छा रहती है। हे मुनीश्वर! मैं पतिव्रताहूं; जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के साथ स्पर्श करताहै वह बहुत सुख पाताहै और तीनों तापसे रहित होता है क्योंकि, उसमें सब गुण मिलतेहैं और वह सदा भर्त्तामें प्रीति करतीहै और भर्त्ता की प्रीति उसमें होती है—ऐसी मैं हूं पर मुझको त्याग कर वह ब्राह्मण एकान्त जाबैठा है और सर्वकाल वेदका अध्ययन और विचार करता रहता है। मेरे भर्त्ताने कामना का त्याग किया है, उसको कोई इच्छा नहीं रही और मैं उसके वियोग से जलती हूं। हे भगवन्! वह स्त्री भी भली है जिसका भर्त्ता बिवाह करके मरगया हो; कुँवारी भी भली है और जो भर्त्ता के संयोग से प्रथमही मरजाती है वह भी श्रेष्ठ है पर जिसको भर्त्ता प्राप्त हुआ है परन्तु उसको स्पर्श नहीं करता तो उसको बड़ा दुःख होता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्माकी भावना के संस्कार से रहित उत्पन्न हुआ है वह निष्फल है। जैसे पात्रबिना अन्न निष्फल होता है—अर्थ यह कि, सन्तजन, तीर्थ आदिक से रहित पापस्थानों में डालाहुआधन निष्फलहोता है और जैसे सम दृष्टि ि ना गेध और वेश्याकी लज्जा निष्फल है; तैसेही मैं पति बिना निष्फलहूं। हे भगवन्! जब मैं शय्याबिछाकर शयन करतीहूं तब फूलभीजल जाते हैं। जैसे समुद्र को बड़वाग्नि जलाता है तैसेही कमलों को मेरे अंगजलाते हैं। हे मुनीश्वर! जो सुख के स्थान हैं सो मुझको दुःखदायक भासते हैं और जो मध्य-स्थान हैं सो न सुखदेते हैं न दुःखदेतेहैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरीविशोकवर्णनंनाम शताधिकद्विशीतितमस्सर्गः १८२॥

हे मुनीश्वर ! इसप्रकार में तपकरती फिरतीहूं । अब मुझको भी भर्त्ताके वियोग से वैराग्य उपजा है । भर्त्ता का वैराग्य रूपी ओला मेरी तृष्णारूपी कमलिनीपरपड़ा है और उससे मैं जलगईहूं इससे जगत् मुझको विरस भासता है । हे मुनीश्वर ! यह जगत असार है, इसमें स्थिर वस्तु कोई नहीं; इसकारण मुझकोभी वैराग्य उपजा है । मेरा भर्त्ता जो स्वभूत है सो संसार से विरक्तहोकर एकांतजाबैठा है और वेदको विचारतारहता है परन्तु आत्मपदको नहीं प्राप्त हुआ । वह मनके स्थिर करने का उपाय कर्त्ता है परन्तु अबतक उसका मन स्थिर नहीं हुआ । सर्व ईषणासे रहित होकर वह शास्त्रको विचारतारहताहै पर आत्माका साक्षात्कार उसे नहींहुआ। मुझको भी वैराग्य उपजा है; अब हम दोनों वैराग्य से संपन्नहुये हैं और परमपद पाने की इच्छा हुई है । शरीर हमको विरस होगया है—जैसे शरत्काल की बेलि विरस होतीहै—इसकारण मैं योगकी धारणा करनेलगीहूं । यह शक्ति अब मुझको उत्पन्न हुई है कि; आकाशमार्ग को आऊं और जाऊं; योगधारणासे आकाशपर उड़ने कीभी शक्तिहुई है और सिद्ध मार्गकी धारणासे सिद्धोंके मार्गमेंभी आतीजातीहूं परन्तु अर्थ कुछ सिद्ध न हुआ क्योंकि; पाने योग्य आत्मपद प्राप्ति नहींहुआ । जिस के पायेसे कोई दुःख न रहे । अब मुझको निर्वाणकी इच्छाहुई है । मैंने सिद्धोंके गण; देवता; विद्याधर और ज्ञानियों के बहुत स्थान देखेहैं परन्तु जहांगई वहां सब तुम्हारी ही स्तुति करते हैं कि; वशिष्ठजी बलके द्वाराअज्ञानको निवृत्त करतेहैं । जैसे बड़ा मेघ वर्षता है परन्तु जब वायु चलता है तब मेघको दूर करता है तैसेही तुम्हारे वचन अज्ञान को दूरकरते हैं । जब ऐसे मैंने तुम्हारी स्तुति सुनी तब मैंने इस सृष्टि में आनेका अभ्यास किया और धारणाके अभ्याससे तुम्हारी सृष्टिमें आईहूं । इससे, हे मुनीश्वर ! मेरे और मेरे भर्त्ताको शांतिके अर्थ आत्मज्ञानका उपदेश करो । मेराभर्त्ता जो मनके स्थित करने का यत्न करता है उसको तुम ऐसा उपदेश करो कि, शीघ्रही स्थित हो और आत्मपद को प्राप्तकरे और मुझको भी आत्मज्ञानका उपदेश करे हे भगवन् ! तुममाया से पार मुझको दृष्टि आतेहो इसकारण मैं तुम्हारी शरण आई हूं । मैं स्त्री बुद्धिकरके तुम्हारे निकट नहीं आई पर शिष्यभाव को लेकर आई हूं और मैं जानतीहूं कि; मेरा अर्थ सिद्ध होरहा है क्योंकि; जो कोई महापुरुष की शरणआय प्राप्त होता है तो निष्फल नहीं जाता बल्कि सब अर्थ संपूर्ण होता है। जैसा किसीका अर्थ होताहै वैसा महापुरुष सिद्ध करदेते हैं । जैसे कल्पवृक्षके निकट कोई जाताहै तो उसका अर्थ पूर्णहोता है, तैसेही मेराअर्थ सफल होजावेगा । इससे कृपाकरके मुझको उपदेश करो । हे मुनीश्वर ! तुम मानो दयाके समुद्रहो। सबके अर्थ सम्पूर्ण करनेको तुम समर्थहो और सुहृद हो अर्थात् उपकार की अपेक्षा बिना उ-

पकार करते हो; इससे मैं अनाथ तुम्हारी शरणमें आई हूं मुझको आत्मपद को प्राप्त करो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरीवेगवर्णनन्नाम शताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः १८३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इसप्रकार बिद्याधरीने मुझसेकहा तब मैंआकाश में संकल्पका आसन रचकर उसपर बैठा और संकल्पसेही एक आधारभूतका आसन रचकर उसको बैठाया क्योंकि, हमारा शुद्ध संकल्प है जो कुछ चिन्तना करते हैं सो होजाता है। तब मैंने कहा, हे देवी ! यहतू कैसे कहतीहै कि; शिलामें हमारीसृष्टि है सो कह ? शिलामें सृष्टि कैसे बसती है ? बिद्याधरी बोली; हे भगवन् ! तुम्हारी सृष्टि में जो लोकालोक पर्वत हैं सो प्रसिद्ध हैं, उनके उत्तरदिशा शिखरपर एक सुवर्ण की शिलाहै उसमें हमारी सृष्टि है, तैसे उस शिलामें सृष्टि बसती है। उस सृष्टि का ब्रह्मा मेरा भर्त्ताहै और मैं उसकी स्त्रीहूँ। त्रिलोकी इसप्रकार बसती है कि, ऊर्ध्वलोक में देवता रहते हैं; पातालमें दैत्य और नाग रहते हैं; मध्यमण्डलमें मनुष्य और पशु, पक्षी बसते रहते हैं और समुद्र, पर्वत, पृथ्वी, जल, तेज, बायु, आकाशभी हैं। समुद्रने गम्भीरता; जीवोंने प्राण; पवनने आकाशमें चलना; आकाशने पोल; पृथ्वी ने धैर्य; बिद्याधरोंने ज्ञान; अग्निने उष्णता; सूर्यने प्रकाश; दैत्योंने क्रूरता; विष्णुने जगत् की रक्षा के निमित्त अवतार; नदियोंने चलना और पर्वतोंने स्थिरता अंगीकार कियाहै। इसप्रकार सब नीति परमात्मा के आश्रयरची हुईहै और कल्प पर्यंत ज्यों की त्यों मर्यादा रहतीहै। इसीप्रकार जीव जन्मते और मरते हैं; देवता बिमान पर आरूढ़ फिरते हैं; दिनका स्वामी सूर्य है; रात्रिका स्वामी चन्द्रमाहै और नक्षत्र और तारोंका चक्र पवन से फिरता है। इसचक्रके दो ध्रुव हैं और काल इस चक्रको फेरता है सो फेरता फेरता नाशरूप जो कालहै सो कल्पके अन्तमें उसचक्रके मुख में जारहता है। हे मुनीश्वर ! परमात्मा अनन्त है, उसका कोई अन्त नहीं जानसक्ता; जब संबेदन फुरती है तब जानता है कि, यह जगत् ईश्वरकी सत्तासे है। और जब फुरनेसे रहित होताहै तब जाना नहीं जाता कि, जगत् कहांगया। हे मुनीश्वर ! तुम चलो और हमारी सृष्टिका बिलास देखो। तुमतो जगत्के बिलाससे पारहुयेहो और यद्यपि तुमको इच्छा नहीं है तौभी कृपाकरके उस शिलामें हमारी सृष्टि देखो। इतना कहकर वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार कह कर वह आकाश मार्ग में मुझे लेचली—जैसे गन्धको बायु लेजाता है—तब हम और वह दोनों आकाश मार्ग में उड़े और भूताकाश में चिरकाल उड़ते गये तब हम को लोकालोक पर्वत दृष्टि में आया; उसके निकट जाकर उसके शिखर देखे कि; बहुत ऊंचेगये हैं और बड़े मेघ

उसपर बिचरतेहैं और शिखर ऐसे सुन्दरहैं कि,मानो क्षीर समुद्रसे चन्द्रमा निकलाहै चहां जाकर मैंने महासुन्दर सुवर्णकी एक शिला देखी और उसके निकट गया तो मैंने कहा, हे देवि ! यह तो शिला पड़ीहै,तुम्हारी सृष्टि कहांहै ? इस पृथ्वी द्वीपकी मर्यादा जिसका आवरण चहुंफेर समुद्र होताहै और उनपरकी दशसहस्र योजन पर्यंत सुवर्ण की पृथ्वी; पर्वत, सप्तलोक, आकाश, दशोंदिशा, तारामंडल, सूर्य, चन्द्रमा जो रात्रिदिन के प्रकाशकहैं और भूतोंका संचार, देवगण, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, योगीश्वर, वरुण, कुबेर, जगत्की और उत्पत्ति प्रलयका संचार, पातालकी भूमिका; मण्डलेश्वर; न्याय करनेवाले; मरुस्थल की भूमिका; नन्दन बनादिक; दैत्योंके विरोधसंचारक देवता कहां हैं ? यह तो एक शिला दृष्टिमें आती है। हे रामजी ! जब मैंने आश्चर्यको प्राप्त होकर ऐसे कहा तब विद्याधरी बोली; हे भगवन् ! मुझको तो प्रत्यक्ष इस शिला विषयमें अपनी सृष्टि भासती है–जैसे शुद्ध आदर्शमें अपना मुख भासता है तैसेही मुझको अपनी सृष्टि इस शिलामें प्रत्यक्ष भासती है–जैसी मर्यादा देश देशान्तरकी मुझको भासती है इसका संस्कार पूर्वका मेरे हृदयमें है इसीसे मुझको प्रत्यक्ष भासती है और तुम्हारे हृदयमें इसका संस्कार नहींहै इसीसे तुमको नहीं भासती। तुम्हारी सृष्टिकी अपेक्षासे यह शिला पड़ी है और तुमको शिलाका निश्चयहै इस कारण तुमको इसमें जगत् नहीं भासता। हे भगवन् ! जिसका अभ्यास होताहै सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होताहै और वही भासताहै। हे मुनीश्वर ! गुरु शिष्यको उपदेश करताहै पर उपदेश-मात्रसे इष्टकी प्राप्ति नहीं होती, जब उसका अभ्यास करे तब इष्टकी प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर ! ऐसा शास्त्र कोई नहीं कि, अभ्यास कियेसे न मिले; ऐसा न्याय और सिद्धता कोई नहीं जो अभ्यास कियेसे न मिले; ऐसी कला कोई नहीं जो अभ्यास किये से न पाइये और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यासकी प्रबलतासे सिद्ध न हो; जो थक कर फिरे नहीं तो अवश्य सिद्धहोते हैं। हे मुनीश्वर ! जो कुछ सिद्ध होता दृष्टआता है सो सब अभ्यासके वशसे होताहै। प्रथम जब मैं तुम्हारे साथ आई थी तब मुझको भी शिलामें सृष्टि नहीं भासी थी क्योंकि, यह सृष्टि अन्तवाहक शरीरमें स्थितहै। तुम्हारे साथ द्वैतरूपी कथाके कहनेसे अन्तवाहक शरीर मुझको विस्मरण होगया था इससे विश्वकी चर्चा और तुम्हारीसृष्टिकी चर्चा करके मुझको वह स्पष्ट नहीं भासती। जैसे मलिनदर्पण में मुखनहीं भासता तैसेही तुम्हारी सृष्टिके संकल्पसे मुझकोभी अपनी सृष्टि भासतीनहीं परन्तु चिरकाल जो अभ्यास किया है इससे फिर भासती है क्योंकि; जो कुछ दृढ़अभ्यास होता है उसकी जयहोती है। हे मुनीश्वर ! चिन्मात्र पदमें फुरने से आदि जीवों के शरीर अन्तवाहक हुये हैं अर्थात् आकाशरूप शरीरथे; जब उनमें प्रमाद करके दृढ़अभ्यासहुआ तब आधिभौतिक होकर भासने लगे। जब फिर

भावना उलटकर योगकी धारणासे अभ्यास होताहै तब आधिभौतिकता क्षीणहोजाती है और अन्तवाहक प्रकट होता है उससे आकाशमें पक्षी की नाईं उड़ता फिरता है। इससे तुम देखो कि, अभ्यास के बलसे सब कुछ सिद्ध होताहै। हे मुनीश्वर! अज्ञान से जगत् को अहंकाररूपी पिशाच लगा है सो दृढ़ स्थित हुआ है; जब शास्त्र के वचनों में दृढ़अभ्यास होता है तब क्षीणहोजाता है। हे मुनीश्वर! तुम देखो कि, जिस किसी को सृष्टि की प्राप्ति होती है सो अभ्यास के बलसे होतीहै; जो अज्ञानी होता है और ब्रह्म अभ्यास करता है तो ज्ञानी होता है; पर्वत बड़ा है परन्तु जब अभ्यास से चूर्ण किया चाहे तो चूर्णहोता है और संपूर्ण वृक्ष को भोजन करना कठिन है परन्तु अभ्यास करके शनैःशनैः घुनखाजाता है; आप तो छोटा है परन्तु जो वस्तु पानी कठिन हो सो अभ्यास से सुगम होजाती है। जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु के निकट जाकर जिसपदार्थ की बांछा करो सो सिद्धहोती है; तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और कल्पतरु है उसमें जिसपदार्थ का अभ्यास करता है सो सिद्धहोता है और अभ्यासरूपी भूमिका फलदेती है। जो बालक अवस्था से अभ्यास होता है सोही वृद्धावस्था पर्यंत रहता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष बांधवनहीं होता और निकट आरहता है तो निकट के अभ्यास से बांधव होजाता है परन्तु बांधव जो विदेश में रहता है तो अभ्यास की क्षीणता से अबांधव होजाताहै। हे मुनीश्वर! विषभी अमृत की भावना करने से अभ्यास के द्वारा अमृत होजाता है। जो मिष्टान्न में कटुक भावना होती है तो कटु भासता है और कटुमें मिष्टान्न की भावना कीजिये तो मिष्टान्नहो भासता है—जैसे किसी को नींबप्रियतमहै और किसीको मिष्टान्न प्रियतम है। हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होताहै सो अभ्यास के बलसे सिद्धहोता है; जो पुण्य कियाहोता है तो पापके अभ्यास से नष्ट होजाताहै और पाप पुण्य के अभ्यास से नाश होता है; माताभी अमाता होजाती है; अर्थ के अनर्थ होजाते हैं; मित्र अमित्र होजाताहै और भाग्य अभाग्यरूप होजाते हैं; निदान सब पदार्थ चल होजाते हैं परन्तु अभ्यास का नाश कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ निकटपड़ा होता है और साधक इन्द्रियां भी विद्यमान होती हैं तौ भी अभ्यास विना प्राप्त नहीं होता। जहां अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है वहां दृष्टिरूप पदार्थ की प्राप्ति होतीहै। अज्ञानरूपी विशूचिका रोग ब्रह्मचर्चाके अभ्यास से नाश होजाता है। हे मुनीश्वर! संसाररूपी समुद्र आदि—अन्तसे रहित है पर आत्म अभ्यासरूपी नौका द्वारा उससे तरजाताहै—जो अभ्यासको न त्यागोगे तो अवश्यतरोगे। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय हो उसके अभावकी भावना कीजिये तो अस्त होजाता है और जो अस्त हो पर उसके उदय होने की भावना कीजिये तो उदय होता है। जैसे वृक्षके

शापसे उदय पदार्थ की नष्टता होती है और वरसे अप्राप्त पदार्थकी प्राप्ति होतीहै। हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र से इष्ट पदार्थ को सुनता है और उसका अभ्यास नहीं करता उसे मनुष्यों में नीच जानो; उसको इष्ट पदार्थ की कदाचित् प्राप्ति नहींहोती जैसे बंध्याके पुत्र नहीं होता, तैसेही उसको इष्ट पदार्थ की सिद्धि नहीं होती। हे मुनीश्वर! जो आत्मरूपी इष्टको त्यागकर और किसी पदार्थ की बांछा करता है वह अनिष्ट से अनिष्ट पाकर नरक से नरक को भोगता है। हे मुनीश्वर! जिसको अभ्यास का भी अभ्यास प्राप्तहुआ है उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होतीहै और अभ्यासके बलसे इष्टको पाताहै—जैसे प्रकाशसे पदार्थ देखिये कि,वह पड़ाहै तो उसका नाम अभ्यास है और उसके निमित्तयत्न करनाअभ्यासका अभ्यासहै। जबयत्न और अभ्यास करतेहैं तब पदार्थ पातेहैं।बारम्बार चिन्तनाकरनेका नाम अभ्यासहै;जब ऐसा अभ्यासहो तब इष्ट पदार्थकी प्राप्तिहोतीहै—अन्यथानहीं होती। हे मुनीश्वर! चौदहप्रकारके भूतजातहैं;जैसा जैसा किसीको अभ्यासहै उसके बलसे तैसाही तैसा सिद्धहोता है। अभ्यासरूपी सूर्यके प्रकाशसे जीव अपने इष्टपदार्थ पाताहै और अभ्यासके बलसे भय निवृत्त होताहै और पृथ्वी,पर्वत,वन,कन्दरामें निर्भयहोकर विचरताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधर्य्यभ्यासवर्णनन्नामशताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः १८४॥

विद्याधरीबोली, हे मुनीश्वर! सर्वपदार्थ निरन्तर अभ्याससे सिद्धहोतेहैं। तुम्हारा शिलामें दृढ़निश्चय होता है इससे तुमको शिलाही भासतीहै और मुझको इसमें सृष्टि भासतीहै। जब तुम्हारा संकल्पभी मेरे संकल्पके साथमिले तब तुमकोभी यह जगत् भासे। यह जगत् जो स्थितहै सो मेरे अन्तवाहकमें है और आदिवपु सबका अन्तवाहक है सो अंतवाहकमें सबकी एकताहै—जैसे समुद्रमें सबतरंगोंकी एकता होतीहै। हे मुनीश्वर! जबतुम धारणाका अभ्यासकरके शुद्धबुद्धिमें प्राप्तहोगे तब तुम को इसशिलामें सृष्टिभासेगी। वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जब उसने इसप्रकार मुझसे शुद्धयुक्तिकही तब मैंने पद्मासन बांधकर सब विषय त्यागकिये और कथाके क्षोभकाभी त्यागकर अपने आधिभौतिकका भी त्यागकिया,तब निरन्तर शुद्धबोधका अभ्यास करनेसे मुझको बोधका अनुभव उदय हुआ। जैसे मेघके अभावसे शरत्कालका आकाश निर्मलहोता है तैसेही कलनासे रहित मुझको शुद्धबोधका अनुभव उदय हुआ जो उदय और अस्तसे रहित परमशांतरूप और उसमें वह शिलामुझको आकाशरूप दृष्टिआई और शिलातत्त्वकरके केवल बोधमात्र दृष्टिआई। पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझको कोई दृष्टि न आये केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपना आपही दृष्टि आया पर जब बोधमात्रसे अन्तवाहकरूपहोकर स्पन्दफुरा तब

अन्तवाहक करके उसशिलामें सृष्टि भासनेलगी—जैसे मनोराजकी सृष्टिहोती है और बोधसे भिन्नभिन्न नहीं होती तैसेही वह सृष्टि मुझको दृष्टिआई और शिला का रूपभासी। जैसे स्वप्नके गृहमें शिलादृष्टि आवे तो वह अनुभवही शिला और गृहरूप होकर भासताहै कुछ भिन्ननहीं होता,तैसेही वहशिला दृष्टिआई। हे रामजी! जैसे मैंने आकाशरूप वहशिला देखी, तैसेही सब जगत् चिदाकाशरूपहै कुछ द्वैत नहीं बना। सर्वदा काल आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै पर आत्माके अज्ञानसे द्वैत भासताहै--जैसे कोई पुरुष स्वप्नमें अपना शिर कटादेखे और रुदनकरे पर जागकरआपको ज्योंकात्यों आनन्ददेखता है; तैसेही जबतक जीव अज्ञान निद्रामें सोता है तबतक जगत् भ्रमपर नहीं मिटता पर जब स्वरूपमें जागकर देखेगा तब सबभ्रम मिटजावेगा और केवल अपनाही आप भासेगा। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि; जो वस्तु सत्रूपहै सो असत्की नाईं भासतीहै। आत्मा सदा सत्रूपहै पर ज्ञान करके नहीं भासता और जो असत्यरूपहै वह सत्की नाईंहो भासती है। शरीरादिक दृश्यअसत्रूपहैं सो सत्यवत्होकर भासतेहैं। हे रामचन्द्र! आत्मासदा प्रत्यक्षहै और शरीरादिक परोक्षहैं पर अज्ञानसे शरीरआदिक प्रत्यक्षभासतेहैं और आत्मपद परोक्षभासता है। हे रामजी! आत्मा सदा प्रत्यक्षहै और इसलोक अथवा परलोककी क्रिया जो सिद्धहोती है सो संपूर्णआत्मसत्तासही सिद्धहोती है। प्रत्यक्षप्रमाण आत्मसत्तासेहीभासताहै—आदि प्रत्यक्ष आत्माहीहै और सबकुछ आत्माकेपीछे जानताहै। जो पुरुषकहते हैं कि,आत्मा योग और मनसे प्रत्यक्षहोता है सो मूर्ख हैं;आत्मा सदा प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणभी आत्मासे सिद्धहोतेहैं। माया इसीकानामहै कि, सदा अपरोक्षवस्तु आत्माको परोक्षजानना और शरीरादिक असत्यको सत्यमानना। हे रामजी! जितनेजीवहैं उनका वास्तवरूप ब्रह्महीहै और उनमें आदिफुरना अन्तवाहकरूपहुआहै; उसके अनन्तर आधिभौतिक भासनेलगाहै और भ्रमकरकेआधिभौतिकको अपना आप जानतेहैं पर जो सदा निर्विकार, निराकार, निर्गुणस्वरूप अपना आप अनुभवरूपहै उसको कोई नहीं जानते। आदि शरीर सर्वजीवका अंतवाहकहै सो शुद्ध आत्माका किञ्चन केवल आकाशरूप है और कुछ बनानहीं संकल्पकरके आधिभौतिकता दृढ़हुईहैसो मिथ्याभ्रान्तिसे भासतीहै। जैसेस्वप्नेमें आधिभौतिक शरीर भासताहै तैसेही जाग्रत्में आधिभौतिक शरीर भासताहै और अन्तवाहक अविनाशी है—इसलोक और परलोकमें इसका नाश नहींहोता। वास्तवबोध स्वरूपसे भिन्न कुछ नहीं, भ्रमकरके आधिभौतिक दृष्टिआता है। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल;सीपीमेंरूपा; रस्सीमेंसर्प और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै; तैसेही भ्रमसे अपनेमें आधिभौतिक शरीर भासताहै। हे रामजी! यह आश्चर्यहै कि, सत्य

वस्तु असत्यहो भासती है और जो असत्यवस्तु है वह सत्यहोकर भासती है सो अविचारसे भासती है। यह मोहका माहात्म्यहै कि, सबके आदि जोप्रत्यक्ष आत्मा है उसकोलोग अप्रत्यक्षजानतेहैं और अप्रत्यक्ष जगत्को प्रत्यक्षजानतेहैं। हेरामजी! यह जगत् भ्रमसे भासताहै और स्वप्नेकी नाईं मिथ्याहै। जो पदार्थ जीव सुखरूप मानते हैं वे दुःख के कारणहैं क्योंकि; परिणाम इनका दुःखहोता है। जो प्रथम क्षीण सुखभासताहै और फिर उनकेवियोगसे दुःखहोताहै इसीकारण इनकानाम आपातरमणीयहै—इनको पाकर शान्तिमान् कोई नहींहोता। जैसे मृगतृष्णाका क्षीणसुखभासताहै और फिर उनके वियोग से दुःखहोता है क्योंकि, उस जलको पाकर कोई तृप्तनहीं होता; तैसेही विषयके सुखों से कोई तृप्त नहीं होता—जो उनमें लगते हैं वे मूर्ख हैं। जो अत्युत्तमसुख है वह अनुभवकरके प्रकाशता है; उसको त्यागकर विषय के सुख में जो लगते हैं सो मूर्ख हैं; वे शुद्ध आकाशरूप अन्तवाहक में जगत् देखते हैं। हे रामजी! जगत्जालहुये की नाईं भासते हैं तो भी हुये कुछ नहीं—जैसे स्थानु में पुरुष भासता है तौभी हुआ नहीं और जैसे सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है पर कुछ नहीं है। हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं है तो अनुमानादिक प्रमाण कहांसेसत्यहों? जैसे जिसनदीमें हाथीबहे जातेहैं तो उसमें रुई के बहनेमें क्या आश्चर्यहै? तैसेही सब प्रत्यक्षप्रमाण जगत्को असत्जानो तो अनुमान प्रमाणकर क्या सत्होनाहै? हेरामजी! केवलबोधमात्र में जगत्कुछबनानहीं। हमको तो सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानीको जगत् भासता है—जैसे किसी पुरुषको स्वप्ने में पर्वतदृष्टआते हैं और जाग्रतपुरुषको नहीं भासते तैसेही अज्ञानी को यह जगत् भासताहै पर हमको तो आकाश, समुद्र, पर्व्वत, सब केवल बोधमात्र भासते हैं। जैसे कथाके अर्थ श्रोताके हृदयमें होते हैं और जिसने नहींसुनी उसके हृदयमें नहीं होते, तैसेही मेरे सिद्धांतको ज्ञानवान् जानते हैं और अज्ञानी जाननहीं सक्ते। हे रामजी! जितना कुछ अधिभौतिक जगत् भासताहै सो अप्रत्यक्षहै और आत्मा सदा प्रत्यक्षहै। जो इसलोक अथवा परलोकका अर्थ है सो अनुभवसे सिद्ध होताहै क्योंकि, सबके आदि अनुभव प्रत्यक्षहै; उसको त्यागकर जो देहादिक दृश्य को अपना आप जानते हैं और इनहींको प्रत्यक्ष जानते हैं वे मूर्ख पशु और पत्थरवत हैं और सूखे तृणकी नाईं तुच्छहैं। जैसे भ्रमणसे पर्व्वत आदिक पदार्थ भ्रमते भासते हैं तैसेही अज्ञानीको अधिभौतिक भासते हैं। हे रामजी! यह जगत् सब परोक्षहै क्यों कि; इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होताहै। जो नेत्रहोते हैं तो रूप भासते हैं और जो नेत्र न हों तो न भासें; इसीप्रकार सब इन्द्रियोंके विषयहैं जो होवें तो भासें नहींतो न भासें और आत्मा सदा प्रत्यक्षहै उसके देखनेमें किसी विषयकी अपेक्षा नहीं। हे रामजी! जो

इन्द्रियोंकर सिद्धहो सो असत्है; जो जगत्ही असत्हुआ तो उसके पदार्थ कैसे सत् हों? इससे इस जगत्की सत्यता त्यागकर शुद्धबोधमें स्थित होरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्बाणप्रकरणेप्रत्यक्षप्रमाणजगत्निराकरणन्नाम शताधिकषष्ठाशीतितमस्सर्ग्गः १८६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं उसशिलाको बोधदृष्टिसे देखूं तब वह मुझको ब्रह्मरूपभासे और जब सङ्कल्प दृष्टिसे देखूं तब पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, पर्व्वत, लोक, लोकपाल सूर्य्य, चन्द्रमा, तारागण. पाताल संयुक्त जगत् दृष्ट आवे। जैसे दर्पणमें प्रतिविम्ब भासताहै, तैसेही आत्मरूपी आदर्शमें जगत् भासताहै। तब देवीने शिला में प्रवेशकिया और मैंभी संकल्परूपी शरीरसे उसके साथ चलागया। हम दोनों जगत्के व्यवहार को लांघते गये। और जहां परमेष्ठी ब्रह्माका स्थानथा वहां हम जा बैठे। तब देवीने कहा, हे भगवन्! तुम परमेष्ठीसे ऐसे कहना कि, मुझको यह ले आई है; और यह पूंछना कि, इसको जो तुमने विवाहके निमित्त उपजायाथा तो फिर क्यों इसका त्यागकिया? हे मुनीश्वर! उसने मुझको विवाहके अर्थ उत्पन्न कियाथा पर जब मैं बड़ीहुई तब उसने मेरा त्यागकियाहै। उसको वैराग्य उपजाहै और उसे देखकर अबमुझकोभी वैराग्य उपजाहै; इसीसे हम परम पदकी इच्छा रखती हैं जहां न द्रष्टाहै, न दृश्यहै और न शून्यहै केवल शांतरूपहै और जो सर्गके आदि औरमहाकल्पके अन्तमें रहताहै उसमें स्थित होनेकी इच्छाहै जिसमें स्थितहुये पहाड़वत् समाधि होजावे। ऐसे परम पदका उपदेश करो। हे रामजी! इसप्रकार कहकर वह भर्त्ताके जगानेके निमित्त निकट जाकर बोली, हे नाथ! तुमजागो; तुम्हारे गृहमें दूसरी सृष्टिके ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठमुनि आये हैं। तुम उठकर इनका अर्घ्यपाद्यसे पूजनकरो क्योंकि, गृहमें अतिथिआये हैं। महापुरुष केवल पूजासेही प्रसन्न होते हैं। हेरामजी! जब इसप्रकार देवीनेकहा तब ब्रह्माजीसमाधिसे उतरे औरउनके प्राणदेह और नाड़ियोंमें आनास्थित हुये। जैसे बसन्तऋतुसे सब वृक्षोंमें रसहोआताहै तैसेही उसकी दशोंइन्द्रियों और चारोंअन्तःकरणमें शनैः २ करके प्राणस्थितहुये और सब इन्द्रियां खिलआईं। तब उन्होंने मुझको और देवीको अपने सन्मुख देखा और ज्ञानसे ओंकार का उच्चार करके सिंहासन परबैठे। ब्रह्माजीके जागने से बड़ा शब्द होने लगा और विद्याधर, गन्धर्व, ऋषि, मुनि आ प्रणाम करके स्तुति और बेदकी ध्वनिसे पाठकरने लगे। ब्रह्मा बोले, हे ऋषि! कुशल तो है? तुम इतनी दूरसे क्यों आयेहो तुमतोसार असारको जाननेवालेहो? जैसे हाथमें बेलकाफल होताहै तैसेही तुमको ज्ञान है बल्कि ज्ञानरूपी समुद्रहो। ऐसे कहकर उसने अपने निकट आसन दिया और नेत्रोंसे आज्ञाकी कि, इसपर बिश्राम करो। हे रामजी! जब इसप्रकार

उसने मुझसे कहा तबमैं प्रणामकरके उसके निकट जाबैठा और एक मुहूर्त्तपर्यंत देवता, सिद्ध और ऋषियोंके प्रणाम होते रहे । उसके अनन्तर जब बिद्याधर और देवता सब चलेगये तब मैंनेकहा,हेभूत–भाविष्य–वर्त्तमान तीनोंकालोंके ज्ञाता ईश्वर-परमेष्ठी ! तुम ऊंचे आसनपर बिराजमानहो और साक्षात् ब्रह्मज्ञानके समुद्रहो यह जोतुम्हारी शक्ति देवीहै जिसको तुमनेभार्या करनेके निमित्त उत्पन्न कियाथा औरफिर उसे विरस जानकर त्यागाकिया है तो तुम्हारे वैराग्य करनेसे इसकोभी वैराग्य उपजा है इसनिमित्तयह मुझको यहांले आईहै कि, तुम परमात्मतत्त्वकी बाणीसे हमको उपदेशकरो सो इससे इसका क्या अभिप्रायहै ? ब्रह्माबोले, हे मुनीश्वर ! मैंशांत, अजर, अमर रूपहूं और मुझमें उदय अस्त कदाचित् नहीं । मैंपरम आकाशरूपहूं और अपने आपमें स्थितहूं । न मेरीकोई स्त्रीहै और नमैंने किसीको उत्पन्नकिया है तथापि जैसे बृत्तान्तहुआ है तैसेमैं कहताहूं क्योंकि; महापुरुषके बिद्यमान ज्योंकात्यों कहना योग्यहै । हेमुनीश्वर ! आदि शुद्धचिदात्मा चिन्मात्र पदहै, उसका वचन जो अहंहोकर फुरा है उसका नामआदि ब्रह्मा है सो मैंहूं जैसे भविष्यत्सृष्टि काहो–अर्थयह है कि, सङ्कल्प रूपद्रष्टा और सङ्कल्परूप मैंहूं–और वास्तवमें आकाशरूपसदा निरावरणहूं और अपने आपहीमें मेरी अहंप्रतीति है । उसमें आदिजो सङ्कल्पका फुरना हुआहै उसमें जगत्भ्रम रचाहै और उसजगत्भ्रममें मर्यादाहुईहै और सङ्कल्पका अधिष्ठाता जो ब्रह्मशक्ति है सोभी शुद्ध है । हे मुनीश्वर ! उस मर्यादाको सहस्र चौकड़ी युगोंकी बीती हैं–अब कलियुग है । कल्प और महाकल्पकी मर्यादा पूरीहुईहै इससे मुझको परम चिदाकाशमें स्थित होनेकी इच्छाहुई है और इसीसे इसको विरस जानकर मैंने त्यागकिया है । जबइसका त्यागकरूंगा तब निर्बाणपदको प्राप्तहोऊं क्योंकि; यह मेरी इच्छा वासनारूप है । जो बासना का त्यागहो तो निर्बाणपद प्राप्तहो । यह जो शुद्ध चित्कलाहै इसने धारणाका अभ्यासकियाथा इससे इसमें अन्तबाहक शक्ति प्राप्तहुई है । अन्तबाहक शक्तिसे यह आकाशमें फुरी है और संसारसे विरक्तहुई है । आकाश मार्गमें इसको तुम्हारी सृष्टि भासि आई और परमपदपाने की इच्छासे इसको तुम्हारी संगति प्राप्त हुई–इससे तुम्हारी शरण आईहै और तुमको लेआई है । जो श्रेष्ठहैं वे बड़ोंकी शरण जातेहैं; यह अपने कल्याणके निमित्त तुमको लेआई है । हे मुनीश्वर ! यह मेरी मूर्त्तिरूप वासना शक्ति है; आगे मैंने इसको उत्पन्न करके इस जगत्जालकोरचा पर अब मुझको निर्बिकल्प निर्बाण पदकी इच्छा हुईहै इससे मैंने इसका त्याग किया है । अब इसको भी वैराग उपजा है इस कारण तुम बोधरूपकी शरणमें आई है । हे मुनीश्वर ! यह जगत् बिलास सङ्कल्प हुआहै; वास्तव में कुछ हुआ नहीं; परमात्मतत्त्व ज्योंकात्यों अपने आपमें स्थितहै और मैं, तुम; मेरा, तेरा

इन्द्रियोंकर सिद्धहो सो असत्‌है; जो जगत्‌ही असत्‌हुआ तो उसके पदार्थ कैसे सत् हों? इससे इस जगत्‌की सत्यता त्यागकर शुद्धबोधमें स्थित होरहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्बाणप्रकरणेप्रत्यक्षप्रमाणजगत्‌निराकरणन्नाम शताधिकषष्ठाशीतितमस्सर्ग्गः १८६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं उसशिलाको बोधदृष्टिसे देखूं तब वह मुझको ब्रह्मरूपभासे और जब सङ्कल्प दृष्टिसे देखूं तब पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, पर्व्वत, लोक, लोकपाल, सूर्य्य, चन्द्रमा, तारागण, पाताल संयुक्त जगत् दृष्ट आवे। जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब भासताहै, तैसेही आत्मरूपी आदर्शमें जगत् भासताहै। तब देवीने शिलामें प्रवेशकिया और मैंभी संकल्परूपी शरीरसे उसके साथ चलागया। हम दोनों जगत्‌के व्यवहार को लांघते गये। और जहां परमेष्ठी ब्रह्माका स्थानथा वहां हम जा बैठे। तब देवीने कहा, हे भगवन्! तुम परमेष्ठीसे ऐसे कहना कि, मुझको यह ले आई है; और यह पूंछना कि, इसको जो तुमने विवाहके निमित्त उपजायाथा तो फिर क्यों इसका त्यागकिया? हे मुनीश्वर! उसने मुझको विवाहके अर्थ उत्पन्न कियाथा पर जब मैं बड़ीहुई तब उसने मेरा त्यागकियाहै। उसको वैराग्य उपजाहै और उसे देखकर अबमुझकोभी वैराग्य उपजाहै; इसीसे हम परम पदकी इच्छा रखती हैं जहां न द्रष्टाहै, न दृश्यहै और न शून्यहै केवल शांतरूपहै और जो सर्गके आदि औरमहाकल्पके अन्तमें रहताहै उसमें स्थित होनेकी इच्छाहै जिसमें स्थितहुये पहाड़वत् समाधि होजावे। ऐसे परम पदका उपदेश करो। हे रामजी! इसप्रकार कहकर वह भर्त्ताके जगानेके निमित्त निकट जाकर बोली, हे नाथ! तुमजागो; तुम्हारे गृहमें दूसरी सृष्टिके ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठमुनि आये हैं। तुम उठकर इनका अर्घ्यपाद्यसे पूजनकरो क्योंकि, गृहमें अतिथिआये हैं। महापुरुष केवल पूजासेही प्रसन्न होते हैं। हेरामजी! जब इसप्रकार देवीनेकहा तब ब्रह्माजीसमाधिसे उतरे औरउनके प्राणदेह और नाड़ियोंमें आनस्थित हुये। जैसे बसन्तऋतुसे सब वृक्षोंमें रसहोआताहै तैसेही उसकी दशोंइन्द्रियों और चारोंअन्तःकरणमें शनैः २ करके प्राणस्थितहुये और सब इन्द्रियां खिलआईं। तब उन्होंने मुझको और देवीको अपने सन्मुख देखा और ज्ञानसे ओंकार का उच्चार करके सिंहासन परबैठे। ब्रह्माजीके जागने से बड़ा शब्द होने लगा और बिद्याधर, गन्धर्व, ऋषि, मुनि आ प्रणाम करके स्तुति और बेदकी ध्वनिसे पाठकरने लगे। ब्रह्मा बोले, हे ऋषि! कुशल तो है? तुम इतनी दूरसे क्यों आयेहो तुमतोसार असारको जाननेवालेहो? जैसे हाथमें बेलकाफल होताहै तैसेही तुमको ज्ञान है बल्कि ज्ञानरूपी समुद्रहो। ऐसे कहकर उसने अपने निकट आसन दिया और नेत्रोंसे आज्ञाकी कि, इसपर बिश्राम करो। हे रामजी! जब इसप्रकार

उसने मुझसे कहा तबमैं प्रणामकरके उसके निकट जाबैठा और एक मुहूर्त्तपर्यंत देवता, सिद्ध और ऋषियोंके प्रणाम होते रहे। उसके अनन्तर जब बिद्याधर और देवता सब चलेगये तब मैंनेकहा,हेभूत–भविष्य–वर्त्तमान तीनोंकालोंके ज्ञाता ईश्वर-परमेष्ठी! तुम ऊंचे आसनपर बिराजमानहो और साक्षात् ब्रह्मज्ञानके समुद्रहो यह जोतुम्हारी शक्ति देवीहै जिसको तुमनेभार्या करनेकेनिमित्त उत्पन्न कियाथा औरफिर उसे विरस जानकर त्यागकिया है तो तुम्हारे वैराग्य करनेसे इसकोभी वैराग्य उपजा है इसनिमित्तयह मुझको यहांले आईहै कि, तुम परमात्मतत्त्वकी बाणीसे हमको उपदेशकरो सो इससे इसका क्या अभिप्रायहै? ब्रह्माबोले, हे मुनीश्वर! मैंशांत, अजर, अमर रूपहूं और मुझमें उदय अस्त कदाचित् नहीं। मैंपरम आकाशरूपहूं और अपने आपमें स्थितहूं। न मेरीकोई स्त्रीहै और नमैंने किसीको उत्पन्नकिया है तथापि जैसे वृत्तान्तहुआ है तैसेमैं कहताहूं क्योंकि; महापुरुषके बिद्यमान ज्योंकात्यों कहना योग्यहै। हेमुनीश्वर! आदि शुद्धचिदात्मा चिन्मात्र पदहै, उसका वचन जो अहंहोकर फुरा है उसका नामआदि ब्रह्मा है सो मैंहूं जैसे भविष्यत्सृष्टि काहो–अर्थयह है कि, सङ्कल्प रूपद्रष्टा और सङ्कल्परूप मैंहूं–और वास्तवमें आकाशरूपसदा निरावरणहूं और अपने आपहीमें मेरी अहंप्रतीति है। उसमें आदिजो सङ्कल्पका फुरना हुआहै उसमें जगत्भ्रम रचाहै और उसजगत्भ्रममें मर्यादाहुईहै और सङ्कल्पका अधिष्ठाता जो ब्रह्मशक्ति है सोभी शुद्ध है। हे मुनीश्वर! उस मर्यादाको सहस्र चौकड़ी युगोंकी बीती हैं–अब कलियुग है। कल्प और महाकल्पकी मर्यादा पूरीहुईहै इससे मुझको परम चिदाकाशमें स्थित होनेकी इच्छाहुई है और इसीसे इसको विरस जानकर मैंने त्यागकिया है। जबइसका त्यागकरूंगा तब निर्बाणपदको प्राप्तहोऊं क्योंकि; यह मेरी इच्छा बासनारूप है। जो बासना का त्यागहो तो निर्बाणपद प्राप्तहो। यह जो शुद्ध चिन्कलाहै इसने धारणाका अभ्यासकियाथा इससे इसमें अन्तबाहक शक्ति प्राप्तहुई है। अन्तबाहक शक्तिसे यह आकाशमें फुरी है और संसारसे बिरक्तहुई है। आकाश मार्गमें इसको तुम्हारी सृष्टि भासि आई और परमपदपाने की इच्छासे इसको तुम्हारी संगति प्राप्त हुई–इससे तुम्हारी शरण आईहै और तुमको लेआई है। जो श्रेष्ठहैं वे वड़ोंकी शरण जातेहैं; यह अपने कल्याणके निमित्त तुमको लेआई है। हे मुनीश्वर! यह मेरी मूर्त्तिरूप वासना शक्ति है; आगे मैंने इसको उत्पन्न करके इस जगत्जालकोरचा पर अब मुझको निर्बिकल्प निर्बाण पदकी इच्छा हुईहै इससे मैंने इसका त्याग किया है। अब इसको भी वैराग उपजा है इस कारण तुम बोधरूपकी शरणम आई है। हे मुनीश्वर! यह जगत् बिलास सङ्कल्प हुआहै; वास्तव में कुछ हुआ नहीं; परमात्मतत्त्व ज्योंकात्यों अपने आपमें स्थितहै और मैं, तुम; मेरा, तेरा

इत्यादिक शब्द समुद्रके तरङ्गकी नाईं हैं। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजकर शब्द करते हैं और फिर लीन होजाते हैं; तैसेही हमारा तुम्हारा बोलना और मिलाप होताहै। हे मुनीश्वर! वास्तवमें न कोई उपजा है और न कोई लीन होता है। जैसे तरङ्ग जलरूपहै–भिन्न कुछनहीं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है–भिन्न कुछनहीं; इन्द्रियां, मन, बुद्धि सब वहीरूपहैं। हेमुनीश्वर! मैं चिदाकाशहूं और चिदाकाशमें स्थितहूं। यह ब्रह्मशक्तिहै जिसने जगत् रचाहै; यह भी अजर और अमरहै और न कदाचित् उपजाहै और न नाश होगा। शुद्ध आत्मा किंचन द्वारा जगत्हो भासताहै। जैसे सूर्य की किरणें जलहो भासतीहैं; परन्तु जल कुछ हुआ नहीं; तैसेही आत्माही है, विश्व कुछ हुआ नहीं। हे मुनीश्वर! जगत्जाल होकर आत्माभासताहै पर जगत्के उदय–अस्तहोनेसे आत्मामें कुछक्षोभ नहींहोता; वह ज्योंकात्यों एकरस स्थितहै। जैसेसमुद्रमें तरङ्ग उपजते और लीन होतेहैं परन्तु समुद्र ज्योंकात्यों रहता है; तैसेही जगत् कुछ उपजा नहीं संकल्पसे उपजेकी नाईं भासताहै। जैसे दृढ़तासे जल ओला होजाताहै, तैसेही चिन्मात्रमें चैतन्यतासे पिंडाकार भासताहै परन्तुउपजाकुछ नहीं। हे मुनीश्वर! यह जो शिलाहै जिसमें हमारीसृष्टिहै सो केवल चित्घनरूपहै। तुम्हारी सृष्टिमेंयह शिलाहै और हम चैतन्यघनहैं चैतन्य आकाश आत्मा शिलाहोकर भासताहै। जैसे स्वप्नेमें सृष्टि सबजाग्रत भासती है सो बोधरूपहै बोधही जगत्सा भासता है; तैसेही यह जगत् और शिलारूप होकर बोधही भासताहै। हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्ने में ग्रहकाचक्र फिरता दृष्टआताहै तैसेही सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नदी, वरुण,कुबेर आदिक जगत् जो भ्रमसे दृष्टआताहै सो बना कुछनहीं–चैतन्यका किंचनही ऐसेभासताहै। जैसे सूर्यकी किरणोंमें किंचन जलाभास होताहै तैसेही जहां आत्मसत्ताहै वहां जगत् भासता है। सब पदार्थ आत्मसत्ता सेही भासते हैं; ब्रह्मसत्ता सबमें अनुस्यूतहै इससे सब ओरसे सृष्टि बसती है। जैसे एक शिला में हमारी सृष्टि में जो कुछ पदार्थ भासतेहैं और इनमेंसृष्टि बसती है सो प्रच्छन्न दृष्टिसे नहीं भासती पर जब अन्तग्राहक दृष्टिसे देखिये तब सृष्टिभासती है। घटों में, गढ़ों में और पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश आदि ठौरोंमें सृष्टिहै और बना कुछनहीं। जैसे जहां समुद्र है तहां तरङ्ग भी होते हैं परन्तु समुद्रसे भिन्न कुछ तरङ्गहुये भी नहीं– वहीरूप हैं; तैसेही यह जगत् कुछ उपजता नहीं और न लीन होता है; ज्योंका त्यों आत्मसमुद्र अपने आपमें स्थित है; जगत् संकल्प शक्तिसे फुरताहै और सङ्कल्पशक्ति अहंरूपी किंचनमात्र उदय हुई है। जैसे कमलसे सुगन्धलेकर तरियां निकलती हैं तैसेही मूलसेदेवी जगत्रूपी सुगन्धको लेकर उदयहुई है परन्तु वास्तव जगत् कुछ बना नहीं केवल सङ्कल्पशक्तिसे बनेकीनाईं भासताहै। हेमुनीश्वर! वास्तवमें न कोई

सङ्कल्पहै और न प्रलयहै; ज्योंकात्यों ब्रह्म अपनेस्वभाव में स्थितहै। जैसे आकाशमें आकाश और समुद्रमें समुद्र स्थित है, तैसेही ब्रह्ममें ब्रह्म स्थित है। हे मुनीश्वर ! यह जगत् न सत्य है और न असत्यहै; आत्मा में न यह उदय हुआ और न अस्त होवेगा। जैसे आकाशमें नीलता न सत्यहै, न असत्यहै; तैसेही ब्रह्ममें जगत् न सत्य है और न असत्य है। मैं उस ब्रह्मका किंचन ब्रह्माहूं और यह जगत् मेरे सङ्कल्प से उत्पन्न हुआहै। अब मैं संकल्पको निर्वाणकरताहूं; जब संकल्पनिर्वाण होगा तब जैसे कमलके नाशहुये सुगन्धका अभाव होजाताहै तैसेही जगत् का अभाव होजावेगा। मेरे से इच्छाफुरीथी, उसमें वासना है और वासनामेंजगत् है। अबमैं इसको निर्वाण करताहूं; जब इच्छा निर्वाणहोगी तब जगत्काभी स्वाभाविक अभावहोजावेगा। तुम्हारा शरीर संकल्पसे भासताहै इससे तुमअपनीसृष्टिमें जाओ; ऐसानहीं कि,तुम्हारा शरीरभी यहां निर्वाण होजावे। हेरामजी ! इसप्रकार वह मुझसेकहकर फिर देवी से बोला, हे देवी ! अब तू निर्वाण हो और अपने आपमें बोध आदिकको भी लीनकर॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलांतरवशिष्ठब्रह्मासम्बादवर्णनन्नाम शताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः १८७॥

वशिष्ठजीबोले , हे रामजी ! इसप्रकार ब्रह्माने कहकर पद्मासन बांधा और सब जनोंके संयुक्त 'अकार', 'उकार''मकार' को छोड़कर अर्द्धमात्रा में स्थितहुआ तब उस की मूर्त्ति ऐसीदृष्टि आनेलगी जैसे कागजपर मूर्त्ति लिखीहोती है और उसे सम्पूर्ण जगत्जाल का ज्ञान विस्मरण होगया और देवीभी उसीप्रकार पद्मासन बांधकर ब्रह्माजी के निश्चयमें लीनहोजाने लगी। जब ब्रह्माजी निर्वेदना ब्रह्ममें लीन होनेलगे उससमय जितने उपद्रवथे सब उदयहुये मनुष्य पापकरनेलगे, स्त्रियां दुराचारिणी होगईं; सबजीवोंने धर्मका त्यागदिया; कामीपुरुष बहुतहुये जो परस्त्रियोंके साथ सङ्गकरतेथे और पुरुष स्त्रियां किसीकी शङ्का न करतीथीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग,द्वेष बढ़गये और शास्त्रकी मर्यादा त्यागकर लोग अनीश्वरवादी हुये। वर्षा बन्द होगई और कुहिरा पड़ने लगा, कालपड़ा; दुष्टजन धनपात्रहोनेलगे, धर्मात्मा आपदा भोगनेलगे, चोर चोरीकरनेलगे राजामद्यपान करनेलगे; जीवों को बड़े दुःख प्राप्तहोनेलगे और तीनों तापोंसे जलनेलगे और राजाओंने न्यायको त्यागदिया। निदान जो पाप आचारथे सो उदयहुये और धर्म छिपगया; अज्ञानी राज्यकरें; पण्डितज्ञानी टहलकरें; दुर्जनों की मानपूजाहो, सत् पण्डितोंका निरादरहो; जीवों के समूह इकट्ठे हुये, और पृथ्वी ने अपनी सत्ताको त्याग दिया क्योंकि, पृथ्वीब्रह्माके सङ्कल्प में पड़ी थी, जब उसने अपना संकल्प खैंचा तब निर्जीव होगई और चैतन्यता निकल गई। जो स्थान भूतोंके विचरने के थे सो खाईं की नाईं होगये, भूता-

नाश होगये और पृथ्वी भी नाशहोने लगी; पर्वत कांपने लगे; और भूचाल और हाहाकार शब्द होने लगे जैसे शरत्काल में बेल सूखजाती है और जर्जरी-भाव को प्राप्त होती है, तैसेही पृथ्वी जर्जरीभावको प्राप्त हुई क्योंकि; चैतन्यता और शरीर सर्वजगत् का ब्रह्माहै, ज्योंज्यों संकल्परूपी चैतन्यता क्षीण होती गई त्यों त्यों पृथ्वीजर्जरीभूत होतीगई। जैसे किसीपुरुषका अर्द्धाङ्गमरजाता है तब वह अङ्ग शवसाहोजाता है और फुरना उसमें नहींरहता तैसेही ब्रह्मकी संकल्परूप चैत-न्यता पृथ्वीसे निकलती जातीथी इसकारण पृथ्वीदुःखीहुई; धूड़उड़नेलगी और नगर नष्टहोनेलगे। इसप्रकार उपद्रव उदयहुये क्योंकि; पृथ्वीके नाशका समयनिकटआया और समुद्रजो अपनी मर्यादामें स्थित थे उन्होंने भी अपनी मर्यादा त्यागदी। जैसे कामीपुरुष मद्यपान कियेसे अपनी मर्यादाको त्यागताहै, तैसेही समुद्रउछले, किनारे गिरगये और पर्व्वत कन्दरासे निकलकर पृथ्वीको नाशकरनेलगे। राजा और नगर वासी भागने लगे और उनके पीछे तीक्ष्ण वेगसे जल चलनेलगा; बड़ेपर्व्वत गिरने लगे और चक्रकी नाईं फिरनेलगे। समुद्रके तरंगोंसे पर्व्वतगिरतेथे और उड़ते थे और तरंगेंउछलकर पातालको गईं और पातालका नाशहोनेलगा। बड़ेरत्नोंकेपर्व्वत जब गिरे, तब रत्नोंका ऐसाचमत्कार हो जैसे तारा मण्डलकाहोताहै। इसी प्रकारबड़ा क्षोभ होनेलगा और तरंगउछलकर सूर्य्य चन्द्रमा के मण्डलको जाने लगे औरउनका प्रकाश जातारहा। बड़वाग्निउदयहुई तब बरुण, कुबेर आदि देवतोंकेबाहन भयमान हुये और जलकेबेगसे पर्व्वत नृत्य करनेलगे--मानों पर्वतोंके पङ्ख लगे हैं और स्वर्ग के कल्पतरु समुद्रमें आन पड़े और चिन्तामणि, सिद्ध और गन्धर्व्व गिरने लगे। समुद्र इकट्ठे होगये। जैसे गंगा, यमुना और सरस्वती एकत्र होती हैं तैसेही समुद्र मिलकर शब्द करनेलगे और उनमें से ऐसेमच्छ निकले जिनके पूंछों के लगनेसे प-र्व्वत उड़ जावें कन्दरामें जो हाथी थे वे पुकार करनेलगे और सूर्य्य, चन्द्रमा, तारा-गण क्षोभको प्राप्त होकर समुद्र में गिरनेलगे। हे रामजी! इसप्रकार प्रलय के क्षोभ से जितने लोकपाल थे वे सब समुद्रके मुखमें आनपड़े और मच्छ उनको भक्षण कर गये। तरंग आपसमें युद्ध करने लगे जैसे मतवाले हाथी शब्द करते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्यजगत्प्रलयवर्णनन्नामशताधिक अष्टाशीतितमस्सर्ग्गः १८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस बिराट्रूप ब्रह्माने जिसका देह संपूर्ण जगत्था अपने प्राणको खैंचा तबछत्र चक्रके फेरनेवाला जो वायु है सो अपनी मर्य्यादा त्याग कर क्षोभ करनेलगा और वे चक्र नाश होनलगे क्योंकि; ब्रह्माके संकल्पमें वे थे किसी को सामर्थ्यनहीं कि, उनको रक्खे। तेजमें जो देवताथे सो पवनके आधार थे,

पवनके निकलने से वे निराधार होकर समुद्रमें गिरनेलगे और जैसे वृक्षसे फलगिर-तेहैं तैसेही गिरतेभये। जैसे संकल्पके नाश हुये संकल्पका वृक्ष गिरता है और जैसे पक्कफल समय पर वृक्षसे गिरता है, तैसेही सब गिरते भये। सुमेरुकी कन्दरागिरी और पवनका बड़ा क्षोभ और शब्दहुआ। जैसे अपनी शांतिके निमित्त पवनमें तृण फिरताहै तैसेही आकाश में पवन फिरनेलगा । देवतोंके रहनेवाला जो सुमेरुपर्वत था सोभी गिरपड़ा। रामजीने पूछा,हे भगवन्! संकल्परूपजो ब्रह्माथा सोतो विराट् आत्माहै और सब जगत् उसकी देहहै। भूमण्डल, पाताल और स्वर्गलोक उस के कौन अङ्गहैं और संकल्परूपकैसे अङ्गहोतेहैं? संकल्पतो आकाशरूप होतेहैं और जगत् प्रत्यक्ष पिण्डाकार दृष्टआताहै? जो जिससे उपजताहै सो वैसाही होताहैतोयह जगत् ब्रह्माके अंग कैसेहैं? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! इसजगत्से पूर्वकेवल चिन्-मात्र था और उसमें जगत् न सत्यथा,न असत्यथा; केवल आत्मत्वमात्र अपने आप में स्थितथा। जैसे आकाश अपने आपमें स्थितहै और एक और दो शब्दसे रहित है। उसकेवल चिन्मात्रका किंचन अहंहोकर स्थित हुआ है; उसकादृश्यसे सम्बन्ध हुआ और उसके अनुभव ग्रहणसे जो निश्चयहुआ उसकानामबुद्धि है और वहजब व्यतीत हुआ उसकानाममनहै; उसमनके फुरनेसे जगत्दृश्य हुआहै। हेरामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्यहै वही ब्रह्मारूप कहाता है; उसके फुरने में आगे जगत् खड़ा हुआ है और उससंकल्परूप जगत्का वहविराट् है परन्तु आकाशरूप है और कुछ नहीं बना। यह जो आकार सहित जगत् भासताहै सो ब्रह्मसे भासताहै पर सबसं-कल्प आकाशरूपहैं। जैसे स्वप्नेमें जगत्भासताहै सो सब आकाशरूप होता है परन्तु निद्रादोषसे पिण्डाकारभासताहै और आत्मसत्तासदाकेवल आकाश ज्योंकात्यों अपने आपमें स्थितहै। हेरामजी! अहंजोफुराहै सोमिथ्याहै अज्ञानसेदृढ़ स्थितहुआहै और असम्यक्दर्शी को दृढ़भासताहै सो केवल संकल्पमात्रहै, और कुछनहीं बना। इससे जितना जगत् भासताहै सो सब चिदाकाशहै; एक और द्वैतकलना और सर्वशब्दों से रहित आत्मा मात्र है; मैं और तुम शब्द कोई नहीं और यहजगत् उनका किंचन है । जैसे सूर्य्यकी किरणों में जलाभास होता है तैसेही आत्माका आभास जगत्है; संकल्पकी दृढ़ता से दृश्य भासता है पर है नहीं। जैसे संकल्परूप गन्धर्बनगर और स्वप्नपुर होते हैं, तैसेही यह जगत् है । हे रामजी! जिस प्रकार मैंनेजगत् वर्णनकिया है उसे जो पुरुष मेरे कहेके अनुसार ज्योंका त्यों धारे तो उसकी वासना नष्ट होजावे और पूर्ववत् आत्मा ज्योंकात्योंभासे। तब जैसे जगत्के आदि आत्मत्वमात्रथा तैसेही भासेगा क्योंकि; औरकुछ हुआ नहीं केवल आत्मत्वमात्र ज्योंका त्यों स्थित है। जो आत्माही है तो समवायकारण और निमित्त कारण कैसे हो? जगत्का उदय और

नाशहोना असत्य है और अद्वैत और अनन्तकहना भी कोई नहीं। जब सब शब्दों का अभाव होता है तब परम चिदाकाश अनुभव सत्ताही शेषरहती है इसीका नाम मोक्ष है। हे रामजी! हमको तो अबभी संवित् सत्ताही भासती है और मैं शुद्ध हूं; सर्व कल्पना से रहित हूं; और चिदाकाशहूं। मुझ में जो वशिष्ठ अहंफुरा है सो फुरा नहीं फुरे की नाईं भासता है और आत्माकाही किंचन है; हुआ कुछ नहीं। इससे तुमभी इसी प्रकार जागकर निर्वासनिक हो रहो और अपने प्रकृत आचार को करो अथवा न करो, जो इच्छा है सो करो परन्तु करने और न करने का संकल्प मत करो और परम मौन में स्थित हो रहो। ज्ञानवान् को यही अनुभव होता है, ¯ससे तुमभी ऐसेही धारो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामशताधिक
नवाशीतितमस्सर्ग्गः १८९॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! बंधमोक्ष जगत् बुद्धि न सत्है और न असत्है; उदयभी नहीं हुआ और अस्तभी नहीं होता केवल ज्योंका त्यों आत्मा स्थितहै; ऐसे आपने मुझको उपदेश कियाहै इसलिये मैंने जानाहै कि, आत्मा में जगत् न उपजता है और न मिटताहै पर तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंको सुनता मैं तृप्तनहीं होता और अमृतकी नाईं पानकरताहूं। जगत् सत् असत्से रहित सन्मात्रहै उसकोभी मैंने जानाहै अबयह कहिये कि, संसारभ्रम कैसे उपजताहै और अनुभव कैसेहोताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछतुमको स्थावर-जङ्गम जगत् सर्वप्रकार देशकाल संयुक्त दीखताहै उसके नाशका नाम महाप्रलय है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्रभी लीनहोजाते हैं और उसके पीछे जो शेषरहताहै वहस्वच्छ, अज, अनादि, केवल आत्मतत्त्वमात्र है-उसमें वाणीकी गम नहीं वह केवल अपने आपमें स्थितहै और परम सूक्ष्महै जिसमें आकाशभी स्थूलहै। जैसे सुमेरु पर्वतके निकट राईकादाना सूक्ष्महै तैसेही आकाशसेभी आत्मा सूक्ष्महै, और संवेदनसे रहित चिन्मात्रहै उसमें अहङ्किंचन होकरफुराहै। आत्मासदा निर्विकल्पहै, समुद्रवत् है, देशकाल के भ्रमसे रहितहै और केवल चेतनघन अपने आपमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेमें अपने भावको लेकर जीव स्थित होताहै तैसेही आत्मा अपने भावको लेकर चेतन किंचनहोताहै। उसीका नाम ब्रह्माहै और वहभी चिद्रूप है। हेरामजी! चिद् अणु जो अपने भावको लेकर उदय हुआ है उसने चैत्यनामदृश्यको देखा इससे उसका अनुभव मिथ्या हुआ। जैसे स्वप्ने में कोई अपना मरण देखताहै सो अनुभव मिथ्या है; तैसेही चिद् अणुदृष्टिसे दृश्यको देखता है सो मिथ्यादृष्टि है। जब चिद् अणु अपने स्वरूपको देखताहै सो केवल निराकाररूप है परंत अहं ऐसे बीज दृढ़होताहै उससे अपने आप

से निकल दृश्यको संकल्प से देखताहै।जैसे बीजसे अंकुर निकलताहै तैसेही संकल्प के फुरनेसे देश,काल, द्रव्य, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य होताहै, वास्तवम हुआ कुछ नहीं; आत्मासदा अपने स्वभावमें स्थितहै परंतु संकल्प से हुये कीनाईं भासताहै । जहां चिद् अणुभासे वह देशहै; जिससमय भासे वह कालहै; जो भानहो वह क्रिया हुई; भानका ग्रहण द्रव्यहै और देखनेको जो वृत्ति दौड़तीहै वह नेत्र होकर स्थित हुईहै। जिसको देखते हैं वहभी शून्य है और देखनेवाले भी शून्य ; सब अस्तहै—कुछबना नहीं । जैसे आकाश में आकाश स्थितहै तैसेही आत्मा अपने आपमें स्थितहै । संकल्पद्वारा सबकुछ बनता जाताहै । चिद्अण जो भासित हुआहै वह दृश्यरूपहोकर स्थितहुआहै।जब चिद्अणुमें स्वरूपकी वृत्तिफुरती है तबचक्षुइन्द्रियां होकर स्थित होतीहैं, जब सुननेकी वृत्तिफुरती है तब श्रोत्रहोकर स्थित होतेहैं, जब स्पर्शकी वृत्ति फुरतीहै तबत्वचा इंद्रियहोकर स्थितहोती है; जबसुगन्ध लेनेकी वृत्तिफुरती है तब नासिका इन्द्रिय होकर स्थितहोती है और जबरस लेनेकी इच्छा होतीहै तब जिह्वा इन्द्रियहोकर स्वादलेती है । हे रामजी ! प्रथमयह चिद्अणुनामसे रहितफुरा है और सम्पूर्ण जगत्भी तद्रूपहीथा और अबभी वहीकेवल आकाशरूपहै। संकल्पसे अपनेमें पिंडघन देखकर शरीर और इन्द्रियां देखीं। अनादिसत् स्वरूप चिद्अणु इन्द्रियोंके संयोगसे पदार्थोंको ग्रहण करता है और स्पंदरूपजो वृत्तिफुरी है उसीकानाम मनहुआ । जब निश्चयात्मक बुद्धिहोकर स्थितहुई तब चिद्अणुमें यहनिश्चयहुआ कि,मैंद्रष्टाहूं—यही अहंकार हुआ। जब अहंकारसे चिद्अणुका संयोगहुआ तब अपनेमें देशकालका परिच्छेद देखा, आगे दृश्य और पूर्व उत्तरकाल देखा कि, इस में बैठाहूं और यहमैंने कर्मकियाहै—यहविषम अहंकार हुआ । निदान देश,काल, क्रिया,द्रव्यके अर्थको भिन्नभिन्न ग्रहण करताहै और आकाशहोकर आकाशको ग्रहण करताहै । हे रामजी ! आदिफुरनेसे चिद्अणुमें प्रथम अन्तवाहक शरीर हुआ,फिर संकल्पके दृढ़ अभ्याससे अधिभौतिक भासनेलगाहै । जैसे आकाशमें और आकाशहो तैसेही यह आकाशहैं और अनहोते भ्रमसे उदयहुये हैं और सत्कीनाईं भासतेहैं । जैसे मरुस्थलमें भ्रमसे नदी भासतीहै तैसेही अविचारसे संकल्पकी दृढ़तासे पंचभौतिक आकार भासते । उनमें अहंप्रत्यय होनेसे देखताहै कि,यहमेरा शिरहै; यह मेरे चरणहैं;यह अमुकदेशहै इत्यादिक शब्द अर्थ और नानाप्रकारका जगत् और भावअभाव ग्रहण रताहै और इसप्रकार कहताहै कि; यहदेशहै; यहकालहै; यहक्रियाहै और यहपदार्थ है । हे रामजी ! जब इसप्रकार जगत्के पदार्थोंका ज्ञानहोता है तबचित्त विषयोंकी ओर दौड़ताहै और रागद्वेषको ग्रहणकरताहै । जो कुछ देहादिक भूत फुरनेसे भासतेहैं सो केवल संकल्प मात्रहैं और संकल्पकी दृढ़तासे दृढ़हये हैं।

हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रउत्पन्न हुयेहैं और इसीप्रकार कीटउत्प-न्नहुये हैं परन्तु प्रमाद अप्रमादका भेदहै। जो अप्रमादी हैं वे सदा आनन्दरूप स्वतन्त्र ईश्वरहैं, उनको यहजगत् और वह जगत् अपना आपरूपहै और जो प्रमा-दीहैं वे तुच्छह और सदादुःखीहैं पर वास्तवमें परमात्मतत्त्वसे भिन्न कुछहुआ नहीं। जैसे आकाश अपनी शून्यतामें स्थितहै तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और सर्वकाबीज; त्रिलोकीरूप बूंदकामेघ; कारणका कारण;कालमें नीति और क्रिया से क्रियावही है। आदिविराट् पुरुषका शरीरभी नहीं और हमतुमभी नहीं—केवल चिदाकाशरूप है। अबभी इनकाशरीर आकाशरूपहै और आत्मसत्ता भिन्नअवस्था को नहीं प्राप्तहुई—केवल आकाशरूपहै। जैसेस्वप्नेमें युद्धहोते और मेघगरजते इत्या-दिशब्द—अर्थ भासतेहैं सो केवल आकाशरूपहैं बनाकुछनहीं परन्तु निद्रादोषसे भा-सतेहैं और जब जागताहै तब जानताहै कि,हुआ कुछनथा—आकाशरूप है; तैसेही जो पुरुष अनादि अविद्यासे जागाहै उसको जगत् आकाशरूप भासताहै। हे राम-जी! बहुत योजनपर्यंत विराट् पुरुषकादेहहै तौभी ब्रह्म आकाशके सूक्ष्मअणुमें स्थि-त है। यह त्रिलोकी एक चिद्अणु में स्थित है और विराट्पुरुष इसका ऐसा है जिसका आदि, अंत और मध्यनहीं भासता तौभी एकचावलके समानभी नहीं है। हे रामचन्द्र! यह जगत् और जगत्के भाग विस्तीर्ण दृष्टआते हैं पर जैसे स्वप्ने के पर्वत जाग्रत के एकअण के समान नहीं तैसेही विचाररूपी तराजू से तोलिये तो परमार्थसत्ता में इनकी कुछ सत्यता नहीं दृष्ट आती परन्तु आत्मसत्ता से कुछ भिन्न नहीं हुआ, आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है। इसी का नाम स्वायंभुव मनु और बिराट् है और इसीको जगत् कहते हैं। जगत् और विराट्में कुछ भेद नहीं—वास्तव में आकाशरूप है। सनातनभी इसीको कहते हैं और रुद्र, इन्द्र, उपेंद्र, पवन, मेघ, पर्वत, जल जितने भूत हैं सो उसका बपु हैं। हे रामजी! इसका आदिबपु जो चि-न्मात्ररूप है उसमें से अपनाअणु सा बपु देखता है—जैसे तेजका कणका होताहै उस तेज अणुसे चैतन्यता—और क्रमकरके अपना बड़ाशरीर जगत्रूप देख-ता है। जैसे स्वप्ने में कोई पुरुष आपको पर्वत देखे, तैसेही वह आपको बिराट्रूप देखता है। जैसे पवनके दोरूप हैं—चलता है तौभी पवन है और नहीं चलता तौभी पवन है—तैसेही जब चित्त फुरता है तबभी ब्रह्मसत्ता ज्यों का त्यों है और जब चित्त नहीं फुरता तब भी ज्योंका त्यों है परन्तु जब स्पन्द फुरता है तब बिराट्रूप होकर स्थित होताहै और जब चित्तअफुरहोताहै तब अद्वैतसत्ताभासतीहै और सदा अद्वैतही बिराट् स्वरूप है। हे रामजी! इस दृष्टिसे उसके शिर और पाद नहीं भासते। जित-नी ब्रह्माण्डकी पृथ्वीहै सो उसका मांस है; सब समुद्र उसका रुधिर है; नदी नाड़ीहैं;

दशोदिशा वक्षस्थल हैं; तारागण रोम वली हैं; सुमेरुआदिक अँगुलियां हैं; सूर्यादिक तेजपित्त है; चन्द्रमाकफ है; पवन प्राणबायु है; संपूर्ण जगत्जाल उसका शरीरहै और ब्रह्मा हृदय है सो आकाशरूप है पर संकल्पसे नानारूप हो भासता है, स्वरूप से कुछ बनानहीं। आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाशरूप है और अपने आपही में स्थित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराट्आत्मावर्णनन्नाम
शताधिकनवतितमस्सर्गः १९० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आदि जो विराट् है सो ब्रह्महै उसका तो आदि-अन्त कुछनहीं और यह जगत् उसका छोटा बपुहै; उसी चैतन्यबपुका किंचन ब्रह्मारूपहुआ है। उसके विस्तार का क्रमसुनो-उस ब्रह्मा ने, जिसका बपु संकल्पमात्र है, अपने संकल्प से एक अंडरचा और उसको तोड़ फोड़कर ऊर्ध्वभाग ऊपरकिया और नीचेका भागनीचे गया। पाताल ब्रह्माका चरणहुआ; ऊर्ध्वशिरहुआ; मध्य आकाश उदर हुआ; दशोदिशा वक्षस्थल;हाथ सुमेरुआदिक पर्वत;मांस पृथ्वी;समुद्र आदि सब नदियां उसकीनाड़ी;जल रुधिर;प्राण अपान वायुपवन;हिमालय पर्वत कफ; सर्वतेजपित्त; चन्द्रमा और सूर्य नेत्र; तारागणस्थूललार और लारप्राणकेबलसे निकलतीहै-जैसे ताराचक्रको पवनफेरताहै-ऊर्ध्वलोक उसकी शिखा;मनुष्य,पशु और पक्षी रोम;सब भूतोंकीचेष्टा उसकाव्यवहार है, अस्थि ब्रह्मलोक उसकामुख है और सब जगत् उस विराट्काबपुहै। रामजी बोले,हे भगवन्! यह जो आपने संकल्परूप ब्रह्मा और जगत् उसका बपुकहा उसे मैं मानताहूं परन्तु यह जगत् तो उसीका शरीरहुआ फिर ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा कैसे बैठता है और अपने शरीर में भिन्नहोकर कैसे स्थित होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? जो तुम ध्यानलगाकर बैठो और अपनीमूर्त्ति अपने हृदयमें रचकरस्थितहो तो बनजावे। जैसे मनुष्यको स्वप्नाआताहै और उसमें जगत् भासताहै सो सब अपनास्वरूप है परन्तु अपनी मूर्त्तिधारकर औरको देखताहै; तैसेही ब्रह्माका एकशरीर ब्रह्मलोकमें भी होताहै। ब्रह्मा और जीवमें इतनाभेद है कि, जीवभी अपनी स्वप्नसृष्टिका विराट्है परन्तु उसको प्रमादसेनहींभासती और ब्रह्मा सदा अप्रमादी है उसको सब जगत् अपना शरीर भासताहै। हे रामजी! देवता,सिद्ध, ऋषीश्वर और विद्याधर उस विराट् पुरुषकी ग्रीवामें स्थितहैं;भूत,प्रेत,पिशाच सब उसविराट् पुरुषके मलसे उपजेहैं और कीटकी नाईं उदरमें स्थितहैं और स्थावरजंगम जगत् सबसंकल्पसे रचाहुआ विराट्में स्थितहै-सब उसीके अंगहैं। जो जगत्है तो विराट्भी है और जगत् नहीं तो विराट् भी नहीं। जगत्, ब्रह्म और विराट् तीनों पर्यायहैं; इससे संपूर्ण जगत् विराट्कावपु है-निराकार क्या और आकार क्या-सब भीतरबाहर वि-

राट्काबपु है। जैसे भीतरबाहर आकाशमें भेदनहीं तैसेही विराट् आत्मामें भेदनहीं। जैसे पवनकेचलने और ठहरनेमें भेदनहीं, तैसेही विराट् और आत्मामें भेदनहीं। जैसे चलना और ठहरना दोनोंरूप पवनकेहैं तैसेही साकार निराकार सब विराट्का शरीर है। हे रामजी! इसप्रकार जगत् हुआहै सो कुछ उपजा नहीं संकल्पसे उपजे कीनाईं भासताहै। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जलहैनहीं और हुयेकी नाईं भासता है; तैसेही ब्रह्मसत्तामें जगत् उपजेकीनाईं भासताहै और उपजाकुछनहीं--केवल अपने आपमेंस्थितहै। वह शिलाजठरकी नाईं स्थितहै अर्थात् तुम्हारा संकल्पविकल्प और चैतन्यरूप चैत्यसेरहित चिन्मात्रस्वरूपहै--इससे कलनाको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित होरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराट्शरीरवर्णनंनाम शताधिकएकनवतितमस्सर्गः १९१॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! प्रथम प्रलयकाप्रसंग फिरसुनो। मैं ब्रह्मपुरीमें ब्रह्मा के पासबैठाथा, जब मैंने नेत्रखोलकर देखा कि, मध्याह्न का समयहै और दूसरासूर्य पश्चिम दिशामें उदयहुआहै उसका बड़ाप्रकाश है–मानोसंपूर्ण तेजइकट्ठा हुआहै वा बड़वाग्निकी नाईं प्रकाशहुआ है और बिजुलीकी नाईं स्थितहुआहै–उसको देख कर मैं आश्चर्यमान हुआ। ऐसे देखताथा कि, एक ओर सूर्य उदयहुआ; फिर उत्तर दिशाकी ओर और सूर्य उदयहुआ; इसीप्रकार दशसूर्य आकाशमें प्रकटहुये और एक प्रथमथा और द्वादशबड़वाग्नि समुद्रसे उदयहुई उनसे एकसूर्य निकला सब द्वादशसूर्य इकट्ठे होकर विश्वको तपानेलगे। हे रामजी! प्रलयकेतीननेत्र उदयहुये–एकनेत्रसूर्य, दूसरानेत्र बड़वाग्नि और तीसरा नेत्र बिजुली वे तीनों विश्वको जलाने लगे;दिशासब रक्तहोगईं;अट्टअट्ट शब्दहोनेलगे;नगर,वन,कन्दरा,पृथ्वी जलनेलगीं; देवताओंके स्थान जलजलकर गिरनेलगे;पर्वत जलकर श्यामहोगये; ज्वालाकेकण निकलकर पाताल को गये वहभी जलगया; समुद्र जलकर सूखगये और हिमालय पर्वत के बरफ काजलहोकर जलनेलगा--जैसे दुर्जनों के संगकर साधु का हृदय तप्त होता है–जब इसीप्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलितहुई तबमुझको भी तपन आनलगी और मैं वहां से दौड़कर नीचे जाकर स्थितहुआ। वहां मैंने देखा कि, अस्ताचल पर्वत जलताहुआ उदयाचल पर्वत के पास आपड़ा; मन्दराचल और सुमेरु पर्वत जलकर गिरनेलगे और अग्निकी ज्वाला ऊंचे उठकर भड़भड़ शब्द करनेलगी। हे रामजी! इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व जलनेलगा;बड़ा क्षोभहुआ और जहां कुछ रस था सो सब फैलगया। हे रामजी! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं सो सब विरस है परन्तु अपने २ कालमें रससंयुक्त दृष्टि आतेहैं। उस कालमें मुझको सब ऐसे भासे जैसे जली

हुई बेल होतीहै। हे रामजी! इस प्रकार मैंने सब विश्व जलता देखा परन्तु ज्ञान से जिसका अज्ञान नष्ट हुआथा सो सुखी दृष्टि आता था और सब अग्निमें जलते दृष्टि आतेथे और बड़े भयानक शब्द होतेथे। शिवका जो कैलास पर्वतहै उसके निकट जब अग्नि आई तब सदाशिवने अपने नेत्रसे अग्नि प्रकटकी जिससे बड़ा क्षोभ हुआ और ब्रह्माण्ड जलनेलगा। तब महापवन चला और बड़े पर्वत उड़नेलगे—जैसे तृण उड़ते हैं। जो स्थान जलेथे उनकी अँधेरी होकर यक्षोंके स्थानभी उड़नेलगे, निदान बड़ा क्षोभ उदय हुआ और इन्द्रादिक देवता अपने स्थानको त्यागकर ब्रह्मलोक में चलेगये; बड़े मेघ जो जलसे पूर्ण थे सूखकर जलनेलगे और कल्परूपी पुतली नृत्य करनेलगी। जले स्थानोंसे जो धूम्र निकलता था वह उसके केशथे और प्रलय शब्द उसका बोलना था। बड़ा पवन चलनेलगा, पर्वत जलकर उड़नेलगे और सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नाईं उड़ते थे। निदान जीवोंको बड़ा कष्टहुआ जो कहा नहीं जाता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्ब्रह्मप्रलयवर्णनंनाम
शताधिकद्विनवतितमस्सर्गः १९२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब अग्निसे सब स्थान जलगये उसके उपरान्त पुष्कलमेघ गर्जकर वर्षनेलगे और प्रथम मुसलकी, फिर थंभधारा, फिर नदीकी नाईं और फिर महानदकी नाईं वर्षनेलगे जिनकी गंगा यमुना नदी लहरें हैं और उनसे सब स्थान शीतल होगये—जैसे तीनों तापोंसे जलाहुआ अज्ञानी सन्तोंके संगसे शीतल होताहै। हे रामजी! फिर ऐसा जल चढ़ा जिससे सुमेरु आदिक पर्वत नृत्यकरने लगे और जैसे समुद्रमें झाग होतेहैं तैसेही होगये अथवा ऐसे जानपड़ते थे जैसे जलचर होतेहैं। हे रामजी! ऐसे जल चढ़े कि, कहा नहीं जाता; बड़ेबड़े स्थान और देवता, सिद्ध, गन्धर्व बहेजातेथे। जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकर सेवन करतेहैं वे भी बहुत दृष्टि आये। जैसे कोई पुरुष कंटकके अन्धेकूपमें गिरके दुःखपावे तैसेही वे दृष्टि आवें पर मुझको सब ब्रह्मदृष्टि आवे पर जब संकल्पकी ओर देखूं तब महाप्रलय दृष्टिआवे और मेघ गर्जते जटा होकर दृष्टि आवें। निदान ब्रह्मलोक पर्यंत जल चढ़गया और मैं देखकर आश्चर्यको प्राप्त हुआ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजलमयवर्णनंनाम
शताधिकत्रिनवतितमस्सर्गः १९३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस ब्रह्माका जगत् जलमय होगया और मुझे जलसे भिन्न कुछ न भासे सब शून्यही भासे। ऊर्ध्व, अध और मध्यदिशा भी न भासें और न कोई तत्त्व, न कोई पर्वत; न कोई देवता; न पशु और न पक्षी भासें। तब मैंने ब्रह्मपुरीको देखा कि, इसकी क्या दशाहै। फिर जैसे प्रातःकालका सूर्य अपनी प्रतिभाको

फैलाताहै;तैसेही मैंने ब्रह्मपुरीको दृष्टि फैलाके देखा तब ब्रह्माजी मुझको परमसमाधि में दृष्टि आये और और जो जीवन्मुक्त ब्रह्माके परिवार वालेथे वे भी सब पद्मासन बांध करके परम समाधि लगाये बैठे थे और जैसे पत्थरपर मूर्त्तिहो तैसेही सब परम समाधिमें अचल स्थितथे और संवेदन फुरनेसे रहितथे। चारों वेद मूर्त्तिधरे और बृहस्पति, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम, चन्द्रमा, अग्नि, देवता इत्यादि ऋषीश्वर मुनीश्वर जीवन्मुक्त सबको मैंने ध्यानमें स्थित देखा और द्वादशसूर्य भी जो विश्वको तपातेथे सो पद्मासन बांधकर समाधिमें स्थित हुयेथे। एक मुहूर्त्त पर्यंत मैंने इसी प्रकार देखा जब एक मुहूर्त्त बीता तब सूर्य बिना सब अन्तर्द्धान होगये। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने विद्यमान होतीहै और जागेसे अभावना होजाती है;तैसेही मेरे देखते देखते ब्रह्मपुरी शून्य बनकी नाईं होगई। जैसे राजपतनसे मार्गप्रलय होजाते हैं तैसे प्रलय होगई। हे रामजी! जैसे स्वप्नेमें मेघ गर्ज्जते दृष्टि आतेहैं—और यह दृष्टांत तो बालक भी जानते हैं कि, प्रत्यक्ष अनुभवको छिपाते हैं वे मूर्ख हैं। मैं अनुभवसे भी जानताहूं; स्मृति भी होतीहै और सुना भी है कि, जब तक निद्रा है तब तक स्वप्नेकी सृष्टि भासती है और जागेसे उसका अभाव होताहै—तैसेही जब तक ब्रह्माकी वासनाथी तबतक सृष्टि थी, जब वासनाक्षय हुई तब सृष्टि कहां रही। जब वासना नष्टहोती है तब अन्तबाहक आधिभौतिक शरीर नहीं रहते। हे रामजी! जब शुद्धमात्र पदसे चित्तशक्ति फुरतीहै तब पिंडाकारहो भासती है और जब तक वह शरीर है तब तक संसार उपजता भी है और नष्ट भी होताहै; तैसेही ब्रह्माकी सुषुप्तिमें जगत् लीन होजाता है और जाग्रत्में उत्पन्न होताहै क्योंकि; ब्रह्माके शरीर का सुषुप्तिमें लीन होनाही प्रलयहै। यदि कहिये कि, इस शरीरके नाशका नाम महाप्रलय हो तो ऐसे नहीं है क्योंकि; मृतकहुये शरीरका नाश होताहै और फिर लोक भासताहै। और जो कहिये कि, वह परलोक भ्रममात्रहै तैसेही यह भी भ्रांतिमात्रहै और वह परलोक भ्रांतिमात्रहै इसीका नाम महाप्रलयहै तो ऐसे भी नहींहै क्योंकि; श्रुति, स्मृति और पुराण सब कहतेहैं कि; महाप्रलयमें कुछ नहीं रहता केवल आत्मसत्ताही रहती है। और जो कहिये कि, परलोक भ्रांतिमात्र है इसका नाम होना क्याहै तो श्रुति और शास्त्रका कहना व्यर्थ होताहै और जो उनका कहना व्यर्थ हो तो इनके कहनेसे ब्रह्माकार वृत्ति किसीको उत्पन्न न हो। जो तुम कहो कि, जैसे अंग वाला अंगको सकुचा लेताहै तैसेही स्थूलभूत सकुचकर अपने सूक्ष्मकारणमें जा लीन होतेहैं इसीकानाम महाप्रलय है, तो ऐसेभी नहीं क्योंकि; सूक्ष्मभूतके रहते महाप्रलय नहींहोता और जो तुमकहो कि, संवेदनजो अज्ञानहै जिसमें अहं फुरताहै उसकानाम महाप्रलय है तो यहभी नहीं क्योंकि; मूर्च्छामें इसको अज्ञानहोताहै परन्तु फिर सृष्टि भासती है और मृत्यु होतीहै सो बड़ी मूर्च्छा है पर उसमें भी फिर पंचभौतिक शरीर

भासताहै और आगे जगत् भासताहै इससे इसकानामभी महाप्रलय नहीं । जो तुम कहो कि; जबतक यह पंचभौतिक शरीरहै तबतक जगत्है और इसका अभावहो तब म ाप्रलयहै तो यहभी नहीं क्योंकि; जब शरीरकोजीव त्यागताहै और उसकी क्रियानहीं होती तो पिशाच होताहै । इस श रीरका जब नीरूपहोताहै और मनुष्य शव होजाता है तब क्षत्रिय ब्राह्मणकी संज्ञानहीं रहती, इससे तुम देखो कि; बस देहका नामभी महाप्रलय नहीं और प्रमाद करके विपर्ययका नामभीमहाप्रलय नहीं। महाप्रलय उसको कहते हैं कि, जिसमें सबका अभाव होजावे और सर्वका अभाव तब होताहै जब बासना क्षयहोजाती है । इसलिये बासना के क्षयका नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं। जैसे जबतक निद्रा हैतब तक स्वप्ने का जगत् भासता है और जब जाग्रत् में स्वप्ने के जगत् का अभाव हो-जाता है, तैसेही जबतक वासना है तबतक जगत् है, जब वासना का क्षय होता है तब जगत् का अभाव होता है । हे रामजी ! बासना भी फुरती नहीं आभासमात्र है और तुम जो कहो कि, भासता क्योंहै? तो जो कुछ भासता है सो वही अपने भाव में आप स्थित है। हे रामजी ! भाव से उत्थान होने का नाम बन्धन है और उत्थान के मिटने का नाम मोक्ष है। हे रामजी ! नेत्र के खोलने और मूंदने में भी कुछयत्न है पर मुक्तहोने में कुछयत्न नहीं । जो वृत्तिवहिर्मुख हुई तो बन्धनहुआ और वृत्ति अन्तर्म्मुखहुई तो मुक्तहुआ । इसमें क्यायत्न है? इसलियेसुषुप्त की नाईं निर्वासनिक स्थित होरहो । जब अहं संवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्ता हो भासता है । आगे जो इच्छाहै सो करो पर जब अहं उत्थान से रहित ोगे तब परम निर्बाण पदको प्राप्त होगे, जहां एक और दो कल्पना कोई नहीं उस परमशांत निर्विकल्प पदको प्राप्तहोगे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबासनाक्षयप्रतिपादनंनाम शताधिकचतुर्नवतितमस्सर्ग्गः १९४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! निदान वे ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये--जैसे तेलबिना दीपक निर्वाण होजावे। जब ब्रह्माजी ब्रह्मपदमें निर्वाण हुये और द्वादशसूर्य फिर ब्रह्मपुरीको जलानेलगे और सम्पूर्ण ब्रह्मपुरी जलगई तब वे सूर्य भी ब्रह्माकी नाईं पद्मासन बांध स्थितहुये। जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण होताहै तैसेही वे सूर्य भी निर्वाण होगये। हे रामजी! जब द्वादश सूर्यनिर्वाण होगये तब समुद्र उछले और ब्रह्मपुरीको ढाँपलिया । जैसे रात्रिमें अन्धकार नगर को ढाँपलेता है तैसेही ब्रह्मपुरीको उन्होंने आच्छादित किया; बड़े तरंग उछले और पुष्करमेघ भी तरंगोंसे छेदेगये औ जलरूप होगये । हे रामजी ! तब एक पुरुष आकाशसे निकला मुझको दृष्ट आ , जो महाभयानक श्यामरूप उग्रआकाश था। उसने सबको ढाँपलिया और वह कृष्णमूर्त्ति मानों कल्पपर्यंत रात इकट्ठी होकर उसका रूप आन स्थित हुआहै। और मुखसे ज्वाला

निकलतीहै। उसके शरीर का बड़ा प्रकाश था मानों कोटिसूर्य स्थितहैं और बिजली का प्रकाश इकट्ठा हुआ है। उसके पंचमुखथे, दशभुजा थीं और तीन नेत्र थे—मानों तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं। हाथमें उसके त्रिशूलथा और आकाशकी नाईं उसकी मूर्त्तिथी। जैसे क्षीर समुद्रके मथनेको भुजा बड़ी करके विष्णु ने शरीर धारा था और क्षीरसमुद्रको क्षोभाया था तैसेही नासिकाके पवनसे वह समुद्रकोक्षोभित करताहुआ। जैसे आकाशका बड़ा वपुहै तैसाही उसने स्वरूप धारण किया—मानों प्रलयकाल के समुद्र मूर्त्ति धरके स्थितहुये हैं; अथवा मानों सर्व अहंकारकी समष्टिता अथवा महाप्रलयकी बड़वाग्निकी मूर्त्ति स्थित वा प्रलयकालके मेघमूर्त्ति धरके स्थितहुये हैं। हे रामजी! मैंने जाना कि, यह महारुद्रहै क्योंकि, इसके हाथमें त्रिशूलहै, तीन नेत्र और पंचमुख हैं। ऐसे जानकर मैंने उसे प्रणाम किया। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! उसका भयानकरूप क्या था और रुद्र किसको कहते हैं? उसका बड़ा आकार, दशभुजा, पंच मुख और तीननेत्र क्याथे और हाथमें त्रिशूल क्या था? वह किसका भेजा आयाथा; उसने क्या किया और कहां गया? वह अकेला था अथवा उसके साथ कोई औरथा और वह श्याममूर्त्ति क्यों था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विषमविष प्रच्छन्न जो अहंकारहै सो त्यागने योग्यहै और समष्टि अहंकार सेवने योग्यहै। सर्व आत्माप्रतीतका नाम समष्टि अहंकारहै और उसीका नाम रुद्रहै। कृष्णमूर्त्ति इस निमित्त थी कि, आकाशरूपहै। जैसे आकाशमें नीलताहै तैसेही उसमें कृष्णता थी सर्व जीव जो अपने अहंकारको त्यागकर निर्वाण हुये उनकी समष्टिता होकर रुद्ररूप भासी इसीसे उग्रथा। पंचमुख ज्ञानइन्द्रियोंकी समष्टिता थी और दशभुजा कर्म्मइन्द्रियोंकी समष्टिता थी राजस, तामस और सात्त्विक तीनगुण तीनोंनेत्र थे अथवा भूत; भविष्यत् वर्त्तमान; वा ऋग्, यजुः और साम तीनोंवेद नेत्रथे; अथवा मन, बुद्धि और चित्त तीनोंनेत्रथे। ओंकारकी तीनमात्रा उसके नेत्र और आकाशरूपी वपुथा और त्रिलोकी रूपी हाथमें त्रिशूलथे। चित्संवित्‌से फुराथा इससे उसीका भेजा आयाथा और फिर उसी में लीन होगा। वह केवल आकाशरूप था। जो कुछ उसने किया वह भी सुनो। हे रामजी! ऐसा वह रुद्रथा मानों आकाशके पंखलगेहैं; उसने अपने नेत्रप्राणोंको खींचा तो सर्व जल उसके मुखमें प्रवेश करनेलगे। जैसे नदी समुद्रमें प्रवेश करतीहै तैसेही सब जल रुद्र में लीनहुये और जैसे बड़वाग्नि समुद्रको पान करलेतीहै, तैसेही उस रुद्रने एक मुहूर्त्तमें सब जल पान करलिया; कहीं जलका अंशभी दृष्टि न आवे। जैसे अन्धकारको सूर्य लीन करलेताहै तैसेही उसने जल पान करलिया और जैसे अज्ञानीका अज्ञान सन्तके संगसे नष्ट होजाताहै तैसेही उसने जलको पान करलिया। तब केवल शुद्ध आकाश होगया; न कहीं पृथ्वी दृष्टि आवे; न अग्नि; न वायु; कोई तत्त्व कहीं दृष्टि न

आवे—एक आकाशही दृष्टि आवे। जैसे उज्ज्वल मोती होता है तैसेही उज्ज्वल आकाश दृष्टि आवे और चारों तत्त्व कहीं न भासें। एक तो अधोभाग दृष्टि आवे; दूसरे मध्यभाग आकाश सो रुद्रही दृष्टि आवे; तीसरे ऊर्ध्वभाग दृष्टि आवे और चौथे चिदाकाश दृष्टि आवे कि, सर्वात्मा है और कुछ दृष्टि न आवे। हे रामजी! वह रुद्र भी आकाशरूप था और उसका कोई आकार न था केवल भ्रांतिसे आकार भासता था। जैसे भ्रमसे आकाशमें नीलता और तरुवरे भासते हैं और जैसे स्वप्नेमें भ्रमसे आकार भासते हैं; तैसेही उस रुद्र का आकार दृष्टि आया पर आत्मा आकाशसे भिन्न न था। जैसे चिदाकाश में भूताकाश भ्रम से भासता है, तैसेही रुद्रका शरीर भासा। वह रुद्र सर्वात्मा था और आकाश होकर भासासो किंचनथा। हे रामजी! आकाशमें रुद्र निराधार भासाथा। जैसे मेघ निराधार होतेहैं तैसेही वह निराधार दृष्टिआताथा। श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! इस ब्रह्मांडके ऊपर क्याहै और फिर उसके ऊपर क्याहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो ब्रह्माण्डका आकाशहै उसपर दशगुणा जल अवशेषहै; जलके ऊपर दशगुण अग्निहै; उसकेऊपर दशगुणवायुहै और उसके ऊपर दश गुणआकाशहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ये तत्त्व जो तुमने वर्णन किये सो किसके ऊपर हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तत्त्व पृथ्वी के ऊपर स्थितहैं। जैसे माता की गोदमें बालक आन बैठता है तैसेही ये तत्त्व पृथ्वीपरहैं और पृथ्वी भागके आश्रय है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पृथ्वी आदिक तत्त्व सहित निराधार ब्रह्माण्ड किसके आश्रय स्थित हुआ है; उनका चलना और ठहरना कैसे होताहै और नाश कैसे होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हींकहो कि, आकाशमें मेघ किसके आश्रय होते हैं? सूर्य और चन्द्रमा किसके आश्रय होते हैं? जैसे वे संकल्प के आश्रयहैं तैसेही ब्रह्मांड भी संकल्प के आश्रय हैं और जैसे स्वप्नेकी सृष्टि संकल्पही के आश्रय है और संकल्प आत्मा के आश्रय है; तैसेही यह जगत् और तत्त्व भी आत्मसत्ता के आश्रय स्थित हैं और इनका ठहरना और गिरना भी आत्मा के आश्रय है। जैसे आदि चित्त स्पंदहोकर नीतिहुई है तैसेही है। इस प्रकार गिरना है; इसप्रकार ठहरना है; इसप्रकार इसका नाश होना है और इसप्रकार रहना है तैसेही परमस्वरूप से भिन्न कुछ नहीं—केवल भ्रममात्रहै। जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभास होता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और चित्त संवितही जगत् आकार हो भासती है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे तलवार में श्यामता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् है। जैसे नेत्रदोष से आकाश में मोती भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और मिथ्याजगत् की संख्याकीजिये तो नहीं होती। जैसे सूर्यकी किरणों का आभास और रेतके कणके

में संख्यानहीं होती; तैसेही जगत् की संख्या नहीं होती और वास्तव में कुछबना नहीं- अजातजात हैं। जैसे स्वप्ने में अनहोती सृष्टि भासती है तैसेही यह जगत् भासता है, इससे दृश्यको मिथ्या जानकर जगत् की वासना त्यागो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनंनाम
शताधिकपंचनवतितमस्सर्गः १९५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस रुद्रका तो मैंने बड़ा भयानक रूपदेखा था। उसके नेत्र बड़े तेज से पूर्ण थे-चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि ये तीनों उसके नेत्रथे और वह महाभयानक था-मानो प्रलय के समुद्र मूर्त्ति धरके स्थितहुयेहैं। रुण्डोंकीमाला उसके कंठमें थी और उसकी परछाहीं बड़ी और श्यामरूपी निकलतीथी; उसको देखकर मैं आश्चर्यवान्हुआ कि, यहां सूर्य और अग्नि भी नहीं और किसी का प्रकाश भी नहीं तो यह परछाहीं किस प्रकार है और क्या है। ऐसे मैं देखताहीथा कि, वह परछाहीं नृत्य करनेलगी और उससे एकस्त्री निकली जिसकाशरीर दुर्बल, बड़ा ऊंचा आकार और कृष्णवर्ण था-मानों अँधेरीरात्रि मूर्त्ति धरके स्थित हुई हैं। और उसके तीननेत्र बड़ी भुजा और ऊंचीग्रीवा थी-मानों प्रलयकालके मेघ मूर्त्तिधारके स्थितहुयेहैं। उसके गलेमें रुद्राक्षऔर रुण्डोंकीमाला पड़ीहुईथी और विकराल स्वभाव हाथों में त्रिशूल, खड्ग, बाण,ध्वजा,ऊखल, मूशल आदिक आयुध लियेथी। ऐसाभयानक आकारदेखकर मैंने विचारकिया कि, यहकाली भवानीहै। उसको जानकर मैंने नमस्कार किया। जैसे अग्नि के जलेहुये पर्वतके शिखर श्यामहोतेहैं तैसेही वह श्याम आकार थी और उसके मस्तक में तीसरानेत्र बड़वाग्नि की नाईं तेजवान् निकलाथा। कभी उसकी दो भुजा दृष्टिआवें; कभी सहस्रभुजा दृष्टिआवें;कभी अनन्त भुजा हों; कभी एक एक भुजा दीखे और कभी कोई भुजा न दृष्टिआवे; कभी शिर पाद कोई न रहे केवल एक बुतसी भासे और नृत्यकरे। ज्यों ज्यों वह नृत्यकरे त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्टि आवे-मानों आकाश को भी ढाँपलिया है और दशों दिशा आकाश से पूर्णकिये हैं। नखशिख की भी मर्यादा कुछ न दृष्टि आवे ऐसा आकार बढ़ाया। जब वह भुजा को हिलावे तब मानों आकाश को मापनी है। पाताल पर्यंत उसके चरण; आकाशपर्यंत शीश; पृथ्वी उसका उदर, सुमेरु आदिक पर्वत नाभि स्थान और दशोंदिशा भुजाथीं-मानों प्रलयकाल की मूर्त्तिधारकर स्थित भई हैं। बड़े पर्वत की कन्दरावत् जिसकी नासिका थी; लोकालोक पर्वत हाड़थे और कण्ठ में नदियों की माला थी जो चलती थी। वरुण,कुबेर आदिक देवतों के शिरकीमाला उसके कण्ठ में थी; पवननासिका के मार्गसे निकसता था उससे सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नाईं उड़े जातेथे। ब्रह्माण्ड की माला उसके गलेमें थी; हाथोंमें ब्रह्माण्ड

रूपीभूषण थे और कटिमें ब्रह्माण्ड के घुंघुरू और करधनी थी। जब वह नृत्यकरे तब सब ब्रह्मांड नृत्यकरे। जैसे पवनसे पत्र नृत्यकरते हैं तैसेही सुमेरु आदिक नृत्य करें और उस के एकएकरोम में ब्रह्मांड थे। जैसे तारागण वायु के आधीन हैं। उसके कानों में धर्म अधर्मरूपी मुद्राथी और बड़े २ कान और बड़ा मुख था—मानों संपूर्ण ब्रह्मांड को भक्षण करती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों स्थान थे और उन स्थानों में चारोंवेदों और शास्त्रों के अर्थरूपी दूध निकलता था। निदान जगत् की सब मर्य्यादा मुझको उसमें दृष्टि आई। उसके नृत्यकरनेसे कई ब्रह्मांड और अस्ताचल आदिक पर्वत तृणों की नाईं नृत्यकरें और सब कुछ विपर्यय होता दृष्टि आवे। उसके शरीर में आकाश अधको दृष्टिआवे; पृथ्वी ऊर्ध्व को दृष्टि आवे और तारा मंडल, सिद्ध, देवता, विद्याधर, गंधर्व, किन्नर, दैत्य, स्थावर, जंगम सब उसमें दृष्टि आवें—मानों संपूर्ण ब्रह्मांडोंका आदर्शहै। भुजों के उछलने से चन्द्रमा की नाईं नखों का प्रकाश हो और मन्दराचल, उदयाचल पर्वत कानों में भूषण दृष्टि आवें और हिमालय पर्वत बरफ के कणके समान दृष्टिआवे। हे रामजी ! इसप्रकार उस देवीके शरीर में मुझको अनन्त सृष्टिदृष्टि आई। कहींइकट्ठी और कहींभिन्नभिन्न कहीं एकहीसी चेष्टाकरे और कहीं भिन्नभिन्न चेष्टा करे। मानों ब्रह्मांड रूपी रत्नोंका डब्बा है। हे रामजी ! जब मैं संकल्प सहितदेखूं तब मुझको सृष्टि दृष्टि आवे और जब आत्मा की ओर देखूं तब केवल आत्मरूपही भासे और कुछ दृष्टिनआवे। संकल्प दृष्टिसे संपूर्ण जगत् नृत्यकरते दृष्टि आवें पर ऐसी सामर्थ्य किसीकी दृष्टि न आवे कि, नृत्य नकरे। जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयसब उसही में दृष्टि आवें और सम्पूर्ण क्रिया उसहीसे होतीदृष्टि आवें। उसहीमें सिद्ध, देवता, गन्धर्व, अप्सरा विमानपर आरूढ़ फिरें और नक्षत्रोंके चक्रफिरें—मानों ब्रह्मांड फिर उदय हुयेहैं। जब मैं फिर आत्मदृष्टि से देखूं तब ब्रह्मस्वरूप भासे और संकल्प दृष्टि से जगत् भासे। वह चित्तकला जो संकल्परूप है उसमें सबही दृष्टि आवे। हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमाआदि सब उसीमें दृष्टिआतेथे। जैसे मच्छर वायुसे उड़ते हैं तैसेही अनन्तसृष्टि उसके शरीरमें उड़ती दृष्टिआवें इससे मैं महाआश्चर्य्यवान् हुआ। वह भैरवथा और यह भैरवी उसकी शक्तिथी; दोनों मुझको दृष्टिआये कि, बड़ेवपुधारीहैं। यह नित्यशक्ति सर्वात्माथी और परमात्माकी क्रिया शक्ति सबविश्वको अपने आपमें जानतीथी। जैसे समुद्र सब तरंगोंको अपने में अपना आपजानताहै तैसेही सर्व ब्रह्माण्डको वह अपनेमें अपनाआप जानतीथी। वह तो सदाशिवसेभी बड़े अहंकारको धारेथी—मानों सब ब्रह्माण्डकीमाला कंठमें डालेहै और यमादिक सब उसकी मर्यादाहैं। हे रामजी ! इसप्रकारमैंने रुद्र और काली भ-

वानी को देखा। रुद्रकेशिरपर जो जटाथीं सो मोरकीपंखकी नाईथीं और कालीको मैंनेदेखा कि, नानाप्रकार के मृग और दम दमसे आदिलेकर शब्द करतीथी और यह शब्दभी करतीथी—"दिग्वंदिग्वं तुदिग्वं पंचमनावह संमंमप्रलये मियतुयत्रिपंत्रो त्रीलं त्रीषलषलुमं षनुषं सुमंष मषमाभ्रिगुही गुंहीगुंही उगुमियगुंदलुमददारी मीदातंदती"। हे रामजी। इसप्रकारके शब्दकरतीहुई वह श्मशानोंमें नृत्यकरतीथी। हे रामजी! ऐसीदेवी तुम्हारे सहायहो जो सर्वशक्ति परमात्माहै और सब ब्रह्मांड उसके आश्रयहैं। क्षणमें वह अंगुष्ठप्रमाण होजातीथी और क्षणमें बड़े दीर्घआकार धारण करतीथी। सब जगत्में जो क्रिया होती हैं सो उसके आश्रय होती हैं; कहीं उत्पत्ति होती है और कहीं युद्धहोते हैं और नानाप्रकारकी क्रिया उसदेवीके आश्रयहोतीहैं। जैसे आदर्शमें प्रतिबिम्बहोताहै तैसेही उसदेवीमें क्रियाहोती हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदेवीरुद्रोपाख्यानवर्णनं
नामशताधिकषण्णवतितमस्सर्गः १९६॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यहजो तुमने रुद्र और कालिकाका बर्णन किया सो कौनथे? महाप्रलयमें तो कुछ नहींरहता? उसके शरीरमें तुमने सृष्टिकैसे देखी और महाप्रलयहोकर उसके शरीरमें सृष्टिने कैसे प्रवेशकिया? उसके हाथमें शस्त्र क्या थे; कहांसे आईथी और कहांगई और उसका आकार क्याथा? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! न कोईरुद्रहै; न कालीहै; न कोईपुरुषहै; न कोई स्त्रीहै; न कोई नपुंसकहै; न पुरुष मिलकर कुछहुआहै; न ब्रह्मांड है और न पिंडहै केवल चिदाकाशहै और संकल्प से उपजेआकार भासते हैं। जैसे स्वप्ने में आकार भासते हैं। तैसेही वे आकारभी भासते हैं वास्तवमें केवल चिदाकाश ज्योंकात्यों है। हे रामजी! आत्मपद अनन्त, चैतन्य, सत्य, प्रकाशरूप, अविनाशी और अपने आप स्वभावमें स्थितहै। रुद्रदेवका आकार जो भासाथा सो चेतन आत्माही ऐसेहोकर भासितहुआथा—कोई और आकार नथा। जैसे सुवर्णही भूषणहोकर भासताहै तैसेही परमदेव चिदाकाश ऐसेहोकर भासाथा क्योंकि; चेतनस्वरूपहै। जैसे मधुरता पौंड़ेकास्वरूपहै, तैसेही आत्माकाचेतन स्वरूपहै। हे रामजी! चेतनसत्ता अपनेस्वरूपकोनहींत्यागती, आकारहोकर भासतीहै और सदा अपने आपमेंस्थितहै। जैसे पौंड़ेकेरसमें मधुरता न हो तो उसको कोई रस नहींकहता, तैसेही आत्मसत्तामें चेतनता न हो तो चेतन कोई न कहे। जो आत्मा चेतनताको त्यागे तो परिणामीहो और चेतन न कहाये परन्तु वहतो सदा अपने आप स्वभावमें स्थितहै और किसी और अवस्थाको नहीं प्राप्तहुआ, इसीसे कहाहै कि; जो कुछभासता है सो आत्माका किंचनहै। हे रामजी! जैसे पौंड़ेकेरसमें मधुरताहोती है तैसेही आत्मामें चेतनता है। चेतनमात्र में चेतनताकालक्षण चेतनतारूप रहताहै

इससे यहजगत् भावरूप लखाताहै; जो शुद्धचिन्मात्रमें चित्तकाउत्थान न होता तो जगत्भाव न लखाता। आत्मसत्ता दोनों अवस्थाओंमें सदाज्योंकीत्यों है—जैसे वायु जबस्पन्द होताहै तबउसका स्पर्शरूप लक्षणप्रतीत होताहै और जब निस्पन्दहोता है तब उसमें कोईशब्द नहीं प्रवेश करसक्ता; पर वायु दोनों अवस्थाओं से तुल्य है; तैसेही शुद्ध चेतनमें किसीशब्दका प्रवेशनहीं पर चेतनताभावमेंहै और आत्मसत्ता सदातुल्य है—इससे वास्तव यह जगत्ही नहीं है । हे रामजी ! आदि, मध्य, अन्त, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थित, प्रलय, जन्म, मरण, सत्, असत्, प्रकाश, अन्धकार, पंडित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नामरूप, कर्मरूप, अवलोक, मनस्कार विद्या, अविद्या, दुःख, सुख, बन्ध, मोक्ष, जड़ चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आना, जाना, जगत्, अजगत् कुछ नहींहै। बढ़ना, घटना, मैं, तुम, वेद, शास्त्र, पुराण, मंत्र, अकार, उकार, मकार, जय, नाम आदिक स्थावर-जंगम जगत्सब ब्रह्मस्वरूप है दूसरी वस्तु कुछनहीं । जैसे समुद्रमें तरंग, बुदबुदे और आवृत सब जलरूप हैं, तैसेही सब ब्रह्मस्वरूपहै ब्रह्मसेभिन्न जगत् कुछवस्तुनहीं। जैसे स्वप्नेमें पर्वत भासते हैं सो अनुभवसे भिन्न नहींहोते तैसेही यह जगत् ब्रह्मसे भिन्ननहीं । जैसे सूर्यकी किरणोंमें जलरूप होकर भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप होकर भासती है। हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश आदिक जितने शब्द हैं वे सब ब्रह्मसत्ताहीसे होकर स्थितहुयेहैं परन्तु सत्ता अपने आपमें ज्योंकीत्योंहै कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्तहुई और वही सत्ता सर्वकी आत्माहै। जैसे समुद्र अपने तरंगभावको त्यागे तो अपने सौम्यभावमें स्थित होताहै, तैसेही ब्रह्मसत्ता फुरनेको त्यागे तो अपने स्वभावमें स्थितहो सो अनामयहै अर्थात् दुःखोंसे रहित, परमशांतिरूप, अनन्त और निर्विकार है। जब इसप्रकारबोध हो तब उस ब्रह्मसत्ता को प्राप्त हो और बोध, अबोध, विधि, निषेध भी वही हैं। जैसे जल और समुद्रकी संज्ञाकही है और तरंग शब्दकहनेसे विलक्षण भासताहै पर जब जल तरंग बुद्धिको त्यागे तब केवल समुद्ररूप है, तैसेही यह जीव जब अपने जीवत्व भावको त्यागे तब आत्मरूपी समुद्र को प्राप्त हो अर्थात् जब दृश्यका सम्बन्ध त्यागकरे तब आत्माहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम शताधिकसप्तनवतितमस्सर्ग्गः १९७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमसेमैंने जो चिदाकाशकहा है सो परमचिदाकाश है औरसदा अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! शुद्धचिदाकाशजो मैंने तुमसे कहाहै वही यह रुद्ररूपहै और वही नृत्य करताथा। वहां आकार कोईनथा केवल चिद्घनसत्ताथी

और वही ऐसेहोकर किंचन होनीथी। हे रामजी! जब मैं आत्मदृष्टिसे देखताथा तब मुझ को चिदाकाशरूपही भासाथा। हे रामजी! मेरे साहो वही तैसारूप देखे और नहीं देख सक्ताहै। हे रामजी! जिसका नाम कल्पांत कहाताहै वही रुद्र और भैरवहै और वही कल्पांतकी मूर्त्ति नृत्यकरके अन्तर्द्धान होगई और वास्तवमें मायामात्र रूपथा। यह चेतनसत्ताके आश्रयनाचतेथे। हे रामजी! जैसे सोनेमें भूषणहैं परन्तु सोने विना नहीं होते तैसेही चेतनता किंचनसे जगत् भासताहै और फिर वही प्रमादसे अधि-भौतिक होजाताहै, वास्तवमें शुद्ध चिदाकाशरूपहै और चेतनतासे वहीजगत्‌रूपहो भासताहै। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! प्रथम तो आपने कहा कि आत्मतत्त्व अद्वैत यह जगत् प्रमादसे नाशरूप कल्पितहै और जोहै तो कल्पके अन्तमें नाशहोजाता है, केवल अद्वैत सत्तारहती है और फिर आपही कहतेहैं कि, चैत्यतासे जगत्‌रूप भासताहै। अद्वैतमें चैत्यताकैसे हुई है और कौनचेतनेवाला हुआ? प्रलयकेअनन्तर काली क्योंकर भासी? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! न कोई चैत्यहै और न कोई चेत-ताहै केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै जो चेतनघन, परमनिर्मल और शांत रूपहै और शिवतत्त्वभी उसीको कहते हैं। वही शिवतत्त्वरुद्र आकारको धारण किये दृष्टआयाथा दूसरा कुछनहीं—केवलपरम चिदाकाशहै। वहीचिदाकाश आकारहोभा-सताहै और कोई आकार नहीं हुआ; न भैरवहै न भैरवीहै, न कालीहै न यह जगत्‌है सब मायामात्रहै। जैसे स्वप्नेमें आत्मसत्ता चैत्यताके कारण जगत्‌रूपहो भासती है पर स्वरूपते न कुछ चैत्यताहै और न जगत् है, आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है; तैसेही उसजगत्‌को भी जानो। कुछ और नहीं हुआ अद्वैत सत्ताहीहै; इससे चेत और चेतनेवाला मैं तुमको क्याकहूं सब वृत्तिके बल भासते हैं आत्मामें यह कुछनहीं उपजे केवलस्वच्छ चिदाकाशहै। हमको तो सदावही स्वरूप भासताहै पर अज्ञानी को नानाप्रकार का जगत् भासता है और आत्मा सदा एक है—किञ्चनकरके उसमें आकार भासतेहैं। भैरव और काली सब निराकार हैं और भ्रांतिकरके आकार भा-सतेहैं। जैसे मनोराजमें युद्ध भासतेहैं और जैसे कथामें अर्थ भासतेहैं सो अनहोते ही संकल्प विलासतेहैं; तैसेही चिदात्मामें यहजगत् भासताहै। जैसे आकाशमें तरुवरे भासतेहैं; तैसेही यह आकार भासते हैं। हे रामजी! यह जो जगत् प्रलय और महा-प्रलयादिक शब्दहैं उनका नाशकरने के लिये मैं तुमको कहताहूं। आत्मा एक अद्वैत चैतन्य है, उस चेतनताका अभाव कभीनहीं होता अपने आपमें स्थित है और किं-चन है। जैसे सूर्यकी किरणें किंचन रूपहोतीहैं और उनमें जलभासता है; तैसेही चैत्यका किंचन जगत्‌भासता है और वही महाप्रलय में रुद्र और भैरवी होभासती है; वास्तवमें न कुछ रुद्र है और न काली है सर्व आत्माही है। हे रामजी! जो कुछ

कहना सुनना होता है तो वाच्य वाचक कहाता है आत्मामें कहना और सुनना कुछ नहीं। वही चिदाकाश संकल्प से रुद्र नृत्यकरता था। जैसे सुवर्ण भूषण होकर भासता है, तैसेही चिदाकाश संकल्प से आकार होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं बना। मैं, तुम और जगत्, चेत और अचेत सब वही रूप है; उसमें कोई शब्द नहीं फुरा। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार के शब्द भासते हैं सो कुछ वास्तव नहीं—पत्थर की नाईं मौन है—तैसेही जाग्रत जगत् में भी जितना शब्द होता है सो सब स्वप्न है; कुछहुआ नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। जैसे आकाश अपनी शून्यतामें स्थित है, तैसेही आत्मसत्ता अपने आपभावमें स्थित है जहां न एक है; न द्वैतहै; न सत्यहै; न असत्य है; न चित्त है; न चेतहै; न मौनहै; न अमौनहै और न कोई चेतनेवाला है; चेतके अभाववत् केवल अचेत चिन्मात्र आत्मसत्ता निर्विकल्प रूप स्थित है। हे रामजी! सबसे बड़ा शास्त्रका सिद्धांत यहीहै; इस दृष्टि मौनमें तुम स्थित हो। हे रामजी! सर्व सिद्धांतोंकी समता यही है कि, निर्विकल्प होना। जैसे पत्थर की शिला परम मौन होती है, तैसेही चेतसे रहित हो जो कुछ प्रत्यक्ष आचार प्राप्त हो उसमें प्रवर्त्तना और सदा आत्म निश्चय रखना इसी का नाम परम मौन है। सब क्रिया होतीरहें पर अपनेसे कुछ न देखना—जैसे नट स्वांग धरता है और उसके अनुसार विचरता है परन्तु निश्चय उसका आदिही वपु में होता है, उससे चलायमान नहीं होता; तैसेही जो कुछ अनिश्चित प्राप्त हो उसको यथाशास्त्र करना परन्तु अपने निर्गुण निष्क्रियस्वरूप से चलायमान न होना उसी अद्वैत स्वरूप में स्थित रहना। रामजीने पूछा; हे भगवन्! वह रुद्र क्या था और वह काली शक्ति क्याथी? उनके अंग जो बढ़ते घटते थे; नृत्यकरना क्या था और वस्त्र क्या थे सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शिवतत्त्वही आकार होकर भासता है और कोई आकार नहीं जो चिन्मात्र; अमल, विद्या और अविद्याके कार्य से रहित; शांत और अवाच्य पद है। यह संज्ञाभी संकल्प में तुमसे कही है; आत्मवेत्ता आत्मपद को अवाच्यपद कहते हैं तथापि मैं कुछ कहताहूं। हे रामजी! केवल आत्मतत्त्व मात्र जो चिदाकाश है, वही शिव भैरव है; उसीके चमत्कारका नाम चित्त शक्ति है और उसी का नाम काली है उस कालीआत्मा और शिवरूपमें कुछ भेदनहीं। जैसे पवन और स्पन्द में; और अग्नि और उष्णता में कुछ भेदनहीं होता तैसेही चित्तकला और आत्मामें कुछ भेदनहीं। जैसे पवन निस्पन्द होता है तब उसका लक्षण नहीं होता अवाचकरूपहोताहै और जब स्पन्द होताहै तब उसका लक्षण भी होताहै और उसमें शब्द प्रयोग होताहै; तैसेही चित्तशक्ति से उसकालक्षण होताहै। उसके अनेक नामहैं; उसी का नाम स्पन्द और इच्छा है; उसीको चैत्योन्मु-

खत्वसे वासना कहते हैं; उसीके स्वादकी इच्छा से जब चित्त संवित् में वासना फु-
रती है तब उसका नाम वासना करनेवाला बासक कहाता है–फिर आगे दृश्यहोतीहै।
जब त्रिपुटी हुई अर्थात् वासना, वासक और वासहुये तब वासक को जीवकहतेहैं–
जो जीवत्वभावलेकर स्थितहोतीहै। जब इसको यह भावना होतीहै कि; मैं जीवहूं और
मेरा नाश कदाचित् न हो इस इच्छा से जीवकहाता है। ऐसी संज्ञा जो चित्तशक्ति
की होती है सो स्पन्दमें होती है पर शिवतत्त्व अफुर है और अचेतशक्ति में फुरनेकी
नाईं स्थित है। जैसे सूर्यकी किरणों में जल नहीं होता और हुयेकीनाईं भासता है,
तैसेही यह जगत् है नहीं और हुये की नाईं भासता है इससे उसमें यह संज्ञादेतेहैं।
काली जो परमात्मा की क्रियाशक्ति है सो प्रथम तो कारणरूप प्रकृति है और उसीसे
सब हैं--इसीसे प्रकृति रूप है, विकृति नहीं; अर्थात् किसी का कार्यनहीं। महदा-
दिक पंचभूत महत्तत्त्व; बुद्धि और अहंकार यह सप्त प्रकृति–विकृति है--अर्थात्
कार्यभी हैं और कारणभी हैं। कार्यआदि देवीके हैं और कारण षोड़श हैं–पंचज्ञान
इन्द्रियां; पंच कर्मइन्द्रियां, पंचप्राण और एकमन। इनके सप्तदश कारण हैं। षोड़श
तो बिकृत हैं अर्थात् कार्यरूप हैं, कारणकिसीका नहीं; और पुरुष जो परमात्माहै वह
अद्वैत, अचित्त और चिन्मात्रहै; न किसीका कारणहै और न कार्यहै अपने आप में
स्थित है इससे जितनी द्वैतकलना कारणकार्यमें है वह सब चित्तशक्ति में स्थित है।
जब यह निस्पन्द होती है तब तत्त्वरूप शिवपद में निर्वाण होजाती है और कारण
कार्यरूपी भ्रम सब मिटजाताहै केवल आकाशवत् शेषरहताहै। वह शुद्ध, अद्वैत, अचेत,
चिन्मात्र सदा अपने आपभावमेंस्थितहै और उसकी स्पन्दरूपक्रियाशक्तिकी इतनी
संज्ञा है। प्रथमतो सबका कारणरूप प्रकृति है जो शोष है अर्थात् जैसे बड़वाग्नि
समुद्रको सुखातीहै तैसेही वह जगत् को सुखाती है; सिद्धिहै अर्थात् सिद्ध उसे आश्रय
भूतकरके सेवतेहैं; जयन्तीहै अर्थात् उसकीजय है, चण्डिका है अर्थात् जिसके क्रोध
से जगत् प्रलयहोताहै और भयपाता है; वीर्य्य है अर्थात् जिसका अनन्त वीर्य्य है;
दुर्गा है अर्थात् इसका रूप जानना कठिन है; गायत्री है अर्थात् जिसके पाठसे सं-
सारसमुद्रसे रक्षा होती है; सावित्री है अर्थात् जगत्की पालना करती है; कुमारी है
अर्थात् कोमल स्वभाव है; गौरी है अर्थात् गौरअङ्ग है; शिवा है अर्थात् शिवके
बायें अङ्गमें उसका निवासहै; विजया है अर्थात् सब जगत् को जीतरही है; सुशक्ति
है अर्थात् अद्वैत आत्मामें उसने बिलास रचाहै और इन्द्रसारा है अर्थात् यह जो
उकार इन्द्रआत्मा है उसका सार अर्द्धमात्रा है और उकार–अकार–मकार तीनों
मात्रा अधिष्ठान है। हे रामजी! राजसी; तामसी और सात्विकी तीन प्रकारकी जो
क्रिया होती हैं सो इसी से होती हैं; यह सब संज्ञा क्रियाशक्तिकी कही। अब उसका

शस्त्र और बढ़ना घटना सुनो। हे रामजी! वह नृत्य जो करती थी सोही क्रियाहै; सो क्रिया सात्विकी, राजसी और तामसी तीनप्रकारकी है । मुसल जो था सो ग्राम, पुर और नगरथे और उसकेअङ्ग सृष्टिथे । जब वह शिवसे व्यतिरेक होतीथी तब उसके अङ्ग सृष्टिरूप बहुत होजातेथे; जब शिवकीओर आतीथी तब सृष्टिरूप अङ्ग थोड़े हो जातेथे और जब शिवको आमिलतीथी तब शिवही होती थी—सृष्टिरूपी अङ्ग कोई न रहता था । यह तो आत्माकी कालीशक्ति की क्रिया का वर्णन तुमको सुनाया है अब शिवका वर्णन सुनो। वह तो वाणीसे अतीतहै तथापिमैं कुछकहताहूं। वह परमशुद्ध, निर्मल और अच्युत है और उसमें कुछ हुआ नहीं केवल क्रियाशक्तिके फुरने से जगत् हो भासताहै । जब वह अपने अधिष्ठानकी ओर देखताहै तब अपना स्वरूप दृष्टिआता है । क्रियाशक्ति और आत्मामें कुछ भेद नहीं—जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेदनहीं क्योंकि; आकाश का अङ्ग शून्यताहै—और अवयवी और अवयव मेंभी कुछभेद नहीं जैसे अग्निकारूप उष्णताहै, तैसेही आत्माका स्वभाव चित्त शक्ति है । इसका नाम काली इससे है कि कृष्णरूपहै । जैसे आकाश ऊर्ध्वको श्याम भासता है तैसेही आकाश बपु है । और जैसे आकाश निराकारहै तैसेही काली निराकार श्यामा भासतीहै। आकाशकी नाईं इसकाबपुहै इससे इसकानाम कृष्णबपुहै और काली जगत्के नाशकेअर्थहै। वह जब स्वरूपकीओर आतीहै तब जगत् का नाश करती है । हे रामजी ! स्पन्दशक्ति जबतक शिवसे व्यतिरेकहै तबतक जगत् को रचतीहै—जहां यहहै तहां जगत् है—जगत्से विलक्षण नहीं रहती। जैसे जहांसूर्यकी किरणें हैं वहां जलाभास होता है—किरणबिना जलाभास नहीं रहता; तैसेही स्पन्दशक्ति जगत् बिना नहीं रहती । जैसे आकाशके अङ्ग आकाश हैं तैसेही इसके अंग जगत्हैं और जैसे समुद्रमें तरंगसमुद्ररूपहैं; तैसेही जगत् इसकारूपहै और यह शक्तिचिदाकाशहै उससे व्यतिरेकनहीं। जब यह फुरतीहै तब जगत् आकारहोभासती है और जब शिवकी ओर आतीहै तब शिवरूप होजातीहै । और जगत्काभाव कोई नहीं रहता । इससे, हे रामजी ! तुम्हारी चित्तशक्ति जब तुम्हारी ओर आवे तब जगत्भ्रम मिटे । इसचित्त शक्तिनेही जगत्भ्रम रचाहै । शिवपूजा निर्मल और शान्तरूप है और अजर, अमर, अचेत, चिन्मात्रहै उसमें कुछक्षोभ नहीं—आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! तुमने काली के अंगकीजो सृष्टि देखीथी वह आत्मा में सत्है अथवा असत्है सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हेराम जी ! यह कालीदेवी आत्माकी क्रियाशक्ति है अर्थात् फुरनशक्ति है इससे आत्मामें सत्यहै और वास्तव में आत्मामें कुछनहीं मिथ्याहै । जैसे तुम मनोराज से अपने में दूसरी चिंतनाकरो तो वह कुछ वस्तुनहीं परउस कालमें सत् भासतीहै; तैसेही जि-

तनी सृष्टिहै सो आत्मामें कोई सत्य नहीं परन्तु चित्तशक्ति से बसती दृष्टिआती है।
जैसे कुछ विधि–निषेध पदार्थ और आकाश, पर्वत, समुद्र, वन, जगत, तीर्थ, कर्म.
बन्ध, मोक्ष, गुरु, शास्त्र, युद्ध, शस्त्रआदिक जो भासते हैं वह सब चिदाकाश ब्रह्मरूप
हैं और वास्तव में इनकाहोना ब्रह्मसे भिन्ननहीं; सर्वप्रकार और सर्वदाकाल आत्मा
अपने आपमें स्थितहै जो शुद्ध, अद्वैत, निराकार, निर्विकार और ज्योंकात्यों है उसमें
जगत् कोई नहीं उपजा। सब जगत् आत्मामें क्रिया शक्तिने रचाहै सो मायाकालमें
सत्य है वास्तव में कुछनहीं। जैसे सोनेवालेको स्वप्नेमें सृष्टि भासती है और उसके
शरीरको कोईहिलावे तो वह नहीं जागतापर जो कुछ सृष्टिहोती तो हिलानेसे उसका
कोई स्थान गिरपड़ता–इसीसे जाना जाताहै कि, किसीका नाश नहीं होता–वास्तव
में कुछनहीं। हे रामजी ! यह सृष्टि जो प्रत्यक्ष अर्थाकारहोती है उसके चित्त स्पंदमें
स्थित है परन्तु जबतक निद्राहै तबकत वह सृष्टिहै और जब निद्रानिवृत्त होतीहै तब
स्वप्नसृष्टिभी नहीं भासती तैसेही यह सृष्टिभी कुछवास्तव में नहीं अज्ञान से चित्त
शक्तिमें भासती है। हेरामजी ! सबपदार्थ चित्तके फुरनेसे भासते हैं। जिसका संकल्प
शुद्धहोताहै उसके मनोराजकी सृष्टि यदि देशकालसे प्रत्यक्ष होती है तो संकल्प रूप
होतीहै क्योंकि, कुछबनानहीं। जब संकल्प फुरताहै तब संकल्पके अनुसार सृष्टि भा-
सतीहै;इससे संकल्परूपही हुई और जो उसकी सत्यता हृदयमेंहोतीहै तब इसका अर्थ
हृदयमें अनुभवहोताहै। जैसे परलोक अदृष्टिहै पर जब उसकी सत्यता हृदयमें होतीहै
तब उसका रागद्वेष भी हृदयमें फुरताहै क्योंकि; संकल्प में उसका भाव खड़ाहै; तैसेही
जबतक चित्तस्पंद फुरताहै तबतक जगत् सबखड़ाहै। और जब चित्तनिस्पंदहोताहै तब
जगत् की सत्यतानहीं भासती। हेरामजी ! यह सबजगत् क्रियाशक्तिने आत्मामें रचा
है। जबतक यहकाली क्रियाशक्ति शिवसे व्यतिरेकहोतीहै तबतक नानाप्रकारके जगत्
रचती है और क्षोभको प्राप्तहोतीहै और जब शिवकी ओर आती है तब शान्तरूप
होजाती है;तबफिर प्रकृतिसंज्ञा उसकी नहीं रहती–अद्वैततत्त्वमें अद्वैतरूपहीहोजाती
है। जैसे जबतक पवन चलता है तबतक शीत, उष्ण, सुगन्ध, दुर्गन्ध, बड़ी और
छोटी संज्ञा होती है और जब ठहरता है तब कहा नहीं जाता कि; ऐसा है अथवा
वैसा है; तैसेही जबतक चित्तशक्ति स्पन्दरूप होती है तबतक जगत् रचती है और
प्रकृति कारणरूप कहाती है और उसमें दोप्रकारके शब्द होते हैं–विद्या और अ-
विद्या। हे रामजी ! जो कुछ कहना होता है सो स्पन्दरूप जो चित्रलिखा है उसमेंहै
और जब शिवतत्त्व में अंकुर होताहै तब अद्वैतरूप होजाती है–वहां किसी शब्दकी
गम नहीं। हे रामजी ! शिवक्या है और शक्ति क्या है सोभी सुनों। ये सब जीव
शिवरूप हैं और इनके चित्तका फुरना काली है। जबतक इच्छासे चित्तशक्ति बाहर

फुरती है तबतक भ्रमका अन्तनहीं आता और नानाप्रकारके विकारों का अनुभव होता है कदाचित् शान्ति नहीं होती और जब चित्तशक्ति उलटकर अधिष्ठान को देखती है तब जगत्भ्रम निवृत्तहोजाताहै और परमशान्तिको प्राप्तहोताहै। हेरामजी! आत्मा और चित्तसंवित् में कुछभेद नहीं। जैसे वायुके स्पन्द और निस्पन्दमें कुछ भेदनहींहोता परन्तु जब स्पन्दहोतीहै तब जानीजाती है और निस्पन्दनहीं जानीजाती; तैसेही चित्त संवित् जब फुरताहै तब जानाजाता है और नहीं फुरता तब नहीं जानाजाता और जानना और न जानना दोनोंनहीं रहतेहैं। हे रामजी! जबतक इच्छाशक्ति शिवकी ओर नहीं देखती तबतक नानाप्रकार का नृत्यकरती है अर्थात् जगत्को रचती है और जब शिवकी ओर देखतीहै तब नृत्यविरस होजाता है और सबअंग सूक्ष्महोजाते हैं। हे रामजी! इसकाली का आकार प्रमाणमें आतानथा पर शिवकीओर देखनेसे सूक्ष्म होगया। प्रथम पर्वतसमान था; फिर निकटआई तब ग्रामके समान हुआ; फिर वृक्षकेसमान रहा और जब निकटआई तब सूक्ष्म आकार होगया और शिवकेसाथ मिली तब शिवरूप होगई। शिवके सम्मिलनसे इसकाजो विलासहै सोशून्य होजाताहै और परमशान्त शिवपदकी प्राप्तिहोती है। श्रीरामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! यह जो परमेश्वरी कालीशक्तिहै सो उसको मिलकरशान्तकैसे हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवी परमात्माकी इच्छाशक्ति है और जगन्माता इसका नामहै। जबतक यह शिवतत्त्वसे व्यतिरेकरहती है तबतक जगत्को रचती और जब अपने अधिष्ठानकी ओर आतीहै जोनित्यतृप्त, अनामय,निर्विकार, द्वैतभावसे रहित परमशांतिको प्राप्तहोती है। तब इसकी प्रकृतसंज्ञा जाती रहतीहै। जैसे नदी जबतक समुद्रको नहीं प्राप्तहुई तबतक दौड़ती और शब्दकरती है परजब समुद्रको मिली तब शब्दकरना और दौड़ना नष्ट होजाता है और नदी संज्ञाभी नहींरहती—समुद्रको मिलकर परमगंभीर समुद्ररूप होजातीहै;तैसेही जबतक चित्तशक्ति शिवसे व्यतिरेक होती है तबतक जगत् भ्रमको रचतीहै और जब शिवतत्त्वको मिली तब शिवरूप होजाती है और द्वैतभ्रम मिटजाताहै। हे रामजी! जबयह चित्तशक्ति शिवपदमें लीन होजातीहै तब प्रथमजो देह और इन्द्रियोंसे तद्रूपहुई थी; इन्द्रियोंके इष्ट—अनिष्टमें आपको सुखीदुःखी मानतीथी और रागद्वेषसे जलतीथी सो नित्यतृप्त और अनामय पदके मिलेसे सुखदुःखसे रहितहोती है क्योंकि; अनात्मदेह इन्द्रियोंकी तद्रूपता का अभाव होजाताहै और आत्मतत्त्वकेसाथ तद्रूपहोती है। जैसे पत्थरकी शिलाकेसाथ मिलकर खड्गकीधार तीक्ष्ण होती है तैसेही चित्त संवित्जब आत्मपदमें मिलतीहै तबएक अद्वैतरूप होजातीहै। और आत्मपदके स्पर्शकियेसे अनात्मभाव का त्याग करती है। जैसेतांबा पारसके स्पर्शसे सुवर्ण होजाता है और फिर तांबानहीं होता

तैसेही यह वृत्ति अनात्मभावको नहीं प्राप्तहोती। चित्तकला तबतक विषय की ओरधावती है जबतक अपने वास्तव स्वरूपको नहीं प्राप्तहुई; जब अपने वास्तव स्वरूपको प्राप्तहोती है तब विषयकी ओर नहीं धावतीहै। जैसे जिसपुरुषको अमृत प्राप्तहोता है और उसके स्वादका उसे अनुभव होता है तब वह नींबपान करने की इच्छानहीं करता; तैसेही जिसको आत्मानन्द प्राप्तहुआहै वहविषयोंके सुखकीइच्छा नहींकरता। हे रामजी! यह संसार भ्रम चित्संवित्में दृढ़सत्य होकर स्थितहुआ है और संसारके सुखका त्यागनहीं करसक्ता परजब आत्मसुख प्राप्तहोगा तब त्याग देगा। जैसे किसी पुरुषको जबतक पारसनहीं प्राप्तहुआ तबतक वह और धनको त्यागनहीं सक्ता पर जब पारसप्राप्त होताहै तब तुच्छधनका त्यागकरता है और फिर यत्ननहीं करता; तैसेही जब जीवको आत्मानन्द प्राप्तहोता है तब विषयके सुखका त्यागकरता है और पानेकायत्न नहींकरता। हेरामजी! भँवरातबतक और स्थानोंमें भ्रमता है जबतक कमलकी पंक्तिपर नहीं पहुंचता पर जब उस पंक्तिपर पहुंचताहै तब और स्थानको त्याग देता है; तैसेही चित्त शक्ति जब आत्मपदमें लीनहोती है तब किसी पदार्थकी इच्छानहीं करती। निर्विकल्प पदको प्राप्तहोती है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपुरुषप्रकृतिविचारो नामशताधिकअष्टनवतितमस्सर्गः १९८॥

वशिष्ठजीबोले;हेरामजी! अबपूर्वका प्रसंगफिर सुनो। जबकाली नृत्यकरके निर्वाण होगई तब शिवअकेला रहगया वहीं मुझकोदृष्टि आवे और दोखण्ड आकाशके दृष्टि आवें—एक अधोभाग और दूसरा ऊर्ध्वभाग और कुछदृष्टि न आवे। तब रुद्रनेनेत्रों को फैलाकर दोनोंखण्ड देखे—जैसे सूर्यजगत्को देखताहै—और प्राणकोभी खैंचा तब ऊर्ध्व और अध दोनोंखण्ड इकट्ठे होगये और ब्रह्माण्डको अन्तर्मुख करलिया—एक शिवही रहगया और कुछदृष्टि न आवे। हे रामजी! जब एकक्षण व्यतीत हुआ तब रुद्रबड़े आकारको धारेहुये ब्रह्माण्डकोभी लांघगया और एक वृक्षके समान होगया। फिर अंगुष्ठमात्र शरीरहोकर एकक्षणमें सूक्ष्मअणुसा होगया; फिर रेतके कणकेसेभी सूक्ष्महोगया और फिर नेत्रोंसेदृष्टि न आवे तब दिव्यदृष्टिसे मैं देखतारहा और फिर वहभी नष्टहोगया केवल चिदाकाशही शेषरहा और दूसरीवस्तु कुछ न भासे। जैसे वर्षा कालकेमेघ शरत्कालमें नष्टहोजातेहैं तैसेही वह रुद्रभी नष्टहोगया। हेरामजी! उसकालमें मुझको तीनों इकट्ठेदीखे—एकदेवी ब्रह्माकी शक्ति; दूसरी कालीशक्ति और तीसरी शिला। तब मैंने विचार किया कि, यह स्वप्न नगरवत् आश्चर्यथा और कुछनहीं। तब मैंने क्यादेखा कि;स्वर्णकी शिलाही पड़ीहै।यह श्रेष्ठशिलाके कोशमें स्थितथी। तबमैंने विचारकिया कि; यह सृष्टि शिलाके एककोशमेंहै और सृष्टिभीहोगी क्योंकि; सर्ववस्तु

सर्वप्रकार और सर्वठौरपूर्णहै; इसलिये उसमेंभीमैं सृष्टि देखनेलगा और नानाप्रकार की सृष्टिदेखीं। जब मैं बोधदृष्टिसे देखूं तब सर्वब्रह्मही भासे। संकल्प दृष्टिसे आत्म-रूपी आदर्शमें अनन्त सृष्टिदृष्टआवें और चर्मदृष्टिसे शिलाही पड़ीदीखे। इसप्रकार मैं शिलाकोशमें चला तो वहां मुझे घास, तृण, पत्थर, फल और फूलोंमें अनन्त सृष्टिदृष्टआवें और निस्संकल्प आत्मदृष्टिसे देखूं तब अद्वैत आत्माही भासे। हेरामजी! इसप्रकार मैंने अनन्त सृष्टिदेखीं; कहीं ऐसीसृष्टि भासे कि, ब्रह्माउपजेहैं और रचना रचनेको समर्थ हुयेहैं; कहीं ब्रह्माने चन्द्रमा सूर्य उपजायेहैं और मर्यादा स्थापितकी है; कहीं संपूर्ण पृथ्वी आदिक तत्त्व उपजाये हैं पर प्राण नहींहुये; कहीं समुद्र नहीं उपजे; कहीं आचार सहित सृष्टिदृष्ट आवे; कहीं चन्द्रमा सूर्य नहींउपजे और कहीं उपजेहैं; कहीं चन्द्रमा शिव से नहींनिकले; कहींक्षीरसमुद्र मथानहींगया और अमृत नहीं निकला और लक्ष्मी, हाथी, घोड़ा, धन्वन्तरिवैद्यभी नहींनिकले; कहीं बिषऔर अमृत नहीं निकला-देवता मरतेहैं; कहीं क्षीरसमुद्रमथा है उससे अमृत निकला है; कहीं प्रकाश नहीं होता; कहीं सदा प्रकाशही रहताहै; कहीं पृथ्वीपर पर्व्वतोंके सिवा कुछ दृष्ट न आवे; कहीं इन्द्र के वज्रसे पर्व्वत कटतेहैं और उड़तेथे; कहीं प्राणियों को जरामृत्यु नहींहोता कल्पपर्यंत ज्योंकेत्यों रहते हैं; कहीं प्रलय होतीहै; कहींमेघ गर्जते हैं; कहीं संपूर्ण जलही दृष्ट आवे; कहीं आकाश दृष्ट आवे और प्राणी कोई न दीखे; कहीं देवतावों के युद्धहोतेथे; कहीं देवोंको दैत्यजीतते थे; कहीं दैत्योंको देवता जीतते थे; कहीं देवता और दैत्यों की परस्पर प्रीतिथी; कहीं बलि और इन्द्र; रुद्र और वृत्रासुरका युद्ध होताथा; कहीं मधुकैटभ दैत्य ब्रह्मा की कन्यासे उत्पन्न होतेथे, कहीं सदा प्रसन्नताही रहतीहै और तीनोंकालोंको जानते हैं; कहीं सदा शोकवान्ही रहते हैं; कहीं सतयुग का समयहै और दान, पुण्य, तप होतेथे; कहीं कलियुग का समयथा और प्राणी पापमें विचरतेथे; कहींअर्द्धयुग बीताथा; कहीं रामजी और रावणका युद्ध होताथा; कहीं रावणको रामजीने मर्दनकियाथा, कहीं रामजीको रावणने मर्दनकियाथा; कहीं सुमेरुपर्व्वत तलेहै और पृथ्वी ऊपरहै; कहीं शेषनागपर पृथ्वीहै और भूचाल से भ्रमतीहै; कहीं प्रलयकालका जल चढ़ाहै और एक बालक बटकेवृक्षपर बैठा अपने अंगुष्ठको चूसताहै सो विष्णु भगवान् हैं और कहीं ब्रह्माके कल्पकी रात्रिहै और महाशून्य अन्धकार है; कहीं कौरव पांडवकी सहायता कृष्ण करतेहैं; कहीं महाभारत का युद्धहोताहै और दोनों ओरसे अक्षौहिणी सेनानिकली है और श्रीकृष्णजी पांड-वोंकी सहायता करतेहैं; कहीं एकसृष्टि नाशहोती है और दूसरी उसीमें उसी कीसी और उत्पन्न होतीहै और उसीकासा कर्म, उसीकासा कुल, जाति और गोत्र होते हैं; कहीं उससे अर्द्धभाग मिलताहै; कहींचतुर्थभाग उसीकासा मिलताहै और कहींविल-

क्षण भागहोताहै। हे रामजी! इसप्रकार मैंने अनन्तसृष्टिदेखीं जो आत्मआदर्शमें प्रतिविम्बितहैं। जब मैं आत्मदृष्टिसे देखूं तब सब चिदाकाशही भासे और जब संकल्प दृष्टिसे देखूं तब जगत् भासे। कहीं ऐसीसृष्टि देखी जहां दशरथके पुत्र रामहैं और रावणके मारनेको समर्थहुये हैं; कहीं तुम्हारे रूपबड़े तपस्वीरहते हैं जिनके मन सदा प्रसन्न हैं। ऐसी अनन्तसृष्टि देखीं। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! मैं आगेभी ऐसाही हुआहूं अथवा किसी और प्रकारहुआहूं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई उसीकेसे; कई अर्द्धलक्षणके और कई चतुर्थभाग लक्षणवाले होतेहैं। जैसे अन्नकाबीज उसीकासा होताहै और कोई उससे विशेषभी होता है; तैसेही ये सब पदार्थ होतेहैं। हे रामजी! तुमभी आगेहोगे और मैंभी आगेहूंगा परन्तु आत्माका विवर्त्त है। जैसे समुद्रमें एकसेतरंग भी होतेहैं और विलक्षणभी दृष्टआतेहैं परन्तु वहीरूपहैं; तैसेही हमारे सदृशभी फिरहोंगे परन्तु आत्मत्व भिन्न कुछ नहीं—संकल्पसे भिन्नकी नाई विलक्षण रूपभासते हैं जैसे समुद्रमें वायुसे तरंगभासते हैं; तैसेही आत्मा संकल्पसे जगत्रूप होभासताहै। यद्यपि नानाप्रकार होभासताहै तौभी दूसरा कुछहुआ नहीं। यहजगत् चैतन्य का विलासहै और चित्तके फुरनेमें अनन्तसृष्टि भासती हैं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि बड़ेआरम्भ से भासती है परन्तु स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं; तैसेही यहजगत् आरम्भ परिणाम से कुछ बनानहीं आत्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽनन्तजगद्वर्णनंनामशताधिकाष्टनवतितमस्सर्गः १९८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार मैंने सृष्टिदेखी और फिर दृश्यभ्रमको त्याग कर अपने वास्तव स्वरूपमें स्थितहुआ। मैं अनन्त, नित्य, शुद्ध, बोध, चिदाकाश और सर्वदा अपने आपमें स्थितहूं। हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा किसीस्थानमें संवेदन आभास फुराहै—जैसे अनाजके कोठेसे एक मूठीभर निकालिये और क्षेत्रमें डारिये तो उसीसे किसीठौरमें अंकुरनिकसे; तैसेही चैतन्यमें संवेदनफुरा है और उस संवेदनसे जगत् उपजाहै। जैसे जलके दियेसे अंकुर निकलआता है, तैसेही मेरेमें सृष्टिका अनुभव होनेलगा और मैंने जाना कि, सृष्टिमुझसे फुरीहै। रामजी बोले, हे भगवन्! तुम जो आकाशरूप अपने आपमें स्थितथे उसमें सृष्टि तुमको कैसे फुरी? दृढ़बोधके निमित्त मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव तो कुछउपजा नहीं परन्तु जैसे हुईहै तैसेसुनो। मुझ अनुभव आकाश और अनन्तके किसीस्थान में संवेदनचित्त 'अहं' फुरा अर्थात् 'मैंहूं'; उस अहंभावके होनेसे मैं आपको सूक्ष्मतेज अणुसा जाननेलगा और उस अणुमें अहंकारफुरा जिसको तुम ऐसे अहंकारकहतेहो

स अहंकारकी दृढ़तासे निश्चयात्मक बुद्धि फुरी;उसबुद्धिसे संकल्प विकल्परूप मन फुरा और उसमनने प्रपंचरचा।उसमनमें देखनेका स्पंदफुरा तब चक्षु इन्द्रियांहुईं और जिसको देखनेलगा वहरूपदृश्यहुआ।फिरसुननेकी इच्छाफुरी तबश्रवण इन्द्रियहुई और वह शब्दही सुननेलगी। फिर रस लेनेकी इच्छाहुई तब जिह्वाइंद्रियहुई और वहरस को ग्रहणकरनेलगी।जबसुगन्धिलेनेकी इच्छाकी तबनासिका इन्द्रियहुई और सुगन्धिग्रहण करनेलगी और फिरस्पर्शकरनेकी इच्छासे त्वचाइन्द्रिय प्रकटहोकर स्पर्शग्रहण करने लगी।इसप्रकारमुझको ज्ञानइन्द्रियञ्जानफुरीं और उनमेंशब्द,स्पर्श,रूप,रसऔरगन्ध उदयहुई तबमैंने अपनेसाथ स्थूलवपुदेखा। जैसे कोई स्वप्ना देखताहै और उसमें अपना शरीर देखता है तैसेही मैं देखताहुआ। हे रामजी ! जिसको मैं देखनेलगा वह दृश्यहुआ और जिससे मैं देखताथा वे इन्द्रियांहुई। जब दृश्य फुरनाहुआ वह कालहुआ; जहां हुआ वह देशहुआ और ज्योंकरहुआ वह क्रियाहुई। इसप्रकार सब देशकाल पदार्थ हुए हैं सो मैंने तुमसेकहे।हेरामजी! वास्तवमें न कोईदेहहै; न इन्द्रि-यांहैं और न सृष्टिहै पर चित्तकलामें हुयेकीनाईं दृष्टआतेहैं। जैसे स्वप्नेकीसृष्टिभास-ती है। जब वह सृष्टि मुझको फुरी तब पूर्वस्वरूप मुझे विस्मरणहुआ। जैसे सुषुप्तिमें अपनास्वरूप विस्मरणकीनाईं होताहै; तैसेही मुझको विस्मरणहुयेकी नाईंभासा। तब जैसे स्वप्नेमें जाग्रत्स्वरूपका विस्मरण होताहै और जाग्रत्में स्वप्नेके स्वरूपका विस्मरणहोता है, तैसेही पूर्वका स्वरूप मुझको विस्मरणहुआ। जब शरीर और इ-न्द्रियां मुझको अपने साथभासीं तो उनमें मैंने अहंप्रत्ययकरके ओंकार शब्द उच्चार किया। जैसे बालक माताके गर्भसे उत्पन्नहोकर शब्दकरताहै,तैसेही मैंने ओं शब्द का उच्चारकिया। जैसे कोई पुरुष स्वप्नेमें उड़ता और शब्दकरता है तैसेही मैंने ओं-कारका उच्चार किया जो आदि,मध्य और अन्तसे रहित परमब्रह्महै और सर्वब्रह्मांडरूपी तरंगका आधार समुद्रहै। हे रामजी ! जब मैं आधिभौतिक दृष्टिसेदेखूं तब मुझको शिलाहीभासे और जब अन्तवाहक दृष्टिसे देखूं तब अनन्तब्रह्मांड दृष्टआवे और नानाप्रकारकी क्रिया और मर्यादा सहितभासे पर जब आत्मदृष्टिसे देखूं तब अद्वैत अपना आपही भासे। हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणोंमें मरुस्थलकीनदी भासतीहै, तैसेही मुझको सृष्टिभासे। जैसे मरुस्थलकी नदी मिथ्याहै, तैसेही ग्रहण करनेवाली वृत्ति मिथ्याहै। जैसे संवेदनमें मनन फुरताहै सोभी मिथ्याहै क्योंकि, नदी मिथ्याहै तो मननउसका सत् कैसे हो; तैसेही यहभी जीवकारूप—अवलोक मिथ्याहै और भ्रांतिकरके सत्यभासताहै। जैसे स्वप्नसृष्टि,संकल्पपर और मनोराजका नगरमिथ्याहै और कथाका वृत्तांत अनहोताही भ्रांतिसे प्रत्यक्ष भासताहै; तैसेही यहजगत् भ्रांति से सत्यभासताहै—वास्तवमें कुछनहीं पर संकल्पविलासमें बना दृष्टआताहै। हे रामजी!

जिसप्रकार मुझको सृष्टि भासी है सो सुनो। जब मेरे में पृथ्वी की धारणा हुई तब पृथ्वीमुझको शरीरहोकर भासनेलगी क्योंकि; मैंविराट् आत्माथा। उसपृथ्वीपर बन, पर्वत, नदी, समुद्र, वृक्ष, फल, फूल, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य, नाग आदिकजो स्थितहैं सो पृथ्वी मेराशरीरहुआ; पर्वत मेरेमुखहुये; सुमेरुआदिपर्वत मेरी भुजाहुईं; सप्तसमुद्र इन्द्रियहुईं; सर्वनदी मेरेकंठमें माला और बनमेरी रोमावलीहुईं; मरुस्थलकी नदी मेरेऊपर विस्तारहुये और देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, दैत्य इत्यादि मेरेमेंकीटभासे—शरीरमें जुआं लीखआदिकहैं। किसी ठौर मेरेऊपर हलचलातेहैं और बीजबोते हैं जिससे खेतीउगती है और प्राणीखाते हैं; कहीं खोदते हैं; कहींपूजाकरते हैं; कहीं समुद्रस्थित हैं; कहीं नदीचलती हैं; कहीं राजा राज्यकरते हैं और कहीं मेरे ऊपर झगड़मरते हैं एक कहताहै पृथ्वी मेरीहै और दूसरा कहताहै मेरी है—इसप्रकार ममताकरके युद्धकरते हैं। कहींहाथी चेष्टाकरते हैं; कई रुदन करते हैं; कईहास्यकरते; कहीं वृत्तिफैलाते हैं; कहीं सुगन्धहै; कहीं दुर्गंधहै; कहीं नदियांचलतीं और क्षोभकरती हैं; कहीं देवता और दैत्य मेरेऊपर युद्धकरते हैं; कहीं शीतलता से जल मेरेऊपर बरफ होजाता है। इसप्रकार इष्ट—अनिष्ट स्थान मैंने अपनेऊपर देखे और राजसी, तामसी और सात्त्विकी जितनी जीवोंकी क्रियाहोती हैं उनसबका आधारमैंहुआ। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओंकीसंज्ञा संवेदन फुरनेसेहुई है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानेपृथ्वीधातुबर्णनं नामशताधिकनवनवतितमस्सर्गः १९९ ॥

रामजीने पूंछा; हे भगवन्! तुमको जो धारणा से पृथ्वीका अनुभव हुआ और उसमें जगत् उत्पन्नहुआ वह संकल्परूपथा वा मनसे उपजाथा अथवा आधिभौतिक था? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सबजगत् संकल्परूप है और आधिभौतिक की नाईं भासताहै परन्तु केवल चिदाकाश अपने आपमें स्थितहै। वह चिदाकाश मैंहूं, न कदाचित् उपजाहूं और न नाशहोऊंगा; सर्वदा अद्वैत, अचैत्य, चिन्मात्ररूपहूं। उसके संकल्प का नाम मन है; आभास का नाम संकल्प है और उसीकानाम ब्रह्मा और इच्छाहै; उसीमें जगत् स्थितहै सो आकाशरूप है—कुछबना नहीं। हे रामजी! जिसको सत्य और असत्य कहतेहो वह शुभ—अशुभरूप जगत् मनमें स्थितहै और सर्वआकार निराकार रूपहैं; भ्रान्तिसे पिंडाकार भासते हैं। जैसे स्वप्नेमें शुभ—अशुभ पदार्थ भासतेहैं सो निराकारहैं पर भ्रांतिसे पिंडाकार भासते हैं; तैसेही वे जगत् भी निराकार हैं पर भ्रमसे पिंडाकार भासते हैं और बिचारकिये से शून्य होजाते हैं। जैसे मनोराजसे आकार रचित है, तैसेही हमारे आकार जानो—स्वरूपसेकुछ उपजेनहीं। जैसे मृत्तिकामें बालक नानाप्रकारकी सेना रचतेहैं और उस मृत्तिकाका उनको भिन्नभिन्न

भाव निश्चय होताहै; तैसेही अद्वैत आत्मामें मनरूपी बालकने जगत्कल्पाहै, वास्तव में कुछनहीं—आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे मृगतृष्णाका जलही नहीं तो उसमें डूबा किसे कहिये; तैसेही मन आप आभासरूपहै तो उसका रचाजगत् कैसे सत् हो ? हे रामजी ! सब चिदाकाशरूपहै—दूसरा कुछबनानहीं। आत्मरूप आकाशमें मनरूपी नीलताहै सो अविचार सिद्धहै और विचारकियेसे नीलता कुछबस्तु नहीं। जैसे दीपकके विद्यमान अन्धकार नहीं रहता, तैसेही विचारकियेसे मन और मन की रचना जगत् नहींरहती। मनका निर्वाण करनाही परमशांति है और कोई उपाय नहीं। हे रामजी ! जितने क्षोभहैं उनका कर्त्ता मन है और संपूर्ण शब्द अर्थ कल्पनामनसे उठती है—मनके निर्वाण हुये कोई नहीं रहती । रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर ! आप अनन्तब्रह्मांड की पृथ्वी होकर स्थितहुये सो कुछ और रूपभी हुये अथवा न हुये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मरूपी जो जाग्रत् है उसमें मैं अनन्तब्रह्मांड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ। मैं चैतन्यथा और जड़कीनाईं स्थित हुआ—वास्तवमें मैं जगत् नथा केवल चिदाकाशथा जिसमें न कुछ नानाहै; न अनाना है;न अस्तिहै; न नास्तिहै और जिसमें अहं-त्वं-इदंका अभावहै। वह केवल परम आकाश है जो आकाशसे भी निर्मल चिदाकाशहै और जो है सो सर्व शब्दब्रह्महै। जगत्के होते भी वह अरूपहै क्योंकि; कुछ आरम्भ परिणामसे नहीं बना—केवल आत्माका चमत्कार है। हे रामजी ! जहां जहां पदार्थसत्ताहै वहांवहां जगत् वस्तुहै। सर्वदाकाल, सर्वप्रकार, सर्व पदार्थोंका स्पन्दब्रह्म है; जहां ब्रह्मसत्ताहै वहां जगत्है। इसप्रकार मैंने अनन्त ब्रह्मांड को देखा। जब मैं अनन्तब्रह्मांडकी पृथ्वी होकर स्थित हुआ तो जब जलकी धारणा की तब जलरूप होकर फैला और वृक्ष,घास,फूल,फल,गुच्छे,डाल,तमाल और पत्रों में रस होकर स्थित हुआ; थंभेमें मैंहीं बलहुआ और समुद्र हुआ; नदियों के प्रवाह होकर मैंहीं बहनेलगा और उनमें गड़ गड़ शब्द करनेलगा और तरंग बुद्बुदे फेन को फैलाकर विलास किया;उसके कणके होकर मैंहीं स्थित हुआ; आकाशमें मेघहोकर वर्षता और प्राणियों को तृप्त करनेलगा। उनमें रुधिर आदि रसहोकर मैंहीं स्थित हुआ और उनकी नाड़ियोंमें मथनकरके आपही प्रवेश किया। जैसी जैसी नाड़ी होती है तैसा तैसा रस होकर मैं स्थित हुआ। रस,बीज,कफ,पित्त,मूत्र आदिक सब नाड़ियों में मैंहीं स्थित हुआ। सर्व प्राणियोंकी जिह्वाके अग्रभाग में रसहोकर मैं स्थित हुआ और अपने आपका आपसे स्वादुको ग्रहण करनेलगा और हिमालयमें बरफ होकर स्थित हुआ। हेरामजी ! मैं चैतन्य होके जड़की नाईं स्थित हुआ; बीज होकर मैंनेहीं उत्पन्नकिया और प्रलयके मेघहोकर मैंहीने नाशकिया। इसप्रकार जलहोकर स्थावर, जंगम सर्व जगत्में स्थितहुआ और सदा अपने आपमें स्थित होकर अपने स्वरूप

को न त्यागा। जैसे स्वप्नेमें जगत् अनुभवरूप है और अनहोता भासताहै; तैसेही मैं जलरूप होकर जगत्को धारता भया। हेरामजी! नानाप्रकारके स्थानोंमें मैं स्थितहुआ; फूलोंकी शय्यापर चिरकाल पर्यंत विश्राम करतारहा; गन्धहोकर फूलोंमें स्थित हुआ और मेघहोकर आकाशमें विचरा और ऐसी वर्षाकी कि,पर्वतोंपर वेगसे प्रवाह चलने लगा और मैं कणके कणके होके समुद्र और नदीमें विचरा। यह प्रतिभास चिद्अणु में मुझको हुई ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानेजलरूपवर्णनन्नाम द्विशततमस्सर्गः २०० ॥

वशिष्ठजी बोले,हेरामजी! जलके अनन्तर मैंने तेजकी भावनाकी अर्थात् तेजधारा, तब मुझमें इतने अंग उदयहुये—चन्द्रमा,सूर्य और अग्नि—और इनसे जगत्की क्रिया सिद्ध होने लगी। जैसे राजाके अंग अनुचर और हरकारे होतेहैं तैसेही तमरूपी चोर को दीपकरूपी हरकारे मारनेलगे आकाशरूपी जो मैं था इससे मेरेकंठमें तारावली-रूपी माला पड़ीथी। सूर्य होकर मैं जलको सोखता और दशोंदिशाओंको प्रकाशता रहा। आकाश जो ऊर्ध्वतासे श्याम भासताहै वह मेरे निकट प्रकाशमान होताथा; सब जगत्में मैंहीं फैलरहाथा और जहां मैं रहूं तहां से तमका अभाव होजावे। चन्द्रमा और सूर्यरूपी डब्बाहै जिसमें दिन, रात और काल,वर्षरूपी अनेकरत्न सर्वदा निकलते रहते हैं। राजसी,सात्त्विकी और तामसी क्रियारूपी कमलिनीका मैं सूर्यहुआ और सर्वदेवतों और पितरों को तृप्त करता रहा। यज्ञकी अग्नि और रत्न, मोती, मणि आदिक जो प्रकाशपदार्थ हैं उनमें प्रकाश मैंहीं हुआ। प्राणोंके भीतर मैं स्थित हुआ और प्राण—अपानके क्षोभसे अन्नको पचानेलगा। जैसे आत्माके प्रकाशसे रूप,अवलोक और मनस्कार प्रकाशतेहैं; तैसेही सब पदार्थ मेरे प्रकाशसे प्रकाशित होनेलगे क्योंकि; मैं तेजरूपथा—मानों चैतन्यसत्ताका दूसरा भाईहूं। जैसे सर्व पदार्थ आत्मासे सिद्ध होते हैं, तैसेही मुझसे सिद्धहोनेलगे। हे रामजी! राजोंमें तेज और सिद्धोंमें वीर्य मैंहीं था; बलरूप होकर जगत्को मैंहीं पुष्ट करता था; बड़वाग्निदाहक शक्ति होकर जगत्को मैंहीं नष्ट करता था और तेजवानोंमें तेज; बलवानोंमें बल मैंहीं था। तलेभी मैं था;मध्य भी मैंहींथा और चन्द्रमा सूर्यसे रहित जो स्थानहैं उनमेंभी मैंहींथा। अग्निरूपी दीपक और चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्रोंसे मध्यमंडलमें स्पष्ट मैं देखता था। हे रामजी! इसप्रकार तेजरूप होकर भीतर बाहर स्थावर जंगम पदार्थोंमें मैं स्थितहुआ पर जब बोधदृष्टिसे देखूं तब सर्व आत्माही का भानहो और जब अन्तवाहक दृष्टि से आपको विराट्रूप जानूं कि;सर्वजगत्में मैंहीं फैलरहाहूं और सर्व पदार्थ मेरेही अंग हैं। निदान तेजवानोंमें तेज और क्रोधवानों में क्रोध; यतियोंमें यती और अजीत मैं

हुआ और सर्व ओर मेरीही जयहै क्योंकि; जय उसकी होतीहै जिसमें बल और तेज होताहै—सो बल मैंहूं और तेज भी मैंहूं इससे मेरी जय है । हे रामजी ! सुवर्ण और रत्नमणिमें जो प्रकाश और रूपहै सो मैं हुआ । रामजीने पूंछा, हेभगवन् ! इसप्रकार जो आप जगत्की क्रिया अनुभव करनेलगे कि,जलरूप होकर अग्निको बुझाना और अग्नि होकर जलको जलाना इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर इष्ट अनिष्टसे होती रहीं उनको तुमने सुख दुःखसे अनुभव किया वा न किया सो मेरे बोधके निमित्त कहिये ? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! जैसे चैतन्य पुरुष स्वप्नेमें पर्वत, वृक्ष,देह, इन्द्रियां और नानाप्रकारके जड़ पदार्थ देखते हैं जो वास्तवमें उनमें नहीं हैं; केवल अनुभवरूप हैं परन्तु निद्रादोषसे वे उन्हें द्वैतकी नाईं जानते हैं और उनका राग—द्वेष अपने में मानते हैं, यथार्थमें द्रष्टाही दृश्यरूप होकर स्थित होताहै परन्तु निद्रादोषसे नहीं जान सक्ता और जब जागताहै तब स्वप्नेकी सब सृष्टिको अपना आपही जानताहै; तैसेही यह जगत् अपने स्वरूपमें नहींहै; जब बोधस्वरूपमें जागोगे तब पदार्थ भावना जाती रहेगी और सब जगत् बोधस्वरूप भासेगा । हेरामजी ! जिस पुरुषको देश,काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहित अखंडसत्ता उदय हुई है उसको ज्ञानी कहते हैं । जब यह पुरुष परमात्म अवलोकन करताहै तब सब जगत् आत्म स्वरूपही भासता है । जिस पुरुषको स्वप्नेकी सृष्टिमें पूर्वका स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ उसको अन्तवाहक कहते हैं और उसको पत्थर, जल और अग्निमें प्रवेश करने से भी खेद नहीं होताहै । हेराम-जी ! मैं जो आकाश में उड़ता फिरा और आकाश को भी लांघकर ब्रह्मांडके खप्पर पर फिराहूं सो अन्तवाहक शरीरसेही फिराहूं । जिसको अन्तवाहक शरीर प्राप्तहोता है उसको कोई आवरण नहीं रोंकसक्ता क्योंकि; सब उसके अंग होते हैं । मुझको शुद्ध आत्मामें स्वप्ना हुआ था पर पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ इससे सब जगत् मुझको अपना स्वरूपही भासता रहा और अपने संकल्पसे कल्पे अपनेही अंग भा-सते थे । जैसे कोई मनोराज से अग्नि का समुद्र रचे और उसमें स्नान करे तो वहभी होताहै क्योंकि; उसको खेद नहींहोता सब अपने संकल्पमेंही उसको भासतेहैं । अन्त-वाहक शरीरसे विराट् सबको अपनाआप देखताहै, तैसेही सब जगत् मझको अपना आपभासताथा तो खेद कैसेहो ? जैसे स्वप्नेवाला स्वप्नेमें पर्वत,नदियाँ और अग्नि देखता है सो वहीरूप है और आप भी एक आकार धारणकरके बन जाता है और पूर्व का स्वरूप उसकीप्रच्छन्नतासे भूलजाताहै और रागद्वेषसे जलताहै । मैंने तत्त्वरूप बनके जो आपको जड़रूप देखा तोमैंने आपको चैतन्यरूप देखा और जड़कीनाईं भी जाना । इसप्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण नहुआ तब मैं विराट्रूप सबको अपना अंगही देखतारहा इससे मुझे खेद कैसेहोता ? खेदतब होताहै जब अपना स्वरूप

भूलता है और प्रच्छन्न बनजाताहै, पर मैंतो बोधवान् रहा कि, मैंने स्पन्दसे सबरूप धारेहैं। हे रामजी! जिसको यह निश्चयहै उसको दुःखकहां? सुखदुःखरूप जोपदार्थ हैं सोमैंने अपने में ऐसेदेखे जैसे आदर्शमें प्रतिबिम्ब भासताहै। जिसको यहदृष्टिहो उसको दुःखकहांहै? हे रामजी! जिसको अन्तवाहक शक्तिप्राप्तहोती है वह पाताल और आकाश में जानेको समर्थहोता है और जहां प्रवेश कियाचाहे वहां जासक्ता है क्योंकि; सृष्टि संकल्पमात्रहै। हे रामजी! और कुछ सृष्टि बनीनहीं आत्माकाकिंचन ही सृष्टिरूप होकर भासता है। हे रामजी! यह सृष्टि सब ब्रह्मस्वरूपहै। हमको तो सदाऐसेही भासतीहै। जबतुम जागोगे तब तुमकोभी ऐसेही भासेगी। तुमभी अब जागेहो। उसप्रकार मैं अग्नि होकर स्थितहुआ कि, जिसकी शिखासेकालष निकलती थी। प्रकाश मैंहींहुआ और अपनेचिद्स्वरूप अनुभवमें मुझको जगत्भासे उसमें मैं स्थितहुआ। अन्धकारऔर उलूकादिभी मेरेप्रकाशसे प्रकाशतेहैं और भावरूपपदार्थ भी मैं अपनेमें जानताभया क्योंकि; भावरूपपदार्थ तब भासते हैं जबउनकारूप होता है; सो रूपवान् पदार्थ मैंहींथा इसकारण सब मेरेहीमें सिद्धहोतेथे। इसप्रकारमुझको प्रतिभा हुई॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानेचिद्रूप वर्णनन्नामद्विशताधिकप्रथमस्सर्ग्गः २०१॥

बशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने पवनकीधारणाका अभ्यासकिया तब पवनरूपहोकर बिचरनेलगा और कमलके फूलों और वृक्षोंको हिलानेलगा। तारों और नक्षत्रों का आधार भूतहुआ और वे मेरे आधारपर फिरनेलगे। चन्द्रमा और सूर्य के चलानेवालाभी मैंहींहुआ और समुद्र और नदियों के प्रवाहमेरीही शक्तिसे चलतेरहे। मनकाबड़ावेगभी मैंहींहुआ और प्राणियोंकेशरीरोंमें मेरानिवासहुआ मैंहीं प्राण, अपान, उदान, समान, और ब्यान पंचरूप होकर स्थितहुआ और सबनाड़ियोंमें मेरानिवासहुआ। सबनाड़ियोंकोरस अपना अपनाभाग मैंहीं पहुँचातारहा और हलना, चलना, बोलना, लेना, देना, सब मुझहीसे सिद्धहोताथा निदान सर्बपदार्थोंमें स्पर्शशक्ति मैंहीं हुआ और सर्व शब्द मेरेहीसे सिद्ध होतेथे। क्रियारूपी बुंदकोंमें मेघहुआ; आकाश रूपीगृह में मेरा निवास था और दशोंदिशा सब मेरेमेंही फुरीथीं। देवताओंको गन्ध से मैंहीं सुखदेता था और दीपक को मैंहीं प्रज्वलित करताथा। पक्षियों में मेरा सदा निवासथा। जैसे अग्निमें उष्णता रहती है तैसेही सबकेसुखाने और हरियावल करने वाला मैंहींहूं। हे रामजी! इसप्रकार मैं पवन होकर स्थितहुआ इसलियेरूप, अवलोक और मनस्कार सर्व पदार्थ मैंहीं हुआ और चन्द्रमा, सूर्य, तारे, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, बरुण, कुबेर, यमआदिक जगत्होकर मैंहीं स्थितहुआ। पंचभूतोंके भीतर

और बाहरभी मैंथा; प्राण-अपानके क्षोभसे जो दुःखहोता है सोमैंहीं साकार निराकाररूपहूं और रक्तपीत श्यामरंग पदार्थ सबमैंहीं हूं। पंचभूतजो चिद्अणु फुरेहैं सो उसीका रूपहै जैसे स्वप्नेकी सृष्टिसब अपनाही रूपहोती है-इतर कुछनहीं होती। हाड़, मांस, पृथ्वी होकर भूतोंमें स्थितहुआ और वायुरूप प्राण, अग्निरूप सुधा और आकाशरूप अवकाश भयाहूं। इसप्रकार मैं सर्वमें स्थितभया। मैंभी चैतन्य बपुथा और वे तत्त्वभी चैतन्यबपु थे । जैसे स्वप्नेमें जगत् आकाश रूप होता है तैसेही वेभी आकाशरूपहैं। हेरामजी। सर्वकाल,सर्वप्रकार सर्वकासर्वात्मास्थितहै दूसरा कुछनहीं। आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है इससे भिन्नजानना भ्रांतिमात्र है। यह दृष्टिज्ञानवान्कीहै पर जो असम्यक् दर्शी हैं उनको भिन्नभिन्नपदार्थ भासतेहैं। इसप्रकार मैंने संपूर्ण जगत् अपनेमेंही देखा। हे रामजी ! मैंब्रह्मरूप था इससे उसमें जगत् उत्पन्नहोते दृष्टआये और जो मैंब्रह्मसे इतरहोता तो एकतृणभी न उत्पन्नहोता। मैं जो ब्रह्मरूप था इससे सृष्टि उत्पन्नहोती है। हे रामजी ! जबमैंने बोधदृष्टिसे देखा तबआत्मासे भिन्नकुछ न दीखा और जब अन्तवाहक दृष्टिसे देखा। तब स्पन्दके कारण अणुअणु में सृष्टिभासी। जैसे जहां चन्दनकाअणु होता है वहां सुगन्ध भी होती है; तैसेही जहां जहां तत्त्वके अणुहैं वहांवहां सृष्टिभीहै। हेरामजी! एक अणु में अनन्तसृष्टि मुझको भासी। जैसे एकपुरुष शयन करता है और उसको स्वप्ने में सृष्टि भासतीहै और फिर स्वप्नेसे स्वप्नान्तर की सृष्टि देखताहै तो एकहीजीव में बहुत भासते हैं; तैसेही एकअणुसे अनेक सृष्टिहोती हैं। हे रामजी ! जो सृष्टि है सो आभासरूप है और आभास अधिष्ठानके आश्रयहोता है। सबका अधिष्ठान ब्रह्म सत्ता है जो देश और कालके प्रच्छेदसे रहित अखण्ड अद्वैत सत्ताहै। इसीसे कहाहै कि, अणुअणुमें सृष्टिहै क्योंकि; कोईअणु भिन्नबस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताहीहै; जो सर्वब्रह्म है तो सृष्टिभी ब्रह्मरूप है- इससे सब ब्रह्महीजानो। ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं। जैसेवायु और स्पन्दमें भेदनहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत्में भेदनहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगत्एकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकद्वितीयस्सर्गः २०२॥

वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! इसप्रकार जबमेरेमें सृष्टिफुरी तब मैं उनके भ्रमकोत्याग और संकल्पको खैंचकर अन्तर्मुख हुआ और अपनीजो कुटीथीउसकी ओरआया। जब मैंने कुटीदेखी तो उसमें एकपुरुष बैठा मुझको दृष्टआया। तबमैंने विचार किया कि, यहतो किंचन है; मेराशरीर कहां है ? मैंने बिचारकरके देखा कि, यह कोई महासिद्धहै। मेराशरीर इसने मृतक जानकर गिरादिया है और आप पद्मासन बांधकर दोनों टँखने पुट्ठोंके ऊपरकिये और शिर और ग्रीवासूधे कियेबैठा है। दोनों

हाथ कांधोंपर ऊर्ध्वकियेहैं—मानों कमलफूलहैं वा मानों अन्तरका प्रकाश बाहर उदयहुआहै और नेत्रमूंदेहैं—मानों सबवृत्ति खैंचलीहै। हेरामजी! इसप्रकार समाधिलगाकर पद्मासनबांधे वह आत्मपदमें स्थित बैठाथा औरउसकामुख सूर्यकीनाईं प्रकाशताथा। जैसे धुयेंसे रहित अग्नि प्रकाशताहै, तैसेही वह सिद्धप्रकाशमान स्थितथा। इसप्रकार मैंने उसको आत्मपदमें स्थितदेखा। जैसे दीपक निर्वाण स्थितहोताहै, तैसे हुउिसे स्थितदेखकर मैंने बिचारकिया कि इसेइहांहीं बैठारहनेदूं और मैंअपने स्थान सप्तर्षि लोकमें जाऊं। इसप्रकार कुटीके संकल्पको त्यागकर मैं उड़ा और उड़तेहुये मार्गमें मुझको विचार उपजा। कि;देखूं अब उससिद्धकी क्यादशाहै फिर निदान उलट करदेखा तोकुटीसहित सिद्ध वहां नहींथा क्योंकि; कुटीउसकीआधारभूतथी सोमेरेसङ्कल्पमें स्थितथी, जबमेरासङ्कल्प निर्वाणहोगया तब वह कुटीगिरपड़ी तो उसमें वह सिद्ध कैसेरहे; वहभी गिरपड़ा। हेरामजी! उसकोगिरता देखकरमैंभी उसकेपीछे हुआ कि, उसका कौतुक देखूं। निदान आगे वह चला और मैं पीछे नीचेको चला परन्तुमैं स्वाधीन चलाजाताथा और वह पराधीन चलाजाताथा। जैसे मेघसेबूंद गिरतीहै तो वहीं, ठहरती तैसेही वह चला और सप्तद्वीपके पार दशसहस्रयोजन स्वर्णकीधरती है उसपर आनपड़ा और उसी प्रकार पद्मासनबांधेहुये शीश और ग्रीवा उसीप्रकार सम ठहरे रहे क्योंकि; उसके शीश और ग्रीवाऊर्ध्वकोथे। हेरामजी! शरीर प्राणसे हलता चलताहै;जब प्राणठहर जातेहैं तब शरीर नहीं हलता चलता इसकारण उसका शरीर समहीरहा औरजैसे कुटीमें बैठाथा उसीप्रकार आसनकरके पृथ्वीपर आपड़ा। तब मेरे मनमें आया कि, इसकेसाथ कुछचरचाभी करना चाहिये परन्तु यह तो समाधिमें स्थितहै इसलिये प्रथम किसीप्रकार इसको जगाऊं। हे रामजी! ऐसा बिचारकरके मैं मेघ होकर उसके शिरपर वर्षा करनेलगा और बड़ाशब्द किया जिससे पहाड़ फटनेलगेपर उसशब्द और वर्षासेभी वह न जागा। फिरजब मैं ओले होकर उसके ऊपर वर्षा करनेलगा—जैसे पत्थरकी वर्षा होतीहै—तब ऐसी वर्षा होनेसे वहनेत्र खोलकरदेखनेलगा—जैसे पर्वतपर मोर मेघको देखनेलगे और मैं बपुत्यागकर उसकेआगे आस्थित हुआ। तब उसने समाधिखोली और उसकी प्राणइन्द्रियां अपनेस्थानमें आईं। हे रामजी! जब मुझको उसने अपने अग्रदेखा तब मैं अद्वैत भावको त्यागकर बोला, हे साधु! तू कौनहै; कहां स्थितहै; क्या करताथा और किसनिमित्त कुटीमें स्थितथा? सिद्धबोले; हे मुनीश्वर! मैं अपने प्रकृतभावमें स्थितहूं और सबकुछ कहूंगा परन्तु जल्दी मतकर—मैं स्मरण करके कहताहूं। हे रामजी! मुझसे इसप्रकार कहकर वह स्मरण करनेलगा और फिर स्मरणकरके बोला; हे वशिष्ठजी! मुझपर क्षमाकरो क्योंकि सन्तोंका शान्त स्वभावहोताहै। मुझसे तुम्हारी बड़ी अवज्ञा

हुई है परन्तु तुमक्षमाकरो—मेरा तुमको नमस्कारहै । हे रामजी ! इसप्रकार नमस्कार करके उसने निर्मल आनन्दके उपजानेवाले यह बचन कहे कि; हे मुनीश्वर ! संसार रूपी नदीहै जिसका बड़ाप्रवाहहै और कदाचित् नहीं सूखता । चित्तरूपी समुद्रसे यह प्रवाह निकलता है; जन्म मरण इसके दोनों किनारेहैं; रागद्वेषरूपी इसमें तरङ्गहैं और भोगकीतृष्णा इसमेंचक्र फिरताहै—उसमें मैंने बड़ादुःख पायाहै । हे मुनीश्वर ! अपने सुखके निमित्त देवोंके स्थानोंमें भी मैं गया; दिव्यभोग भोगे और स्पर्श आदिक जो भोग हैं वेभी सब मैंने भोगेहैं परन्तु शान्तिमुझको नहीं प्राप्तहुई और जिस सुखको मैं चाहताथा सो न पाया । जैसे पपीहा मेघकी बूंद चाहताहै और मरुथलकी भूमिका में उसको शान्तिनहीं होती; तैसेही मुझको विषयोंके सुखमें शान्ति न हुई । हे मुनीश्वर ! इसजगत् को असार जानकर मेराचित्त विरक्तहुआ है कि; इतने काल मैंने भोग भोगे परन्तु मुझको शांति न हुई । इनको असत् जानकर मैं फिरा और विचार किया कि, जो सारहो उसमें स्थित होरहूं । तब मैंने जाना कि, सार अपना अनुभवरूप ज्ञानसंवित्‌ही है—इससे मैं उसीमें स्थित हुआहूं।हेमुनीश्वर ! जितने विषयहैं वे विषरूप हैं । विषके पानकिये से मृत्युही होतीहै । स्त्री, धन आदिक सुख मोह और दुःखके देनेवाले हैं । ऐसाकौन पुरुषहै जो इनमें आया सावधान रहताहै? ये तो स्वरूप से नष्टकरनेवाले हैं । हे मुनीश्वर ! देहरूपी एकनदी है जिसमें बुद्धिरूपी एकमछली रहतीहै; जबवह शिरबाहर निकालतीहै अर्थात् इच्छा करती है तब भोग रूपी बगला इसको खाजाताहै अर्थात् आत्ममार्ग से शून्यकरता है । ये जो भोगरूपीचोर हैं जब इनका संग जीव करताहै तब वे इसको लूटलेतेहैं अर्थात् आत्मज्ञान से शून्यकरते हैं और जब आत्मज्ञानसे शून्य होता है तब जन्मोंका अन्तनहीं आता—अनेक शरीरधारताहै ।जैसे चक्रपर चढ़ीहुई मृत्तिका अनेक बासनों के आकार धारतीहै तैसेही आत्मज्ञानसे रहितजीव अनेकशरीर धारताहै पर अबमैं जागाहूं मुझको वे अब नहीं लूटसके । हेमुनीश्वर ! भोगरूपी बड़ेनाग हैं;और जो नाग हैं उनके डसेसे शरीर मृतकहोते हैं पर विषयरूपी सर्प के फुत्कारसेही मृतकहोता है अर्थात् इच्छाकरनेसेही आत्मपदसे शून्य होताहै । जब जीवको विषयोंकी इच्छासे सम्बन्ध होताहै तब उसकाक्षण क्षणमें निरादर होताहै—जैसे कदलीबनसे रहितहुआ और महावतके वशमें आया हस्तीनिरादर पाताहै । हे मुनीश्वर ! जिसशरीरके निमित्त जीव विषयोंकी इच्छाकरताहै वहशरीर भी नाशरूपहै । इसमें अहंप्रतीति करनीपरम आपदाका कारण है और अहंप्रतीति न करनी परम सुखकाकारण है । जैसे सर्प के मुखमें पड़ाहुआ दर्दुर व मच्छरखानेकी इच्छाकरता है सो महामूर्ख है । किसी क्षण काल इसकोग्रासलेगा; इससे भोगों की इच्छाकरनी व्यर्थ है और दुःखका

कारण है। हे मुनीश्वर! जब बाल अवस्था व्यतीत होतीहै तब युवाअवस्थाआती है और युवा के उपरान्त जब वृद्धावस्था आतीहै तब शरीर जर्जरी भावको प्राप्त होताहै। जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी जेठ आषाढ़में सूखजातीहै, तैसेही वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरी भावको प्राप्त होता और दुःख पाताहै। बालक अवस्था में जीव क्रीड़ा में मग्नहोताहै; यौवन अवस्थामें कामादिक सेवता और वृद्धहोकर चिन्ता में मग्न रहताहै। इसप्रकार जब यहतीनों अवस्थाव्यतीत होतीहैं तब मरजाताहै। जीवोंकी अवधि इसप्रकार व्यतीतहोतीहै और परमपदसे अप्राप्तरहते हैं। हे मुनीश्वर! यह आयुर्बल बिजलीके चमत्कारकीनाईंहै। इस क्षणभंगुर अवस्थामें जोभोगोंकी बांछाकरतेहैं वे महादुःखको प्राप्तहोतेहैं। इनमेंसुख देखकर जोकोई कहे कि मैंस्वस्थरहूंगा तो कदाचित् न होगा। जैसे जलके तरङ्गोंमें बैठकर कोई स्थित हुआचाहे तो नहीं होसकता—अवश्य मरेगा—तैसेही विषय भोगोंसे शांति सुखनहीं होता। जैसे कोई महा धूपसे तपाहुआ सर्पके फनकी छायाके नीचेबैठकर सुखकी वांछाकरे तोसुख न पावेगा पर जब आत्मज्ञानरूपी वृक्षकी छायाके नीचे बैठे तब शांत और सुखी होगा। जिन पुरुषोंने विषयोंकी सेवनाकी है वे परमदुःखको प्राप्तहोते हैं और जिन्होंने आत्मपद की सेवनाकी है वे परमानन्दको प्राप्तहोतेहैं। जैसे नदीका प्रवाह नीचे चलाजाता है, तैसेही मूर्खका मन विषयोंकी ओर धावता है। यह संसार मायामात्र है और इसमें शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती। जैसे मरुथलकी नदीके जलसे तृषा निवृत्त नहीं होती तैसेही विषय भोगसे शान्ति कदाचित् नहीं होती। जो आत्मपदसे बिमुख हैं वे विषयोंकी ओर धावते हैं और जो आत्मपदमें स्थित हैं वे विषयोंकी ओर नहीं दौड़ते। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजकर नष्ट होतेहैं और जैसे नदीका वेग समुद्रकीओर गमन करताहै पर पत्थरकी शिला गमननहीं करती; तैसेही भोगरूपी समुद्रकीओर अज्ञानरूपी नदी गमन करती है पर ज्ञानरूपी पत्थरकी शिलानहीं गमनकरती। हे मुनीश्वर! कमलमें सुगन्ध तबतक होती है जबतक सर्पके मुखका वायु नहीं लगा; तैसेही बुद्धि में विचार तबतक है जबतक चित्तरूपी सर्पके भोग और इच्छारूपी वायुनहीं लगा। जब यह लगताहै तब विचाररूपी सुगन्ध लेजाताहै और विषरूपी तृष्णाको छोड़जाताहै। बाण निशानकी ओर तब धावताहै जबधनुष और चिल्लेको त्यागताहै और त्यागेसे फिर नहीं मिलता; तैसेही आत्मारूपी चिल्लेसे जब चित्तरूपी बाणछूटताहै तब भोगरूपी निशानकी ओर धावताहै और जब जाताहै तब फिर आना कठिन होताहै—अर्थात् अन्तर्मुख होना कठिन होताहै। हे मुनीश्वर! यहआश्चर्य है कि, जो पदार्थ सुखदायक नहीं है उनकी ओर चित्त बड़ायत्न करताहै पर तो भी वे सिद्धनहीं होते और अयत्न सिद्ध आत्मपदहै उसको त्यागते हैं। जिनको यह

सुख जानताहै वे सब दुःखके स्थानहैं । जिस अपने होनेको यह भला जानताहै वह अनर्थका कारणहै । जिस देहको जीव सुखरूप जानताहै वह सर्वरोगका मूलहै । जिनको यह भोग जानताहै वे इसको दुःख देनेवाले परम रोगहैं और जिनको यह सत्य जानताहै वे सब मिथ्याहैं; जिनको यह स्थिर जानताहै वे स्थिर नहीं चलरूप हैं; जिनको यहरस जानताहै वे सब विरसहैं; जिनको बांधव जानताहै वे सब अबांधवहैं और दृढ़ बन्धन रूपहैं और जिसको यह सुख देनेवाली स्त्री जानताहै वह सर्पिणी है और परम विषके देनेवाली है जिसका काटामरजाता है फिर नहींजीता अर्थात् आत्मपदमें स्थित नहींहोता । हे मुनीश्वर ! मैं परम आपदाका कारण देहको जानता हूं। इसके निवृत्तहुये जीव परमपदको प्राप्तहोताहै । जिसपुत्र, धनआदिकको जीवसंपदा जानता है सो परम दुःखरूप आपदा हैं; इनमें सुख कदाचित् नहीं । यहवार्ता मैं सुनकर नहीं कहता; मैंने देखकर विचारकियाहै; विचार करके अनुभव कियाहै और अनुभव करके कहाहै कि; यह संसार मायामात्र है । बड़ेबड़े स्थानों में भी मैं गयाहूं परन्तु सार पदार्थ मुझको कोई दृष्ट नहीं आया । स्वर्गमें नन्दनवन आदि काष्ठरूपही दीखे; पृथ्वीमें आकर देखे तो पंचभूतही दृष्ट आये और शरीरमें रक्त, मांस, हाड़, मूत्र आदिक देखे; इससे कि; जो ऐसे शरीरमें अहं प्रत्यय करतेहैं मैं उनको धिक्कार देताहूं । शरीरकी आयुर्बल ऐसीहै जैसे दोनों हाथोंमें जल लीजिये तो बह जाता है अथवा जैसे जलमें तरंग बुदबुदे उपजकर नष्ट होते हैं वा बिजलीका चमत्कार होकर नष्ट होजाता है । जो ऐसे शरीरको पाकर सुखकी तृष्णा करतेहैं वे महामूर्ख हैं । बालक अवस्था तरंगकी नाईं नष्ट होजातीहै; यौवन अवस्था बिजलीके चमत्कारवत् छिपजाती है और वृद्ध अवस्थामें केश श्वेत होजाते हैं और दांत घिसिकर गिरपड़ते हैं । जैसे नीचे स्थानमें जल स्थित होजाताहै तैसेही सब रोग वृद्ध अवस्थामें आ स्थित होते हैं और तृष्णा दिन दिन बढ़ती जातीहै । हे मुनीश्वर ! उस समय सब पदार्थ जर्जरीभूत होजाते हैं और तृष्णा जवान होतीहै—जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी बढ़ती जातीहै—और जो सुख भोग प्राप्त होकर बिछुरजाते हैं उनका दुःख होताहै । हे मुनीश्वर ! इस प्रकार इनको असत्य जानकर मैं स्वरूपमें स्थित हुआ हूं । यदि पांचों इन्द्रियोंके इष्ट बड़ी उत्तम मूर्त्तिधारके आ स्थितहों तौभी हमको खैंचनहीं सक्ते । जैसे मूर्त्तिकी लिखी कमलिनी भँवरको नहीं खैंचसक्ती; तैसेही हम सरीखोंको विषयनहीं चलासक्ते । हे मुनीश्वर ! तुम्हारा शरीर मैंने अवज्ञा करके डालदियाहै—विचारसे नहीं फेंका । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जो त्रिकालज्ञहैं वे भी इस चर्मदृष्टिसे नहीं जानसक्ते; जब विचारसे देखते हैं तभी जानते हैं; इस कारण विचार बिना मैंने तुम्हारा शरीर फेंकदिया था । अब तुम क्षमाकरो । ज्ञानी विचारसेही भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानको जानता है; इन नेत्रोंसे तो

वही जाना जाता है कि; जो अग्रभाग में होता है विशेष नहीं जानाजाता, इस कारण मुझसे तुम्हारा शरीर गिराहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेआकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुर्थस्सर्गः २०४॥

वशिष्ठजी बोले; हे साधो! मुझसे भी तेरा गिरना विचार विना हुआ है कि, विचार विना मैं उठगया था। यह कुटी मेरे अन्तबाहक संकल्प में थी सो मैं अपने स्थानको चला इस कारण यह कुटी गिरपड़ी और तुमभी गिरपड़े। जो बीतगई सो भली हुई उसकी क्या चिन्तना कीजिये? ज्ञानवान् बीती की चिन्तना नहीं करते जो होनी थी सो भलीहुई। हे साधो! अब जहां तुम्हें जानाहै वहां जावो और हम भी जाते हैं। हे रामजी! इस प्रकार चर्चा करके हम दोनों आकाश मार्गको उड़े–जैसे पक्षी उड़ते हैं–और परस्पर नमस्कार करके हम दोनों भिन्न भिन्न होगये। वह अपने स्थानको गया और मैं अपने स्थानको चला और बहुतेरे स्थान देखता गया परन्तु मुझको कोई न जानता था। हे रामजी! यह संपूर्ण वृत्तांत जो मैंने तुमसे कहाहै उसे तुम विचारो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपने जो सिद्धके साथ समागम किया था तो आकाशमार्ग में कैसे शरीरसे किया था और पंचभौतिक शरीर तो पृथ्वीपर पड़ाथा और पृथ्वीमें अणुरूप होगया था फिर आप किस शरीर से विचरे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अन्तबाहक शरीर से मैं विचरता फिराथा और उससेही मैं सिद्ध और देवतों के स्थानों और इन्द्र, वरुण और कुबेरके स्थानों में फिराहूं परन्तु मुझे कोई न देखताथा और मैं सब को देखताथा। संकल्प पुरुष से मेरा व्यवहारहुआथा और किससे कहूं? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! अन्तबाहक शरीर तो इन्द्रियों का विषय नहीं है फिर सिद्धसे आपने चर्चाकैसेकी और उसने तुमको कैसे देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जो तुम कहते हो तो सुनो। सिद्धको मैं इस निमित्त दृष्ट आया कि, मेरासत्य संकल्प था। मुझे यह फुरना हुआ कि, सिद्ध मुझको देखे और मुझसे चर्चा करे इससे उसने मुझको देखा और उसका संकल्प भी मेरेमें आया तब जाना। जो दोनों सिद्धहैं और उनका संकल्प भिन्न भिन्न हो तो एक दूसरे के संकल्प को नहीं जानते परन्तु किसी का विशेष संकल्प हो तो वह दूसरे के संकल्प को जानता है। इससे यद्यपि उसका संकल्प मेरे देखने को न था पर मेराजो दृढ़ था इससे मैं उसके संकल्प को खैंचकर अपनी ओर ले आया। जो बली होता है उसी की जय होती है–इससे उसने मुझको देखा। हे रामजी! जो अन्तबाहक में स्थित होता है उसको तीनों कालका ज्ञानहोता है परन्तु व्यवहार में लगे तो उसे भूलजाता

है और जो वर्त्तमान पदार्थ होता है उसी का ज्ञान होता है। इसी कारण उसने मेरा शरीर डालदिया था क्योंकि;वह समाधिके व्यवहारमें लगाथा और मेरे संकल्पसे वह कुटी भी तब गिरीथी कि, जब मैं अपने स्थान के व्यवहार को ऐसी चिन्तना करके चलाथा। जो मैं चिन्तना में न होता, अन्तबाहक शरीर में होता और उस कुटीका भविष्यत् विचार उस संकल्प को रहनेदेता तो वह सिद्ध न गिरता पर मैं तो औरही व्यवहार में लगाथा इससे अन्तबाहक विस्मरण होगया जिससे वह कुटी गिरपड़ी और सिद्धभी गिरपड़ा। हे रामजी! इसप्रकार सिद्धगिरा और उससे चर्चा हुई तब मैं वहां से चला और अन्तबाहक शरीर से आकाश मार्ग में फिरने लगा। सिद्धों के समूह और देवता, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि, मुनि, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमआदि सबके स्थान देखे परन्तु मुझको कोई न देखे। मैं बड़े बड़े शब्द करूं कि, किसीप्रकार कोई शब्द सुने और मुझको देखे परन्तु मेरा शब्द कोई न सुने और न कोई देखे। जैसे स्वप्ने में कोई शब्दकरे तो उसका शब्द जाग्रत्वाला कोई नहीं सुनता और जैसे असंकल्प वाला दूसरे की सृष्टि व्यवहार का शब्द नहीं जानता था, तैसेही मुझको कोई न जानता था। हे रामजी! इसप्रकार मैं प्रथम आकाश पिशाच होकर विचरा और फिर दैत्यों के स्थानों में विचरा और मैं सब को देखूं पर मुझको कोई न देखे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पिशाचका शरीर, जाति और क्रिया कैसी होती है और उनके रहने का कौन स्थान है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पिशाचकी कथा से कुछ प्रयोजन न था तथापि तुमने प्रसंग पाकर पूछा है इससे मैं कहता हूं। पिशाच का आकार नहीं होता और जो जो रूप वे धारते हैं सो सुनो। कई तो आकाश की नाईं शून्य होते हैं और परछाहीं की नाईं भय देतेहैं; कई मेघ और कई काकरूप धारकर स्थित होते हैं। ऐसे रूपधारके वे विचरते हैं और सबको देखते और जानते हैं पर उनको कोई नहीं जानता। शीत-उष्णसे वे भी दुःखपाते हैं और इच्छा, द्वेष, लोभ, मान, मोह, क्रोध आदिक बिकार उनमें भी रहते हैं। शीतलजल और भलेभोजन की वे भी इच्छा करतेहैं और नगरों वृक्षों और दुर्गन्धस्थानोंमेंभी रहतेहैं। कहीं सियार होकर दिखाई देतेहैं और कहीं श्वान हो दृष्टआते हैं। मन में भी प्रवेशकरते हैं और मंत्र, पाठ, दानआदिक से जो वश होते हैं सोभी अपनी अपनी वासना के अनुसार होते हैं। इनमें भी उत्तम, मध्यम और नीचहोते हैं; जो उत्तम हैं वे देवताओंके स्थानों; मध्यम मनुष्यों के स्थानों और नीच नरकों के स्थानों में रहतेहैं और इनकी उत्पत्ति अचैत्याचिन्मात्र जो दृश्यसेरहितशुद्धचैतन्यहै उससे हुईहै। हेरामजी! सब का अपना आप वही चैतन्य सत्ता कल्पवृक्षकी नाईंहै, उसमें जैसीजैसी वासना होती है तैसाही तैसा पदार्थ हो भासता है। हे रामजी! न कहीं पिशाच है और न

जगत्है; ब्रह्मसत्ताही ज्योंकीत्यों अपने आपमेंस्थितहै। शुद्ध आत्मत्वमात्र में किंचन 'अहं'होकर फुराहै उसीको जीवकहते हैं। उसअहंकी दृढ़तासे मनफुराहै सोमन ब्रह्मारूपहोकर स्थितहुआ है। उसब्रह्मा ने मनोराजसे आगे जगत् उत्पन्न किया है और ब्रह्माही जगत्रूप होकर स्थितहुआ है सो ब्रह्ममें ब्रह्मस्थितहै। हे रामजी! ब्रह्माका शरीर अन्तबाहक और केवल आकाशरूपहै और उसके दृढ़संकल्पसे आधिभौतिक जगत् दृढ़हुआहै—उसीमनसे और मनहुआहै। हे रामजी! जैसे ब्रह्माका शरीर अन्तबाहकहै तैसेही सबका शरीर अन्तबाहक है परन्तु संकल्पकीदृढ़तासे आधिभौतिक भासताहै और सबमनरूपहै परन्तु दीर्घकालकास्वप्नाहै वहजाग्रत्होकर स्थितहुआ है इससे दृढ़भासताहै। जिनको संकल्प ब्रह्मशरीरमें अहंकारहै उनको जगत् आधिभौतिक भासताहै और जो प्रबोधरूप हैं उनको सबजगत् संकल्परूप है—वास्तव में कहोतो कुछउपजा नहीं, न तुमहो, न मैंहूं, न ब्रह्माहै और न जगत्है—सर्वही ब्रह्मरूप है। जैसे आकाश और शून्यतामें कुछभेदनहीं; अग्नि और उष्णतामें कुछभेदनहीं और वायु और स्पन्दमेंकुछ भेदनहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछभेदनहीं। ब्रह्मा और जगत् दोनोंअजहैं; न ब्रह्माही उपजाहै और न जगत्ही उपजाहै—दोनोंब्रह्मरूप हैं। जो ब्रह्मसे भिन्नभासताहै वह भ्रांतिमात्रहै। हे रामजी! पंचभूत और छठा मनइनका नामजगत् है। जबतक ये भूतउसमें दृष्टआतेहैं तबतक भ्रांति है और जब इनसे रहित केवल चैतन्यभासे तब उसीका नाम परमपदहै। हे रामजी! जब आत्मपद में जागोगे तब पंचभूतभी आत्मासे भिन्नभासेंगे।। सबका अधिष्ठान चैतन्य सत्ताहै; जबतक आत्माका प्रमादहै तबतक संसारभ्रम न मिटेगा। सबजगत् निराकार संकल्पमात्रहै परन्तु संकल्पकी दृढ़तासे आकाशमें स्थूलभूत दृष्टआते हैं। ज्ञानकाल और अज्ञानकाल में जगत् उपजानहीं परन्तु अज्ञानीको दृढ़भासताहै। जैसे मनोराजसे किसीनेनगर रचाहो तो वह उसीके हृदयमें है और कहीं नहीं भासता; तैसेही जबतक जीव अज्ञान निद्रामें सोया है तबतक जगत् भासता है पर जब जागेगा तब आकाशरूप देखेगा। हे रामजी! अपना संकल्प आपको नहीं बांधता। जबतक स्वरूपका प्रमाद नहीं होता तबतक ब्रह्माका संकल्प ब्रह्माको नहीं बन्धनकरता। स्वरूप भी अहं प्रत्यय से तो संकल्परूप है और दूसरी कुछबस्तुसत्यनहीं—आत्माही है वास्तवमें न जगत्का आदिहै, न मध्य है और न अन्तहै; न जगत्का होनाहै और न अनहोनाहै—आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। हे रामजी जो सर्वात्माही है तो राग—द्वेष किसकाहो? सब अपनाआपहीहै और अपनाआप जो आत्मतत्त्वहै उसका किंचन संवेदन फुरनेसे जगत्रूप होकर स्थितहुआहै। जैसे किसीपुरुषने मनोराजसे एकस्थानरचा और उसमें दृढ़भावनाहुई तो आधिभौतिक भासने लगजाताहै; तैसेही

यह जगत् भी ब्रह्माका संकल्पहै और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, रुद्र, वरुण, कुबेरआदिक सब संकल्परूप हैं पर संकल्पकी दृढ़तासे अधिभौतिक भासतेहैं। हे रामजी! आत्मा-रूपी एकनाल है जिसमें चैतन्यरूपी जलहै; फुरनरूपी कीचड़ है और उसमें चौदह प्रकारके भूतजातरूप दर्दुररहतेहैं सो सब संकल्पमात्रहैं। हे रामजी! आकाशमें एक आकाशक्षेत्र है जिसमें शिलाउत्पन्न होतीहैं। स्वर्गलोक और देवता बड़ीशिला हैं; एक उनमें उज्ज्वलशिला है सो ज्ञानवान्हैं; मध्यम शिला मनुष्यलोक है; नीचशिला तिर्यक् आदिक योनि है सो सबही निर्बीज हैं अर्थात् कारणसे रहित हैं और अद्वैत आत्मा सदा अपने आपमें स्थितहै—कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु भ्रांतिसे भिन्न भिन्न भासताहै। जैसे फेन बुद्बुदे और तरंग सब जलरूप हैं; तैसेही यहजगत् सबआत्म-रूपहै और जैसे स्वप्ने और संकल्पकी सृष्टिकारणविना होती है, तैसेही यहजगत् कारणविना संकल्पसे उत्पन्नहुआ है। जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हैं तैसेही पिशाचभी उदयहुये हैं। हे रामजी! जैसा किंचन आत्मामें होता है तैसाही होकर भासता है; वास्तव में पृथ्वी आदिक तत्त्वकहीं नहीं और न कहीं ब्रह्मा उपजा है, न कोई जगत् उपजाहै सब भ्रममात्र हैं। जितने वपु, भासते हैं वे सब निर्वपु हैं; चैतन्यतासे फुरे हैं और सब जीवों का आदि अन्तवाहक शरीर है। जैसे ब्रह्मा का अन्तवाहक शरीर था, तैसेही सर्व जीवों का अन्तवाहक शरीर होताहै परन्तु संकल्प की दृढ़ता से अ-धिभौतिक हो भासता है। सब जीवों का अपना अपना भिन्न भिन्न संकल्प है उसी के अनुसार अपनी अपनी सृष्टि होती है। जो तुम कहो कि, भिन्न भिन्न हैं तो जीव इकट्ठे क्यों दृष्ट आते हैं; चाहिये कि, अपनी अपनी सृष्टि में हों? तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे एक नगरवासी और नगर में जावे और एक नगरवासी और में आवे और दोनों जाय इकट्ठे बैठें, तैसेही सब जीव इकट्ठे भासते हैं पर उनके इ-कट्ठे हुये भी इसकी सृष्टि को वह नहीं देखता और उसकी सृष्टि को यह नहीं दे-खता। जैसे स्वप्नेमें भिन्न भिन्न भूतजात होतेहैं और अनुभव में इकट्ठे दृष्टआते हैं और एक अनुभव में भिन्न भिन्न होते हैं; एक दूसरेकी सृष्टिको नहीं जानते। जीव अन्तवाहक भूलगयाहै इससे अधिभौतिक दृढ़होरहा है। जैसा अनुभवमें अभ्यास होताहै तैसाही भासताहै। जहां पिशाच होताहै वहां अन्धकारभी होता है। जो मध्याह्न का सूर्य उदयहो और पिशाच आगेआवे तो अन्धकार होजाता है ऐसा तमरूप वह होताहै। जैसे उलूकादिकको प्रकाशमें अन्धकारहोताहै तैसेही अनेकसूर्यका प्रकाशहो तौभी पिशाचको अन्धकारही रहताहै। हे रामजी! जैसा उनमें निश्चय होताहै तैसाही भानहोताहै क्योंकि; उनका ओज तमरूप है। जैसा किसीको निश्चय होताहै तैसाही भासता है। हमको तो सदाआत्माका निश्चय है इससे हमें सदाआत्मतत्त्वका भान

होताहै। जैसे पिशाच पंचभौतिक शरीरसेरहित चेष्टाकरतेहैं तैसेहीमें पंचभौतिक शरीर से रहित आकाशमें चेष्टाकरतारहाहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकपंचमस्सर्गः॥ २०५॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूपहूँ इसलिये पंचभौतिकशरीरसे रहित अन्तवाहक शरीरसे मैं विचरतारहा परन्तुमुझको कोईनदेखे। चन्द्रमा,सूर्य और इन्द्र जो सहस्र नेत्रवाले हैं और सिद्ध, गन्धर्व, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रभी इसचर्मदृष्टिसे मुझेनदेखसकें और मैं सबको देखताफिरूं। इन्द्रके निकटजाकर मैंनेउसके अंगहिलाये परन्तु उसने मुझको नजाना। जैसे संकल्पनर किसीकोहिलावे और वहदेखे पर अधिभौतिकशरीर न हिले तैसेही उनके शरीर मेरे हिलाने से नहीं हिले। इससे मैं अतिमोहको प्राप्तहुआ कि, इतनेकाल मैं रहा और मुझको कोईदेख नहींसका। तब मैंने यह इच्छाकी कि, मुझको सब देखें। मैं तो सत्य संकल्परूप था इससेसबमुझे देखनेलगे। जैसेकोई इन्द्रजालको देखे तैसेही वे मुझको देखनेलगे। जिसने पृथ्वीपर देखा उसने पृथ्वीसे उपजा वशिष्ठजाना और मनुष्यलोक में कई जलसे उपजाजानें कि, वारम्बार वशिष्ठहै। जिनऋषीश्वरों और मुनीश्वरों ने जलसे उपजा देखा उन्होंने जाना कि, यह वारिवशिष्ठहै; कईनेवायुसे उपजा जाना और कई जानें कि, सप्तऋषियों के मध्य जो तेज वशिष्ठहै वहीहै। इसप्रकार जगत् में मुझको सब देखनेलगे और मैं सबके साथ व्यवहार करनेलगा। जब बहुतकाल इसीप्रकार व्यतीत हुआ तब सबने भावनाकी दृढ़ता से पंचभौतिक शरीर मुझको देखा और प्रथम वृत्तान्त सबको विस्मरणहो अधिभौतिकता दृढ़ होगई जैसे अज्ञान से जीव स्वप्ने के नरको अधिभौतिक देखता है, तैसेही मेरे साथ उन्होंने आकार देखा पर मुझको सदा अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय से भिन्न द्वैत कुछ न भासता था क्योंकि; मैं ब्रह्मरूप था। मेरानाम वशिष्ठ ऐसाहै जैसे रस्सीमें सर्पहोता है; मैंतो चिदाकाशरूपहूं पर औरोंको वशिष्ठ प्रतीति उपजी है। हे रामजी! तुम सरीखोंको मेरा आकार दृष्टआता है पर मुझको अधिभौतिक और अन्तवाहक दोनों शरीर चिदाकाश का किंचनभासतेहैं। मैं सदा निराकार अद्वैत रूपहूं। चेष्टा तुम्हारी और हमारी समानहै परन्तु मुझको सदा आत्मपदका निश्चयहै इसकारण मैं जीवन्मुक्त होकर विचरताहूं। अज्ञानी को क्रियामें द्वैत भासता है और हम को क्रिया में भी अद्वैत भासता है; ब्रह्माभी ब्रह्मरूप भासताहै और उसका संकल्प जो जगत्है वह भी ब्रह्मरूपहै। जैसे समुद्रमें तरंग जलरूप हैं—भिन्न कुछ नहीं, तैसेही ब्रह्ममें जगत् ब्रह्मरूप

है–भिन्न कुछ नहीं। इससे मैं चिदाकाश रूप हूं–द्वैत कुछ नहीं फुरता। जब अहं फुरती है तब जगत् द्वैतरूप होकर भासता है। जैसे अहंके फुरने से स्वप्न की सृष्टि होतीहै, तैसेही जाग्रत् सृष्टिभी होती है सो संकल्पमात्र है। ब्रह्मा और ब्रह्माका जगत् संकल्पकी दृढ़ता से अधिभौतिक की नाईं होभासता है पर बास्तव में न ब्रह्मा उपजा है और न जगत् उपजा है चिदानन्द ब्रह्म अपने आप में स्थित है और सदा एक रसहै। हे रामजी! सृष्टिकी आदि से प्रलयपर्यंत जो कुछ क्षोभ हैं उनमें आत्मा सदा एकरसहै और उसमें कदाचित् क्षोभ नहीं क्योंकि, बास्तव कुछ उपजा नहीं; जो कुछ भासताहै सो अज्ञानसे सिद्धहै और ज्ञानसे जगत् भ्रम निवृत्त होजाताहै। जैसे स्वप्न सृष्टिमें किसीको कहीं निधि भासे तो वह उसकी प्राप्तिके निमित्त यत्न करताहै पर जब जागताहै तो उसको स्वप्न जान फिर उसके पानेका यत्न नहींकरता, तैसेही जब आत्मबोध होताहै तब फिर इस जगत्में जगत्बुद्धि नहीं रहती। अज्ञानही जगत् भ्रमका कारण है और उस अज्ञानके निवृत्तका उपाय यहीहै कि, इस महारामायणका विचार करना-उसीसे संसार भ्रम निवृत्त होगा। यह संसार अविद्यासे वासनामात्रहै, जो इस को सत्यजानकर इसकी ओर धावते हैं वे परमार्थसे शून्यहैं, मूढ़हैं, कीटहैं और बानर की नाईं चंचलहैं। जिनको भोगोंमें सदा इच्छा रहती है वे नीच पशु हैं और उनको संसारसे निवृत्तहोना कठिनहै क्योंकि उनके हृदयमें सदा तृष्णा रहतीहै और वैराग्यको नहीं प्राप्त होते। हे रामजी! भोग तो ज्ञानवान् भी भोगते हैं परन्तु वे भोगबुद्धि से नहीं भोगते पर प्रवाह पतित जो कुछ प्रारब्धवेगसे प्राप्त होताहै उसको भोगते हैं और जानतेहैं कि; गुणोंमें गुण वर्तते हैं और इन्द्रियों सहित भोगको भ्रांतिमात्र जानते हैं। जो अज्ञानी हैं वे आसक्त होकर भोगते और तृष्णा करते हैं और भोगकी तृष्णासे उनका हृदय जलता है-इसीका नाम बन्धनहै। भोग दुःखरूपहैं; जो इनको सेवते हैं वे हृदयमें सदा तृष्णासे जलते हैं और उनका द्वैतरूप जगत्भ्रम कदाचित् नहीं मिटता और ज्ञानवान् सदा आत्मासे तृप्तरहते हैं इससे शान्तरूप हैं। जैसे हिमालय पर्वत में सब पदार्थ शीतल होजाते हैं तैसेही आत्मज्ञानसे हृदय शीतल होजाता है; आत्मानन्दकी प्राप्ति होतीहै और कोई दुःख नहीं रहता। जिनका चित्त सदा स्त्री, पुत्र और धनमें आसक्तहै और इच्छा करतेहैं वे महामूर्ख और नीचहैं; उनको धिक्कारहै। जिसको आत्मपदकी इच्छाहो उसको सदा सन्तोंका संग करना चाहिये और शास्त्रों को श्रवण करके विचार करना चाहिये। इस अभ्याससे आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै। हे रामचन्द्र! इस शास्त्रका विचार परमपदको प्राप्त करनेवालाहै। जो पुरुष इस शास्त्र को त्यागकर और की ओर लगते हैं वे मूर्ख हैं। बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सायंकालका समय हुआ और सर्वश्रोता परस्पर

नमस्कार करके गये और सूर्य की किरणों के उदय होने से फिर आन स्थित हुये॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेअन्तरोपाख्यानवर्णनसमाप्तिर्नाम
द्विशताधिकषष्ठस्सर्गः २०६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमको यह अन्तरोपाख्यान सुनायाहै,इसके विचारसे जगत् भ्रम नष्ट होजावेगा। ऐसे जब तुम विचारकर देखोगे तब अनन्त ब्रह्मांड आत्मा में धसते दृष्टि आवेंगे। हे रामजी! आत्मामें जगत् कुछ वास्तव नहीं हुआ इससे मिटता भी नहीं; चित्तके फुरने से भासताहै;जब चित्तका फुरना अधिष्ठानमें लीन होजावेगा तब अद्वैत तत्त्व आत्माही भासेगा। हेरामजी! अद्वैत तत्त्वमें जगत् भ्रमसे भासता है। ज्ञानवान्की दृष्टिमें सदा अद्वैतही भासताहै। जगत्, मैं और तुम सब चिदाकाश हैं आत्मासे भिन्न कुछ नहीं-आत्मसत्ताही जगत् होकर भासती है। जैसे अपना अनुभव स्वप्नेमें स्वप्नेकी सृष्टिहो भासताहै सो अनुभवरूपही है, तैसेही यह जगत् भी चिदाकाशरूपहै। यदि नानाप्रकारके विकार भी दृष्टि आते हैं तोभी आत्मसत्ता अनुस्यूत और अखण्डरूप है—आत्मसत्ता और जगत्में भेदकुछनहीं। जैसे सुवर्ण और भूषणोंमें भेद कुछनहीं होता, तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछभेद नहीं ब्रह्मही चेतनतासे जगत्रूपहो भासताहै। जैसे स्वप्ने में अपनेही अनुभवसे बहुत कुछ वृथा हो भासताहै सो अनुभवसे इतरकुछ नहीं हुये और जैसे समुद्र और तरंगमें कुछभेद नहीं; तैसेही ब्रह्म;जगत् और अनुभव तीनोंमें कुछभेद नहीं—असम्यक् दृष्टिसे भेद भासताहै, सम्यक्दृष्टिसे कोई भेद नहीं। हे रामजी! आत्मसत्तामें प्रथम आभासफुराहै सो ब्रह्मारूप होकर स्थितहुआहै वह ब्रह्मा चिदाकाशरूपहै और वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। उसीब्रह्मसत्ताने अपने भावकी नाईं त्यागा और ब्रह्मारूप होकर स्थितहुई है। फिर उसने जगत्रचा इसलिये वह जगत्भी आकाशरूप है। वास्तवमें न जगत् उपजाहै, न ब्रह्मा उपजा है और न स्वप्नाहुआ है परमार्थसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै जोशुद्ध,अनन्त,अविनाशी,अचेत चिन्मात्रहै और जगत्भी वही स्वरूपहै। हे रामजी! मैं चिदाकाशरूपहूं; न मेरेसाथ कोई आकारहै, न मैं कदाचित् उपजाहूं और न मैं कदाचित् मृतकहोताहूं। मैं नित्य,शुद्ध,अजर,अमर सदा अपने स्वभावमें स्थितहूं और अनेक विकारोंमें भी एकरसहूं। जैसे स्वप्नेमें बड़े क्षोभहोतेहैं तौ भी जाग्रत् वपुकोस्पर्श नहीं करते क्योंकि; उसमें कुछहुये नहीं आभासमात्र हैं; तैसेही जगत्की उत्पत्ति—प्रलयादिक क्षोभमें आत्मसत्ताको स्पर्श नहीं होता अर्थात् वहक्षोभसे रहितसदा अनुभवरूपहै। जिसपुरुषने ऐसे अनुभव को नहीं पहिंचाना जिससे सबकुछ सिद्धहोताहै और उसे छिपायाहै वह महामूर्ख है और आत्महत्याराहै—वह महाआपदाके समुद्रमें डूबेगा--और जिसको अपनेस्वरूप

में अहंप्रत्ययहुई है उसको मानसीदुःख कदाचित् नहीं स्पर्शकरता । जैसे पर्वतको चूहा नहीं चूर्णकरसक्ता, तैसेही उसको दुःख नहीं स्पर्शकरता । जिसको आत्मामें अहंप्रत्यय नहीं उसको शांति नहीं प्राप्तहोती। जैसे वायुगोलेमें उड़ाहुआतृण स्थिर नहीं होता,तैसेही देहअभिमानीको कदाचित् शांति नहीं प्राप्तहोती । जो अपने शुद्ध स्वरूपको त्यागकर देहसे आपको मिलाहुआ जानताहै सो क्याकरताहै ? वह मानों चिन्तामणिको त्यागकरराखको अंगीकारकरता है और शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूप को त्यागकर देहमें आत्म अभिमान करताहै । हे रामजी ! जबजीव अनात्ममें आत्म अभिमान करताहै तब आपको विकारवान् और जन्मता मरतामानना है और जब देह अभिमानको त्यागकर आत्माको आत्मामानता है तब न जन्मताहै, न मरताहै, न शस्त्रसे कटताहै, न अग्निसे दग्धहोताहै, न जलसे डूबताहै और न पवनसेसूखताहै--निराकार, अविनाशी और चिदाकाशरूपहै । हे रामजी ! यदि चेतनकीमृत्युहोतीहो तो पिताके मरेसे पुत्रभी मरजावे और एकके मरेसे सबजगत् मरजावे क्योंकि; आत्मसत्ता चेतन एक अनुस्यूतहै पर एकके मरे तो सब नहीं मरते, इससे चेतनआत्माको मृत्युकदाचित् नहीं । शरीरके काटेसे आत्मा नहीं कटता शरीरके दग्ध हुये आत्मानहीं दग्धहोता और संपूर्णविश्व भस्महोजावे तौभी आत्माभस्म नहीं होता । आत्मा नित्य,शुद्ध,अनन्त,अच्युतरूप है--कदाचित् स्वरूपसे अन्यथा भावको नहीं प्राप्तहुआ । हे रामजी ! मैं अहंब्रह्मरूपहूं अर्थात् सबमें अहंरूप निराकारअखण्डमैंहूं; न मुझको जन्महै और न मृत्युहै; सुखकीइच्छानहीं; न कुछहर्ष है, न शोकहै न जीनेकीइच्छाहै और न मरनेकीइच्छाहै । जैसे रस्सीमेंसर्प और सुवर्णमें भूषण कल्पितहैं तैसेही आत्मामेंवशिष्ठ नामरूपहै और देश, काल, वस्तुके परिच्छेदसे रहित अनन्त आत्मा; नित्य, शुद्ध और बोधरूपहूं । सर्वकास्वरूप आत्मतत्त्व है परन्तु वास्तवस्वरूपके प्रमादसे और अवस्तुको प्राप्तहुयेकीनाईं भासताहै । जो पुरुषस्वरूप में स्थितनहींहुये वे संसारमार्गकीओर दृढ़हुये हैं,उनकाजीनावृथाहै और व कहनेमात्र चैतन्य हैं, नहीं तो पाषाणकी शिलावत्हैं । जैसे लुहारकी धोंकनीसे पवन निकलता है, तैसेही उनका जीना वृथाहै । वे घड़ीयन्त्रकीनाईं बासनामें भटकते हैं, आत्मानन्द को नहीं प्राप्तहोते और सदातप्त रहते हैं । जिनको आत्मपदमें स्थितिहुई है उनको दुःख कदाचित् स्पर्शनहींकरता । यदि प्रलयकालका पवनचले और पुष्कर मेघकी वर्षाहो; वा बड़वाग्निलगे और द्वादशसूर्यतपें पर वे ऐसे क्षोभोंमेंभी चलायमान नहीं होते क्योंकि; वे सर्वब्रह्मस्वरूप जानते हैं। जैसे तृणसे पर्वत चलायमान नहींहोता, तैसेही वे बड़ेदुःखोंसेभी चलायमाननहींहोते । दुःखतबहोताहै जब आत्मासे भिन्नकुछ भासताहै पर उनको तो आत्मासे भिन्नकुछ भासताही नहीं । हे रामजी ! यहसब ज-

गत् आत्म अनुभवरूपहै क्योंकि; परमात्माका स्वरूपहै। जैसे स्वप्ने में अनुभवसे भिन्नकुछ बस्तु नहीं होती तैसेही सबजगत् अनुभवरूपहै और जो भिन्न भासताहै सो भ्रांतिमात्रहै। यहजगत् जो नानाप्रकार का भासताहै सो आत्मामें अव्यक्तरूपहै और भ्रमसे प्रकट भासताहै। जैसे आकाशमें नीलता भ्रमसे सिद्धहै,तैसेही आत्मामें जगत् भ्रमसे सिद्धहै। वास्तवमें ब्रह्मसे भिन्नकुछ नहीं; आत्मसत्ताही जगत्रूप होकर भासती है और उसमें जैसा जैसा निश्चय होताहै तैसाही अधिष्ठानरूप भासता है। जिनको कारणसे सृष्टिका अधिष्ठान दृढ़होरहा है उनकोवैसाही भासताहै; जिनको परिमाणसे सृष्टि उत्पन्न होनेका निश्चय है उनको वैसेही सत्य भासती है और माध्यमिक सत्असत्के मध्य बस्तुको मानते हैं। एक चारबाकी म्लेच्छहैं जो चारों तत्त्वोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति मानते हैं; बोधकहते हैं कि, जो कछ वस्तुहै वह बोधहै इसके अभावहुये से शून्यही रहती है—एक, अनेक, ब्राह्मण, हाथी, गौ,श्वान,घोड़ा, सूर्य्यादिकमें भिन्न२ प्रतीत होरही है पर जो ज्ञानवान् ब्राह्मणहैं वे सबमें एकब्रह्मसत्ता अनुस्यूत देखते हैं। हे रामजी ! बस्तुतो एकहै पर उसमें जैसा निश्चय जिसको हुआहै तैसाही भासताहै। जैसे चिन्तामणि और कल्पतरुमें जैसी भावना करते हैं तैसीही सिद्धहोती है; तैसेही आत्मसत्तामें जैसी भावना करते हैं, तैसाही रूपहोभासताहै। हे रामजी ! बुद्धिमानोंसे निर्णय किया है कि, सारभूत आत्मसत्ताही है; जब उसमें दृढ़अभ्यास करोगे तब आत्मसत्ताही भासेगी और फिर उस निश्चयसे चलायमान न होगे। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जगत्, पाताल, भूतल और स्वर्गमें बुद्धिमान् कौन हैं जिनको पूर्वापर के विचारसे पारावारका साक्षात्कार हुआ है और आत्मस्वरूपका वे कैसे निश्चयकरतेहैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जितनाजगत्है सबइन्द्रियोंके विषयोंकी तृष्णासेजलताहै और इष्टकी प्राप्ति में हर्ष और अनिष्टकी प्राप्ति में शोक करताहै। ऐसाकोई बिरलाही है जो जगत्में सूर्यकी नाईं प्रकाशता है; नहीं तो सबतृणवत् भोगरूपी वायुमें भटकते हैं और जो सबमें श्रेष्ठकहाताहै वह भी विषयरूपी अग्निमें जलता है। जैसे कृमि अशुभस्थानों में रहतेहैं और उनसे आपको प्रसन्नमानते हैं, तैसेही देवताभी सदाभोगरूपी अपवित्र स्थानोंमें आपको प्रसन्नमानतेहैं सो मेरेमतमें दुर्गन्धि के कृमिहैं। गन्धर्व तो मूढ़हैं उनको तो कुछसुधि नहीं अर्थात् आत्मपदकी गन्धिभी नहीं—वे तो मेरे मतमें मृग हैं। जैसे मृगको राग में आनन्द होताहै, तैसेही गन्धर्वरागसे उन्मत्तरहते हैं और आत्मपदसे विमुख हैं। विद्याधरभी मूर्ख हैं क्योंकि; वे वेदके अर्थरूपी चतुराई को अग्नि में जलाते हैं और वेद के सारभूत अमृतको नहींजानते इसलिये आत्मपदसे विमुख हैं। सिद्ध मेरेमत में पक्षीहैं जो पक्षीकीनाईं उड़ते फिरतेहैं और अभिमानरूपी पवनके चलनेसे अना-

त्मरूपी गढ़ेमें आनपड़ते हैं अपने वास्तवस्वरूपमेंस्थित नहींहोते यक्षधनके अभिमान से मूर्खकी प्रीतिकर जलते हैं और आत्मपदमें स्थिति नहींपाते। योगिनीभी मदसे सदा उन्मत्तरहतीहै इससेआत्मपदमें स्थिति नहीं पाती और दैत्योंकोभी सदा देवताओंके मारनेकी इच्छारहतीहै इससे सदाशोकमेंरहते हैं और आत्मपदसे विमुख हैं। तुमतो आगेसेभी जानतेहो और आगेभी माराथा और अब भी मारोगे । मनुष्यभी आत्मपदसे गिरेहुयेहैं क्योंकि--सदा यही इच्छारहतीहै कि गृहबनाइये और वे खाने और धनइकट्ठे करनेके निमित्त जगत करतेहैं और इन्द्रियोंके विषयोंमें डूबेहुये हैं। पातालमें नागरहते हैं जिनका जलमेंभी निवास है वे सुन्दर नागिनियों में आसक्तरहतेहैं इसलिये वे भी आत्मानन्दसे गिरेहुये हैं । निदान जितने भूतप्राणी हैं वे सब विषयोंके सुखमें लगेहुये हैं और आत्मपदसे विमुखहैं। सबजातों में बिरलेजीवन्मुक्तभी हैं और ज्ञानवान्भी हैं--उन्हेंसुनो । देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सदा आत्मानन्दमें मग्न हैं और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्मराज, वरुण, कुवेर, बृहस्पति, शुक्र, नारद, कच आदि जीवन्मुक्त पुरुषहैं। सप्तऋषि और दक्षप्रजापति, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, और सनातन जीवन्मुक्तहैं और २ भी बहुत मुक्त हैं। सिद्धोंमें कपिलमुनि; यक्षोंमें विद्याधर और योगिनी और दैत्योंमें हिरण्यकशिपु; प्रह्लाद, बलि, विभीषण; इन्द्रजीत, स्वरमेय, चित्रासुर, नमुचिआदिक जीवन्मुक्तहैं। मनुष्योंमें राजर्षि और ब्रह्मर्षि और नागोंमें शेषनाग; वासुकि नाग आदिक जीवन्मुक्त हैं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोकमें कोईकोई बिरलेजीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! जात जातमें जो जीवन्मुक्त हुयेहैं सो तुमसे संक्षेपसे कहे हैं और जहां जहां देखता हूं वहां वहां अज्ञानीही बहुतहैं ज्ञानवान् कोई बिरलादृष्टि आताहै । जैसे सबजगह और वृक्षबहुतहैं परन्तु कल्पवृक्ष कोई बिरला होताहै, तैसेही संसारमें अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं; ज्ञानीकोई बिरलाहै । हे रामजी ! शूरमा और कोई नहीं, जिनकी आत्मपदमें स्थिति हुई है वही शूरमाहैं और संसार समुद्र तरनाउनहीं को सुगमहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमुक्तसंज्ञावर्णनंनामद्विशताधिकसप्तमस्सर्गः २०७॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष विरक्त चित्त हैं और जिनकी स्वरूप में स्थिति हुईहै उनके राग, द्वेष, काम, क्रोध मोह, अभिमान, दंभ आदिक विकार स्वाभाविक नष्टहोजाते हैं। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार स्वाभाविक निवृत्तहोजाता है और जैसे बाणको देखकर कौवाभागजाता है तैसेही विवेकरूपी बाणको देखकर विकार रूपी कौवेभागजाते हैं। विवेकी पुरुषोंके हृदयमें इतने गुण स्वाभाविक आन स्थित होते हैं कि; वे किसी पर क्रोधनहींकरते और जो करतेभी दृष्टि आते हैं--सो किसी निमित्तमात्र जानना, उनके हृदय में सदा शीतलता और दया रहती है और

जोकोई उनके निकट आताहै वहभी शीतल होजाता है क्योंकि; वे निरावरण स्थित हैं। जैसे चन्द्रमा के निकट गयेसे शीतल होताहै तैसेही ज्ञानवान् के निकट आयेसे हृदय शीतलहोता है और कोई पुरुष उनसे उद्वेगवान् नहीं होता। जो कोई निकट आताहै उसको वे विश्रामके निमित्त स्थान देते हैं और उसका अर्थभी पूर्ण करतेहैं। जैसे कमलके निकट भँवराजाताहै तोवे उसको विश्रामका स्थान देतेहैं और सुगन्ध से उसका अर्थ पूर्णकरते हैं; तैसेही सन्तजन अर्थ पूर्ण करते हैं। वे यथाशास्त्र चेष्टा करते हैं और हेयोपादेयकी विधिकोभी जानते हैं। जो कुछ उन्हें स्वाभाविक प्राप्तहो उसको वे शास्त्रकी विधिसहित अङ्गीकारभी करते हैं और हृदयमें सर्वकी भावना से रहित हैं। उन में दान, स्नान आदिक शुभक्रिया स्वाभाविक होती हैं और उदारता, वैराग्य, धैर्य्य,शम, दम आदिक गुण स्वाभाविक होते हैं। वे इसलोकमें भी सुख देनेवालेहैं और परलोकमेंभी सुख देनेवाले हैं। हे रामजी! जिन पुरुषोंमें ऐसेगुण पाइये वेही संतहैं। जैसे जहाजके आश्रयसमुद्रसे पारहोतेहैं, तैसेही संसार समुद्रके पारकरनेवाले सन्तजनहैं। जिनको संतजनोंका आश्रयहुआ है वेहीतरेहैं। संतजन संसार समुद्रके पारके पर्वतहैं। जैसे समुद्रमें बहुतजल होताहै तो बड़ेतरंग उछलते हैं और उसमेंबड़े मच्छररहतेहैं परजब उसका प्रवाह उछलताहै तब पर्वत उसप्रवाहको रोकताहै और उछलने नहींदेता तैसेही चित्तरूपी समुद्रमें इच्छारूपी तरङ्ग हैं और राग–द्वेषरूपी मच्छररहतेहैं;जब इच्छारूपी तरङ्गकाप्रवाह उछलताहै तबसन्तरूपी पर्वत उसको रोकते हैं। सन्तजन अपने चित्तको भी रोकते हैं और जो उनके निकट कोईजाताहै तो उसकीभी रक्षाकरते हैं। यदि शरीरनष्टहोनेलगे अथवा नगर नष्ट होनेलगे वा निकट अग्निलगे तौभी ज्ञानवानोंका हृदय स्वरूपसे चलायमान नहीं होता; वे सदा अपनेस्वरूपमें स्थिररहते हैं। जैसे भूकम्पसे सुमेरु चलायमान नहीं होता; तैसेही वेभी चलायमान नहीं होते। यह जो मैंने तुमसे शुभगुण स्नान, दान आदि कहेहैं सो जीवोंको सुख देनेवालेहैं और दुःखको निवृत्त करनेवालेहैं। इनसे सुखकी प्राप्ति होतीहै और दुःखनष्ट होजाता है। जबस्नान दानकी ओर मनुष्य आताहै तब संतोंकी संगतिमेंभी उसकाचित्त लगताहै और जब संतोंकी संगति में चित्तलगा तब क्रमसे परमपदकी प्राप्ति होती है इससे मनुष्यको यही कर्त्तव्य है कि, शास्त्रके अनुसार शुभगुणोंकी चेष्टाकरे और सन्तोंके निश्चयका अभ्यासकरे। हे रामजी! जिसको संतोंकी संगति प्राप्तहोती है वहभी संत होजाताहै। सन्तोंका संग वृथानहीं जाता। जैसे अग्निसे मिलापदार्थ अग्निरूप होजाता है; तैसेही संतों के संगसे असन्तभी संतहोजाता है और मूर्खोंकी संगतिसे साधुभी मूर्ख होजाता है। जैसे उज्ज्वलवस्त्र मलके संगसे मलीन होजाता है तैसेही मूढ़के संगकरनेसे साधुभी

मुढ़ होजाता है क्योंकि; पापके वशसे उपद्रवभी होते हैं इसीसे पापकेवश साधुकोभी दुर्जनोंकी संगतिसे दुर्जनताआनि उदयहोतीहै । इससे, हे रामजी ! दुर्जनकी संगति सर्वथात्यागनी चाहिये और संतोंकी संगति कर्त्तव्य है । जो परमहंससंत मिले और जो साधुहो और जिसमें एकगुण भी शुभहो उसकाभी अंगीकार कीजिये परन्तु साधुके दोष न विचारिये-उसका शुभगुणही अंगीकार कीजिये । जैसे भँवरा केतकी के कंटकों की ओर नहीं देखता, उसकी सुगन्ध को ग्रहणकरता है । इससे हे रामजी ! संसारमार्गको त्यागकर संतोंकी संगतिकरो तब संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तव्यवहारोनाम
द्विशताधिकाष्टमस्सर्गः २०८ ॥

रामजीने पूछा; हे भगवन् ! हमारेदोष तो सत्शास्त्र; सत्संग और उनकी युक्ति से और समान दुःख तीर्थ, स्नान, दान, जप और पूजासे निवृत्त होते हैं पर और जीव जो कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदिक हैं उनके दुःख कैसे निवृत्तहोंगे ? वशिष्ठजी बोले;हे रामजी ! जो वास्तवसत्ताहै उसीकानामब्रह्महै और वह अखण्ड अद्वैतहै,उस में कुछ द्वैतका विभागनहींहै परन्तु उसमें जो चित्त किञ्चन आभासफुराहै सो फुरनाही नानात्व हुयेकीनाईं स्थितहुआ है वास्तव में कुछ हुआनहीं । जैसेस्वप्नेमें स्वप्नेकी सृष्टि भासतीहै परन्तु वास्तव कुछहुईनहीं निद्रादोषसे भासतीहै,तैसेही जाग्रत् सृष्टि भीकुछ वास्तव नहींहुई अज्ञानसे जीवोंको भासतीहै । वास्तवमें सब ब्रह्मरूप है पर अपने स्वरूपके प्रमादसे जीवत्वभावको अंगीकार किया है । उस अंगीकार करने और अनात्म देहादिकमें आत्म अभिमान करके जैसा निश्चयकरता है तैसीहीगति पाताहै । देश,काल, क्रिया और द्रव्यका जैसा संकल्प अनुभव सत्तामें दृढ़होता है तैसाही भासता है । उसमें चार अवस्था कल्पित होती हैं और जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार अवस्थाका अनुभव होताहै । वे चार अवस्था ये हैं-एकघन सुषुप्ति; दूसरी क्षीणसुषुप्ति; तीसरी स्वप्नअवस्था और चौथी जाग्रत् । पर्वत और पाषाण घन सुषुप्तिमें हैं । जैसे सुषुप्ति अवस्थामें कुछ नहींफुरता, जड़ीभूत होजाता है; तैसेही इसको कुछ फुरना नहीं फुरता-घन सुषुप्तिमें स्थित है । वृक्ष क्षीणसुषुप्ति में स्थितहै । जैसे क्षीणसुषुप्तिमें कुछ फुरना फुरताहै,तैसेही वृक्षोंमेंभी फुरनाहोताहै इससे वे क्षीण सुषुप्तिमें हैं । तिर्यक् जो पक्षी,कीट, पतंगआदि जीव हैं वे स्वप्न अवस्था में स्थित हैं । जैसे स्वप्नेमें पदार्थ भासताहै परन्तु दृढ़समष्टि नहीं भासता तैसेही इनको थोड़ा सूक्ष्म ज्ञानहै इससे वे स्वप्नअवस्थामें स्थितहैं । मनुष्य और देवता जाग्रत्रूप जगत्का अनुभव करतेहैं । हे रामजी ! यह चारो अवस्था आत्मामें स्थितहैं और आत्मसत्ताहीमें स्थितहैं । सबका अहंप्रत्ययरूप आत्माहै-बड़ेका क्या और छोटेका

क्या। उसमें जैसा संकल्प दृढ़ होताहै तैसाही हो भासताहै। हे रामजी ! हमको एक दिन व्यतीत होताहै और चींटीको उसीमें युगका अनुभव होताहै; हमको जो सूक्ष्म अणुहोता है उनको वही पर्वतकेसमान भासताहै। हे रामजी ! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है परन्तु भावनासे भिन्न २ भासताहै। एक कीटहै जो बहुत सूक्ष्महै, जब वह चलताहै तब जानताहै कि, मेरागरुड़कासा वेगहै और उसको वहीसत्हो रहाहै बालखिल्यका अंगुष्ठप्रमाण शरीरहै उनको वही बड़ा भासताहै और विराट्को वही अपनाबड़ा शरीर भासताहै। निदान जैसी जिसको भावना होती है तैसाही उसको भासताहै। मनुष्य,देवता,पशु,पक्षी सबका अपना२ भिन्न भिन्न संकल्पहै; जैसा संकल्प किसी को दृढ़ होरहा है उसको तैसाही स्वरूप भासताहै। जैसे मनुष्य राग,द्वेष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक आदि विकारों में आसक्त होता है, तैसेही कीट, पतंग, पक्षी आदि को भी होता है परन्तु इतना भेदहै कि; जैसे हमको यह जगत् स्पष्टरूप भासता है, तैसे उनको नहीं भासता। संसारी सब है परंतु वासना के अनुसार न्यून अधिक भासता है और दुःखका अनुभव स्थावर जंगम को भी होता है। जब किसी स्थान में अग्निलागती है और उसमें वृक्ष और पाषाण जलते हैं तब उनको भी दुःख होता है परन्तु सूक्ष्म स्थूल का भेद है। जैसे और जीवके शस्त्रप्रहार किये से शरीर नष्ट होने का दुःखहोता है, तैसेही वृक्षादिक को भी होताहै परन्तु घनसुषुप्ति; क्षीण सुषुप्ति और स्वप्न जाग्रत्का भेद है। पर्वत पाषाण को सूक्ष्म दुःख होता है; वृक्षको पाषाण से विशेष होता है परन्तु स्पष्ट मान और अपमानका दुःख नहीं होता, स्वप्ने की नाईं होता है। मनुष्य और देवताओं को स्पष्टराग–द्वेष जाग्रत् की नाईं होताहै क्योंकि; वे जाग्रत् अवस्था में स्थित हैं और वृक्ष, पाषाण आदिक को स्पष्टदुःख का विकल्प नहीं उठता क्योंकि, वे जड़ता स्वभाव में स्थित हैं पर दुःख तो सब को होता है। और आश्चर्य देखो कि, कीट महादुःखी रहते हैं; जब वे मृतक होते हैं तब सुखी हो हैं। अज्ञानसे जो इसशरीर में आस्थाहुई है उसकोभी मरना बुरा भासताहै तो और जीवको भला कैसे न लगे। हे रामजी ! अपने स्वरूप के प्रमाद से भय,क्रोध,लोभ,मोह,जरा, मृत्यु, क्षुधा,तृषा, राग, द्वेष, हर्ष, शोक, इच्छादिक विकारों की अग्निसे जीवजलते हैं; आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते और घड़ीयंत्रकी नाईं वासना के अनुसार भटकते हैं। जब वासना दृढ़ पापकी होतीहै तब जीव पाषाण और वृक्षयोनि पाते हैं औ जब क्षीणवासना तामसी होती है तब तिर्यक् पक्षी,सर्प और कीटयोनि पातेहैं। हे रामजी ! राजसीवासना से जीव मनुष्य होते हैं और सात्विकी वासना से देवता होते हैं पर जब मनुष्य शरीर धारकर निर्वासनिक होतेहैं तब क्रपातेहैं। जब ज्ञान उत्पन्नहोताहै तब जीवों

के दुःख नष्ट होजाते हैं; दुःख के नाशकरने का और कोई उपाय नहीं। यह जगत्के दुःख तबतक भासते हैं जबतक आत्मज्ञान नहीं उपजा; जब आत्मज्ञान उपजता है तब जगत्भ्रम सब मिटजाता है। मुझसे पूछो तो वास्तव में न कोई देवता है; न मनुष्य है; न पशु है; न पक्षी है; न पाषाण है; न वृक्ष है और न कीट है; सब चिदाकाशरूप हैं दूसरा कुछ नहीं बना भ्रांति से नानास्वरूप हो भासता है और सदा सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्मसत्ता आपमें स्थित है। हे रामजी! न कुछ जगत्का होना है; न अनहोना है; न आत्मता है; न परमात्मता है; न मौन है; न अमौन है; न शून्यहै; न अशून्य है केवल अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है और उसमें जन्म और जन्मांतर भ्रमसे भासते हैं। जैसे स्वप्ने से स्वप्नांतर भ्रमसे भासता है और जैसे स्वप्ने में एक अपनाआप होता है और निद्रा दोषसे द्वैतभासता है; तैसेही अबभी आत्मा अद्वैतरूप है पर अविचारसे नानात्वभासता है। दुःखभी अज्ञानसे भासता है विचारकिये से दुःख कुछ नहीं। जो मृतक होकर उत्पन्न होताहै तो शांति हुई दुःख कोई नहीं और जो मृतक होकर शांतहोजाता है उपजता नहीं तौभी दुःख कोईनहीं मुक्तहुआ; जो मरता नहीं तौभी ज्योंका त्यों हुआ दुःख कोई नहीं हुआ और जो सर्व चिदाकाश है तौभी दुःख कोई न हुआ। हे रामजी! अज्ञानी के निश्चयमें दुःख है पर विचारकिये से दुःख कोई नहीं। यह जगत् आत्मरूपी आदर्शमें प्रतिबिम्बित है परन्तु यह जगत्रूपी कैसा प्रतिबिम्ब है जो अकारण रूप है इसका कारणरूप बिम्ब कोई नहीं कारणसे रहित है। जैसे नदी में नीलता का प्रतिबिम्ब पड़ताहै सो अकारणरूप है, तैसेही यह जगत् अकारणरूप है। अज्ञानीको प्रमाद दोष से उसमें सत्यता है और ज्ञानी को द्वैत नहीं भासता—अज्ञानी को द्वैतभासता है। हे रामजी! हमको तो सदाचिदाकाश हो भासता है—हम जागे हुये हैं इससे द्वैत कुछ नहीं भासता। जैसे सूर्यको अन्धकार नहींभासता तैसेही हमको द्वैत नहींभासता। जो ज्ञानी है उसको ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं भासता उसे सर्व ब्रह्मही भासताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थरूपबर्णनं
नामद्विशताधिकनवमस्सर्गः २०९॥

श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! जोकुछ तुमनेकहाहै सोतो मैंनेजाना परन्तु नास्तिकवादीका कल्याण किसप्रकार होताहै क्योंकि; वे कहते हैं कि, जबतक जीवहै तबतक सुखकरे और जब मरजावेगा तब भस्मीभूत होवेगा; न कहींआनाहै, न कुछजानाहै? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! आत्मसत्ता आकाशकीनाईं अखण्डित सर्वत्रपूर्ण है; जब तक उसका भाननहीं होता तबतक मनकीतपता नहींनष्टहोती। जब आत्मसत्ताका भानहोताहै तब शांति प्राप्तहोती है और आपको अमर जानताहै। जिसपुरुषने अ-

खंडनिश्चय अंगीकारकिया है उसको दुःखस्पर्श नहींकरता—वह ब्रह्मदर्शी होता है और जिसको ब्रह्मसत्ता का निश्चय नहीं हुआ उसको मनकेताप नहीं छोड़ते और स्वरूपके प्रमादसे आपकोमरता जानता है पर महाप्रलयरूप आत्मामें सर्व शब्द का अभाव है। जैसे महाप्रलय में सर्व शब्दों का अभाव होता है; तैसेही आत्मामें सर्व शब्दों का अभाव है। जिसको आत्मामें निश्चय हुआ है उसको सर्व शब्दों का अभाव होजाता है और वह महाज्ञानवान् है उसको आत्मसत्ताही भासती है। जो वास्तवहै उसको हमारे उपदेशकी आवश्यकता नहीं—वह ज्ञानी है। हे रामजी! आत्मसत्तामें द्वैतजगत् कुछनहींबना; परमार्थसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें जो सृष्टि भासतीहै सो स्वप्नवत् अकारणहै इसलिये ज्ञानवान्पुरुष सर्वशब्द्अर्थोंको नहींजानता है। ऐसापुरुष हमारे उपदेशके योग्यनहीं क्योंकि; सर्वशास्त्रोंका सिद्धान्त आत्मपदहै जो उसको जानताहै उसको फिर कर्त्तव्य कुछनहीं रहता। जिसको ऐसी दशा नहीं प्राप्तहुई वह उपदेशका अधिकारीहै। यहजगत् आत्माका किंचनहै अज्ञानीको सत्य भासताहै और ज्ञानीके निश्चयमें कुछनहीं। जैसे किसीने संकल्पसे एक वृक्षरचाहो तो उसके पत्र,टास,फूल,फल उसको भासतेहैं पर औरकेमनमें शून्य होतेहैं, तैसेहीअज्ञानीके निश्चयमें जगत्होताहै और ज्ञानीके निश्चयमें बिलास औरआत्मासे भिन्न कुछनहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सर्वत्र और सर्वव्यापीहै; उसमें जैसानिश्चय फुरना होताहै तो अहंप्रत्ययभावनाकी दृढ़तासे तैसेही भासताहै। जिसपदार्थका निरंतर दृढ़अभ्यास होताहै तो शरीरके त्यागेसे भी वहीअभ्यासरूप धारणकरलेताहै पर आत्मसत्ता ज्ञानमात्र है और केवल अद्वैतसंवित् सबका अपना आपहै। जिसको स्वरूपकाज्ञान होताहै सो शास्त्रोंके दंडसे रहितहोताहै। वेद और शास्त्र जिसपदार्थका भला, बुरा, सच वा झूठ वर्णन करते हैं उसमें जिसपुरुषको निश्चय होताहै उसको वासनाके अनुसार वे फल देतेहैं और जिसके निश्चय में आत्मासे भिन्न सर्व शब्द का अभाव होताहै उसको आत्म अनात्म विभाग कलना भी नहीं रहती—देहरहे अथवा न रहे। हे रामजी! जिसकी संवित् जगत्के शब्द-अर्थमें बँधीहुई है उसको पदार्थों में रागद्वेष उपजताहै। जैसे सुषुप्तिमें भी आत्मसत्ताहै पर अभावकी नाईं स्थितहै; तैसेही नास्तिकबादी भी अपने जड़स्वरूपको देखते हैं क्योंकि; उनको जड़ शून्यताकाही अभ्यासहै और उसीसे उनकी सम्पत्ति दृश्य सुखसे बंधीहुई है इससे उनका जगत् भ्रम नहीं मिटता। उस मलीन वासनासे जो संवित् मिली है इससे उनको जड़ पत्थररूप प्राप्त होते हैं। उस जड़ताको भोगकर वे वासनाके अनुसार फिर सुख भोगेंगे। उस भावनासे कुछ जगत्भान शून्य होजाताहै पर कुछकाल पीछे चैतन्य होकर फिर उन्हीं कर्मोंको भोगतेहैं। जैसे सूर्य्यके आगे बादल आवे और फिर निवृत्तहो, तैसेही जगत्

होताहै। फुरनरूप जो जीवहै उसमें जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासताहै। जिसको एक आत्मामें निश्चय होताहै सो जन्म मरण आदिक विकारसे रहित होता है और जिसको नानास्वरूप जगत्में निश्चय होताहै सो जन्म मरणसे नहीं छूटता। हे रामजी! जिसकी बुद्धिमें पदार्थोंका रंग चढ़ताहै वह रागद्वेषरूपी नरकसे मुक्तनहीं होता और जिसको एक आत्माका अभ्यास होताहै उसको अभ्यासके बलसे सब जगत् आत्मत्वसेही भासताहै और वह रागद्वेषसे मुक्त होताहै। जैसे स्वप्नेमें किसीको अपना जाग्रत्स्वरूप स्मरण आताहै तब वह स्वप्ने के सर्व जगत्को अपना आप देखता है, तैसेही जिसको आत्मज्ञान होताहै उसको सर्व जगत् अपना आपही भासताहै। सर्वदा काल आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योतिहै; जिसको ऐसी आत्मसत्ता में नास्तिभावना होतीहै वह ऐसी अवस्थाको प्राप्त होता है कि, गढ़े में कीट होता है; पाषाण, वृक्ष, पर्वत आदिक स्थावर योनिको प्राप्त होताहै और उनमें चिरकाल पर्यंत रहताहै। जब तक उसकी बुद्धिको द्वैतका संयोग होताहै तबतक वह जगत् भ्रम देखताहै--औरभ्रम नहीं मिटता पर जब उसकी संवित्को द्वैतका संयोग मिटजावे तब जगत् भ्रम निवृत्त होजाताहै। हेरामजी! सम्यक्ज्ञानसे जगत्के भ्रमका अभाव होजावेगा। अभावका निश्चय फुरे तब फिर जगत् नहीं भासता और जब संसारके पदार्थोंसे संवित् बँधीहुई है तब जैसा निश्चयहोगा तैसाही प्राप्तहोगा और उसी निश्चयके अनुसार गतिपावेगा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! नास्तिकवादीका वृत्तान्त तो तुमने कहा सो मैंनेजाना पर जिसपुरुषके हृदय में जगत्की सत्यता स्थित है और जो आत्मबोधके मार्गसे शून्यहै और शुद्धस्वरूपको नहींजानता उसके मोक्षकी क्या युक्तिहै और उसकी क्याअवस्था होतीहै—मेरेबोधके दृढ़के निमित्तकहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसका उत्तरमैंने प्रथमहीं तुमसे कहा है परअब फिर तुमने जो पूछाहै इससे फिरकहताहूं। प्रथमतो पुरुषका अर्थसुनो। हे रामजी! यह जगत् नेत्रोंमें स्थितनहीं है, न श्रवणमें है और न नासिकाआदि इन्द्रियोंमें स्थितहै—चैतन्य संवित्में स्थितहै। चैतन्य संवित्ही पुरुषरूपहै; जिसपुरुषको उसमें निश्चयहै सोज्ञानवान्है और उसको द्वैतकलना नहींफुरती और जोप्रत्यक्षदृष्टिभी आतीहै परन्तुउसके निश्चयमें नहीं होती है। जैसे आकाशमें धूड़भी दृष्टिआती है परन्तु स्पर्शनहींकरती; तैसेही ज्ञानवान्को द्वैतकलना स्पर्श नहींकरती। जिस चेतन संवित्से फुरनेका संबन्ध है उसको जगत्का आकार भासता है और जिसपुरुषकी संवित्में देश, काल, क्रिया और द्रव्यका संबन्धहै वह कलंकमें दृढ़होरहाहै और जो अपने वास्तव अद्वैत स्वरूपके अभ्यासंसे मार्जन नहींकरता वह वास्तव चैतन्य आकाशरूप भी है तो भी कलंकसे वासनाके अनुसार जगत् उसको आपसे भिन्नभासता है—द्वैत भ्रमनहीं

मिटता। हे रामजी! जो पुरुष ऐसाभी है कि, देहके इष्ट—अनिष्टकी प्राप्तमें समरहता है परउसे आत्मसत्ता ज्योंकी त्योंनहीं भासती तो वह अज्ञानी है; आत्मसत्ता जाने बिना उसका संसार निवृत्त नहींहोता। जब आत्मसत्ताका साक्षात्कारहोगा तभीसब भ्रम निवृत्तहोगा। हे रामजी! यह पुरुष न जीवहै, न फुरनहै और न शरीरके नाश-होनेसे नाशहोताहै; यह केवलचिन्मात्र स्वरूपहै पर वासनासे भ्रमको देखताहै और शून्यवादी वृक्ष, पर्वत, जड़ादिक योनिपाते हैं। जो सदा अनुभव है उसको त्यागकर जो और कुछ इष्टजानते हैं वे मूर्खहैं और उनको आत्मसुखनहीं प्राप्तहोता। आत्मा के प्रमाद से अहं, त्वं, भीतर, बाहर आदिक शब्द भासते हैं और जब आत्मज्ञान हुआ तब सर्वशब्द आत्मरूप होजाता है। जिनपुरुषों ने आत्म अनात्मको निर्णय करके नहीं देखा वे पुरुषों में नीच हैं और जिसपुरुषने निर्णयकरके आत्मा में अहं प्रतीति की है और अनात्म का त्यागकिया है वह महापुरुष है और उसको मेरा नमस्कार है। जिसने अनात्मा में अहंप्रतीति की है और आत्मा को त्याग किया है वह बालक है। जैसे आकाशमें बादलकेचक्र हाथी और घोड़के आकार होभासते हैं और समुद्रमें तरंगभासतेहैं; तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै सो द्वैत कुछ नहीं। जैसे स्वप्नेके नगर अपने २ अनुभवमें स्थितहोते हैं और बाहर द्वैतकी नाईं भासते हैं सो आभासमात्र हैं; तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै सो आभासमात्रहै—वास्तव में कुछ नहीं। जिसको आत्मसत्ताका अनुभव हुआहै उसको जगत्के शब्द—अर्थ और राग द्वेष किसीकी कल्पना नहीं रहती और पुण्यपापका फल उसको स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! ज्ञान संवित्का नाश कदाचित् नहीं होता इससे विश्वभी अनुभवरूप है। इस जगत्का निमित्तकारण और समवायकारण कोई नहीं क्योंकि; अद्वैतहै और जो तुमकहो कि; प्रत्यक्ष घटादिक समवाय और निमित्तकारण उपजतेदीखतेहैं; तो जैसे स्वप्नमें कारण—कार्य अनहोते भासतेहैं, तैसेही यहभी जानो। प्रथम तो स्वप्नमें ये बनेहुये दृष्टि आतेहैं और पीछे कारणसे होते दृष्टिआतेहैं, तैसेही यहभी जानो—केवल भ्रममात्रहै। जैसे स्वप्नसृष्टिका जागेहुयेसे अभाव होताहै, तैसेही ज्ञान से इसका अभाव होजाताहै। यह दीर्घकालका स्वप्नाहै इससे जाग्रत् कहाता है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपनेआपहोती है—और निद्रादोषसे भिन्नभासतीहै, तैसेही यह जगत् अपना आपहै परन्तु अज्ञानसे भिन्नभासताहै। जाग्रत्में ज्ञानसे सब अपना आप भासताहै इससे रागद्वेषका अभाव होजाताहै। जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमाकी चांदनीमें भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछभेद नहीं—आत्माही जगत् रूप हो भासताहै। हे रामजी! तुम अपने अनुभवमें स्थित होकर देखो कि, सर्व ब्रह्म रूप है जगत् कुछ नहीं भासता—सर्वात्मकरूपहै और साध्यहै। जैसे शरत्कालका आका-

शशुद्धहोताहै, तैसेही आत्मसत्ता फुरनेरूपी बादलसे परम शुद्ध और शांतरूप है और उसमें स्थितहुये से मान और मोहका अभाव होजाताहै; किसीपदार्थ तृष्णामें नहींरहती और प्रारब्ध वेगसे जो कुछ आन प्राप्तहोताहै उसको भोगताहै। वह आत्मदृष्टिसे दुःखसे रहितहुआ प्रत्यक्ष आचार करताहै; उसको शास्त्रका दंडनहीं रहता और परमशांतरूप विराजता है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनास्तिकवादीनिराकरणं-
नामद्विशताधिकदशमस्सर्गः २१० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूपहूं और द्रष्टादर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी चिदाकाशरूप है । आत्मसत्ताही त्रिपुटीरूपहो भासती है--दूसरी वस्तु कुछ नहीं । नास्तिकवादी जो कहते हैं कि, परलोक कोई नहीं अर्थात् जो कहते हैं कि, आत्मसत्ता कोई नहीं सो मूर्ख हैं । हे रामजी! जो अनुभव आत्मसत्ता न हो तो नास्तिक किससे सिद्धहो? जिससे नास्तिकवादभी सिद्धहोता है सोही आत्मसत्ताहै । जो इष्ट--अनिष्ट पदार्थ में रागद्वेष करतेहैं और आत्माको नाशकहते हैं सो महामूर्ख हैं जैसे जाग्रत्के प्रमादसे स्वप्नेमें इष्टअनिष्टमें रागद्वेष होताहै और इष्टको ग्रहणकरता और अनिष्टको त्यागताहै और जागेसे सर्व अपनाही स्वरूपभासता है और ग्रहण--त्याग और रागद्वेष किसी पदार्थ में नहीं रहता, तैसेही आत्माके अज्ञानसे किसी पदार्थ में रागहोता है और किसीमें द्वेषहोताहै पर जब आत्मज्ञानहोता है तबसब अपनाही स्वरूपभासताहै और रागद्वेष किसीमें नहीं रहता। चित्तके फुरनेसे जगत् उत्पन्न होताहै और चित्तके शांतहुये लयहोजाताहै, इससे जगत् मनमें स्थितहै; और वहमन आत्माके अज्ञानसे हुआहै; जब आत्मज्ञानहोताहै तब मनुष्य, देवता, हाथी, नाग आदिक स्थावर--जंगम जगत् सब आत्मरूप भासता है और राग द्वेष किसीमें नहीं रहता । नास्तिकवादी जो नास्ति कहतेहैं सोही नास्तिका साक्षी सिद्धहोता है । जिससे नास्तिभी सिद्धहोताहै सो अस्ति आत्मपदहै; उस अस्ति अनुभवके इतनेनाम शास्त्रकार कहतेहैं--सत्, आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहंब्रह्म और अस्मि । एक कहतेहैं कि, शून्यही रहताहै और एक कहतेहैं कि, अस्तिपद रहताहै । हे रामजी! ये सर्वसंज्ञा आत्मसत्ताही की हैं, सो आत्मसत्ता अपनाही आप स्वरूपहै । वहीआत्मा मैंहूं और ये अंग जो मेरे साथ दृष्टि आते हैं इनको दृष्टि पदार्थोंसे लेपनकीजिये अथवा चूर्णकरिये तो मुझको हर्ष और शोक कुछनहीं। इनके बढ़नेसे मैंबढ़तानहीं और इनके नष्टहुये मैं नष्टनहीं होता । हेरामजी! तीनशब्दहोतेहैं कि, 'मैं जन्माहूं'; मैंजीताहूं और मैंमरूंगा । जो प्रथमनहो और उपजे उसको जन्म कहतेहैं; मध्यमें जीताकहतेहैं और फिर नाशहो उसकोमृतक कहतेहैं परआत्मा

में तीनोंविकार नहींहैं। आत्माउपजा भी नहीं क्योंकि, आदिही सिद्धहै; मृतकभी नहीं होता क्योंकि, अविनाशी है। चैतन्य आकाश सबका अधिष्ठान है और कालका भी अधिष्ठान है फिर उसका कैसेनाशहो? वहतो उदयअस्त से रहित है। जिसमें देश, काल, बस्तु और जगत्‌का किंचनहोताहै उससे आत्माका नाशकैसेहो—इससे आत्मा अविनाशी है। हे रामजी! जिस बस्तुको देश, कालका परिच्छेद होताहै उसका नाश भी होताहै सो देश, काल और बस्तु तीनोंआत्मा में कल्पित हैं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल कल्पित होताहै, तैसेही आत्मामें तीनोंकल्पित हैं। कल्पित बस्तुके साथ सत्य का अभाव कैसेहो? इससे आत्मा अविनाशी और अद्वैतहै उसमें दूसरी बस्तुकुछनहीं। जैसे शून्यस्थान में बैताल कल्पित होता है, तैसेही आत्मा में जगत् कल्पित है उस अभावरूप जगत् में प्रमादसे एकको अभाव जानताहै और एकको सद्भावजानताहै। जब इस निश्चयको त्यागकर भीतर मोक्षहो तब शांति प्राप्तहोगी। विचारकरके देखिये तो इससंसारमें दुःख कहींनहीं। जो मरके फिर जन्मलेताहै तौभी दुःख कहीं न हुआ क्योंकि; शरीर जब वृद्धिभावकोप्राप्तहोकर क्षीणहुआ तब उसको त्यागकरनवतनु कोग्रहणकिया तो उत्साहहुआ; जो मृतकहोकर फिर नहींउपजता तौभी आनन्दहुआ क्योंकि; जबतक जीताथा तबतक तापथा—एकका भाव जानताथा, एकको ग्रहणकरताथा और एकको त्यागकरताथा तिनसेतपताथा—उनसे यदि छूटा तो बड़ाआनन्दहुआ और जो सर्वचिदाकाशरूपहै तौभी अपनाआप आनन्दरूपहै दुःख कुछ न हुआ। हे रामजी! एक प्रमादसेही दुःख होताहै और किसीप्रकार दुःख नहींहोता। यह सब जगत् आत्मरूपहै और जो आत्मरूपहै तो दुःख कैसेहो? जो तुमकहो कि, मैं अपने कर्मसे डरताहूं जो परलोक में मुझको भयका कारण होगा तो ऐसे जानो कि, बुरेकर्म का दुःख यहां भी होता है और परलोकमें भी होगा—इससे बुरे कर्म मतकरो। मैं तुमसे ऐसा उपाय कहताहूं जिससे तुम्हारे सर्व दुःख नष्टहोजावें। वह उपाय यहहै कि, तुम जानो 'मैं नहीं'; अथवा ऐसे जानो कि, 'सर्व मैंहीहूं' और सर्व बासना त्यागकर आप को अविनाशी जानो और आत्मसत्ता में स्थित होरहो। यह जगत्‌भी सब तुम्हारा स्वरूप है; जब कि, ऐसे आत्माको जानोगे तब शरीर के त्याग कियेसेभी कोई दुःख न रहेगा और शरीरके होते भी दुःख कहीं नहीं। यदि पूर्व शरीर को त्यागकर नूतन जन्म लिया तौभी आनन्दहुआ और परमशान्तिहुई और जो चिदाकाशरूपहै तौभी परमआनन्द हुआ। हे रामजी! सर्वप्रकार आनन्दहै परन्तु भ्रान्तिसे दुःख भासता है। जब स्वरूपका साक्षात्कारहोगा तब सर्वजगत् ब्रह्मानन्द स्वरूप भासेगा। हे रामजी! जिसको आत्मसत्ताका प्रकाशहै सो पुरुष सदा आनन्दमें मग्नरहताहै और प्रकृत आचारकोभी करता है परन्तु इष्ट—अनिष्टकी प्राप्तिमें स्वरूप से चलायमान

कदाचित् नहींहोता । जैसे सुमेरुपर्वत वायुसेचलायमान नहींहोता, तैसेही ज्ञानी इष्ट अनिष्टमें चलायमान नहींहोता और परमगम्भीरतामें रहताहै । इससे जो कुछ आत्मासे भिन्न उत्थानहोताहै उसको त्यागकर अपनेस्वभावमें स्थितहोरहो कि, चिन्मात्रसत्ता शरत्कालके आकाशवत् निर्मल है । जब ऐसे स्वच्छ केवल और चिन्मात्र का अनुभवहोगा तब जगत्‌द्वैतरूप होकर न भासेगा और व्यवहारमेंभी द्वैत न फुरेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमउपदेशवर्णनं
नामद्विशताधिकएकादशस्सर्गः २११ ॥

रामजीने पूंछा; हे भगवन्! जिनपुरुषों को आत्मा परमात्माका साक्षात्कारहुआ है वहकैसे होजातेहैं और उनका कैसाआचारहोताहै सो मुझसे कहिये? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जैसे उनकीचेष्टा और जैसे उनकानिश्चयहै सो सुनो । सबकेसाथ उनका मित्रभावहोताहै बल्कि; पाषाणसेभी मित्रभाव होताहै; बन्धुवोंको वे ऐसे जानतेहैं जैसे बनकेवृक्ष और पत्रहोतेहैं और स्त्री पुत्रादिककेसाथ वे ऐसेहोतेहैं जैसे बनकेमृगकेपुत्र से होते हैं । जैसे उनमें स्नेहनहींहोता, तैसेही पुत्रादिकमेंभी वे स्नेहनहींकरते और जैसे माताकी पुत्रमेंदयाहोतीहै, तैसेही वे सबपरदयाकरतेहैं और निश्चयमें उदासीनरहतेहैं। जैसे आकाश किसीसे स्पर्शनहींकरता, तैसेही वे किसीसे स्पर्शनहींकरते और जो कुछ आपदाहै वह उनको परमसुखहै । जितने कुछजगत्‌मेंरसहैं सो उनकोबिरस होजाते हैं; न किसीमें वे रागकरते हैं और न किसीमें द्वेषकरते हैं । वे तृष्णाकरते दृष्टिभी आतेहैं परन्तु हृदयसेजड़ और पत्थरकीनाईं होते हैं, व्यवहार करतेभी हैं परन्तु निश्चयमें परम शून्य और मौन होते हैं अर्थात् सदा समाधिमें स्थितहोतेहैं । वे सब क्रियाकरते दृष्टिआते हैं सो इसप्रकार करते हैं कि, सबको स्तुति करनेयोग्यहैं । वे यत्नसे रहित सब क्रियाका आरंभ करतेभी हैं परन्तु और निश्चयसे सदा आपको अकर्त्ता मानते हैं । जोकुछ उन्हें प्रारब्ध बेगसे प्राप्तहोता है उसको भोगते हैं और देश काल क्रिया सबको अंगीकार करते हैं । जो परस्त्रियादिक अनिष्ट आ प्राप्तहों उनको त्यागभीकरते हैं परन्तु निश्चयमें सदा अकर्त्ता ज्योंकेत्यों रहते हैं और सुखदुःखकी प्राप्तिमें समबुद्धि रहते हैं । प्रकृति आचारमें यथाशास्त्र बिचरते हैं परन्तु स्वरूपसे कदाचित् चलायमान नहींहोते । जैसे फूलके मारनेसे सुमेरु पर्वत चलायमाननहींहोता, तैसेही दुःखसुखकी प्राप्तिमें वे चलायमान नहींहोते । वे सदास्वभावमें स्थित रहते हैं और सुखदुःखको भोगतेभी दृष्टिआते हैं परउनके निश्चयमें कुछ नहींहोता । जैसे स्फटिक मणिके सन्मुख कोई रंग रखिये तो उसमें भासता है परन्तु उसकारूप कुछ और नहीं होजाता वह ज्योंकीत्योंही रहती है; तैसेही सुखदुःखके भोग ज्ञानवान्‌में भी दृष्टिआते हैं परन्तु वह स्वरूपसे कदाचित् चलायमान नहींहोता—चेष्टा वे अज्ञानीकी

नाईं करते हैं परन्तु निश्चयसे परम समाधी हैं। जैसे अज्ञानीको भविष्यत्का राग द्वेष; सुख, दुःख, कुछनहीं होता; तैसेही ज्ञानीको बर्त्तमानका रागद्वेष नहींहोता और स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसेही होती है। वह सबसे मित्रभाव रखताहै; न उससेकोई खेदवान् होताहै और न वह किसीसे खेदवान् होताहै। जब उसको सुखप्राप्त होता है तब रागवान् दृष्टिआताहै और दुःखकी प्राप्तिमें द्वेषवान् दृष्टिआताहै परन्तु निश्चय से उसको हर्षशोक कुछनहीं। जैसे नटस्वांग लाताहै और जैसा स्वांग होताहै तैसी-ही चेष्टा करताहै—राजाका स्वांगहो अथवा दरिद्रीका—परन्तु निश्चय उसे अपनेरूप मेंही होताहै; तैसेही ज्ञानवान्में सुखदुःख दृष्टिआते हैं परन्तु निश्चय उसका आत्म स्वरूपमेंही होताहै और पुत्र, धन, बांधव आदिकको बुद्बुदेकीनाईं जानता है। जैसे जलमें तरंग और बुद्बुदे होते हैं और फिर लीनभी होजाते हैं परन्तु जलको कुछ रागद्वेष नहींहोता; तैसेही ज्ञानवान्को रागद्वेष कुछनहींहोता। वह सबपरदयास्वभाव रखताहै और पतित प्रवाहमें जो सुखदुःख आनप्राप्त होताहै उसको भोगताहै। जैसे बायु दुर्गन्ध सुगन्धको साथ लेजाती है परन्तु उसको रागद्वेष कुछनहींहोता तैसेही ज्ञानवान्को रागद्वेष कुछनहीं होता। बाहर अज्ञानीकी नाईं वह व्यवहार करता है परन्तु निश्चयमें जगत्को भ्रान्तिमात्र जानताहै अथवा सर्वब्रह्म जानताहै। वह सदा स्वभाव में स्थित होताहै और अनिच्छित प्रारब्धको भोगता है परन्तु जाग्रत में सुषुप्तिकी नाईं स्थितहै; पूर्ब और भविष्यत्की चिन्तना नहीं करता और बर्त्तमानमें बिचरताहै। वह हृदयसे शीतल रहताहै और बाहर इष्ट-अनिष्ट दृष्टि आते हैं पर हृदयसे अद्वैतरूपहै। ज्ञानवान् कर्म करता है परन्तु कर्म में अकर्म को जानताहै और जीताही मृतक की नाईं है। हे रामजी! जैसे मृतक होता है और उसको फिर जगत् की कलना नहीं फुरती, तैसेही जिसको आत्मपदकी अहंप्रत्यय हुई है उसको द्वैत नहीं भासता और प्रत्यक्ष व्यवहार उसमें दृष्टि भी आता है परन्तु निश्चयमें अर्थ शांत होगया है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह ज्ञानी के लक्षण जो आपने कहे सो उन को वही जानें और कोई नहीं जानता क्योंकि; बाहरकी चेष्टा तो अज्ञानीके तुल्यहीहै और हृदय से शांतरूप हैं? ब्रह्मचर्य्य से भी हृदय में धैर्य होता है और तपस्या से भी रागद्वेष कुछनहीं फुरता। एक मिथ्या तपसी हैं कि, उसी प्रकार बन बैठतेहैं; उनका निश्चय सत्य है अथवा असत्य है उनको कैसे जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह निश्चय सत्यहो अथवा असत्यहो यह लक्षणसन्त के ही हैं और आत्मा के साक्षात्कार का निश्चय अपने आपसे जानताहै और किसीसे नहीं जानाजाता इस कारणउसका लक्षण ज्ञानीही जानताहै और कोई नहीं जानता। जैसे सर्पके खुदको सर्पही जानता है और कोई नहीं जानता; तैसेही ज्ञानी का लक्षण सुसंवेद है। हे

रामजी ! यह जो गुणकहेहैं सो ज्ञानवान् में स्वाभाविकही रहतेहैं और दूसरे को यत्न सिद्ध हैं । ज्ञानवान् को सर्व जगत् भ्रांति मात्र है अथवा अनुभव दृष्टि से अपना आपही भासता है इसी कारणसे वह परम शान्त है और रागद्वेष उसके निश्चय में नहीं फ़ुरता और न वह अपने निश्चय को बाहर प्रगट करताहै पर जो अधिकारी है वह उसको जानताहै और जो अनधिकारी अज्ञानीहै वह उसको नहीं जानसक्ता। जैसे वन में चन्दन की बड़ी सुगन्ध होती है परन्तु दूरसेनहीं भासती, तैसेही अज्ञानी उसके निश्चय से दूरहै इसकारणवह नहीं जानसक्ता । चर्म दृष्टि से उसको देखे तो नहीं देखसक्ता और वह अधिकारी बिना जनावता भी नहीं । जैसे अमूल्य चिन्तामणि नीचको दीजिये तौभी उसके माहात्म्य को वह नहीं जानता, इससे उसका निरादर करता है; तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और अनधिकारी अज्ञानी उसका माहात्म्य नहीं जानता इससे उसका निरादर करता है—इसीकारण ज्ञानवान् प्रगट नहीं करते । हे रामजी ! यह जो प्रगट है कि, हमको अर्थकी प्राप्ति होगी; हमारा मानहोगा; हमारे चेलेबनेंगे और हमारी पूजाहोगी उसे ज्ञानवान् गन्धर्बनगर और इन्द्रजाल की नाईं जानते हैं, फिर वे किसकी बांछाकरें ? इसकारण वे अनधिकारी को अपना इष्ट नहीं प्रगट करते और जो कोई निकट बैठताहै तौभी अपने निश्चय रूपी अंगको सकुचालेते हैं । जैसे कुज अपने अंगको सकुचा लेताहै तैसेही वह अपने निश्चयरूपी अंगको सकुचा लेता है पर जिसको अधिकारी देखता है उससे प्रगट करता है । हे रामजी ! पात्र में रक्खा पदार्थ शोभता है अपात्र में रक्खा अनिष्ट होजाता है । जैसे गौको घासदिये से क्षीरहोजाता है और सर्पको क्षीरदिये से बिष होजाता है; तैसेही अधिकारी को दिया उपदेश शुभ होता है और अनधिकारी को अनिष्टहोजाता है । हे रामजी ! अणिमा आदिले जो सिद्धी हैं वे जप, द्रव्य, काल अथवा देशसे सबको प्राप्त होती हैं और अभ्यास के बलसे अज्ञानी को भी प्राप्त होतीहैं और ज्ञानीकोभी होतीहैं परन्तु ये ज्ञानका फलनहीं, जप आदिकका फलहै । जिसकी सिद्धिके निमित्त जो पुरुष दृढ़ होकर लगता है वही सिद्धहोता है; जो इन सिद्धियों का दृढ़ अभ्यास करता है तो उनसे आकाशमार्ग में उड़ने और आनेजाने लगताहै पर यह पदार्थ तबतक रसदेतेहैं जबतक आत्ममार्गसे शून्य हैं। हे रामजी ! परम सिद्धता इनसे नहीं प्राप्त होती । परमसिद्धि आत्मपद है । जिसको आत्मपद की प्राप्तिहुई है वह इनकी अभिलाषानहीं करता । ऐसा पदार्थ पृथ्वी में कोई नहीं और न आकाश में देवताओं के स्थानों मेंही है जिसमें ज्ञानी का चित्त मोहित हो, ज्ञानवान् को सब पदार्थ मृगतृष्णा के जलवत् भासते हैं । मेरे सिद्धांत में तो यही है कि, सदा विषयों से उपराम रहना और आत्मा को परमइष्ट जानना इसीकालाम

ज्ञानहै। ज्ञानी को जो प्रारब्ध से प्राप्त हो उसको करता है परन्तु करने से उसका कुछ अर्थ सिद्धनहीं होता और न करने में कुछ प्रतिवाय भी नहीं होती। न किसी अर्थ का वह आश्रय करता है; न उसके निमित्त किसी भूतका आश्रय करताहै और सर्वदा अपनेआप स्वभाव में स्थित होता है। ऐसे निश्चयको पाकर वह आश्चर्यमान होता है और कहताहै कि; बड़ा आश्चर्यहै कि जो सदा अपना आप स्वरूपहै उसको विस्मरण करके मैं इतने काल भ्रमता रहा पर अब मुझको शांति प्राप्तिहुई है। जगत् को देखके वह हँसता है क्योंकि; यह जगत् अनायासरूप है और अपनी ही संवित् में स्थित है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब स्थित होता है, तैसेही अपनी संवित् में जगत् स्थित है उसको जो द्वैत जानता है और रागद्वेष से जलता है ऐसे अज्ञानीको देखकर वह हँसताहै और व्यवहार करता भी हँसता है। जैसे किसीने स्वप्ने में हाथ में सुवर्ण दिया और फिर लेलिया और इसने उसको स्वप्नाजानातो चेष्टाकरता है परन्तु हँसता है और कहता है कि; यह मेराही स्वरूप है; तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्चय में हँसता है। जैसे किसी ग्राममें अग्निलगे और एकपुरुष उस गांवसे निकलकर पर्वतपर जा बैठे तव वह जलतोंको देखकर हँसता है; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष भी संसार रूपी जलते नगर से निकलकर आत्मरूपी पर्वतपर जा बैठा है और अज्ञानियों को दग्ध होता देखकर हँसता है अर्थात् आप अशोच होकर उनको सशोच देखता है। हे रामजी! जब ज्ञानवान् बोध दृष्टि से देखता है तब अद्वैत सत्ता भासतीहै और जब अन्तबाहक में स्थित होकर देखता है तब जैसे पदार्थ होतेहैं तैसेही उनको देखता है और आपको सदा शांतरूप देखता है—अर्थ यह कि, जो आत्मतत्व परमानन्द स्वरूप है उससे भिन्न जितने कुछ पदार्थ हैं सो सब दोषरूप हैं और सिद्धि से आदिलेकर जितनी क्रिया हैं वे संसार का कारण हैं। जैसे समुद्र में कई तरंगबड़े और कई छोटेहोतेहैं परन्तु समुद्र ही में हैं जिसतरंग का आश्रयकरेगा वह सिद्धता को प्राप्तहोवेगा और हलने, डोलने, कहने से मुक्तहोवेगा; तैसेही सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं वे कहीं बड़े ऐश्वर्य हैं और कहीं छोटे ऐश्वर्य हैं परन्तु संसारही में हैं जो पुरुष इस क्रियाको त्यागकर अन्तर्मुखहोगा वह संसाररूपी समुद्र को त्यागकर आत्मरूपी पारको प्राप्तहोगा। हे रामजी! जिस पुरुष को जिस पदार्थ का अभ्यास होता है उसको वही प्राप्तहोताहै। जैसे पाषाण को नित्यप्रति घिसते रहिये तो वहभी चूर्ण होजाताहै; तैसेही जिस पदार्थ का सर्वदा अभ्यास करताहै सो प्राप्त होताहै। जिसको अभ्यास से आत्मपद प्राप्तहोता है वह परम श्रेष्ठहोजाताहै; सब जगत् से ऊंचेविराजताहै और परमदयाकी खानहोताहै। जैसे मेघ समुद्रसे जललेकर वर्षाकरतेहैं सो जलकास्थान समुद्रही होताहै; तैसेही जितनेकुछ

दयाकरते दृष्टिआतेहैं सो ज्ञानकेप्रसादसेही करते हैं। सर्व दयाकास्थान ज्ञानवान्‌ही है और ज्ञानवान् सबका हृदयहै। जो कुछ प्रवाहपतित कार्य आनप्राप्त होताहै उसको वहकरताहै और जो शरीरको दुःख आनप्राप्तहोताहै उसको ऐसेदेखताहै जैसे अन्य शरीर को होताहै और अपने में सुख दुःख दोनोंका अभाव देखता है। जिनको यह अभ्यास नहीं हुआ वे शरीरके रागद्वेषसे जलते हैं और ज्ञानीको शांतिवान् देखकर औरोंको भी प्रसन्नता उपज आती है। जैसे पुण्यकरके जो स्वर्गको गयाहै उसको वहां इष्ट पदार्थ दृष्ट आते हैं और कल्पवृक्षकी सुन्दर मंजरियां और सुन्दर अप्सरा आदिक भासतीहैं जिन पदार्थोंको देखकर प्रसन्नता उपजती है; तैसेही ज्ञानवान् की संगतिमें जो पुरुष जाताहै उसको प्रसन्नता उपज आतीहै। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा शीतलता उपजाताहै; तैसेही ज्ञानवान्‌की संगति शीतलता उपजाती है। ज्ञानवान् आत्मपदको पाकर आनन्दवान् होताहै और वह कभी आनन्द दूर नहीं होता क्योंकि; उसको उस आनन्दके आगे अष्टसिद्धि तृण समान भासती हैं। हेरामजी! ऐसे पुरुषों का आचार और जिन स्थानोंमें वे रहते हैं वह भी सुनो। कई तो एकांत जा बैठते हैं, कई शुभस्थानोंमें रहते हैं, कई गृहस्थीही में रहते हैं; कई अवधूतहुये सबको दुर्वचन कहते हैं; कई तपस्या करते हैं; कई परमध्यान लगाके बैठते हैं; कई नंगे फिरते हैं; कई बैठे राज्य करतेहैं; कई पंडित होकर उपदेश करते हैं; कई परममौन धारे हैं; कई पहाड़ की कन्दराओंमें जा बैठते हैं; कई ब्राह्मणहैं; कई संन्यासी हैं; कई अज्ञानीकी नाईं विचरते हैं; कई नीच पामर होते हैं और कई आकाशमें उड़ते हैं और नानाप्रकारकी क्रिया करते दृष्ट आतेहैं परन्तु सदा अपने स्वरूपमें स्थितहैं। हेरामजी! जिसको पुरुष कहते हैं सो देह और इन्द्रियां पुरुष नहीं और अन्तःकरण चतुष्टय भी पुरुष नहीं; पुरुष केवल चिदाकाशरूपहै; वह न कुछ करताहै और न किसीसे उसका नाश होताहै। जैसे नट स्वांगले आताहै और सब चेष्टा करताहै परन्तु नटभावसे आपको असंग देखताहै; तैसेही ज्ञानवान् व्यवहार भी करते हैं परन्तु आपको अकर्त्ता और असंग देखते हैं; और ऐसा निश्चय रखते हैं कि,हम अछेद, अदाह, अक्लेद, अशोष, नित, सर्वगत, स्थिर अचल और सनातनहै। हे रामजी! इस प्रकार आत्मामें जिसको अहंप्रतीति हुई है उसका नाश कैसे हो और वह बन्धमान कैसे हो ? वह पुरुष चाहे जैसे आरम्भकरे और चाहे जैसे स्थान में रहे उसको बन्धन कुछ नहीं होता। चाहे वह पाताल में चलाजावे, आकाशमें उड़ता फिरे अथवा देशांतरों में भ्रमता फिरे उसको न कुछ अधिकता है और न कुछ ऊनता है। पहाड़ में चूर्ण होजावे तौभी वह चूर्ण नहीं होता। यह तो चैतन्य पुरुष है शरीर के नाशहुये इसका नाश कैसे हो ? ऐसे अपने स्वरूप में वह सदा स्थित है और आकाशवत् परम निर्मल, अजर, अमर और

शिवपद है।इससे हे रामजी! ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वरूपमें स्थित होरहो॥
इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचैतन्यआकाशपरमज्ञानवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वादशस्सर्ग्गः २१२॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! एक भावमात्रहै; दूसरा भासमात्रहै और तीसरा भासितमात्रहै। भावमात्र केवल चैतन्यमात्रको कहते हैं;उसमें जो चैत्योन्मुखत्व अहंकार का उत्थान हुआ उसका नाम भासहै और उसमें जो जगत् हुआ उसका नाम भासित है। भासित कल्पितका नामहै। कल्पितके नाशहुये अधिष्ठानका नाश नहीं होता; जो अधिष्ठान कुछ और भावहो तो उसका नाश भी होवे सो तो और कुछ बना नहीं। उसके फुरनेसे तीनसंज्ञा हुई हैं सो फुरना भी उसीका किंचनहै। आत्मा फुरने न फुरने में ज्योंका त्योंहै। जैसे स्पंद और निस्पंदवायु एकही है; तैसेही बोध-अबोधमें आत्मा एकही है। बोध, अबोध, फुरना, अफुरना एकही अर्थहै। हे रामजी! वह आत्मा किस से और कैसे नाशहो? चैतन्यभी मरताहो तो इसका किंचन जगत् कैसे रहे? किञ्चन आभासको कहते हैं,सो आभास अधिष्ठानबिना नहीं होता-इससे आत्माका नाशनहीं होता और तुम जो चैतन्यको भी मरता मानो कि, मरके फिर नहीं उपजता तौभी आनन्दहुआ। मेरा भी यही उपदेशहै कि, चैतन्यता मिटे। जब चैतन्यता उपजती है तब जगत् भासताहै और उसके मिटेसे आत्माही शेषरहेगा। ब्रह्म चैतन्यका तो नाशनहीं होता। जो तुम कहो कि,वह चैतन्य नाश होजाताहै-यह और चैतन्यहै जिससे जगत् होताहै तो; हे रामजी! अनुभव तो एकही है उसका नाश कैसे मानिये? जैसे बरफ शीतलहै चाहे किसी ठौर पान कीजिये वह सबको शीतलही है और अग्नि उष्णही है चाहे जिस ठौरसे स्पर्श कीजिये उष्णही अनुभव होता है तैसेही आत्माका स्वरूप चैतन्य है। वह एक अखण्डरूपहै और जहां कोई पदार्थ भासताहै उसी चैतन्यतासे प्रकाशताहै। वह चैतन्यसत्ता स्वच्छ निर्मल और अद्वैत सदा अपने आपमें स्थित है; उसका नाश कैसेहो? जो तुम शरीरके नाशहुये आत्माको नाश होता मानो तो नहीं बनता क्योंकि, शरीर यहां अखण्ड पड़ाहै और वह परलोकमें चेष्टा करताहै और पिशाच आदिकका शरीर भी नहीं दृष्ट आता। जो शरीर बिना उसका अभाव होता हो तो उनका भी अभाव होजाता; इससे शरीरके अभावहुये आत्माका अभाव नहीं होता क्योंकि; शरीरके मृतक हुये कुछचेष्टा शरीरसे नहीं होती क्योंकि; पुर्यष्टका जीवकलामें नहीं। शरीर तो अखंड पड़ाहै उससे कुछ नहीं होता और जीव परलोकमें सुख दुःख भोगताहै तो शरीरके नाशहुये नाश न हुआ। जो तुम कहो कि,सब स्वभाव उसमें रहता है तो सर्वदा काल उसको क्यों नहीं देखते उसी समय आपको क्यों मृतक देखते हैं और बान्धव, भाई, जन सब उसी समय क्यों मृतक जानते हैं और जो तुम कहो कि,

जीवित धर्म्मसे वेष्टितहै इसीसे सब अवस्था का अनुभव नहीं करता मृत्युसमय जब जीवत्व भाव नष्ट होजाताहै तब मृतक होताहै जो ऐसेहो तो परलोकका अनुभव न करे तो ऐसा नहींहै क्योंकि, जब शरीर पात होताहै तब सब अवस्थाको भी जानता है और परलोकमें शब्द होताहै उसका अनुभव करताहै; अपने कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगताहै और देश स्थानको प्राप्त होताहै। यह वार्त्ता शास्त्रसे भी प्रसिद्ध है और अनुभव करके भी प्रसिद्धहै कि; मृतकको किसीने नहीं जाना और अभावको किसीने नहीं जाना और जिसने जाना वह आत्माएक अखण्डहै-इससे हेरामजी! शरीरकेनाशमें आत्माका नाश नहींहोता;वह तो नित्यशुद्धहै और जैसा निश्चय उसमें होताहै तैसाही होभासताहै और जैसा मिलताहै;तैसा प्रकाशताहै। ऐसा जो सत्यआत्माहै वह किसीमें बंधमान नहीं होता जैसे रस्सीमें सर्पहीकार भासताहै पर वह रस्सी सर्प तो नहीं होजाती जब कल्पित सर्प का अभाव होजाता है तब रस्सी ज्यों की त्यों रहती है; तैसेही आत्मसत्ता आकार हो भासती है परन्तु आकार तो नहीं होती जब आकारका अभाव होजाता है तब आत्मसत्ता ज्यों की त्यों रहती है इसी कारण बन्धमान नहीं होती। ऐसी आत्म सत्ता में जो विकार भासते हैं सो भ्रममात्र हैं और भ्रांतिसेही लोग दुःखपाते हैं। हे रामजी! वहजगत् आभास मात्रहै और उसआभासमात्र में जो रागद्वेष आदिक फुरते हैं उनकी निवृत्ति का उपायमैं तुमसे कहताहूं। जो कुछ उपदेश मैंनेकिया है उसके विचारने से भ्रांति निवृत्त होजावेगी और आत्मपद की प्राप्ति होगी। अभ्यास बिना आत्मपद की प्राप्ति चाहे तोकदाचित् न होगी; जब बारम्बार अभ्यास करेगा तब द्वैत भ्रम मिटजावेगा और आत्मपद प्राप्तहोगा। जिसका कोई नित अभ्यासकरताहै और उसका यत्न भी करताहै सो प्राप्त होता है। वह कौनपदार्थ है जो अभ्यास से प्राप्त नहो! जो थककर फिरेनहीं और दृढ़अभ्यासकरे तो प्राप्त होताहीहै। राज्य की लक्ष्मी तब प्राप्त होती है जब रणमें दृढ़होकर युद्धकरते हैं और जयहोती है और केवल मुख से कहे कि, मेरी जय हो तो नहीं होती; तैसेही आत्मपदभी तब प्राप्तहोगा जब दृढ़ अभ्यास करोगे—अभ्यास बिना कहने मात्रसे प्राप्त नहीं होता। हे रामजी! इस मनके दो प्रवाह हैं एक जगत् का कारणहै और दूसरा स्वरूप की प्राप्ति का कारणहै। जो असत्यशास्त्रहैं और जिनमें आत्मज्ञान प्रत्यक्षनहीं कहा उनको त्यागो। यह जो महारामायण मोक्ष उपाय है उसमें चारवेद षट्शास्त्र और सर्व इतिहास और पुराणों का सिद्धांत मैंने कहाहै और इसके समान और न किसी ने कहा है न कोईकहेगा। ऐसा जो शास्त्रहै इसकेविचारमें मनकोलगावो तो शीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहोगे। हेरामजी! आत्मज्ञान वर और शापकीनाईं नहीं कि; कहनेमात्रसे सिद्धहो; इसकीप्राप्ति तबहोगी जब बारम्बार बिचारकरके दृढ़ अ-

भ्यास करोगे और जब इसकी भावनाहोगी तब मुक्तिपदको प्राप्तहोगे। ऐसाकल्याण पिता, माता और मित्रभी न करेंगे और तीर्थआदिक सुकृतसेभी न होगा जैसा कल्याण बारम्बार विचारनेसे मेराउपदेश करेगा ।इससे और सब उपायोंकोत्यागकर इसीका बिचारकरो तो सबभ्रान्ति मिटजावेगी और शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोगी । हे रामजी। अज्ञानरूपी विशूचिकारोग है और उसमें पड़ेजीव जलते हैं । जो हमारे शास्त्रको विचारेगा उसकारोग नष्टहोजावेगा । ईश्वरकी यह महामाया है कि, मिथ्याभ्रमसे जीव दुःखीहोते हैं । जो अपनादुःख नाशकरना चाहे वह मेराशास्त्र विचारे । जितने सुन्दरपदार्थ दृष्टआते हैं वेसब मिथ्याहैं और उनकेनिमित्त यत्नकरना परमआपदाहै । यह सबपदार्थ आपातरमणीयहैं जो देखनेमात्र सुन्दरहैं पर भीतर से शून्यहैं । इनकी प्राप्तिमें मूर्खआनन्द मानते हैं । हे रामजी ! यह पदार्थ तबतक सुन्दर भासते हैं जबतक मृत्युनहींआई, जबमृत्युआवेगी तब सबक्रिया रहजावेगी इस लिये इनकेनिमित्त जो यत्नकरते हैं वे मूर्खहैं। जिसकालमें मृत्युआती है उसकाल कष्ट प्राप्त होता है और यदि चन्दनकालेप कीजिये तो भी शीतल नहीं होता । जिस द्रव्य के निमित्त जीव बड़े यत्नकरता है; युद्धकरता है और प्राण त्यागता है सो धन स्थिरनहीं रहता एकदिन धन और प्राणीका वियोग होजाता है और जब वियोग होता है तब कष्टपाता है । मैं ऐसा उपाय कहताहूं जिसमें यत्न भी थोड़ाहो और सुगमता से आत्मपद प्राप्त हो । जब शास्त्रके अर्थमें दृढ़ अभ्यास होता है तब वह अजर, अमरपद प्राप्त होता है; इससे तुम बोधवान्हो और बोधकरके अभ्यासका यत्नकरो। जो यत्न न करोगे तो अज्ञानरूपी शत्रु लातेंमारेगा; यदि उस शत्रुको मारनाहो तो निर्मान और निर्मोह होकर आत्मपद का अभ्यासकरो । हे रामजी ! जो पुरुष अबतक अज्ञानरूपी शत्रुके मारने और आत्मपद पानेका यत्न नहीं करते वे परम कष्टपावेंगे और संसाररूपी दुःख से कदाचित् मुक्त न होंगे । इस कष्टसे निकलने का यही उपायहै कि, महारामायण ब्रह्म विद्याका जो उपदेशहै उसको विचारकरके अपने हृदय में धारना करें । इस उपाय से भ्रांति मिटजावेगी। यह महारामायण उपदेश सर्व सिद्धान्तों का सार है; और २ शास्त्रों से आत्मपद को प्राप्तहो अथवा न भी हो परन्तु इसके विचार से अवश्य आत्मा को प्राप्तहोगा। जैसे तिलकीखली से तेल निकलना कठिन है और तिलों से तेल निकालिये तो निकलता है; तैसेही मेरा उपदेश तिल की नाईं है और इतर खली की नाईं है। हे रामजी ! संपूर्ण शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तों का सार जो सिद्धांत है सो मैंने तुमसे कहा है । जो आत्मा सदा विद्यमान है उसको लोग भ्रांति से अविद्यमान जानते हैं इसलिये उसी के विद्यमान करने को सर्व शास्त्र प्रवर्त्तते हैं पर जो उनके विचार से आत्मपद को विद्यमान नहीं

जानता वह मेरे उपदेश के विचारने से अवश्य आत्मपद को विद्यमान जानेगा-यह निश्चय है । हे रामजी ! और शास्त्रों के दृढ़ विचार और यत्न से जो सिद्धि होती है सो इसशास्त्र के विचार से सुख सेही प्राप्त होगी । शास्त्रकर्त्ता का और लक्षण न विचारना पर शास्त्रकीयुक्ति विचार देखनी है। जो कुछ सर्वशास्त्र का सार सिद्धान्त है सो मैंने तुमसे सुगममार्गसे कहा है । इसके विचारसे इसकी युक्ति देखो। अज्ञानी जोकुछ मुझको कहते हैं और हँसते हैं सो मैंसबही जानताहूं परन्तु मेरा जो दयाका स्वभावहै इससे मैं चाहताहूं कि, किसीप्रकार वे नरकरूप संसार से निकलें और इसीकारणमैं उपदेशकरताहूं। हेरामजी ! मैं जो तुमको उपदेशकरताहूं सोकिसी अपने अर्थके निमित्त नहींकरता कि, मेराकुछअर्थ सिद्धहो । जो कोई तुमको उपदेश करताहै सो सुनो; तुम्हारा जो कोई बड़ापुण्यहै वही शुद्ध संवित्होकर मलीन संवित् को उपदेश करता है । वह संवित् न देवता है ; न मनुष्य है; न यक्ष है; न राक्षस है और पिशाच आदिक भी नहीं है; केवल जो ज्ञानमात्र है सो तुमहींहो; मैं भी वही हूं और जगत्भी वही है और जो सर्व वही है तो बासना किसकी करनी है । हे रामजी ! जीवको दुःखका कारण बासनाही है । जो पुरुष इससंसार बन्धनके दुःख की चिकित्सा अब न करेगा वह आत्महत्यारा है और बड़े दुःख में जापड़ेगा जहां से निकसने की सामर्थ्य न होगी इससे अबहीं उपायकरो । जबतक सबभाव की बासना निवृत्त नहीं होती तबतक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता-इसी का नाम बन्धन है। जब वासना क्षयहोगी तब आत्मपदकी प्राप्ति होगी । जितने पदार्थभासते हैं वे सब अविचार सिद्ध हैं, विचार कियेसे कुछ नहीं रहते; और जो विचार कियेसे न रहें उनकी अभिलाषा करनी ब्यर्थहै। जो वस्तु होतीहो उसके पानेका यत्न भी कीजिये तो बनताहै और जो वस्तु होवेहीनहीं उसके निमित्त यत्न करना मूर्खताहै । यह जगत् के पदार्थ असत्यरूपहैं। जैसे शशेके सींग असत्हैं और मरुस्थलकी नदी असत् होती है; तैसेही यह जगत असत्है। जो सम्यक्दर्शी ज्ञानवान् पुरुषहै वह जानताहै कि,यह जगत् शशेके सींगवत् असत् और भ्रांतिमात्रहै इसलिये इसके निमित्त यत्न करना मूर्खताहै। जो पदार्थ कारण बिना दृष्टआवे उसको भ्रांतिमात्र जानिये । आत्मा जगत् का कारण नहीं इससे जगत् मिथ्याहै। आत्मपद सब इन्द्रियों और मनसे अतीत है और जगत् पंचभौतिकहै। जगत् मन और इन्द्रियोंका विषय है और आत्मपद मन और इन्द्रियोंका विषय नहीं तो उसे जगत्का कारण कैसे कहिये ? जो अशब्दपदहै सो नानाप्रकार शब्दका कारण कैसेहो और जो निराकार आत्मपद है सो पृथ्वी आदिक नानाप्रकारके भूत आकारोंका कारण कैसेहो ? हेरामजी ! जैसा कारण होता है उससे तैसाही कार्य उपजताहै; आत्मा निराकारहै और जगत् साकारहै इसलिये निराकार

साकारका कारण कैसेहो? जैसे बटका बीज साकार होता है इसलिये उसका कार्य बट भी साकार होताहै और साकारसे निराकार कार्य तो नहीं होता; तैसेही निराकारसे साकार कार्य भी नहीं होता। इससे इस जगत्का कारण आत्मा नहीं और न समवायकारणहै, न निमित्त कारण है। निमित्त कारण तब होताहै जब कुछ द्वितीय वस्तु होतीहै। जैसे मृत्तिकासे कुलाल घट बनाताहै। पर आत्मा तो अद्वैत है वह निमित्तकारण कैसे हो? और समवाय कारण भी तब होताहै जब साकार वस्तु होतीहै-जैसे मृत्तिका प्रणाम से घट होता है—पर आत्मा निराकार अप्रणामी है जगत् का कारण कैसेहो? दोनों कारणोंसे जो रहित भासे उसे जानिये कि, भ्रांतिमात्र है। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकारके आकार भासते हैं सो कारण बिना भासते हैं इसलिये वह भ्रांतिमात्र है; तैसेही यह जगत् भी कारण बिना भ्रांतिमात्र भासताहै। आत्मामें जगत् कदाचित् नहीं हुआ। जैसे प्रकाशमें तम नहीं होता, तैसेही आत्मामें जगत् नहीं। यदि तुम कहो कि, तो फिर भासता क्याहै तो उसीका किंचन भासताहै जो वही रूपहै। जैसे चलती है तौभी वायुहै और ठहरती है तौभी वायुहै, चलने और ठहरनेमें कुछ भेद नही होता और जैसे आकाश और शून्यतामें भेद कुछ नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत्में कुछभेद नहींहै— वही आत्मसत्ता फुरनेसे जगत्रूप हो भासती है। जैसे जल और तरंग में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेद नहीं और कुछ द्वैत वस्तुहै नहीं। जो लोग कहतेहैं कि, जगत् कर्मोंसे होताहै सो असत्यहै क्योंकि, कर्मभी बुद्धिसे होतेहैं सो आत्मा में बुद्धिही नहीं तो कर्म कैसेहो और जो कर्मही नहीं तो जगत् कैसेहो? जैसे शशे के सींगके धनुषसे बाणचलाना असत्यहै, तैसेही कर्मसे जगत्का होना असत्य है। एक कहतेहैं कि, सूक्ष्म परमाणुसे जगत् होजाताहै पर यह भी असत्यहै क्योंकि, जो सूक्ष्म परमाणु प्रमाणसे जगत्रूप हुये होते तो बुद्धिरूप जगत् न भासता पर यह तो बुद्धि रूप क्रिया होती दृष्ट आती है। जो परमाणुसे जगत् होता तो इनही से बढ़ताजाता क्योंकि; जो परमाणु जड़है वही बढ़ते हैं पर ऐसे तो नहीं होता; बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्ट आती है। इसीसे कहाहै कि, वे असत्य कहते हैं क्योंकि; सूक्ष्म भी किसीसे उत्पन्न हुआ चाहिये और कोई उसके रहने का स्थान भी चाहिये पर आत्मामें देश, काल और वस्तु तीनों कल्पित हैं। जो आत्मामें ये न हुये तो परमाणु कैसेहो और जगत् कैसेहो? आत्मा अद्वैतहै इससे जगत् न उपजाहै और न नष्ट होताहै। जो जगत् उपजा होता तो नष्ट भी होता; जो उपजाही नहीं तो वह नष्ट कैसेहो? आत्मसत्ता ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थितहै। इससे हे रामजी! मैं, तुम और सब जगत् आकाश रूपहै किसीके साथ आकार नहीं-सब निराकाररूप है। जो तुम कहो कि फिर बोलते चलते क्यों हैं? तो जैसे स्वप्नेमें सब आकाशरूप होते हैं पर नानाप्रकारकी चेष्टाकरते

दृष्ट आते हैं और बोलते चालते हैं; तैसेही यह भी बोलते चालते हैं परन्तु आकाश रूपहै। तुम्हारा जो स्वरूपहै सो भी सुनो। देशको त्यागकर देशांतरको जो संवित् जाताहै और उसके मध्य जो ज्ञानसंवित्है वही तुम्हारा स्वरूपहै। वह अनामय और सर्व दुःखसे रहितहै। जैसे जब जाग्रत् दशाको त्यागकर जीव स्वप्नेमें जाताहै तो जाग्रत् त्यागदियाहो और स्वप्ना न आयाहो मध्यमें जो अचेत चिन्मात्र सत्ता है वही तुम्हारा स्वरूपहै; उसमें पंडित और ज्ञानवानोंका निश्चयहै और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक उसीमें स्थित रहते हैं-उनको कदाचित् उत्थान नहीं होता। जैसे बरफसे अग्नि कदाचित् नहीं उपजती, तैसेही उनको स्वरूपसे उत्थान कदाचित् नहीं होता। वह आत्मसत्ता न उपजती है;न विनशती है और न और की और होतीहै—सर्वदा अपने स्वभाव में स्थितहै। हे रामजी! जितना कुछ जगत् तुम देखतेहो सो वास्तवमें कुछ उपजा नहीं-भ्रमसे भासताहै। जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकारके आरंभ होते दृष्ट आते हैं और जागेसे उनका अत्यन्त अभाव भासता है,तैसेही यह जगत् भी है। आदि जो अद्वैत तत्त्वमें स्वप्नाहुआहै उसमें ब्रह्मा उपजे और उन्होंने आगे जगत् रचा सो ब्रह्मा भी आकाशरूपहै स्वरूपसे भिन्न कुछ नहीं हुआ-सब असत्यरूप है। जैसे स्वप्नेमें नदी और पर्वत दृष्ट आते हैं परन्तु कुछ उपजे नहीं; अनुभवसत्ताही ज्योंकीत्यों स्थित है; तैसेही ब्रह्मासे आदि तृण पर्यन्त जगत् सब असत्यरूपहै। जिसको तुम ब्रह्मा कहते हो वह वास्तवमें कुछउपजेनहीं तो जगत्कीउत्पत्ति में तुमसे कैसेकहूं? जैसे मरुस्थल की नदीही उपजी नहीं तो उसमें मछलियां कैसे कहिये? तैसेही आदि ब्रह्मानहीं उपजा तो उसमें जगत् कैसे उपजा कहिये? केवल आत्मचैतन्यसत्ता सदा अपने आप में स्थितहै और यह जगत्भी वही रूपहै परन्तु अज्ञानसे विपर्ययरूप भासताहै। जैसे स्वप्ने में पुरुष अनुभवरूप होताहै और अपनेप्रमादसे नानाप्रकारके पदार्थ और पर्वत,जल, पृथ्वी,जन्म,मरणादिक विकार देखता है परंतु हुआ कुछनहीं आत्मसत्ताही ज्योंकीत्यों स्थितहै और अज्ञानसे विषयरूप भासते हैं;तैसेही इसजगत्को भी जानो-आत्मसत्ता से भिन्न कुछनहीं सब चिदाकाशरूपहै और अज्ञानसे आत्मसत्ताही जगत्रूपहो भासती है। इससे, हे रामजी! जिसके अज्ञानसे यहजगत् भासताहै और जिसके ज्ञानसे निवृत्त होजाताहै ऐसे आत्मतत्त्व के पानेका यत्नकरो। वह नित्य, शुद्ध और परमानन्द स्वरूपहै और सदाअपनेस्वभाव में स्थितहै और वही तुम्हारा अनुभवरूप है जो सदा अनुभवकरके प्रकाशता है और उसमें स्थितहोने में क्याकायरताकरनी है? हे रामजी! जितना प्रपंचहै सोसब भ्रांतिमात्रहै। जैसे रस्सीमें सर्पभ्रांतिमात्रहै तैसेही आत्मामें जगत् भ्रममात्रहै इससेउसको त्यागकर अपने स्वभावमें स्थितहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वपदार्थभाववर्णनंत्रयोदशाधिकद्विशततमस्सर्गः२१३

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! जिसप्रकार यहजगत् आभास फुराहै और भासता है सो भी सुनो। आदिजो शुद्धअचेत चिन्मात्रहै उसमें जब चैतन्यता फुरती है तब वह वेदन होती है और उसमें शब्दतन्मात्र होता है फिर उसमें आकाश उत्पन्न होता है और फिरस्पर्शकी इच्छाहोती है तब वायुउपजती है। जब आकाशमें उत्थान होताहै तब उसबायु और आकाशके संघर्षणभावसे अग्नि उपजती है, और जब अग्निमें उष्णस्वभाव होताहै तबजल उत्पन्न होताहै अर्थात् जबतेजकी अधिकताहोतीहै तब जल उत्पन्न होआता है। जब स्वेदवत्जल बहुत इकट्ठा होता है तब उसमें पृथ्वी उत्पन्नहोती है। इसप्रकार आकाश और वायुसे जल और पृथ्वी उत्पन्नहोते हैं तब तत्त्वों से शरीर उपजते हैं और स्थावर जंगमभूत और नाना प्रकारका जगत् दृष्टआताहै सो सब पंचभौतिकहैं और वास्तव में न पंचभूत हैं; न कोई उपजता है और न नष्ट होता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार का जगत् आरम्भ प्रमाणसहित भासताहै परन्तु वास्तवमें कुछ उपजा नहीं आत्मसत्ताही जगत् आरम्भ प्रमाणसहित भासताहै परन्तु वास्तवमें कुछ उपजानहीं आत्मसत्ता-ही चित्तकेफुरने से जगत्रूप हो भासती है; तैसेही यहजाग्रत् जगत्भीजानो। हे रामजी! यहजगत् सबअपना अनुभव रूपहै पर भ्रमकरके आकारसहित भासता है और जबभली प्रकार विचारके देखिये तब जगत्भ्रम मिटजाताहै केवल चैतन्य आत्मतत्त्वमात्र शेषरहताहै। जैसे निद्रादोषसे स्वप्नेमें नानाप्रकारके क्षोभभासते हैं और जब जागताहै तब एकअपना आपही भासताहै; तैसेही आत्मसत्तामें जागेसे अद्वैत ही अद्वैत भानहोता है। हे रामजी! जो बोधसमयमें द्वैतकुछ न भासे तो अबोधसमयभी जानिये कि, द्वैतकुछनहीं हुआ और जो बोधकेसमय सत्यभासे तो जानिये कि, सर्वदाकाल यही सत्ताहै। हेरामजी! यह निश्चयधारो कि, जगत्कुछ वस्तुनहीं—जैसे आकाशमें नीलता; किरणोंमेंजल और रस्सीमें सर्पभासताहै, तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै और विचार कियेसे कुछनहीं पायाजाता। हे रामजी! अपनी कल्पनाही जीवको जगत्रूपहो भासती है और कुछनहीं। जैसे स्वप्नेकीसृष्टि अपनी कल्पनारूप है परन्तु निद्रादोषसे भिन्नहो भासती है और उसमें रागद्वेष उपजताहै पर जागेसे सबक्षोभ मिटजाते हैं; तैसेही ज्ञानसे जगत् सत्यभासताहै और उसमें रागद्वेषभासते हैं—ज्ञानसे सबशांत होजाते हैं। हेरामजी! यहजगत् भ्रममात्रहै; ज्ञानवान्के निश्चय में सबचिदाकाशहै और अज्ञानीकेनिश्चयमेंजगत्है। यदि बड़ेक्षोभ प्राप्तहों तौभीज्ञानवान्को चलानहींसक्ते क्योंकि, उसके निश्चयमें कुछ द्वैतनहीं फुरता, वह सदा एकरस रहता है। यदि प्रलयकालके मेघगर्जें; समुद्र उछले और पहाड़के ऊपर पहाड़पड़ें; ऐसे भयानक शब्दहों तौभी ज्ञानवान् के निश्चय में कुछ द्वैतनहीं फुरता। जैसे कोई

पुरुष सोयापड़ाहोतो उसके स्वप्नेमें बड़ेक्षोभ होते हैं और जाग्रत्के निकट बैठेभी नहीं भासते; तैसेही ज्ञानवान्को निश्चयमें द्वैतकुछनहीं भासता क्योंकि; है नहीं और अज्ञानीको होते भासते हैं। जैसे बन्ध्यास्त्री स्वप्नेमें अपनेपुत्रको देखती है सो अनहोता भ्रमसे उसको भासताहै तैसेही अज्ञानीको अनहोता जगत् सत्यहोकर भासताहै। हे रामजी! भ्रमसे अनहोता जगत् भासताहै और होतेका अभाव भासता है। जैसे बन्ध्या अनहोते पुत्रको देखतीहै और पुत्रवाली स्वप्नेमें पुत्रका अभाव देखतीहै; तैसेही अज्ञानसे अनहोता जगत् सत् भासताहै और सदाअनुभवरूप आत्माका अभाव भासताहै सो भ्रमसेही और का और भासताहै। जैसे दिनमें सोयाहुआ स्वप्नेमें रात्रि देखताहै और रात्रिको सोयाहुआ स्वप्नेमें दिनदेखताहै; शून्यस्थानमें नानाप्रकारके व्यवहार और अन्धकारमें प्रकाश देखताहै सो भ्रमसेही देखताहै और पृथ्वी पर सोयाहै और स्वप्नेमें आकाशपर दौड़ता फिरता है और आपको गढ़ेमें गिरता देखताहै सोभी भ्रमसेही भासताहै;तैसेही यहजाग्रत् जगत्का विपर्ययरूपभी भ्रमसेही देखताहै। जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछभेदनहीं; जैसे स्वप्नेमें हुयेभी बोलते चलते दृष्ट आते हैं। हे रामजी! जैसे स्वप्नेमें तुमको नानाप्रकारका जगत्भासताहै और जागकर कहतेहो सब भ्रममात्रथा; तैसेही हमको यह जाग्रत् जगत् भ्रममात्र भासताहै। जैसे जल और तरंगमें कुछ भेदनहीं, तैसेही जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछभेदनहीं। जैसे दो मनुष्य एकही से होते हैं और दोसूर्यहों तो उनमें कुछ भेदनहींहोता, तैसेही जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछभेद न जानना। रामजीने पूंछा,हे भगवन्! स्वप्नेकी प्रतिभा अल्पमात्र भासती है और शीघ्रही जागकर कहताहै कि, भ्रममात्रथी और जाग्रत् दृढ़होकर भासती है पर तुम दोनोंको समान कैसे कहतेहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रतिभाका प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सो जाग्रत् कहाती है और जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहींहोता और चित्तमें स्मृति होती है वह स्वप्नाहै। वह जाग्रत और स्वप्ना दो प्रकारका है—जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होताहै वह जाग्रत्है और उसमें जब सोगया तब स्वप्नाहुआ उसस्वप्नेमें जगत् भासिआया तो जहां जगत् भासिआया वही उसकी जाग्रत् होगई और जहांसे सोयाथा वह स्वप्नाहोगया। वहां जो स्वप्ना भासित हुआ उसको जाग्रत्जानो और लोगोंसे चेष्टाकरनेलगा जब वहांसे मृतकहोगया फिर उसमेंआया तो पिछले को स्वप्ना जाननेलगा तो चित्तके भ्रमसे स्वप्ने को जाग्रत् देखा और जाग्रत्को स्वप्नादेखा।हेरामजी! सो यहक्याहुआ? जैसे किसीको स्वप्ना आया और उसमें अपनी चेष्टा और व्यवहार करनेलगा और फिर उसमें स्वप्नाहुआ उस स्वप्नांतरसे जागा फिर उसस्वप्नेमेंआया तो उसको स्वप्ना जाननेलगा और उसस्वप्ने को जाग्रत् जाननेलगा। हे रामजी! जैसे वह स्वप्नान्तर से जागकर उसको स्वप्ना

कहताहै और स्वप्नेको जाग्रत् कहताहै, तैसेही यहां जाग्रत् स्वप्नारूप है और आगे जो होता है वह स्वप्नान्तरहै। एक और प्रकार है कि, जो इस जाग्रत् में मृतक हुआ शरीर छूटगया तब परलोक देखता है सो परलोक जाग्रत् होगया और इस जाग्रत् को स्वप्ना जाननेलगा। जैसे स्वप्ने से जागा स्वप्ने को भ्रम कहता है, तैसेही इस जाग्रत् को परलोक में भ्रमजानता है। फिर परलोक में स्वप्ना आया तब परलोककी जाग्रत् स्वप्नवत् होगई और जो स्वप्ने में सृष्टि भासी उसको जाग्रत् जानता है। फिर वहां से मृतक होकर यहां आया तब यह जाग्रत् होगई और परलोक स्वप्ना होगया। इससे हे रामजी! स्वप्ना और जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं। जब मूर्ख स्वप्नेसे जागते हैं तब वे जानते हैं कि, इसका नाम जागना है और इसको जाग्रत् मानतेहैं और उसको स्वप्ना जानते हैं। पर वास्तव में वह स्वप्नान्तर है और यह स्वप्ना है। इसमें जो तीव्रसंवेग होरहा है इससे उसको जाग्रत् जानते हैं और उसको स्वप्ना जानते हैं पर दोनों तुल्य हैं कुछ भेदनहीं। आत्मा में दोनों असत्यरूप हैं और इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती है। आत्मा न कदाचित् उपजता है; न मरता है और उपजताभी है और मरताभी है। उपजता इस कारण से नहीं कि; पूर्व सिद्ध है और मरता इसकारण नहीं कि, भविष्यत्कालमें भी सिद्धहै। परलोक में सुख दुःख भोगता है और २ भ्रमकाल में जन्मता भी है और मरता भी है सो प्रत्यक्ष भासता है पर वास्तव में ज्यों का त्यों है। हे रामजी! यह जगत् उसका आभासहै और चैतन्य का चमत्कार चैत होकर भासता है। जैसे घट मृत्तिकारूपहै—मृत्तिकासे भिन्न नहीं; तैसेही चेतनभी चैतन्य रूप है। चैतन्य से भिन्न जगत् नहीं—स्थावर जंगम जगत् सब चिन्मात्र है। हे रामजी! जैसे तुमको स्वप्ना आता है और उसमें पत्थर और पहाड़ भासते हैं सो तुम्हाराही अनुभव रूप हैं भिन्नतो नहीं; तैसेही यह दृश्य सब चिन्मात्र रूप है। जैसे घट मृत्तिका से भिन्न नहीं; तैसेही जगत् चिदाकाश से भिन्न नहीं। जैसे काष्ठके पात्र काष्ठसे भिन्न नहीं—सब काष्ठहीरूप हैं; तैसेही जगत् चैतन्यरूप है—चैतन्य से भिन्न नही। जैसे पाषाण की मूर्त्ति पाषाणरूप है; तैसेही जगत् भी चैतन्यरूप है जैसे समुद्रही तरंग रूपहो भासताहै; तैसेही चैतन्य जगत्रूपहो भासता है जैसे अग्नि उष्णरूप है, तैसेही चैत चैतन्यरूप है जैसे वायु स्पंदरूप है तैसे चैतन्य चैतरूप है जैसे वायु निस्स्पंदरूपहै तैसे चैतन्य चैत रूप है; जैसे पृथ्वी घनरूपहोती है और आकाश शून्य रूप होताहै—जहां शून्यताहै वहां आकाशहै—तैसेही जहां चैतहै तहां चैतन्य है। जैसे स्वप्ने में शुद्ध संवित् पहाड़ और नदियाँरूप हो भासती हैं; तैसेही चिन्मात्र सत्ता जगत्रूप होभासती है। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ तुमको भासते हैं उनको त्यागकर आत्माकी ओर देखो। यह सब विश्व आत्म-

रूप है । शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाशमें निर्मल है; ऐसे जानकर उसमें स्थित हो । हे रामजी ! जब तुमको स्वभाव सत्ताका अनुभव साक्षात्कार होगा तब सर्व द्वैत कल्पना भासती है सो शांत होजावेगी और केवल आत्मतत्त्व मात्र शेष रहेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनन्नामचतुर्दशाधिकद्विशततमस्सर्गः २१४ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! चिदाकाश कैसा है जिसको तुम परब्रह्म कहते हो और उसका क्या रूप है ? तुम्हारे अमृत रूपी वचनों को पानकरता मैं तृप्त नहीं होता इससे कृपाकरके कहिये । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे एक माता के गर्भसे दो पुत्र जोड़े उत्पन्न होते हैं और उनका एकसा आकार होता है पर जगत् के व्यवहार के निमित्त उनका नाम भिन्न भिन्न होता है और भेद कुछनहीं और जैसे दोपात्रों में जल रखिये तो जल एकही है और पात्रों के नाम भिन्न भिन्न होते हैं तैसेही स्वप्न और जाग्रत् दो नाम हैं परन्तु एकही से हैं पर आत्मामें दोनों कल्पित हैं और जिस में दोनों कल्पित हैं सो चिदाकाश है । वृत्ति जो फुरती है और देश देशांतर को जाती है उसके मध्यमें जो संवित् ज्ञानरूप है कि; जिसके आश्रय वृत्ति फुरती है सो चिदाकाश संवित् है और वृक्षजो रसको खैंचकर ऊर्ध्व को जाते हैं सो उसी के आश्रय जातेहैं—ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश रूप है । हे रामजी ! जैसे सर्व वृक्ष फूल, फल, टास आदि सहित रसके आश्रय फुरते हैं, तैसेही यह सब जगत् चिदाकाश के आश्रय फुरता है और उसीके आश्रय वृत्ति फुरती है—ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश है । जिसकी इच्छा सब निवृत्त होगई है और रागद्वेषरूपी मल शरत्कालके आकाशवत् निवृत्त होगया है और शुद्ध संवित् है उसको चिदाकाश जानो । हेरामजी ! जगत् का जब अन्त हुआ पर जड़ता नहींआई उसके मध्य जो अद्वैतसत्ताहै सो चिदाकाश है; बेल, फूल, फल, गुच्छे और वृक्ष जिसके आश्रय बढ़ते हैं सो चिदाकाश है और रूप, अवलोक, मनस्कार इन तीनों का जहां अभावहै—ऐसी जो शुद्ध संवित् है—वह चिदाकाश है । पृथ्वी, पर्वत और नदियाँ सर्वका जो आश्रयहै सो चिदाकाश है और द्रष्टा, दृश्य, दर्शन; ये तीनों जिससे उपजे हैं और फिर जिसमें लीनहोते हैं ऐसीजो अधिष्ठान सत्ता है सो चिदाकाश है । जिससे सर्व उपजते हैं; जो यह सर्व है और जिसमें सर्व है; ऐसा सर्वात्मा चिदाकाश है और अर्द्धरात्रि को जो उठता है और इन्द्रियों की चपलता का विषय से अभाव होता है और उस कालमें अफुरसत्ता होती है सो चिदाकाश है । हे रामजी ! जिस संवित् में स्वप्ने की सृष्टि फुरती है और फिर जाग्रत् भासतीहै और दोनोंके करनेवालेमें शोभताहै सो चिदाकाश है । जैसा फुरना होता है, तैसाही जगत् में भासता है और वही द्रष्टा, दर्शन, दृश्य होकर भासता है

दूसरा कुछ नहीं। आत्मरूपी सूत्र में असत्य-सत्य जगत्रूपी मणिपिरोये हुये हैं। जिसके आश्रय इनका फुरना होताहै वह चिदाकाश है। हे रामजी! जिसके आश्रय एक निमेष में जगत् उपजता है और उनमेषमें लीन होजाताहै, ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है उसको चिदाकाश जानो। यह सब जगत् मिथ्याहै और भ्रांति से भासताहै जैसे मरुस्थल की नदी भासती है। इससे जो रहित है और जिसमें संकल्प बिकल्प का क्षोभनहीं और सदा अपने आपमें स्थित और दुःख से रहित निर्विकल्प सत्ता है वही चिदाकाश है। हे रामजी! नेति नेतिसे जो पीछे अनाद्यपद शेष रहता है उसको तुम चिदाकाश जानो। शुद्ध चैतन आत्मसत्ता सबका अपना आप और सबका अनुभव रूप होकर प्रकाशता है। उसमें जैसा फुरना होता है कि, ये ऐसे हैं तैसाही हो भासता है सो चिदाकाशरूप है। इससे शुद्ध आत्मसत्ताही फुरने से जगत्रूप होभासती है। जैसे जाग्रत् के अन्तमें अद्वैतसत्ता होती है और फिर उससे स्वप्नेकी सृष्टिभासि आती है पर स्वप्ने की सृष्टि वास्तव कुछ नहीं उपजी वही अनुभव स्वप्नेकीसृष्टि होभासती है; तैसेही यह जगत् जो कार्यरूप दृष्टिआताहै सो अविद्यासे भासताहै वास्तवमें कुछउपजानहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अकारण भासती है, तैसेही यहसृष्टि अकारणहै। ब्रह्मासे आदि चींटीपर्यन्त सर्व स्थावर जंगमरूप जगत् चिदाकाशरूपहै कुछ उत्पन्न नहींहुआ और जो दूसरा कुछ न हुआ तो कारण कार्य भी कुछ न हुआ। हे रामजी! न कोई द्रष्टाहै,न दृश्यहै, न भोक्ताहै और न भोगहै सब कल्पनामात्र है। आत्मअज्ञानसे कल्पना उठती हैं और आत्मज्ञानसे लीन होजाती हैं-जैसे समुद्रके जानेसे तरंग कल्पना मिटजाती है, क्योंकि, अनुभव आत्मामें कारण-कार्यकुछ नहींहुआ। जो तुमकहो कि,कारणकार्य क्यों भासते हैं तोजैसे इन्द्रजाल की बाजीमें नानाप्रकारके पदार्थ दृष्टिआते हैं परन्तु वास्तव कुछनहीं बने, तैसेही यह जगत् कारण-कार्यकुछ बनानहीं। जैसे स्वप्नेमें अपना अनुभवही नगररूपहो भासताहै; तैसेही यहजगत् भासता है। हे रामजी! आत्मसत्ताही फुरने से जगत्की नाईं भासती है। जिसजगत्को इन्द्ररूप कहते हैं वह अहंरूप है; जिसको समुद्र कहते हैं वहभी अहंकार रूपहै; जिसको रुद्र कहते हैं वह अपनाही अनुभवरूप है इत्यादिक जो सब जगत् भासताहै सो भावनामात्रहै। जैसी जिसकी भावना दृढ़ होती है तैसाही रूप होकर भासताहै। जैसे चिन्तामणि और कल्पांतरमें जैसी भावना होतीहै, तैसाही सिद्ध होताहै; तैसेही आत्मसत्तामें जैसी भावना होती है तैसाही हो भासती है। इससे जब चिदाकाशका निश्चय दृढ़ होता है तब अज्ञानसे जो विरुद्ध भावना हुई थी सो निवृत्त होजाती है॥

इतियोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगन्निर्वाणवर्णनंपंचदशाधिकद्विशततमस्सर्गः २१५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मन थोड़ा भी फुरताहै तब यह जगत् उत्पन्न हो आताहै और जब फुरनेसे रहित होताहै तब जगत् भावना मिटजाती है। इस प्रकार जो जानताहै सो ज्ञानवान्है; वह पुरुष इन्द्रियोंसे देखता, सुनता, ग्रहण करता भी निर्वासनिक होजाताहै और जगत्की ओरसे घनसुषुप्त होताहै। हे रामजी! जिसका मन निर्वासनिक और शांतहुआहै वह बोलता, चालता, खाता, पीता भी पाषाणवत् मौन होजाताहै—इससे यह जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। जैसे मृगतृष्णाकी नदी अनहोती भासतीहै और भ्रमसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै; तैसेही मनके भ्रमसे आत्मा में जगत् भासताहै; आदि कारणसे कुछ नहीं उत्पन्न हुआ। जिसका आदि कारण न पाइये वहकारणभी असत्यजानिये-इससे सबजगत् कारणबिनाहीभासताहै उपजा कुछ नहीं। हे रामजी! जोपदार्थ कारणबिनाभासताहै और जिसमें भासताहै वह अधिष्ठान सत्ताहै क्योंकि; जो अधिष्ठानमें भासितहोताहै उसकोभी वहीरूपजानिये और जो अधिष्ठानसे व्यतिरेकभासे उसेभ्रममात्रजानिये। जैसे स्वप्नेमें इन्द्रियादिकपदार्थभासते हैं और उसमें दृश्यदर्शन सब मिथ्याहैं हुआ कुछ नहीं, तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्याहै, न कुछ उपजाहै; न स्थित हुआहै; न आगे होनाहै और न नाश होताहै। जो उपजाही नहीं तो नाशकैसेहो? न कोई दृष्टाहै; न दर्शनहै और न दृश्यहै; केवल चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थितहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! यहदृष्टा, दर्शन और दृश्यक्याहै और कैसे भासताहै? यह आगेभी कहाहै और अबफिरभी कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह दृश्यसब अदृश्य रूपहै; कारणही दृश्यहो भासतीहै और दृष्टा, दर्शन, दृश्य जोकुछ जगत् विस्तार सहित भासताहै सो आदिस्वरूप से सब परमात्म स्वरूप है। जैसे स्वप्नेमें आकाशका बनभासे और और पदार्थभासें सोसब चिदाकाशरूपहैं; तैसेही यह जगत्भी चिन्मात्र रूपहै—कारण—कार्यभाव कहींनहीं। जैसेवायु स्पन्दरूप होती है तब भासती है और निस्पन्द हुये नहीं भासती; तैसेही आत्मामें जब चित्तफुरताहै तब आत्मसत्ता जगत् रूपहो भासती है सो वही आत्मसत्तारूप भावमेंभावहै। जैसे आकाशमें शून्यताहै; तैसेही आत्मामें जगत् आत्मरूप है। इससे जो कुछ भासता है सो चेतनका आभास प्रकाश है और परमार्थ सत्ता केवल अपने आप में स्थित है। इससे इतर कहिये तो न दृष्टा है और न दृश्य है आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों है। रामजीने पूछा, हे ब्राह्मण ब्रह्मकेवेत्ता! जो इसीप्रकार है तो कारण—कार्य्यका भेद कैसे होता दीखता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी; जैसा जैसा फुरना उसमें होता है तैसाही तैसारूप हो भासता है। चेतन आकाशही जगत् रूप हो भासता है और कहीं न कारण है; न कार्यहै। जैसे स्वप्न सृष्टि कारण—कार्य सहित भासती है सो किसी कारण से नहीं उपजी—अकारण रूपहै; तैसेही यह सृष्टि

किसी कारण से नहीं उपजी अकारण रूप है। न कहीं कर्त्ता है और न भोक्ता है केवल भ्रम से कर्त्ता भोक्ता भासता है और स्वप्ने की नाईं विकल्प उठते हैं—वास्तव में ब्रह्मसत्ताही है। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में नगर और जगत् भासता है सो चिदाकाश अनुभव सत्ताही ऐसे हो भासती है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् संपूर्ण चिदाकाश है। जब ऐसे जानोगे तब जगत् भी भ्रम तत्त्व भासेगा। हे रामजी! यह जगत् चित्तके फुरने से उपजा है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है; तैसेही चित्त भ्रम से जगत् को कल्पता है पर इसका कारण ब्रह्मही है और कारण कहीं नहीं क्योंकि; महाप्रलय में चिदाकाशही रहताहै सो कारण किस का हो? वहीसत्ता इन्द्र, रुद्र, नदियां, पर्वत आदि जगत् हो भासता है और उससे भिन्न द्वैत रूप कुछ नहीं। इसमें जैसा जैसा फुरना होता है तैसाही रूप भासता है। जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही रूप भासता है; तैसेही आत्म सत्ता में जैसी भावना होती है तैसाही पदार्थरूप होभासता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकारणकार्याभाववर्णनं नामषोड़शाधिकद्विशततमस्सर्गः २१६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अचेत चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्म सत्ताहै सोही जगत्‌रूप होभासती है। शुद्धचिन्मात्रमें जब अहंफुरना होताहै तबजगत् होभासताहै। वही अहंरूप जीव है जगत् में जीवता दृष्टि आता है परन्तु मृतक की नाईं स्थित है और तुम, मैं आदिक सब जगत् जीवता, बोलता, चलता और व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परन्तु काष्ठ मौनवत् स्थितहै। आत्मरूपी रत्नका जगत्‌रूपी चमत्कार है और वह प्रकाश आत्मासे भिन्न नहीं। जैसेआकाश में तरवरे; मरुस्थल में जल और धुयें के पर्वत मेघभासते हैं सो भ्रांति मात्र हैं; तैसेही यह जगत् लक्षणभी भासता है परन्तु वास्तव में कुछनहीं अवस्तु भूत है—उपजा कुछनहीं। हे रामजी! चित रूपी बालक ने जगत् जाल रूपी सेना रची है सो असत्य है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक भूत भ्रांतिमात्र हैं और उनमें सत्य प्रतीति करनी मूर्खता है। बालक की कल्पना में सत्य प्रतीति बालकही करते हैं और जो इसजगत् का आश्रय करके सुखकी इच्छा करते हैं वे मानो आकाश के धोनेका यत्न करतेहैं और उनका सर्वयत्न व्यर्थहै। यहसब जगत् भ्रांतिरूपहै; इसमें जो आस्था करके इसके पदार्थ पानेका यत्न करते हैं सो जैसे कहीं पुत्र पानेका यत्नकरें सो व्यर्थ है, तैसेही जगत् में जो सुख के पाने का यत्न करते हैं सो व्यर्थ यत्न है। हे रामजी! यह पृथ्वी आदिक जो संपूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं सो भ्रांति मात्र हैं और जो भ्रांति मात्र हैं तो इनकी उत्पत्ति किससे और कैसे कहिये? जो मूर्ख बालक हैं उनको पृथ्वी आदिक जगत् के पदार्थ

सत्य भासते हैं ज्ञानवान् को ये सत्य नहीं भासते और अज्ञानी को सत्य भासते हैं पर उनसे हमको क्या प्रयोजनहै? जैसे सोयेको स्वप्नेमें आत्म अनुभवसत्ताहीपृथ्वी, पहाड़ और नदियां जगत् हो भासता है पर वे सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं; तैसेही यह जगत् आकार सहित भासता है परन्तु आकार कुछ बना नहीं—निराकार सत्ताही जगत् रूप हो भासतीहै और यह जगत् निराकारहीहै पर और कुछनहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽभावप्रतिपादनन्नाम सप्तदशाधिकद्विशततमस्सर्गः २१७॥

रामजीनेपूंछा, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि; जगत् अविद्यमान है पर अज्ञान से स्वप्ने की नाईं सत्यभासता है इससे विद्यमान भीहै और जैसे स्वप्ने का नगर शून्यरूप है तैसेही यह जगत् अज्ञान रूप है सो अज्ञान क्याहै और कितने कालकी अविद्याहुई है; किसकोहै और इसकाप्रमाण क्याहै सो कहिये? वशिष्ठजीबोले,हे रामजी! जो कुछ तुमको जगत् दृष्टिआताहै सो सब अविद्याहै। वह अविद्या अनन्तहै और देश औरकालसे इसका अन्त कदाचित् नहींहोता। जिसको अपने वास्तव स्वरूपका अज्ञानहै उसको सत् दिखाईदेताहै।इसपर एकइतिहासहै सो सुनिये। हेरामजी! आत्मरूप चिदाकाशके अणुमें अनन्त ब्रह्मांड स्थितहैं। उनमें से एक ब्रह्मांड इसीकासा है औरउस ब्रह्मांडके जगत् में तुरमत नाम एक देशहै जिसका राजा विपश्चित था। वह एकसमय अपनी सभामें बैठाथा और उसके चारोंदिशा में उसकी बड़ी तेजवान् सेना उपस्थित थी। वह अग्नि देवता के सिवा और किसी देवता को न पूजता था और बड़ी लक्ष्मी से शोभित और बहुत गुणों और ऐश्वर्यसे संपन्न था। एककाल में वह सभामें बैठाथा कि, पूर्व दिशाकी ओर से हरकाराआया और उसनेकहा, हे भगवन्! तुम्हारा जो पूर्वदिशाका मंडलेश्वरथा वह जरासे मृतक होके मानों यमकोजीतने गयाहै इससे पूर्वदिशाकी रक्षाकरो क्योंकि, वहां और मंडलेश्वरआता है। हे रामजी! इसप्रकार वह कहताहीथा कि, दूसरा हरकारा पश्चिम से आया और कहनेलगा कि, हे भगवन्! तुमने जो पश्चिमदिशा का मंडलेश्वर कियाथा सो तपसे मृतक होगया है और वहां एक और मंडलेश्वर आता है इसलिये वहां की रक्षाकरो। हे रामजी! इसप्रकार दूसरा हरकारा कहरहा था कि, एक और हरकारा आया और उसने कहा कि, हे भगवन्! दक्षिणदिशाका मंडलेश्वर पूर्व पश्चिम की रक्षाके निमित्त गयाथा सो मार्गही में मृतक हुआ इससे दोनोंकी रक्षाके निमित्त सेनाभेजो क्योंकि, एकदृढ़शत्रु आयाहै और विलम्बका समयनहीं है शीघ्रही सेनाभेजिये। हे रामजी! इस प्रकार सुनकर राजा बाहर निकला और कहनेलगा कि, सब सेना मेरे पास हो-

कर दिशाओंकी रक्षाके निमित्तजावे और बड़ेबड़े शस्त्र, हाथी,घोड़े,रथ आदिक सेना लेजावो। हे रामजी ! इस प्रकार राजा कहताही था कि, एक और पुरुष आयाऔर बोला कि, हे भगवन् ! उत्तरदिशाकी ओर जो तुम्हारामंडलेश्वरथा उसकेऊपर और शत्रु आपड़ा है और बड़ायुद्ध होताहै इससे उसकी रक्षाके निमित्त शीघ्रही सेना भेजो अब विलम्ब का समय नहीं है और आगे कई दुष्टचले आते हैं। मैं फिरा जाताहूं क्योंकि, मेरा स्वामी युद्धकरता है। हे रामजी ! इस प्रकार कहकर वह चलागया तब द्वारपालने आकर कहा कि, हे भगवन् ! उत्तर दिशाका मंडलेश्वर आया है आज्ञाहो तो लेआऊं ! राजाने कहा, लेआवो। वह उसे लेआया और उस मंडलेश्वर ने राजा के सन्मुखआकर प्रणाम किया। राजाने देखा कि, उसके अंग टूटगये हैं और मुखसे रुधिर चलाजाता है पर ऐसी अवस्था में भी उस धैर्यसंयुक्त मंडलेश्वर ने कहा कि, हे भगवन् ! मेरे अंगों की यह दशाहुई है। मैं तुम्हारा देश रखने को चलाथा पर मेरे ऊपर शत्रु आनपड़ा और मेरी सेनाथोड़ी थी इसकारण दौड़कर तुम्हारे पास आयाहूं कि; प्रजाकी रक्षाकरो। हे रामजी ! जब इसप्रकार उसने कहा तब राजा ने सब मंत्रियों को बुलाया। मंत्री राजाके पासआये और बोले, हे भगवन् ! अब तीन उपाय छोड़ो और एक उपाय करो अर्थात् एक नम्रता, दूसरा धन देना और तीसरा बुद्धिभेद ये तीनों अब नहीं चाहिये। ये दुष्ट नम्रतामाननेवाले नहीं हैं क्योंकि, नीच और पापी हैं और धन इसकारण न देना चाहिये कि, ये आधीन हैं और बुद्धिकरि भेदभी नहीं जानते क्योंकि; सब मिलके इकट्ठे हुये हैं। इससे ये तीनों उपाय छोड़ो और एक उपायकरो कि, युद्धहो अब विलम्बका समय नहीं है क्योंकि, उनकीसेना निकटआई है—अब उत्साहसहित कर्म करना है प्राणों की रक्षा नहीं चाहिये। हे रामजी ! जब इसप्रकार मंत्रियोंनेकहा तब राजाने आज्ञाकी कि, सबसेना मेरी आज्ञा से उनके सन्मुखजावे और निशान, नगारे, हस्ती, घोड़ा, रथ, पियादे सेनाके साथ जावें। इसप्रकार जब राजाने कहा तब सब विद्यमान सेना आन स्थित हुई और नौबत नगारे बजानेलगे। जब नानाप्रकारके शस्त्रोंसहित चारोंप्रकारकी सेनाइकट्ठी हुई तब राजाने कहा, हे साधो ! तुम आगेजावो। सेनाआगेहो उसकेपीछे सेनापति जावें और शत्रुओं के साथयुद्धकरो मैंभी स्नानकरके आताहूं। हे रामजी ! इसप्रकार कहकर राजाने मंत्रीको भेजा और आप गंगाजलसे स्नानकर एकस्थान में अग्नि काकुंडथा उसके निकटजाकर हवन करनेलगा। जब अग्नि प्रज्वलितहुई तब राजाने कहा; हेभगवन् ! इतनाकाल मुझको व्यतीतहुआ है कि, यथाशास्त्रमें बिचरता रहा; अपनीप्रजा सुखीरक्खी; अभय राज्यकिया; शत्रुको नाशकरके सिंहासनके नीचे दबाया और आप सिंहासनपर बैठाहूं। पातालवासी दैत्यभी मैंने जीतरक्खे हैं; दशोंदिशा

अपने आधीनकी हैं; सातोंसमुद्र पर्यंत सब मेरेभयसे काँपते हैं और सबठौरमें मेरी कीर्त्ति होरही है । रत्नोंकेस्थान मेरे भरेहुये हैं और वस्त्र, सेना, घोड़े और हाथी भी बहुतहैं । मैंने बड़ेभोगभी भोगकर बड़ेबड़े दानभीकिये हैं और सिद्ध और देवताओं मेंभी मेरायशहुआहै । निदान सबओर मेरायशहुआ है; शरीरभी बूढ़ाहुआ है और क्षोभभी बड़ाप्राप्तहुआहै इससे अब मेराजीनेसे मरनाभलाहै । हे भगवन् ! मैं तुमको शीशनिवेदन करताहूं; कृपाकरके लो । यदि मुझपर प्रसन्नहोना तब एककी चारमूर्त्ति देना कि, चारोंओरजाऊं और जहांमुझको कुछकष्टहो वहां दर्शनदेना । हे रामजी ! इसप्रकार कहकर उसने खड्गनिकाला और अपनाशीश काटकर अग्निमें डालदि-या तब धड़भी आपही अग्निमेंजापड़ा और शीशधड़दोनों भस्महोगये अथवा अग्निने भक्षण करलिये । तब उसीकीसी चारमूर्त्ति निकलआईं और उनके उसीकेसे आका-रवस्त्र, भूषण, मुकुट और कवच पहिरे और नानाप्रकारकेशस्त्र धारेहुये उदयहुये । हे रामजी ! इसप्रकार बड़ेतेज संयुक्त चारोंराजा विपश्चित प्रकटभये और रथ, हस्ती, घोड़े, प्यादे और चारोंप्रकारकी सेनाभी प्रकटहुई । निदान चारों ओरसे शत्रुयुद्ध करनेलगे और बड़ायुद्ध होनेलगा । नगर जलनेलगे, बड़ा हाहाकार शब्द होनेलगा और शूरबीर युद्धमें प्राणको त्यागते और उछल२कर लड़तेथे । बड़ेरुधिरके प्रबाह चलतेथे, खड्ग और बरछीकी वर्षाहोतीथी और अग्निका अट्ट अट्ट शब्दहोताथा— मानो समयबिनाही प्रलय होनेलगी है । निदान बड़ा युद्धहुआ जो सूरमाथे वे युद्धमें मरनेको जीनामानतेथे और जीनेकोमरना जानतेथे; ऐसानिश्चयधरके वे युद्धकरतेथे और जो कायरथे वे भागभाग जातेथे—जैसे गरुड़के भयसे सर्पभागजाते हैं और सू-रमें सन्मुखहोकर लड़तेथे । इसप्रकार बड़ा युद्ध होनेलगा और रुधिरकी नदियांचलीं जिनमें हाथी,घोड़े, रथ और सूरमें बहतेजातेथे और बड़े बड़े वृक्ष और नगर गिरते और बहतेजातेथे । मांसभक्षणके निमित्त योगिनीभी आउपस्थितहुई । जोजो युद्धमें मृतकहो उसको अप्सरा और विद्याधरी विमानपर चढ़ाकर स्वर्गको लेजातीथीं । हे रामजी ! इसप्रकार जबयुद्धहुआ तब राजा विपश्चितकी सेनासब शून्यहोगई अर्थात् थोड़ीहोगई । राजाने सुना कि, सेनाबहुत मारीगई है इसलिये उसनेसवार होकरदेखा कि, सेनाथोड़ी रहगई है इससे एकएक राजा एकएक ओरकोगया अर्थात् चारोंराजा चारोंओरगये और विचार करनेलगे कि, यह महागम्भीर सेनारूपी समुद्रहै, इसमें शस्त्ररूपी जलहै, धाररूपी तरंगहै और सूरमेंरूपी मच्छहैं । ऐसा जो समुद्रहै उसको अगस्त्यहोकर मैंपानकरूं—ऐसेविचारकर उसने उद्यमकिया क्योंकि; शत्रुकी विशेष सेनादेखी—एकतो आगेहीको चलीआवे, दूसरे बहुतसूरमें तेजसे सेनाकोजलावें और तीसरे बहुतसेनाआवे । ऐसी तीनप्रकारकी सेनाके राजा ने तीनउपाय किये । प्रथम

उसने वायव्यास्त्र हाथमें लिया और परमात्मा ईश्वरको नमस्कारकर और मंत्रपढ़के पवनका अस्त्रचलाया। इससे-अंधेरीआगई और जितनीसेना आगेचली आतीथी वह सब उलटी उड़नेलगी। फिर उसने मेघरूपी अस्त्रचलाया तब वर्षाहोनेलगी और उससे जो तेज उनकी सेनाको जलाताथा वह शीतलहोगया। उसके अनन्तर उसने शिवअस्त्रचलाया उसमेंसे प्रथमशस्त्रोंकी नदीचली,फिर त्रिशूलोंकीनदीचली, फिर चक्रोंकी नदीचली, फिर वज्रकी नदीचली, बरछीकी नदीचली; बिजलीकीनदी चली और अग्नि इत्यादिक की नदीचली और दूसरे शस्त्रों और अस्त्रों की वर्षाहुई। जब इसप्रकार नदियांचलीं तब जो कुछसेना सन्मुख आतीथी सो मृतक होगई। जैसे कमलनी काटीजाती है तैसेही शूरवीर काटेगये। कोई पहाड़ोंकी कन्दराओं में गिरें और वहांसे उड़कर समुद्रमें जापड़ें और कोई सुमेरुकी कन्दराओंमेंजाकर छिपें और समुद्र में जाकर डूबें-जैसे अज्ञानी विषयों में डूबते हैं। इसप्रकार दोनों ओर से सेना शून्य हुई और चारों दिशाओं की सेना नष्ट होगई। नीच से नीच देशों के और पहाड़ की कन्दराओं के रहनेवाले सब बहतेजावें। हे रामजी! कई शस्त्रों से और कई आंधी से उड़े सो सब क्षेत्रों में जापड़े और कई वन में और कई नीचे देशों में गिरे। जो पुण्यवान्थे वे उत्तम क्षेत्रमें जापड़े और मृतकहोकर वे स्वर्ग में गये और पापी नीचदेशोंमें जायपड़े उससे दुर्गतिको प्राप्तहुये। कई पिशाचहुये,कितनों को विद्याधरियां लेगईं और कईऋषीश्वरोंके स्थानों में जीतकर जापड़े उनकी उन्हों ने रक्षाकी। इसीप्रकार कितने बाणोंसे छेदेहुये नाशहुये और कईरुधिरकी नदियों में बहते समुद्रकीओर चलेगये। हे रामजी! जब सबसेना शून्यहोगई तब आकाशशुद्ध हुआ। जैसे ज्ञानीकामन निर्मल होताहै तैसेही आकाश अधिक क्षोभसे रहितभया। जब सबसेना शून्यहोगई तब चारोंराजा आगेचले। हे रामजी! निदान चारों विपश्चित चारोंदिशाओंके समुद्रोंपर जापहुंचे, तब उन्होंने क्यादेखा कि,बड़ेगम्भीर समुद्रहैं; कहींरत्न और कहीं हीरा मोती इत्यादिक चमकते हैं और बड़ेगम्भीर समुद्रमें बड़ेमच्छ और तरंग उछलते हैं और रेतीमें नानाप्रकारके लौंग, इलाची, चन्दन इत्यादिकके वृक्ष समुद्रपर जाकरदेखे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितसमुद्र
प्राप्तिर्नामद्विशताधिकाष्टादशःसर्गः २१८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार राजाविपश्चित समुद्रकेपारजा पहुंचा तब उसके साथ जो मंत्रीपहुंचेथे उन्होंनेराजाको सबस्थानदिखाये जो बड़ेगम्भीरथे। बड़ेगम्भीर समुद्र जो पृथ्वीके चहुंफेर वेष्टितथे वहभी दिखाये और बड़े२ तमालवृक्षबावलियां; पर्वतोंकी कन्दरा; तलाव और नानाप्रकारके स्थानदिखाये। ऐसे स्थान

राजाको मन्त्रीने दिखाकरकहा, हे राजन्! तीनपदार्थ बड़ेअनर्थ और परमसारकेकारणहैं—एकतोलक्ष्मी, दूसरादेह आरोग्य और तीसरा यौवनावस्था। जो पापीजीवहैं वे लक्ष्मी को पापमें लगातेहैं, देह आरोग्यतासे विषय सेवतेहैं और यौवन अवस्था मेंभी सुकृत नहीं करते, पापही करते हैं और जो पुण्यवान् हैं वे मोक्ष में लगाते हैं अर्थात् लक्ष्मीसे यज्ञादिक शुभकर्म और आरोग्य से परमार्थ साधते हैं और यौवन अवस्था मेंभी शुभकर्म करते हैं—पाप नहीं करते। हे रामजी! जैसे समुद्र और पर्वत के किसी ठौर में रत्नहोते हैं और किसी ठौर में दर्दुर होते हैं; तैसेही संसाररूपी समुद्र में कहीं रत्नों की नाईं ज्ञानवान्होते हैं और कहीं अज्ञानीरूपी दर्दुर होते हैं। हे राजन्! यह समुद्र मानो जीवन्मुक्त है क्योंकि; जलसेभी मर्यादा नहीं छोड़ता और राग द्वेष से रहित है। किसीस्थान में दैत्यरहते हैं; कहीं पंखोंसंयुक्त पर्वत; कहीं बड़वाग्नि और कहीं रत्न हैं परन्तु समुद्र को न किसीस्थान में राग है; न द्वेष है। जैसे ज्ञानवान् को किसी में राग द्वेष नहीं होता परन्तु सबमें ज्ञानवान् कोई विरला होताहै। जैसे जिस सीपी और बांससे मोती निकलते हैं सो विरलेही होतेहैं, तैसेही तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोई विरलाहोता है। हे रामजी! संपूर्ण रचना यहांकी देखो कि, कैसे पर्वत हैं जिनके किसीस्थान में पक्षीरहते हैं; किसीस्थान में विद्याधर रहते हैं; कहीं देवियां विलास करतीहैं; कहीं योगी रहते हैं और कहीं ऋषीश्वर; मुनीश्वर; कहीं ब्रह्मचारी, बैरागी आदिक पुरुष रहतेहैं। यहद्वीपहै और सातसमुद्रहैं जिनके बड़े तरंग उछलते हैं और पर्वतका कौतुक और आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, ऋषि, मुनिकोदेखो और देखो कि, सबको आकाश ठौर देरहा है पर महापुरुष की नाईं आप सदा असंग रहता है और शुभ अशुभ दोनों में तुल्य है। स्वर्गादिक शुभस्थान हैं और चांडाल पापी नरकस्थान और अपवित्र हैं परन्तु आकाश दोनों में तुल्य है—असंगतसे निर्विकार है। जैसे ज्ञानीका मन सर्वस्थानों से निर्लेप होता है, तैसेही आकाश सर्व पदार्थों से असंग और न्यारा है और महात्मा पुरुष की नाईं सर्वव्यापी है। हे आकाश! तू कैसा है कि, सर्वप्रकाश तुझमें अन्धकार दृष्टि आता है--यह आश्चर्य है। हे आकाश! तू सब का आधारभूत है और जो तुझको शून्य कहते हैं वे मूर्ख हैं; दिनको तुझमें श्वेत भासता है; रात्रिको अन्धकार भासताहै और संध्याकाल में तेरेमें लाली भासती है पर तू तीनों से न्यारा है। ये तीनों राजसी, तामसी और सात्त्विकी गुण हैं पर तू इनके होते भी असंग है। हे आकाश! तू निर्मल है और तम तेरेमें दृष्टि आता है परन्तु तू सदा ज्योंकात्यों है। यह अनित्यरूप है। चन्द्रमातेरे में शीतलता करताहै, सूर्य दाहकहोते हैं; तीर्थआदिक पवित्र स्थानहैं और पापीआदिक अपवित्र स्थानहैं परन्तु तू सबमें एकसमान ज्योंकात्यों रहताहै और वृक्षको बढ़ने और ऊंचे

होने तूही देताहै। अपनी महिमाको तू आपहीजान और कोई तेरी महिमा पा नहीं सक्ता। तू निष्किंचन अद्वैतहै;सबको धाररहाहै और सबकाअर्थ तुझसेही सिद्धहोता है। तृण और जल नीचेको जाताहै और तू सबसे ऊंचाहै और विभु है। अनेकपदार्थ तेरे में उत्पन्नहोते और नष्टहोजाते हैं पर तू सदा ज्योंकात्यों रहताहै। जैसे अग्निते चिनगारे उपजते और अग्निही में लीनहोजाते हैं; तैसेही तेरेमें अनन्तजगत् उपजते और लीन होतेहैं और तू सदा ज्योंकात्यों रहता है। जो तुझको शून्य कहतेहैं वे मूढ़हैं। हे राजन्! ऐसा आकाश कौनहै सोभीसुनो। ऐसा आकाश आत्माहै जो चेतन आकाश है और जिसमें अनन्तजगत् उत्पन्न और लीन होजातेहैं। उसको जो शून्य कहते हैं वे महामूर्ख हैं—जो सर्वका अधिष्ठानहै; सर्वको धाररहा है और सदानिःसंग है ऐसेचिदाकाश को नमस्कार है। हे राजन्! यह आश्चर्य है कि, वह सदा एकरस है पर उसमें नाना तरंग भासतेहैं—यही मायाहै। हे राजन्! एक बिद्याधरी और विद्याधर थे उनके मन्दिरमें एक ऋषि आनिकला पर उस विद्याधरने उनका आदरभाव न किया इससे ऋषीश्वरने शापदिया कि; तू द्वादशबर्ष पर्यन्त वृक्ष होगा। निदान वह विद्याधर वृक्ष होगया परअब जो हमआयेहैं हमारे देखतेही वह शापसेमुक्त हो वृक्षभावको त्यागकर फिर विद्याधरहुआहै। यह ईश्वरकी मायाहै कि, कभीकुछ होजाता है और कभीकुछ होजाताहै। हे मेघ! तू धन्यहै! तेरीचेष्टाभी सुन्दरहै; तीर्थमें सदा तेरा स्नानहोता है; तू सबसे ऊंचे बिराजताहै और सब आचार तेराभला दृष्टिआताहै परन्तु एकतुझमें नीचताहै कि, ओलेकी बर्षाकरता है जिससे खेतियां नष्ट होजाती हैं और फिर नहीं उगतीं। तैसेही अज्ञानीकीचेष्टा देखनेमात्र सुन्दरहै और हृदयसे मूर्खहैं उनकीसंगति बुरीहै और ज्ञानवान्कीचेष्टा देखनेमें भलीनहीं तौभी उनकी संगति कल्याण करती है। हे राजन्! सबमेंनीच श्वानहै क्योंकि; जोकोई उसके निकट आता है उसको काट लेताहै; घर घरमें भटकता फिरताहै और मलीनस्थानोंमें जाता है; तैसेही अज्ञानी जीव श्रेष्ठपुरुषोंकी निन्दाकरताहै पर मनमें तृष्णारखता है और बिषयरूपी मलीन स्थानोंमें गिरताहै। वह मूर्खमनुष्य मानोश्वान है और श्वानसेभी नीचहै। ब्रह्माने संपूर्ण जगत्को रचाहै परन्तु उसमें श्वान सबसे नीचहै पर श्वान क्या समझता है सो सुनो। एक पुरुषने श्वानसे प्रश्नकिया कि, हे श्वान! तुझसे कोई नीचहै अथवा नहीं? तब श्वानने कहा कि, मुझसेभी नीच मूर्ख मनुष्यहै और उससे मैं श्रेष्ठहूं क्योंकि; प्रथम तो मैं सूरमाहूं; दूसरे जिसका भोजनखाताहूं उसकी रक्षाकरताहूं और उसके द्वारे बैठारहताहूं पर मूर्खसे ये तीनों कार्य नहीं होते। इससे मैं उससे श्रेष्ठहूं क्योंकि; मूर्खको देहाभिमान है इससे वह श्वानसेभी नीचहै। हे राजन्! परमअनर्थ का कारण देहाभिमान है। देहाभिमान से जीव परम आपदाको प्राप्त होता है। वह

मूर्ख नहीं मानो कौवाहै जो सबसे ऊंची टहनी पर बैठकर कां कां करताहै । हे राजन्! कमलकी खानोंके तालके निकट एककौवा जानिकला तो क्यादेखे कि; भवँर बैठेकमलकी सुगन्धि लेतेहैं; उनको देखकर वह हँसनेलगा और कां कां शब्द किया । तब उसको देख भवँरे हँसे कि, यह कमलकी सुगन्धि क्याजाने; तैसेही जिज्ञासी भँवरेके समान हैं जो परमार्थरूपी सुगन्धिलेते हैं । जो अज्ञानरूपी कौवेहैं वे परमार्थरूपी सुगन्धिनहीं जानते इसकारण मूर्खको देखकर जिज्ञासी हँसते हैं जो आत्मरूपी सुगन्धिको नहीं जानते । अरेकौवे ! तू क्यों हंसकी रीसकरताहै हंसतोहीरे और मोतीचुगनेवालेहैं और तू नीचस्थानोंको सेवनेवालाहै।मंत्रीने कहा,हे कोयल !तुम कमल कोदेखकर क्याप्रसन्न होतेहो? प्रसन्नतो तबहो जबबसन्तऋतुहो परयहतो बर्षाकाल का समयहै-यहफूल ओलोंसेनष्ट होजावेंगे । हे राजन् ! कोयलरूपी जो जिज्ञासी हैं उनको यहउपदेशहै । हे जिज्ञासी ! जो सुन्दरपदार्थ तुमको दृष्टिआतेहैं इनको देखकर तुम क्यों प्रसन्नहोतेहो? प्रसन्न तो तबहो जो यह सत्यहों पर यहतो मिथ्या हैं और अविद्याके रचेहैं । तुमक्यों प्रसन्नहोतेहो? अपनेकुलमें जाबैठो और अज्ञानीकामार्ग छोड़दो । जैसेकौवा हंसोंमें जा बैठताहै तौभी उसकाचित्त गन्दगीके भोजनमें होताहै और हंसका आहार जो मोती है उन मोतियोंकीओर देखताभीनहीं; तैसेही अज्ञानी जीव कदाचित् सन्तोंकी संगतिमें जाभीबैठताहै तौभी उसकाचित्तविषयोंकी ओरही भ्रमता फिरताहै और स्थिरनहींहोता । जैसे कोयलकाबच्चा कौवेको मातापिता जानकर उनमें जाबैठताहै तब उनकी संगतिसे यहभी गन्दगीके भोजन करनेवाला होजाता है इससे कोयल उसको बर्जन करते हैं कि, रेबेटा ! तू कौवेकी संगति मतबैठ, अपने कुलमें बैठ क्योंकि; तेराभी नीचआहार होजावेगा; तैसेही जिज्ञासी जो अज्ञानीका संगकरताहै तो उसके अनुसार उसकोभी विषयोंकी तृष्णा उत्पन्न होतीहै तबउसको बर्जनकरतेहैं कि, रेजिज्ञासी ! तू मूर्ख अज्ञानियोंमें मत बैठ; अपनाकुल जो संतजन हैं उनमें बैठ । जैसे कोयलकेबच्चे को कौवे सुखदेनेवाले नहीं होते; तैसेही मूर्ख तुझको सुखदेनेवाले नहींहोंगे । मंत्री फिर कहनेलगा; अरीईल ! तू क्यों हंसकीरीस करतीहै? तू भी बहुत ऊंचेउड़तीहै परन्तु हंसका गुणतेरेमें कोई नहीं।जब तू मांसको पृथ्वीपर देखती है तब वहां गिरपड़तीहै और हंसनहीं गिरते;तैसेही जो मूर्ख हैं वे संतोंकी नाईं ऊंचेकर्म भी करतेहैं परन्तु बिषयोंको देखकर गिरतेहैं पर संतनहींगिरते तो मूर्खसंतोंकीरीस कैसे करें । फिर मंत्री ने कहा; हे बगला ! तू हंसकीरीस क्याकरता है? अपने पाखण्ड को छुपाकर तू आपको हंसकीनाईं उज्ज्वल दिखाता है पर जब मछली निकलती है तब तू खालेता है; यही तेरेमें अवगुण है । हंसमानसरोवर के मोती चुगने वालेहैं और तू गढ़ेमेंसे तृष्णाकरके मछली खानेवाला है; तूक्यों आपको हंसमानताहै ? तैसेही अज्ञा-

नीजीव विषयोंकी तृष्णा करतेहैं और ज्ञानवान् विवेकसे तृप्तहैं; उनकीरीस अज्ञानी क्योंकरताहै? हे राजन्! जो हंसहैं वे सदा अपनीमहिमा में रहते हैं और अपना जो मोती का आहार है उसको भोजन करते हैं; दूसरे किसी पदार्थका स्पर्शनहींकरते। जैसे चन्द्र-मुखी कमल चंद्रमाको देखकर शोभापातेहैं-चन्द्रमाबिना शोभानहींपाते; तैसेही बुद्धि भी तब शोभापाती है जब ज्ञान उदयहोता है-आत्मज्ञान बिनाबुद्धि शोभा नहींपाती। बड़ेबड़े सुगन्धवालेवृक्षका माहात्म्य भँवरेही जानते हैं और जीव नहीं जानते। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! समुद्रके किनारेपर राजाविपश्चितको मंत्रियोंने ऐसे कहकर फिर कहा; हे राजन्! अब पृथ्वीनगरके मंडलेश्वर स्थापनकरो। हे रामजी! जब ऐसेमंत्रीने कहा तब सर्बदिशाओंके मंडलेश्वर स्थापनकियेगये और चारोंराजा जो अपनी अपनी दिशाके समुद्रपर बैठेथे उन्होंने अपने अपने मंत्रीसे कहा,हेसाधो! अब हमने समुद्रपर्यंत दिग्विजयकीहै और अब हमारीजयहुई है; अब चेतजोदृश्यहै सो दृश्य बिभूतिको देखो। समुद्रकेपार द्वीपहै, फिर उससमुद्रके पार और द्वीपहै; फिर समुद्रहै और फिर द्वीपहै और इसीप्रकार सप्तद्वीप और सात समुद्र हैं पर उनकेपार क्याहै? इसप्रकार सर्वदृश्य देखनेकी इच्छा करके उन्होंने अग्निदेवताका आवाहनकिया तब उनकी दृढ़ भावना से अग्निदेवता सन्मुखआन स्थितहुये और बोले, हे राजन्! जो कुछ तुमको वाञ्छाहै सो मांगो। तब राजाने कहा, हे भगवन्! ईश्वरकी मायासे पंचभौ-तिकदृश्यमें जो भूतहैं उनके देखनेकी हमारी इच्छाहै सो पूर्णकरो। हे देव! हम इसी शरीर से दृश्यदेखनेजावें और जब यह शरीर चलनेसे रहितहो तब मंत्रसत्तासे जावें पर जहां मंत्रकी भी गम नहीं वहां सिद्धिसे जावें और जहां सिद्धिकी भी गमनहीं वहां मनके वेगसे जावें और मृतकभी नहों। यह वर हमकोदो। हे रामजी! जब इसप्रकार राजाने कहा तब अग्निने कहा कि, ऐसेही हो। इसप्रकार कहकर अग्नि अन्तर्द्धान होगये। जैसे समुद्रसे तरंग उठकर फिर लयहोजावें तैसेही अग्नि अन्तर्द्धान होगये। जबराजाबि-पश्चित बरपाकर चलनेको समर्थहुआ तब जितने मंत्री और मित्रथे वे रुदनकरने लगे और बोले, हे राजन्! तुमने यह क्या निश्चय कियाहै? ईश्वरकी मायाकाअन्त किसीने नहींपाया इससे तुम अपने स्थानको चलो; यह क्या निश्चय तुमनेधाराहै? हे रामजी! इसप्रकार मंत्री कहतेरहे परन्तु राजाने उनकोआज्ञादेकर एकएकदिशाके समुद्र में प्रवेशकिया और चारोंदिशाओंमें चारोंराजाओंने गमनकिया पर जो बड़ेबड़े शक्तिवान् मंत्रीगणथे वे साथहीचले तब राजा मंत्रशक्तिसे समुद्रकोलांघगया। कहीं पृथ्वीपर चले और कहीं ऊंचेचले इसीप्रकार और द्वीपमें जानिकला, तब बड़ासमुद्र आया उसमें प्रवेशकरगया जिसमें बड़ेतरंग उछलतेथे और जिसका सौयोजनपर्यंत बिस्तारथा। कभी अधको और कभीऊर्ध्वको जातेथे। हे रामजी! ऐसे तरंग उछलें

मानो पर्वत उछलतेहैं। जब वे ऊर्ध्व को उछलें तब स्वर्गपर्यंत उछलते भासें और जब अधको जावें तब पाताल पर्यंत चलतेभासें। जैसे पानीमें तृणफिरताहै, तैसेही राजा फिरे। इसप्रकार कष्टसे रहितसमुद्र और दिशाको लांघगया परन्तुमध्यमें जो वृत्तान्तहुआहै सो सुनो। क्षीरसमुद्र में एक मच्छ रहताथा जिसको सबदेवता प्रणामकरते थे और जो बिष्णु भगवान्के मच्छअवतारके परिवारमेंथा। जब राजाने क्षीरसमुद्रमें प्रवेशकिया तब राजाको उसने मुखमें डाललिया पर राजा मंत्रके बलसे उसकेमुख से निकलगया। आगे फिर एकमच्छमिला उसने भी उसे मुखमेंडाललिया परउससे भी वह निकलगया। फिर आगे पिशाचिनीकादेशथा वहांराजाको पिशाचने कामसे मोहितकिया। फिर उसने दक्षप्रजापति की कुछ अवज्ञाकी जिससे उसने शापदिया और राजा वृक्ष होगया। निदान कुछकाल वृक्षरहकर फिर छूटा तो एकदेशमें दर्दुर हुआ और सौ वर्षपर्यंत खाईमें पड़ारहा। फिर उससे छूटकर मनुष्यहुआ तब किसी सिद्धके शापसे शिलाहोगया और सौ वर्ष पर्यंत शिलाहीरहा। उसके उपरांत अग्नि देवताने शिलासे छुड़ाया तो फिर मनुष्यहुआ। तब वह सिद्ध आश्चर्यमानहुआ कि, मेरे शापको दूरकरके यह मनुष्य क्योंकर हुआहै—यह तो मुझसेभी बड़ासिद्धहै। ऐसे जानकर उसने उसकेसाथ मैत्रीकी। इसीप्रकार दूसरे समुद्रोंकोभी यहलांघतागयाऔर क्षीरसमुद्र खारीसमुद्र और इक्षुकेरसके समुद्रको लांघकर द्वीपोंको लांघतागया। फिर एकअप्सरासे मोहितहुआ और बहुतकालमें वहांसे छूटा—तो एकदेशमें पक्षीहुआ और बहुतकाल पर्यंत पक्षीरहकर छूटा तो एकगोपी पिशाचिनीथी उसने बैलबनाके उसे रक्खा और दूसरेविपश्चितने बैलविपश्चितको उपदेशकरके जगाया। निदान हे रामजी! चारों दिशाओंमें चारोंविपश्चित भ्रमते फिरे। दक्षिणदिशाको तो पिशाचिनी से मोहितहुआ इससे उसने बहुत जन्मपाये और पूर्वका बहताहुआ मच्छके मुखमें चलागया और उसने निकालडाला,इससे लेकर वह अवस्थादेखी। उत्तर दिशाका जो हुआ उसने वह अवस्थादेखी और पश्चिम दिशाका हेमचूपक्षीकी पीठपरप्राप्त हुआ और उसने उसे कुशद्वीप में डालदिया इससे उसनेभी अनेक अवस्थापाई। हे रामजी! एकएक विपश्चितने भिन्न भिन्न योनि और अवस्थाका अनुभवकिया। रामजीने पूछा,हे भगवन्! तुमकहतेहो कि, विपश्चित एकहीथा और उनकी संवित् भी एकहीथी और आकारभी एकहीथा तो भिन्न भिन्न रुचिकैसेहुई जोएकपक्षी हुआ; दूसरा वृक्षहुआ और इससेलेकर वासनाके अनुसार अनेक शरीरपाते फिरे। वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्यहै? उनकी संवित्एकहीथी परन्तु भ्रमसे भिन्नता होजाती है। जैसे किसी पुरुषको स्वप्ना आताहै तो उसमें पशुपक्षी होजाते हैं और भिन्न भिन्न रुचिभी होजाती है,तैसेही उसकीभी भिन्न भिन्न रुचिहोगई। जैसे

देखो कि, शरीर तो एकही होताहै पर उसमें नेत्र, श्रवण, नासिका, जिह्वा और त्वचा की रुचि भिन्नभिन्न होतीहै और अपने अपने विषयोंको ग्रहणकरती हैं सो एकही शरीरमें अनेकता भासतीहै; तैसेही उनकी एकही संवित्‌थी परन्तु संकल्प भिन्न भिन्न होगयाथा इससे मनके फुरनेसे एकमें अनेकभासीं। जैसेएकही योगेश्वर इच्छाकरके और और शरीरधरलेताहै और एकमें अनेकहोजाताहै। एकसहस्रबाहु अर्जुनथा सो एकभुजासे युद्धकरताथा;दूसरी भुजासे दानकरताथा और एकसे लेता देताथा; इसी प्रकार सब भुजाओंसे चेष्टाकरताथा–वे भी भिन्न भिन्न हुये। एकही शरीरमें भिन्न भिन्न चेष्टाहोती है। जैसे विष्णु भगवान् कहीं दैत्यों के साथ युद्धकरते; कहीं कर्म करते हैं, कहीं लीलाकरते हैं और कहीं शयनकरते हैं सो संवित् तो एकही है परन्तु चेष्टा भिन्न भिन्नहोती है; तैसेही उनकी संवित्‌में अनेकरुचिहुई तो इसमें क्या आश्चर्यहै? हे रामजी! इसप्रकार उन्होंने जन्मसे जन्मान्तरको अविद्यक संसारमें देखा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! वे तो बोधवान् विपश्चितथे और बोधवान् जन्म नहीं पाता फिर उनको किसप्रकार जन्म हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वे विपश्चित बोधवान् नथे परन्तु बोधके निकट धारणा अभ्यासवालेथे। जो वे ज्ञानवान् होते तो दृश्यभ्रम देखने की इच्छा क्यों करते? इससे वे ज्ञानवान् न थे–धारणा अभ्यासीथे और समुद्र को लांघगये और मच्छ के उदरसे बल करके निकले सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है। ज्ञानका लक्षण सुसंवेद है असंवेद नहीं। राजा विपश्चित ज्ञानवान् न थे इसकारण देश देशांतर में भ्रमतेरहे और ज्ञानविना अविद्यक संसार में जन्म मरणमें फटकतेरहे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ज्ञानवान् योगेश्वरों को भूत, भविष्य, वर्त्तमान; तीनों कालों का ज्ञान कैसे होताहै और एकदेशमें स्थितहुआ सर्वत्र कर्मों को कैसे करता है सो सब मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानी की वार्त्ता यह मैंने तुमसे कही है और जितना जगत् है सो सब चिदाकाश स्वरूप है। जिनको ऐसी सत्ताकाज्ञान हुआ है वे महा पुरुष हैं। जैसे स्वप्ने से कोई पुरुषजागे तो स्वप्ने की सब दृष्टि उसको अपनाही स्वरूप भासतीहै और उसमें बन्धमाननहीं होता। हे रामजी! यह सब नानात्व भासती है सो नानानहीं और अनानाभी नहीं केवल आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसेही आत्मा अपने आप में स्थित है। ये तीनों काल भी ज्ञानवान् को ब्रह्मरूप होजाते हैं और सब जगत् भी ब्रह्मरूप होजाते हैं और द्वैतभाव उसका मिटजाता है। ऐसे ज्ञानवान् को ज्ञानीही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता जैसे अमृत को जोपान करता है सोही उसके स्वाद को जानता है और कोई जान नहीं सक्ता। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तो तुल्य भासती है परन्तु

ज्ञानी के निश्चय में कुछ और है और अज्ञानी के निश्चयमें और है। जिसका हृदय शीतल हुआ है वह ज्ञानवान् है और जिसका हृदय जलताहै वह अज्ञानी है। वह बाँधाहुआहै और ज्ञानवान् का शरीर चूर्णहो अथवा उसे राज्य प्राप्तहो तौभीउसको रागद्वेष नहीं उपजता; वह सदा ज्यों का त्यों एकरस रहताहै। वह जीवन्मुक्तहै परन्तु यह लक्षण उसका कोई जान नहींसक्ता वह आपही जानता है। शरीर को दुःखऔर सुखभी प्राप्त होता है; मरता और रुदनभी करता है और हँसता,लेता और देताभी है और इससे लेकर सब चेष्टा करता दृष्टि आताहै पर वह अपने निश्चयमें न दुःखी होता है; न सुखी होता है; न देताहै और न लेता है—सदा ज्योंकात्यों रहता है। हे रामजी! व्यवहार तो उसका भी अज्ञानी की नाईंही दृष्टि आताहै परन्तु हृदय से उसका यह निश्चयी होताहै और अद्भुत पदमें स्थित रहताहै कदाचित् नहीं गिरता। उसका परम उदितरूप होता है और रागसहित भी दृष्टि आताहै परन्तु हृदयसेराग किसी में नहीं करता; क्रोधकरता भी दृष्टि आताहै परन्तु उसको क्रोध कदाचित् नहीं होता। जैसे आकाश शुभ पदार्थ को धारता है और धूम और बादल से ढापाभीदृष्टि आताहै परन्तु किसी से स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवानोंमें सब क्रिया दृष्टिआतीहैं परन्तु अपने निश्चय में वह किसी से स्पर्श नहीं करता। जैसे नटवा स्वांगलेआता है और चेष्टाकरता दीखताहै पर हृदयसे अपने नटत्वभावमें निश्चयहोताहै;तैसेही ज्ञानवान्कोभी सर्वक्रियामें अपना आत्मभाव निश्चयहोताहै। जैसे जिसकोस्वप्नाआताहै वह यदि स्वप्नेमेंभी अपनापूर्व्वरूप स्मरणरखताहै तो स्वप्नेकेपदार्थमें बर्त्तताहै तौभी उनकेसुखमें आपको सुखी नहींमानता और दुःखमें आपको दुःखी नहीं मानता—सब सृष्टि उसको अपनाहीस्वरूप भासती है; तैसेही ज्ञानवान्को अपने स्वरूपके निश्चय से सुख दुःखका क्षोभ नहींहोता। जो ऐसे पुरुषहैं उनको दुःख से क्या होताहै? जैसे उनकी इच्छाहोती है,तैसीही सिद्ध होकर भासती है। हे रामजी! यह जितनी सृष्टि है सो सब चित्सत्तामेंहै और योगीश्वर पुरुष उसीमें स्थितहोकर जहां प्राप्तहुआचाहते हैं वहां अन्तवाहकसे जा प्राप्त होतेहैं और तीनोंकाल उनको विद्यमान होते हैं साधन कुछनहीं परन्तु ज्ञानी अवश्यकरके किसी निमित्त यत्ननहीं करते—जैसा प्राप्तहोता है उसीमें प्रसन्न रहतेहैं। हे रामजी! एककालमें ब्रह्माजी ऊर्ध्वमुखसे सामवेदको गायन करतेथे और सदाशिवका मान न किया तब सदाशिव ने अपने नखसे ब्रह्मा का पाँचवां शीश काटडाला परन्तु ब्रह्माजीकेमनमें कुछक्रोध न फुरा। उन्होंने विचाराकि; मैं चिदाकाशहूं सो अबभी चिदाकाशहूं मेरातो कुछगया नहीं; शिरसे मेराक्या प्रयोजन है? न कुछ हानिहै और न कुछ लाभहै। हे रामजी! इसप्रकार सर्वविश्व रचनेवाले ब्रह्माजीका शिर कटा; जो वे फिरभी शिर लगा लेते तो समर्थथे परन्तु

उनको लगानेका कुछ प्रयोजन नथा और न लगानेमें कुछ हानिभी नथी। उनका भी निश्चय सदा आत्मपदमेंहै इसकारण उन्हेंकुछ क्षोभ न हुआ। हे रामजी! काम के सदृश और कोई विकार नहीं है। जो सदाशिव पार्वतीको बायेंअंगमें धारते हैं और कामदेवके पाँचबाण चलनेसे सर्वविश्व मोहित होताहै उस कामको सदाशिव ने भस्म करडाला तो क्या स्त्रीके त्यागनेको वे समर्थ नहीं हैं परन्तु उनको रागद्वेष कुछ नहीं इसकारण त्यागनहीं करते। त्यागनेसे उन्हें कुछ अर्थकी सिद्धिनहीं होती और रखनेसे कुछ अनर्थ नहीं होता—जो कुछ प्रबाहपतित कार्य होताहै उसको करतेहैं कुछखेद नहीं मानते इससे वे जीवन्मुक्त हैं। विष्णुजी सदाविक्षेपमें रहतेहैं; आपभी कर्म करतेहैं और लोगोंसे भी करातेहैं और शरीर धारतेहैं और त्यागभी देते हैं इत्यादिक क्षोभमें रहते हैं सो त्यागनेको समर्थभी हैं परन्तु त्यागनेमें उनका कुछकार्य्य सिद्धनहींहोता और करने में कुछ हानि नहींहोती। उनको लोग कईगुणों से गुणवान् जानते और मुझकोतो शुद्ध चिदाकाशरूप भासताहै। मूर्ख कहतेहैं कि, विष्णुश्याम सुन्दरहैं परन्तु वेशुद्ध चिदाकाशरूप हैं और सदाशुद्ध स्वरूपमें उनको अहंप्रत्ययहै। आकाशमार्गमें जो सूर्य्यस्थितहैं वे कभी ऊर्ध्वकीओर और कभीनीचे जाते हैं तो क्या उनको स्थितहोनेकी सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु चलना और ठहरना दोनों उनको समहै और खेदसे रहितहोकर प्रबाह पतित कार्यमें रहते हैं इससे जीवन्मुक्तहैं। जीवन्मुक्त चन्द्रमाभी हैं सो घटते २ सूक्ष्महोते दृष्टिआते हैं और कभी बढ़ते जाते; शुक्ल और कृष्ण दोनोंपक्ष उनमें होते हैं और रात्रिको प्रकाशते हैं तो क्या वे अपनी क्रियाको त्यागनहींसक्ते? नहींत्याग सक्ते हैं; परन्तु क्षोभसे रहितहोकर प्रबाह पतित कार्य्यमें बिचरते हैं इससे जीवन्मुक्तहैं। अग्नि सदादौड़ता रहताहै और यज्ञ और होमके भोजन करनेको सर्वओर जाताहै तो क्या उसको गृहमें बैठनेकी सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु जो कुछ अपना आचारहै उसको वह नहींत्यागता क्योंकि, ठहरनेमें उसका कुछकार्य सिद्धनहींहोता और चलनेमें कुछहानि नहीं होती—दोनों में वे तुल्य जीवन्मुक्तहैं। हे रामजी! बृहस्पति और शुक्रको बड़ाक्षोभ रहता है; बृहस्पति देवतों कीजयके निमित्त यत्नकरते हैं और शुक्रदैत्योंकी जयके निमित्त यत्न करते रहते हैं तो क्या इनको त्यागनेकी सामर्थ्य नहींहै परन्तु दोनों इनकोतुल्यहैं इसकारण खेदसेरहित होकर अपने कार्यमें बिचरतेहैं इससे जीवन्मुक्त पुरुषहैं। हे रामजी! राज्य में बड़ेक्षोभ होते हैं पर राजा जनक आनन्द सहितराज्यकरता है और जीवन्मुक्त है और प्रह्लाद, बलि, वृत्रासुर और मुरआदि दैत्य जीवन्मुक्त हुयेहैं और समताभावको लिये खेदसे रहित नानाप्रकारकी चेष्टाकरतेरहेहैं और हृदयसेशीतल और जीवन्मुक्त रहेहैं। राजा नल, दिलीप और मान्धाता आदिने भी समताभावको ले राज्य किया है सो जीव-

न्मुक्तहैं । ऐसेही अनेक राजा हुयेहैं और उनमें रागवान्भी दृष्टिआये हैं परन्तु हृदय में रागद्वेषसे रहित शीतलचित्त रहेहैं । हे रामजी ! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्यहोती है परन्तु इतना भेदहै कि; ज्ञानीकाचित्त शान्तहै और अज्ञानीका चित्त क्षोभमें है; इष्टकी प्राप्तिमें वह हर्षवान् होताहै और अनिष्टकी प्राप्तिमें द्वेषकरताहै और ग्रहणत्याग की इच्छासे जलताहै क्योंकि, उसको संसार सत्यभासता है और जिसका चित्त शांत होगयाहै उसके भीतर न रागहै,न द्वेषहै; स्वाभाविक शरीरकीजो प्रारब्धहोतीहै उसमें कुछ अपना अभिमान नहींहोता । उसके निश्चयमें सब आकाश-रूपहै, जगत् कुछ बना नहीं—भ्रममात्रहै जैसे आकाशमें नीलता भ्रममात्रहै और दूर नहीं होती तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै परन्तु है नहीं । जैसे आकाशमें नाना प्रकारके तरुवरे भासतेहैं, तैसेही आत्मामें जगत्भासताहै और जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठरूप होती है, तैसेही जगत् भ्रमरूप है । जो कुछभ्रमसे भिन्न भासताहै वह सब भविष्यन्नगरमें असत्यहै और जो कुछ तुम्हें दृष्टि आताहै सो कुछ नहीं केवल सर्व कलनासे रहित, शुद्धसंवित् जड़ता बिना मुक्तस्वभाव एकअद्वैत आत्मसत्तास्थित है और केवल आकाशरूप है, उसमें जगत्भी वहीरूप है और पाषाणकी शिलावत् घनमौन है । तुमभी उसीरूपमें स्थितहोरहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम
द्विशताधिकैकोनविंशतितमस्सर्गः २१९ ॥

हेरामजीने पूंछा;हे भगवन् ! उसराजा विपश्चितने फिर क्याकिया ? वशिष्ठजीबोले, हेरामजी ! जो उनकी दशाहुईहै सो तुमसुनो । पश्चिम दिशाका विपश्चित बनमें बि-चरता फिरताथाकि, एक मत्तहाथीके बशपड़ा और उसने उसेपहाड़की कन्दरामेंमार-डाला; दूसरे विपश्चितको राक्षसलेगया और बड़वाग्निमें डालदिया वहां अग्निने उसे भक्षण करलिया; तीसरे विपश्चितको एक विद्याधर स्वर्गमेंलेगया और उसनेवहां इन्द्रको मान न किया इसलिये उसको इन्द्रने शापदिया और यहभस्म होगया;इसीप्रकार चौथाभी मुआ, उसके एकमच्छने आठटुकड़ेकरडाले । जैसे प्रलयकालमें लोकभस्म होजाते हैं तैसेही चारोंविपश्चित मरगये । तब उनकी संवित् आकाशरूपहुई परन्तु उनको जगत् देखनेका संस्कारथा इससे उनकी आकाशरूप संवित् फिर आनफुरी उससे जाग्रत् भासनेलगा और पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, स्थावर जंगमरूप जगत्कोदेखा और अन्तबाहक शरीरसे चेष्टा करनेलगे । उनमेंसे एक पश्चिम दिशाका विपश्चित विष्णु भगवान् के स्थानमें मुआ निर्वाण होगया इससे उसकी संवित् में सर्व अर्थ शून्य होगये और वह वहां मुक्तहुआ । एक मच्छके उदर में सहस्रबर्ष पर्यन्त रहा उससे फिर एक देशका राजा हुआ और वहां राज्य करनेलगा । एक चन्द्रमा के

निकटजा वहां मरके चन्द्रमा के लोकको प्राप्तहुआ और एक बहता हुआ समुद्रके पार हुआ औरआगे चौरासी हजार योजन पृथ्वीको लांघतागया। इसीप्रकार चारों फिर जिये और समुद्र, वन और पर्वतों लांघतेगये। सबकेआगे दशसहस्र योजन सुवर्णकी पृथ्वीआई जहां देवताओंके विचरनेके स्थान हैं उनकोभी वे लांघतेगये। आगे लोकालोक पर्वत आया जिसने सर्व पृथ्वीको आवरणकियाहै-जैसे वृक्षोंसेवन का आवरण होताहै,तैसेही उस पर्वतने पञ्चाशतकोटि योजनपृथ्वीको आवरणकिया है और पचास हजार योजन ऊंचाहै-वे उस लोकालोक पर्वतमें पहुँचे जहां तारोंका नक्षत्र चक्र फिरता है उसकोभी वे लांघगये। उसमें आगेएक शून्यनक्षत्रथा सोमहा शून्यथा जहां पृथ्वी, जल, आदिक तत्त्व कोईनथा,एक शून्य आकाशहै जहां न कोई स्थावर पदार्थ है, न कोई जंगमपदार्थ है, न कोई उपजैहै, न कभी मिटैहै उसको भी उन्होंने देखा। इसीप्रकार सम्पूर्ण भूगोलको उन्होंने देखा। रामजीनेपूंछा,हेभगवन्! भूगोलक्याहै; किसके आश्रयहै और उसके ऊपर क्याहै? वशिष्ठजी बोले,हेरामजी! जैसे गेंद होताहै, तैसे भूगोल है और संकल्पके आश्रयहै। सर्वओर उसकेआकाश है और सूर्य, चन्द्रमा; नक्षत्र सहित चक्र फिरताहै। हे रामजी! यह कोई वस्तुसेबुद्धि नहीं बनी संकल्पसे बनीहै; जो वस्तु बुद्धि से बनी होतीहै सो क्रमसे स्थित होतीहै और यहतो विपर्य्यय रूपसे स्थितहै। पृथ्वीके चहुँफेर दशगुण जलहै उससे परे दश गुणी अग्निहै; उसके उपरान्त दशगुणा वायुहै और फिरब्रह्मांड खप्परहै। वह खप्पर एक अधको और एकऊर्ध्व को गयाहै और उसके मध्यमें जो पोलहै वह आकाश है जो वज्रसारकी नाईंहै और अनन्तकोटि योजनका उसका विस्तार है। उस ब्रह्माण्ड का उसमें भूगोल है; उसके उत्तरदिशामें सुमेरुपर्वत है, पश्चिम दिशामें लोकालोक पर्वत है और ऊपर नक्षत्रचक्र फिरताहै। जहां वह जाताहै वहां प्रकाश होताहै और जहां वह नहीं होता वहां तमरूप भासता है--सो सब संकल्परचना है। जैसे बालक संकल्पसे पत्थरका वट्टारचे,तैसेही चैतन्यरूपी बालकने यह संकल्परूपी भूगोल रचा है। हे रामजी! जैसे जैसे उस समय उसमें निश्चय हुआ है तैसेही स्थित हुआ है। जहां पृथ्वी स्थित रचीहै वहांहीं स्थितहै और जहां खातरचीहै वहां खातहीहै परन्तु जैसे स्वप्नेमें अविद्यमान प्रतिभा होतीहै, तैसेही भूगोल है। हे रामजी! जिनको ऐसा ज्ञानहै कि, सुमेरुमें देवता और पूर्वादि दिशाओंमें मनुष्य आदि जीव रहते हैं वे पंडितहैं तौभी मूर्ख हैं क्योंकि, ये तो भ्रममात्रहैं कुछ बनेनहीं। जो हमसे आदि लेकर तत्त्ववेत्ता हैं उनको ज्ञाननेत्रसे आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों भासती है और जो मन सहित षट्इन्द्रियोंसे अज्ञानी देखते हैं उनको जगत् भासता है। ज्ञानवानोंको परब्रह्म सूक्ष्म ज्योंकात्यों भासताहै और जगत्को वे असत् जानते हैं। जैसे आकाशमें अनहोती

नीलता भासती है; तैसेही आत्मामें अनहोता जगत् भासता है। जैसे नेत्रदूषण से आकाशमें तरुवरे भासते हैं, तैसेही अज्ञान से आत्मामें जगत् भासता है सो केवल आभासमात्र है। हे रामजी ! जगत् उपजा भी दृष्ट आता है और नष्ट होता भी दृष्ट आताहै परन्तु बना कुछ नहीं। जैसे संकल्प का रचा फुरना अपने मनमें भासता है, तैसेही यह जगत् मनमें फुरताहै।यह संपूर्ण भूगोल संकल्पमें स्थित है। जैसे बालक संकल्प करके पत्थरका बट्टारचे, तैसेही भूगोलहै। यह ब्रह्मांड सौकोटि योजन पर्यंत है।उसका एकभाग अधको गयाहै और एक ऊर्ध्वको गयाहै,उसमें चैतन्यरूपी बालक ने यह भूगोल रचाहै सो संकल्पके आश्रय खड़ा है। जैसे आदि नीति हुई है,तैसेही भासताहै। इस पृथ्वीके उत्तर दिशामें सुमेरु पर्वतहै;पश्चिम दिशाकी ओर लोकालोक पर्वत है और ऊपर तारों और नक्षत्रोंका चक्र फिरताहै;लोकालोकके जिस ओर वह आताहै उस ओर प्रकाश होताहै। भूगोल ऐसेहै,जैसे गेंद होता है और उसके एक ओर पातालहै,एक ओर स्वर्गहै, एक ओर मध्य मंडलहै और आकाश सर्व ओरहै। पातालवासी जानते हैं कि,हम ऊर्ध्व हैं,आकाशवासी जानते हैं कि,हम ऊर्ध्व हैं और मध्यवासी जानते हैं कि,हम ऊर्ध्व हैं। इस प्रकार भूगोलहै और उसके ऊपर महातम-रूप एक शून्य खातहै। जहां न पृथ्वीहै,न कोई पहाड़ है,न स्थावरहै, न जंगमहै और न कुछ उपजा है। उसके ऊपर एक सुवर्णकी दीवार है जिसका दशसहस्र योजन वि-स्तारहै और उसके ऊपर दशगुणा जलहै सो पृथ्वी को चहुंफेरसे घेरे है; उससे परे दशगुण अग्निहै;फिर दशगुणवायुहै और उसके आगे आकाश है। फिर ब्रह्माकाश महाकाशहै जिसमें अनन्त ब्रह्मांड स्थितहैं परन्तु ये तत्त्व जैसे तृणके आश्रय कपूर ठहरताहै तैसेही पृथ्वीभागके आश्रय ठहरे हैं वास्तवमें शुद्ध चैतन्य ब्रह्मका चमत्कार है जो आकाशवत् निर्मलहै और उसमें कोई क्षोभ नहीं है, परमशांत, अनन्त और सर्वका अपना आपहै। हेरामजी ! अब फिर विपश्चितकी वार्त्ता सुनो। जब वे लोका-लोक पर्वत पर जा स्थित हुये तब एक शून्य खात उनको दृष्ट आया और पर्वत से उतरकर खातमें वे जापड़े। वह खातभी पर्वतके शिखर पर था और वहां शिखरकी नाईं बड़े २ पक्षीभी रहते थे इस कारण उन पक्षियों ने चोंचोंसे इनके शरीर चूर्णकिये, तब उन्हों ने अपने स्थूल शरीरको त्यागकर अपना सूक्ष्म अन्तबाहक शरीर जाना। रामजीने पूंछा,हेभगवन् ! आधिभौतिकता कैसे होतीहै और अन्तबाहक क्याहै ? फिर उन्हों ने क्या किया ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे कोई संकल्पसे दूरसेदूर चला जावे तो जिस शरीरसे जावे वह अन्तबाहकहै और जो पंचभौतिक शरीर प्रत्यक्ष भा-सताहै सो आधिभौतिकहै। जब मार्गसे कहीं जानेको चित्तका संकल्प उठताहै तब स्थूल शरीर गये बिना नहीं पहुंचसक्ता और जब मार्गमें चले तब पहुंचताहै सोही आधिभौ-

तिकहै और यह प्रमादसे होताहै। जैसे रस्सीके भूलने से सर्पभासताहै, तैसेही आत्मा के अज्ञानसे आधिभौतिक शरीर भासता है और जैसे कोई मनोराजका पुरबनाके उसमें आपभी एक शरीर बनकर चेष्टा करताफिरे तो उसे जबतक पूर्वका शरीर विस्मरण नहीं हुआ तबतक वह संकल्प शरीरसे चेष्टा करताहै सो अन्तवाहक है। उस शरीरको संकल्पमात्र जानना—विशेष बुद्धि कहाती है। आत्मबोध हुये बिना जो उस संकल्प शरीरमें दृढ़ भावना होती है तो उसका नाम आधिभौतिक होता है—सो घटबढ़ कहाता है। इससे जबतक शरीरका स्मरणहै तबतक आधिभौतिकता नहीं होती और जब शरीरका विस्मरण होताहै तब आधिभौतिकता होजाती है। विपश्चित जो आधिभौतिक थे सो आत्मबोध से रहितथे और जहां चाहते थे तहां चलेजातेथे पर स्वरूपसे न कुछ अन्तवाहकहै और न कुछ आधिभौतिकहै; प्रमादसे ये सब आकार भासते हैं। वास्तवमें सब चिदाकाशरूप है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी सब वहीहै और उसीके प्रमादसे विपश्चित अविद्यक जगत् को देखने चलेथे। वह अविद्याभी कुछ दूसरी वस्तुनहीं—ब्रह्महीं है तो ब्रह्मका अन्त कहां आवे। वहांसेवेचले परन्तु जानें कि,हमारा अन्तवाहक शरीर है। निदान वे सब पृथ्वी को लांघगये,फिर जलको भी लांघगये और उसके परे जो सूर्यवद्दाहक अग्नि का आवरण प्रकाशवान् है तिसको भी लांघकर मेघ और वायुके आवरण कोभी लांघे। फिर आकाश कोभी लांघगये तो उसके परे ब्रह्माकाश था जहां उनको संकल्प के अनुसार फिर जगत् भासनेलगा पर उसकोभीलांघे। फिर आगे ब्रह्माकाशमिला और फिर उनको पंचभूत भासिआये उसके आवरणकोभी लांघगये। फिर उसब्रह्मांड कपाटके परेतत्त्वों को लांघकर ब्रह्माकाशआया उसमें एक और पंचभौतिक ब्रह्मांडथा उसकोभी लांघ गये पर अन्त न पाया। स्वरूप के प्रमादसे दृश्य के अन्तलेनेको वे भटकते फिरेपर अविद्यारूप संसार का अन्त कैसेआवे ? यह जीव तबतक अन्त लेने को भटकता फिरता है जबतक अविद्या नष्टनहीं होती; जब अविद्या नष्ट होगी तभी अविद्यारूप संसार का अन्तहोगा। हे रामजी ! जगत् कुछ बनानहीं वही ब्रह्माकाश ज्योंकात्यों स्थित है और उसका न जाननाही संसार है। जबतक उसका प्रमाद है तबतक जगत्का अन्त न आवेगा और जब स्वरूपका ज्ञानहोगा तब अन्तआवेगा। सो वह जानना क्या है ? चित्तको निर्वाण करनाही जानना है। जब चित्तनिर्वाण होगातब जगत् का अन्त आवेगा। जबतक चित्तभटकता फिरता है तबतक संसार का अन्त नहीं आता। इससे चित्तका नामही संसार है। जब चित्त आत्मपद में स्थितहोगा तब जगत् का अन्त होगा। इस उपाय विना शांतिनहीं प्राप्त होती॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितोपाख्यानवर्णनंद्विशताधिकविंशतिस्सर्गः॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! वे जो दो विपश्चित थे उनकी क्या दशाहुई, यह भी कहो ? वे तो दोनों एकहीथे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक तो निर्वाण हुआ था और दूसरा ब्रह्मांडोंको लाघता २ और एक ब्रह्मांडमें गया तब वहां उसको सन्तोंका संग प्राप्त हुआ और उनकी संगतिसे उसको ज्ञान प्राप्त हुआ । ज्ञानको पाकर वह भी निर्वाण होगया । एक अब तक दूर फिरता है और एक यहां पहाड़की कन्दरा में मृग होकर विचरताहै । हे रामजी ! यह जगत् आत्माका आभास है । जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल भासताहै और जब तक किरणें हैं तब तक जलाभास निवृत्त नहीं होता; तैसेही जब तक आत्मसत्ता है तब तक जगत्का चमत्कार निवृत्त नहीं होता और आत्माके जानेसे जगत्सत्ता नहीं रहती । जैसे किरणोंके जानेसे जलाभास नहीं रहता और जो जल भासताहै तौभी किरणोंहीकी सत्ता भासती है; तैसेही आत्माके जानेसे आत्माकी सत्ताही भासतीहै—भिन्न जगत्की सत्ता नहीं भासती । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! विपश्चित एकहीथा तो एकही संवित्में भिन्नभिन्न वासना कैसे हुई ? एकमुक्त होगया, एक मृगहोकर फिरता रहा और एक आगे निर्वाण होगया—यह भिन्नता कैसे हुई है ? संवित् तो एकही थी उसमें कम और अधिक फल कैसे प्राप्त हुये सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वासना जो होती हैं सो देश, काल और पदार्थोंसे होती है । उसमें जिसकी दृढ़ भावना होती है उसकी जय होती है । जैसे एक पुरुषने मनोराजसे अपनी चारमूर्त्तियां कल्पीं और उनमें भिन्न भिन्न वासना स्थापनकी पर संवित् तो एक है, यदि पूर्वका शरीर भूलकर उसमें दृढ़ होगये तो जैसी २ भावना उनके शरीरमें दृढ़ होती है वही प्राप्त होतीहै; तैसेही संवित्में नानाप्रकारकी वासना फुरती हैं । जैसे एकही संवित् स्वप्नेमें नानाप्रकार धारती है और भिन्न २ वासना होती हैं; तैसेही आकाशरूप संवित्में भिन्नभिन्न वासना होती है । हे रामजी ! संवित् उनकी एकथी परन्तु देश, काल और क्रियासे वासना भिन्न भिन्न होगई और पूर्व की संवित् स्मृति भूलगई उससे उन्होंने न्यून और अधिक फलपाये । वह संवित् क्या रूपहै ? हे रामजी ! देशसे देशांतरको जो संवेदन जाती है उसके मध्य जो संवित्सत्ताहै सो ब्रह्मसत्ताहै । जैसे जाग्रत् के आकारको छोड़ा और स्वप्ना नहीं आया उसके मध्य जो ब्रह्मसत्ताहै वह किंचनरूप जगत् होकर भासती है परन्तु किंचन भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं । वह एकहै, न दोहै; एक कहना भी नहीं होता तो दो कहांहो और जगत् कहांहो ? यही अविद्याहै कि, है नहीं और भासती है । जिस जिस आकारमें जैसी जैसी वासना फुरती है और जो दृढ़ होजाती है उसकी जय होती है । इस कारण एक विपश्चित जनार्दन विष्णुके स्थानमें निर्वाण होगया और दूसरा दूरसे दूर ब्रह्मांडको लांघता गया और उसको सन्तोंका संग प्राप्त हुआ जिससे ज्ञान उदय होकर वासना मिटगई और उसका अज्ञान नष्ट

होगया। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाता है, तैसेही जब उसका अज्ञान नष्ट होगया तब वह उस पदको प्राप्त भया जिसके अज्ञानसे दूरते दूर भटकताहै, तीसरा दूरसेदूर भटकता फिरता है और चौथा पहाड़की कन्दरामें मृग होकर विचरता है। हे रामजी! जगत् कुछ वस्तु नहीं, अज्ञानके वशसे भटकता है इसलिये अज्ञानही जगत्है। जब तक अज्ञानहै तब तक जगत्है। जब ज्ञान उदय होता है तब वह अज्ञान को नाशकरताहै और तभी जगत्का भी अभाव होजाताहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह जो मृग हुआहै सो कहां कहां फिराहै और कहां २ स्थित हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दो ब्रह्मांडको लांघते दूरसेदूर चलेगयेथे, उनमेंसे एक अबतक चलाजाता है और पृथ्वी, समुद्र, वायु, आकाश उसकी संवित्में फुरते हैं। यह तो दूरसेदूर चलागया है और हमारी आधिभौतिक दृष्टिका विषयनहीं और एक ब्रह्मांड को लांघता गयाथा पर अब इस जगत्में पहाड़की कन्दराका मृगहुआहै सो हमारी इस दृष्टिका विषय है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ये तो दूरगयेथे और उनमेंसे एक इसजगत्में अब मृगहुआ है; तुमने कैसे जाना कि, आगे वह ब्रह्मांडमेंथा और अब इसजगत्में है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी। मैं ब्रह्महूं और सर्वब्रह्मांड मेरे अंगहैं। मुझको सबका ज्ञानहै। जैसे अवयवी पुरुष अपने अंगोंको जानताहै कि, यह अंग फुरताहै और यह नहीं फुरता; तैसेही मैं सब को जानताहूं। जहां जहां यह लांघतागया है उसे बुद्धिके नेत्रोंसे मैं जानताहूं परंतु तुम नहीं जानसक्ते। जैसे समुद्रमें अनेकतरंग फुरते हैं और समुद्र सबको जानता है, तैसेही मैं समुद्ररूपहूं और मेरेमें ब्रह्मांडरूपी तरंगेंहैं इससे मैं सबको जानताहूं। हेरामजी! वह जो मृगहै सो दूरब्रह्मांडमेंफिरताहै। वह विपश्चित यह सामान्यमृगनहींहै परन्तु जैसा है सो सुनो। हे रामजी! एकब्रह्मांड इसहमारे ब्रह्मांड सा है जिसका ऐसाही आकारहै, ऐसीही चेष्टाहै, एकहीसा जगत्है और स्थावर जंगम सब एकहीसे हैं। वहां जो देश, काल और क्रियाका विचरना होताहै सो इसकेही समान होता है। जैसे नामरूप आकार यहां होतेहैं; जैसे बिम्बका प्रतिबिम्ब तुल्यही होता है और जैसे एकही आकारका एकप्रतिबिम्ब जलमें होताहै और द्वितीय दर्पणमें होता है सो दोनों तुल्यहैं; तैसेही दोनों ब्रह्मांड एकसमानहैं और ब्रह्मरूपी आदर्श में प्रतिबिम्बित होते हैं। इसकारण यहमृग विपश्चित है इसी निश्चय को धारेहुये है यह और वह दोनों तुल्यहैं सो पहाड़की कन्दरामें है। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! वह विपश्चित अब कहां है और उसका क्याआचारहै? अब मैं जानताहूं कि, उसकाकार्य हुआ है। अब चलकर मुझको दिखाओ और उसको दर्शन देकर अज्ञान फांस से मुक्तकरो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे अंग! जब रामजी ने इसप्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जहां तुम्हारा लीलाकास्थान है और

तुम क्रीड़ाकरतेहो उसठौरमें वहमृग बांधाहुआ है। यह तुमको तिरगदेशके राजाने दिया है सो बहुत सुन्दरहै इसकारण तुमने उसेरक्खाहै। उसको मँगावो। तब रामजीने अपने सखाओंसे जो निकटवर्त्तीथे कहा कि, उसमृगको सभामें लेआओ। हे राजन्! जब इसप्रकार रामजीने कहा तब वे सभामें उस मृगको लेआये और जितनेश्रोता सभामें बैठेथे वे बड़ेआश्चर्यको प्राप्तहुये। वहमृग बड़ीग्रीवाकिये महासुन्दर और कमलकी नाईं नेत्रवालाथा; कभी वह घासखाने लगे कभी सभामें खेले और कभी ठहरजावे। तब रामजीने कहा, हे भगवन्! आप इसको कृपाकरके मनुष्ययोनिको प्राप्तकीजिये और उपदेश करके जगाइये कि, हमारेसाथ प्रश्न उत्तरकरे; अभी तो यह प्रश्न उत्तर नहीं करता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार इसको उपदेश न लगेगा क्योंकि; जिसको कोई इष्टहोताहै उसीसे उसको सिद्धिहोती है; इससे मैं इसके इष्टको ध्यानकरके बुलाताहूं-उससे इसका कार्य सिद्धहोगा। बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! इसप्रकार कहकर बशिष्ठजीने कमंडलु हाथमें लेकर तीन आचमन कीं और पद्मासनबांध, नेत्रमूंद और ध्यानमें स्थितहोकर अग्निका आवाहन किया। हे वह्नि! यहतेरा भक्तहै, इसकी सहायताकरो और इसपर दयाकरो। तुम सन्तों का दयालुस्वभाव है। जब ऐसे वशिष्ठजीने कहा तब सभामें बड़े प्रकाशकोधारे अग्नि की ज्वाला काष्ठ अंगारसेरहित प्रकटहुई और जलनेलगी। जब ऐसे अग्निजागी तब वहमृग उसेदेखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके चित्तमें बड़ीभक्ति उत्पन्नहुई। तब वशिष्ठजीने नेत्रखोलकर अनुग्रहसहित मृगकी ओर देखा उससे उसके सम्पूर्ण पाप दग्धहोगये। वशिष्ठजीने अग्निसे कहा, हे भगवन् वह्नि! यह तेराभक्तहै। अपनी पूर्वकीभक्ति स्मरण करके इसपर दयाकरो और इसके मृगशरीर को दूरकरके इसको विपश्चित शरीरदो कि, यह अविद्या भ्रमसे मुक्तहो। हे राजन्! इसप्रकार वशिष्ठजी अग्निसे कहकर रामजीसे बोले, हे रामजी! अब यहीमृग अग्निमें प्रवेशकरेगा तब इसका मनुष्य शरीर होजावेगा। ऐसे वशिष्ठजी कहतेहीथे कि, अग्निको वह मृगदेखकर एकचरण पीछेकोहटा और उछलकर अग्निमें प्रवेशकरगया। जैसे बाण निशानमें आप्रवेशकरतेहैं, तैसेही उसने प्रवेशकिया। हे राजन्! उसमृगकोकुछखेद न हुआ बल्कि उसको अग्नि आनन्दवान् दृष्टआया तब उसका मृगशरीर अन्तर्द्धान होगया और महाप्रकाशरूप मनुष्य शरीरको धारे अग्निसे निकला। जैसे कपड़ेके ओढ़ेसे स्वांगी स्वांगधारणकर निकल आताहै, तैसेही वह निकलआया और अतिसुन्दर वस्त्रपहिरेहुये, शीशपर मुकुट कंठमें रुद्राक्षकी माला और यज्ञोपवीत धारण कियेथा। अग्निवत् वह तेजवान्था किन्तु सभामें जो बैठेथे उनसेभी अधिक उसका तेजथा-मानो अग्निकोभी लज्जितकिया है। जैसे सूर्यकेउदयहुये चन्द्रमाका प्रकाश

लज्जित होजाता है, तैसेही वहसर्वसे प्रकाशवान् होगया। फिर जैसे समुद्रसे तरंग निकलकर लीनहोजाताहै, तैसेही वह अग्नि अन्तर्द्धानहोगये। उसको देखकर रामजी आश्चर्यको प्राप्तहुये और सर्वसभा विस्मयको प्राप्तहुई। तब बड़ेप्रकाशको धारणे वाला विपश्चित निकलकर ध्यानमें लगगया और विपश्चितसे आदिलेकर इस शरीरपर्यंत सर्वशरीर स्मरणकरके नेत्रखोल वशिष्ठजीके निकटआ अष्टांगप्रणामकर बोला, हे ब्राह्मण! ज्ञानके सूर्य और प्राणके दाता! तुमको मेरानमस्कारहै। हेराजन् जब इसप्रकार उसनेकहा तब वशिष्ठजीने उसके शिरपर हाथरक्खा और कहा, हे राजन्! तू उठखड़ाहो। अब मैं तेरी अविद्यादूरकरूंगा और तू अपने स्वरूपको प्राप्तहोगा। तब राजा विपश्चितने उठकर राजा दशरथको प्रणाम किया और बोला, हे राजन्! तेरी जयहो। तब राजा दशरथने आसनसे उठकर कहा, हे राजन्! तुम बहुत दूर फिरते रहेहो अब यहां मेरेपास बैठो। तब राजाविपश्चित विश्वामित्र आदिक जो ऋषिबैठेथे उनको यथायोग्य प्रणामकरके बैठगया और राजादशरथने विपश्चितको जो बड़े प्रकाशको धारेहुयेथा भासकहके बुलाया और कहा, हे भास! तुमसंसार भ्रमकेलिये चिरकाल फिरते रहेहो; थकेहोगे अब विश्रामकरो और जो जो देशकाल क्रियाकी हैं और देखाहै सो कहो। यह आश्चर्य है कि, अपने मंदिरमें सोयेहो और निद्रादोषसे गढ़ेमें गिरते फिरे और देशदेशांतरों को भटकते फिरे। यही अविद्याहै। हे भास! जैसे वनका विचरनेवाला हाथी जंजीरसे बंधायमानहुआ दुःखपाता है, तैसेही तुम विपश्चितभीथे और अविद्यासे जगत्के देखनेके निमित्त भटकतेरहे। हे राजन्! जगत् कुछ वस्तु नहीं है पर भासताहै यही मायाहै। जैसे भ्रमसे आकाशमें नाना प्रकारके रंग भासतेहैं, तैसेही अविद्यासे यह जगत् भासतेहैं और सत्यप्रतीत होतेहैं पर सब आकाशरूपही आकाशमें स्थित हैं। उस आकाश में जो कुछ तुमने आत्मरूपी चिन्तामणिके चमत्कारसे देखाहै सो कहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितशरीरप्राप्तिर्नामद्विशताधिकैकविंशतितमस्सर्गः २२१॥

दशरथजी बोले, हेभास! बड़ाआश्चर्यहै कि, तुमविपश्चित बुद्धिमान्थे और चेष्टा देख तुमने अविपश्चितहोकर बुद्धिकी है जोअविद्याके देखनेको समर्थहुयेथे। यहजगत् प्रतिभातो मिथ्याउठी है; असत्यके ग्रहणकीइच्छा तुमनेक्योंकी? वाल्मीकिजी बोले, हेराजन्! जब इसप्रकार राजादशरथनेकहा तब प्रसंगपाकर विश्वामित्रबोले, हे राजा दशरथ! यहचेष्टा वहीकरताहै जिसको परमबोध नहींहोता और केवलमूर्ख और अज्ञानीभी नहींहोता क्योंकि; जिसको परमबोध और आत्माका अनुभवहोताहै वह जगत्को अविद्यक जानता है और उस अविद्यक जगत्के अन्तलेनेको इतना यत्न

नहींकरता क्योंकि, वहतो असत्य जानताहै और जो देहअभिमानी मूर्खअज्ञ है वह भी यहयत्न नहींकरता क्योंकि; उसको देखनेकी सामर्थ्यभी नहींहोती। इससे मध्य भा^ी है। जो आत्मबोधसे रहितहै और जिसने अधिभौतिक शरीरत्याग कियाहै वह भी संसारदेखनेका यत्नकरताहै और जिनकोउत्तम बोधनहींहुआ वे इसप्रकारबहुत भटकते फिरते हैं। हे राजन्! इसीप्रक र बटधानाभी इसीब्रह्मांडमें फिरते हैं। सत्तर लक्षवर्ष उनके व्यतीतहुये हैं कि, इसीब्रह्मांडमें फिरते हैं। उननेभी यहीनिश्चय धाराहै कि, पृथ्^ी कहांतक चलीजाती है। इस निश्चयसे वह निवृत्त नहींहोते और इसीब्रह्मांडमें भ्रमते हैं और उनको अपनी वासनाके अनुसार विपरीत औरही औरस्थान भासते हैं। हे राजन्! जैसे किसीबालकका रचा संकल्पकावृक्ष आकाशमें हो, तैसेही यह भूगोल ब्रह्माके संकल्पमें स्थितहै और संकल्पसे गेंदकेसमान आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांचोंतत्त्वोंका ब्रह्मांडरचाहै और उसके चौफेर चींटियां फिरती हैं; जिसओरसे ^ जाती हैं सो ऊर्ध्वभासताहै सो औरहीऔर निश्चय होताहै, तैसेही यह संकल्पके रचे भूगोलके किसीकोणमें बटधाना जीवहुआहै। हे राजन्! उसकेतीन पुत्रथे, उनको यह संकल्प उदयहुआ कि, हम जगत्का अन्तदेखें। इसी संकल्पसे फिरते २ पृथ्वी लांघते हैं, फिर पृथ्वी और जलआताहै जल लांघते हैं; फिरआकाश आताहै फिर पृथ्वी, जल, वायु, फिरउसी भूगोलके चहुँफेर फिरतेरहे। जैसेआकाश ^ गेंदहो तैसेही यहपृथ्वी आकाशमें है और इसका अधऊर्ध्व कोईनहीं। चरण अध शिरका पासा ऊर्ध्व उसीके चौफेर घूमतेरहे परन्तु अपने निश्चयसे औरका और जानतेरहे। जबतक स्वरूपका प्रमाद है तबतक जगत्का अभाव नहींहोता और जब आत्माका साक्षात्कार होता है तब जगत् ब्रह्मरूप होजाता है। जगत् कुछबनानहीं, फुरनेसे भासताहै। जैसेस्वप्नेमें अज्ञानसे अनन्त जगत् दिखताहै कि, यहहुआहै सो फुरना परब्रह्ममें हुआहै और जो फुरनेमें हुआहै सोभी परब्रह्म है और कुछबनानहीं—आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। जैसे पत्थरकीशिला घनरूपहोती है, तैसे है आत्मतत्त्व चैतन्यघन है। जैसे आकाश और शून्यतामें कुछभेदनहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछभेदनहीं। कल्प^ा परब्रह्मरूपहै और ब्रह्मही कल्पनारूपहै। इसजड़ और चैतन्यमें कुछभेदनहीं। हेराजन्! जिसको जगत्शब्दसे कहतेहो वह ब्रह्मसत्ता ही है। न कछउत्पन्न हुआहै और न प्रलयहोताहै—सर्वब्रह्मही है। जैसे पहाड़में पत्थर से इतरकुछनहींहोता तैसेही यहजगत् ब्रह्मसत्तासे इतरकुछनहीं। जैसे पाषाणकी पुतली पाषाणरूपही है, तैसेही जगत् ब्रह्मरूपही है। एक सूक्ष्मअनुभव अणुसेअनेक अणुहोते हैं। जैसे एकपहाड़से अनेकशिला होती हैं। हे राजन्! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् ब्रह्मरूपभासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकारका भासता

है। जगत् कुछवस्तु नहींहै परन्तुजबतक संकल्पहै तबतक जगत् फुरताहै। जैसेरत्नों का चमत्कार होताहै, तैसेही जगत् आत्माका चमत्कारहै और चैतन्य आत्माकेआ-श्रय अनन्त सृष्टियां फुरती हैं सो सृष्टिसब आत्मरूपहैं आत्मासेभिन्न कुछवस्तुनहीं। जो जाग्रत् पुरुष ज्ञानवान्हैं उनको ब्रह्मरूपही भासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकारका जगत् भासताहै। हे राजन्! कईएक इसको शून्यकहते हैं कि, शून्यही है और कुछनहीं; कई इसको जगत् कहते हैं और कईब्रह्मकहते हैं। जैसाकिसीकोनि-श्चय होताहै उसको वहीरूप भासताहै। आत्मरूपी चिन्तामणिहै, जैसा जैसा संक-ल्प उसमें फुरताहै तैसा तैसाही भासताहै। सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ताहै; जैसाजैसा उसमें निश्चय होताहै तैसाहीतैसा होकर भासता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य–त्रिपुटी जो भासती है सो भी ब्रह्महोकर भासती है द्वितीय कछवस्तु नहीं और और जोकुछ भासता है वही अज्ञान है। हे राजन्! जबतक बासना नष्टनहींहोती तबतक दुःखभी नहीं मिटते और जब बासना मिटजावे तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासे और रागद्वेष किसीमें न रहे। जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकारकी सृष्टिभासती हैं पर पूर्वस्व-रूपस्मरण आता है तो सर्वरूप आप होजाता है और रागद्वेष मिटजाता है; तैसेही ज्ञानवान्को यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आपभासता है और समानरूप विचार से रहित होताहै। पूर्व, अपूर्व और अपरको विचारना कि, यहशुभ है और यह अशुभ है; अशुभका त्यागकरना यहगुण विचारहै। जबतक पूर्वापर विचार मनमें रहता है तबतक जगत्में भटकता है और बांधारहताहै क्योंकि, शुभ अशुभदोनों जगत्में हैं। जबइनका विस्मरण होजावे और संपूर्ण जगत्को भ्रममात्र जानकर आत्मपदमेंसा-वधान हो तब मुक्तहोता है। इस जीवको अपनी वासना ही बन्धनका कारण है। जब तक जगत्में दुःखकी वासनाहोती है तबतक राग द्वेष उपजता है और उससे बांधा रहता है। जिनको जगत्के सुख दुःख में रागद्वेषकी भावना नहीं उपजती और जिन की वासना भी नष्ट होती है उनको यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासता है और जगत्में दुःखदायक कुछनहीं भासता। उनकोसब ब्रह्मही भासता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवटधानोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वाविंशतितमःसर्गः॥ २२२॥

दशरथजीने विपश्चितसे पूछा, हे भास! तुम चिरकालपर्यंत जगत्में फिरतेरहेहो जिसप्रकार तुमने चेष्टाकी है और जो देश,काल, पदार्थ देखे हैं सो सबही कहो। भास बोले, हे राजन्! मैं जगत् को देखता फिराहूँ और फिरता २ थक गया हूँ परन्तु देखने की जो इच्छाथी इसकारण मुझको दुःख नहीं हुआ है। जो कुछ मैंने चेष्टा की है और जो देखा है सो कहता हूँ। हे राजन्! मैंने बहुत जन्म धारे हैं;

और बहुतवार मृतकहुआहूँ;बहुतवेर शापपायाहै;ऊंचनीच जन्मधारेहैं और मरमरगया हूँ और बहुत ब्रह्मांड देखेहैं परन्तु यहसब अग्नि देवताके वरसे देखे हैं। एकवार में वृक्ष हुआ और सहस्रवर्ष पर्यंत फूल फल टास संयुक्त रहा। जब कोई काटै तब मैं दुःखीहोऊं और मेरामन हृदयसे पीड़ापावे। फिर वहांसे शरीरछूटा तबमैं सुमेरुपर्वत पर सुवर्णका कमलहुआ और वहांका जल पानकिया। फिर एकदेशमें पक्षी हुआ और सौवर्ष पक्षीरहकर फिर सियारहुआ और मुझेहस्तीने चूर्णकिया इससे मृतक होकर फिर सुमेरुपर्वत पर सुन्दर मृगहुआ और देवता और विद्याधर मेरेसाथ प्रीतिकरने लगे। कुछकालमें मरकर फिर देवताओं के वनमें मंजरीहुआ और वहांदेवियां और विद्याधरियां मुझको स्पर्शकरें और सुगन्धलें। तबमैं देवताओंकी स्त्री हुआ, फिर सिद्धहुआ और मेरावचन फुरनेलगा; फिर मैंने और शरीरधारा और एक ब्रह्मांड लांघगया। इसीप्रकार कई ब्रह्मांड में लांघगया तब एक ब्रह्मांडमें जो आश्चर्य देखा है सो सुनो। वहां मैंने एक स्त्रीदेखी जिसके शरीरमें कई ब्रह्मांड थे इससेमैं आश्चर्यवान्हुआ और देशकाल क्रियासेपूर्ण कई त्रिलोकीदेखीं। जैसे दर्पणमें प्रतिबिंबदृष्टि आताहै; तैसेही मुझको उसमें जगत् भासे। तब मैंने उससेकहा;हे देवी! तुमकौनहो और यह तेरे शरीरमें क्याहै? देवीबोली, हे साधु! मैं शुद्धचिद्शक्तिहूँ और यहसब मेरेअंग मेरेमें स्थित हैं। मेरीक्याबात पूछनीहै—यहसब जगत् जो तूदेखता है चिद्रूप है; चैतन्यसे भिन्न और कुछनहीं और सब में ब्रह्मांड त्रिलोकी स्थित है जो अपना आपही है। जो पूर्वके अपने स्वभावमें स्थितहैं उनको अपनेहीमें ये भासते हैं और अपनाही स्वरूप भासताहै और जो स्वभावमें स्थित नहींहैं उनकोजगत् बाहर और आपसे भिन्न भासतेहैं। हे राजन्! यह जगत् कुछबनानहीं। जैसे स्वप्नेमेंगन्धर्वनगर भासताहै, तैसेही आत्मामें जगत् भासता है और जैसे जलमें तरंग भासता है सो जलरूप है—तरंग कुछ भिन्नवस्तु नहींहोते; तैसेही सब जगत् चिद्रूपमें भासताहै सो चैतन्यसे भिन्न कुछनहीं परन्तु जब स्वभावमें स्थितहोकर देखोगे तबऐसेही भासेगा और जो अज्ञानदृष्टिसे देखोगे तो नानाप्रकारका जगत् दृष्टिआवेगा। हे राजादशरथ! जब इसप्रकार उस देवीने मुझसे कहा तब मैं वहांसे चला और आगे दूसरी सृष्टि में गया तो देखा कि,वहां सब पुरुषही रहतेहैं, स्त्री कोईनहीं और पुरुषसे पुरुष उत्पन्न होतेहैं। उससे भी आगे और सृष्टिमें गया तो वहां न सूर्य्यथा, नचन्द्रमाथा,नतारे थे, न अग्निथी; न दिनथा और न रात्रिथी। जैसे चन्द्रमा, सूर्य और तारोंकाप्रकाश होताहै, तैसेही सब अपने प्रकाशसे प्रकाशते थे उनको देखकर मैं आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, आकाशही से जीव उत्पन्न होकर आकाशहीमें लीन होतेहैं और इकट्ठेही सब उपजते और इकट्ठेही सब लीन होजाते हैं; न वहां मनुष्य

हैं, न देवता हैं, न वेदहैं, न शास्त्र हैं, न जगत्है—इनसे विलक्षणही प्रकार है। हे राजन्! इसप्रकार मैंनेकई सृष्टियां देखीहैं जो मुझको स्मरण आतीहैं। आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, सब जीव एकही समानहैं; न किसी को रोगहै और न किसीकोदुःखहै-सब एकसे गंगाके तीरपर बैठेहैं। हेराजन्! एकऔरआश्चर्यमैंनेदेखा है सो भी सुनो। एक सृष्टिमें मैं गया तो वहां क्षीरसमुद्र मन्दराचल में मथाजाताथा एक ओर विष्णु भगवान् और देवता थे और मन्दराचल पर्वत रत्नोंसे जड़ा हुआ शेषनागसे रस्सीकी नाई लपिटा हुआथा मथनेके निमित्त दूसरी ओर दैत्यलगेथे और बड़ा सुन्दर शब्द होता था। वहां वहकौतुक देखकर मैं आगे गया तो एक औरसृष्टि देखी जहां मनुष्य आकाश में उड़ते फिरतेथे और देवताओं की पृथ्वीपर मनुष्य विचरते और वेदशास्त्र जानतेथे। हे राजा! एक और आश्चर्य मैंने देखा सो भी सुनो। एक सृष्टि में मैं जा निकला तो वहां मन्दराचल पर्वत पर कल्पतरुका वनथा और उस में सुन्दरका नाम एकअप्सरा रहती थी। वहां जाकर मैं सो रहा तो ज्योंही रात्रि का समय आया कि, वह अप्सरा मेरे कंठमें आलगी। तब मैंने जागकर उसको देखा और कहा कि, हे सुन्दरी! तूने मुझको किस निमित्त जगाया? मैं तो सुखसे सोरहा था। तब उस अप्सरा ने कहा कि, हे राजन्! मैंने इस निमित्त तुझको जगायाहै कि; चन्द्रमा उदय हुआहै और चन्द्रकान्त मणि चन्द्रमाको देखकर स्रवेगी और नदी की नाई प्रवाह चलेगा ऐसा न हो कि, उसमेंतू बहि जावे। हे राजा दशरथ! इसप्रकार उसने कहाही था कि,नदीका प्रवाह चलनेलगा। तब वह अप्सरा उसप्रवाहको देखकरमुझे आकाश को लेउड़ी और पर्वतके ऊपर जहां गंगाका प्रवाह चलताथा उसके तटपर मुझको स्थित किया। सातवर्ष पर्यन्त मैं वहांरहकर फिर एक और ब्रह्मांड में गया तो देखा कि, वहां तारा, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्यकुछभी न थे। उसको देखकर मैं और आगेगया इसीप्रकार अनन्त ब्रह्मांड मैंने देखे। हे राजन्! ऐसादेश व ऐसी पृथ्वी, नदी और पहाड़ कोई न होगा जिसको मैंने न देखा हो और ऐसी चेष्टा कोई न होगी जो मैंने न की हो। कई शरीरों के मैंने सुखभोगे हैं; कितनों के दुःखभोगेहैं और वन, कन्दरा और गुप्तस्थानों में फिरकर सब देखा परन्तु अग्नि देवताके वरको पाकर फिरता २ मैं थकगया तौभी आगेहीचलागया और अनेकअविद्यक ब्रह्मांड भी देखे परन्तु अब उनकाअन्त आयाहै कि, यह जगत् भ्रममात्रहै। मैंने शास्त्रोंमें सुनाहै कि, यह जगत् है नहीं तौभी दुःख देता है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में बैताल भासताहै; तैसेही यह जगत् अविचार से भासता है और विचार कियेसे निवृत्त होजाता है। एक आश्चर्य और सुनो कि एक ब्रह्मांडमें मैं गया तो वहां महाआकाश था। उस महाआकाश से गिरकर मैं पृथ्वी पर आनपड़ा और वहां सोगया तब मैं

महा गाढ़ सुषुप्तिरूप होगया और सब जगत् का मुझे विस्मरण होगया । जब वह गाढ़ सुषुप्ति क्षीणहुई तब एक स्वप्नाआया और उसमें तुम्हारा यहजगत् मुझको भासिआया । उसमें मुझको पहाड़, कन्दरा, देश, और बहुत से गुप्त, प्रकट स्थान भासिआये जहां केवल सिद्धों की गम्य थी वहांभी मैं गया और जहां सिद्धोंकी भी गम्य न थी वहांभी मैं गया । इस प्रकार अनेक जगत् मैंने देखे परन्तु आश्चर्य है कि, स्वप्ने की सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रत की तरह दृष्टि आती थी और स्वप्ने के शरीर जाग्रत में पड़े भासते थे । इससे सब जगत् भ्रममात्र है और असत्यही सत्यहोकर दिखाई देता है । इस प्रकार देखकर मैं बड़े आश्चर्य में पड़ाहूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितकथावर्णनंनाम
द्विशताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः २२३ ॥

विपश्चित बोले ; हे राजन् ! एक सृष्टि और भी मैंने देखी है जो इसी महाआकाश में है—अर्थात् इस महाआकाश से भिन्न नहीं और जहांतुम्हारी भी गमनहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि कोई जाग्रत में देखा चाहे तो दृष्टि नहीं आती तैसेही वह सृष्टि है । हे राजन् ! पृथ्वीका एक स्थान मेरे देखतेही देखते परछाहीं की नाईं फुरनेलगा और फिर उसआकाश में वही पहाड़की नाईं भासने लगा,यहां तक कि मनुष्यों के शरीर और दशोदिशाओं को रोकलिया और आकाश से भी बड़ा भासने लगा इससे आकाश में भीन समाताथा । उसने सूर्य और चन्द्रमा को भी मेरे देखतेही देखते ढांपलिया और फिर भूकंप सा आया मानो प्रलयकालही आगया । तब मैंने अपने इष्ट अग्नि देवता की ओर देखकर प्रार्थना की कि, हे भगवन् ! तुममेरीजन्म जन्म रक्षाकरते आये हो इससे अबभी रक्षा करो; मैं नष्ट होताहूं । तब अग्निनेकहा तू भयमत कर । फिर मैंने अग्नि में जीव प्रवेश किया, तब अग्निने कहा कि, मेरे वाहनपर सवार होकर मेरे स्थान को चल । फिर अग्निदेव मुझको अपने वाहन तोतेपर चढ़ाकर आकाश मार्गसे लेउड़ा । जब हमउड़े तब पीछेसे वहशव ओतकपृथ्वी पर गिरा और उसके गिरने से सुमेरु ऐसे पर्वत भी पाताल को चलेगये । वह महा शरीर सैकड़ों सुमेरुके समान गिरा और मन्दराचल, मलयाचल,अस्ताचलसे लेकर जो बड़े २ पर्वत थे सो भी नीचेको चलेगये । पृथ्वी में जर्जरीभावसे फटकर गढ़े पड़गये और उसके शरीर के नीचे जो वृक्ष, मनुष्य, दैत्य, स्थावर, जंगम आये वे सब नष्ट होगये और बड़ा उपद्रव उदयहुआ; निदान उसके शरीर से सर्व दिशा पूर्णहोगईं और उसके अंग ब्रह्मांड से भी पार निकलगये । हे राजादशरथ ! इस प्रकार मैं भयानक दशादेखकर अपने इष्टदेव अग्निसे बोला कि,हे देव ! यहउपद्रव क्योंकर हुआ; यह सब क्या है और ऐसा शरीर क्योंपड़ाहै ? आगेतो कोई भीऐसा

शरीर नहीं देखा सुना? अग्निने कहा, तू अभी तूष्णीहोरह । यह सब वृत्तांतमैं तुझसे कहूंगा पर प्रथम इसको शांत होनेदे । इस प्रकार अग्नि कहताही था कि देवता, विद्याधर, गन्धर्व और सिद्ध जितने स्वर्गबासी थे वे सब आकर स्थितहुये और विचार करनेलगे कि, यह उपद्रव प्रलयकाल बिनाहुआ है इसके नाश करने को देवीजी की आराधन करना चाहिये । हे राजन् ! ऐसे विचारकरके वे देवी की स्तुति करनेलगे कि; हे देवी ! शववाहिनी ! काकदेशी चण्डिका ! हम तेरी शरणआये हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षाकरो । ऐसे कहकर वे स्तुतिकरनेलगे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाशववृत्तान्तवर्णनंनाम
द्विशताधिकचतुर्विंशतितमस्सर्गः २२४ ॥

विपश्चित बोले; हे राजादशरथ ! उन देवताओं ने स्तुति करके शवकीओर जो देखा तो क्या देखते हैं कि, सातोंद्वीप उसके उदर में समागये हैं; भुजाओं से सुमेरु आदिक पर्वत ढपगये हैं और उसके दूसरे अंग ब्रह्मांड को भी लांघगये हैं और साथही पाताल को भी गयेहैं । निदानउनकी मर्यादा कहीं पाई नहाजातीथी एकही अंग से पृथ्वी छिपगई । ऐसे देखकर विद्याधर, गन्धर्व, और सिद्धों से लेकर सम्पूर्ण नभचर स्तुति करनेलगे । हे अंबेचण्डिका ! अपने गणको साथलेकर इस उपद्रव से हमारी रक्षाकरो—हम तेरी शरण आयेहैं । हेराजन् ! जब इसप्रकार स्तुति करके देवता आराधन करनेलगे तब चण्डिका आकाशमार्ग से यक्ष, वैताल, भैरव आदिक गण अपने साथलेकर आई और जैसे मेघ सर्व दिशाओं को ढांपलेता है तैसेही सर्व ओर से उसके गणोंने आकर आकाशको ढांपलिया और चण्डिका ऐसे तेजरूप को धारेहुये चलीआतीथी मानो अग्नि की नदी चलीआतीथी । उसके रक्त नेत्र, शिरपर पक्केकेश और श्वेतदांत थे और वह बड़ेशस्त्र धारेहुये कई कोटि योजन पर्यंत उसका विस्तार था । वह सबदिशा और आकाश अपने शरीरसे आच्छादित किये; कंठमें मुण्डों की माला पहिने; मुरदे वाहनपर आरूढ़ और परमात्मा पद में उसकी स्थिति थी । वह ऐसी महाप्रकाशवान्थी मानों सूर्य, चन्द्रमा, अग्निआदिक के प्रकाशको भी लज्जित कररहीहै और हाथों में खड्ग, मूसल, ध्वजा, ऊखल आदिक नाना प्रकार के शस्त्रधारे आकाश में तारागण की नाईं गर्जतीहुई गणों सहित इसप्रकार चलीआती थी मानों समुद्रसे निकसीसाक्षात् बड़वाग्नि चलीआती है । जब वह निकटआई तब देवता फिर प्रार्थना करनेलगे कि, हे अंबे ! इसका नाशकरो व अपने गणोंको आज्ञादीजिये कि; इसका भोजन करें;हम इसको देखकर बड़े शोक को प्राप्तहुये हैं और तेरी शरणहैं, इसउपद्रव से हमारी रक्षाकरो । हे राजादशरथ ! जब इसप्रकार देवताओं ने कहा तब चण्डिका ने प्राणवायु को खींचा और जितना

शवमें रक्तथा वह सब पानकरगई,जैसे समुद्रको अगस्त्यजीने पानकियाथातैसेही उस-
ने रक्तपानकिया। जब उससे देवीका उदर और अंग सब पूर्णहोगये और नेत्रलालहो
आयेतब देवी नृत्यकरनेलगी और उसके गण सब उसशवका भोजनकरनेलगे। कई
मुखको खानेलगे;कई भुजाको; कई उदरको; कई वक्षस्स्थलको; कईटांगोंको औरकई
चरणों को, इसी प्रकार उसके सब अंग गण भोजन करनेलगे। कईगणआंतेंलेकर
आकाशमें सूर्यके मंडलकोगये; कई गण उस अंगके अन्तपाने को उड़े सो मार्गहीमें
मरगये परन्तु कहीं अन्त न पाया और देवी जो उसशवकी ओर देखतीथी इससे
उसके नेत्रोंसे अग्नि निकलतीथी—और उससे मांसपरिपक्कहोताथा और गण भो-
जनकरतेथे। मांस पकनेकेसमय जो शरीर से कहीं रक्तकी बूंद निकलतीथी उससे
मन्दराचल और हिमाचलपर्वत लालहोगये—मानों पर्वतों ने भी लालवस्त्र पहिरे हैं
रक्तकी नदियां बहनेलगीं और जो बड़े सुन्दर स्थान और दिशाथीं वे सब भयानक
होगईं और पृथ्वी के जीव सब नष्टहोगये पर जो पहाड़की कन्दरा में जाकरदबरहेथे
सो बचगये शेष सब नष्टहोगये। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! तुम कहतेहो कि; उसके
नीचे प्राणीआकर सब नष्टहोगये और अंग उसके ऐसे कहते हो कि; ब्रह्मांड को भी
लांघगये एवम् फिर कहतेहो कि; देवताबचरहे सो क्या कारणहै ? वशिष्ठजी बोले;हे
रामजी!जोउसकेशरीर और अंगकेनीचेआये वे तो नष्टहोगये पर मुख और ग्रीवामें
कुछ भेदहै तिसमें जो पोलहै और गोदी औरटांगके नीचे के पोलमें और सुमेरु, मन्द-
राचल,उदयाचलऔरअस्ताचल पर्वतोंमें कुछपोलहै उनकी कन्दरामें बैठे हुये देवताबच
गये और जो अंगके छिद्रोंमेंरहे वे भी बचरहे और कहनेलगे कि बड़ाकष्टहै जो हमारे
बैठनेके कईस्थान नष्टहोगये। हाय!वे वृक्ष कहांगये,बरफकापर्वत हमाराकहांगया,उन
की सुन्दरता कहांगई,वन और बगीचे कहांगये,चन्दनके वृक्ष कहांगये और वे जनों
केसमूह कहांगये जो हमको यज्ञकरके पूजतेथे ? वे ऊँचेवृक्ष कहांगये जिनके ब्रह्मलोक
पर्यंत फूल और टहनीजातीथीं और वह क्षीरसमुद्र कहांगया जिसकेमथनेसे बड़ा
शब्द हुआथा ? उसके पुत्र जो रत्न,कल्पतरु और चन्द्रमाथे वे कहांगये और जम्बू-
द्वीप कहांगया जिसमें जंबूके फलकी नदीचलाई थी और सुवर्णवत् जलके चक्र उठ-
तेथे ? ईषके रसका समुद्र कहांगया ? हाकष्ट ! हाकष्ट ! शक्करके और मिश्रीके पर्वत
और अप्सराओंके बिचरनेके स्थान कहांगये और पृथ्वी कहांगई ? वे नन्दनवनके
स्थान कहांगये जहां हम अप्सराओंके साथ बिलासकरतेथे ? उनविषयोंका अभाव
नहीं हुआ मानों हमको शूलचुभते हैं। जैसे फलको कंटकचुभते हैं, तैसेही विषयके
आभासरूपी हमको कंटकचुभते हैं। इसी प्रकार वे अतिशोकवान् हुये और कहने
लगे हाकष्ट ! हाकष्ट ! इधर विषयोंका स्मरण करके देवता शोककरतेथे और उधर

उसशवके जितने अंगथे उनको गणोंने भोजनकर लिया और उससे अघागये। कुछ मेदाका पिंडशेष रहगयाथा उससे बहुत दुर्गन्धिहुई और उसपिंडकी पृथ्वीहोगई इस-से उसका नाममेदनी होगया और मोटे हाड़ोंके सुमेरुआदिक पर्वतहुये। तब ब्रह्माजी ने देखा कि,सब विश्वशून्यसा होगया है इससे उन्हों ने संकल्प किया कि, अब फिर में सृष्टिरचूं। निदान पूर्वकी नाईं उनने सृष्टि रची और जगत्‌का सब व्यवहार उसी प्रकार चलनेलगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वयंमाहात्म्यवृत्तांतवर्णनन्नाम द्विशताधिकपंचविंशतितमस्सर्ग्गः २२५॥

विपश्चितबोले। हेराजादशरथ! जब यहकर्महोरहाथा तबमैंने अपने इष्टदेवतासे जो तोतेवाहनपर आरूढ़था,प्रश्नकियाकि,हे महादेव! सर्वजगत्‌केईश्वर और सर्वजगत्‌के भोक्ता! यहशव कौनथा; कहां स्थितथा और किसप्रकार गिरा? अग्निबोले,हे राजन्! जिसका अनन्तत्रिलोकी आभासहै उससे इसशवकावृत्तांत वर्णनहोसक्ताहै;एकत्रिलो-कीसे इसकावृत्तांत नहींहोसक्ता। इससे सुनो;हेराजन्!एकपरमआकाशहै जो चिन्मात्र पुरुष सर्वज्ञ, अनामय और अनन्तहै। वह आत्मतत्त्व केवल अपने आपमें स्थितहै पर उसका जो आभास संवेदन फुरनाहै, वही किञ्चन होताहै। वह जब किसी स्थान में फुरताहै तब ऐसी भावना होतीहै कि;मैं तेज अणुहूं। उस भावनाके वशसे अणुसी होजाती है। जैसे कोई पुरुष सोयाहै और स्वप्नेमें आपको मार्गमें चलता देखता है, अथवा जैसे तुम स्वप्नेमें आपको पौढ़े देखो तैसेही चित्‌संवेदनने आपको अणुजा-नाहै जैसेफुरना ब्रह्माको हुआहै तैसेही धूरके कणकेकाभी अधिष्ठानमें फुरना तुल्य हुआहै। जब उसअणुको शरीरकी भावना होतीहै तब अपनेसाथ शरीरदेखताहै और शरीरके होनेसे नेत्र आदिक इन्द्रियांघन होतीहैं तब शरीर और इन्द्रियोंसे आपको मिलाहुआ जानता है। जब अपना आप जानकर और उनको ग्रहणकरके इन्द्रियों से विषयको ग्रहण करताहै तब वही चिद्रूपजीव प्रमादसे आधाराधेय भावको मान-ताहै पर अधिष्ठान सत्तामें कुछ हुआ नहीं; वह अद्वैत सत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेमें प्रमादसे अपने आपको किसी गृहमें बैठे देखता है, तैसेही यहां प्रमादसे आधाराधेय भावको देखताहै और प्राण और मन अहंकारको धारताहै और जानताहै कि मेरे माता,पिताहैं और मैं अनादि जीवहूं। अपना शरीर जानकर आगे पंचभौतिक जगत् शरीरको देखता है और अपने फुरनेके अनुसार अंगहोते हैं। इसीप्रकार जो आदि शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वमें फुरनाहुआ तो चित्तकलाफुरी औरउसने आपको तेजअणुजाना। तब उसमें अहंवृत्ति तो अहंकार हुआ; निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चेततारूप चित्त और संकल्प विकल्परूप मन हुआ। यह उत्पन्नहोकर फिर

तन्मात्रा उपजी,फिर उसकेइच्छा द्वाराशरीर और इन्द्रियां उत्पन्नहुईं और उनसेदेख-नेकी इच्छाहुई। उससंवित्‌काल में जब आगे दृश्य भासिआई तब संवित् शक्तिने आपको प्रमाद द्वेषसे द्वैतजाना और साथही उसके अपने माता, पिता और कुल फुरआये कि; यह मेरी माताहै, यह मेरा पिताहै और यहमेरा कुलहै, सो चिरकालसे चला आताहै। इसी प्रकार एकदैत्य अहंकार सहित विचरने लगा और एककुटीमें एक ऋषि बैठाथा, उसकुटीकी ओर गया और उसकी कुटी चूर्णकरके जब ऋषिके निकटआया तब ऋषिने कहा , हे दुष्ट ! तूने यह क्या चेष्टाग्रहणकी है। अबतू मर-कर मच्छर होगा। हे विपश्चित! उसऋषिके शापरूपी अग्निसे उसका शरीर भस्म होगया और उसकी निराकार चैतन संवित् भूताकाशरूप होगई। फिर आकाशमें उसका वायुसे संयोग हुआ और उसऋषिमौनीके शापकी वासना आन उदय हुई। जैसे पृथ्वी में समय पाकर बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है; तैसेही पंचतन्मात्रा उदय हुई और अपना मच्छरका शरीर जिसकी आयुर्बल दो अथवा तीन दिनकी होतीहै अज्ञानसे भासिआया। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जीव जो जन्मपाते हैं सो जन्मसे जन्मांतरको चलेआते हैं अथवा ब्रह्मसे उपजे होतेहैं—यहकहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! कई जन्मसे जन्मांतर चलेआते हैं और कई ब्रह्मासे उपजे होतेहैं। जिनको पूर्ववासना का संसरना होताहै वे वासनाके अनुसार शरीर धारते हैं और जन्मते जन्मांतरको चलेआतेहैं और जिनको संस्कार बिना भूतभासिआते हैं वे ब्रह्मासे उत्पन्नहोतेहैं। हे रामजी ! आदिमें सबजीव संस्काररूपी कारण विना उत्पन्नहुयेहैं और पीछेसे जन्मांतर होताहै। जो संस्कार विना भूतभासे,उसे जानिये कि; ब्रह्मासे उपजा है और जिसको संस्कारसे सृष्टिभासे उसे जानिये कि; इसका जन्मांतरहै। यह दोप्र-कारसे भूतोंकी उत्पत्ति मैंने तुमसे कही है अबफिर उसमच्छरका क्रमसुनो। हे रामजी ! जब उसने मच्छरका जन्मपाया तबकमलनियों औरहरीघास,तृण और पत्तोंमेंमच्छरों को साथलिये रहनेलगा। निदान वहाँ एकमृगआया और उसका चरण उसमच्छर पर इस प्रकार आपड़ा जैसे किसीपर सुमेरु पर्वत आपड़े। तब वह मच्छर चूर्णहो-कर मृतकहोगया और मृतक होनेके समय मृगकी ओर देखने लगा इससे मरके त-त्कालही मृगहुआ और वनमें बिचरनेलगा फिर एककाल में उसको बधिकने देखकर बाण चलाया और उसबाणसे वह मृग बेधागया। बेधेहुये मृगने बधिक की ओर देखा इसलिये वह मरके बधिकहुआ और धनुष बाण लेकर मृग और पक्षियों को मारनेलगा। एक समयमें वह वनको गया और वहां एक मुनीश्वरकोदेख उसके निकट जाबैठा, तब मुनीश्वर ने कहा , हे भाई ! तूने यह क्या पापचेष्टा का आरम्भ किया है ? इसचेष्टा से तो तू नरक को प्राप्तहोवेगा इससे किसी जीवको दुःख न

दे। जिनभोगों के निमित्त तू यह चेष्टाकरता है सो बिजुली के चमत्कारवत् हैं। जैसे मेघमें बिजुली का चमत्कार होता है और फिर मिटजाता है, तैसेही ये भोगभी होकर मिटजाते हैं और जैसे कमलके पत्रपर जलकी बुंद ठहरती है पर उसकी आयुर्बल कुछनहीं होती क्षणपल में गिरपड़ती है; तैसेही इस शरीर की आयुर्बलकुछनहीं है। जैसे अंजलीमें जलडाला नहींठहरता तैसेही यौवनअवस्था चलीजाती है। क्षणभंगुररूप वृक्षहै और यौवन असार है उसमें भोगनाक्या है? इनसे कदाचित शांति नहींहोती। जो तुझको शांतिकी इच्छाहो तो निर्वाणकाप्रश्नकर, तब तू दुःखसे मुक्त होगा। अपने हिंसाकर्म को त्यागदे इसके करनेसे नरकमें जावेगा और कदाचित् शांति तुझको न प्राप्तहोगी। तू अपने हाथसे अपने चरण पै क्यों कुल्हाड़ा मारता है और अपने नाशके निमित्त तू क्यों विषकाबीज बोताहै? इसकर्म से तू संसार दुःख में भटकता फिरेगा और शांतिमान् कदाचित् न होगा। इससे अबतू वही उपायकर जिससे संसार समुद्रसे पारहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमच्छरव्याधवर्णनन्नाम द्विशताधिकषड्विंशतितमस्सर्गः २२६॥

अग्निबोले; हे राजन्! जब इसप्रकार ऋषीश्वरने उस बधिकसे कहा तब उसने धनुषबाण को डालदिया और बोला हे भगवन्! जिसप्रकार मैं संसार समुद्रसेपारहो जाऊँ वह उपाय कृपाकरके मुझसे कहिये परन्तु वह कैसा उपायहो जो न दुःसाध्यहो और न मृदुहो अर्थात् जो अल्पभी नहो और कठिन भी न हो। ऋषीश्वर बोले, हे बधिक! मनको एकाग्रकरनेकानामशमहै और इंद्रियोंके रोकनेको दमकहतेहैं—वही मौनहै। मन को एकाग्र करनेसे अन्तःकरण शुद्धहोताहै और अन्तःकरणकी शुद्धतासे आत्मज्ञान उपजता है इससे संसार भ्रम निवृत्तहोकर परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अग्निबोले, हे राजन्! इस प्रकार जब ऋषीश्वरनेकहा तबवहबधिक उठखड़ाहुआ और प्रणाम करके तपकरनेलगा। इन्द्रियोंको उसने संयममेंरक्खा और जो अनिच्छित यथाशास्त्र प्राप्त हो उसका भोजन करनेलगा और हृदयसे सब क्रियाओं की मौनवृत्ति धारण की। जब उसको कुछकाल तपकरतेव्यतीत हुआ तब उसका अन्तःकरण शुद्धहुआ और ऋषीश्वरके निकटआ प्रणामकरके बैठगया और बोला; हे भगवन्! बाहर जो दृश्यहै सो हृदयमें किसप्रकार प्रवेशकरतीहै और स्वप्नेकी सृष्टि अन्तरकी बाह्यरूपहो कैसेभासती है? यह कृपाकरके कहो। ऋषीश्वरबोले, हे बधिक! यह बड़ागूढ़ प्रश्न तूने कियाहै। यही प्रश्न मैंनेभी गणपतिसे कियाथा और उनकेकहनेसे मैंने जोग्रहण कियाहै सो सुन। एकसमय यही सन्देह दूरकरनेकाउपाय मैंनेभी कियाथा और पद्म

सनबाँध, बाहरकी इन्द्रियोंको रोक मनमें लगा मन, बुद्धि आदिकको पुर्य्यष्टका में स्थितकिया। फिर पुर्य्यष्टकाको भी शरीरसे बिरक्तकिया और उसको आकाशमें निराधार ठहराया। निदान जब बिलक्षणहुआचाहूँ तब बिलक्षणहोजाऊं और जबशरीरमें व्यापाचाहूँ तब व्यापजाऊं। हे बधिक! इसप्रकार जब मैं योगधारणासे पूर्णहुआ, तो एककालमें एक पुरुष हमारीकुटीके पास सोरहाथा और उसके श्वासभीतरबाहर आतेजातेथे। उसकोदेखकर मैंने यह इच्छाकी कि; इसकेभीतर जाकर कौतुक देखूं कि, क्या अवस्था होतीहै। ऐसे बिचारकरकेमैंने पद्मासनबाँधा और योगकी धारणाकरके उसके श्वासमार्गसे भीतरप्रवेशकिया। जैसे उष्ट्रऊँघताहो और उसके श्वासमार्ग से सर्पप्रवेशकरे। तैसेही मैंने प्रवेशकिया तो उसके भीतर अपने २ रसको ग्रहण करने वाली नाड़ियां मुझे दृष्टिआईं। कईवीर्यको ग्रहण करनेवाली हैं, कईरक्त और कफ को ग्रहणकरती हैं, कई मलमूत्रवाली हैं और अनेकविकार जो उसके भीतरथे सो सबदेखे। इससे मैं अप्रसन्नभया कि; महासंकल्परूपस्थान है और रक्तमज्जासंयुक्त महानरकके तुल्य अन्धकार है। फिर और आगेगया तो वहां एककमलदेखा कि, उसमें उसका संवेदनफुरताहै और संवित्शक्ति जो महातेजवान् हृदयाकाशहै सो भी वहां स्थितहै। वही त्रिलोकीका आदर्श है और त्रिलोकीमें जो पदार्थ हैं उनकादीपक है और सर्वपदार्थोंकी सत्तारूपहै। ऐसा संवित्रूपी जीवसत्ता वहां स्थितथा उससे मैं तद्रूपताको प्राप्तहुआ। फिर मैंने सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, समुद्र, देवता, गन्धर्व आदि नानाप्रकार के स्थावर-जंगम विश्व को देखा। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसहित संपूर्ण सृष्टिको उसके भीतर देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि; उसके भीतर सृष्टि क्योंकरभासी। हे बधिक! उसने जाग्रत्में उससृष्टिका अनुभव इन्द्रियों से कियाथा और भीतरचित्तत्त्व में उसके संस्कार हुआथा वही भीतरभासने लगा और भीतर जो भूतसत्ताथी सो उसकेस्वप्ने में सृष्टिरूपबाहरबनी और मुझको प्रत्यक्षभासनेलगी। जैसे जाग्रत्प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है, तैसेही मुझको यहसृष्टिभासने लगी। हे बधिक! इसजाग्रत्सृष्टि और उससृष्टिमें मैंने कुछ भेद न देखा-दोनों तुल्यहैं। चिरपर्य्यंत प्रतीतिका नामजाग्रत् है और अल्पकालकी प्रतीतिका नामस्वप्ना है पर स्वरूपसे दोनोंतुल्य हैं। जो उसके स्वप्नेके अनुभवमें था सो मुझको जाग्रत्भासा और जो मुझको जाग्रत्भासा सो उसको स्वप्नाभासा। निद्रादोषसे उसको स्वप्नाहुआ सो उसको भी उसकालमें जाग्रत्रूप भासने लगा क्योंकि; स्वप्ना जो स्वप्नरूपहै सो जाग्रत्में स्वप्नाहै और स्वप्नमें तो जाग्रत् है; तैसे जाग्रत्भी अपनेकालमें जाग्रत्है, नहीं तो स्वप्नरूपहै सो जाग्रत्में भी जो सत्य प्रतीतहै वहीप्रमादहै। इनदोनोंमें कुछभेदनहीं क्योंकि; जाग्रत् और स्वप्न दोनों का

अधिष्ठान चैतन्यसत्ता परब्रह्महीं है और उसीके प्रमादसे प्राणके साथसम्बन्धहुआ है। जब प्राणसे चित्तसंवेदनमिलती है तब उसफुरनरूपके इतनेनाम होतेहैं—जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकारआदिक। वहीसंवेदन जो बाह्यरूपहो फुरतीहै तब जाग्रत् रूपजगत् होभासता है और पाँचज्ञानइन्द्रियाँ पाँचकर्मइंद्रियां और चतुष्टयअन्तःकरण ये चौदह अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं—इसका नाम जाग्रत् है जब चित्तस्पन्द निद्रादोष से अन्तर्मुख फुरता है तब नाना प्रकारकी स्वप्ने की सृष्टि देखताहै और उसकाल में वही जाग्रत्रूपहो भासता है। अधिष्ठान जो आत्मसत्ताहै जब संवेदन उस की ओर फुरती है और बाह्यबिषय के फुरनेसेरहित अफुरनहोती है तब न जाग्रत् भासती है और न स्वप्ना भासतीहै केवल निर्विकल्प आत्मसत्ताशेष रहती है। हे बधिक! मैंने विचार देखाहै कि, जगत् और कुछ वस्तुनहीं फुरनेहीका नाम जगत् है। जब चित्त संवेदन फुरनरूपहोतीहै तब जगत् भासता है और जब चित्तसंवेदन फुरनेसे रहित होतीहै तब जगत् कल्पना मिटजाती है; इसलिये मैंनेनिश्चय किया है कि; वास्तव में केवल चिन्मात्र है। जगत् कुछ वस्तु नहीं मिथ्या कल्पनामात्र है। हे बधिक ! जगत् भावना त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहोरहो। अब वहीवृत्तांत फिरसुनो। जब उसके भीतर मैंने स्वप्न और जाग्रत् अवस्थादेखीं तब मैंने यह इच्छाकी कि,सुषुप्ति अवस्थाभी देखूं और विचार कियाकि; सुषुप्ति प्रलय कानाम है जहां द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनोंका अभावहोजाता है परन्तु जहां मैं देखनेवाला हुआ वहांमहाप्रलय कैसेहोगीऔर जो मैं जाननेवाला न होऊं तबसुषुप्ति को कौनजानेगा। हे बधिक ! तब मैंने विचार के देखा कि, और सुषुप्ति कोई नहीं जहां चित्तकी वृत्ति नहीं फुरती उसीकानाम सुषुप्तिहै। ऐसे विचारकरके मैंने चित्तको फुरनेसे रहित किया तबउसकी सुषुप्ति देखीतो क्यादेखा कि; न कोईवहां अहंऔरत्वं शब्दहै; न शुभहै; न अशुभहै; न जाग्रत्है; न स्वप्नाहै और न सुषुप्ति की कल्पना है; सर्व कल्पनासे रहित केवल चित्तसत्ता मैंने देखी। जो तुमकहो कि,सुषुप्ति निर्विकल्प तुमने कैसेदेखी तो उसका उत्तर यहहै कि; अनुभव ज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्वदाकाल में ज्योंकीत्यों है और उसमें जैसा आभासफुरता है तैसाही ज्ञानहोता है। यहजोतुम भी दिन प्रतिदिन देखतेहो और सुषुप्ति सेउठकर जानतेहो कि, मैं सुखसे सोयाथा सो अनुभवसेही देखतेहो; तैसेही मैंनेभी वहदेखा जहां चित्त संकल्प कोईनहीं फुरता केवल निर्विकल्प है परन्तु सम्यग्बोध से रहित है उसअभाव वृत्तिकानाम सुषुप्तिहै। फिर मुझको तुरीया देखने की इच्छाहुई परतुरीयादेखनी महाकठिन है। तुरीया साक्षीभूत वृत्तिकानाम है, वह सम्यग्ज्ञानसे उत्पन्न होती है और जाग्रत,स्वप्न औरसुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीभूत है और सुषुप्ति की नाईंहै। जैसे सुषुप्तिमें अहं त्वं आ-

दिक कल्पना कोई नहीं होतीं तैसेही तुरीया में भी नहीं। उसमें ब्रह्मका सम्यग्बोध होता है और सुषुप्ति जड़ीभूततमरूप अविद्याहोती है। तुरीया में जड़तानहींहोती; सुषुप्ति और तुरीया में इतनाही भेदहोता है। सच्चिदानन्द साक्षी वृत्ति होती है। सम्यग्बोधकानाम तुरीयापदहै और तुरीया इससे भिन्ननहीं। ऐसेनिश्चयसे मैंने उसको देखा। हे बधिक! चारों अवस्था मैंने माया अर्थात् फुरनेसहित भिन्नभिन्नदेखींपर आत्म-सत्ता अपने आप में स्थित है उसमें न कोई जाग्रत् है, न स्वप्न है,न सुषुप्तिहै और न तुरीया है—इनका भेद वहाँ कहीं नहीं। आत्मसत्ता सदाअद्वैत है और ये चार चित्त संवेदन में होती हैं। हे बधिक! ऐसा अनुभव करके मैं बाहर आया और बाहरभी मुझको वैसेही भासनेलगा; तब मैंने कहा कि, यही जगत् तो मुझको उसके भीतरभासाथा यह बाहर कैसे आया? तब मैंने फिर उसके भीतर प्रवेश किया। प्रथम जो उसके भीतर मैंने प्रवेशकिया था और उसके भीतरसृष्टिदेखीथी तबउसकी और मेरी संवेदन मिलगई थी पर जब मैंने अपनी संवेदन उससे भिन्नकी तबदो ब्रह्मांड होगये और एक उसकी संवेदन फुरन में और एक मेरी संवेदन में भासनेलगा क्योंकि;मैंने प्रथम उसकी सृष्टि को देख और अर्थरूपजानकर ग्रहणकिया था पर उसकासंस्कार होगया। आत्मसत्ताके आश्रय जैसे संबेदन फुरतीगई तैसेहोकर भासनेलगा। उसका स्वप्न मुझको जाग्रत् होकर भासनेलगा—जैसे एक दर्पणमें दो प्रतिबिम्बभासैं,तैसे-ही एक अनुभव में मुझे दो सृष्टि भासनेलगीं। तब मैंने विचार किया कि, सृष्टि संकल्परूपहै; संकलपजीव २ का अपना अपनाहै और अपने२ संकल्प की भिन्न भिन्न सृष्टि है इससे अनुभव के आश्रय जैसा जैसा संकल्प फुरता है तैसी २ सृष्टि भासती है; सृष्टि का कारण और कोई नहीं। हे बधिक! अष्टनिमेषपर्यंत मुझको दो सृष्टिभासतीरहीं, फिर मैंने उसके और अपने चित्तकीवृत्ति इकट्ठीकरके मिलाई तो दोनों तद्रूप होगये—जैसे जल और दूधमिलकर एकरूपहोजातेहैं और दूसरी सृष्टि का अभावहोगया। जैसे भ्रमदृष्टिसे आकाशमें दो चन्द्रमाभासतेहैं और भ्रमकेगयेसे दूसरे चन्द्रमाका भाव अभावहोजाता है; तैसेही द्वितीय वृत्ति के अभावहुये से दूसरी सृष्टि का अभाव होगया। निदान एकही सृष्टि भासने लगी और नाना प्रकारके व्यवहार होते दृष्ट आवें और चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र स्पष्ट भासनेलगे। कुछकालके उपरांत चित्त की वृत्ति सुषुप्ति की ओरआई और स्वप्नेकी सृष्टिका विस्तार लीन होनेलगा—जैसे सन्ध्या के समय सूर्यकी किरणें सूर्य में लयहोजाती हैं। जब वहसृष्टि चित्तमें लयहोनेलगी तब स्वप्ने की सृष्टि मिटगई; सुषुप्ति अवस्था हुई और सर्व इन्द्रियां स्थिर होगईं। हे बधिक! सुषुप्ति तब होतीहै जब जीव अन्न भोजन करता है औरवह समवाही नाड़ीपर आनस्थित होताहै; तब जाग्रत्वाली नाड़ी ठहरजाती

है, उससे प्राणभी ठहरजातेहैं और तब मनभी ठहरजाता है–उसका नामसुषुप्तिहै। जब मन फिर फुरता है तब जाग्रत् होती है। इतना सुन रामजीने पूंछा, हे मुनीश्वर! जब मन प्राणोंहीसे चलता है तब मनका अपना रूपतो कहीं न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थ से कहिये तो देहही नहीं है तो मनक्या हो। जैसे स्वप्ने में पहाड़ भासते हैं, तैसेही यह शरीर भासता है क्योंकि; जो सबका आदिकारणकोई नहीं इससे जगत् मिथ्याभ्रम है–केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। जो तत्त्ववेत्ता हैं उनको तो ऐसेही भासता है और अज्ञानी के निश्चय को हमनहीं जानते। जैसे सूर्य उलूक के अनुभव को नहीं जानता और उलूकसूर्य के निश्चयको नहीं जानता, तैसेहीज्ञानी और अज्ञानीका निश्चय भिन्न २ होताहै। शुद्ध चिन्मात्र आकाश में जगत् भ्रम कोई नहीं पर फुरनभाव से अपने चेतन बपुको भूल ज्ञान बिनाही मनभावको प्राप्त होता है और तबमन आत्मसत्ता के आश्रय होकर प्राणबायु को अपना आश्रयभूत कल्पता है कि; मेरा प्राणहै। हे रामजी! फिर जैसे २ मन कल्पना करता है, तैसे २ देह; इन्द्रियाँ और जगत् भासते हैं। परब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न है उस में जैसी जैसी भावना से मन फुरता है तैसाहीतैसा रूप हो भासता है–वास्तवमेंऔर कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। मनका फुरना जैसेजैसे दृढ़ हुआहै तैसेही तैसे देह;इन्द्रियां और जगत् भासनेलगाहै। जैसे स्वप्नेमें कल्पनामात्र जगत् भासता है तैसेही इसेजानो। हे रामजी! जितने विकल्प उठते हैं वे सब मनकेरचेहुये हैं। जब मन उदय होता है तब यह फुरना होता है कि, यह पदार्थ सत्य है औरयह असत्य है जब चित्त शक्ति का मनसे सम्बन्ध होताहै तब प्रथम प्राण उदय होते हैं और प्राणको ग्रहणकरके मन कहताहै कि,मैं जीवहूं; प्राणही मेरी गति है और प्राण बिना मैं कहाँथा। फिर कहता है कि, जब प्राण का बियोगहोगा तब मैं मरजाऊंगा–फिर न रहूंगा। फिर ऐसे कहता है कि, मुआ हुआभी मैं जाऊंगा। हे रामजी! जब तक चाहिये तबतक ये तीन विकल्प उठते हैं और संशयवालेको न इसलोकमें सुख है और न परलोक में सुख है जब तक आत्मबोध का साक्षात्कार नहीं होता तबतक चित्तभी निर्वाण नहीं होता और तीनों विकल्पभी नहीं मिटते। हे रामजी! मनके विस्मरण का उपाय आत्मज्ञान से इतर कोई नहीं और मनके शांतिहुये विनाकल्याण भी नहीं होता। दो उपायों से मनशान्त होता है मनकी वृत्ति स्थितकरनी औरप्राण स्पन्द के रोंकने से मनस्थित होता है तब प्राण रुकजाते हैं और प्राणके स्पन्द को रोंकने से मन स्थित होताहै। जब प्राण क्षोभतेहैं तब चित्तभी क्षोभताहै और तभी अध्यात्मिक और अधिभौतिक तापों की अग्नि से जलता है। मनके स्थित करनेसे परमसुखप्राप्त होता है सो मनकी स्थिति दो प्रकार की है–एक ज्ञानकी स्थिति है

और दूसरी अज्ञानकी स्थितिहै । जबप्राणी बहुत अन्न भोजनकरता है तब वह नाड़ी पर जास्थित होताहै और प्राणठहरजाताहै और जब प्राणठहरे तब मनभी जड़ीभूत होजाता है–उसीका नाम सुषुप्ति है । वे नाड़ीकौन हैं जिनपर अन्नजाय स्थितहोता है ? वे नाड़ी वेही हैं जिनके मार्ग से जाग्रत् में प्राण निकलते हैं । जब बासना सहित वेही नाड़ीरोंकीजातीहैं तबमन सुषुप्त होजाताहै । यह अज्ञानीके मनकीस्थिति है क्योंकि; जड़ता है सो संसार को लिये शीघ्रही फिर उठआताहै । जैसे पृथ्वीमें बीजसमय पाकर अंकुरले आताहै, तैसेही वहसंस्कारसे फिर सुषुप्तिसे उठताहै । जो ज्ञानवान् सम्यक्दर्शीहै उसकाचित्त चैतन्यता केलिये स्थितहोता है । वह चैतन्यता दो प्रकारकी है–एकतोयोगीको होतीहै जिससे वह समाधिमें मनको स्थित करता है । वह समाधिनिष्ठ चित्तहै; जड़तानहीं। जैसे सुषुप्तिमें जड़ता होतीहै तैसीजड़ता वहनहींहै। दूसरे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त के चित्तकी वृत्ति सम्यक्ज्ञानसे स्थितहोती है क्योंकि, उसकाचित्त वासनासे रहितहै । यहीस्थिति है । जिसकाचित्त इसप्रकार स्थित है उसी पुरुषको शांतिहै और जिसकाचित्त बासना सहित है उसको कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती और उसके दुःखभी नहींमिटते । उसे निर्वासनिकचित्त करनेको सम्यक्ज्ञानका कारण यह मेराशास्त्रही है । इसकेसमान और कोई उपाय नहीं । हे रामजी ! यहजो मोक्ष उपायशास्त्र मैंने कहाहै उसके बिचारसे शीघ्रही स्वरूपकी प्राप्तिहोवेगी; इससे सर्वदा इसीका विचार कर्त्तव्य है । जब इसको भलीप्रकार बिचारोगे तबचित्त निर्वासी होजावेगा । अबवही बधिकका प्रसंग सुनो । मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! जब मैंने उसशव पुरुषके चित्त में प्राणके मार्गसे प्रवेशकिया तबक्यादेखा कि, उसकेप्राण रोंकेगये हैं और अन्नकरके जाग्रतुनाडी जो फुरतीथी सो रोंकीगई है क्योंकि; अन्न पचा न था इसकारण वह सुषुप्तिमें था । उसकी सुषुप्ति में मुझको भी अपना आप विस्मरण होगया । जब कुछ अन्नपचा तब उसके प्राण फुरनेलगे और जब प्राण फुरे तब चित्तकी वृत्ति भी कुछ जड़ताको त्यागती भई पर संपूर्ण जड़ताकोत्यागनहीं किया । प्राणके फुरनेसे चन्द्रमा, सूर्य आदिक जो कुछ विश्व है सोभी फुरा तब मैंने नानाप्रकारके जगत् को देखा और मुझे अपना पूर्व संस्कार भूलगया । निदान वहां मैंभी अपने कुटुम्बमें रहनेलगा; साथही उसके मुझेअपनीकुटी भासी और स्त्री,पुत्र, भाई, जन, बांधव सब भासिआये । फिर मेरेमें देखते देखते प्रलयकालके पुष्कर मेघ गर्ज्जनेलगे; मूशलधार जलबरसने लगा और सातों समुद्र उछलनेलगे । निदान जो कुछ प्रलयकालके उपद्रव होते हैं सोभी उदय हुये । प्रथम अग्निलगी; जब अग्नि लगचुकी और सब स्थान जलगये तब जलका उपद्रव उदयहुआ तब मैंने क्यादेखा कि, नगर, ग्राम, पुर, मनुष्य, पशु, पक्षी सब बहतेजाते हैं और हाहाकार शब्द करते

निदान बड़ा क्षोभहुआ और मैंने एक आश्चर्य्यदेखा कि, मेरीकुटीभी बहीजाती है और स्त्री, पुत्र, भाई, जन इत्यादिक सब जलके प्रवाहमें बहेजातेहैं। जिस स्थान में हमथे वह स्थानभी बहाजाताथा और मैंभी लुढ़कता जाताथा। निदान बहते २ मुझको ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ कि, कहने में नहींआता। एक तरंगसे तो मैं ऊर्ध्व को चलाजाऊं और एक तरंग के साथ नीचे चलाजाऊं। तब मुझे अपना पूर्व्व शरीर स्मरण आगया और जितनाकुछ जगत् है वह मुझको सब भासनेलगा; मिथ्या राग द्वेष सब मिटगया और शरीरकी सब चेष्टा उसीप्रकार होनेलगी कि, तरंगके साथ कभी ऊर्ध्व और कभीनीचे आपड़ा परन्तु हृदयमेरा शान्तहोगया। उसकालमें नगर, देश और मंडल बहतेजाते थे और त्रिनेत्रसदाशिव और विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध आदि सब बहतेजातेथे। अष्टदल कमलकी पंखड़ीपरबैठे ब्रह्माजी और इन्द्र, कुबेर और विष्णुजी अपनी २ पुरियों सहित बहतेजाते थे और पहाड़, द्वीप, लोकपाल भी बहतेजातेथे। पातालवासी सब प्रलयके जलमें बहतेजातेथे और यमभी अपने वाहन सहित बहतेजातेथे; ऐसीसामर्थ्य किसीको नथी कि, किसीकोकोई निकाले क्योंकि; आपही सब बहतेजातेथे और डूबते और गोतेखातेथे। बड़े ऐश्वर्य सहित देवभी बहे जातेथे। जो संसार सुखके निमित्त यत्नकरते हैं वे महामूर्ख हैं और जिनके निमित्त यत्नकरते हैं वे सुख और सुखके देनेवाले सब बहतेजातेथे तैसेही सबरूपीश्वर भी बहतेजातेथे। हे बधिक! मैंने इसप्रकार उसके स्वप्नमें महाप्रलय होतीदेखी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनं नामद्विशताधिकसप्तविंशतितमस्सर्ग्गः २२७॥

बधिकने पूंछा, हे मुनीश्वर! यह जो महाप्रलय तुमने कही कि, जिसमें ब्रह्मादिक भी बहतेजातेथे सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तो स्वतन्त्र ईश्वरहैं परन्तु परतंत्रहुये बहतेजाते तुमने कैसेदेखे? वे अन्तर्द्धान क्यों न हुये? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह जो प्रलयहुई सो क्रमसे नहीं हुई। जबक्रमसे प्रलय होतीहै तब यह ईश्वर समाधिसे शरीरको अंतर्द्धान करलेतेहैं परन्तु अन्तर्द्धान होनेका जलचढ़जाताहै। इनकाकुछ नियम नहीं क्योंकि, यहजगत् भ्रमरूप है; इसमें क्या आस्था करनीहै स्वप्नमें क्या नहीं बनता और स्वप्न भ्रांतिकरके विपर्ययभी होतेहैं इसलिये उनको बहतेदेखाहै। व्याधने पूंछा, हे मुनीश्वर! जब वह स्वप्न भ्रमथा तो उसका वर्णन क्या करना? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तुझसे इसकी समानताका अर्थ कहताहूं इससे कि, स्थावर जंगमजगत् बहतादेखा और साथही मैंभी बहताजाताथा और जलकी लहरें उछलतीथीं और उनतरंगोंमें मैंभी उछलताथा परन्तु मुझको कुछ कष्ट न होताथा। निदान में बहता बहता एक किनारे परजा लगा और उसके पास एक पर्वतथा उसकी कंदरामें जा

स्थितहुआ । वहां मैंने देखा कि, जीव बहतेहैं और जलभी सूखता जाताहै । जलके सूखनेसे कीचड़होगई; किसी ठौरमें जलरहा उसमें कईडूबते दृष्टआतेथे; कहीं ब्रह्माके हंस;कहीं यमके बाहन और कहीं विष्णुके बाहनकीचड़में पहाड़कीनाईं डूबते दृष्टआ-तेथे । कहीं इन्द्रके हाथी और विद्याधर आदि बाहन कीचड़में दृष्टआये और देवता, सिद्ध,गन्धर्व,लोकपाल दृष्टआये इससे मैं आश्चर्यवान् हुआ । हे बधिक ! इसप्रकार देखताहुआ जब मैं पहाड़की कंदरामें सोगया तब मुझको अपनी संवित्‌में स्वप्नआया और चन्द्रमा, सूर्य्य आदिक नानाप्रकारके भूत जलतेदेखे; नगर और पर्वत जलते देखे और जगत् बड़े खेदको प्राप्तहुआ देखा। जब रात्रिहुई तो मैं वहां सोयाहुआ स्वप्ने को देखा किया और दूसरे दिन उसमें मैंने फिर जगत् देखा और सूर्य,चन्द्रमा,देश, नदियाँ,समुद्र,मनुष्य,देवता,पशु,पक्षी नानाप्रकारकी क्रिया संयुक्तदृष्ट आनेलगे । मैंने अपना षोड़शवर्षका शरीरदेखा और मुझे अपने पिता और माता दृष्टआये। उनको देख मैं पिता और माताजानूं और वे मुझको अपना पुत्र जानें । निदान स्त्री,कुटुम्ब, बांधव समस्त मुझको दृष्टआये और मैंबोधसे रहित और तृष्णा सहितथा इससे मुझेअहंममका अभिमान आन फुरा और मैंने एकग्राममें जहांमेरा गृहथा ईंट और काष्ठ संग्रह करके एककुटी बनाई और उसके चौफेरबूटे लगाकर एकआसन बनाया जहां कमण्डलु और माला पड़ीरहे । मैं ब्राह्मणथा, मुझको धन उपजानेकी इच्छाहुई और जो कुछ ब्राह्मणका आचार चेष्टाथी सोभी मैं करताथा । बाहरजाके ईंट और काष्ठलेआऊं और आनकर कुटी बनाऊं । यह चेष्टा हमारी होनेलगी और शिष्य और सेवक हमारीपूजाकरनेलगे और मैं यथायोग्य उनको आशीर्वाददूं । इसप्रकार गृहस्थाश्रममें मैंचेष्टाकरूं और मुझको यह बिचारउपजे कि,यहकर्तव्यहै इसकेकरने से भला होताहै । नदियां और तालोंमें मैं स्नान करूं; गो की टहलकरूं और अति-थिकी पूजाकरूं। हे बधिक ! इसप्रकार चेष्टाकर्त्ता मैं सौ वर्षपर्यंत वहांरहा तब एककाल मेरे गृह में एकमुनीश्वर आया तो प्रथम मैंने उसको स्नानकराया; फिर भोजनसेतृप्त किया और रात्रिके समय उसको शय्यापर शयनकराया। इसप्रकार उसकी टहलकर रात्रिको हम वार्त्ता चर्चा करनेलगे उसमें उसनेमुझको बड़ेपर्वत, कन्दरा और चित्त के मोहनेवाले सुन्दरदेशस्थान और नानाप्रकारके स्वादसुनाये और कहनेलगा कि, हे ब्राह्मण ! जितने सुन्दरस्थान और सम्बाद तुझको सुनाये हैं उनसबोंमें सार एक चिन्मात्ररूपहै इससे सब चिन्मात्रस्वरूप है। सब जगत् उसका चमत्कार और आ-भासकिंचन है उससे कोईवस्तु भिन्ननहीं । इससे हे ब्राह्मण ! उसीसत्ताको ग्रहणकरो जो सबका अनुभव और परमानन्दस्वरूप है । उसीमें स्थित होरहो । हेबधिक ! जब इसप्रकार उस मुनीश्वरने मुझसे कहा तब आगे जो मेराभन योगसे निर्मलथा इससे

उसके बचन मेरेचित्तमें चुभगये और अपने स्वभावसत्तामें मैंजागउठा। तबमैंनेक्या देखा कि, सबमेराही संकल्पहै, मुझसेभिन्नकोईनहीं; मैंतो मुनीश्वरहूं और यह स्वप्न आयाथा। मैंनेजागकरदेखा कि, उसीपुरुषका स्वप्नथा;तब मेरे चित्तमें आया कि, किसी प्रकार इसकेचित्तसे बाहरनिकलूं और अपनेशरीरमें प्रवेशकरूं। तबमैंने फिर बिचारा कि यहजगत् तो उसपुरुषकाबपुहै, वहीपुरुष विराट्है जिसकेस्वप्नमें यहजगतहै परन्तु उसपुरुषको अपनेविराट्स्वरूपका प्रमादहै इससे जैसाबपु हमाराबनाहै उसकेस्वप्ने में वहभी तैसाएकविराट् इतरबनपड़ाहै तो फिर उसविराट्को कैसेजानिये कि,उसकेचित्तसे निकलजावे। हे बधिक! इसप्रकार विचारकरके मैंनेपद्मासनबाँधा और योगकीधारणा कर उसविराट्स्वरूपके शरीरकोदेखा। फिर जहां चित्तकीवृत्ति फुरतीथी उसके साथ मिलकर और प्राणकेमार्गसे निकलकर अपनीकुटीको देखा और उसमेंअपनेशरीरको पद्मासन बांधेदेखा। तबउसमें मैंनेप्रवेशकरके नेत्रखोले तो अपने सन्मुखशिष्यबैठेदेखे और वह पुरुषसोयाथा उसको देखा। एकमुहूर्त्त बीता तब मैं आश्चर्यवान्हुआ कि, भ्रममें क्या २ चेष्टादेखपड़तीहै कि, यहां एक मुहूर्त्तबीती है और वहां मैंने सौबर्ष का अनुभवकिया। बड़ाआश्चर्य है कि, भ्रमसे क्या नहीं होता। फिर मेरे मनमें उपजी कि, उसके चित्तमें प्रवेश करके कुछऔर कौतुक भी देखूं। तब फिर प्राणके मार्ग्ग से उसके चित्तमें मैंने प्रवेशकिया तो क्यादेखा कि, अगली कल्पना व्यतीत होगई है; बांधव, पुत्र, स्त्री, माता, पिताआदिक सबनष्टहोगयेहैं और दूसरा कल्पहुआहै उसकी भी प्रलयहोतीहै। बारहसूर्यउदयहोकर विश्वजलानेलगेहैं; बड़वाग्नि जलाने लगीहै; मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत जलकर टूक टूक होगये हैं; पृथ्वी जर्ज्जरीभावको प्राप्तहुईहै; स्थावर जंगम जीव हाहाकार शब्द करते हैं; बिजुली चमत्कार करती है; और बड़ाक्षोभ उदयहुआ। हे बधिक! मैं अग्नि में जापड़ा और मेराशरीरभी जलनेलगा परन्तु मुझको कष्टकुछनहुआ। जैसे किसीपुरुषको अपने स्वप्नेमें कष्ट प्राप्त हो और जागउठे तो कुछकष्ट नहींहोता तैसेही अग्निका कष्ट मुझको कुछनहुआ। मैं आपको वहीरूप जाग्रत्वाला जानताथा और जगत् प्रलयको भ्रममात्र जानता था इसकारण मुझको कष्ट न होताथा। और चेष्टा तो मैंभी उसीप्रकार देखता और करता था परन्तु हृदय से ज्योंका त्यों शीतल चित्तथा और और लोग जो थे सो अग्नि के क्षोभ से कष्ट पाते थे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहृदयान्तरप्रलयाग्निकदाहवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टविंशतितमस्सर्ग्गः २२८॥

मुनीश्वरबोले, हे बधिक! प्रलयके क्षोभमें मैंभी भटकताथा और जलमें बहताथा परन्तु पूर्वका शरीर मुझको विस्मरण न हुआ इस कारण शरीरका दुःख मुझको

स्पर्श न करताथा । मैंने विचारा कि, यहजगत् तो मिथ्याहै इसमें विचरनेसे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होताहै ? यह तो स्वप्नमात्र है इसमें मैं किसनिमित्त खेदपाऊं–इससे जगत् से बाहर निकलूं । बधिकने पूँछा, हे मुनीश्वर ! तुमने जो उस स्वप्ने में जगत् को देखा वह जगत् क्यावस्तुथा और स्वप्ना क्याथा ? उसकीसंवित्में जगत् था और उस जगत्का उसको ज्ञानथा वा वह प्रमादीथा ? तुमने तो जाग्रत् होकरके उसका स्वप्नादेखा था, उसके हृदयमें पहाड़ कहां से आया और नदियां, वृक्ष आदि नाना प्रकारके भूतजात और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदिक विश्वकी रचना कहाँसेआई ? वह सब क्या था यह संशय मेरा दूरकरो। जो तुमकहो कि, अपने स्वप्नेमें तुमभी अपनी सृष्टि देखतेहो तो हे भगवन् ! हमको जो स्वप्ना आताहै उसको हम अपने स्वरूपके प्रमादसे देखतेहैं और तुमने जाग्रतहोकर देखा तो कैसे देखा ? मुनीश्वरबोले, हे बधिक ! प्रथम जो मैंनेदेखा था सो आपको बिस्मरण करके उसके हृदयमें जगत् देखाथा और दूसरीबार जो देखाथा सो आपको जानकर जगत् देखा था सो क्यावस्तु है सुनो । हे बधिक ! जो वस्तु कारणसे होतीहै सो सत्यहोतीहै और जो कारण बिना भासती है सो मिथ्याहोती है । मुझको जो सृष्टि उसके स्वप्नेमें भासीथी सो कारण बिनाथी क्योंकि;कारण दो प्रकारका होताहै–एक निमित्त कारण;जैसे घटका कारण कुलाल होताहै और दूसरा समवाय कारण;जैसे घट मृत्तिकाका होताहै। जो दोनों कारणोंमें उत्पन्नहो वह कारण पदार्थ कहाताहै पर आत्मा तो दोनों प्रकारोंमें जगत्का कारण नहीं; वह अद्वैतहै इससे निमित्त कारण नहीं और समवायकारणभी इससे नहीं कि, अपने स्वरूपसे अन्यथा भाव नहींहुआ । जैसे मृत्तिकाके परिणामसे घटहोताहै, तैसेही आत्माका परिणाम जगत् नहीं । आत्माअच्युतहै।वह जगत् कारणबिना भासिआयाथा इससे भ्रममात्रहीथा । हे बधिक ! वस्तुवही होतीहै और जगत्की भ्रांति आत्मामें भासी तो जगत् आत्मरूप हुआ । जब सृष्टिफुरी न थी तब अद्वैत आत्मसत्ताथी उसमें संवेदन फुरनेसे जगत्हुयेकी नाईं उदयहुआ सो क्याहुआ–जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल भासताहै सो किरणही जलरूप भासतीहै, तैसेही यह जगत् आत्माका आभास है सो आत्माही जगद्रूपहो भासताहै । वहां न कोई शरीरथा, न कोई हृदयथा, न पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि,आकाशथा और न उत्पत्ति और प्रलयथी न और कोईथा; केवल चिन्मात्ररूपही था । हे बधिक ! ज्ञानदृष्टि से हमको तो सच्चिदानन्दही भासताहै जो शुद्ध और सर्वदुःखोंसे रहित परमानन्द है और जगत्भी वहीरूप है । तुमसारिखे को जो जगत्शब्द अर्थरूप भासता है सो आत्मामें कुछहुआनहीं केवल चिन्मात्र सत्ताहै। सर्वदा हमको आत्मरूपही भासताहै। जो तूचाहे कि, मुझकोभी चिन्मात्रही भासे तो सर्वकल्पना मनसे त्यागकर उसकेपीछे

जो शेषरहेगा वह आत्मसत्ता है और सबका अनुभवरूप वही है और प्रत्यक्ष, शुद्ध, सर्वदा स्वभावसत्तामें स्थितहै और अमरहै। तुमभी उसस्वभावमें स्थितहोरहो। हे बधिक! आत्मसत्ता परमसूक्ष्महै जिसमें आकाशभी स्थूलहै। जैसे सूक्ष्मअणुसे पर्वत स्थूलहोता है, तैसेही आत्मासे आकाशभी स्थूल है। आत्मामें यही सूक्ष्मताहै कि, आत्मत्वमात्र है जिसमें कोई उत्थाननहीं केवल निर्मलस्वभावसत्ता और निराभास है उसीमें यहजगत् भासता है इससे वहीरूप है। जैसे कालमें क्षण, पल, घड़ी, पहर, दिन, मास, वर्ष और युग संज्ञाहोती है सो कालही है; तैसेही एकही आत्मामें अनेक नामरूप जगत् होताहै। जैसे एकबीजमें पत्र, टहनी, फूल, फल नाम होतेहैं तैसेही एक आत्मामें अनेक नामरूप जगत् होताहै सो आत्मासे कुछ भिन्नवस्तु नहीं सब आत्म-स्वरूप है और जो आत्मासे भिन्नभासे उसे भ्रममात्रजानो। जैसे संकल्पपुर होताहै तैसेही यह जगत्है। हे बधिक! आत्मामें जगत्कुछ बनानहीं। वहीआत्मातेरा अप-नाआप अनुभवरूप है और परमशुद्ध है। उसमें न जन्महै, न मृत्युहै और चिदा-काश अपना आपहै जो तेरा आप अनुभवरूप शुद्ध सत्ताहै—उसको नमस्कार है। हे बधिक! तू उसमें स्थितहोरह तब तेरे दुःखनष्टहोजावेंगे। यह जगत् अज्ञानीको सत्य भासताहै और ज्ञानवान्को सदा आकाशरूप भासताहै। जैसे एक पुरुष सोयाहै और एक जागताहै तो जो सोयाहै उसको स्वप्नेमें महलआदिक जगत् भासता है और जो जाग्रत्है उसको आकाशरूप है; तैसेही अज्ञानीको जगत् भासताहै और ज्ञानवान् को आत्मरूप है। बधिकबोला, हे मुनीश्वर! कितने कहतेहैं कि, यहजीव कर्मसे होताहै और कितने कहतेहैं कि, कर्मविना उत्पन्नहोताहै तो इनदोनोंमें सत्यक्याहै? मुनीश्वर बोले, हेबधिक! आदि जो परमात्मासे ब्रह्मादिक फुरेहैं सो कर्मसे नहींहुये, वे कर्म विनाही उत्पन्नहुयेहैं और उन्हें न कहीं जन्महै और न कर्महै। वे ब्रह्म स्वरूपहीहैं और उनकाशरीर भी ज्ञानरूपहै। वे और अवस्थाको नहीं प्राप्तहोते सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्मामें अहंप्रतीतहै। हे बधिक! सृष्टिके आदि जो ब्रह्मादिकफुरेहैं वे ब्रह्मसे भिन्ननहीं और और जो अनन्त जीव फुरे हैं और जिनका आदिही आत्मपदसे प्रकटहोना हुआ है वे भी ब्रह्मरूपहैं ब्रह्मसे कुछ भिन्ननहीं। आदिसबका ब्रह्मचेतन स्वयंभूहैं परन्तु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिकको अविद्याने स्पर्शनहीं किया वे विद्यारूपहैं और दूसरे जीव अविद्याके बशसे प्रमादकरके परतंत्र हुयेहैं और कर्मकरके कर्मके बशहुयेहैं और संसारमें शरीर धारतेहैं। जब उनको आत्मज्ञानकी प्राप्तिहोती है तब वे कर्मके बंधनसे मुक्तहोकर आत्मपदको पातेहैं। हेबधिक! आदिजो सृष्टिहुई हैसो कर्मविना उपजीहै और पीछे अज्ञानके बश से कर्मके अनुसार जन्म मरण देखतेहैं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टिआदि कर्मबिना उत्पन्न होती है और पीछे कर्मसे उत्पन्नहोती भासतीहै; तैसेही यह जगत् है। आदि जीव कर्मविना

उपजे हैं और पीछे कर्मके अनुसार जन्मपाते हैं। ब्रह्मादिकके शरीर शुद्ध ज्ञानरूपहैं। ईश्वर में जीवभाव दृष्टिआताहै पर उसकालमें भी ब्रह्महीस्वरूप है क्योंकि, उनकेकर्म कोई नहीं केवल आत्माही उनको भासताहै—आत्मासे भिन्नकुछनहीं । जैसे स्वप्नेमें द्रष्टाही दृश्यरूप होताहै और नानाप्रकारके कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु और कुछहुआ नहीं, तैसेही जो कुछजगत् भासताहै सो सब चिन्मात्रस्वरूप है और कुछनहीं । सुख दुःखभी वहीभासता है परन्तु अज्ञानीको जबतक जगत् प्रतीति होतीहै तबतककर्मरूपी फाँसीसे बाँधाहुआ दुःखपाताहै और जबस्वरूपमें स्थितहोगा तबकर्मकेबन्धन सेमुक्तहोगा। वास्तवमें न कोईकर्म है और न किसीको बन्धन है । यह मिथ्या भ्रम है केवलआत्मसत्ता अपनेआपमें स्थित है दूसराकुछहो तो मैंकहूं कि, इसकर्मने इसको बन्धन कियाहै । यह जगत् आत्मामें ऐसाहै जैसे जलमेंतरंग होताहै सो भिन्न कुछ नहीं । जलसे तरंग उत्पन्न होताहै सो किसकर्म से होताहै और क्या उसका रूप है ? जैसे वह जलहीरूप है, तैसेही यह जगत् भी आत्मस्वरूपहै—आत्मासे इतरकुछनहीं जो कुछकल्पना कीजिये सो अविद्यामात्र है । हे बधिक ! जबतक यह संवित् बहिर्मुख फुरतीहै तबतक जगत् भासताहै और कर्महोते दृष्टिआते हैं और जब संवित् अन्तर्मुखहोगी तब न कोई जगत्रहेगा और न कोई कर्मदृष्टिआवेगा; तबसब आत्मसत्ताहीभासेगी । जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासतीहै, तैसेही तुमकोभी भासेगी । हे बधिक ! जो ज्ञानवान् पुरुषहैं उनको जगत् आत्मत्व दिखाई देताहै और जो अज्ञानीहैं उनको प्रमादसे द्वैतरूपभासताहै इससे वह पदार्थोंको सुखरूपजानकर पानेका यत्नकरता है और सुखसे सुखी और दुःखसे द्वेषकरताहै पर परमानन्द जो आत्मपदहै उसके पानेका यत्ननहीं करता । ज्ञानवान् सदा परमानन्दमें स्थितहै और सब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूप भासताहै । हे बधिक ! सर्वजगत् जो तुझको दृष्टिआता है वह चिन्मात्रस्वरूप ब्रह्महै; न कोई स्वप्नाहै, न कोई जाग्रत् है, न कोई कर्म है और न कोई अविद्या है सर्व्व ब्रह्मस्वरूप सदा अपने आप में स्थित है—उसमें और कुछ नहीं जैसे जल में आवर्त्त स्थितहोता है परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं होता; तैसेही ब्रह्म में जगत् हुयेकी नाईं भासता है परन्तु ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है तू विचार करके देख तब तेरे दुःख मिटजावेंगे । जबतक बिचार करके स्वरूप को न पावेगा तब तक दुःख न मिटेगा । जब स्वरूप को पावेगा तब सब कर्म्म नष्ट होजावेंगे । जितना जितना विचार होता है उतनाही उतना सुख है । जहां बिचार उत्पन्न होता है वहां से अविद्यानष्ट होजाती है । जैसे जहां प्रकाश होता है वहां अन्धकार नहीं रहता; तैसेही जहां सत्य असत्य का विचार उत्पन्नहोता है वहां अविद्याका अभाव होजाता है और फिर वह संसारचक्रमें नहीं गिरता बल्कि परम

पदको प्राप्तहोता है। जिसज्ञान वान्को यहपद प्राप्तहुआ है वहदुःखी नहीं होता॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकर्म्मनिर्णयोनाम
द्विशताधिकैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः २२९॥

मुनीश्वर बोले, हेबधिक! जो ज्ञानवान् पुरुषहै वह अवश्य उसपरमानन्दको प्राप्त होताहै जिसके पायेसे इन्द्रियों का आनन्द सूखे तृणवत् तुच्छ प्रतीत होताहै और वैसा सुख पृथ्वी, आकाश और पातालमेंभी कहींनहींमिलता जैसासुख ज्ञानवान्को प्राप्तहोताहै। जिसको ऐसा आनन्द प्राप्तहुआहै वह किसकीइच्छा करे? आत्मानन्द तब प्राप्तहोताहै जब आत्मअभ्यास होताहै। आत्माशुद्ध और सर्वदा अपनेआपमें स्थितहै और जोकुछ आगे दृष्टिआताहै सो अविद्याका बिलासहै। जबतू अपनेस्वरूपमें स्थितहोगा तबतुझको सबब्रह्महीं भासेगा। हे बधिक! पृथ्वी आदिक तत्त्व जो दृष्टिआतेहैं सो हैंनहीं; ये जो कुछहोते तो इनकाकारणभी कोईहोता पर जो येही नहीं हैं तो इनकाकारण किसकोकहिये और जो इनका कारण नहीं तो कार्य किसका कहिये? इसलिये ये भ्रममात्र हैं। बिचार कियेसे जगत् का अभाव होजाता है और आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है। जैसे किसीको रस्सी में सर्प भासता है पर जब वह भलीप्रकार देखता है तब सर्पभ्रम मिटजाता है और ज्योंकीत्यों रस्सीही भासती है; तैसेही विचार कियेसे आत्मसत्ताही भासती है। जैसे आकाश में संकल्पका कल्पवृक्ष अथवा देवताकी प्रतिमा रचकर उससे प्रार्थना की तो अनुभवसे कार्य सिद्ध होताहै तैसेही जितना जगत् तू देखता है सो सब संकल्पमात्र और अनुभव रूप है। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकारकी सृष्टि स्वप्नमात्र है; तैसेही यह सर्व विश्व ब्रह्मा के संकल्पमें स्थितहै। आदि परमात्मासे कर्मबिना जो सृष्टिउपजी है वह किंचन आभासरूप है; फिर आगे जो ब्रह्मानेरचा है सो संकल्परूप है और फिर आगे अज्ञानसे कर्मकरने लगे तब उनकर्मोंसे उत्पत्तिहोती दृष्टिआईहै। जैसे स्वप्नमें स्वप्नेकी सृष्टि भ्रममात्रहीदृढ़हो भासती है; जबतक स्वप्नेकी अवस्था है तबतक जैसा वहां कर्मकरेगा तैसाहीभासेगा और जो जागउठे तो न कहीं कर्महै न जगत् है; तैसेही यहसब संकल्पमात्रहै ज्ञानसे इसका अभावहोजाताहै। हे बधिक! ये जो तुझको मनुष्य भासतेहैं सो मनुष्यनहीं तो उनके कर्ममें तुझसे कैसेकहूं? जैसे स्वप्नेके निवृत्तहुये स्वप्नेकी सृष्टिका अभाव होताहै तैसेही अविद्याके निवृत्तहुये अविद्याकी सृष्टिकाभी अभावहोजाताहै। आत्मसत्ता अद्वैतहै उसमें जगत् कुछबना नहीं—वहीरूपहै। जैसे आकाश और शून्यता; अथवा वायु और स्पन्दमें भेद नहीं होता; तैसेही ब्रह्म और जगत्में भेदनहीं। जब चित्तसंवित् फुरती है तब जगत् होकर भासती है और जब नहींफुरती तबअद्वैतहोकर स्थित होतीहै पर आत्मसत्ता फुरने और न फुरनेमें ज्योंकीत्यों है। जन्म,मरण

और बढ़ना, घटना मिथ्या है क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ नहीं । जैसे किसी ने जल और किसीने पानीकहा तो दोनों एकहीबस्तुके नामहोते हैं; तैसेही आत्मा और जगत् एकहीके नामहैं परन्तु अज्ञानसे भिन्नभिन्न भासतेहैं। जैसे स्वप्नेमें कार्य भासतेहैं परन्तुहैं नहीं; तैसेही जाग्रत्में कारणकार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं--वास्तवमें आत्मतत्त्व है। उस आत्मामें जो अहंमम चित्तफुरता है और उस उत्थानसे आगे जो कुछ फुरना होता है वही जगत् है; उसजगत् में जैसा जैसा निश्चय होता है वैसाही वैसा भासनेलगता है--इसका नाम नेति है। उसमें देश, काल और पदार्थ की संज्ञा होनेलगती है और कारण कार्य्य दृष्टि आते हैं सो क्या हैं; केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और कुछ हुआ नहीं परन्तु हुये की नाईं भासता है; तैसेही स्वप्ने में नाना प्रकार का जगत् भासता है और कारण कार्य्य भी दृष्टि आता है परन्तु जागनेपर कुछ दृष्टि नहीं आता क्योंकि; हैही नहीं; तैसेही यह जगत् कारण कार्य्यरूप दृष्टिआता है परन्तु है नहीं; आत्मासे दृष्टि आताहै इससे आत्माही है। जैसे संकल्पनगर दृष्टि आताहै, तैसेही आत्मामें घन चैतन्यता से जगत् भासताहै सो वही रूपहै--आत्मासे भिन्नकुछनहीं। जैसा आत्मा में निश्चय होताहै तैसाही प्रत्यक्ष अनुभव होताहै। यह सब जगत् संकल्पमात्र है; संकल्प हो जहां तहां उड़ते फिरते हैं और अनुभवसत्ता ज्योंकी त्यों है--संकल्पही मरके परलोक देखताहै। बधिक बोला, हे भगवन्! परलोकमें जो यह मरके जाताहै तो उस शरीरकाकारण कौन होताहै और वह हंत्री और हन्ता कौनहै? यह शरीर तो यहांहीं रहताहै वहां भोगताशरीर कौन होताहै जिससे सुख दुःख भोगताहै? जो तुमकहो कि, उस शरीरका कारण धर्म अधर्म होताहै तो धर्म अधर्म तो अमूर्त्तिहै उससे समूर्त्ति और साकाररूप क्योंकर उत्पन्न हुआ? मुनीश्वरबोले, हे बधिक! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ताहै उसके फुरनेकी इतनी संज्ञाहोती हैं--कर्म, आत्मा, जीव, फुरना, धर्म, अधर्म आदि नाना प्रकारके नाम होतेहैं। जब शुद्ध चिन्मात्रमें अहंका उत्थान होताहै तब देहकी भावना होतीहै और देहही भासने लगतीहै; आगे जगत् भासताहै और स्वरूपके प्रमादसे संकल्परूप जगत् दृढ़होजाता है; फिर उसमें जैसा जैसा फुरताहै तैसातैसाही भासताहै। हे बधिक! यहजगत् संकल्पमात्र है परन्तु स्वरूपके प्रमाद से सत्यहोभासता है। प्रमादसे शरीरमें अभिमान होगया है उससे कर्त्तव्यभोक्तव्य अपनेमें मानताहै और वासना दृढ़होजाती है उसके अनुसार परलोक देखताहै। हे बधिक! वहां न कोई परलोक है और न यहलोकहै; जैसे मनुष्य एकस्वप्ने को छोड़कर और स्वप्नेको प्राप्तहो; तैसेही अविदित वासनासे इसलोकको त्यागकर जीव परलोकको देखताहै। जैसे स्वप्नेमें निराकारही साकारशरीर उत्पन्नहोता है; तैसेही परलोकमें है पर वास्तवमें संकल्पही

पिंडाकारहोकर भासताहै और जैसीजैसी वासनाहोतीहै तैसाही उसकेअनुसार होकर भासताहै वास्तवमें शरीर और परमार्थ सबही आकाशरूपहैं। हे वधिक ! असत्यही सत्यहोकर जन्ममरणभासताहै और जैसाजैसा फुरनाहोताहै तैसाहीतैसा भासताहै– जगत् आभासमात्र है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको आत्मभावही सत्य है और उसमें जैसा निश्चयहोता है तैसा होकर भासता है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातारूप जगत् जो भासताहै वह अनुभवसे भिन्ननहीं। जैसे स्वप्न में अनेक पदार्थ भासतेहैं सो अनुभवही अनेकरूप होभासता है और प्रलयमें एकहोजाते हैं; तैसेही ज्ञानरूपी प्रलयमें सब एकरूप होजाते हैं। जब संवित्फुरती है तब नानाप्रकारका जगत् भासताहै और जब संवित् अफुरहोती है तब प्रलयहोजाती है और एकरूपहोजाताहै। एक चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थितहै और पृथ्वीआदिक पदार्थ उसकाचमत्कार है, भिन्नवस्तुकुछनहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है और उसमें निराकार और साकारभी कल्पित है। जो पुरुष दृश्यसे मिलेचैतन्यहैं वे जडधर्मीहैं और उनको नानाप्रकारके पदार्थ भासतेहैं; ज्ञानवान् को सत्यरूप चिन्मात्रही भासता है। हे वधिक ! यह जगत् सब चिन्मात्रहै; जब चित्त संवित्फुरती है तब स्वप्नरूप जगत् भासताहै और जब चित्तसंवित् फुरनेसे रहितहोतीहै तब सुषुप्ति होतीहै। ऐसेही चित्तसंवित्के फुरनेसे सृष्टिहोतीहै और चित्तके स्थित होनेसे प्रलयहोजाती है। जैसे स्वप्न और सुषुप्ति आत्मा में कल्पित हैं, तैसेही आत्मामें कल्पित सृष्टि और प्रलय आभासमात्र हैं और जगत् कुछ बनानहीं; फुरनेसे जगत् भासताहै इससे जगत्भी आत्मरूपहै और पंचतत्त्व भी आत्माकानाम है और सदाअद्वैतरूप जगत् आभासमात्रहै। जैसे आत्मामें साकारकल्पित है तैसेही निराकारभी कल्पित है और जैसे स्वप्नेमें किसीको साकारजानताहै और किसीको निराकारजानता है पर दोनों फुरनामात्र है। जो फुरनेसे रहित है सो आत्मसत्ता है और साकार और निराकारभी वही है। आत्मसत्ताही इसप्रकारहोभासती है और निराकारही साकारहो भासताहै। हे वधिक ! सर्वजगत् जो तुझको दृष्टि आताहै सो चिन्मात्रस्वरूप है, भिन्न कुछनहीं; परन्तु अज्ञानसे नानाप्रकार के कार्य कारण और जन्ममरण आदि विकारभासतेहैं;वास्तवमें न कोई जन्महै और न मरणहै; न कोई कार्य है और न कारणहै। यदि जीव मरताहोता तो परसृष्टिको न देखता और अपने मरनेको भी न जानता जो मरके परलोक देखताहै ,जाताहै। नहीं। यदि मनुष्य मृतकहो तो पूर्वसंस्कारको न पावे और पूर्वस्मृति इसओर शून्यतू तो पूर्वसंस्कारसे क्रियामें प्रवर्त्तताहै और प्रतियोगसे तुझे पदार्थोंका भेदनहीं। आती है फिर कर्मभोगता है। पूर्वलोकमें तो पुरुष मृतकनहींहोता केव[illegible]रती तब अद्वै- भासताहै और कारणकार्यरूप पदार्थ भासतेहैं और जबमरके परलो[illegible] है। जन्म,मरण

सुखदुःख भोगताहै तो वहशरीर किसीकारण से नहीं बना। जैसे वहशरीर अकारण है तैसेही और जो आकार दृष्टिआते हैं वे भी अकारण हैं—इसीसे आभासमात्र हैं। जैसे स्वप्नेके शरीरसे नानाप्रकारकी क्रियाहोती है और देशदेशान्तर देखताहै सो सब मिथ्याहै, तैसेही यह जगत् मिथ्याहै और मरणभी मिथ्याहै। जो तूकहे कि, इसके साकारका अभावदेखता है सो मृतकहै तो हे वधिक ! जो यह पुरुष परदेश जाता है तौभी इसका आकार दृष्टि नहीं आता। जैसे दृष्टिकेअभावमें असत्यहोताहै, तैसेही देहके त्यागसेभी इसका असत्यभाव होताहै पर इसपुरुषका अभाव कदाचित् नहीं होता। जो तूकहे कि, परदेशगया फिर आमिलताहै शरीरके त्यागसे फिर नहींमिलता तो परदेशगया फिर मिलकर वार्त्ता चर्चा करताहै और मुआतो कदाचित् चर्चा नहीं करता पर जिसके पितर प्रीतिसे बँधेहुये मरतेहैं और जिनकी यथाशास्त्र क्रिया नहीं होती तो वे स्वप्ने में आ मिलते हैं और यथार्थ कहते हैं कि; हमारी क्रिया तुमने नहीं की; हम अमुक स्थान में पड़े हैं और अमुक द्रव्य अमुक स्थान में पड़ा है तुम निकाललो; तो जैसे परदेशीगण मिलते हैं और वार्त्ता चर्चा करते हैं तैसेही मुयेभी करते हैं। हे वधिक ! वास्तवमें न कोई जगत् है और न कोई मरता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और जैसा जैसा उसमें फुरना फुरताहै तैसाही तैसाहो भासता है। हे वधिक ! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है; जैसा २ उसमें फुरना फुरता है तैसाही तैसा हो भासता है। एक संकल्पसिद्ध और एक दृष्टि सिद्ध वस्तुहै; जब इन की दृढ़भावना होती है तब ये दोनों सिद्ध होती हैं। जो इन्द्रियोंमें द्रव पदार्थहै सो दृष्टि सिद्धवस्तु कहाती है; जो इसीकी भावना होती है तो यही प्राप्तहोती है और जो अपने मनमें आपही मानलीजिये कि; मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वर्णहूं अथवा गृहस्थ,वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी वा संन्यासी आश्रमहूं तो यह संकल्पसिद्ध है। जबतक इनमें अभ्यास होताहै तबतक आत्मसत्ताकी प्राप्ति नहीं होती और जब आत्मसत्ताका अभ्यास होताहै तब इन दोनोंका अभाव होजाताहै और आत्माही प्रत्यक्ष अनुभवसे भासताहै। हे वधिक ! जिसवस्तुका अभ्यास होताहै उसकी यदि भावनाकरे और थककर फिरे नहीं तो वह अवश्य प्राप्त होती है पर अभ्यास बिना कुछ क ! यह ीं होता। जैसे कोई पुरुष कहे कि, मैं अमुकदेश जाताहूं तो जबतक उसकी शरीरमें चले नहीं तबतक अनेक उपाय करे भी नहीं प्राप्त होता और जब उसकी दृढ़होजाती तब पहुंच रहेगा; तैसेही जब आत्माका अभ्यास बहुत एकाग्र होकर और न यहत्सको प्राप्तहोगा अन्यथा आत्मपदको न प्राप्तहोगा। हे वधिक ! जिस अविदित वासके पदार्थोंकी इच्छाहै उसको आत्मपद नहीं प्राप्त होता और जिसको निराकारही साक्षहै उसको वही प्राप्त होवेगा; जगत्के पदार्थ न भासेंगे। यदि ऐसी

भावनाहो कि; मेरी देवताकीसी मूर्त्तिहो और उससे मैं स्वर्गमें बिचरूं और एकस्वरूप से भूलोकमें मृगहोके भ्रमणकरूं तो दृढ़ अभ्याससे वही होजाताहै क्योंकि; जगत् संकल्पमात्रहै जैसा जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासिआताहै। हे बधिक ! दोस्वरूपकी क्यावार्त्ता है जो सहस्रमूर्त्तिकी भावनाकरे तो वही तद्रूप होजावेगा। यह मनुष्य जैसी भावना करता है तैसाही रूप होजाता है। यह अविद्याका भ्रममात्र जगत् है इसकी भावना त्यागकर आत्मपदका अभ्यासकर तब तेरे दुःख मिटजावेंगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाशवोपाख्यानेनिर्णयोपदेशो नामद्विशताधिकत्रिंशत्तमस्सर्गः २३०॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! जैसे अगाध समुद्रमें अनेक तरंग फुरते हैं, तैसेही आत्मा में अनेकसृष्टि फुरती है और जीव २ प्रति अपनी २ सृष्टिहै परन्तु परस्पर अज्ञात है और एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता और दूसरेकी सृष्टिको वह नहीं जानता। जैसे एकही स्थानमें दो पुरुष सोयेहों तो उनको अपने २ फुरनेकी सृष्टि भासिआती है पर एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता परस्पर दोनों अज्ञात होते हैं; तैसेही सब सृष्टि आत्मामें फुरतीहै परन्तु एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता। जो धारणाभ्यासी योगी है उसको अन्तबाहक शरीर प्रत्यक्ष होताहै और वह दूसरेकी सृष्टिको भी जानताहै। जैसे एक तालाबका दर्दुर होताहै; एक कूपका दर्दुर होताहै और एकसमुद्रका दर्दुर होताहै सो स्थान तो भिन्न भिन्न होते हैं परन्तु जल एकही है इससे चाहै जैसा दर्दुरहो पर उसको जल जानताहै कि, मेरे में हैं; तैसे जगत् भिन्न २ अन्तःकरणों मेंहै परन्तु आत्मसत्ताके आश्रयहै और आदि जो संवेदन उसमें फुरी है सो अन्तबाहक है। जब अन्तबाहकमें योगी स्थित होताहै तब औरके अन्तबाहकको भी जानताहै। इसप्रकार अनन्तसृष्टि आत्माके आश्रय अन्तबाहकमें फुरती हैं सो आत्माका किंचन है, फुरती भी है और मिटिजातीहै। संवेदनके फुरनेसे सृष्टि उत्पन्न होतीहै और संवेदन के ठहरने से मिटजातीहै क्योंकि, आकाशरूप होतीहै। जैसे बायुकेठहरनेसे जलएकरूप होजाताहै और जलसे इतर कुछनहीं भासता; तैसेही संवेदनके फुरनेसे आत्मा में अनन्तसृष्टि भासतीहै और संवेदनके ठहरनेसे सबआत्मरूप होजातीहै तबआत्मा से इतरकुछ नहीं भासता क्योंकि, इससे इतरप्रमाद से भासताहै और फिर कारण-कार्य्य क्रम भासताहै। प्रथम जो सृष्टि फुरीहै सो कारण-कार्य्यके क्रम और संस्कार से रहित है; पीछे कारणकार्य क्रम भासित हुआ और फिर उसका संस्कार हृदय में हुआ तब संस्कारके बशसे भासनेलगीं। जिनको स्वरूपका प्रमाद नहींहुआ उनको सदा परब्रह्मका निश्चय रहता है और जगत् अपना संकल्पमात्र भासता है और जिनको स्वरूपका प्रमाद होताहै उनको संस्कारपूर्व्वक जगत् भासताहै-संस्कार भी

कुछवस्तु नहीं। हे बधिक ! जो जगत्ही मिथ्या है तो उसका संस्कार कैसे सत्यहो ? परन्तु ज्ञानवान् को इसप्रकार भासताहै और जो अज्ञानीहैं उनको स्पष्ट भासता है। हे बधिक ! जैसे तुम संकल्पकेरचे पदार्थ; स्मृति और स्वप्न सृष्टिको असत्जानतेहो; तैसेही हम इस जाग्रत् सृष्टिको असत् जानते हैं और जैसे मृगतृष्णाका जलअसत् भासताहै, तैसेही हमको यह जगत् असत्य है तो फिर कारण कार्य कर्म संस्कार हम को कैसे भासे ? अज्ञानीको तीनों भासते हैं । हे बधिक ! जब चित्त संवित् बहिर्मुख होतीहै तब जगत्भासताहै और जब अन्तर्मुख होतीहै तब अपने स्वरूपको देखती है। जब आत्मतत्त्वका किंचन संवेदन फुरती है तब स्वप्नजगत् हो भासता है और जब ठहरजाती है तब सुषुप्ति प्रलय होजाती है। फुरने का नाम सृष्टिकी उत्पत्ति है और ठहरनेका नाम प्रलय है। जिसके आश्रय फुरना फुरता है सो शुद्धसत्ता अव्यक्त और निराकार है—यही आकाररूप भासता है और जो अकारण निराकारहै उस में अकारण आकार भासताहै इससे जानताहै कि; वहीरूप है और कुछनहीं। आकार भी निराकार है; सृष्टिही दृश्यरूप हो भासती है और जगत् आभास मात्र है । जैसे समुद्र का आभास तरंग होतेहैं तैसेही आत्माका आभास जगत् है सो आत्मानन्द चिदाकाश है और सर्व जगत् का अपना आप है। बधिक बोला, हे मुनीश्वर ! तुम जगत् को अकारण कहते हो तो कारण बिना कैसे उत्पन्न होता है क्योंकि; प्रत्यक्ष भासता है और जो कारण से उत्पत्ति कहो तो स्वप्नवत् क्यों कहते हो ? स्वप्न सृष्टि तो कारण बिना होती है इससे यह कहो कि, यह सृष्टि कारण सहित है अथवा कारणसे रहित अकारण है ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! यह जगत् आदि अकारण है और आत्मा का आभास मात्र है; इसका आत्मात्यन्ताभाव है और कुछ पदार्थ बने नहीं आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित है सो चिदाकाश चिन्मात्र है और उसको किंचन चैतन्यता है । जैसे सूर्य्य की किरणों का आभास जल भासता है परन्तु जड़ हैं; तैसेही आत्माका किंचनभी चैतन्य है। वह किंचन संवेदन अहंभाव को लेकर फुरती गई है और जैसे जैसे फुरती है तैसाही तैसा जगत्हो भासताहै। जोजो उसमें निश्चय कियाहै कि, यह कर्त्तव्यहै, इसके करनेसे पापहै; यह करना है यह नहीं करना है और देश, काल, क्रिया क्रमहै, यह इसी प्रकारहै। यहऋषिहै, यह देवताहै; यह मनुष्यहै; यहद्वैतहै, यहधर्म है, यहकर्म है; इससे इनकी बन्धनहै; इससे इनकी मोक्षहै। हे बधिक ! जो आदिनेति रचीहै तैसेही अबतक स्थितहै अन्यथा नहींहोती—उसीमें कारणकार्य क्रमहै। प्रथम जो सृष्टिफुरीहै सो बुद्धि पूर्वक नहींबनी—आकाशमात्र फुरीहै और जैसे फुरीहै तैसेही स्थितहै। फिरपदार्थ जोएकभावको त्याग कर और भावको अंगीकारकरते हैं सो कारणसे करतेहैं; कारणबिना नहींहोते क्यों-

कि;प्रथम सृष्टि अकारणहुईहै और पीछेसेउसी सृष्टि भावमें कारण कार्य हुयेहैं; परन्तु हे बधिक! जिनपुरुषोंको आत्माका साक्षात्कार हुआहै उनको यह जगत् कारणबिना ब्रह्मस्वरूप भासताहै और जिनको आत्मसत्ताका प्रमादहै उनको जगत्कारण असत्य भासता है परन्तु आत्माब्रह्म निराकार अकारण है उसमें संवेदन के फुरनेसे अब्रह्मता भासती है; निराकार में आकार भासताहै और अकारणमें कारण भासता है। जब संवेदन जो मनका फुरना है सो स्थिर होजाताहै तब सर्व जगत् कारण कार्य सहित भासता है पर प्रथम अकारण फुराहै पीछे से देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पदार्थों की मर्यादा भई है और बन्धमोक्षकीनेतिहुई है सो ज्योंकी त्यों है कि; जल शीतलही है और अग्निउष्णही है। जब जीव आत्मसत्ता में जागताहै तब कारण–कार्यसहित जगत् नहीं भासता। जैसेस्वप्नसृष्टि प्रथम अकारण भासिआती है और जब दृढ़ होजाती है तब कारणसे कार्यहोताहै सो दृढ़ होआता है; जैसे मृत्तिकाबिन घट नहींबनता पर जागउठे से सर्व जगत् आत्मरूप होजाता है। हे बधिक! यह जगत् संवेदन में स्थित है, जबतक अहंभाव का फुरना है तबतक जगत् है और जब अहंभाव मिटता है तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होता है। जबतक अहंफुरती है तबतक नानाप्रकार का जगत् भासता है और जैसी भावना होती है तैसा भासताहै। सर्व पदार्थ सर्वदाकाल अपनी २ शक्ति में और जैसे आदिनेति हुई है तैसेही स्थित है। जो जीव जैसीक्रिया का अभ्यास करेगा उसका फलपावेगा; जो बन्धनके निमित्त अभ्यासकरेगा सो बन्धनपावेगाऔर मोक्षके निमित्त करेगा सो मोक्ष पावेगा–ऐसेही आदिनेति हुईहै। हे बधिक! इसप्रकार किंचन होकर मिटजाती है और आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों है। जगत्की उत्पत्ति और प्रलय ऐसे हैं जैसे हाथी अपनीशूंड़को पसारे और खैंचे और ऐसेही चित्तसंवेदनकेपसरनेसे जगत् उत्पत्ति होतीहै और निस्पंद में प्रलय होजाती है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकार्यकारणाकारणनिर्णयोनाम
द्विशताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः २३१॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह संपूर्णजगत् चिद्अणुके ओजमेंहै और उससम्बन्धके अभ्याससे आत्मा चिद्अणुकी संज्ञापाता है। ओज, अन्तःकरण और हृदय तीनों अभेदहैं और चैतन्यसत्ता उसमें स्थितहै जो बाहरसे मृतक रूपवत् होती है और उसमें जीवतरूपहै और वहांबड़ेप्रकाशसे प्रकाशती है। उससत्ताका आगेचित्त से संयोगहुआ है और फिर चित्त और प्राणकलाका संयोग हुआहै। हेबधिक! जब प्राणक्षोभते हैं तब चित्तखेदको प्राप्तहोता है और जब चित्तखेदको पाताहै तब प्राण भी खेद पातेहैं। जब प्राणस्थित होतेहैं तब जीव शान्तिपाता है और जो प्राणस्थित

नहीं होते तो जीव जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भटकताहै। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था भिन्नआती है सो सुनो , हे बधिक ! जब यह पुरुष अन्नभोजनकरता है तब वह अन्न जाग्रत्वाली नाड़ीपर स्थित होताहै और वहनाड़ी रुकजाती है उससे सुषुप्तिआतीहै। जिननाड़ियों में गईहुई चित्तकी वृत्तिजाग्रत् जगत् को देखती है सो जाग्रत् नाड़ी कहाती है। उनपर अन्नजाय स्थित होताहै और चित्त सत्ता जो चित्तमें प्रतिबिम्बित है वह चित्तनाड़ी उसके तले आजातीहै तब प्राणवायु भी उसनाड़ीमें ठहरजाता है और चित्तस्पंदभी ठहरजाता है तब सुषुप्ति होतीहै। जो पित्त बहुत होतीहै तो सूर्य, अग्निआदिकउष्णपदार्थ स्वप्नेमें दिखते हैं और जब वह अन्नपचता है और उन नाड़ियोंमें प्राण जातेहैं तब स्वप्न अवस्था आतीहै। जबजलके शोखनेको बायुबहता है तब जीव स्वप्नेमें उड़ताहै और जोकफबहुत होताहै तब जलको देखताहै और नदियां, तालआदि देखताहै और जाकर डूबता है। जबउष्ण नाड़ीमें अन्नजल पहुंचता है तब जाग्रत् अवस्था होती है। इसी प्रकार जीव तीनों अवस्थाओंमें भटकता है । जगत् न कुछ भीतरहै और न बाहरहै केवल अद्वैतसत्ता ज्योंकीत्यों है। उसके प्रमाद से चित्तकी वृत्तिजब बहिर्मुख फुरती है तब जगत् को जाग्रत् देखता है; जब बाहरकी इन्द्रियों को त्यागके भीतर आती है तब अन्तस्वप्न जगत् देखता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होती है तब और कल्पना मिट जाती है सर्व ब्रह्मही भासता है। इससे सर्व कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत,स्वप्न,सुषुप्तिविचारोनाम द्विशताधिकद्वात्रिंशतितमस्सर्गः २३२ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! यह तीनों अवस्थाआती और जातीहैं इनके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है सो आत्मसत्ता है और वह सदाएकरस है । जिसपुरुष को अपनेस्वरूप का अनुभव हुआ है उसको अपनाकिंचन भासता है और जिसको प्रमादहै उसको जगत् भासताहै। यह जगत् चित्तका कल्पाहुआ है और इन्द्रियों का जिसकोप्रमादहै उसको जगत्भासता है । जब इन्द्रियां विषयोंकेसन्मुखहोती हैं तब जगत्देखती हैं और उससंकल्पजगत् कोदेखकर रागद्वेषवान् होती हैं। फिरइन्द्रियों के अर्थपाकर जीव हर्ष शोकवान्होताहै। हे बधिक ! जिस चिद्अणुका इन्द्रियों सेसम्बन्धहै उसकोसंसारका अभाव नहींहोता। नेत्र,त्वचा, जिह्वा, नासिका और श्रोत्र से देखता, स्पर्शकरता, रसलेता, सूंघता, सुनता और मानता है तब संसारीहोकर दुःखपाताहै और जब इनके अर्थको त्यागके अपने स्वभावकी ओर आताहै तब सर्व जगत्को आत्मरूप जानकर सुखी होताहै। हे बधिक! चित्तके फुरनेका नाम जगत् है

और चित्तके स्थित होनेकानाम ब्रह्म है—जगत् और कुछवस्तु नहीं इसीका आभास है। चित्तके आश्रय सबनाड़ी हैं उनमें स्थितहोकर जीव तीनों अवस्था देखता है पर वास्तवमें जीव चिदाकाश आत्मा है—अज्ञानसे जीवसंज्ञापाई है। हे बधिक! ओज धातु जो हृदयहै उसमें चिद्अणु स्थितहोकर दीपककी ज्योतिवत् प्रकाशता है और उसीके ओजके आश्रय सबनाड़ी हैं सो अपने २ रसको ग्रहणकरती हैं। जब प्राणी भोजन करताहै और अन्न जाग्रत् नाड़ीमें पूर्णहोताहै तब जाग्रत्का अभाव होजाता है और चित्तकी वृत्ति और प्राण आनेजानेसे रहित होजाते हैं—वह नाड़ी मूंदजाती है। फिर जब कफनाड़ीमें प्राणफुरते हैं तब स्वप्ना भासता है। हे बधिक! जब इन्द्रियों को ग्रहण करके चित्तकी वृत्ति बाहर निकलती है तब जाग्रत् जगत्हो भासताहै। जब तन्मात्राको लेकर चित्तकी वृत्ति ओजधातुमें फुरती है तब स्वप्ना भासताहै और जब ओजधातुपर अन्नआदिक द्रव्यका बोझपड़ताहै तब सुषुप्ति होती है। जब निद्रा और जाग्रत्का बलहोता है तब दोनों भासते हैं और जब दोनोंमें से एकका बल अधिक होताहै तब वही जाग्रत् अथवा सुषुप्ति भासती है। जब निद्रासे रहित मन्दसंकल्प होताहै तब उसको मनोराज कहते हैं और जब बाह्यबिषयोंको त्यागकर चित्तकीवृत्ति अन्तर्मुख होती है तब स्वप्ना होताहै। वहां जिस सिद्धान्तमें जाताहै उसके अनुसार भीतर जगत् भासता है। कफके बलसे चन्द्रमा, क्षीरसमुद्र, नदियां, जलसे पूर्ण ताल और वृक्ष, फूल, फल, बागीचे, सुन्दरबन, हिमालय, कल्पवृक्ष, तमाल, सुन्दरस्त्रियां, बेलें, बावलियां इत्यादि सुन्दर और शीतल स्थान देखता है। जब पित्तका बल अधिक होताहै तब सूर्य, अग्नि और सूखे वृक्ष, फल और टास देखता है; सन्ध्याकालके मेघ की लाली देखताहै; बन और दूसरे स्थानोंमें अग्निलगी देखता है और पृथ्वी और रेततपीहुई और मरुस्थलकी नदी दृष्टआती हैं; जल उष्णलगताहै; हिमालयका शिखर भी उष्णलगता है और नाना उष्ण पदार्थ दृष्टआते हैं। जब वायुकाबल अधिक होताहै तब स्वप्नेमें अधिकवायु देखताहै और पाषाणकी वर्षा होती दृष्टआती है; अन्धे कूपमें गिरता देखताहै और हाथी घोड़े उड़ते दृष्टआते हैं; आपको उड़ता फिरता देखता है; अप्सराके पीछे दौड़ताहै; पहाड़ोंकी वर्षा होती; वायु तीक्ष्णवेगसे चलती और अन्नसे आदि लेकर पदार्थ चलते दृष्ट आते हैं और विपरीत होकर भासते हैं। इस प्रकार बात, पित्त और कफसे स्वप्नेमें जगत् देखताहै और जिसका बल बिशेष होता है वह उस धर्ममें दृष्टिआताहै। वासनाके अनुसार जीव न्यूनाधिक राजसी, तामसी और सात्त्विकी पदार्थ देखताहै और जब तीनों इकट्ठे होकर कोपित होतेहैं तब प्रलय काल दृष्ट आता है। हे बधिक! जब तक बात, पित्त और कफके अंशके साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफके स्थानमें प्रवेश करताहै तबलग समान जलके क्षोभ भासते हैं।

इसीप्रकार वात, पित्त और कफ जिसके स्थानमें जाता है और औरके स्वभावको लेताहै तबतक समान क्षोभ भासताहै । जब केवल बातका क्षोभ होताहै तब महाप्रलयकालके पवन चलते और पहाड़पर पहाड़ गिरते और भूकंप आदि क्षोभ होते हैं; जब कफका क्षोभ होताहै तब समुद्र उछलते हैं और पित्तसे अग्नि लगती है और महाप्रलयकी नाईं तत्त्वक्षोभवान् होते । जब प्राण जाग्रत् नाड़ी में जाते हैं और वह अन्नसे पूर्ण होती है तब जीव उसके नीचे आजाते हैं। जैसे कन्धके नीचे दर्दुर आवे; पाषाणकी शिलामें कीट आजावे और काष्ठकी पुतली काष्ठमें हो। जैसे इनमें अवकाश नहीं रहता तैसेही और नाड़ीमें फुरनेका अवकाश नहीं रहता रुकजाती है तब इसको सुषुप्ति होती है। जब कुछ अन्नपचताहै तब चित्तसंवित् अपने भीतर स्वप्ना देखती है जिसको जिसका बिकार विशेष होता है उसीका कार्य देखता है । जब अन्न और जल पचताहै तब फिर जाग्रत् जगत् देखताहै और जब जाग्रत् और स्वप्न दोनों का बल सम होताहै तब दोनोंको देखता और अनुभव करताहै । हे बधिक ! इसी प्रकार तीनों अवस्था होतीं और मिटजाती हैं सो तीनों गुणोंसे होती हैं। इनका द्रष्टा इनको अनुभव करनेवालाहै सो गुणसे अतीतहै और सर्वका आत्मा है। यह जगत् और स्वप्न जगत् संकल्पमात्र है, कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ताही किंचन करके जगत्रूप हो भासती है परन्तु अज्ञानी उसको जगत् जानते हैं और जगत्को सत्यजानकर इष्ट अनिष्टमें रागद्वेष करते हैं। जब बाहरकी इन्द्रियां सुषुप्ति होजाती हैं तब भीतर स्वप्ने में भटकताहै और उसमें सूर्य, चन्द्रमा, बन, फूल, फल, वृक्ष आदिक जगत् देखता है और जब स्वरूपका अनुभव होताहै तब सर्व भटकना मिटजाता है और शान्तिपद को प्राप्त होताहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्ग्गः २३३॥

बधिक बोला, हे मुनीश्वर ! उस पुरुषके हृदयमें जो तुमने जगत् और प्रलयदेखी थी उसके अनन्तर क्या किया और क्या अवस्था देखी ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! उसके चित्त स्पन्दमें मैंने देखा कि, बड़ेबड़े पहाड़ प्रलयकी वायुसे सूखे तृणकी नाईं उड़ते हैं और पाषाणकी वर्षा होती है। इसप्रकार मैंने प्रलयके क्षोभको देखा और मेरे देखते देखते जाग्रत्वाली नाड़ीमें अन्न स्थितहुआ तो वहां जो अन्नके दाने गिरे सो पर्वतवत्भासे और चित्त स्पन्द जो संवित्थी सो रोकीगई एवम् उसमें मैंथा सो तामस नरकमें जापड़ा—मानों वहां मैंभी जड़होगया और मुझको कुछ ज्ञान न रहा। जब कुछ अन्न पचा और कुछ अवकाश हुआ तब प्राणका स्पन्द फुरा और जैसे वायु निस्स्पन्द हुई स्पन्दहोकर चले तैसेही वहां संवित् फुरी तब सुषुप्ति दृश्यहोकर भासने

लगी–मानों आत्मा द्रष्टाही दृश्यरूपहोकर भासने लगा परन्तु और कुछ नहीं बना। जैसे अग्नि और उष्णता; जल और द्रवता और मिरच और तीक्ष्णतामें भेद नहीं तैसेही आत्मा और दृश्य में कुछ भेद नहीं। हे बधिक! इस प्रकार मैंने जगत् को देखा और सुषुप्ति जाग्रत् दृश्यसे दृश्य उपजी और मुझको दृष्टिआई–जैसे कुमारी कन्यासे सन्तान उपजे। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! जो सुषुप्ति आत्मामें दृश्यउपजी सो सुषुप्ति क्या है जिसमें तुम दबगये थे वहीसुषुप्ति है जिससे जगत् उपजता है? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जहां सर्वसम्बन्धका अभाव है केवल आत्मसत्ता से भिन्न कुछ कहना नहींबनता उसकानाम सुषुप्ति है और उसमें जो फुरनाहुआ उसकेतीन पर्याय हैं सो सब सन्मात्रके हैं। जो बस्तु देश, काल और बस्तुके परिच्छेदसे रहित है वह सन्मात्र है; उस सन्मात्र में और कुछ बना नहीं उसके जो सब पर्याय हैं वेहीरूप हैं। वहीसत्यबस्तु अपने आपमें बिराजता है और कदाचित् अन्यथा भावको नहीं प्राप्त होता; किंचनमें भी वहीरूप है और अकिंचन में भी वहीरूप है। आत्माही का नाम सुषुप्ति है और उसीसे सब जगत् होताहै। जिससत्ता का नाम सुषुप्ति है वही स्वप्नदृश्य होकर भासताहै–उससे भिन्न कुछनहीं। जैसे बायु निस्स्पन्द स्पन्दमें वही रूपहै, तैसेही आत्मा दोनों अवस्थाओं में एकहीहै। हे बधिक! हम सरीखोंकी बुद्धि में और कुछ नहीं बना आत्माही सदा ज्योंकात्यों स्थित है और शरीरके आदि भी और अन्तभी वही रूपहै। उसमें जो किंचनद्वारा भासित हुआहै वहभी वहीरूप है। जैसे सुषुप्ति अवस्था में मुझको अद्वैत का अनुभव होताहै और कहीं फुरना नहीं होता और उसमें जो स्वप्न और जाग्रत् भासिआती है सोभी वहीरूपहै और जिसमें फुरती और जिसमें भासती है उसमें भिन्न कुछनहीं; इससे यह जगत् आत्मा का किंचन आत्मरूपहै। जब तू जागकर देखेगा तब तुझको आत्मरूपही भासेगा। जैसे स्वप्नपुर और संकल्पनगर का अनुभव होताहै और आकाशरूपहै तैसेही यहजगत् आकाशरूप है और शक्ति भी वहीहै। सर्वशक्ति आत्मा निष्किंचन भी और किंचन भी और शून्यभी वहीहै जो वाणी से कहा नहींजाता। उस अवस्था में ज्ञानी स्थित है। हे बधिक! ज्ञानवान् को प्रत्यक्षकरके अनुभवरूपही भासताहै। जैसे स्वप्नेमेंजीव और ईश्वर भिन्न २ भासते हैं और उपाधि करके अनुभवभेदभासता है–वास्तव में कुछभेदनहीं; तैसेही जाग्रत् में अज्ञान उपाधिसे भेद भासता है पर स्वरूपसे आत्मा एकरूप है और जब अज्ञान निवृत्तहोता है तब सर्व आत्मरूप ही भासताहै। हे बधिक! सर्वजगत् अपनास्वरूपहै परन्तु अज्ञानसे भेदहोताहै; जब आपको जाने तब द्वैत भेदभी मिटजावे। जैसे किसीपुरुषने अपनी भुजापर सिंहकी मूर्त्तिलिखी हो और उसके भयसे दौड़ता फिरे और कष्टपावे तो वह प्रमाद से भयवान् होताहै क्योंकि,

वह तो अपनाही अंगहै और अपने अंगके जानेसे भय मिटजाता है; तैसेहीस्वरूप के ज्ञानसे जगत् भय मिटजाताहै। जैसे स्वप्नेमें अज्ञानसे नानात्वभासताहै पर बना कुछनहीं; तैसेही जाग्रत् मे नानात्वभासता है परन्तु बनाकुछनहीं। जब मनुष्य अन्त-र्मुख होताहै तब बोधकी दृढ़ता होआती है। जैसे प्रातःकाल को ज्यों ज्यों सूर्य्यकी किरणें प्रकट होती हैं त्यों त्यों सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसेही ज्यों ज्यों मनुष्य अन्तर्मुख होता है त्यों त्यों बोध खिलता है। बिषयों से बैराग्य और आत्मा के अभ्यास से बुद्धि अन्तर्मुख होकर आत्मपद की प्राप्ति होती है तब आत्मा सर्व एकरस भासता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुषुप्तिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः २३४॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तब मैंने उसकी सुषुप्ति से जागकर जगत् को देखा—जैसे कोई पुरुष समुद्रसे निकल आवे; जैसे संकल्प सृष्टि फुरआवे; जैसे आकाश में बादल फुरते हैं और वृक्षसे फल निकलआते हैं; तैसेही उसकी सुषुप्तिसे सृष्टि नि-कलआई—मानों आकाशसे उड़आई वा मानों कल्पवृक्ष से चिन्तामणि निकलआई है। जैसे शरीरके रोम खड़ेहोआते हैं; जैसे गन्धर्वनगर फुरिआता है; अथवा जैसे पृथ्वीसे अंकुर निकलआता है; तैसेही सृष्टि फुरिआई। जैसे कन्धपर पुतलियांलिखी हों और जैसे थंभमें पुतलियां हों; तैसेही मैंने सृष्टिको देखा। जैसे थंभेमें पुतलियां निकली नहीं परन्तु शिल्पी कलपता है कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी; तैसेही अनहो-तीसृष्टि आत्मरूपी थंभसे निकलआती है। आत्मरूपी माटीसे पदार्थरूपी बासन निकलते हैं परन्तु यह आश्चर्य है कि, आकाशमें चित्र होतेहैं और निराकार चैतन्य आकाशमें पुतलियां मनुष्य कलपता है। हे बधिक! जैसे आकाशमें मकड़ीके समूह निकल आते हैं, तैसेही शून्याकाश से सृष्टि निकलकर उस पुरुषके हृदयमें मुझको स्पष्ट भासनेलगी। देश, काल, क्रिया और द्रव्यसे अकस्मात् सत्यासत्य पदार्थभासने लगते हैं और असत्य पदार्थ सत्य हो भासते हैं। जैसे मणिमंत्र औषधद्रवके बलसे असत्यपदार्थ सत्यहो भासनेलगतेहैं और सत्यपदार्थ असत्यभासतेहैं,तैसेही अभ्या-सके बलसे मुझको उस पुरुषके हृदयमें सृष्टि भासनेलगी। हे बधिक! जैसानिश्चय संवित् में दृढ़होता है तैसाहीरूप होकर भासताहै, वास्तवमें नकोई पदार्थहै, नभीतर है, न बाहर है, न जाग्रत् है, न स्वप्नहै और न सुषुप्ति है; यहसबसृष्टि इसकेभीतरही स्थित है और प्रमाददोष से बाहरसे फल उत्पन्न होतेदेखता है। जैसे स्वप्ने में सब पदार्थ अपने भीतर बाहर होतेभासते हैं तैसेही ये पदार्थ अपने भीतरसे बाहर फु-रतेभासते हैं। हे बधिक! यह जगत् जो आकारसंयुक्त दृष्टि आताहै सोसबनिराकार

है और कुछबनानहीं ब्रह्मसत्ताही अज्ञानसे जगत्‌रूपहो भासती है; जो ज्ञानवान्‌पुरुष हैं उनको जगत् सत्यअसत्य कुछनहीं भासताकेवल ब्रह्मसत्ताही अपनेआप में स्थित भासती है और जो अज्ञानी हैं उनको भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है। जब चित्त की वृत्ति बाहर फुरतीहै उसको जाग्रत् कहते हैं; जब अन्तर्मुख फुरतीहै तब उसकोस्वप्न कहते हैं और जब स्थित होतीहै तब उसको सुषुप्ति कहते हैं; तो एकही चित्तवृत्तिके तीनपर्यायहुये और कुछवास्तव तो नहीं। इसी जगत् के आदि शुद्ध केवल आत्म-सत्ताथी और उसमें जब चित्तसंवित्‌फुरी तबजगत्‌रूप भासनेलगी और किसीकारण जगत् उपजानहीं। जिसका कारण कोई नहीं उसको असत्य जानिये—वास्तव में कुछ बना नहीं सर्वजगत् शान्तरूप ब्रह्महीहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुषुप्तिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः २३५॥

बधिकबोला, हे मुनीश्वर! प्रलयके अन्तर तुमको क्याअनुभवहुआथा? मुनीश्वर बोले,हेबधिक! तबमुझको उसके भीतर सृष्टिफुरआई औरअपनेपुत्र, कलत्र, स्त्री, आदि संपूर्ण कुटुम्बभासि आये। उनको देखकर मुझको ममत्वफुरआया और पूर्वकी स्मृति भूलगई। अपनी षोड़शवर्षकी आयुर्बल भासी और गृहस्थाश्रममें स्थित हुआ तब रागद्वेषसहित मुझको जीवकेधर्म फुरआये क्योंकि; दृढ़बोध मुझको न हुआ था। हे बधिक! जब दृढ़बोध होताहै तब रागद्वेषादिक जीव धर्म्मचला नहींसक्के और संसार को सत्यजानकर कोई वासना नहीं होती इसीकारण चलायमान नहींहोता। जिसको बोधकी दृढ़ता नहीं हुई उसको जगत् की वासना खैंचलेजाती है। हे बधिक! अब मुझको दृढ़बोध हुआहै। इस वासनाको तरना महाकठिन है; यह पिशाचिनी महा-बली है क्योंकि; चिरकालसे दृश्यका अभ्यासहुआ इसकारण चलालेजाती है। जब सत्‌शास्त्र का बिचार और सन्तोंका संग जीवको प्राप्तहोता है और अभ्यासदृढ़होता है तब दृश्यकासद्‌भाव निवृत्तहोजाताहै। जबतक यह मोक्षकाउपाय नहीं प्राप्तहोता तब तक यहभ्रमदृढ़ रहताहै और जब सन्तोंके संग और सत्‌शास्त्रोंके बिचारसे यह विचार उपजताहैकि,'मैं कौनहूं'और 'यह जगत् क्याहै' और इसको बिचारकर आत्म-पदका दृढ़अभ्यास होताहै तब दृश्यभ्रम मिटजाताहै क्योंकि; असम्यक् ज्ञानसे जगत् सत् भासितहुआ है, जबसम्यक् ज्ञान हुआ तब जगत्‌का सद्‌भाव कैसे रहै। जैसे आकाशमें नीलता; बाजीगरकी बाजी और रस्सीमें सर्प भ्रमसे भासते हैं, तैसेही आ-त्मामें जगत् भ्रमसे भासता है। जब प्राणी अपने स्वरूप में जागता है तब जगत् भ्रममिटजाता है पर जब तक स्वरूपमें नहीं जागता तबतक जगत् भ्रम नहींमिटता। बधिकबोला, हे मुनीश्वर! यह तुम सत्य कहतेहो कि, जगत् भ्रम मिटनाकठिन है।

मैं तुम्हारे मुखसे बारम्बार सुनताहूं और बिचारताहूं और पदपदार्थ का ज्ञानभीमुझको दृढ़होगयाहै परन्तु संसार भ्रमनष्टनहीं होता। यह मैंजानता और सुनताहूं कि, सन्तोंकेसंग और सत्शास्त्रोंके बिचारबिनशान्ति नहीं होती पर यह संशयमुझकोहोता है कि; तुमजाग्रत् जगत्को स्वप्नवत् कैसेकहतेहो? कई पदार्थ सत्यभासतेहैं और कई असत्य भासतेहैं। मुनीश्वर बोले,हे बधिक! यहसर्व जगत् पृथ्वी आदिकपदार्थसत्यभासतेहैं और शशेके सींगआदिक असत्यभासतेहैं सो सबमिथ्यारूपहैं। जैसे स्वप्ने में सत्य असत्यपदार्थ भासतेहैं सो सर्व असत्यरूपहैं, तैसेही यहजगत् असत्यरूपहै पर उसमें अल्पऔर चिरकाल की प्रतीतिका भेद है। जाग्रत् चिरकालकी प्रतीति है उसमें पदार्थसत्य भासते हैं और स्वप्ना अल्पकालकी प्रतीति है इससे स्वप्ने के पदार्थअसत्यभासतेहैं परन्तु दोनों भ्रमरूप और असत्यहैं इसकारणमैं तुल्यकहताहूं। असत्य ही पदार्थ भ्रमसे सत्यकीनाईं भासते हैं और यह सर्व जगत् स्वप्नमात्रहै उसमेंसत्य और असत्य क्या कहूं। जैसे स्वप्ने में कई पदार्थ सत्य और कई असत्य भासते हैं पर सबही असत्य हैं, तैसेही जाग्रत् में कई पदार्थ सत्य भासते और कई असत्यभासतेहैं परन्तु दोनों भ्रममात्रहैं इसीसे असत्यहैं। हे बधिक! प्रतीति का भेदहै, पदार्थ में भेदकुछनहीं। जिसमें प्रतीतिदृढ़ होरहीहै उसको सत्यकहतेहैं और जिसमेंप्रतीति दृढ़नहीं उसको असत्य कहते हैं। एक ऐसे पदार्थ हैं कि, स्वप्नेमें उनकी भावनादृढ़ होगई है सो जाग्रत् में भी प्रत्यक्षभासते हैं और मनोराजकी दृढ़ता जाग्रत् रूप होजाती है है सो भावनाहीकी दृढ़ता है और भेद नहीं। जिसमें भावना दृढ़होगई है वह सत्यभासने लगा है जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनकोजगत् संकल्प मात्रही भासताहै संकल्पसे भिन्न जगत्का कुछ रूप नहीं तो उसमेंमैं सत्य और असत्य क्याकहूं? सब जगत् भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं उनको सत्य असत्य कुछ नहीं सब ज्ञानरूपहीभासताहै। जैसे जिसको स्वप्नेमें जाग्रत्की स्मृति आईहै उसको फिर स्वप्नानहीं भासता है,तैसेही जिसको जाग्रत् रूपस्वप्नेमें बोधस्मृति हुईहै वह फिर मोक्षको नहींप्राप्तहोता। इससे न कोई जाग्रत् है, न कोई स्वप्ना है और न कोईनेति है क्योंकि; नेतिभीकुछ और वस्तु नहीं। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं और उनकी मर्यादा नेतिभी भासती है तो वह नेति किससे है? सब ज्ञानरूप होती है; तैसेही जाग्रत्में भी सब ज्ञानरूप है और संवित् के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और उसमें नेतिभी भासती है; इससे न कोई जगत् और न कोई नेति है। इसका कारण कोई नहीं; कारण बिनाही जगत् अकस्मात् फुरआता है और मिटभी जाता है। संवेदन के फुरने से जगत् फुरआता है और संवेदन के मिटेसे मिटजाता है–इससे जगत् संवेदन रूप है। जैसे वायु स्पन्दरूप होती है; तैसेही संवेदनही जगत्रूप हो

भासता है। जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तब फुरन रूपहो भासती है और निस्स्पन्द को कोई नहीं जानता परन्तु वायुको दोनों तुल्य हैं; तैसेही चित्त संवेदन के फुरने में जगत् भासता है और ठहरनेमें जगत् किंचन मिटजाताहै—फुरना और ठहरना दोनों उसके किंचन हैं और आप दोनों में तुल्य है। हे वधिक! नेतिभी अज्ञानीके समुझाने के निमित्त कही है। स्वप्ना भी असत्य है सब कोई जानता है पर स्वप्ने का वृत्तांत जाग्रत् में सिद्धहोता दृष्टि आता है; कोई कहता है कि, रात्रिमें मुझको स्वप्नाआया है कि; अमुककार्य इसप्रकार होगा और जाग्रत् में वैसाही होता दृष्टि आताहै; पिता पुत्र से कहजाता है कि; मेरीगति करना और अमुकस्थानमें द्रव्यपड़ा है तुम निकाललो सो उसीप्रकार होता दृष्टि आया है। जो नेतिहोती तो कोई कार्यसिद्ध न होता पर सो तो होताहै इससे नेतिभी कुछ वस्तु नहीं। आत्मासे भिन्न कुछ वस्तुनहीं। जाग्रत् उसका नाम है जिसको आत्मशब्द कहते हैं और जिसको तुम जाग्रत् कहतेहो सो कुछ वस्तु नहीं। जाग्रत् मन सहित षट्इन्द्रियों की संवेदन होती है सो स्वप्ने में भी मनसहित षट्इन्द्रियों की संवेदन होतीहै और उनमें ग्रहण होताहै इससे जाग्रत् कुछ वस्तु नहीं। जो जाग्रत् में अर्थ सिद्धहोता है और स्वप्ने में भी होवे तो जाग्रत् कुछ वस्तु न हुई और जो तू कहे कि, स्वप्ना कुछ वस्तु है तो स्वप्नाभीकुछ वस्तुनहीं क्योंकि, स्वप्ना तहां होताहै जहां निद्राभ्रम होताहै। केवल शुद्ध चिन्मात्रसत्ताकाजगत् किंचन है। जैसेरत्नों का चमत्कार स्थित होताहै सोरत्नों से भिन्नकुछवस्तु नहीं रत्नही व्यापा है, तैसेही जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्मा का चमत्कार है। बोधसत्ता केवल अपने आप में स्थित है सो अनन्त है उसमें जगत् कुछ बना नहीं। जो आत्मा से भिन्नजगत्भासताहै सो नाशरूप है और आत्मासदा अविनाशी है। हे वधिक! जबयह पुरुष शरीरको छोड़ताहै तब परलोकमें सुखदुःख ऐसे भोगताहै जैसे कि, जलमें तरंग उठकर मिटजाताहै और दूसरी ठौर और प्रकारसे उठताहै सो जलही जल है; आगे भी जलथा, पीछे भी जलहै, तरंग भी जलहै और जलहीका विलास इस प्रकार फुरता है; तैसेही यह शरीर भी अनुभवरूप है—अनुभवसे भिन्न कुछ नहीं। जैसे मनुष्य एक स्वप्न को छोड़कर दूसरा स्वप्ना देखताहै तो क्याहै; अपनाही आपहै; तैसेही यह जगत् भी आत्मरूपहै। हे वधिक! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया येही चारों वपु हैं। जाग्रत् जो सृष्टिकी समष्टिता है उसका नाम विराट् है; स्वप्न जो लिंग शरीरकी समष्टिताहै उसका नाम हिरण्यगर्भ है; सुषुप्ति शरीरकी समष्टिता अव्याकृत माया है और तुरीया सर्व शरीरोंकी समष्टिताहै सो चेतनरूप आत्माहै। तुरीया साक्षीभूत के जाननेको कहते हैं; उसकी समष्टिता रूप चेतनवपु है; चारों शरीर उसके हैं और वह सदा निराकार अचेत चिन्मात्र है। हे वधिक! ये चारों परमात्माके शरीरहैं। वह पर-

आत्मा निराकारहै और आकार जो उसमें दृष्टि आताहै सो भी वही रूप है । आकार कल्पनामात्र है और आत्मा सर्वकल्पनासे रहितहै–इससे सब जगत् चिदाकाशरूप है। जैसे पत्थरकी शिलामें कमलके फूल नहीं लगते–उनका होना असंभवहै; तैसेही आत्मामें जगत्का होना असंभवहै । हे बधिक ! आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है; तू जागकर देख कि, सर्व पदार्थ संकल्पमात्रहैं और जिसमें कल्पितहैं वह नामरूपसे रहितहै । जब तू उसको देखेगा तब सबजगत् आत्मरूप भासेगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वप्ननिर्णयोनाम द्विशताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः २३६ ॥

बधिक बोला,हे मुनीश्वर ! उस पुरुषके हृदयमें जो तुमने सृष्टि देखीथी उसमें तुम किसप्रकार विचरतेथे और क्या देखाथा सो कहो ? मुनीश्वर बोले,हे बधिक ! जो कुछ वृत्तांत है सो तू सुन । जब मैंने उसके हृदयमें नानाप्रकारका जगत् देखा तब मैं अपने कुटुम्बमें रहनेलगा और पूर्वकी स्मृति विस्मरणकर षोड़शवर्ष पर्यंत उसीको सत्यजान कर चेष्टा करतारहा । तब मेरे गृहमें मान करने योग्य उग्रतपानाम एक ऋषीश्वर आया और उसका मैंने बहुत आदर किया । उसके चरणधोकर उसे मैंने सिंहासन पर बैठाया और नानाप्रकारके भोजनसे उसको तृप्तकिया । जब उस ऋषिने भोजन करके विश्राम किया तब मैंने कहा, हे ऋषीश्वर ! अदृष्टिक्रोधको मैं जानताहूं । तुम परमबोधवान् हो क्योंकि, आपको आपही जानतेहो । जब तुम आये थे तब थकेहुये थे परंतु तुममें क्रोध न दृष्टि आया और जब तुमने नानाप्रकारके भोजन किये तब तुम हर्षवान् भी न हुये; इसकारण मैंने जाना कि, तुम परमबोधवान्हो और तुम्हारेमें राग द्वेष कुछ नहीं है । इससे मैं संशययुक्तहोकर एकप्रश्न करताहूं कृपाकरके उसका उत्तर देकर मेरे संशय को दूरकीजिये । हेभगवन् ! इसजगत्में जो दुर्भिक्ष पड़ता है और सब इकट्ठे मरजाते हैं और कष्टपाते हैं इसका क्या कारण है ? यह तो मैं जानताहूं कि, जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म जीवकरता है उसका फल पाता है । जैसे धानको बोताहै तो समय पाकर फल भी अवश्य आताहै,तैसेही कर्मका फल भी अवश्य प्राप्त होता है और जिसने कियाहै वही भोगताहै पर दुर्भिक्ष में इकट्ठा कष्ट क्योंकर प्राप्तहोताहै ? उग्रतपा बोले, हेसाधो ! प्रथम यहसुनो कि,जगत् क्यावस्तुहै। यहजगत् कारणविना उत्पन्नहुआहै और जोकारणबिना दृष्टिआवे उसेभ्रममात्रजानिये इससेतू विचारकर देख कि, 'यह जगत् क्या है;' 'तू कौन है;' 'इसमें क्याहै' और इसकाअन्त प्रमाण कहांतक है ? हे बधिक ! यह जगत् स्वप्नमात्रहै और यह शरीरभीस्वप्नमात्र है । तू मेरास्वप्ननर है; मैं तेरा स्वप्ननरहूँ और सब जगत् स्वप्ननरहै । कारण कार्य कोईनहीं, सब आभासमात्र है; आभासमेंकुछ और बस्तु नहींहोती इससे सबजगत्

आत्मस्वरूप है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र होताहै; सर्प कुछ नहीं रस्सीही है; तैसेही सब जगत् चिन्मात्ररूप है। उसमें जगत् कुछबनानहीं केवल आत्मसत्ता अपने आपमेंस्थित है और उसमें अहंहोकर इसप्रकार चैतन्यता संवेदन फुरतीहै तब जगत् आकारका स्मरणहोता है और जैसे जैसे संकल्प फुरता है तैसाहीतैसा जगत्भासता है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि और संकल्पनगरनाना प्रकारके भासतेहैं पर अनुभवसे भिन्न नहीं, तैसेही यहजगत् भासताहै। जिससंवित् में अपना स्वरूप स्मरण होताहै उसको जगत्कारण कार्यरूप भासताहै—वहीजीवहै और जिससंवित्को कर्मकीकल्पना स्पर्श करतीहै उसको उनकर्मोंकाफल नहीं लगता और कर्त्तव्यदृष्टिभी आताहै परन्तु उसके हृदयमेंकर्त्तव्यका अभिमान नहींस्पर्श करता। जिसके हृदयमें कर्त्तव्यका अभिमान होताहै उसको फलभी होताहै।हे साधो! यह जो सृष्टिहै उसका एकविराट्पुरुष है उसी का यह शरीरहै और यह विराट् भी और विराट्के संकल्पमें है। यह विराट् उस विराट् का रोमांचहै। जब विराट् पुरुषके अंगमें क्षोभ होताहै और जीवकी पापवासना उदय होती है तब वासना और अंगकाक्षोभ इकट्ठा होकर उसस्थानमें उपद्रव और कष्टहोता है।जैसे बनमें बहुत वृक्षहोतेहैं और उनपर वज्र आन पड़ताहै तो उससे सबचूर्ण होजाते हैं तैसेही इकट्ठे पापसे इकट्ठेही मरजाते हैं और इकट्ठे दुर्भिक्षसे कष्टपाते हैं। जैसे किसी पुरुषके अंगपर मक्खी काटे तो उससे वह अंगकाँपताहै और उस अंगके काँपनेसे रोम भी काँपने लगजाते हैं और जो सर्पादिक जीवकहीं डसताहै तो साराशरीर कष्टपाताहै और सब रोम कष्टपाते हैं; तैसेही यह जगत् विराट्पुरुषका शरीरहै जब किसी नगर में पाप उदय होताहै तब एक रोमरूपी नगर जीव कष्टपातेहैं और जो सारे अंगरूपी देशमें पाप उदय होताहै तब सर्पके काटनेके समान विराट्का साराशरीर क्षोभवान् होताहै और उसके शरीरपर रोमरूपी सबजीव कष्टपाते हैं। आत्मसत्ता केवल अनुभव रूपहै उसके प्रमादसे यह आपदा दृष्टि आती है। यह जगत् कारणसे उपजा होता तो सत्य होता सो तो कारणसे उपजा नहीं सत्य कैसेहो? इस जगत्में सत्यप्रतीति करनीही अज्ञानताहै। हे साधो! इस आकाशका कारणकोई नहीं; पृथ्वीका कारण कोई नहीं और अविद्याका कारण भी कोई नहीं। स्वयंभू अकारण है। स्वयंभू उसका नाम है कि, जो अपने आपसे प्रकटहै तो उसका कारण कौनहो? अग्नि, जल, वायुका कारण भी कहीं नहीं। जो तुमकहो कि, सबका कारण आत्माहै तो आत्माको निमित्त कारण कहोगे अथवा समवायकारण कहोगे? यदि प्रथमपक्ष निमित्तकारण कहिये तो नहीं बनता क्योंकि; आत्मा अद्वैतहै और दूसरी बस्तु कोई नहीं तो निमित्तकारण किसकाहो? यदि समवाय कारण कहिये तो भी नहीं बनता क्योंकि, समवायकारण आप परिणाम से कार्य होताहै पर आत्मा अच्युत है और अपने स्वरूप को नहीं त्यागता सो समवाय का-

रण कैसेहो ? इससे यदिआत्मामें कारण-कार्यभाव नहीं तो फिर जगत् किसका कार्य हो ? हे अंग ! जो कारण से रहित दृष्टिआवे उसको जानिये कि, भ्रममात्र भासता है और जो तू कहे कि, कारण बिना पिंडाकार नहींहोते कहीं कारणभी होगा; तो हेअंग! जैसे मनुष्य देहको त्यागता है और परलोक जा देखता है तो कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है पर उस शरीर का कारण किसे कहिये ? वह तो कारणसे नहीं उपजा भ्रममात्रहै; तैसे यहभी भ्रममात्र जानो। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकारके आकार भासि आते हैं सो किसी कारण से नहीं उपजते और आकाशमें तरुवरे और रंगभासते हैं सो भ्रममात्र हैं; तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र है। जैसे बालकको अनहोता बैताल भासता है और उससे वह भयवान्होता है, तैसेही यह जगत् भी अनहोता स्वरूप के प्रमाद से भासता है; वास्तव में परमात्मसत्ता ज्योंकीत्यों है वही संवेदनसे जगत्-रूप हो भासती है-उसमें वहीरूप है। जैसेवायु चलने और ठहरने में एकहीरूप है परन्तु चलने से भासती है और ठहरने से नहीं भासती; तैसेही चित्त संवित् फुरनेसे जगत् आकार हो भासतीहै और उसमें नाना प्रकारके शब्द-अर्थ दृष्टिआतेहैं और जब फुरने से रहित होती है तब अपने स्वभाव को देखती है। जब संकल्प की दृढ़ता होतीहै तब कारण कार्यभासनेलगते हैं। जिसको कारण कार्य भासताहै उसको जगत् सत्यभासताहै और जिसको कार्यसे रहित भासताहै उसको जगत् आत्मरूपहै। जिस को कारणकार्य बुद्धि है उसको वही सत्य है। वह पुण्य करेगा तो स्वर्ग में सुख पावेगा और पापकरेगा तो नरक दुःख भोगेगा-इससे उसको पुण्यही करना भलाहै। जब जीव के पाप इकट्ठेहोते हैं तब दुर्भिक्ष पड़ती और मृत्युआती है। जैसे पत्थरकी वर्षा हो तैसेही वे कष्टपाते हैं और जो मेरानिश्चय पूछो तो न पापहै, न पुण्यहै, न दुःख है, न सुख है और न जगत्है। जबस्वरूपके प्रमादसे अहंता उदयहोतीहै तब नानाप्रकारके विकार भासतेहैं और जब प्रमाद निवृत्तहोताहै तबसब आत्मरूप भासता है-इससे तुम सर्वकल्पनाको त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थितहोरहो तबसर्व संशयमिटजावेंगे ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वप्नविचारोनाम
द्विशताधिकसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः २३७ ॥

मुनीश्वरजी बोले, हे बधिक ! इसप्रकार उग्रतपा ऋषीश्वरने उपदेश किया उससे मैं अपने स्वभावमें स्थितहुआ और अकृत्रिमपदको प्राप्तहुआ। उग्रतपाके साथ मानो विष्णुभगवान् उपदेश करने आनबैठेथे, उन्हींके उपदेशसे मैं जागा। जैसे कोई रजसे वेष्टित स्नानसे उज्ज्वलहो तैसेही मैं हुआ अपनी पूर्वस्मृति और अवस्थाको स्मरणकर और समाधि वाले शरीर और आत्मबपुको भी जान, यह उग्रतपा तेरे पास बैठाहै। अग्निबोले, हे राजन् ! जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा तब बधिक वि-

स्मयको प्राप्तहुआ और बोला, हे मुनीश्वर! बड़ाआश्चर्य है जो तुम कहतेहो कि, स्वप्नमें मुझको उग्रतपाने उपदेश कियाथा और फिर जाग्रत्‌में कहतेहो कि, यह बैठा है। यहवार्त्ता तुम्हारी कैसे मानिये? जैसे बालकअपनी परछाहींमें बैताल कल्पे और कहे यह प्रत्यक्ष बैठाहै तो जैसे वहस्पष्टनहीं भासता, तैसेही यह तुम्हारा बचनस्पष्ट नहीं भासता। यह अपूर्व वार्त्तासुनकर मुझको संशय उपजाहै सो तुमदूरकरो। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह बात आश्चर्य्यके उपजाने वाली है परन्तु जैसे यहवृत्तांत्त हुआहै सो संक्षेपसे तुमसे कहताहूं सुनो। जब उग्रतपाने मुझको उपदेश किया तब मैंने कहा, हे भगवन्! तुम यहां विश्रामकरो और जिसप्रकार मैं रहताहूं तैसेही तुम भीरहो। तब मैं वहां रहनेलगा और उसका उपदेश पाकर विचारा कि, यह जगत् मिथ्याहै, मेराशरीर भी मिथ्याहै और इसके सुखके निमित्त मैं क्या यत्नकरताहूं? इन्द्रियां तो ऐसीहैं जैसे सर्प्पहोते हैं; इनके सेवनेवाला संसाररूप बन्धनसे कदाचित् मुक्त न्‍ीं होता। मेरेजीनेको धिक्कारहै। जोइनके सुखकी बांछा करतेहैं वे मूर्खहैं और मृगकी नाईं मरुस्थलके जलपान करनेके निमित्त दौड़तेहैं और थकपड़तेहैं पर तृप्त कदाचित् नहोंगे। मैं अविद्यासे सुखकेनिमित्त यत्नकरताथा पर इनसे तृप्ति कदा‍ित् नहीं होती। हे बधिक! ममता के रूप जो बांधवहैं सोही चरणोंमें जंजीरहैं और अन्धकूपमें गिरनेका कारणहै इनसे बांधाहुआ मैं इन्द्रियोंके विषयरूपी कूपमें गिराथा। अबमैंने विचारकियाहै कि, बन्धनका कारण कुटुम्बहै उसको मैं त्यागदूं। फिर बिचारकिया कि, इनकेत्यागमें भी सुखनहीं प्राप्तहोता जबतक अविद्याको नष्टनकरूं। हे बधिक! ऐसे विचारकर मैं गुरुके पासगया और मनमें विचारकिया कि, जगत्भ्रममात्रहै और गुरुभी स्वप्नमात्र है इनसे क्याप्राप्तहोगा? फिर विचारकिया कि, नहीं ये ज्ञानवान् पुरुषहैं और इनको 'अहंब्रह्म'का निश्चयहै इससे ये ब्रह्मस्वरूप हैं और कल्याणमूर्त्ति हैं इनसे जाकेप्रश्नकरूं। तब ने जाकर उनको प्रणामकिया और कहा, हे भगवन्! ‍स अपने शरीरको देखआऊं और इसके शरीरकोभी देखूं कि,कहांहै, इसजग‍त्‌का विराट्‌पुरुषहै। हे बधिक! जब इसप्रकार मैंने कहा तब ऋषिने हँसकर मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! वहतेरा शरीरकहांहै? वह शरीर तो दूरगयाहै अब उसेकहां देखेगा? तू आप‍ी जानेगा। तब मैंने हाथ जोड़कर ऋषिसे कहा, हे ऋषे! अब मैं जाताहूं,मेरे आनेतक तुम यहां बैठेरहना। हे बधिक! ऐसे कहकर मैं अधिभौतिक देहके अभिमानको त्यागकर अन्तवाहक शरीरसे उड़ा औ‍ आकाशमार्गमें उड़ता‍ड़ता थकगया परन्तु शरीरकहीं न पाया। तब मैं फिर ऋषिके पासआया और कहा, हे पूर्व अपरके बेत्ता और भूत भविष्यत् के जाननेवाले! वे दोनों शरीर कहांगये? न इस सृष्टिके विराटका शरीर भासता है जिसके मार्गसे हमआये थे और न अपना शरीर

भासताहै ? हे संशयरूपी अन्धकारके नाशकर्त्ता सूर्य ! आप इसका कारण बताइये । उग्रतपाबोले, हे कमलनयन और तपरूपी कमलकी खानिके सूर्य और ज्ञानरूपी कमलके धारणकरनेहारे विष्णुकी नाभि और आनन्दरूपी कमलकी खानि ! तू सब कुछ जानता है और आत्मपदमें जागाहुआ । तू तो योगीश्वर है, ध्यानकरके देख कि, सब वृत्तांत तुझको दृष्टिआवे । हे मुनीश्वर ! यह जगत् असत्यरूपहै इसमें स्थिर कोई वस्तु नहीं । बिचारकरदेखो कि, शरीरकी अवस्था तुमको दृष्टिआवे और जो मुझसे पूँछतेहो तो मैं कहताहूँ। हे मुनीश्वर ! जिसवनमें तुम रहतेथे और जहां तुम्हारे शरीर थे उस बनमें एककालमें अग्निलगी और सबप्रकार के वृक्ष और बेलि जल गईं; जलभी अग्निसे क्षोभनेलगा और बनचारी पशुपक्षी सबजलगये और महाकष्ट को प्राप्तहुये उसीकेसाथ तुम्हाराशरीर भी जलगया और कुटीभी जलगई । मुनीश्वर बोले, हे भगवन् ! उसअग्निसे जो संपूर्णबन जलगया तो उसका कारण कौनथा ? उग्रतपाबोले, हे मुनीश्वर ! यह जगत् जिसमें हम और तुम बैठेहैं इसीका विराट्है और जिसके शरीरमें तुमने प्रवेश कियाथा और जिसमें उसका और तेरा समाधिवाला शरीर है उसका बिराट और है—वहसृष्टि उसबिराट्का शरीरहै । हेमुनीश्वर ! उसबिराट् के शरीरमें जो क्षोभहुआ इसकारण अग्निउत्पन्न हुई और शरीर, वृक्षइत्यादिकसब जलगये । इससृष्टिके विराट्कानाम ब्रह्माहै; उस ब्रह्माकाविराट् और है और उसका विराट् आत्मा है जो सदा अपनेआपमें स्थित है। और उसमें कुछ और नहीं बना। जिस पुरुष को उसका प्रसाद है उसको उपद्रव और कारण कार्यरूप पदार्थ भासतेहैं उससे वह कर्मोंके अनुसार दुःख सुख भोगता है और जिसको स्वरूप का साक्षात्कार है उसको जगत् आत्मसहित भासता है और सर्वओरसे ब्रह्म भासता है। हे मुनीश्वर ! जब इसप्रकार बनके पशुपक्षी सब जले तब तुम्हारी कुटीमें भी आगलगी इससे वहकुटी और तुम्हाराशरीर अग्निसे जलगया और जिसकेशरीर में तुमने प्रवेशकिया था वहभी जलगया । तुम्हारेशिष्य और उसका ओजभी जल गया और तुम दोनोंकी संवित् आकाशरूप होगई । वह अग्निभी बनको जलाकर अन्तर्द्धान होगई । जैसे अगस्त्यमुनि समुद्र का आचमनकरके अन्तर्द्धान होगयेथे, तैसेही वह अग्निभी बनको जलाकर अन्तर्द्धान होगई और अब तुम्हारे शरीरकी राखभी नहीं रही। जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में नहीं दिखाई देती, तैसेही तुम्हारेशरीर अदृष्ट होगये । हे मुनीश्वर ! यह सर्वजगत् स्वप्नमात्र है। मैं तेरे स्वप्नमें हूं और सब जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है सो सबका अपनाआप है, जगत् उसीका आभासहै । जैसे संकल्पसृष्टि, स्वप्ननगर और गन्धर्बनगर होताहै, तैसेही यह जगत् भी है। हे मुनीश्वर ! यह जगत् तेरे स्वप्नेमें स्थितहै और तुझको चिरकालकी प्रतीति

से जाग्रत्रूप कारणकार्य नानाप्रकारका सत्यहोकर भासताहै। मुनीश्वर बोले,हे भग-वन्! जो यह स्वप्ननगर सत्य होगया है तो सबही स्वप्ननगर सत्य होंगे ? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! प्रथम तू सत्यको जान कि, सत्य क्या बस्तुहै; पर जगत् जो तुझको भासताहै सो सबही स्वप्ननगर है, इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं। इस जगत्को तू स-माधिवाले शरीरकी अपेक्षासे असत्य कहताहै और जिसको तू जाग्रत्वपु कहताहै सो किसकी अपेक्षासे कहेगा ? यह तो अदृष्टिरूप है इससे इसको स्वप्नाजान। जिस सत्ता में यह समाधिवाला शरीरभी स्वप्नाहै उस सत्ताको जानतब तुझको सत्यपद की प्राप्तिहोगी। जैसे यह जगत् आत्मसत्ता में आभासफुरा है, तैसेही वहभी है। तू जागकरदेख तो इसमें और उसमें कुछ भेद नहीं और सर्व जगत् जो भासता है सो सब आत्मरूपरत्नका चमत्कार है। जैसे सूर्यकी किरणों में अनहोताही जलभासता है, तैसेही सब जगत् आत्मा में अनहोता भासता है और आत्माके प्रमाद से सत्य भासता है। तू अपने स्वभाव में स्थित होकरदेख। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! उग्र-तपा ऋषीश्वर रात्रि के समय इसप्रकार कहते हुये शय्यापर सोगया और जब कुछ कालमें जागा तब मैंने कहा कि, हे भगवन्! और वृत्तांत मैं फिर पूछूंगा परन्तु यह संशय प्रथम दूरकरो कि, उस व्याधका गुरु तुमने मुझको किस निमित्तकहा; मैं तो व्याधको जानताभी नहीं ? उग्रतपा बोले, हे दीर्घतपस्विन्! ध्यानकरके देख तूतो सब कुछ जानता है जिस प्रकार वृत्तांत है उसको जानेगा। जो मुझसे पूछता है तो मैंभी कहता हूं और यह वृत्तांत तो बड़ा है पर मैं तुझको संक्षेप से कहताहूं। हे मुनीश्वर! तुम्हारे देशमें राजाके बांधव और सब लोग अपना धर्म छोड़देंगे तब दुर्भिक्ष पड़ेगा और बर्षा न होगी इससे लोग दुःख पावेंगे और मरमर जावेंगे। तेरेकुटुम्बभी मरेंगे और कुटी भी नष्टहोजावेगी और वृक्ष, फल, फूलसे रहित होवेंगे। केवल तू और मैं दोनों बनमें रहजावेंगे क्योंकि; हमको सुख और दुःखकी बासना नहीं हमविदितवेद हैं— विदित वेदको दुःखकैसे हो ? हे मुनीश्वर! कुछकाल तो इसप्रकार चेष्टा होगी, फिर कुटी के चौफेर फूल, फल, तमालवृक्ष, कल्पतरु, कमलताल आदि नाना प्रकार की सामग्री होगी; बड़ी सुगंधि फैलेगी; मोर और कोकिला विराजेंगे और भँवरे कमलपर गुंजारकरेंगे निदान ऐसा बिलास प्रकट होगा मानों इन्द्रका नन्दन बन आनलगा है और ऐसी दशा फिर होगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरात्रिसंवादोनाम
द्विशताधिकाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः २३८॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! उग्रतपा ऋषीश्वरने मुझसे फिर कहा कि; हे मुनीश्वर! इसप्रकार वह बन होगा तब तू और मैं एकसमय तपकरने उठेहोंगे और वहां एक

व्याध मृग के पीछे दौड़ता तेरी कुटी के निकट आवेगा, उसको तू सुन्दर और पवित्र कथा उपदेश करेगा और उसमें स्वप्ने का प्रसंग चलेगा। उस प्रसंगको पाकरस्वप्न और जाग्रत् का वृत्तान्त वह पूछेगा, उससे तू स्वप्नेका प्रसंगकहेगा और उसस्वप्ने के प्रसंग में उसको तू परमार्थ उपदेश करेगा क्योंकि; सत्यका स्वभाव यह है और मेरे समागम का वृत्तांत उपदेश करेगा। तेरे बचनों को पाकर वह पुरुष विरक्त चित्त होकर तपकरेगा; उससे उसका अंतःकरण निर्मलहोगा और सत्यपदको प्राप्तहोगा। हे मुनीश्वर ! इसप्रकार होगा सो मैंने तुझे संक्षेपसे कहा है, तू भी ध्यानकरके देख इसकारण मैंने तुझको व्याधका गुरु कहा है। हे व्याध ! इस प्रकार जब उग्रतपा ने मुझसे कहा तब मैं सुनकर विस्मित हुआ कि; इसने क्या कहा ? बड़ा आश्चर्य है ! ईश्वर कीनीति जानी नहीं जाती कि, क्या होना है ! हे बधिक ! इसप्रकार मेरी और उसकी चर्चा हुई तब रात्रि व्यतीत होगई और मैंने स्नान करके प्रीति बढ़ाने के निमित्त भली प्रकार उसकी टहलकी तब वह वहां रहने लगा। फिर मैं बिचार करने लगा कि, यह जगत् क्या है; इसका कारण कौन है और मैं क्या हूं। तब मैंने विचार किया कि, यह जगत् अकारण है, किसी का बनाया नहीं और स्वप्न मात्र है। आत्मरूपी चन्द्रमाकीजगत्रूपी चांदनी है; उसीका चमत्कार है और वही आत्मसत्ता घट,पट आदिक आकारहो भासती है वास्तवमें न कोई कर्महै,न क्रिया है; न कर्त्ता है; न मैंहूं और न जगत् है। जो तू कहे कि, क्यों नहीं सर्व अर्थ और ग्रहण त्याग तो सिद्ध होतेहैं तो ग्रहण त्याग पिंडसे होताहै और पिंडतत्त्वका होताहै,सो तो यह पिंड न किसी तत्त्वसे बना है और न किसी माता पितासे है; यह तो स्वप्नेमें फुर आयाहै तो इसका कारण किसे कहिये ? और जो कहिये कि; भ्रममात्र है तो भ्रमका कारण कौनहै और भ्रांतिका द्रष्टा कौनहै ? जिस शरीरसे दृष्टि आताथा उसका द्रष्टा रूप मैं तो भस्म होगया इससे जगत् और कुछ बस्तु नहीं;केवल आदि अन्तसे रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है सोही मेरा स्वरूप है। वहां यह जगत्रूप होकर भासताहै पर केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै और पृथ्वी,जल,तेज,वायु, आकाश आदिक पदार्थ सब आत्मरूपहैं। जैसे समुद्र तरंगरूपहो भासताहै परन्तु कुछ और नहींहोता, तैसेही आत्मा नानाप्रकारहो भासताहै पर कुछ और नहीं होता ब्रह्मसत्ताही निरा-भासहै और आभासभी कुछहुआ नहीं केवल चेतनसत्ता ऐसे रूपहोकर भासती है। हे बधिक ! इस प्रकार विचार करके मैं विगतज्वर हुआ और मुनीश्वर के बचनों से पर्वतकी नाईं अपने स्वभावमें अचल स्थित हुआ। जो कुछ इष्ट अनिष्ट पदार्थ प्राप्त हो उसमें समरहूं अभिलाषसे रहित सब अपनी चेष्टाको करूं परन्तु अपने स्वभाव में स्थित रहूं। हे बधिक ! सुखभोगनेके निमित्त न मुझको जीने की इच्छाहै और न

मरनेकी इच्छाहै; न जीनेमें हर्षहै और न मरनेमें शोकहै; मैं सदा आत्मपदमें स्थितहूं कुछ संशय मुझको नहीं। संपूर्ण संशय फुरनेमें है सो फुरना मेरेमें नहीं रहा इसलिये संसार भी नहीं है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरात्रिप्रबोधोनाम
द्विशताधिकैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २३९॥

मुनीश्वर बोले, हे व्याध! इस प्रकार जब मैंने निर्णय किया तब तीनोंताप मेरे नष्ट होगये और बीतराग होकर निःशंक हुआ। तब किसी पदार्थकी मुझको तृष्णा न रही और निरहंकारहुआ और अनात्मामें जो आत्म अभिमानथा सो निवृत्त होकर निर्वाण और निराधार और निराधेय हुआ और अपनेस्वभाव आत्मत्वमें मैं स्थित होकर सर्वात्मा हुआ। हेबधिक! जो कुछ शरीरका प्रारब्ध प्राप्तहो उसमें मैं यथाशास्त्र विचरूं परन्तु कर्तृत्वका अभिमान निश्चय न हो जगत् मुझको आत्मरूप भासे और तृष्णा करनेवाली मिथ्याबुद्धि आभासमात्रहुई सो आभास कुछ बस्तुनहीं–चिदाकाश आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। हे बधिक! मुनीश्वरका कहा वृत्तांत होगया। तुम मेरे पास आये हो इसलिये जो कुछ उपदेश मैंने किया है वह परमपावन और सब का सार है। जिस प्रकार जगत् के पदार्थ, तुम और मैं और जाग्रत् वृत्तान्त है सो मैंने तुझसे कहा। व्याधने पूछा, हे मुनीश्वर! यदि इस प्रकार है तो तुम; मैं और ब्रह्मादिक भी सब स्वप्ने के हुये और असत्यही सत्यकी नाईं भासते हैं? मुनीश्वर बोले, हे व्याध! तुम, मैं और ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त सब स्वप्ने के पदार्थ हैं; न यह जगत् सत्य है, न असत्य है और न सत्यासत्यके मध्य है; न अनिर्वचनीय है क्योंकि; अनुभव रूप है। हे व्याध! जो अनुभव से देखिये तो वही रूप है और जो अनुभवसे भिन्न कहिये तो हैही नहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभव में फुरती है, जो अधिष्ठानकी ओर देखिये तो वहीरूपहै और उससे भिन्न कहनेमें नहीं आता। हे बधिक! जैसे कोई नगरदेखा है और वह दूरहै तो यदि स्मृति करके देखिये तोभासता है परन्तु कुछ बना नहीं स्मृति मात्र है; तैसेही सब पदार्थ संकल्पमात्र हैं कुछबने नहीं। अपने स्वभावमें स्थितहोकर देख; तूतो बोधवान्है मिथ्याभ्रममें क्योंपड़ा है? हे व्याध! तू मेरे उपदेशसे विश्रामवान् हुआ कि, नहीं हुआ? मैं जानताहूं कि, ऐसी परमपद सत्तामें तुमने क्षणभी विश्राम नहीं पाया क्योंकि; दृढ़भावना नहीं हुई। हे बधिक! परमपद पानेकामार्ग यही है कि, संतोंकी संगति और सत्शास्त्रोंका विचार करे और उनके अभ्यासमें दृढ़अभ्यास करे। इसमार्ग बिना शांति नहीं होती। जब दृढ़अभ्यासहो तब शांतिहो और चित्त निर्वाणहो तब द्वैत अद्वैत कल्पना मिटे। इसी का नाम निर्वाणकहतेहैं; जबतक चित्तनिर्वाण नहींहोता तबतक रागद्वेष नहीं मिटता

और जब अभ्यासके बलसे चित्तनिर्वाण होजाता है तब अविद्या नष्टहोजातीहै और आत्मपद और शान्तशिवपद प्राप्तहोताहै जो मान और मोहसे रहितहै। जिसने संगका द्वेषजीता है और किसीके संगसेबंधमान नहीं होता; जो अध्यात्म विचार नित्यकरता है और जिसकी सर्व कामना निवृत्त हुईहै; जो इष्टके रागद्वेष धुंधसे मुक्त है और जो सुख दुःख में सम है ऐसा ज्ञानवान् पुरुष अविनाशी आत्मपदको पाताहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशोनाम
द्विशताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः २४० ॥

अग्नि बोले, हेराजा विपश्चित ! जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा तब बधिक बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुआ और मुनीश्वरके वचन सुनकर मूर्त्तिवत् होगया । जैसे कागद पर मूर्त्ति लिखी होती है तैसेही वह आश्चर्य्यवान् हुआ और संशयके समुद्रमें डूबगया जैसे चक्रपर चढ़ा बासन भ्रमताहै,तैसेही वह संशयमें भ्रमनेलगा; मुनीश्वरका उपदेश उसने सुना परंतु अभ्यासबिना आत्मपदमें विश्रांति न पाई । हे राजन् ! परम वचनों को उसने अंगीकार न किया । जैसे राखमें डाली आहुति निरर्थक होती है, तैसेही मूर्खको उपदेश करना निरर्थक होता है । मूर्खतासेही वह संशयमें रहा और विचारनेलगा कि यह संसार अविद्यक है तो मैं इसका अन्त लेऊं और जो मुझको आत्मपद भासे इससे तपकरूं । हेराजा बिपश्चित ! इसप्रकार विचारकर वह उठा और उनके पास फिरनेलगा । पवित्रचेष्टा अंगीकार करके उसने व्याधका धर्म त्यागकिया और जिसप्रकार वह चेष्टाकरे तैसेही वह भी अधिक चेष्टाकरे । निदान सहस्र वर्षपर्यंत बड़ातपकिया परन्तु मनमें कामना यही रक्खी कि,मेरा शरीर बड़ाहो और दिन दिन बहुत भोजन बढ़े; मैं अविद्यक संसारका अंतलेऊं कि, कहांतक चलाजाताहै क्योंकि, जब अविद्याका अंतआवेगा तब आगे आत्माका दर्शनहोगा । सहस्रवर्षके उपरांतजब समाधिसे उतरा तो गुरूके निकट जाकर प्रणामकिया और बोला,हेभगवन् ! मैंने इतने काल तप कियाहै परन्तु शांति मुझको न हुई । मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! तुझको जो मैंने उपदेश कियाथा उसका तूने भलीप्रकार अभ्यास न किया इसकारण तुझको शांतिन हुई । हे बधिक ! मैंनेतेरेहृदयमें ज्ञानरूपी अग्निकी चिनगारी डालीथी परन्तु तूनेअभ्यास रूपी पवनसेउसे प्रज्वलित न किया इससे यह ढंपगई—जैसे बड़े काष्ठ के नीचे रंचक चिनगारीढंपजातीहै । हे बधिक ! तू न मूर्खहै और न पण्डित है क्योंकि; जोतू पण्डित होता तो आत्मपदमें स्थिति पाता । यदि यह नष्ट नहोगी तो अभ्यासकी दृढ़ताहोगी तब वह ज्ञान और शांति उदयहोगी । अब जो तेरी भविष्यत् होगी वह मैं तुझसे कहता हूँ । हे व्याध ! यहीतूने भली प्रकार विचारा है कि, संसार अविद्यक है और इसका अन्तलेऊं कि, कहांतक चलाजाताहै । अब तेरे चित्तमें यही निश्चय है और

आगेतू यहीकरेगा कि, सौ युगपर्यंत उग्रतपकरेगा तब तुझपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होगे और देवताओंसहित तेरेगृहमेंआकर तुझसेकहेंगे कि, कुछवरमांग। तबतूकहेगा,हेदेव! ऐसा अविद्यकजगत् है; अविद्या किसीओर अणुमें है। जैसे दर्पणमें किसी ठौर मलीनताहोतीहै और उसकेनाशहुये दर्पण शुद्धहोताहै; तैसेही आत्माके किसी कोणमें अविद्यारूपी मलीनता है; उसके नाशहुये चिदात्माका साक्षात्कारहोगा इसलिये जब अविद्यारूपीजगत्का अंतदेखूंगा तबमुझको आत्माभासेगा। मेराशरीरघड़ी घड़ीमें योजनपर्यंत बढ़ताजावे। जैसे गरुड़कावेगहोताहै तैसेही मेरा शरीरबढ़ताजावे और मृत्युभी मेरे बशहो, शरीरभी अरोग्य रहे और ब्रह्माण्ड खपरकोभी मैंलांघजाऊं। जहां मेरीइच्छाहो वहां चलाजाऊं और मुझको कोई न रोके; जब मैं संसार का अन्तदेखूंगा तब आत्माको प्राप्तहोऊंगा। हे देव! इतनेवरदो कि, मेरा मनोरथ पूर्ण हो;और कुछ नहीं चाहिये। हे बधिक! जब इसप्रकार तू बरमांगेगा तब ब्रह्माजी कहेंगे कि, ऐसेहीहो। तब तेरा तपसे दुर्बलहुआ शरीर फिर चन्द्रमा और सूर्यकी नाईं प्रकाशवान्होगा और घड़ीघड़ीमें योजनपर्यंत बढ़ताजावेगा। जैसे गरुड़का तीक्ष्ण वेगसे चलना है; तैसेही तेरा शरीर वेगसे बढ़ताजावेगा और जैसेप्रातःकालका सूर्य्यउदय होताहै और प्रकाश बढ़ता जाताहै, तैसेही तेरा शरीर बढ़ता जावेगा और चन्द्रमा, सूर्य और अग्निकी नाईं प्रकाशवान् होगा। ब्रह्माजी बर देकर अन्तर्द्धान होजावेंगे और अपनी ब्रह्मपुरीमें प्राप्तहोंगे और तेराशरीर प्रलयकाल के समुद्रकी नाईं बढ़ताजावेगा। जैसेवायुसे सूखेतृण उड़तेहैं, तैसेही तुझको ब्रह्मांड उड़ते भासेंगे तब तेराशरीर बढ़ता २ ब्रह्मांडखपरकोभी लांघजावेगा और उसके परे आकाशभासेगा, फिर ब्रह्मांडभासेगा और आगे फिर ब्रह्मांडभासेगा; इसीप्रकार तू कईब्रह्मांड लांघता जावेगा परन्तु तुझको खेदकुछ न होगा। निदान महाआकाशकोभी तू ढांप लेगा और जहांकिसी तत्त्वकाआवरणआवेगा उसको तू बरप्राप्त देहसे सूक्ष्मतासहित लांघताजावेगा। हे बधिक! इसीप्रकार तू कईसृष्टि लांघजावेगा जो इन्द्रजालवत्हैं। जो दीर्घदर्शी हैं वे इनको असत्य जानते हैं और जोप्राकृत जनहैं उनको जगत् सत्य भासता है। ज्ञानवान् को मिथ्याभासता है; उस मिथ्या जगत्को तू लांघता जावेगा और तहांजा स्थितहोगा जहां अनन्त सृष्टि फुरती भासेगी। जैसे समुद्रमें अनेक तरंग उठतेहैं, तैसेही तुमको सृष्टि फुरती भासेगी परन्तु जिस सृष्टि फुरती है उस अधिष्ठानका तुझको ज्ञान न होगा। वहां तू देखेगा कि, मैं बड़ाउत्कृष्ट हुआ हूँ और जब तुझको ऐसा अभिमान उदय होगा तब साथही तप का फल बैराग भी उदय होगा। और उसीकेसाथ यह संस्कार तेरे हृदय में फुरेगा कि, इससे तू उस शरीरका निरादर करेगा और कहेगा कि, हाकष्ट! हाकष्ट! हे देव! क्या शरीर तूने मुझको

दियाहै। जगत्के अन्तलेनेको जो मैंनेशरीर बढ़ायाथा सोतो अन्तकहींनआया क्योंकि; अविद्या नष्ट न हुई। अविद्या तब नष्ट होतीहै जब ज्ञान होता है और आत्मज्ञान तब होताहै जब सत्शास्त्रों का विचार और सन्तोंका संगहोताहै। जबसंग और सत्शास्त्र मुझको प्राप्तहोवें तब ज्ञान उपजेगा। यह तोमुझको ऐसाशरीर प्राप्तहुआहै कि,बड़ा भार उठाये फिरताहूं और अनेक सुमेर पर्वत भी इसकेपास तृणवत्हैं। ऐसाउत्कृष्ट मेराशरीर है; इस शरीर से मैं किसकी संगतकरूं और किसप्रकार शास्त्र का श्रवण करूं? यह शरीर मुझको दुःखदाई है इससे इसशरीरका त्यागकरूं। हेबधिक! ऐसे विचारकर तू प्राणायाम करेगा और उसकी धारणा से शरीर त्यागदेगा। जैसे पक्षी फलको खाकर गुठली को त्यागदेता है और जैसे इन्द्रकेबज्रसे खंडितहुये पर्वतगिरते हैं तैसेही एकसृष्टि क्रममें तेराशरीरगिरेगाऔरउसके नीचे कईपर्वत,नदियां और जीव चूर्णहोंगे और वहां बड़ाखेदहोगा;तब सबदेवता चण्डिकाका आराधनकरेंगे और वह चण्डिका भगवती तेरे शरीरको भोजन करजावेगी तबसृष्टिमें फिर कल्याणहोवेगा। इस बनमें जो तमाल वृक्षहैं उनकेनीचे तू तपकरेगा। यहमैंने तेरी भविष्यकही;अब जैसी तेरी इच्छाहो तैसेकर। व्याधबोला, हे भगवन्! बड़ा कष्टहै कि, मैं इतने खेद को प्राप्तहोऊंगा; इससे कोई ऐसा उपायकरो जिससे यह भावना निवृत्त होजावे। मुनीश्वरबोले, हे बधिक! जो कुछ बस्तुहोनीहै सो अन्यथाकदाचित् नहीं होती—जो कुछ शरीरकी प्रारब्धहै सो अवश्य होतीहै। जैसे चिल्लेसे छूटा बान तबतक चला जाताहै जबतक उसमें वेगहोताहै और जब वेग पूर्णहोजाताहै तब पृथ्वीपर गिरपड़ताहै अन्यथा नहीं गिरता; तैसेही जैसा प्रारब्धकावेग उछलताहै तैसेही होगा। जो भावी फिरनेकी शक्तिहोती है उसमें जीव उपासी बायांचरण दाहने और दाहना बायेंनहीं करसक्ता—जो होनाहै वहीहोगा। ज्योतिष शास्त्रवाले जो भविष्यत्दशा आगे कहतेहैं तैसेही होताहै क्योंकि; होनी होतीहै—जो न हो तो क्याकहों इससे भावीमिटतीनहीं। हे बधिक! मैंने तुझको दोमार्ग कहेहैं। जबतक कर्मकी कल्पना स्पर्श करतीहै तबतक कर्मके बंधन ते नहीं छूटता और जो कर्मकी कल्पना आत्माको स्पर्श न करे तो कोई कर्म नहीं बंधनकरता क्योंकि; उसकी अद्वैत आत्माका अनुभव होताहै और द्वैतरूप कर्म नहीं दिखाई देते सर्व सुखदुःख आत्मरूप होजातेहैं। कर्म तबतक बन्धन करतेहैं जब तक आत्मबोध नहीं हुआ; जब आत्मबोध होताहै तब सर्वकर्म दग्धहोजाते हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभविष्यत्कथावर्णनंनाम
द्विशताधिकएकचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः २४१॥

व्याधबोला, हे भगवन्! यह जो तुमने मुझकोकहा सो मैं सुनके आश्चर्य्य को

प्राप्तहुआ। शरीर गिरनेके उपरान्त मेरी क्या अवस्थाहोगी जब विस्ताररूप वासना शरीर आकाशरूपहोगा। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जब तेराशरीर गिरेगा तब तेरी संवित् प्राणवासना सहित आकाशरूप महासूक्ष्म अणुवत् होजावेगी और उस संवित्में तुझको फिर नाना प्रकारका जगत् भासेगा और पृथ्वी, देश, काल, पदार्थ सबभासि आवेंगे। जैसे सूक्ष्म संवित्में स्वप्नका जगत् भासि आताहै, तैसेही तुझको जगत् भासि आवेगा। वहां तेरी संवित्में यह फुरेगा कि, मैं अष्टवर्षका राजाहूं और मेरे पिताकानाम इन्द्रहै और माताका नाम प्रद्युम्नकी पुत्री बधलेखाहै; मेरेपिता मुझको राज्य देकर बनकोगये हैं और तपकरनेलगे हैं और चारों ओर समुद्रपर्यंत हमारा राज्यहै। हे बधिक! वहां तेरानाम सिद्धहोगा और कईसौ वर्ष पर्यंत तू राज्यकरेगा और नाना प्रकारके विषयोंको भोगेगा। हे बधिक! विदूरथ नाम एक राजा पृथ्वीमें होगा जो तेरे साथ शत्रुभाव करेगा और तेरी पृथ्वी और सीमा लेने का यत्न करेगा तब तू मनमें बिचार करेगा कि; मैं बड़ा सिद्धहूं और कईसौ वर्षमैंने निर्विघ्न भोग भोगे हैं परन्तु एक विदूरथनाम शत्रुको नाशकरूं। हे बधिक! उसके मारनेके निमित्त तू सेनालेके चढ़ेगा और वह चारोंप्रकारकीसेना नाशको प्राप्तहोगी अर्थात् हाथी,घोड़े,रथ और प्यादा दोनों ओरकी सेना नष्टहोगी और तुमरथसे उतर कर परस्पर युद्ध करोगे। तुम्हारे भी बहुत शस्त्र लगेंगे और शरीर काटाजावेगा तौभी तुम उसके सन्मुख जा युद्धकरोगे और उसकी टांग काटकर कुहाड़ेसे उसको मारके फिर अपनेगृहमें आवोगे। सबदिक्पाल तुमसे भयपावेंगे और तुमबड़ेतेजवान्होगे। बड़ाआश्चर्यहै कि, विदूरथको जीतकर तुम यमपुरी पठावोगे तब तुमकहोगे कि, हे मंत्रियो! इसमें क्या आश्चर्य है! मेरे भयसे तो दिक्पालभी काँपते हैं और प्रलयकालके समुद्र और मेघवत् मेरीसेना है जिसका किसी ओरसे आदि और अन्त नहीं आता। विदूरथके जीतने में मुझको क्या आश्चर्य है? तब मंत्री कहेगा; हे राजन्! इतनी सेना तेरेसाथहै तो क्याहुआ उस विदूरथकीस्त्री लीलाको तुम नहीं जानते; उसने तपकरके एकदेवीको वशकियाहै जिसके क्रोध करनेसे संपूर्ण विश्वनाशहो जाताहै। वह माता सरस्वती ज्ञानशक्ति और सर्वभूतोंके हृदयमें स्थितहै; जैसा उसमें कोई अभ्यास करताहै वही सरस्वती सिद्धकरती है। हेराजन्! वह राजा और उसकीस्त्री लीला सरस्वतीसे मोक्ष मांगतेथे कि; किसी प्रकार हमसंसार बन्धनसे मुक्तहों; इस कारण वे मोक्ष हुये और तुम्हारी जय हुई। राजाने पूछा; हे अंग! जो सरस्वती मेरेहृदयमें स्थितहै तो मुझको मुक्त क्योंनहीं करती? मैंभी तो सदा सरस्वतीकी उपासना करताहूं? मंत्री बोला; हे राजन्! सरस्वती जो चित्तसंवित्है उसमें जैसा निश्चय होताहै उसीकी सिद्धता होतीहै। हे राजन्! तुम सदा

अपनी जयही मांगतेथे इससे तुम्हारी जयहुई और वहमुक्ति मांगताथा इससेउसकी मुक्तिहुई । उसका पिछला संस्कार उज्ज्वलथा इससे मुक्तहुआ और तुम्हारा पिछले जन्मका संस्कार तामसी था इसकारण तुमको इच्छा न हुई और शान्तिभी प्राप्त न हुई । आदि परमात्मसत्तासे सबपदार्थ प्रकटहुये हैं । केवलआत्मसत्ता जो निष्किञ्चन पदहै सो सदा अपने स्वभावमें स्थितहै उसीमें चैतन्यता संवेदन फुरतीहै । 'अहं अस्मि' अर्थात् 'मैं हूं' इसभावनाकानाम चित्तहै: इसी चैतन्यताने देह,इन्द्रियां,प्राण, मन,बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्पाहै । उसकल्पना से विश्व चित्तमें स्थित है और चित्तने आत्मासे फुरकर प्रमादसे देहादिकको कल्पाहै । राजाने पूछा, हे साधु ! आत्मा तो निष्किञ्चन और केवल निर्विकारपदहै उसमें तामसीदेह कहांसेउपजी ? मंत्री बोले, हे राजन् ! जैसे स्वप्नेमें प्रमादसे तामसी वपु दृष्टआताहै परन्तुहै नहीं; तैसेही यह आकारभी दृष्टआतेहैं परन्तु हैं नहीं अज्ञानसे भासते हैं । इससे तुझको प्रमाद हुआ है तब वासनाके अनुसार जन्म पाता फिराहै; इसप्रकार तेरे बहुतजन्म बीतेहैं परन्तु पिछला शरीर जो तूने भोगाहै वह तामस तामसी था इसकारण तुझ-को मोक्षकी इच्छा न हुई । हे राजन् ! तुम्हारे जो जन्म बीतेहैं उनको मैंजानताहूं पर तुमनहीं जानते । राजाने पूछा, हे निर्मल आत्मा ! तामस तामसी किसको कहते हैं ? मंत्री बोले, हे राजन् ! एक सात्विक सात्विकी है; दूसरा केवल सात्विकी है; तीसरा राजस राजसी है; एकतामस तामसी है और एककेवल तामसी है सो भिन्न भिन्न सुनो । हे राजन् ! निर्विकल्प अचैत चिन्मात्र सत्तासे जोसंवित् फुरीहै और जिसकी अहंप्रतीति अधिष्ठानमें रहीहै निश्चयको नहीं प्राप्तहुये और अनात्म भावको भी स्पर्श नहीं किया ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं वे सात्विक सात्विकी हैं । जिनको बिभूति सा-त्विकी पदार्थ भासनेलगे हैं और स्वरूपका प्रमाद है बुद्धि से स्पर्श हुआ अथवा न हुआ वे केवल सात्विकी हैं । जिनकी संवित्का बुद्धि से सम्बन्धहुआहै और नानाप्र-कारके राजसी पदार्थों में सत्यप्रतीति हुई है;जिन्हें राजसकर्मोंमें दृढ़ अभ्यास है और उसके अनुसार शरीर को धारतेचलेगये पर स्वरूप की ओर नहीं आये और चिर पर्यन्त ऐसेहीरहे वे राजसराजसी हैं । जिनको बोधमें अहंप्रतीति हुई है पर स्वरूप का प्रमाद है और जगत् सत्यभासता है एवम् राजसी पदार्थों में अधिक प्रतीति है और राजसी कर्मोंका अभ्यास है उसके अनुसार वे जन्मपाते हैं और फिर शीघ्रही स्वरूप की ओर आते हैं उनकानामकेवल राजसी है, वे राजसराजसी से श्रेष्ठ हैं । जिनको स्वरूपकाप्रमादहै और जगत्में सत्यप्रतीतिहुई है एवम् उसजगत्के तामस कर्मोंमें दृढ़अभ्यास हुआ है वे महामूढ़ उसमें चिरपर्यन्त जन्मपाते चलेजाते हैं और यदि दैवसंयोगसे कभी मोक्षकी संगतिप्राप्त भी होतीहै तो उसे त्यागजाते हैं वे तामस

तामसी हैं। जिनको स्वरूपका प्रमादहुआहै और तामसी कर्मोंकी रुचिहै वे उनकर्मोंके अनुसारजन्म पातेजाते हैं और जो हटपड़ा और तामसीकर्मोंकोत्यागकर मोक्षपरायण होतेहैं सो केवलतामसीहैं पर वे तामस तामसीसे श्रेष्ठहैं।हेराजन्! तुमतामस तामसी थे इसकारण सरस्वती से तुम अपनी जयही मांगते रहे और मोक्षका अभ्यासतुमने नहीं किया। राजा बोला,हे निर्मलचित्त मंत्री! मैंतामस तामसी था इस कारण मोक्ष इच्छा न की परन्तु अब मुझसे तुम वही उपाय कहो जिससे मेरा अहंभाव निवृत्तहो और आत्मपदकी प्राप्ति हो। मंत्री बोला, हे राजन्! निश्चय करके जानो जो कोई कैसेही पदार्थ की इच्छाकरे अभ्यास से वह पदार्थ अवश्य प्राप्तहोताहै और जिसकी भावना करके वह अभ्यास करता है वह पदार्थ निस्सन्देह प्राप्त होता है; जिसका जो दृढ़ अभ्यास करता है वह वहीरूप होजाता है। ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जो अभ्यासके बशसे न पाइये। जो प्रथम दिनमें कोई विकर्म किसीसे हुआहो और अगले दिन शुभकर्म करे तो वह विकर्म लोप होजाता है और शुभकर्मही मुख्य हो-जाता है। जब तुम आत्मपदका अभ्यास करोगे तब तुमको आत्मपद प्राप्त होगा और तुम्हारा जो तामस तामसी भाव है सो निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! जो पुरुष किसी पदार्थ के पानेकी इच्छा करता है और हटकर नहीं फिरता तो वह अवश्य उ-सको पाता है देह इन्द्रियों का अभ्यास मनुष्य को दृढ़ होरहा है उससे फिर फिरदेह इन्द्रियांहीं पाता है, जब उनसे उलटकर आत्माका अभ्यास करे तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और देह इन्द्रियों का वियोग होजावेगा। इसलिये आपभी सदा आ-त्मपद का अभ्यासकरें तो उससे आत्मपद प्राप्त होगा। इतना कह फिर मुनीश्वर बोले कि, हे बधिक! इस प्रकार तू सिद्धराजा होगा और मंत्री तुझको उपदेशकरेगा तब तू राज्य को त्यागकर बनमें जावेगा और उपदेश करनेवाला मंत्री दूसरे मंत्रियों और सेना संयुक्त तुझसे कहेंगे कि, तू राज्यकर परन्तु तेराचित्त बिरक्तहोगा और तू राज्य अंगीकार न करेगा। उस बनमें किसी संतके स्थान मे जाकर तू स्थित होगा और परम वैराग्य संपन्न होगा तब उनकी कथा और प्रसंग तुझको स्पर्श करेंगी। यदि संतोंसे कुछ न मांगिये तोभी वे अमृतरूपी बचनोंकी बर्षा करते हैं—जैसे पुष्पों से बे मांगे सुगन्ध प्राप्त होती है तैसेही संतजनों से मांगे बिनाही अमृत प्राप्त हो-ताहै। जब मनुष्य संतों के अमृत बचन सुनता है तब उसको बिचार उत्पन्न होता है कि,'मैं कौनहूं;''यहजगत् क्या है' और 'जगत् किससे उपजाहै'। निदान तू उनकाउ-पदेश पाकर इस प्रकार जानेगा कि, मैं अचेत चिन्मात्र स्वरूपहूं और जगत् मेरा आभास है। चित्तकाफुरनाही जगत् का कारण है सो चित्तही मेरेमें नहींहै तो जगत् कैसेहो? जगत् तो मेरेमें नहीं है मैं अपनेही आपमें स्थितहूं। हे बधिक! इसप्रकार

जब तू सर्व अर्थोंसे मन को शून्य करके अपने स्वरूपमें स्थित होगा तब परमानन्द निर्वाण पदको प्राप्त होगा ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसिद्धनिर्वाणवर्णनंनाम
द्विशताधिकद्वाचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४२ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! इसप्रकार तेरीभावी है सो सब मैंने तुझसे कही आगे जो भला जानताहो सो कर । अग्निबोले, हे राजा विपश्चित ! इसप्रकार जब मुनीश्वर ने बधिक से कहा तब वह आश्चर्यमान हुआ और वहांसे उठकर मुनीश्वरसहित स्नान को गया । निदान दोनों तप करने और शास्त्रको बिचारने लगे तबकुछ कालके उपरांत मुनीश्वर निर्वाण होगया और केवल बधिकही तप करने को समर्थ हुआ कि, किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्ट हो । हे राजा विपश्चित ! सौयुगपर्यंत जब बधिक ने तप किया तब ब्रह्माजी देवताओं को साथलेकर आये और बोले कि, कुछ बरमांग; तब उस बधिक ने कहा कि, मेरा शरीर बड़ा हो और मैं अविद्या को देखूं । हे राजन् ! यद्यपि बधिक ने जाना कि, इसबर के मांगेसे मेराभला नहींहै परन्तु दृढ़ भावना के बलसे जानकरभी यही बरमांगा कि, घड़ी घड़ी में मेरा शरीर योजन पर्यन्त बढ़े । ब्रह्माजी ने कहा कि, ऐसेही होगा । इसप्रकार कहकर जब ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये तब उसका शरीर बढ़नेलगा और एक घड़ी में एकयोजन बढ़ते२कल्पपर्यंत बढ़तागया और कई ब्रह्मांडों पर्यंत चलागया पर जिस ओर को वह देखे उसओर अविद्या रूपी अनन्त सृष्टियां उसे दीखें । निदान जब वह चलते २ थका तब उसने बिचारा कि, अविद्याका तो अन्त नहीं आता इसशरीर को मैं कहांतक उठाये फिरूं अबइसका त्यागकरूं तबआत्मपदको प्राप्तहोऊंगा । हेराजा विपश्चित ! तब उसने प्राणको ऊर्ध्व खैंचकर शरीर को त्यागदिया वही शरीर यहां आनपड़ा है । जिस ब्रह्मांड से यह गिरा है वह हमारे स्वप्नेकी सृष्टि है अर्थात् यह अन्य सृष्टिका था इसकी इस सृष्टि में स्वप्नवत् प्रतिभा आनपड़ी थी और यहां जाग्रत् सृष्टि में आनपड़ा है और पृथ्वी, पहाड़आदि सब नाशकर डाले हैं जहां से यह गिराहै वहां आकाशमें तरुवरेकी नाईं भासता था और यहां इसप्रकार गिरा है जैसे इन्द्रका बज्र हो । हे विपश्चितों में श्रेष्ठ ! वही बधिक का महाश्वथा । जब उसका शरीर गिरा तब भगवती ने उसका रक्त पानकिया इसलिये उसकानाम रक्ताभगवती हुआ और और जो शरीर की सामग्रीरही सो पृथ्वीहुई । जब चिरकाल व्यतीत हुआ तब मृत्तिका पृथ्वी होगई और उसपृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा । ब्रह्माजी ने जो नवीन सृष्टिरची है उस पृथ्वी पर अबकल्याण हुआ है इससे अब जहां तेरी इच्छा हो वहां जा और मैं भी अब जाताहूं । इन्द्रको सुत्रायज्ञकरनाहै और उसने मेराआवाहनकियाहै वहां

में जाताहूं। भासबोले, हे राजा दशरथ! इसप्रकार मुझसे कहकर अग्नि देवता अन्तर्द्धान होगये। जैसे महाश्याम मेघसे दामिनी चमत्कार करके अन्तर्द्धान होजाती है तैसेही अग्नि जब अन्तर्द्धान होगया तब मैं वहांसे चला और एक सृष्टि में गयातो वहां और प्रकार के शास्त्र और औरही प्रकार के प्राणीथे। फिर आगे और सृष्टि में गया वहां ऐसे प्राणीदेखे कि, जिनकी टांगें काष्ठ की और आचार मनुष्यका था। आगे और सृष्टि में गया तो उसमें लोगों के शरीर तो पाषाण के थे पर दौड़ते और व्यवहार करते थे। उसके उपरांत और सृष्टि में गया तो वहां शास्त्ररूपी उनकी मूर्त्ति थी। उसके आगे गया तो वहां क्या देखा कि, प्राणी बैठेही रहते हैं और बलसे बार्त्ताकरते हैं परन्तु न कुछ खाते हैं और न पीते हैं। हे राजा दशरथ! इस प्रकार जब मैं चिरकाल पर्य्यन्त फिरता रहा परन्तु अविद्या का अन्त कहीं न आया तब मैंने विचार किया कि, आत्मज्ञानी होरहूं तब अन्तआवेगा और किसी प्रकार अन्त न आवेगा। इस प्रकार विचारकरके मैं एक बनमें गया और ज्ञानकी सिद्धिके लिये तपकरनेलगा। जब कुछकाल तपकिया तब चित्तमें यह उपजी कि, किसीप्रकार संतों के निकट जाऊं तो उनकी संगति से मुझको शांतिपद प्राप्तहोगा। हे राजन्! ऐसे बिचारकर मैं वहांसे चला और कल्पवृक्ष के वनमें आया तो वहां एकपुरुष मुझको मिला और उसने कहा, हे साधो! तू कहांचला है; मेरेनिकट तो आ? तब मैंने उस सेपूँछा कि,तू कौनहै? तब उसनेकहा कि,मैं तेरातपहूँ जो तूने किया है। अब तू कुछ बरमांग सो मैं तुझको देदूं। तब मैंने कहा कि, हे साधो! मेरी इच्छा यही है कि, मैं आत्मपदको प्राप्तहोऊं। उसने कहा,हे साधो! अब तुझे एक जन्म और मृगका पाना है। जब वह तेरा शरीर अग्निमें जलेगा तब तू मनुष्य शरीर पावेगा और ज्ञानवानों की सभामें जावेगा। उस सभामें जब तू मनुष्य शरीर धरेगा तब तुझे सब जन्मों और क्रियाओंकी स्मृतिहो आवेगी और स्वरूपकी प्राप्ति होगी इसलिये तू अब मृगशरीर धारणकर। हे राजा दशरथ! इस प्रकार जब उसने कहा तब मैंने चिन्तनाकी कि, मृग होऊं और मुझे स्वप्नरूप प्रतिभा फुरी कि, मैं मृगहोगया। तुम्हारी सृष्टिमें एकपहाड़ की कन्दरामें मैं बिचरताथा कि, उसका राजा शिकार खेलनेचला और उसने मुझको देख मेरे पीछे घोड़ा उड़ाया। आगे २ मैं दौड़ता जाताथा और पीछे घोड़ाथा पर उस का वेग ऐसा तीक्ष्णथा कि,उसने मुझको पकड़ लिया और अपने गृहमें लेआया। तीनि दिन उसने मुझे गृहमें रक्खा परन्तु मेरी बहुत सुन्दर चेष्टा देखी इस कारण प्रसन्नतासे यहां लेआया। हेराजा दशरथ! अब मैंने मृगके शरीरको त्यागकर मनुष्य काशरीर पायाहै और जो कुछ तुमनेपूंछाथा सो सब तुमसेकहा। वाल्मीकिजी बोले, हे अंग! जब इस प्रकार विपश्चित कहचुका तब रामजीने विपश्चितसे प्रश्नकिया कि,

हे विपश्चित ! वह मृग तो और सृष्टिकाथा यहां क्योंकर आया ? भास बोले, हेराम जी ! जहां वह मिलाथा वहभी और सृष्टिका था। एक कालमें दुर्बासा ऋषीश्वर आकाश मार्गमें ध्यान लगाये बैठाथा कि,उसी मार्गसे इन्द्र पृथ्वीमें यज्ञके निमित्त चला और दुर्बासाको शव जानकर चरण लगाया । तब दुर्बासाने समाधिसे उतरकर इन्द्र की ओर देखा और शापदिया कि, हे शक्र ! तूने मुझे जानकर भी गर्वकरके चरण लगाया इसलिये तेरे यज्ञका एक शव मृतक नाशकरेगा और जिस स्थानपर वह पड़ेगा सो पृथ्वीभी नाशहोगी । जब ऐसे उस ऋषिने शापदिया और इन्द्र यज्ञ करनेलगा तब और सृष्टिसे वह शव आनपड़ा और पृथ्वी चूर्णहोगई। वह तो उस प्रकार गिरा और मैं तपरूपी मुनीश्वरके वरसे मृगहोकर तुम्हारी सभामें आया । हे रामजी ! जो असत्य होता तो प्रकट न होता और जो सत्यहोता तो स्वप्नरूप न होता--जो स्वप्ने की सृष्टिका था। हे रामजी ! तुम हमारी स्वप्नेकी सृष्टिमेंहो और हम तुम्हारी सृष्टि के स्वप्नेमें हैं । जैसे स्वप्न पदार्थोंका होना हुआ है तैसेही शवका होना भी हुआ है और मृगका भी हुआहै। जैसे यह सृष्टिहै तैसेही वह सृष्टि भी है; जो यह सृष्टि सत्य है तो वह भी सत्यहै परन्तु वास्तवमें न यह सत्यहै और न वह सत्य है; यहभी भ्रममात्र है और वहभी भ्रममात्र है । सत्य वस्तु वहीहै जो मनसहित षट्इंद्रियोंसे अगम है और वह आत्मसत्ता है जिससे यह सर्वहै और जिसमें सर्वहै। ऐसी जो परमात्मसत्ता है सो परमसत्ताहै और उसमें सब कुछ बनताहै । हे रामजी ! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पका मिलना क्या आश्चर्य है ? जैसे छाया और धूप एक नहीं होते और सत्य और झूठ; और ज्ञान--अज्ञान इकट्ठे नहींहोते परन्तु आत्मामें इकट्ठेहोतेदीखते हैं। हे रामजी ! जब मनुष्य शयनकरताहै तब अनुभवरूप होता है; फिर स्वप्ने में स्वप्नेका नगर भासिआताहै; छायाधूपभी भासिआती है और ज्ञान--अज्ञान,सच--झूठभी भासते हैं । जैसे आकाशमें विरुद्ध पदार्थ भासिआते हैं, तैसेही संकल्प से संकल्प मिल जाताहै इसमें क्या आश्चर्य है ? सब जगत् आकाशवत् शून्य निराकार निर्बिकार है; निराकारमें आकार और निर्विकारमें विकार भासते हैं यही आश्चर्य है ! सर्व आकार दृष्ट आते हैं सो वही निराकार रूपहैं;ब्रह्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है। जगत् को असत्य कहना भी नहीं बनता; जो असत्य होता तो प्रलय होकर पृथ्वी,अप, तेज और वायुसे आकाश फिर प्रकट न होता पर प्रलय होकर जो फिर उत्पन्न होतेहैं इस से असत्य नहीं। चैतनरूप आत्माकाही स्वभाव है; आत्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है । हे रामजी ! जब प्रलय होती है तब सब भूतपदार्थ नष्ट होजाते हैं और फिर उत्पन्न होतेहैं इसीसे यह सृष्टि आत्माका आभासमात्र है । ब्रह्मसत्तामें अनन्त जगत् फुरतेहैं पर अपनी २ सृष्टिही को जीव जानते हैं । सब जीव ब्रह्मरूपी समुद्रके

कणके हैं सो एक सृष्टिको दूसरा नहीं जानता। जैसे सिद्धोंकी सृष्टि अपने अपने अ-नुभवमें फुरती है और जैसे स्वप्नेकी सृष्टि भिन्न भिन्न होती है, तैसेही यह अपनी २ सृष्टि पृथक्है और मिलभी जाती है। आत्मामें सबकुछ बनता है जोकि; अनादि और आदि; विधि और निषेध और विकार और निर्विकार इकट्ठे नहीं होते सो आकाश में आत्मसत्ता और स्वप्नेमें इकट्ठे दृष्ट आतेहैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं; आत्मसत्ताही इसप्रकारहो भासती है। हे रामजी! चार सत्ता इस जगत्में फुरी हैं—सारधी,गोपती,समानब्रह्मसत्ता और अविद्या—उनमें से सारधी और गोपतीसत्ता तो जिज्ञासुकी भावनामें भासती है; समानसत्ता ज्ञानी को भासती है और अविद्या अज्ञानीको भासती है। ये चारोंभी ब्रह्मसे भिन्न नहीं,ब्रह्महीके नामहैं। ब्रह्मसत्ता स्वभाव चैतनतासे ऐसेही भासती है। जैसे बायुफुरने से चलती भासती है और ठहरने से अचल भासती है तैसेही चैतनता फुरने से नानाप्रकार के कौतुक उठते हैं और फुरने से रहित निर्विकल्प होजाता है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, उसमें सत्य नहीं और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं कि, असत्य नहीं—सब समान हैं। जैसे आकाश के फूल हैं, तैसेही घट, पटादिक हैं और जैसे इनके उत्थानका अनुभव होताहै, तैसेही उनका अनुभव होता है। सब पदार्थ सत्ताही से सत्य भासते हैं। सर्व शब्द अर्थ जो फुरेहैं सो सब मिटजाते हैं इससे असत्यहै और आत्मसत्ता ज्योंकीत्योंहै कदाचित् अन्यथानहींहोता।जो मरके न जन्मे तो आनन्दहै क्योंकि,मुक्तहुआ और जो मरके जन्म लेताहै वह भी अविनाशी हुआ इसलिये शोककरना व्यर्थहै। हे रामजी! जगत्के आदिमें भी ब्रह्मसत्ताथी और अन्तमेंभी वही रहेगी;जो आदि और अन्त में वहीहै तो मध्यमें भी उसेही जानिये। इससे सब जगत् आत्मरूप है और सर्वश-ब्द अर्थ संयुक्त है और सर्व शब्द और अर्थाकार का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ताहीहै। जि-सको यथार्थ अनुभव होताहै उसको ऐसे भासताहै और जिसको यथार्थका अनुभव नहीं होता उसको नानाप्रकार का जगत् भासता है पर आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं सब आकाशरूप है और ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। ब्रह्म से भिन्न जो कुछभासताहै सो भ्रममात्र और नाशरूपहै। सब दृश्यपदार्थ नाशरूपहैं जिसने उन्हें सत्य जाना है उनसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जो दूसरा कुछ बनानहीं तो मैं क्या कहूं? जिसमें यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं उस अधिष्ठान को देखे तो सब वही रूप भासेंगे। जो पुरुष स्वभावमें स्थितहै उसको यह बचन शोभावान् होते हैं। मैंने अनन्त सृष्टियां देखी हैं और उनके भिन्न भिन्न आचार भी देखे हैं। दशों दिशाओं में मैं फिराहूं और बहुत भोगभोगे हैं; बड़ी बड़ी विभूति पाई और देखी और अनेक प्रकारकी चेष्टाकीहै परन्तु मुझको स्वप्नाप्राप्तहुआ क्योंकि; सब भोग पदार्थ औरकर्म

अविद्याके रचेहुयेहैं। उसी अविद्याके अन्तलेनेको मैं अनेक युगपर्यंत फिरा पर अन्त कहीं न पाया। वशिष्ठजीकी कृपासे अब मुझको स्वरूपका साक्षात्कार हुआ; अविद्या नष्टहुई और मैं परमानन्दको प्राप्तहुआहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितदेशांतरभ्रमवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४३॥

वाल्मीकिजीबोले,हेसाधो! जब इसप्रकार विपश्चितनेकहा तबसायंकालहुआ और सूर्य अन्तर्द्धान होगये—मानों विपश्चित के वृत्तांत देखनेको अन्यसृष्टि में गये—और नौबतनगारे बाजनेलगे—मानों राजा दशरथकी जयजय करतेहैं। उससमय राजादशरथने धन, जवाहिर और वस्त्राभूषण से राजाविपश्चित का यथायोग्य पूजन किया; दशरथसे आदिलेकर सब राजाओं ने वशिष्ठजीको प्रणाम किया और परस्पर प्रणाम करके सर्वसभा ने अपने अपने स्थानों को जा स्नान करके यथाक्रम भोजन किया और नियमकरके विचार सहित रात्रिब्यतीतकी और जब सूर्यकी किरणें उदयहुईं तो फिर अपने अपने स्थानोंपर परस्पर नमस्कार करके आबैठे तब वशिष्ठजी पूर्वके प्रसंगको लेकर बोले; हे रामजी! यह अविद्या अविद्यमानहै और है नहीं पर भासती है यही आश्चर्य है। जो बस्तु सदा विद्यमानहै सो नहीं भासती और जो अविद्या हैही नहीं सो सदा भासती है इसीसे इसका नाम अविद्याहै। हे रामजी! आत्मसत्ता अनुभवरूपहै; उसका अनुभवहोना निश्चय होरहाहै और अविद्यकजगत् जो कभी कुछ हुआ नहीं सो स्पष्टहोकर भासताहै—यही अविद्याहै। हे रामजी! सिद्धराजा के मंत्री का उपदेश भी तुमने सुना और विपश्चितका वृत्तांत भी विपश्चितके मुखसेही सुना; अब इस विपश्चितकी अविद्या हमारे आशीर्वाद और यथार्थ वचनों से नष्टहोतीहै। अब यह जीवन्मुक्त होकर बिचरेगा। मेरे उपदेशसे इसकी अविद्या अब नष्टहोती है और अब जीवन्मुक्त होकर जहां जहां इसकी इच्छाहो बिचरे। जब जीव आत्माकी ओर आताहै तब अविद्या नष्ट होजाती है। आत्मतत्त्वको यथार्थ न जाननेहीका नाम अविद्याहै जो आत्मज्ञानसे नष्ट होजाती है। जैसे अंधकार तबतक रहता है जबतक सूर्य उदय नहीं हुआ पर जब सूर्य उदयहोताहै तब अन्धकार नष्टहोजाता है; तैसेही अविद्या तबतक अनन्तहै जबतक आत्माकी ओर नहीं आया पर जब आत्माकासाक्षात्कार होताहै तब अविद्याका अत्यन्त अभाव होजाता है। अविद्या अविद्यमान है पर असम्यक् दर्शीको सत्य भासती है। जैसे मृगतृष्णाका जल अविद्यमान है और विचार कियेसे उसका अभाव होजाताहै, तैसेही भली प्रकार विचार कियेसे अविद्या का अभाव होजाताहै। हे रामजी! अविद्यारूपी बिषकी बेलि देखने मात्र फूलसहित सुन्दर भासती है परन्तु स्पर्श कियेसे कांटे चुभतेहैं और फल भक्षण कियेसे कष्टहोता

है। यह सब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन्द्रियोंके विषय देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं यही फूलफलहैं पर जब इनका स्पर्श होताहै तब तृष्णारूपी कंटक चुभतेहैं और इन्द्रियोंके भोगनेसे राग,द्वेष और कष्ट प्राप्त होताहै। हे रामजी! अविद्या भीतरसे शून्य है और बाहरसे बड़े अर्थ संयुक्त भासती है। जैसे आकाशमें इन्द्र धनुष नानाप्रकार के रंगसहित दृष्टि आताहै परन्तु अन्तरसे शून्यहै–अनहोताही भासताहै;तैसेही अविद्या अनहोतीही भासती है; और जैसे इन्द्र धनुष जलरूप मेघके आश्रय रहता है, तैसेही यह अविद्या जड़मूर्खोंके आश्रय रहती है। अविद्यारूपी धूर जिसको स्पर्श करती है उसको आवरण करलेती है; जब तक अर्थ नहीं जाना तब तक भासती है और विचार कियेसे कुछ नहीं निकलता। जैसे सीपीमें रूपा भासताहै पर विचार किये से उसका अभाव होजाताहै, तैसेही विचार कियेसे अविद्याका भी अभाव होजाता है। विचार कियेसेही अविद्या नष्ट होजातीहै और वह चंचलहै और भासती है। हे रामजी! अविद्यारूपी नदीमें तृष्णारूपी जलहै; इन्द्रियोंके अर्थरूपी भँवरहैं और रागरूपी तेंदुये हैं; जो पुरुष इस नदीके प्रवाहमें पड़ताहै उसको बड़े कष्ट प्राप्त होते हैं। जो तृष्णारूपी प्रवाहमें बहते हैं उनको अविद्यारूपी नदीका अन्त नहीं आता और जो किनारेके सन्मुख होकर वैराग्य और अभ्यासरूपी नावपर चढ़के पार हुये हैं उनको कोई कष्ट नहीं होता। जो पदार्थ अविद्यारूपहैं उनमें जो भावना करतेहैं वे मूर्ख हैं। यह सब अविद्याका विलासहै। एक ऐसी सृष्टिहै जिसमें सैकड़ोंचन्द्रमा और सहस्रों सूर्य उदय होतेहैं; कई ऐसी सृष्टियां हैं जिनमें जीव सदा समताभावको लिये विचरते हैं और सदाआनन्दी रहतेहैं; कई ऐसी सृष्टिहैं कि; जिनमें अन्धकार कभीनहीं होता; कई ऐसीसृष्टि हैं जहां प्रकाश और तम जीवोंके आधीनहै कि; जितना प्रकाश चाहें उतनाही करें और कई ऐसी सृष्टिहैं जहां जीव न मरतेहैं और न बूढ़े होते हैं सदाएक रसरहतेहैं और प्रलयकालमें सब इकट्ठेही मरतेहैं। कहीं ऐसी सृष्टिहै जहां स्त्री कोई नहीं कहीं और पहाड़कीनाईं जीवोंके शरीरहैं। हे रामजी! इनसेलेकर अनन्तब्रह्मांड फुरतेहैं सो सबअविद्याका विलासहै। जैसे संमुद्रमें वायुसे तरंगफुरते हैं,वायुबिनानहीं फुरते;तैसेही परमात्मरूपीसमुद्रमें जगत्‌रूपीतरंग अविद्यारूपीवायुकेसंयोगसे उठतेहैं औ मिटभीजातेहैं। हे रामजी! बड़ेबड़े मणि,मोती,सुवर्ण और धातुमय स्थान;भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य चारों प्रकारके तृप्तिकर्त्ता पदार्थ; घृतरूप स्थान; ऊखके रसके समुद्र;माखन, दही और दूधके समुद्र; अमृतके तालाव; बड़े बड़े कल्प और तमाल वृक्षसे आदिलेकर सुन्दर स्थान और सुन्दर अप्सरा और बड़े दिव्यवस्त्रों से आदि लेकर जो पदार्थ हैं वे सब संकल्परूप और अविद्याके रचेहुये हैं; जो इनकी तृष्णा करतेहैं वे मूर्ख हैं और उनके जीनेको धिक्कारहै। हे रामजी! यह अविद्याका विलास

है विचार कियेसे कुछ नहीं निकलता। जैसे मरुस्थलमें अनहोती नदी भासती है और विचार कियेसे उसका अभाव होजाताहै, तैसेही आत्मविचार कियेसे अविद्या के विलास जगत् का अभाव होजाताहै। जिसको आत्माका प्रमादहै उसको देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक इष्ट–अनिष्ट अनेक प्रकारके पदार्थ भासतेहैं और कारण कार्य भावसे जगत् भी स्पष्टभासता है पर जिसको आत्माका अनुभव हुआहै उस को सर्वआत्माही भासताहै। हे रामजी ! एक सदृष्ट सृष्टिहै और दूसरी अदृष्टसृष्टि है। यह जो प्रत्यक्ष भासती है सोसदृष्ट सृष्टिहै और जो दृष्टि नहीं आती वह अदृष्ट सृष्टिहै पर दोनों तुल्यहैं। जैसे सिद्धलोग आकाशमें जो सृष्टि रचलेतेहैं सो संकल्प मात्रहोती है। उनकीसृष्टि परस्पर अदृष्टहै और अनेक प्रकारकी रचनाहै। उनकी सुवर्णकी पृथ्वीहै और रत्न और मणियोंसे जड़ीहुईहै; अनेक प्रकारके विषयहैं और अमृतकुंडभरे हुयेहैं, उनके आधीन तम और प्रकाशहैं और अनेक प्रकारकी रचना बनी हुईहै सोसब संकल्पमात्र है। इसीप्रकार यह जगत् संकल्प मात्रहै जैसा जैसा संकल्प होताहै तैसीही तैसी सृष्टि आत्मामेंहो भासती है। हे रामजी ! आत्मारूपी डब्बेमें सृष्टिरूपी अनेकरत्नहैं; जिसपुरुषको आत्मदृष्टिहुईहै उसको सर्वसृष्टि आत्म रूपहै और जिसको आत्मदृष्टि नहीं हुई उसको सर्व जगत् भिन्न२ भासताहै। जैसा संकल्प दृढ़होता है तैसाही पदार्थ होभासता है। जो कुछ जगत् भासताहै सो सब संकल्प मात्रहै; जो तुमको ऐसा तीव्र संवेगहो कि, आकाशमें नगरस्थितहो तो वही भासनेलगे। हे रामजी ! जिस ओर मनुष्य दृढ़निश्चय करताहै वही सिद्धहोता है। जो आत्माकी ओर एकत्र होताहै तो वही सिद्धहोताहै और जो दोनों ओर होताहै तो भटकताहै। जो जगत्की सत्यताको छोड़कर आत्मपरायण होरहे तो तीव्रभावनासे मोक्ष प्राप्त होतीहै और जो संसारकी ओर भावना होतीहै तो संसारकी प्राप्ति होतीहै निदान जैसा अभ्यास करताहै वही सिद्धहोताहै। आदि सृष्टिके कारणमें दूसरी वस्तुकुछ नहीं वहीरूपहै फिर जैसी जैसी भावना होतीहै उसके अनुसार जगत् भासताहै। जिसकी भावना धर्मकी ओर होतीहै और सकाम होताहै उसको स्वर्गादिक सुख भासतेहैं और जिसकी भावना अधर्ममें होतीहै उसको नरकादिक दुःखपदार्थ भासते हैं। शुभकर्मोंसे शान्तिकी इच्छा नहीं भासती। शुभभी दोप्रकार केहैं–एकको स्वर्गसुख भासतेहैं और दूसरेको सिद्धकी भावनासे सिद्धलोक भासते हैं। जिसको अशुभ भावना होतीहै उसको नानाप्रकारके नरक भासतेहैं। हे रामजी ! जब यह संवित् अनात्ममें आत्म अभिमान करती है और उनके कर्मों में आपको जानती है यह पापकरके ऐसे अनेक दुःखोंको प्राप्तहोतीहै जो कहे नहीं जाते–जैसे पहाड़ोंमें पीसनेसे बड़ा कष्टहोताहै अथवा अंगारोंकी वर्षा और अंधे कूपमें गिरने

से कष्ट होताहै। स्त्रीके भोगनेसे अंगारोंके साथ स्पर्श करना होता है और अग्नितप्त लोहेको कंठलगना पड़ताहै। जिसस्त्रीने परपुरुषको भोगाहै वह अंधेकूपरूप उखली में खड्गरूपी मूसलसे कुटतीहै और जो देहाभिमानी देवतों,पितरों और अतिथिके दियेविना भोजन करताहै उसको भी यमकेदूत बड़ा कष्टदेतेहैं और खड्ग और बरछीसे उसके मांसको काटते और प्रहार करतेहैं और वे परलोकमें क्षुधा और तृष्णा से कष्टवान् होतेहैं। जिन नेत्रोंसे व्यभिचारियोंने परस्त्री देखीहै उनपर छुरीका प्रहार होताहै। एक वृक्षहै जिसके पत्रखड्गके प्रहारकी नाईं लगतेहैं और सूलीके ऊपर चढ़नेसे आदिलेकर उनको कष्टहोतेहैं। जो शुभकर्म करतेहैं वे स्वर्ग भोगतेहैं। इस से जैसे जैसे कर्मकरतेहैं उनके अनुसार जगत् देखतेहैं और जिसजिस भावकी चिन्तना करते शरीर त्यागतेहैं वह उनको प्राप्तहोते हैं। केवल वासनामात्र संसार है जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासताहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४४॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने मुनीश्वर और वधिकका वृत्तान्त कहा है सो बड़ा आश्चर्यरूप है। यह वृत्तान्त स्वाभाविक हुआ है अथवा किसी कारण कार्यसे हुआहै? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! जैसे समुद्रसे तरंग उठतेहैं,तैसेही ब्रह्ममें यह प्रतिमा स्वाभाविक उठतीहै और जैसे पवनमें फुरनास्वाभाविक होताहै, तैसेही आत्माका चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होतीहै सो वहीरूप है, उससे भिन्न नहीं। चिन्मात्रमें जो चेतनाफुरी है वह जैसी फुरीहै तैसेही स्थितहै; जबतक इससे भिन्न और फुरना नहीं होता तबतक वहीरहताहै। जिसप्रतिमासे कार्यकारण भासताहै—जैसे शुद्धचिदाकाशमें स्वप्नेकी सृष्टि भासतीहै—उसमें साररूपवहीहै। वहीचित्तचमत्कारसे फुरताहै—जैसे समुद्रमें तरंगफुरतेहैं सो समुद्ररूप हैं उससे भिन्नकुछ वस्तु नहीं तैसेही सर्व शब्दअर्थ जगत् जोभासताहै वही चिन्मात्रहै भिन्नकुछवस्तुनहीं। जिनको ऐसा यथार्थ अनुभवहुआहै उनको जगत् स्वप्नपुर और संकल्पनगरवत् भासताहै और पृथ्वीआदिकपदार्थ पिण्डाकार नहींभासते सबब्रह्मरूपहो भासताहै। हे रामजी! जोवस्तु व्यभिचारी और नाशवन्तहै वहअविद्यारूपहै और जोअव्यभिचारी और अविनाशीहै वहब्रह्मसत्ताहै। वहब्रह्मसत्ता ज्ञान संवित्रूप है और अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागती। वह अनुभवसे सर्वदाकाल प्रकाशती है उसमें अविद्याकैसेहो? जैसेसमुद्रमें धूरकाअभावहै,तैसेही आत्मामें अविद्याकाअभावहै जो सर्व आकार दृष्टिआतेहैं सो सब चिदाकाशरूपहैं—जैसे तुम अपने मनमें संकल्प धारकर इन्द्रहोबैठो और चेष्टाभी इन्द्रकीसीकरनेलगो अथवा ध्यानमेंइन्द्ररचो और ध्यानसे

प्रतिमा सिद्धहोआवै तो जबतक वहसंकल्परहे तबतकवही भासताहै और जबइन्द्रका संकल्प क्षीणहोजाता है तब इन्द्रभावकी चेष्टाभी निवृत्त होजाती है सो संकल्पसे वही चिन्मात्र इंद्ररूपहोभासताहै; तैसेहीं यह सर्व जगत् जो भासताहै सो सब चिन्मात्ररूप है पर संवेदनद्वारा पिंडाकारहो भासताहै और जबसंवेदन फुरना निवृत्तहोताहै तब सबजगत् आत्मरूप भासताहै। ब्रह्मसत्ता तो सदा अपनेआपमें स्थितहै पर जैसा फुरनाहोता है तैसाहो भासताहै—सब जगत् उसीका चमत्कारहै। जैसे समुद्रमें तरंगसमुद्ररूपहोते हैं, तैसेही निराकार परमात्मा में जगत् भी आकाशरूपहै, भिन्न कुछनहीं सर्व ब्रह्मस्वरूप है। इसका नाम परमबोधहै। जब इस बोधकी दृढ़ता होतीहै तब मोक्ष होताहै। जिस को सम्यक् बोध होताहै उसको सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप और अपना आप भासता है और जिसको सम्यक्बोध नहींहुआ उसको नानाप्रकारका द्वैतरूप जगत्भासताहै। हे रामजी! जिसकी बुद्धि शास्त्रोंसे तीक्ष्णहुई है और वैराग्य अभ्याससे संपन्न और निर्मलहै उसको आत्मपद प्राप्त होताहै और जिसकी बुद्धि शास्त्रके अर्थसे निर्मल नहीं भई उसको अज्ञानसहित जगत् भासताहै। जैसे किसीपुरुषके नेत्रमें दूषणहोताहै तो उसको आकाशमें दो चन्द्रमा भासतेहैं और भ्रमसे तारे भासतेहैं, तैसेही अज्ञानसे जगत् भासताहै यह सर्व जाग्रत् जगत् स्वप्नामात्रहै। जब जीव स्वप्नमें होताहै तब स्वप्नाभी जाग्रत्भासताहै और जाग्रत् स्वप्नाहोजाताहै और जाग्रत्में स्वप्ना स्वप्न होजाताहै और जाग्रत् सत्य भासती है। अल्पकालका नाम स्वप्नाहै और दीर्घकाल का नाम जाग्रत्है पर आत्मामें दोनोंके तुल्यभावहोतेहैं। जैसे दोभाई जोड़े जन्मते हैं सो नाममात्र दो हैं वास्तवमें एक रूप हैं; तैसेही जाग्रत् स्वप्न तुल्यही हैं। जब पुरुष शरीर को त्यागताहै तब परलोक जाग्रत् होजाता है और यह जगत् स्वप्नवत् होजाता है। जैसे स्वप्ने से जाग स्वप्ने के पदार्थों को भ्रममात्र जानताहै और जाग्रत् को सत्जानता है, तैसेही जब जीव परलोककोजाता है तब इसजगत् को स्वप्न भ्रममात्र जानता है और कहता है कि; स्वप्नसा मैंने देखाथा और वह परलोक सत्यहो भासता है। फिर वहां से गिरकर इसलोक में आपड़ता है तब इसलोक को सत्यजानता है और जाग्रत् मानता है और उसपरलोक को स्वप्न भ्रममानता है। हे रामजी! जबतक शरीर से सम्बन्ध है तबतक अनेकबार जाग्रत् देखता है और अनन्तही स्वप्ने देखता है। हे रामजी! जैसे मृत्युपर्यन्त अनेक स्वप्ने आते हैं, तैसेही मोक्षपर्यन्त अनेक जाग्रत्रूप जगत् भासते हैं और भ्रमांतर में इनकी सत्यता और जाग्रत्में स्वप्नेकेपदार्थ स्मरणकरताहै। जैसे सिद्ध प्रबुद्धहोकर अपनेजन्म को स्मरण करता है और कहता है कि, सब भ्रममात्र थे, तैसेही यह जब जागेगा तब कहेगा कि, सबभ्रममात्र प्रतिमा मुझको भासीथी, न कोई बन्धहै और न कोईमुक्त

है क्योंकि,दृश्य अविद्यकबन्ध मोक्ष ऐसाहै कि, जब चित्तकी वृत्ति निर्विकल्पहोती है तब मोक्ष भासता है और जबतक वासना विकल्प सत्य है तबतक बन्धभासता है। हे रामजी! आत्मामें बन्धमोक्ष दोनों नहीं क्योंकि, बन्धहो तो मोक्षभीहो पर बन्धही नहीं तो मोक्षकैसे हो? बन्ध और मोक्षदोनों चित्त संवेदनमें भासते हैं इससे चित्तको निर्वाणकरो तब सब कल्पना मिटजावेगी। जितने पदार्थों के प्रतिपादन करनेवाले शब्द हैं उनको त्यागकर निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है उसमें स्थित हो रहो और खाना,पीना,बोलना,चलना आदिसबक्रिया करो परन्तु हृदयसे परमपदकेपाने का यत्नकरो। हे रामजी! प्रथम नेति नेति करके सर्व शब्दों का अभावकरो;फिरअ-भावका भी अभाव करो तब उसके पीछे जो शेषरहेगा वह आत्मसत्ता परमनिर्वाण-रूपहै उसीमें स्थितहोरहो। जो कुछ अपना आचार कर्म है उसे यथाशास्त्र करकेहृदय से सर्व कल्पना का त्यागकरो—इसप्रकार आत्मसत्ता में स्थित होरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणोपदेशोनाम
द्विशताधिकपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४५॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! सर्वपदार्थ जो भासतेहैंवे सब चिदाकाशआत्मरूपहैं। ज्ञानवान् को सदा वेही भासतेहैं—आत्मासे भिन्न कुछनहीं भासता। रूप,दृश्य, अव-लोक, इन्द्रियां और मनस्कार फुरने का नाम संसारहै सो यह भी आत्मरूपहै—आ-त्मसत्ताही इसप्रकारहो भासती है। जैसे अपनीही संवित् स्वप्ने में रूप, अवलोक और मनस्कारहोभासती है। आत्मासे भिन्नकुछनहीं परन्तु अज्ञानसे भिन्न भिन्न भा-सते हैं। जो जागा है उसको अपनाआप भासताहै। जैसे अपनी चैतन्यताही स्वप्न-पुर होकर भासती है; तैसेही जगत्के पूर्व जो चैतन्यसत्ताथी वही जगत्रूपहोकर भा-सती है। जगत् आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं वही स्वरूप है। जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है इससे तरंगरूप हो भासता है, तैसेही आत्माका स्वभाव चैतन्यहै। वही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत् आकार हो भासती है इसप्रकार जानकर जो प-रमशान्ति निर्वाणपद है उसमें स्थित हो रहो। हे रामजी! जगत् कुछ है नहीं और प्रत्यक्ष भासता है; असत्यही सत्यहोकर भासता है। यही आश्चर्य है कि, निष्किंचन और किंचनकी नाईं होकर भासता है। आत्मसत्ता सदा अद्वैत और निर्विकार है परन्तु अज्ञानदृष्टि से नानाप्रकार के विकारभासते हैं। जब सर्व विकारों को निषेध करके असत्रूप जानिये तब सर्व के अभावहुये आत्मसत्ता शेषरहती है। जैसे शू-न्यस्थान में अनहोता बैताल भासिआता है, तैसेही अज्ञानी को अनहोता जगत् आत्मामें भासिआता है। जो पुरुष स्वभाव में स्थितहुये हैं उनको जगत् भी अद्वैत-रूप आत्माभासता है। जब सत्शास्त्रों और सन्तों की संगतिहोतीहै और उनकेता-

तपर्य्य अर्थमें दृढ़ अभ्यास होताहै तब स्वभावसत्तामें स्थितिहोती है । जिनपदार्थोंके पानेकेनिमित्त मनुष्ययत्नकरताहै वे मायिकपदार्थ बिजुलीके चमत्कारवत् उदयभीहोते हैं और नष्टभी होते हैं । ये पदार्थ विचारबिना सुन्दरभासते हैं और इनकीइच्छा मूर्ख करते हैं क्योंकि; उनको जगत् सत्यभासताहै । ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थोंकी तृष्णा नहीं होती क्योंकि; वह जगत्को मृगतृष्णाकी नाईं असत्यजानताहै और ब्रह्मभावना में दृढ़ है । अज्ञानी को जगत् की भावनाहै इससे ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता पर अज्ञानीके निश्चयको ज्ञानीजानताहै । जैसे सोयेहुयेपुरुषको निद्रादोषसे स्वप्न आता है और उसमें जगत् भासताहै पर जाग्रत् पुरुष जो उसके निकट बैठा है उसको वह स्वप्नेका जगत् नहीं भासता।वह असत्है इसलिये उसके निश्चयको स्वप्न वाला नहीं जानता और स्वप्नेवालेके निश्चयको वह जाग्रत्वाला नहीं जानता; तैसेही ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता । मृत्तिकाकी सेनाको बालक सेनाकरि मानता है पर जो जाननेवाले बड़े पुरुषहैं उनको वह सब सेना मृत्तिकारूप भासती है और जब वह बालकभी भलीप्रकार जानताहै तब उसको भी सेना और बैतालका अभावहोजाता है मृत्तिकाही भासती है;तैसेही ज्ञानवान्को सबजगत् ब्रह्मरूपही भासताहै । हे रामजी! जब पुरुषको आत्माका अनुभव होताहै तब जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं रहती । जैसे स्वप्नेमें किसीको मणि प्राप्तहोतीहै तो वह प्रीति करके उसको रखताहै पर जब जागता है तब उसे भ्रमजानकर उसकी इच्छा नहीं करता;तैसेही जब जीव आत्मपदमें जागेगा तब जगत्के पदार्थोंकी इच्छा न करैगा । जैसे जो कोई मरुस्थलकी नदीको असत्य जानताहै वह उसमें जलपानके निमित्त यत्ननहीं करता तैसेही जो जगत्को असत् जानता है वह उसके पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता।जिसशरीरके निमित्त मनुष्य यत्नकरताहै वह शरीर भी क्षणभंगुरहै।जैसे पत्रपर जलकी बूंद स्थित होतीहै सो क्षणभंगुर और असार है और पवन लगने से क्षणमें गिरजाती है;तैसेही यह शरीरभी नाशवंतहै । जैसे धूप से तपाहुआ मृग मरुस्थलकी नदीको सत्यजानकर जलपान करनेकेनिमित्त दौड़ताहै और मूर्खताके कारण कष्टपाता है परंतु तृप्त नहीं होता; तैसेही मूर्खमनुष्य बिषय पदार्थोंको सत्यजानकर उनके निमित्त यत्नकरके कष्टपाता है और कदाचित् तृप्त नहीं होता । हे रामजी ! पुरुष अपना आपही मित्रहै और अपना आपही शत्रुहै । जब सत्यमार्गमें विचरताहै और अपना उद्धार करताहै तब पुरुष प्रयत्नसे अपना आपही मित्रहोता है और जो सत्यमार्गमें नहीं बिचरता और पुरुष प्रयत्न करके अपना उद्धार नहीं करता तो वह जन्ममरण संसारमें आपको डालताहै और वह अपना आपही शत्रु है। जो अपने आपको यत्न करके उद्धार करताहै वह अपने ऊपर दयाकरता है । हे रामजी ! जो इन्द्रियोंके विषयरूपी कीचड़में गिराहुआ है और अपने ऊपर अपने

निकालने की दयानहीं करता वह महाअज्ञान तमको प्राप्तहोता है और जो पुरुष इन्द्रियोंको जीतके आत्मपदमें स्थित नहीं होता उसको शांतिभी नहींहोती। जबबालक अवस्था होतीहै तब शून्यबुद्धि होतीहै; वृद्धअवस्थामें अंगक्षीण होजाते हैं और यौवन अवस्थामें इन्द्रियोंको नहीं जीतसक्ता तो कबहोगा? जो तिर्यक् आदिकयोनिहैं वे मृतकवत्हैं। यत्नकासमय यौवनअवस्थाहै क्योंकि; बालअवस्था तो जड़गुंगरूपहै और वृद्धअवस्था महानिर्बलसीहै उसमें अपने अंगही उठाने कठिनहोजातेहैं तो विचारको क्या सामर्थ्य होगा—वह तो बालकवत् है। इससे कुछ यत्न यौवन अवस्थामेंही होताहै जो इस अवस्थामें लंपट रहा वह महाअनिष्ट नरकको प्राप्त होगा। हे रामजी! विषयोंमें प्रसन्न न होना। यह शरीर नाशरूपहै तो विषय कौन भोगे। श्रुतिकरकेभी जानताहै और अनुभवकरकेभी जानताहै कि,यहशरीर नाशरूप है पर उसी शरीरमें सत्यभावना करके जो विषयोंके सेवनेका यत्न करताहै उसके सिवा दूसरा मूर्ख कहीं नहीं; वही मूर्खहै। इससे जो इन्द्रियोंको जीतेगा वह जन्म जन्मांतर को न प्राप्त होगा। हे रामजी! तुम जागो और आपको अविनाशी और अच्युत परमानन्दरूप जानो। यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप उदय हुआहै--इसको त्यागदो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यानाशोपदेशोनाम द्विशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४६॥

श्रीरामजी बोले, हे भगवन्! तुम सत्य कहतेहो कि, इन्द्रियों के जीते बिना शांति नहीं होती; इससे इन्द्रियोंके जीतनेका उपाय कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष को बड़े भोग प्राप्त हुये हैं और उसने इन्द्रियों को जीता नहीं तो वह शोभा नहीं पाता। जो त्रिलोकी का राज्य प्राप्त हो और इन्द्रियां न जीतीं तो उसकीउपमा भी कुछ नहीं। जो बड़ा शूरवीर है पर उसने इन्द्रियों को नहीं जीता उसकी शोभा भी कुछ नहीं और जिसकी बड़ी आयुर्बल है पर उसने इन्द्रियां नहीं जीतीं तो उसका जीना भी व्यर्थ है। जिस प्रकार इन्द्रियां जीती जाती हैं और आत्मपद प्राप्त होताहै सोप्रकार सुनो। हे रामजी! इसपुरुषका स्वरूप अचिन्त्य चिन्मात्रहै; उसमें जो संवित् फुरी है उस ज्ञान संवित्को अन्तःकरण और दृश्य जगत्से सम्बन्ध हुआहै—उसीका नाम जीवहै। जहांसे चित्त फुरताहै वहांहीं चित्तको स्थितकरो तब इन्द्रियोंका अभाव होजावेगा। इन्द्रियोंका नायक मन है; जब मनरूपी मतवाले हाथी को वैराग्य और अभ्यासरूपी जंजीर से बश करो तब तुम्हारी जय होगी और इन्द्रियां रोकीजावेंगी। जैसे राजा के बश कियेसे सब सेना भी बश होजाती है; तैसेही मनको स्थित किये से सब इन्द्रियां बश होजावेंगी। हे रामजी! जब इन्द्रियों को वश करोगे तब शुद्ध आत्मसत्ता तुमको भासिआवेगी। जैसे वर्षाकालके अभावसे शरत्कालमें शुद्धनिर्मल

आकाशभासताहै और कुहिरे और वादलका अभाव होजाताहै,तैसेही जब मनरूपी वर्षाकाल और वासनारूपी कुहिरे का अभाव होजावेगा तब पीछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ताही भासेगी । हे रामजी ! ये सर्व पदार्थ जो जगत्में दृष्टिआते हैं वे सबअसत्यरूपहैं—जैसे मरुस्थलकी नदी असत्यरूपहोती है—इनमें तृष्णा करना अज्ञानता है । जो पदार्थ प्रत्यक्ष प्राप्तहों उनको त्यागकर आत्माकी ओर वृत्तिआवै तव जानिये कि, मुझको इन्द्रकापद प्राप्तहुआ है । विषयोंमें आसक्तहोनाही वड़ी कृपणता है । इनमें उपराम होनाही वड़ी उदारता है; इससे मनको वशाकरो कि; तुम्हारी जय हो । जैसे ज्येष्ठआषाढ़में पृथ्वी तप्तहोतीहै और जो चरणोंमें जूता चढ़ातेहैं तवतप्त नहीं होती तैसेही अपना मन वशाकियेसे जगत् आत्मरूप होजाताहै । हे रामजी ! जिसप्रकार जनेन्द्रने मनको वशाकियाथा तैसेही तुमभी मनको वशाकरो । जिसजिस ओर मनजावे उसउस ओर से रोको; जव दृश्यजगत्की ओर से मनको रोकोगे तव वृत्तिसंवित् ज्ञानकी ओर आवेगी और जवसंवित् ज्ञानकीओर आई तव तुमको परम उदारता प्राप्तहोगी और शुद्ध आत्मसत्ता का अनुभव होगा । तीर्थ, दान और तप करके संवित्का अनुभव होना कठिन है परन्तु मनके स्थित करनेसे सुगमही अनुभवकी प्राप्ति होतीहै ।मनस्थित करनेका उपाय यहीहै कि; सन्तोंकी संगतिकरना और रात्रिदिन सत्शास्त्रोंका विचारना । सर्वदाकाल यही उपाय करनेसे शीघ्रही मन स्थितहोताहै और जवमनस्थित होताहै तवआत्मपदका अनुभव होताहै । जिस को आत्मपद प्राप्तहुआहै वह संसारसमुद्रमें नहींडूवता । चित्तरूपी समुद्रमें तृष्णारूपी जल है और कामनारूपी लहरें हैं । जिसपुरुषने शम और संतोष से इन्द्रियां जीती हैं वह चित्तरूप समुद्रमें गोते न खावेगा और जिसने इंद्रियोंको जीतकर आत्मपद पायाहै उसको नानात्वजगत् फिरनहीं भासता । जैसे मरुस्थलकी निराकार नदी में लहरें भासतीहैं पर जव निकटजाकर भलीप्रकार देखिये तो वह लहरें संयुक्त वहतीदृष्टिनहीं आतीं; तैसेही यह जगत् आत्माका आभासहै और जव भलीप्रकार विचारके देखिये तव नानात्व दृष्टिनहीं आता आत्मसत्ताही किंचनकरके जगत्रूपहो भासती है । जैसे जल अपने द्रव स्वभावसे तरंगरूपहो भासता है,तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यतासे जगत्रूपहो भासतीहै । हे रामजी ! जव आत्मवोधहोताहै तव फिर दृश्यभ्रमनहीं भासता । जैसे साकाररूप नदीकाभाव निवृत्त होताहै तो फिरवहती है और जो निराकार नदीका सद्भाव निवृत्तहोताहै तव फिर नदीका सद्भाव होताहै । निराकार मृगतृष्णाकी नदी जव ज्योंकी त्योंजानो तव फिर सत्ताहोती है । हे रामजी ! वास्तवमें न कर्म हैं;न इन्द्रियां हैं; न कर्त्ता और न कुछ उपजाहै । जैसेस्वप्नेमें नानाप्रकारकीक्रिया कर्मदृष्टि आतेहैं परन्तु आकाशरूपहैं कुछ वनेनहीं, तैसेही यहभीजानो । आकाशरूप

आत्मामें आकाशरूप जगत् स्थितहै। जैसे अवयवी और अवयवमें भेदनहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में भेदनहीं और जैसे अवयव अवयवीकारूपहै, तैसेही जगत्आत्मा कारूपहै। जब आत्म में स्थितिहोगी तब अहं—त्वंआदिक शब्दोंकाअभाव होजावेगा और द्वैत अद्वैत शब्दभी न रहेंगे। द्वैत अद्वैत शब्दभी अज्ञानी बालकके समझाने केनिमित्त कहेहैं, जो दृढ़ज्ञानवान् हैं वे इन शब्दोंपर हँसीकरते हैं कि, अद्वैतमात्र में इनशब्दोंका प्रवेशकहां है। जिनको यह दशा प्राप्तहुई है उनको न बन्धहै और न मोक्षहै। हे रामजी! सुषुप्ति और तुरीयामें कुछथोड़ाही भेदहै कि; सुषुप्तिमें अज्ञान और जड़ता रहतीहै और तुरीयामें अज्ञान और जड़ता नहींरहती वह चैतन्यअनुभव सत्तारूप है और स्वप्न और जाग्रत्मेंभी भेदनहीं परन्तु इतना भेदहै कि,अल्पकालकी अवस्थाको स्वप्ना कहतेहैं और चिरकालकी अवस्थाको जाग्रत्कहतेहैं। हे रामजी! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों स्वप्न और सुषुप्तिरूप हैं। जाग्रत् और स्वप्न ये उभय स्वप्नरूप हैं; सुषुप्ति अज्ञानरूप है; जाग्रत् तुरीयारूप है और जाग्रत् कोई नहीं। जिसजागनेसे फिर भ्रमप्राप्तहो उसको जाग्रत् कैसे कहिये? उसको तो भ्रममात्रजानिये और जिसजागनेसे फिर भ्रमको न प्राप्तहो उसकानाम जाग्रत्है। जाग्रत्,स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चारोंअवस्थाओंमें चिन्मात्र घनीभूतहोरहा है वह चारोंको नहींदेखता। ज्ञानवान् जब प्राणका स्पन्द रोककर आत्माकीओर चित्त को लगातेहैं; परस्पर ज्ञानमात्रका निर्णय और चर्चाकरतेहैं और ज्ञानमात्रकीही कथा कीर्त्तन करते और उससे प्रसन्नहोते हैं ऐसे नित्यजाग्रत् पुरुष जो निरन्तर प्रीतिपूर्वक आत्माको भजतेहैं उनको आत्मविपयिणी बुद्धि उदय होती है और उससे वे शांति को प्राप्तहोतेहैं। जिनको सदा अध्यात्म अभ्यासहै और उस अभ्यासमें वे उत्तमहुयेहैं उनको आत्मपद प्राप्तहोताहै और वेही हँसाकरते हैं क्योंकि; उनको शांतिपद प्राप्त हुआहै। जो अज्ञानी हैं वे रागद्वेपसे जलते हैं और जिनको आत्माका दृढ़अभ्यास हुआहै उनको अवेदनसत्ता शांतिप्राप्त होतीहै और आत्मस्थिति प्राप्तहोती है जिसके आगे—इन्द्रका राज्यभी सूखे तृणवत् भासताहै और सर्वजगत् उसको आत्मरूपभासताहै। जो अज्ञानीहैं उनको नानाप्रकारके जगत् भासतेहैं। जैसे सोयेहुये पुरुषको स्वप्नेकी सृष्टि सत्यहोकर भासतीहै और जाग्रत्के स्मरणवालेको स्वप्नेकी सृष्टिभी अपना आपरूप और सत्यरूप भासतीहै। ज्ञानवान्को सर्व्व आत्मरूप भासता है, आत्मासे भिन्नकुछ नहींभासता। जब आत्मअभ्यासका बलहो और अनात्माके अभावको अभ्यास दृढ़हो तब जगत्का अभावहोजावे और अद्वैत सत्ताका भान हो। हे रामजी। मैंने तुमको बहुत उपदेश कियाहै; जब इसका अभ्यासहोगा तब इसका फल जो ब्रह्मबोधहै सो प्राप्तहोगा अभ्यासबिना नहीं प्राप्तहोता। जो एकतृणलोप

करना होताहै तौभी कुछयत्नकरना होताहै यह तो त्रिलोकी लोपकरनीहै। हे रामजी ! जैसे बड़ाभार जिसपरपड़ता है वह बड़ेहीबलसे उठाताहै, बिनाबड़ेबल नहीं उठता; तैसेही जीवपर दृश्यरूपी बड़ाभारपड़ा है, जब आत्मरूपी अभ्यासका बड़ाबलहो तब वह इसको निवृत्तकरे नहीं तो निवृत्त नहीं होता। यह जो मैंनेतुमको उपदेश किया है इसको बारम्बार बिचारो। मैंने तो तुमको बहुतप्रकार और बहुतबार कहाहै। हे रामजी ! अज्ञानीको ऐसेबहुत कहनेसे भी कुछनहीं होता। तुमको जो मैंने उपदेश कियाहै वह सर्वशास्त्रों और वेदोंका सिद्धान्तहै। जिसप्रकार वेदको पाठकरतेहैं उसी प्रकार इसको पाठ कीजिये और विचारिये और इसके रहस्यको हृदयमें धारिये तब आत्मपदकी प्राप्तिहोगी और और शास्त्रभी इसके अवलोकनसे सुगमहो जावेंगे। यदि नित्य इसशास्त्रको श्रद्धासहित सुने और कहे तो अज्ञानी जीवकोभी अवश्यज्ञान की प्राप्तिहोती। हे जिसने एकबार सुनाहै और कहनेलगाहै कि, एकबार तो सुना है फिर क्यासुननाहै उसकी भ्रान्तिनिवृत्त न होगी और जो बारम्बारसुने, विचारे और कहे तो उसकी भ्रान्तिनिवृत्त होजावेगी। सब शास्त्रोंसे उत्तमयुक्तिकी संहिता मैंनेकहीहै जो शीघ्रही मनमें आतीहै। जो पुरुषमेरे शास्त्रके सुनने और कहनेवालेहैं उनको बोध उदय होताहै और दूसरे शास्त्रोंका अर्थभी सुन्दरतासे खुलआताहै। जैसे लवणका अधिकारी व्यंजन पदार्थहै उसमें डालालवण स्वादी होताहै और प्रीतिसहित ग्रहण कियाजाता है; तैसेही जो इसशास्त्रके सुनने और कहनेवालेहैं वे और शास्त्रोंकाभी सुन्दर अर्थकरेंगे। हे रामजी ! किसी और पक्षको मानकर इसका सुनना त्यागना न चाहिये। जैसे किसीके पिताका खारा कुवांथा और उसके निकट एक मिष्ट जल का कुवां भी था पर वह अपने पिताका कूपमानकर खाराही जल पीताथा और निकट के मिष्ट जलके कुयेंका त्यागकरता था; तैसेही अपने पक्षको मानकर मेरे शास्त्र का त्याग न करना। जो ऐसे जानकर मेरे शास्त्रको न सुनेगा उसको ज्ञान प्राप्त न होगा। जो पुरुष इस शास्त्रमें दूषण आरोपण करेगा कि; यह सिद्धांत यथार्थ नहीं कहा उसको कदाचित् ज्ञान न प्राप्तहोगा—वह आत्महन्ताहै उसके वाक्य न सुनना। जो प्रीतिपूर्वक पूजा भावकरके सुने और विचारकर पाठकरे उसको निर्मल ज्ञानहोगा और उसकी क्रिया भी निर्मल होगी इससे यह नित्यप्रति विचारनेयोग्यहै। हे रामजी ! तुमको मैंने अपने किसी अर्थके निमित्त उपदेश नहीं किया केवल दयाकरके कियाहै और तुम जो किसीको कहना तो अर्थ बिना दया करकेही कहना॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्रिययज्ञवर्णनंनाम द्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मामें जगत् कुछ हुआ नहीं। जब शब्द चिन्मात्रमें

अहंफुरताहै तब वही संवेदन फुरना जगत्‌रूपहो भासता है और जब वह अधिष्ठान की ओर देखताहै तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप होजाता है और अपने रूपको त्याग कर अचेत चिन्मात्र होताहै। हे रामजी! फुरने और अफुरने दोनों में वही है परन्तु फुरने से जगत् भासताहै सो जगत् भी कुछ और वस्तु नहीं वही रूप है। जब संवित् संवेदन फुरनेसे रहित होती है तब अपना चिन्मात्ररूप होजाती है इसकारण ज्ञानवान् को जगत् आत्मरूप भासताहै ब्रह्मसे भिन्न नहीं भासता। जैसे किसी पुरुषका मन और ठौरगया होताहै तो उसके आगे शब्द होताहै तौभी नहीं सुनाई देता और वह कहता है कि, मैंने देखा सुना कुछ नहीं क्योंकि, जिस ओर चित्त होताहै उसीका अनुभव होता है;तैसेही जिनका मन आत्माकी ओर लगताहै उनको सब आत्माहीभासताहै—आत्मा से भिन्न जगत् कुछ नहीं भासता। जिसको आत्मसत्ताका प्रमाद है और जगत् की ओर चित्तहै उसको जगतही भासताहै। हे रामजी! ज्ञानवान्‌के निश्चयमें ब्रह्मही भासताहै और अज्ञानीके निश्चयमें जगत् भासताहै तो ज्ञानी और अज्ञानीका निश्चय एक कैसेहो? जो मनुष्य स्वप्नेमें है उसको स्वप्नेका जगत् भासता है और जाग्रत्‌को वह जगत् नहीं भासता तो उनको एकही निश्चय कैसेहो? जगत्‌के आदि और अन्त दोनोंमें ब्रह्मसत्ताहै और मध्यमें भी उसेही जानो—आत्मसत्ताही चैतन्यता से जगत्‌रूपहो भासती है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टिके आदिभी ब्रह्मसत्ता होती है, अन्त भी ब्रह्मसत्ता होती है और मध्य जो भासताहै सोभी वहीहै—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् आदि, अन्त और मध्यमें भी आत्मासे भिन्न नहीं। ज्ञानवान्‌को सदा यही निश्चयहै कि, जगत् कुछ उपजा नहीं और न उपजेगा केवल आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै और सर्व ब्रह्महीहै अहं त्वं आदिक अज्ञानसे भासताहै जैसे स्वप्ने में अहं त्वं आदि अनुभव होता है तो अहं त्वं आदिक भी कुछ नहीं सब अनुभवरूप है, तैसेही यह जगत् सर्व अनुभवरूप है। हे रामजी! जैसे एकही रस फूल,फल,टहनी और वृक्ष होकर भासता है; रससे भिन्न कुछ नहीं होता, तैसेही नानात्वरूप जगत् भासताहै परन्तु आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर अपने अपने अनुभवसे भिन्न नहीं परन्तु स्वरूपके विस्मरणसे आकाररूप भासते हैं, तैसेही यह जगत् आकार भासताहै सो ज्ञानरूपसे भिन्न नहीं। सब जगत् आत्मरूपहै परन्तु अज्ञानसे भिन्न भिन्न भासताहै। यह जगत् सब अपना आपरूपहै और जो आत्मरूपहै तो ग्राह्य ग्रहणभास कैसेहो? यह मिथ्या भ्रमहै। पृथ्वी, अप,तेज, वायु आकाश,पर्वत,घट,पट आदिक सब जगत् ब्रह्मरूप है; ज्ञानवान्‌को सदा यही निश्चय रहताहै कि, अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थितहै। ब्रह्मादिक भी कुछ फुरकर उदय नहीं हुये ज्योंकेत्यों हैं। उत्थान कुछ नहीं हुआ पर अज्ञानी के निश्चयमें नानाप्रकार

का जगत्है और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, ब्रह्मादिक संपूर्ण हैं। हे रामजी! यहकुछ उपजा नहीं कारणत्वके अभावसे सदा एकरस आत्मसत्ताही है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब जाग्रत् और स्वप्नका निर्णय सुनो। जब इस जगत्में मनुष्य सो जाताहै तब स्वप्नेकी सृष्टि देखता है; उसमें जाग्रत् होती है और जाग्रत् होकर भासती है और जब वहां सो जाताहै तब फिर यह सृष्टि देखता है तो यही जाग्रत्हो भासती है। यहां सोकर स्वप्नेमें जाग्रत् होतीहै और वहां सोकर यहां जाग्रत् होती है तो स्वप्न जाग्रत् हुआ जाग्रत्का जाग्रत् नहीं होता। जाग्रत् जो वस्तु है सो आत्मसत्ताहै, उसमें जागना वही जाग्रत्की जाग्रत्है और सब स्वप्न जाग्रत्है। जब मनुष्य यहां शयन करताहै तब स्वप्नेका जाग्रत् सत्यहोकर भासता है और यह असत्य होजाताहै और स्वप्नेमें वहां शयनकरताहै अर्थात् जब स्वप्नेसे निवृत्त होताहै और जाग्रत्में जागताहै तब वहां असत्य होजाताहै और वह स्वप्ना जाग्रत्में स्मृति को प्राप्तहोताहै। जब जाग्रत्में सोया और स्वप्नेमें जागा तब जाग्रत् स्वप्नभावको प्राप्तहुई और जब स्वप्नेसे उठकर जाग्रत्में आया तब स्वप्नरूप जाग्रत् स्मृतिभावको प्राप्त हुई और जाग्रत् जाग्रत्रूप हुई तो, हे रामजी! स्वप्ना तो कोई न हुआ। इसको सर्वठौर जाग्रत् हुई और जाग्रत् तो कोई न हुई क्योंकि; जब जाग्रत्से स्वप्नेमें गया तब स्वप्ना जाग्रत्रूप होगया और जाग्रत् स्वप्ना होगई और जब स्वप्नेसे जाग्रत्में आया तब जाग्रत् जाग्रत्रूप होगई और स्वप्ना जाग्रत् स्वप्नरूप होगई तो क्या हुआ कि; जाग्रत् कोई नहीं सबस्वप्न और असत्यरूपहै। अपने कालमें यहजाग्रत्है और स्वप्नरूपहै और जब यहांसे मृतक होताहै तब यह जगत् स्वप्नरूप होताहै और स्वप्नरूप परलोक जाग्रत् होताहै और जाग्रत् स्मृति प्रत्यक्ष होजाताहै तो उसमें वह नहीं रहता और उसमें वह नहीं रहता और जाग्रत् स्वप्न दोनों में परलोक नहीं रहता। इस जाग्रत् में देखिये तो स्वप्ना और परलोक दोनों नहीं भासते और स्वप्ने में इस जाग्रत् और परलोक दोनों का अभाव होजाता है तो यह सिद्ध हुआ कि, सब स्वप्नमात्रहै। हे रामजी! चिरकालकी प्रतीतिको जाग्रत् कहतेहैं और अल्पकालकी प्रतीति को स्वप्ना कहते हैं। जो आदिस्वप्ना हुआ और उसमें दृढ़ अभ्यास होगया उससे जाग्रत् हो भासती है; इसलिये जो आकार तुमको सत्यभासते हैं वे सब निराकार आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्ने में त्रिलोकी जगत् भ्रमउदय होता है परन्तु सब आकाशरूप होता है; तैसेही ये जगत् के पदार्थ अविद्या से साकार भासतेहैं सो सब निराकार और आकाशरूप हैं। जब अधिष्ठान आत्मतत्त्व में जागोगे

तब सबही आकाशरूप भासेंगे। अद्वैत आत्मतत्त्व में जो ग्राह्य–ग्राहकभाव भासते हैं सो मिथ्या कल्पना है, वास्तवमें कुछ नहीं। सबजगत् मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है उसमें ग्रहण और त्याग क्या कीजिये ? इन दोनों की कल्पना को दूरकरो। यहहो और यह न हो इस कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहोरहो तब सर्व शांति प्राप्त होगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकैकोनपंचाशत्तमस्सर्गः २४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे राजन्! इनअर्थोंका जो आश्रयभूत है सो मैं तुमसे कहता हूं। इस जगत् के आदि अचेत चिन्मात्र था और उसमें किसी शब्दकी प्रवृत्ति न थी–अशब्द पद था। फिर उसमें जागना फुरा और उसका आभास जगत्हुआ। उस आभास में जिसको अधिष्ठानकी अहं प्रतीति है उसको जगत् आकाशरूप भासता है और वह संसार में नहीं डूबता क्योंकि, उसको अज्ञानका अभावहै। जो डूबतानहीं वह निकलताभी नहीं; उसे अज्ञान निवृत्ति और ज्ञानकाभी अभाव है क्योंकि, वह स्वतः ज्ञानस्वरूप है। जिनको अधिष्ठान का प्रमाद हुआ है उनको दोनों अवस्था होती हैं। जो ज्ञानवान् है उसको जगत् आत्मरूप भासता है और जो ज्ञानसे रहित है उसको भिन्न भिन्न नामरूप जगत् भासता है। हे रामजी! आत्मा निराख्यात है; वह चारों आख्यातोंसे रहित निराभाससत्ताहै और चारों आख्यात उसमेंआभासहैं एकआख्यात, दूसरा विपर्ययाख्यात; तीसरा असत्याख्यात और चौथाआत्माख्यातहै। आख्यात ज्ञानको कहते हैं। जिसको यहज्ञानहै कि; 'मैं आपको नहीं जानता'; इसकानाम आख्यातहै। आपको देहइन्द्रियरूप जाननेका नाम विपर्ययाख्यातहै। जगत् असत्यजाननेकानाम असत्याख्यातहै और आत्माको आत्माजाननेका नाम आत्माख्यातहै। ये चारों आख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्वके आभास हैं। आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्रहै उसमें वाणीकी गमनहीं है। हे रामजी! जगत्भी वहीस्वरूप है और कुछ बनानहीं और घनशिलाकी नाईं अचिंत्यस्वरूप है। इसपर एक आख्यान है जो श्रवणों का भूषण है इसलिये तुमसे कहताहूं। वह द्वैतदृष्टि को नाशकरताहै और ज्ञानरूपी कमलके विकाश करनेवाला सूर्यहै और परमपावनहै सो सुनो। हे रामजी! एक बड़ीशिलाहै जिसका कोटि योजन पर्यन्त विस्तारहै; अनन्तहै किसी ओर उसकाअन्त नहीं आता और शुद्ध, निर्मल और निराबाधहै अर्थात् यह कि, अणु अणुसे पुष्टनहीं हुई अपनी सत्तासे पूर्णहै और बहुत सुन्दर है। जैसे शालिग्राम की प्रतिमा सुन्दर होतीहै, तैसेही वह सुन्दरहै और जैसे शालिग्रामपर शंख चक्र, गदा और पद्मकीरेखाहोतीहैं तैसेही उसपररेखाहैं और वहीरूपहै। वहवज्रसेभी

क्रूर, शिलाकी नाईं निर्विकाश और निराकार अचेतन परमार्थ है । यह जो कुछ चैतन्यता भासतीहै सोउसपररेखाहै और अनन्त कल्पबीतगयेहैं परन्तु उसका नाशनहीं होता । पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश; ये सबभी उसपररेखा हैं और आप पृथ्वी आदिक भूतों से रहित और शिलावत् है और इनरेखाओंकी जीवितकी नाईं चेतती है । रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! जो वह अचेतन है और शिलाकी नाईं निर्विकाश है तो उसमें चैतन्यता कहांसे आई जिससे जीवितधर्माहुई--वह तो अचैतन्य थी ? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! वहतो न चैतन्यहै और न जड़ है शिलारूपहै और पत्थर से भी उज्ज्वल है । यह चैतन्यता जो तुम कहते हो सो चैतन्यता स्वभाव से दृष्टआती है—जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत है, तैसेही चैतन्यताभी उसका स्वभाव है और जैसे जलमेंतरंग स्वाभाविकभासतेहैं,तैसेहीइससे चैतन्यता स्वाभाविक भासती है परन्तु भिन्न कुछ नहीं । वह सदाअपने आपमें स्थित है और किसी से जानीनहीं जाती--अवतक किसीने नहीं जाना । रामजी ने पूंछा, हे भगवन् । किसीने उसको देखाभी है अथवा नहीं देखा और किसीसे वह भंगभीहुईहै कि, नहीं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैंने उसशिलाको देखाहै और तुमभी जो उसशिलाके देखनेका अभ्यास करोगे तो देखोगे । वह परमशुद्धहै—उसकोमैल कदाचित् नहीं लगता । वह छिद्रों, पोलों और आदि, मध्य, अन्तसे रहित है । न उसे कोई तोड़सक्ता है और न वह तोड़ने योग्यहै, उससे कोई अन्यहो तो उसको भेदे । ये जितने पदार्थ पृथ्वी,पर्वत,वृक्ष,अप, तेज, वायु, आकाश, देवता,दानव, सूर्य और चन्द्रमाहैं वे सब उसीकी रेखा हैं और उसके भीतर स्थितहैं । वह शिलामहासूक्ष्म निराकार आकाशरूप है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो वह आदि,मध्य और अन्तसे रहितहै तो तुमने कैसेदेखी सो कहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वह और किसीसे जानी नहीं जाती अपनेआप अनुभव से जानीजातीहै । मैंनेउसे अपने स्वभावमें स्थितहोकर देखाहै । जैसे थंभेको अनथंभेमें स्थितहोकर देखे,तैसेही मैंने उसमें स्थितहोकर देखा । हमभी उसशिलाकी रेखा हैं; इससे मैंने उसमें स्थितहोकर देखाहै । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! वह कौनशिला है और उसपर रेखाकौनहै सो कहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वह परमात्मरूपी शिलाहै । मैंने शिलारूप इसलिये कहा कि, वहघन चैतन्यरूप है उससे इतरकुछनहीं और अचित्रूप है उसपर पंचतत्त्व रेखाहैं सो वे रेखाभी वहीरूपहैं । एकरेखा बड़ीहै जिसमें और रेखारहतीहैं । वह बड़ीरेखा आकाशहै जिसमें और तत्त्वरहतेहैं । सबपदार्थ आकाशमें हैं सो सब वहीरूपहैं; तुमभी वहीरूपहो और मैंभी वहीरूपहूं और कुछहुआनहीं । पृथ्वी,जल,तेज,वायु,आकाश,मन,बुद्धि,चित्त,अहंकारआदि सर्वपदार्थ और कर्म जो भासतेहैं सो सब ब्रह्मरूपी शिलाकी रेखाहैं और कुछहुआ नहीं, सर्व-

कालमें ब्रह्मसत्ताही स्थितहै। नाना प्रकारके व्यवहारभी दृष्टआते हैं परन्तु वहीरूप हैं और कुछहै नहीं तैसेही वहभी जानो। घट,पट,पहाड़,कन्दरा,स्थावर,जंगम,जगत् सब आत्मरूप है। आत्माही फुरने से ऐसे भासताहै। जैसे जलही तरंग और लहरें होकर भासताहै,तैसेही ब्रह्मसत्ताही जगत्रूपहोकर भासती है और सर्व पदार्थ पवित्र,अपवित्र;सत्य,असत्य;विद्या,अविद्या;सब आत्मसत्ताहीके नामहैं इतर वस्तु कुछ नहीं। ब्रह्मसत्ताही अपने आप में स्थित है। हे रामजी! सर्वही घन ब्रह्मरूप है और चिन्मात्र घनही सबमें व्यापरही है वह परमार्थसत्ता घन शान्तरूप है और यहभी सर्वपरमार्थ घनरूपहै इसलिये संकल्परूपी कलनाको त्यागकर उसमें स्थितहोरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकपंचाशत्तमस्सर्गः २५०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष स्वभावसत्तामें स्थित हुये हैं उनको ये चारों आख्यात कहेहैं और इनसे लेकर जितने शब्दार्थ हैं वे शशेके सींगवत् असत्य भासते हैं। जगत्का निश्चय उनमें नहीं रहता और सर्व ब्रह्मांड उनको आकाशवत् भासताहै। आख्यातकी कल्पना भी उन्हें कुछ नहीं फुरती और सर्वजगत् जो दीखता है वह निराकार परम चिदाकाशरूपहै और परमनिर्वाण सत्तासे युक्त भासताहै और उसीसे निर्वाण होजाताहै इसलिये वहीस्वरूपहै। हे रामजी! जब इसप्रकार जानकर तुम उस पदमें स्थित होगे तब बड़े शब्दको करते भी तुम निश्चयसे पाषाण शिलावत मौन रहोगे और देखोगे,खावोगे,पियोगे, सूंघोगे परन्तु अपने निश्चयमें कुछ न फुरेगा। जैसे पाषाणकी शिलामें फुरना नहीं फुरता, तैसेही तुम रहोगे–जो चरणोंसे दौड़ते जावोगे तौभी निश्चयसे चलायमान न होगे। जैसे आकाश, सुमेरु, पर्वत अचलहै; तैसेही तुम भी स्थित रहोगे और क्रिया तो सब करोगे परन्तु हृदयमें क्रिया का अभिमान तुमको कुछ न होगा केवल स्वभावसत्तामें स्थित होगे। जैसे मूढ़बालक अपनी परछाहींमें वैताल कल्पता है सो अविचार सिद्ध है और विचार कियेसे कुछ नहीं रहता, तैसेही मूर्ख अज्ञानी आत्मामें मिथ्या आकारकल्पते हैं विचार कियेसे सब आकाशरूपहै कुछ बना नहीं। जैसे मरुस्थलमें नदी तबतक भासती है जब तक विचार करके नहीं देखता और विचार कियेसे नदी नहीं रहती; तैसेही यह जगत् विचार किये से नहीं रहता। जगत् चैतन्यरूपी रत्नका चमत्कारहै;चैतन्य आत्माका किंचन फुरनेसेही जगत्रूपहो भासताहै। रामजी बोले,हे भगवन्! इस जगत्का कारण मैं स्मृति मानताहूं; वह स्मृति अनुभवसे होती है और स्मृतिसे अनुभव होता है। स्मृति और अनुभव परस्पर कारणहै, जब अनुभव होताहै तब उसको स्मृति भी होती है और वह स्मृति संस्कार फिर स्वप्नेमें जगत्रूपहो क्यों भासती है? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी!

यह जगत् किसी संस्कारसे नहीं उपजा और किसी स्मृतिका संस्कार नहीं काकतालीयवत् अकस्मात् फुरआया है। हे रामजी ! यह जगत् आभासमात्रहै; आभासका अभाव कदाचित् नहीं होता क्योंकि; उसका चमत्कारहै। इतर कुछ बनाहो तो उसका नाश भी हो पर भिन्न तो कुछ हुआही नहीं नाश कैसे हो ? यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं;आत्मसत्ता अपने स्वभावमें स्थित है और जगत् उसका आभासहै। हे रामजी ! तुम जो स्मृति कारण कहतेहो तो कारण कार्य भाव आभास वहां भासते हैं जहां द्वैतहै स्वरूपमें तो कुछ कारण कार्यभाव नहीं ? जैसे स्वप्नेके मरुस्थल में जल भासित हुआ तो उसमें जल मानागया; इसलिये तुम आगे जाकर उसको देखो तो उस जलकी स्मृति हुई अथवा स्वप्नेके व्यवहारकर्त्ताको स्वप्नांतर हुआ और उस स्वप्नांतरमें फिर व्यवहार किया ? हे रामजी ! तुम देखो कि, उसकी स्मृति भी असत्य हुई और जो उसने अनुभव किया सोभी असत्य है; तैसेही यह संसार भी है कुछ भिन्ननहीं। हे रामजी ! इसलिये न जाग्रत् है, न स्वप्नाहै;न कोई सुषुप्ति है और न तुरीयाहै केवल अद्वैतसत्ता सर्वउत्थान से रहित चिन्मात्र स्थितहै; इसलिये जगत् भी वहीरूप है और जो क्रियाभी दृष्टआती है तोभी कुछ हुआनहीं । जैसे स्वप्नेमें अंगना कंठसे आ मिलती है तो उसकी क्रिया कुछसचनहीं होती; तैसेही यह क्रिया भी सचनहीं । जाग्रत्; स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया शब्दों का अर्थ स्वभाव निश्चय ज्ञानवान् पुरुषको है और शशेकेसींग और आकाशके फलवत् असत्य भासते हैं। जैसे बन्ध्याकापुत्र और श्याम चन्द्रमा शब्द कहनेमात्र हैं और इनकाअर्थ असत्य है; तैसेही ज्ञानीके निश्चयमें पांचों अवस्थाओंका होना असंभव है । वह सर्बदाकाल में जाग्रत् है; जाग्रत् उसकानाम है जहांकुछ अनुभव हो । वह अनुभवसत्ता सदाजाग्रत्रूप है और जैसा पदार्थ आगेआता है उसीका अनुभव करता है—इससे सर्वदा सर्वकाल जाग्रत् है । अथवा सर्बदाकाल स्वप्नाहै; स्वप्ना उसकानाम है जहां पदार्थ बिपर्यय भासते हैं सो सर्व पदार्थ बिपर्ययही भासते हैं । बिपर्ययसे रहित आत्मा है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो बिपर्यय हैं इसलिये सर्वकाल में स्वप्नाही है; अथवा सर्वदाकाल सुषुप्तिही है; सुषुप्ति उसकानाम है जहां अज्ञानवृत्ति हो । मैं आपको भी नहींजानता इसलिये न जाननेसे सर्बदाकाल सुषुप्ति है, अथवा सर्बदाकाल तुरीयाहै; तुरीया उसकानाम जो साक्षीभूत सत्ताहो और जिसमें जाग्रत्, स्वप्ना और सुषुप्ति अवस्था का अनुभवहोता है । वह सर्बदाकाल सबका अनुभव करता है सो प्रत्यक् चैतन्य है इससे सर्बदाकालमें तुरीयापद है । अथवा सर्बदाकाल तुरीयातीतपद है तुरीयातीत उसको कहतेहैं कि, जो अद्वैतसत्ता है, जिसकेपास द्वैतकुछनहीं सोसर्वदा काल अद्वैतसत्ता है और उसमें जगत्का अत्यन्त अभाव है जैसे मरुस्थलमें जलका

अभाव है—इसलिये सर्बदाकालमें तुरीयातीत पद है और जो मुझसेपूँछो तोमुझको तरंग,बुद्बुदे,झाग और आवर्त्त कुछनहीं भासते—सर्बदाकाल चित्समुद्रही भासता है। उदय अस्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थि है और पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासतेहैं सोभी कुछउपजेनहीं आत्मसत्ताका किंचनइसप्रकार भासताहै। जैसे नख और केश उपजतेभी हैं और नाशभी होजातेहैं; तैसेही आत्मामें जगत् उपजता भी है और लीनभीहोजाता है। जैसे नख और केशके उपजने और काटनेसे शरीर ज्योंकात्यों रहता है; तैसेही जगत्के उपजने और लीनहोनेमें आत्मा ज्योंकात्यों रहताहै। हेरामजी ! यहजगत् उपजानहीं तोउसमेंसत्य और असत्यकल्पना और स्मृति क्याकहिये और भीतर और बाहर क्याकहिये ? अद्वैतसत्तामें कुछकल्पना नहींबनती। जो तुमक ो कि, स्मृति भीतर होतीहै परन्तु भीतरसे बाहर दृष्ट आती है तो भीतर अनुभवकी अपेक्षा से हुई है सोभी उत्पन्ननहीं हुई तोमैं भी र और बाहर याकहूँ? जैसे स्वप्ने कीसृष्टि भासिआती है सो अपनाही अनुभव होताहै और व ष्टिरूप हो भासताहै वहां तो भीतर बाहर कुछनहींहै; तैसेही यह जगत्भी भीतर बाहर कुछ नहीं है सब भ्रमरूपहै। जिसको इच्छाकहतेहैं उसेही स्मृति कहतेहैं और विद्या, अविद्या;इष्ट,अनिष्ट आदिशब्द सब आत्माके नामहैं—आत्मासे भिन्न और पदार्थ कुछ नहीं। हे रामजी ! जागकरदेखो कि, सब तुम्हाराही स्वरूपहै। मिथ्या भ्रमको अंगीकारकरके भिन्नक्यों देखते ? सर्व शब्द अर्थबिना कहीं नहीं हैं और शब्द अर्थकाविचा संकल्पसे होताहै। संकल्प तबफुरताहै जब चित्तमें अहंअभिमान होताहै। उस चित्तको आत्मासारमें लीनकरो; जब चित्तको निर्वाण करोगे तब सब जगत् शांतहो जावेगा। जैसे दर्पणमें जगत्रूपी तिबिम्ब होताहै। जगत् कुछवस्तुनहीं; जबचित्त निर्वाण होजावेगा तब द्वैत कल्पना ब मिट जावेगी। यह जो मोक्ष शास्त्र मैंनेतुमसे कहाहै इसके अर्थविचार कर और संकल्पको त्यागकर अपने परमानन्द स्वरूपमें स्थित होरहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिप्रभाववर्णनं नामद्विशताधिकैकपंचाशत्तमस्सर्गः २५१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जगत् किसीकारणसे नहीं उत्पन्नहुआ। जैसे समुद्रमें तरंग ाभाविक फुरतेहैं तैसेही संवित् सत्तासे आदिसृष्टि फुरीहै और जैसेजल स्वाभाविक द्रवतासे तरंगरूप अपनी सत्तासे बढ़ता जाताहै; तैसे ी आत्मसत्ता से जग त् विस्तार होताहै सो आत्मासे कुछ भिन्ननहीं; आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है जब चिन्मात्र आत्मसत्ता का अभ्यास बहिर्मुख फुरता है तब अन्तःकरण चतुष्टयांगहोतेहैं और उसमें जो निश्चयहोताहै उसकानाम नेतिहै। वह प्रथम अकस्मात्

से कारणबिना स्वाभाविकही फुरिआया है और आभासमात्र है जब वह दृढ़होगया तब नेति स्थितहुई और बास्तवमें द्वैत कुछबनानहीं । जो सम्यक्दर्शी पुरुषहैं उनको सब आत्माही दृष्ट आता है—जैसे पत्र, फूल, फल, टहनी सब वृक्षपरहोते हैं भिन्ननहीं होते । हे रामजी ! वृक्षसे जो फूल, फल और टहनीहोती हैं सो किसकारण बुद्धिपूर्वक नहीं होतीं ? तैसेही इसजगत् कोभी जानो । जो सम्यक्दर्शी हैं उनको भिन्न भिन्नरूप भी पत्र, टास आदिक बिस्तार एक वृक्षरूपही भासता है;तैसेही यथार्थ ज्ञानीकोसर्व आत्माही भासता है और मिथ्या दृष्टिको भिन्नभिन्न पदार्थ भासते हैं । हे रामजी ! वृक्षका देखनेवाला भी और होताहै और दृष्टांतमें दूसराकोई नहीं । चैतन्य आत्मा का आभासही चैतहै,वही चैतन्यरूपहो भासताहै । उसचैतन्य आभासको असम्यक् दृष्टिसे भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं और सम्यक्दर्शी सबको आत्मरूप देखता है । जैसे पत्र, फूल, फल और वृक्ष आपको भिन्नजाने । ज्ञानी और अज्ञानी सब आत्मरूपहै—जैसे दीवारपर पुतलियां लिखी होतीहैं सो दीवारसे भिन्न नहीं होतीं तैसेही सर्व्वगत आत्मरूपी दीवारके चित्र हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे आकाश में शून्यता; फूलोंमें सुगन्धि; जलमें द्रवता; बायुमें स्पन्द और अग्निमें उष्णताहै तैसेही ब्रह्ममें जगत् है । हे रामजी ! जगत् आत्माका आभासहै इसलिये वही रूप है । यह जगत्भी अचैत चिन्मात्रहै । जो तू कहे कि, अचैत चिन्मात्रहै तो पृथ्वी, पहाड़आदिक आकार क्योंभासते हैं ? तो हे रामजी ! जैसे नित्यप्रति जो तुमको स्वप्नाआताहै और उस अनुभव आकाशमें पृथ्वीआदिक तत्त्व भासिआतेहैं तो वही चिन्मात्रही आकार होकर भासताहै और कुछनहीं; तैसेही इसेभीजानो । यह सबजगत् जो तुमको भासता है सो अनुभवरूप है । जैसे चिन्मात्र आत्मामें सृष्टि आभासमात्र है; तैसेही कारणकार्य भावभी आभासमात्र है परन्तु वहीरूपहै—आत्मसत्ताही इसप्रकार होकर भासती है । ये पदार्थ कार्य्य—कारण अभ्यासकी दृढ़ता से उपजे भासते हैं पर आदि सृष्टि किसी कारणसे नहीं उपजी—पीछे कारणसे कार्य उत्पन्न दृष्ट आते हैं । यद्यपि कार्य—कारण दृष्ट आते हैं तौभी कुछ उपजे नहीं सदा अद्वैत रूप हैं । जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार के कार्य कारण भासिआते हैं परन्तु कुछ हुयेतो नहीं सदाअद्वैत रूपहैं; तैसेही जाग्रत् में भी जानो । पदार्थों की स्मृतिभी स्वप्नेमें होतीहै और अनुभवभी स्वप्नेमें होताहै, जो स्वप्नाही नहीं फुरा तो मृत्यु कहां है और अनुभव कहांहै ? न जगत्का अनुभव है और न जगत्है; अनुभवसत्ताही जगत्रूप हो भासती है जो जाग्रत् रूप है; जब उसका अनुभव होगा तब न स्मृति रहेगी और न जगत् रहेगा । इसलिये, हे रामजी ! जो अनुभवरूपहै उसका अनुभव करो । यह जगत् भ्रमरूप है । जो उपजा नहीं सो स्वतः सिद्ध है और जो उपजा है और जिसमें भासताहै उसको उसीकारूप जानो—

भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्नेमें पदार्थ भासते हैं सो उपजे नहीं परन्तु उपजे दृष्ट आते हैं सो अनुभवमें उपजे हैं। अनुभव स्वतःसिद्धहै उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो अनुभवरूपहैं और अनुभवरूपही इसप्रकार हो भासताहै; तैसेही ये सब अनुभवरूपहैं—भिन्न कुछ नहीं। यह सर्व जगत् आत्मरूपहै; इसलिये हे रामजी! सर्व जगत् अकारण है और आत्माका आभास है—कारणसे कुछ नहीं बना। अनन्त ब्रह्मांड ब्रह्मसत्ता में आभास फुरतेहैं और अज्ञानीको कार्य—कारण सहित भासते हैं। उसमें नेति हुई है पर जब जागकर देखोगे तब सर्व अद्वैतरूप भासेगा न कोई नेति है और न जगत्है। जब तक अज्ञान निद्रामें सोया हुआहै तबतक जो पदार्थ उस सृष्टिमें है वही भासेगा और जैसा कर्म है सो भासेगा। यह जगत्रूपी स्वप्नाहै जिसमें स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं और नरकादिक अनिष्ट पदार्थ हैं और उनके प्राप्त होनेका साधन धर्म अधर्महै। धर्म स्वर्गसुखका साधनहै और अधर्म नरकदुःखका साधनहै। जबतक अविद्यारूपी निद्रामें सोया हुआहै तबतक इनको यथार्थजानताहै पर जब जागेगा तब सबआत्मरूप होगा और इष्ट अनिष्ट कोई न रहेगा। यह सब जगत् अनुभवरूपहै और अनुभव सदा जाग्रत् ज्योति है उसीको जानो। जिन पुरुषों ने इस अनुभवको नहीं जाना वे उन्मत्त पशु हैं क्योंकि; वे आत्मबोध से शून्य हैं और सदा समीप आत्मा को नहीं जानते इससे उन्मत्त हैं क्योंकि, उन्मत्तको भी अपना आप भूलजाता है। जैसे किसीको पिशाच लगताहै तब उसको अपना स्वरूप विस्मरणहोजाताहै और पिशाचही देहमें बोलताहै;तैसेही जिसको अज्ञानरूपी भूतलगता है वह उन्मत्त होजाता है; अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानता और विपर्यय बुद्धिसे देहादिक को आत्मा जानता है और बिपर्यय शब्द करताहै। जिनको स्वरूपमें अहंप्रतीति है उनकोसर्व जगत् आत्मरूप भासताहै। हे रामजी! आदिसृष्टिकिसीकारणसे बनीहोती तो उसके पीछे प्रलयादिकमें कुछ शेषरहता पर वहतो अत्यन्त अभावहोतीहै,इसलिये सबजगत् अकारण है। जैसे चिन्तामणिसे अकारण पदार्थ दृष्टिआता है, तैसेही यह अकारण है। न कहीं संस्कार है और न स्मृति है सब आत्माके पर्याय हैं आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। इससे सर्व जगत्को आत्मरूप जानो। रामजीने पूँछा; हेभगवन्! जो संस्कार से अनुभव नहीं होता और अनुभव से स्मृतिनहींहोती तो इसप्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्टआते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संशय भी तुम्हारा दूरकरताहूं। जैसे हाथी के बालक के मारने में सिंहको कुछ यत्ननहीं होता, तैसेही इससंशयके नाशकरनेमें मुझे कुछयत्ननहीं है। जैसे सूर्यके उदयहुये तिमिरका अभाव होजाताहै;तैसेही मेरे वचनोंसे तुम्हारा संशय दूरहोजावेगा। हे रामजी! यहसर्वजगत् चिन्मात्र स्वरूप है—उससे भिन्ननहीं।जैसे थंभेमें शिल्पी पुतलियां कल्पता है परन्तु पुतलियां कुछबनी

नहीं उसके चित्तमें पुतलियोंका आकारहै;तैसेही आत्मरूपी थंभेमें चित्तरूपी शिल्पी पुतलियां कल्पता है । हे रामजी ! थंभेमें पुतलियां निकालते हैं तभी निकलती हैं परन्तु आत्मा तो अद्वैत और निराकार है उसमें और कुछनहीं निकलता और उसमें वाणीकी भी गमनहीं चैतन्यमात्र है अहंके फुरने से वह आपको चैतन्य जानता है और फिरआगे शब्दों के अर्थ कल्पता है शुद्धअधिष्ठान चैतन्य आपको जानना यही स्वर्ग है । ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादिक शब्द और अर्थ फुरनेहीमेंहुयेहैं—जैसे एकही समुद्र में द्रवतासे आवर्त, तरंग, फेन और बुद्बुदे नाम होते हैं, तैसेही सब ब्रह्महीके नाम हैं ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं; ब्रह्मही अपने आप में स्थित है और वही फुरने में जगत् आकारहो भासताहै और फुरनेसे रहित होनेसे जगत् आकार मिटजाताहै परन्तु फुरने अफुरने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है । जैसे स्पन्दमें निस्स्पन्दमें वायु ज्योंकी त्यों है और सबपदार्थ जो भासते हैं सो ब्रह्मस्वरूप हैं। जैसे स्वप्नेमें अपनाही अनुभव पहाड़,वृक्षआदिक नाना प्रकारका जगत् हो भासता है, तैसेही ब्रह्मसत्ताही जाग्रत् जगत्रूपहो भासती है और वही कहीं अन्तवाहक; कहीं अधिभौतिक; कहीं ईश्वर और कहीं जीवआदि हो भासता है इससे आदिलेकर शब्द अर्थ संयुक्त जो जीव फुरतागयाहै सो ब्रह्मसत्ताही इसप्रकार स्थितहुई है । जैसे थंभेमें पुतलियां थंभरूप होतीहैं, तैसेही आत्माकाश में जगत् आत्मरूप है— आत्मासे भिन्न कुछ नहीं । जैसे उसमें जगत् आभास है, तैसेही स्मृति अनुभव भी आभास है । स्मृति जो संस्कार है उससे जगत्की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न हो सो तो स्मृति संस्कार भी आभासहै यह जगत् का कारण कैसेहो ? स्मृति भी तब होती है जब प्रथम जगत् होताहै सो जगत् नहीं तो स्मृति कैसे हो ? इससे जगत् आभासमात्रहै और इसका कारण कोई नहीं । हे रामजी ! स्मृति संस्कार जगत्का कारण तबहो जब कुछजगत् आगे हुआहो सो तो कुछहुआ नहीं और अनुभव उसका होताहै जो पदार्थ भासताहै सो तो इसजगत्के आदि कुछ जगत्का अंशनथा फिर अनुभवकैसेकहूं ? जो अनुभवही न हुआ तो स्मृतिकिसकोहो और जब स्मृतिही न हुई तो फिर उससे जगत् कैसेकहूं ? इसलिये, हे रामजी ! आदि जगत् अकारण अकस्मात् फुराहै । जैसे रत्नकी लाटहोतीहै तैसेही जगत् है और पीछेसे कारण कार्यरूप भासताहै । इससे हे रामजी ! जिसका कारण कोई न हो उसेजानिये कि, उपजानहीं जिसमें भासताहै वहीरूपहै अधिष्ठानसे भिन्न कुछनहीं । सबजगत् ब्रह्मस्वरूपहै; स्मृतिभी भ्रममें आभास फुराहै और अनुभवभी आभासहै सो ब्रह्मसेभिन्न कुछ नहीं और आभासभी कुछफुरा नहीं आभासकी नाईं जगत् भासताहै—आत्मसत्ता अद्वैतहै जिसमें आभास, स्मृति, अनुभव,जाग्रत् और

स्वप्न कल्पना कुछनहीं तो क्याहै ? ब्रह्महीहै फुरना जोकुछ कहतेहैं सोकुछवस्तु नहीं। जैसे थंभेमेंशिल्पी पुतलियांकल्पताहै, तैसेही स्पन्दचैतन्य आत्मामें जगत् कल्पती है। शिल्पी तो आपभिन्नहोकर कल्पताहै और यह चित्तसत्ता ऐसीहै कि,अपनेहीस्वरूपमें कल्पतीहै और जगत्रूपी पुतलियां देखतीहै। आत्मा आकाशरूपी थंभहै उस में जगत्भी आकाशरूपी पुतलियां है। जैसे आकाश अपने आकाशभाव में स्थित है,तैसेही ब्रह्म अपने ब्रह्मत्वभावमें स्थितहै। जगत् भिन्नभी दृष्टआता है परन्तु अचैत चिन्मात्रस्वरूपहै भेदभावको नहींप्राप्तहुआ और विकारवान् भी दृष्टआता है परन्तु विकारनहीं हुआ। जैसे स्वप्नेमें आपहीसवस्पष्ट भासतेहैं,तैसेही यहजगत् अपनेआप में भासताहै परन्तु कुछनहीं है। हे रामजी ! यही आश्चर्य है कि,मैंने अपने अनुभवको प्रकटकरके उपदेश कियाहै;जीव आपभी जानतेहैं स्वप्नेमें नित्य देखतेहैं और सुनतेभी हैं परन्तु निश्चयकरके जाननहींसक्ते और स्वप्नेके पदार्थोंको मूर्खतासे त्यागनहीं सक्ते॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशालभजनकोपदेशोनाम
द्विशताधिकद्विपंचाशत्तमस्सर्गः २५२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंको पाकरसुख नहींमानता और अनिष्ट विषयोंको पाकर दुःख नहीं मानता; इनके भ्रमसे मुक्तहै और बड़े भोग प्राप्तहों तौभीअपने स्वरूपसे चलायमान नहीं होता उसको जीवन्मुक्त जानो। हे रामजी ! सर्वशब्द अर्थ जिसको द्वैतरूप नहीं भासते उसे तुम जीवन्मुक्त जानो। जिस अविद्यारूपी जाग्रत्में अज्ञानी जागतेहैं उसमें ज्ञानवान् सोरहेहैं और परमार्थरूपी जाग्रत्में अज्ञानी सोरहेहैं,वे नहीं जानते कि,यहअर्थहै पर उसमेंजीवन्मुक्त स्थितहै इसकारण ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषयोंको पाकर सुखी और दुःखी नहींहोते उन काचित्त सदा आत्मपदमें स्थितहै। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो पुरुष सुखपाकर सुखी नहीं होता और दुःखसे दुःखी नहीं होता सोतो जड़हुआ, चैतन्य तो न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सुखदुःख तबतकहोताहै जबतक चित्तको जगत्का सम्बन्धहोताहै। जबचित्त जगत्के संबंधसे रहित चिन्मात्र होताहै तबउपाधिक सुखदुःखनहीं रहते और जो अपने स्वभावमें स्थित पुरुषहैं वे परम विश्रामको प्राप्तहोतेहैं और सब कुछकरतेहैं परन्तु स्वरूपसे उनको कर्तव्यका उत्थान कुछनहींहोता और सदाअद्वैतमें निश्चयरहताहै। नेत्रोंसे वे देखतेहैं परन्तु द्वैतकी भावना उनको कुछनहीं फुरती। जैसे अत्यन्तउन्मत्तको सर्व पदार्थ दृष्टभी आतेहैं परन्तु पदार्थों का ज्ञाननहीं होता,तैसेही जिसकीबुद्धि अद्वैतमें घनीभूतहुईहै उसको द्वैतरूप पदार्थ नहींभासते। जिनको द्वैतनहीं भासता उनको सुख दुःख कैसे भासे ? उन पुरुषों ने वहां विश्राम किया है जहां न जाग्रत् है, न स्वप्नहै और न सुषुप्तिहै। वे सर्व द्वैतसे रहित अद्वैतरूपी शय्यामें वि-

श्राम कररहे हैं और संसार मार्गसे उलंघ गये हैं। आत्माके प्रमाद से जीवको कष्ट होता है। जो अपनी विभूति विद्याको त्यागकर प्रसन्न होता है और फिर संसार के क्रूरमार्ग में कष्ट पाता है वह मनुष्य नहीं मानों मृग है। यह संसाररूपी जंगल में कष्टपाताहै और जब तृषासे कायर होताहै तब जलकी ओर दौड़ताहै पर जहां जाता है वहां मरुस्थल की नदी भासतीहै और जलप्राप्त नहीं होता; तब आगे दौड़ताहै और तृषा अधिक बढ़तीजाती है। इसप्रकार दौड़ता दौड़ता जड़ होजाता है और दुःखी होकर मरजाता है परन्तु जलप्राप्त नहीं होता। यह जल, दौड़ना, जड़ता और मरना चारों भिन्न भिन्न सुनो। हे रामजी! मनरूपी तो मृग है जो संसाररूपी जंगल में आनपड़ा है और इन्द्रियों के विषयरूपी जलाभास को सत्यजानकर शांति के निमित्त तृष्णारूपी मार्ग में दौड़ता है पर वे विषय आभासमात्र हैं और उनमें शांतिरूपी जल नहीं है इसलिये वह दौड़ता दौड़ता जब वृद्ध अवस्थामें जापड़ताहै तबजड़ होजाता है और बड़े कष्ट को प्राप्त होता है पर शांतिरूपी जल नहीं पाता इससे तृप्तभी नहीं होता। हे रामजी! मनुष्य मानों मज़दूर है जिसके शिरपर बड़ा भारहै और क्रूरमार्गमें चलाजाताहै जहां उसको चोरने लूटलियाहै इससे जलता है। हे रामजी! मनुष्यरूपी मज़दूरके शीशपर जन्मका बड़ाभार है और संशयरूपी क्रूर मार्गमें खड़ाहै। कर्मइन्द्रिय और ज्ञानइन्द्रियके इष्ट अनिष्ट विषय हैं इससे रागद्वेष-रूपी तस्करने विचाररूपी धन हरलियाहै इससे वह राग,द्वेष और तृष्णारूपी अग्नि से जलताहै। बड़ा आश्चर्यहै कि, ऐसे क्रूर मार्गको त्यागकर उन्हों ने परमपदमें वि-श्राम पायाहै और अन्य आनन्दको त्यागकर परमपद आनन्दको प्राप्तहुये हैं। उन मुक्त पुरुषोंको संसारका दुःखसुख व्याप नहीं सक्ता क्योंकि, वे परम अद्वैत शुद्धसत्ता को प्राप्त हुये हैं। वे सर्वको देखते हैं और ग्रहण और त्यागरूपी अग्निको त्यागकर उन्होंने परमपदमें विश्राम पायाहै और सदा सोये रहते हैं। प्रकटमें सुखसे जो सोते हैं तो वही सोते हैं और उनके भीतर सदा शांति रहती है परन्तु जड़तासे रहित हैं और आकाशसे भी अधिक सूक्ष्मसत्ताको प्राप्तहुये हैं। जैसे समुद्रमें धूलनहीं होती और सूर्यमें तमनहीं होता तैसेही उनमें इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंकी तृष्णा नहीं होती। उनसे रहित होकर उन्होंने विश्राम पायाहै। यह आश्चर्य है कि, अणुसे अणु होकर और महत्से महत् होकर भी वे केवल विश्रामवान् हुये हैं। हे रामजी! जो आत्म-सत्ताकी ओरसे सोये पड़े हैं उनको दुःख होताहै और ज्ञानवान् द्वैत जगत्की ओर जड़हुये हैं और अपने स्वरूपमें स्थितहैं इससे चैतन्यको दुःख कुछ नहीं। वे जाग्रत् की ओरसे सोये हैं और उनको अविद्यक जगत् और दृश्यका सम्बन्ध दूर होगयाहै। जब वे इस ओरसे सोये हैं तो उनको फिर दुःख कैसेहो? वे पुरुष सदा अद्वैतरूप हैं।

जो अनन्त जगत्को कर्त्ता है और आपको सदा अकर्त्ता जानता है ऐसे आश्चर्यपद में उन्होंने विश्राम पायाहै । जगत्के समूह सत्ता समानमें स्थिति करके उन्होंने विश्राम पायाहै—यह आश्चर्य है । वे सम्पूर्ण क्रियाको करते हैं परन्तु सदा अक्रियपदमें स्थितहैं और सम्पूर्ण पदार्थोंको स्वप्नवत् जानकर सुषुप्त हुयेहैं । वे आकाशसे भी अधिक सूक्ष्महैं क्योंकि, आत्मसत्तामें विश्राम पायाहै । वह आत्मसत्ता आकाशको भी व्यापरहीहै; उसीको आत्मवत् जानकरके वे स्थित हुये हैं । जो परमस्वच्छ पदहै उसमें सर्व शब्द अर्थ आकाशरूप होजाते हैं और आकाशभी आकाश होजाताहै; उस पद में उन्होंने विश्राम कियाहै सोही आश्चर्य है । नेत्र उसके खुलेहुये हैं पर सुषुप्ति में स्थितहैं । क्या सुषुप्तिहै कि, दृग और दृश्यभाव उनका दूर होगयाहै और जगत्के प्रकाशसे रहित और परम प्रकाशरूपहैं । हे रामजी ! बाहरके भोगपदार्थों से वे रहितहैं और आत्मामें स्थितहैं । प्रकट वे सोते हैं पर सुषुप्तिमें जागते हैं और जाग्रत्से उनको सुषुप्तिहै । उस सुषुप्तिसे वे सोयेहैं और कर्म करते हैं परन्तु कर्त्ता कारणभावसे रहित हैं । क्रोध भी करते हैं परन्तु क्रोधके फुरनेसे रहितहैं और सर्व ओरसे प्रकाशवान् निर्भय होकर विश्राम करते हैं । कामना करते भी दृष्ट आते हैं परन्तु तृष्णासे रहित हैं और निस्संकल्पपदमें स्थित हुये हैं । यह आश्चर्य है कि, जिस क्रियाकी ओर वे देखते हैं उसी ओर उनको शान्ति भासती है क्योंकि, एक मित्र उनके साथ रहता है उससे कोई दुःख उनके निकट नहीं आता ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिपंचाशत्तमस्सर्गः २५३ ॥

रामजीने पूछा, हेभगवन् ! वह मित्र कौनहै ? ज्ञानीका कोई कर्म मित्रहै अथवा आत्मामें विश्रामका नाम मित्रहै; यह संक्षेपपूर्वक मुझसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक अकृत्रिम कर्म हैं अपने सुकर्म उनका नाम है और अपनाही प्रयत्न उनका मित्रहै । अध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक ये तीनों ताप सदा अज्ञानी को जलाते हैं पर ज्ञानीको नहीं भासते । जो बड़ाकष्ट प्राप्तहो जिसे लांघना कठिन है और बहुत कोपहो सोभी उसको स्पर्श नहींकरता । जैसे कमलको जल नहीं स्पर्श करता, तैसेही ज्ञानीको कष्टनहीं स्पर्शकरता क्योंकि; वह मित्र उसके साथ रहता है । जैसे बालकका मित्र बालक होताहै सो बड़ेभये भी उसका हितू होताहै, तैसेही चिरकाल जो ज्ञानवान्ने अभ्यास कियाहै सोही अभ्यास उसका मित्रहो रहताहै और दुष्टक्रिया की ओर उसे नहीं विचरने देता शुभकी ओर बरताता है । जैसे पिता पुत्रको अशुभकी ओरसे बरजकर शुभकी ओर लगाताहै, तैसेही विचाररूपी मित्र उसको तृष्णासे बर्जन करताहै और आत्माकी ओर स्थित करताहै । वह रागद्वेषरूपी अग्निसे निकाल

कर समतारूपी शीतलताको उसे प्राप्तकरताहै। ऐसा विचाररूपी उसका मित्रहै जो सर्व दुःख क्लेशादिसे उसे तार लेजाताहै-जैसे मल्लाह नदीसे तारलेजाताहै। हेरामजी! विचाररूपीमित्र बहुत सुन्दरहै; शान्तरूपहै और सर्वमैलको जलानेवाली अग्नि है। जैसे सुवर्णके मैलको अग्निजलाकर निर्मलकरतीहै, तैसेही बिचाररूपी अग्नि राग द्वेषरूपी मलको जलाती है। जब विचाररूपी मित्रआताहै तब स्वाभाविक चेष्टा निर्मलहोजाती है और वेदोक्त विचरताहै। तब सब कोई उसको देखकर प्रसन्नहोता है और दया, कोमलता, अमान और अक्रोधआदिक गुण आनप्राप्त होते हैं। जैसेतिलोंमेंतेल, फूलमें सुगन्धि और अग्निमें उष्णतारहतीहै,तैसेही विचारमें शुभआचाररहतेहैं। विचाररूपी मित्र शूरमाहै जो कोई शत्रुहोताहै प्रथम वह उसको मारताहै और अज्ञानरूपी शत्रुको नाशकरताहै—जैसे सूर्य तमको नाशकरताहै—और दीपकके प्रकाशवत् साथहोताहै एवम्बिषयभोगरूपी अन्धेकूपमें जो मैलहै उसमें गिरने नहीं देता और सर्व ओरसे रक्षाकरताहै। जिसओरसे वह पुरुष जाताहै उसओर सबको प्रसन्नता उपजतीहै। हे रामजी! उसका बचन कोमल, मधुर और स्निग्ध होताहै और वह उदारात्मा क्षोभसेरहित और लोगोंपर उपकार और प्रसन्नताकेलिये बोलताहै और सौहार्द्दता;शान्तरूप और परमार्थकाकारणहै। हेरामजी! बचन तो उसकी प्रसन्नताकेलिये होतेहैं और आपभी सदाप्रसन्नरहताहै। जैसे पतिव्रतास्त्री अपनेभर्त्तारको सदाप्रसन्नरखती है,तैसेही विचाररूपी मित्र उसको सदा प्रसन्नरखताहै और शुभ आचारमें चलाताहै। दान, तप, यज्ञादिक शुभक्रिया वह आपभी करताहै और लोगोंसेभी कराताहै। जिसके अंतःकरणमें विवेकरूपी मंत्री आताहै वहां वह अपने परिवारकोभी साथले आताहै। रामजीने पूंछा,हे भगवन्! उसका परिवारकौनहै; उस कास्वरूपक्या है और क्याआचारहै संक्षेपसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्नान,दान, तपस्या और ध्यान ये चारों उसके बेटेहैं। स्नान तो यहहै कि, वह सदा पवित्ररहताहै और यथायोग्य और यथाशक्ति दानकरताहै। बाहरकी वृत्तिको भीतर स्थितकरनेका नामतपहै और आत्माकी वृत्तिमें चित्तको लगानेका नाम ध्यानहै। ये चारोंउसके बेटेहैं जोआत्मदर्शी हैं परन्तु वृत्तिको सदास्वाभाविक अन्तर्मुखकरके व्यवहारकरते हैं। मुदिता उसकी स्त्रीहै—सदा प्रसन्नरहनेका नाम मुदिताहै—जो नमस्कारके योग्यहै। जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाकी रेखाकोदेखकर सबकोई प्रसन्नहोताहै और नमस्कार करताहै, तैसेही उसको देखकर सबकोई प्रसन्नहोताहै और नमस्कार करताहै। मुदितारूपीस्त्रीके साथ करुणा और दयानामा एकसहेलीरहतीहै और समतारूपी द्वारपालनी सन्मुखखड़ी रहती है। जब विवेकराजा अन्तःपुरमें आताहै तब वह सन्मुखहोकर सब स्थानदिखाती है और सदा संगीरहतीहै। जिसओर राजा देखता

है उसओर समताही दृष्टआतीहै जो आनन्दके उपजावनेवाली है। वह दोपुत्रसाथ लेकर पुरीमें विचरतीहै और जिसओर राजाभेजताहै उसओर धैर्य्य और धर्मलिये फिरती है। जबराजा सवारहोकर चलताहै तब वहभी समतारूपी बाहनपर आरूढ़ होकर राजाके साथजाती है और जब राजा विषयरूपी पांचों शत्रुओंसे लड़ाई करताहै तबधैर्य्य और संतोष मंत्रीमंत्र देताहै और विचाररूपी बाणसे उनको नष्टकरता है। हे रामजी! विचार सदा उसके संगरहताहै और सबकार्यको करताहै। यह चेष्टा उससे स्वाभाविक होतीहै; आप सदा अमानरहताहै और कर्त्तृत्व-भोक्तृत्वका अभिमान उसको कोई नहींफुरता जैसे कागज़पर मूर्तिलिखी होतीहै जो अभिमानसे रहितहै,तैसेही वहभी अभिमानसे रहितहै और परमार्थ निरूपणसेरहित निरर्थक बचन नहीं बोलता जैसे पाषाण नहीं सुनता--और जो क्रिया शास्त्रों और लोगोंसे निषेध कीगई है वह नहींकरता जैसे शवसे कुछ क्रिया नहीं होती,तैसेही उसको क्रियाका उत्थान नहीं होता। जहां ज्ञानवान् और जिज्ञासियोंकी सभाहोतीहै वहां वहपरमार्थके निरूपणको शेषनाग और बृहस्पति की नाईं होताहै और सावधानता इत्यादिक जो शुद्धक्रियाहै सो उसमें स्वाभाविक होतीहै। जैसे सूर्य,चन्द्रमा और अग्निमें प्रकाश स्वाभाविक होताहै,तैसेही उसमें शुभक्रिया स्वाभाविक होतीहैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहारवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुःपंचाशत्तमस्सर्गः २५४॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी। यह जगत् वास्तवमें ज्ञानस्वरूपहै और आत्मसत्ताका चमत्कारहै; और कुछ बनानहीं ब्रह्मसत्ताही फुरनेसे इसप्रकारहो भासती है। इसका कारण भी कोई नहीं। जब महाप्रलयथी तब शब्द-अर्थ द्वैत कुछनथा-उस अद्वैत सत्तासे जगत् फुर आयाहै। जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होताहै सो बीज भी जगत्का कोई नथा तो किसकारणसे उत्पन्न हुआ और तो कोई कारण नथा इससे अबभी जगत् को महाप्रलयरूप जानो। हे रामजी! न कोई पृथ्वी आदिक तत्त्वहै; न जगत्है;न आभासहै और न फुरनाहै। जैसे आकाशके फूलोंमें सुगन्धि नहीं होती तैसेही इनका होना भी नहींहै केवल स्वच्छ ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रूप, इन्द्रियाँ और मन भी ब्रह्मस्वरूपहै। जैसे स्वप्नेमें अपना अनुभवहै और मनही नानाप्रकारका जगत् आकार और इन्द्रियाँ होकर भासताहै और तो कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् भी वही रूपहै। हे रामजी! सर्व जगत् आत्मरूपहै। जैसे कारण बिना आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासिआताहै सो कुछ हुआ नहीं;तैसेही यह जगत् आत्माका आभासहै और जिसमें यह आभास फुरा है सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है। ये सर्व पदार्थ जो तुमको भासते हैं उन्हें ब्रह्मस्वरूप जानो। जैसे मनोराजकी सृष्टि होती है सो अपने अनुभवमें

होती है और उसका स्वरूप अनुभवसे भिन्न नहींहोता, तैसेही सृष्टिके आदि जो अ-
नुभव होताहै सो अनुभवरूपहै और कुछ उपजा नहीं—वही अनुभवसत्ता इसप्रकार
भासती है। हेरामजी ! देशसे देशांतरको जो संवित् प्राप्तहोती है उसकेमध्यमें जो अनु-
भवहै सोही तुम्हारा स्वरूपहै और सब आभासमात्र है। जाग्रत् देशको त्यागकर जो
स्वप्न शरीरके साथ नहीं मिली और जाग्रत् स्वप्न देशके मध्यमें ब्रह्मसत्ता है वही
तुम्हारा स्वरूप है। वह प्रकाशरूप और अपने आपमें स्थितहै और जाग्रत् जगत् जो
भासताहै सो भी उसीका स्वभावहै। जैसे रत्नोंका स्वभाव चमत्कारहै;अग्निका स्वभाव
उष्ण है, जलका स्वभाव द्रव है और पवनका स्वभाव फुरनाहै,तैसेही ब्रह्मका स्वभाव
जगत् है । जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासताहै, तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै।
हे रामजी ! यह आश्चर्यहै कि अज्ञानी सत्यको असत्य और असत्यकोसत्य जानते
हैं; जो अनुभवसत्ता है उसको छिपाते हैं और शशेके सींगवत् जगत्को प्रत्यक्ष जा-
नते हैं। वे मूर्ख हैं, उनको क्या कहिये ? सबका प्रकाशक आत्मसत्ताहै। जिसको तुम
सूर्य देखतेहो सो वही परमदेव सूर्य होकर भासताहै और चन्द्रमा और अग्नि उसी
के प्रकाश से प्रकाशतेहैं निदान सबका प्रकाश और तेज सत्तावही है। जैसे सूर्यकी
किरणों में सूक्ष्म अणुहोते हैं; तैसेही आत्मसत्ता में सूर्यादिक भासतेहैं। जिसको सा-
कार और निराकार कहतेहो वह सब शशेकेसींगवत्हैं । ज्ञानवान्को ऐसेही भासता
है कि, जगत् कुछ उपजा नहीं तो मैं क्याकहूं ? जहां सर्व शब्दोंका अभाव होजाता है
और उसके पीछे चिन्मात्र सत्ता शेषरहती है वहां शून्यकाभी अभाव होजाता है। हे
रामजी ! जिनको तुम जीता कहते हो सो जीताभी कोई नहीं और जो जीतानहीं तो
मुआ कैसे हो ? जो कहिये जीताहै तो जैसे जीता है तैसेही मृतक है; मृतक और जीते
में कुछ भेदनहीं;इसलिये सर्व शब्दों से रहित और सबका अधिष्ठान वही सत्ता है ।
उसमें नानात्व भासता भी है परन्तु हुआ कुछ नहीं । पर्वत जो स्थूल दृष्टआते हैं सो
अणुमात्र भी नहीं— जैसे स्वप्ने में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु कुछहुयेनहीं.
केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और उसीमें जगत् भासताहै। हेरामजी ! जो
परमार्थसत्तासे जगत भासआया सो तो और कुछ न हुआ;इससे वहीसत्ता जगत्रूपहो
भासती है। कोई कहते हैं कि,आत्मामें है और कोई कहते हैं कि, आत्मामें कुछनहीं है पर
आत्मामें दोनोंशब्दोंका अभावहै और अभावकाभी अभावहै। यहभी तुम्हारे जानने
केनिमित्त कहताहूँ;वह तो स्वस्थ और परमशांतरूपहै और उसमें और तुम्हारेमेंकुछ
भेदनहीं। वह परिपूर्ण अच्युत,अनन्त और अद्वैतहै और वही जगद्रूपहोकर भासता
है।जैसे कोईपुरुष शयनकरताहै तो सुषुप्तिमें अद्वैतरूप होजाताहै;फिर सुषुप्तिसे स्वप्ना
फुरआताहै और फिर सुषुप्तिमें लीनहोजाताहै तो उपजा क्या और लीनक्याहुआ?

स्वप्नेके आदिभी अद्वैतसत्ता थी; अन्तमेंभी वहीरही और मध्यमें जो कुछभासा वह भी वही रूपहुआ, आत्मासे भिन्न तो कुछ न हुआ? इसलिये सर्बजगत् ब्रह्मस्वरूप है-ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं। हे रामजी! हमको तो सदा अनुभवरूप जगत् भासताहै। हम नहींजानते कि, अज्ञानीको क्या भासताहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टिसे जो जागा है उसको अद्वैत अपना आप भासताहै, तैसेही तुरीयामें भासताहै। तुरीया और जाग्रत्में भेद कुछनहीं, जाग्रतही तुरीयाका नामहै और जाग्रत् तुरीयारूपहै बल्कि, यहभी क्याकहनाहै सबही अवस्था तुरीयारूपहै। तुरीया जाग्रत् सत्ताका नाम है। जो अनुभवसाक्षी ज्योतिहै सोजाग्रत्में भी साक्षीरूपहै; स्वप्नेमेंभी साक्षीरूपहै और सुषुप्तिमेंभी साक्षीरूपहै। इसलिये सब तुरीयारूपहै परन्तु जिसको स्वरूपका अनुभवहुआ है उसज्ञानवान्को ऐसेही भासताहै और अज्ञानीको भिन्नभिन्न अवस्था भासतीहैं। हे रामजी! एक पदार्थका वृत्तिने त्यागकिया पर दूसरे पदार्थ में नहीं लगी वह जो मध्य में अनुभव ज्योति है उसको तुम आत्मसत्ताजानो और उसमें जो फिरकुछ भासा उसमेंभी वही रूपजानो। जैसे जाग्रत् को त्यागकर स्वप्नेके आदि साक्षीअनुभव मात्र होताहै और उस सत्ता में स्वप्ने का शरीर और पदार्थ भासते हैं वहभी आत्मरूप हैं; तैसेही जो कुछ जाग्रत् शरीर और पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं। जब तुम ऐसेजानोगे तब तुमको कोई दुःख स्पर्श न करेगा। जैसे स्वप्ने की सृष्टि में अपने स्वरूपकी स्मृतिआनेसे दुःखभी सुखहोता है और बोलना,चालना,खाना,पीना, देना, लेना, आदि शब्द और अर्थ और द्वैतरूप युद्धकर्म सब अद्वैत अपना आप होजाते हैं और व्यवहारभी सब करता है परन्तु अपने निश्चयमें कुछ नहीं फुरता, तैसेही जो पुरुष अपने स्वरूप में जागेहैं उनको सब जगत् आत्मरूपही भासता है। जैसे अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता स्वाभाविक है, तैसेही ज्ञानवान् को आत्मदृष्टि स्वाभाविक है। और लोगों को यह दृष्टि यत्नसे प्राप्त होती है पर ज्ञानवान् को स्वाभाविक होती है। जिसको तुम इच्छा कहते हो सो ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप है और अनिच्छाभी ब्रह्मरूप भासती है। ज्ञानवान् को आत्मानंद प्राप्त हुआहै और वह अपना जो स्वभावहै उसमें सदास्थितहै इससे उसको कोई कल्पना नहीं उठती और वह विद्यमान निरावरण दृष्टि लेकर स्थित होता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेद्वैतएकताअभावबर्णनं नामद्विशताधिकपंचपंचाशत्तमस्सर्गः २५५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे स्वप्ने में पृथ्वीआदिक पदार्थ भासतेहैं सो अविद्यमान हैं-कुछहैं नहीं; तैसेही पितामाता जोआदिब्रह्माजी हैं उनकोभी आकाशरूप जानो। वहभी कछहुये नहीं और आत्मसत्तासे भिन्नकुछ हुआ नहीं, होनानहीं। जैसेसमुद्र

में तरंग और बुद्बुदे उठते हैं सो स्वाभाविक हैं और तरंग शब्द कहनाभी उनको नहीं बनता वे तो जलरूपहैं, तैसेही जिनको तुम ब्रह्माजी कहतेहो सो और कोई नहीं आत्मसत्ताही इसप्रकारहो भासतीहै। ब्रह्माजी इसप्रकार का विराट्है कि, जैसे पत्र, फूल,फल और टासवृक्षके अंगहैं,तैसेही सबभूत उसबिराट्के अंगहैं। जो बिराट्ब्रह्माही आकाशरूपहै तो उसके अंगजगत्की बार्ता क्या कहिये ? हे रामजी ! बिराट्के न प्राणहै, न आकारहै, न इन्द्रियां हैं; न मनहै, न बुद्धिहै, और न इच्छाहै केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थितहै। जोबिराट्ही नहीं तो जगत् कैसेहो ? जोतुमकहो आकाशरूपके अंगकैसे भासतेहैं ? तो हे रामजी ! जैसे स्वप्नेमें बड़े पहाड़ और पर्वत प्रत्यक्ष दृष्टआते हैं परन्तु कुछबने नहीं आकाशरूप हैं; तैसेही आदि विराट्भी कुछ बनानहीं आकाशरूप है तो उसके अंग में आकाररूप कैसे कहूं ? सब आकार संकल्पपुर की नाईं कल्पित हैं । एक आत्मसत्ताही सर्वदा काल ज्योंकी त्यों स्थित है उसमें स्मृति और अनुभव क्याकहिये ? अनुभव और स्मृतिभी उसीका आभास है। जैसे समुद्र में तरंग आभास होते हैं, तैसेही आत्मा में अनुभव और स्मृति भी आभास हैं । स्मृति भी उसकी होती है जिसका प्रथम अनुभवहोता है सो अनुभव भी जगत् में होता है पर जहां जगत्ही उपजा न हो तो अनुभव और स्मृति उसको कैसे हो ? इसलिये न अनुभव है और न स्मृति है इस कल्पना को त्याग दो। जहां पृथ्वी होती है तहां धूड़भी होती है पर जहां पृथ्वी से रहित आकाशहीहो वहां धूड़ कैसे उड़े ? इसी प्रकार जहां पदार्थ होते हैं वहां स्मृति अनुभवभी होता है और जहां पदार्थही नहीं तो यह कैसे हो ? इससे दोनों का अभाव है । रामजी ने पूँछा, हे भगवन् ! स्मृतिमानों में इष्ट स्मृति का अनुभव तो प्रत्यक्ष होताहै ? प्रथम पदार्थ काअनुभव होताहै पीछे उसकीस्मृति होतीहै और उसस्मृति संस्कारसे फिरअनुभव होताहै तो ऐसेही भ्रमादिक का क्यों नहींहोता ये तो प्रत्यक्ष भासते हैं ? तुमकैसे इन का अभाव कहतेहो और अभाव में विशेषता क्याहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! स्मृतिसे अनुभव वहां होताहै जहां कार्य कारण भाव होता है। ब्रह्मा से आदिलेकर काष्ठपर्यंत सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं और अविद्यमान ही भ्रमसे विद्यमान भासता है। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जलआभास है सो अविद्यमान है पर भ्रमसे जल भासता है; तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासता है। स्मृति उसकी होतीहै जिस पदार्थका प्रथम अनुभव होताहै। जो कहिये कि, भ्रमादिक स्मृति संस्कारसे उपजी है, तो ऐसे नहीं बनता क्योंकि; प्रथम तो ज्ञानवान् स्मृति से नहीं होता तो उनका स्मृति कारण कैसे कहिये ? और द्वितीय यह है कि, इस जगत्के आदि कोई जगत् न था जिसकी स्मृति मानिये । इसजगत् के आदि

केवल अद्वितीय आत्मसत्ताथी उसमें स्मृति क्या और अनुभवक्या? इसलियेब्रह्मा-दिक और जगत् किसीकारण कार्यभावसे नहीं उपजे अकारण हैं। हे रामजी! प्रथम तो तुम यहदेखो कि; ज्ञानीको जगत् नहीं भासता तो स्मृति किसको कहिये? उसको तो केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। जैसे सूर्यको रात्रिकी स्मृति नहींहोती; तैसेहीज्ञानी को जगत्की स्मृति नहीं होती हमारे निश्चय में तो यह है कि; जगत् न हुआ है और न आगे होगा केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै सो अद्वैत है और उसीकासब आभास है जो आभास को सत्यजानते हो तो स्मृतिको भी सत्यजानो और जो आ-भासको असत्य जानतेहो तो स्मृति कोभी असत्यजानो। जैसे स्वप्ने में सृष्टि का आभास होताहै और उसमें अनुभव और स्मृति होती है पर जागेसे सृष्टि अनुभव स्मृतिका अभाव होजाताहै; तैसेही अद्वैत परमात्मस[illegible] के जाग्रत्में अनुभव और स्मृतिका अभावहै और उसमें जगत् कुछ बना नहीं। जैसे कोई पुरुष मरुस्थलमेंभ्रम से नदी देखताहै और सत्यजानकर उसकीस्मृति करताहै पर वह नदी तो कुछनहींहै जो नदीही असत्यहै तो उसकीस्मृति कैसेसत्यहो; तैसेही अज्ञानीके निश्चयमें जगत् भासित हुआ है सो जगत्ही असत्य है तो उसकी स्मृति अनुभव कैसे हो? ज्ञानवान् के निश्चय में ऐसेही भासता है। हे रामजी! स्मृति पदार्थ की होतीहै सो पदार्थ कोई नहीं सर्व ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और जैसे जैसे उनमें फुरना होताहै तैसाही होकर भासते हैं परन्तु अ[illegible] कुछ वस्तु नहीं। जैसे वायुचलताभी है और ठहरताभीहै पर चलने और ठहरनेमें वायु को कुछभेद नहीं; तैसेही ज्ञानवान् को जगत् के फुरने अफुरने में ब्रह्मसत्ता अभेद भासतीहै और कारण कार्य नहीं भासता। जैसे पत्र,टहनी, फूल और फल सब वृक्षके अवयव हैं, तैसेही जगत् आत्माके अवयव हैं; आत्मामें प्रकट होते हैं और फिर आत्मा[illegible] ही लीनभी होजाते हैं भिन्नकुछ नहीं। जब चित्त स्वभाव फुरता है तब जगत् होकर भासताहै कुछ आरम्भ और परिणाम करकेनहीं होता—आभासमात्र है। जैसे घटपट आदिक आत्माका आभासहै, तैसेही स्मृतिभी आभास है। स्मृतिभी जगत् में उदयहुई है जो जगत्ही असत्य है तो स्मृति कैसे सत्यहो? जो यथार्थदर्शी हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासताहै। हमको न कुछमोक्ष उपाय भासता है और न इसका कोई अधिकारी भासता है; हमारे निश्चय में अद्वैत ब्रह्म-सत्ताही भासती है। जैसे नटस्वांग धारता है परसब स्वांगोंको आभासमात्र जानता है किसीको सत्य नहीं जानता पर उससे भिन्न कुछनहीं; तैसेही हमको ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं भासता। अज्ञानीके निश्चय को हमनहीं जानते। जिसप्रकार उसकोजगत् शब्द है सो उसके निश्चय को कोई नहीं जानता। हमारे निश्चयमें सब चिन्मा[illegible]है। अज्ञानी को जगत् द्वैतरूप भासता है और बिपर्य्यय भावना होतीहै और ज्ञानवान्

को चिन्मात्र से भिन्न कुछनहीं भासता। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने अनुभवमेंस्थित होतीहै और सर्वका अधिष्ठान अनुभव सत्ताहै परन्तु निद्रादोष से भिन्न भिन्न भासती है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भिन्न भिन्न भासता है और जो जागेहुये ज्ञानवान् हैं उनको भिन्न कुछनहीं भासता और न उनको अविद्या, न मूर्खता और न मोह भासता है उन्हें सब अपना आपही ब्रह्मस्वरूप भासता। जहां कुछदूसरी बस्तु नहींबनी वहां स्मृति और अनुभव किसका कहिये ? यह कलना सबही मिथ्या है। हे रामजी ! सब अर्थों का जो अर्थभूत है सो ब्रह्म है उसी में सब पदार्थ कल्पित हैं। स्मृति और अनुभव मनमें होता है सो मन आत्मामें ऐसे है जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें जलाभास होताहै तो उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये ? सब कल्पितहै। पृथ्वी आदिक तत्त्वआत्मा में कुछबने नहीं ब्रह्मसत्ताही इसप्रकार भासती है-ज्ञानवान् को सदा ऐसेही भासताहै। आभासभी आत्मा में आभासहै और कारण कार्यभाव कदाचित् नहीं भासता। जैसे सूर्य्यको अन्धकार कदाचित् नहीं भासता; तैसेही ज्ञानवान्को कारण कार्य्यभाव दिखाईनहींदेता। जैसे स्वप्नेके आदि अद्वैतसत्ताहोती है और उसमें अकारण स्वप्ने की सृष्टि फुरआती है; तैसेही अद्वैतसत्त अकारण आदिसृष्टि फुरआई है। न पृथ्वी है और न कोई दूसरा पदार्थ है सब चिदाकाशरूप है और कुछ बनानहीं तो आभासमात्र जगत् में स्मृतिकी कल्पना कैसेहो ?

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्मृतिअभावजगत्परमाकाश वर्णनन्नामाद्विशताधिकषट्पंचाशत्तमस्सर्ग्गः २५६॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जिसमें सर्व अनुभव होताहै उसके देहमें अहंप्रत्यय किसप्रकार होतीहै ? वहतो सर्वात्मा है उस सर्वात्माको एक देहमें अहंप्रत्यय क्योंकर होतीहै और काष्ठ पाषाण पर्वत और चैतन्यताका अनुभव किसप्रकार होगया है वहतो अद्भुत स्वरूपहै उसमें जड़ चैतन्य ये दोनोंभेद कैसेहुये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे शरीरमें हाथ आदिक अपनेअंगहैं और उनसर्वअंगोंमें एकशरीरफुरना व्यापा हुआहै पर जो उन अंगोंमें एक अंगको पकड़कर कहे कि, नाम ले कौन है तब वह अपनी नाम संख्या कहता है; तो तुम देखो कि, उस एक अंगमें अपना आप कहा परन्तु सर्व अंगोंमें उसकी आत्मता तो नाश नहीं होजाती है; तैसेही आत्मा अनुभवरूपहै तौभी एक अंगमें उसकी आत्मता फुरती है इससे उसकी सर्वात्मता खण्डन तो नहीं होजाती ? जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी आदिक सर्व अंगमें वृक्ष एकही व्यापा हुआहै परन्तु जो एक टहनी अथवा पत्रको पकड़कर कहता है कि, यह वृक्षहै तो इसके एक अंगमें वृक्ष भावना कहना वृक्षका सर्वात्मभाव नष्ट नहींहोता; तैसेही सर्वात्मा एक देहमें अहंभाव सिद्ध होता है और जड़ और चैतन्यभी दोनोंभाव

एकही के धारे हैं और एकहीके दोनोंस्वरूप हैं। जैसे एकही शरीरमें दोनों सिद्ध होते हैं और हाथ, पाँव आदिक जड़हैं और नेत्र इसके द्रष्टाचेतनहैं सो एकही शरीर दोनों धारे हैं और दोनों एकही शरीरके स्वरूपहैं; तैसेही एक आत्माने दोनों धारे हैं और एकहीके स्वरूपहैं। जैसे वृक्ष अपने अंगको धारताहै और वृक्ष स्वभावकोभी धारता है, तैसेही सर्वात्मा सर्व को धारता है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि सर्वको अनुभव धारतीहै और सर्व क्रिया को भी धारतीहै; तैसेही आत्मसत्ता सर्व जगत् और जगत्की सर्व-क्रिया को धारती है क्योंकि; सर्वात्मा है और जो सर्वात्मा है सो क्यों न धारे? जैसे एकही समुद्र में अनेक तरंग उठतेहैं परन्तु सबही समुद्रके आश्रयहैं और वही रूप हैं; तैसेही सर्व जीव परमात्मा में फुरते हैं; परमात्मा के आश्रय हैं और वहीरूप हैं। जैसे तरंग आपको जाने कि, मैं जलहीहूं तो तरंग उसकी संज्ञाजाती रहतीहै जल-रूपही दिखता है; तैसेही जीव जब परमात्मासे आपको अभेद जाने कि, 'मैं आत्माही हूं' तब उसके जीवत्व भावका अभाव होजाता है, परमात्माही दिखताहै। हे रामजी! जैसे जलमें द्रवता से तरंग भासते हैं परन्तु तरंग जलसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं, तैसे-ही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से आदिब्रह्मा फुराहै और उसने यह जगत् मनोराज से कल्पा है सो आकाशरूप निराकार है और कुछ बनानहीं। जो विराट्ही आकाशरूप हुआ तो उसका शरीर कैसे साकार हो—वहभी निराकार है। जैसे अपना अनुभव स्वप्ने में पर्वत, नदियां, जड़ और चैतन्य होकर भासता है; तैसेही सर्व जगत् जो भासता है सो आत्मरूप है। हे रामजी! जैसे एक निद्राके दो स्वरूप हैं—स्वप्न और सुषुप्ति; तैसेही एकहीआत्माने जड़ और चैतन्य दो स्वरूपधारेहैं। जगत् आत्मामेंकुछ बनानहीं यह आभास रूपहै और आत्मसत्ताही अपने वचन द्वारा जगत्रूपहो भा-सतीहै। जैसे आकाश में घन शून्यताकेकारण नीलताभासती है सो अविचार सिद्धहै—नीलता कुछ बनीनहीं; तैसेही आत्मामें घन चैतन्यतासे जगत् भासताहै परन्तु जगत् आकार कुछ बना नहीं सर्वदाकाल आत्मा अद्वैत निराकार है। अनन्तसृष्टि आत्मा में आभासउपजकरलीन होजाती है और आत्मा ज्योंका त्योंहै। जैसे समुद्रमें तरंग उपजकरलीन होजाते हैं परन्तु जलरूप हैं; तैसेही परब्रह्म में सृष्टि परब्रह्मरूप है। हे रामजी! यहजगत् विराट्का शरीर है; महाकाश उसका शीश है; दशों दिशा उसकी भुजा हैं; पृथ्वी उसके चरण हैं; पातालरूप तली हैं अन्तरिक्ष मध्यलोक उदरहै; सर्व जीव उसकी रोमावली हैं और इनसे लेकर सर्व पदार्थ विराट् के अंग हैं सो विराट् आकाशरूपहै। जैसे विराट्ब्रह्माजी आकाशरूपहै, तैसेही उसका जगत्भी आकाश-रूपहै। इससेसर्व जगत् विराट्रूपहै सो ब्रह्महीहै और कुछ बना नहीं। चन्द्रमा और सूर्य उसके नेत्रहैं; मैं और तुमसे आदि लेकर सर्व शब्दोंका अधिष्ठान ब्रह्मही है सो

ब्रह्ममैंहूं। जिसमें दूसरा बनानहीं सदा मैं अपनेही आपमेंस्थितहूं। हे रामजी! शून्य-वादी, पाँचरात्रिक, शैवी, शक्ति आदि जो शास्त्र हैं उनसबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है और सबका साररूप वही सर्वात्मरूप है। जैसा किसी को निश्चय होता है तैसाही उसको वह सर्वरूप होकर फल देताहै और कुछ बनानहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकसप्तपंचाशत्तमस्सर्गः २५७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस जगत्के आदिशुद्ध ब्रह्मसत्ताथी और उसमें जो जगत् आभास फुरा है उसको भी तुम वही स्वरूप जानो। जैसे स्वप्ने के आदि अनुभव आकाशहोताहै और उसमें स्वप्नेकी सृष्टि फुरआती है सो अनुभवरूपहै भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है भिन्ननहीं। जैसे समुद्र द्रवता से तरंग-रूप हो भासता है, तैसेही चैतन्य ब्रह्म जगत्रूप हो भासता है सो जगत् भी वही रूप है। हे रामजी! वास्तवमें कोई दुःख नहीं है; दुःख और सुख अज्ञान से भासते हैं। जैसे एक निद्रामें दो वृत्ति भासतीहैं—एक स्वप्न वृत्ति और दूसरी सुषुप्ति वृत्ति; तैसेही अज्ञानी की दो वृत्ति होती हैं—सुखकी और दुःखकी और ज्ञानवान्की सर्व ब्रह्मरूपहै। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने से जागउठताहै तो उसको स्वप्नेकी सृष्टि असत्य-रूप भासती है, तैसेही ज्ञानवान् को यह सृष्टि असत्य भासती है। जैसे जिसने मरु-स्थलकी नदी के जलका अत्यंताभावजाना है वह जलपानकी इच्छा नहीं करता, तैसेही सम्यक्दर्शी जगत् को असत्य जानता है, इसलिये वह जगत् के पदार्थों की इच्छाभी नहीं करता। जो असम्यक्दर्शी हैं उनको जगत् सत्यभासता है और वह किसी पदार्थ को ग्रहण करता है और किसी का त्याग करता है। हे रामजी! ईश्वर जो परमात्मा है उसमें जगत् इसप्रकार है जैसे समुद्र में तरंगहोतेहैं। जैसे समुद्रऔर तरंगमें भेदनहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। जो तुमकहोकि, अविद्याही जगत् का कारण है तो अविद्याजगत् का कारण तब कहाती जो वह जगत् से प्रथम सिद्धहोती पर अविद्या तो अविद्यमानहै। जैसे परमात्मामें जगत् आभासमात्रहै,तैसेही अविद्याभी आभासमात्रहै। जो आपही आभासमात्रहो तो उसेजगत्काकारण कैसेक-हिये? जगत् आभास और अविद्याका आभास इकट्ठाहो फुराहै। जैसे स्वप्नेमें सृष्टि भासआती है और उसमें घट, पटादिपदार्थ भासतेहैं सो किसी कुलालने मृत्तिका ले-करतो नहींबनाये। जैसे घटभासाहै,तैसेही कुलाल और मृत्तिकाभी भासिआयेहैं। जैसे इनसबका भासना इकट्ठाहीहोताहै,तैसेही जगत् और अविद्या इकट्ठेही फुरे हैं। अविद्या पूर्वमें तो सिद्धनहीं होती तो उसको जगत्काकारण कैसे मानिये?हे रामजी! परमात्मा से जगत् और अविद्या इकट्ठेही आभासमात्र फुरे हैं पर वह आभास कुछ वस्तु नहीं

ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै, न कहीं अविद्याहै;न जगत्है आत्मसत्ता सदा ज्यों-की त्यों स्थित है। हे रामजी! निर्विकल्प में जगत्का अत्यन्ताभाव होताहै सो निर्वि-कल्प कैसेहो? जो निर्विकल्प होताहै तब जड़ता आती है और जब विकल्प उठताहै तब संसार उदय होता। जब ध्यान लगाता है तब ध्याता, ध्यान और ध्येय त्रिपुटी होजाती है। इसप्रकार तो निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती क्योंकि; निर्विकल्पमें भी स्व-रूपकी प्राप्ति नहीं होती। निर्विकल्प उसका नामहै जहां चित्तकी वृत्ति न फुरे पर तब भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; वहां भी अभाववृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है और जड़ात्मक सुषुप्तिरूप है। सविकल्प सुषुप्तिमें भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती इससे सम्यक्बोधका नाम निर्विकल्प है। जिसको सम्यक्बोध निर्विकल्पतासे जगत् का अत्यन्ताभाव हुआहै वह जीवन्मुक्तहै, वही निर्विकल्प कहाता है और वही परम-जड़ताहै जहां जगत्का परम असम्भवहै।हेरामजी! वह जो निर्विकल्प और सविकल्प है उससे स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; ये दोनों मनकी वृत्ति हैं। जैसे एक निद्राकी वृत्ति स्वप्न और सुषुप्तिरूपहै, तैसेही यह निर्विकल्प और सविकल्प मनकी वृत्तिहै। निर्विकल्प सुषुप्तिरूप और पत्थरवत्है और सविकल्प स्वप्नवत् चंचलरूप है। निर्विकल्पमें भी अभाववृत्ति रहती है इससे उसमें भी मुक्ति नहीं होती। मुक्ति तब होती है जब दृश्यका अत्यन्ताभाव होता है। हे रामजी! जहां आत्मअनुभव आ-काशसे इतर कुछ उत्थान नहीं होता–उसका नाम अत्यन्त सुषुप्ति निर्विकल्पताहै। हे रामजी! ऐसे होकर तुम चेष्टा भी करोगे तौभी कर्त्तृत्व और भोक्तृत्वका अभिमान तुमको न होगा। आत्माको अद्वैत और जगत्का अत्यन्ताभाव जाननेही का नाम बोधहै। जब इस बोधकी दृढ़ता और इसके ध्यानकी दृढ़ताहो तब उसका नाम परम पदहै; उसीकानाम निर्वाणहै और उसीको मोक्ष भी कहते हैं। जो पद किंचन और अ-किंचनहै और सर्वदा काल अपने आपमें स्थितहै उसमें न नानात्व कहना है; न अ-नाना शब्दहै; न सविकल्पहै; न निर्विकल्प है; न सत्य है; न असत्य है; न एकहै और न दोहैं उसमें सर्व शब्दोंका अन्तहै और किसी शब्दसे वाणी नहीं प्रवर्त्तती। उसीसत्ता को प्राप्त होनेका उपाय मैं कहताहूं। हे रामजी! यह मोक्षका उपाय ग्रंथ जो मैंने तुम से कहाहै इसको विचारना। जो पुरुष अर्द्धप्रबुद्ध है और पदपदार्थ जाननेवालाहै उ-सको यदि मोक्षकी इच्छाहै तो वह इसग्रंथको विचारताहै, शुभआचार करके बुद्धिको निर्मल करताहै और अशुभक्रियाका त्यागकरता है तो उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी। हेरामजी! जो मोक्ष उपाय शास्त्रके विचारसे प्राप्त होताहै सो तीर्थ,स्नान तप और दानसे नहीं प्राप्त होता। तप, दानादिक करके स्वर्ग प्राप्त होता है मोक्ष नहीं मिलता। मोक्षपद अध्यात्मशास्त्रके अर्थ अभ्याससेही प्राप्त होता है। यह जगत्

आभासमात्र है; वही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है। जैसे जलही तरंगरूप होकर भासता और बायुही स्पन्दरूपहै,तैसेही ब्रह्म जगत्‌रूप होकर भासता है। जैसे स्पन्द और निस्स्पन्दमें बायु ज्योंकीत्यों है परन्तु स्पन्द होती है तब भासती है और निस्स्पन्द होती है तो नहीं भासती,तैसेही ब्रह्ममें संवेदन फुरतीहै तब जगत्‌हो भासती है और जब निर्वेदन होती है और अन्तर्मुख अधिष्ठानकी ओर आती है तब जगत् समेटाजाताहै परन्तु संवेदनके फुरनेमें भी वही है और न फुरनेमें भी वही है। इसलिये, हे रामजी! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूपहै, ब्रह्मसे इतर कुछ नहीं बना और जो इतर भासता है सो भ्रममात्रही जानना। जब आत्मपदका आभासहो तब भ्रान्ति शान्त होजाती है। जैसे प्रकाशसे अन्धकार नष्ट होजाता है, तैसेही आत्मपदके अभ्याससे भ्रांति निवृत्त होजाती। यद्यपि नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है परन्तु कुछ हुई नहीं। जैसे स्वप्ने में सृष्टि दृष्टि आती है परन्तु कुछ बनी नहीं; वही अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकर भासती है, तैसेही यह जगत् सब अनुभवरूप है। जैसे रत्न और रत्नके चमत्कारमें कुछ भेद नहीं,तैसेही आत्मा और जगत्‌में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! तुम स्वभाव निश्चय होकर देखो कि, भ्रम मिटजावे। सृष्टि, स्थिति और प्रलय सब उसीकी संज्ञाहैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टपंचाशत्तमस्सर्गः २५८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सब आकार जो तुमको भासते हैं सो संवेदनरूप हैं और कुछ बने नहीं। सृष्टिके आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्तमें भी वही रहती है और मध्यमें जो आकार भासतेहैं उसेभी वही रूप जानो। जैसे स्वप्नेकी सृष्टिके आदि शुद्ध संवित् होती है और उसमें आकार भासि आता है सोभी अनुभवरूप है, और कुछ नहीं बना; आत्मसत्ताही पिण्डाकारहो भासती है और जितने कुछ पदार्थ भासते ह सो आकाशरूप आभासमात्रहैं। आत्मसत्ता सदा शुद्धहै परन्तु अज्ञानसे अशुद्ध की नाईं भासती है; विकारसे रहितहै परन्तु विकार सहित भासती है; अनानाहै परन्तु नानाकी नाईं भासती है और आकारसे रहितहै परन्तु आकार सहित भासतीहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपना अनुभवरूप होती है परन्तु स्वरूपके प्रमादसे नानाप्रकार भिन्न भिन्नहो भासती है और जागेसे एक आत्मरूप होजाती है; तैसेही यह सृष्टिभी अज्ञान से नानाप्रकार भासती है और ज्ञानसे एकरूप भासती है। विद्यमान भासती है पर उसे असत्यही जानो। आत्मसत्ता सदा शुद्धरूप,शांत और अनन्तहै और उसमें देश,काल और पदार्थ आभासमात्रहैं। जो तुम कहो कि, आभासमात्र है तो अर्थाकार क्यों होते हैं? तो उसका उत्तर यहहै कि; जैसे स्वप्नमें अंगना कंठसे मिलती है और उसमें प्र-

त्यक्षराग और विषयरस होताहै सो आभासमात्रहै;तैसेही जाग्रत्में अर्थाकार, क्षुधाको अन्न, तृषाको जल और और भी सब ऐसेही होते हैं और सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर जो इनका कारण बिचारिये तो कारण कोई नहीं मिलता। जिसका कोई कारण न मिले उसे जानिये कि, आभासमात्रहै। हे रामजी! यह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बना; आदि जो आभास फुराहै वह बुद्धिपूर्वकहै और उसमें जगत्का संकल्प दृढ़हुआहै तब कारण करके कार्य भासनेलगा परन्तु जिनको स्वरूपका प्रमाद हुआ है उनको कारणसे कार्य भासनेलगे और जो आत्मस्वभावमें स्थितहुये हैं उनको सर्व जगत् आत्मस्वरूपहै। हे रामजी! कारणसे कार्य तब हो जब पदार्थ भी कुछ बस्तुहो। जैसे पिता की संज्ञा तब होतीहै जब पुत्र होताहै और जो पुत्रही न हो तो पिता कैसे कहिये? तैसेही कारण तब कहिये जब कार्यहो; जो कार्य जगत् ही कुछ नहीं तो कारण कैसे कहिये? हे राम-जी! कारण और कार्य अज्ञानीके निश्चयमें होतेहैं। जैसे चरखेपर बालक भ्रमताहै तो उसको सबपृथ्वी भ्रमती दृष्टि आतीहै; तैसेही अज्ञानीको मोह दृष्टिसे कारण कार्य भाव दृष्टि आताहै और ज्ञानी को कारण कार्य भाव नहीं भासता। स्मृतिभी जगत् का कारण तब कहिये जो स्मृति जगत्से पूर्वहो पर स्मृतिभाव अनुभवभी इस जगत् मेंही फुरी है। यहभी आभासमात्र है परन्तु जिसको भासीहै उसको तैसीहीहै हे राम-जी! स्मृति, संस्कार और अनुभव ये तीनों आभासमात्र हैं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मामें तीनों भासते हैं। इसलिये इस कलनाको त्यागकर जगत् आभासमात्र जानो। जैसे स्वप्नेमें घट भासते हैं पर उनका कारण मृत्तिका क-हिये तो नहीं बनता क्योंकि; घट और मृत्तिका आभास इकट्ठा फुरा है इसलिये वे आभासमात्र हुये उसमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये;तैसेही स्मृति, संस्कार, अनुभव और जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं इनमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये? इसलिये सब जगत् आभासमात्रहै। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासताहै सो आत्मसत्ताका आभासहै; आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है। जैसे नेत्रका खोलना और मूँदना होताहै, तैसेही परमात्मामें जगत्की उ-त्पत्ति और प्रलय होती है। जब चित्तसंवेदन फुरती है तब जगत्रूप हो भासती है और जब फुरनेसे रहित होती है तब जगत् आभास मिटजाता है। जगत्की उत्पत्ति और प्रलयमें आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है। जैसे खुलना और मूँदना नेत्रोंका स्वभावहै, तैसेही फुरना और न फुरना संवेदनके स्वभावहैं। जैसे चलना और ठहरजाना उभय वायुके स्वभावहैं; जब चलती है तब भासती है और जब नहीं चलती तब नहीं भा-सती। चलनेमें वायुकी तीन संज्ञा होती हैं—एक मन्दमन्द चलती है अथवा बहुत चलतीहै;दूसरे शीतल अथवा उष्ण स्पर्श होताहै और तीसरे सुगन्धि अथवा दुर्गंधि

शुक्क होती है । ये तीनों संज्ञा फुरनेमें होती हैं पर जब फुरनेसे रहित होती है तब तीनों संज्ञा मिटजाती हैं। जैसे एकही अनुभवमें स्वप्ने और सुषुप्तिकी कल्पना होती है; स्वप्नेमें जगत्ही भासता है और सुषुप्तिमें नहीं भासता परन्तु दोनोंमें अनुभवएकही है, तैसेही संवित्के फुरने से जगत् भासता है और ठहरने में अच्युतरूप होजाता है पर आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों एकरूप है। इसलिये जो कुछ जगत् भासताहै सो आत्मा से भिन्ननहीं वहीरूप है और जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तीनों आत्मा के आभास हैं—उनमें आस्था न करना । हे रामजी ! यह परमसिद्धांत तुमको मैंने उपदेशकिया है और जिनयुक्तियों से कहे हैं वैसी कोई नहींकहेगा । अज्ञानी को संसाररूपी बड़ी भ्रांति उदय हुईहै परन्तु जो मेरे शास्त्रको बारम्बार बिचारेगा उसकीभ्रांति निवृत्त होजावेगी । दिनके दो बिभाग करे; आधेदिन पर्यंत मेराशास्त्र बिचारे और आधादिन अपने आचार में व्यतीत करे पर जो आधेदिन इसशास्त्र का विचार न करसके तो एक प्रहरही बिचारे। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार निवृत्त होताहै, तैसेही उसकी भ्रांति निवृत्त होजावेगी। जो मेरे वचनोंको वृथा जानकर निन्दा करेगा उसको आत्मपदकी प्राप्ति न होगी क्योंकि; उसने शास्त्रके भेदको नहींजाना। जीवको यह कर्तव्य है कि, प्रथम और शास्त्रको देखकर विचारले फिर पीछेसे इसको बिचारे कि, उसको इसशास्त्रकी महिमा भासे। हे रामजी! यह मोक्षोपाय शास्त्र आत्मबोधका परमकारण है। यदि जीव पदपदार्थोंका जाननेवाला हो और इस शास्त्रको बारम्बार विचारे तो उसकी भ्रांति निवृत्तहोजावेगी। जो संपूर्ण ग्रंथके आशयको न जानसके तो थोड़ाथोड़ा बांचे और बिचारे तो उसको सब समझपड़ेगा। हेरामजी! यदि मनुष्य कुछ भी पदार्थ जाने तो इसके विचारने और पढ़नेसे बुद्धिमान् होताहै और यहप्रीतिमान् करलेता है । इसके विचारनेवालेकी बुद्धि और शास्त्रकी ओर नहींजाती इससे यह विचारनेयोग्य है। जो पुरुष आत्मविचारसे रहितहै उसका जीनावृथा है और जिनको यह विचार है उनको सब पदार्थ आत्मरूप होजातेहैं। जो एकश्वासभी आत्मविचार से रहित होताहै सो वृथाजाता है। एक श्वासके समान संपूर्ण पृथ्वीका धन नहीं है। जो सम्पूर्ण पृथ्वीके रत्न न जावें और एक श्वास जाय तो फिर मांगे नहीं मिलता। ऐसे श्वासको जो वृथागवाँते हैं उनको तुम पशुजानो। हे रामजी! आयुर्बल बिजुली के चमत्कारवत् है। जैसे बिजुलीका चमत्कार होकर मिटजाता है, तैसेही शरीर आयुर्बल होकर नष्ट होजाता है । ऐसे शरीर को धारकर जो सुखकी तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं। हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् आभासमात्र है और सत्यभासताहै तौभी इसको असत्यजानो। जैसे स्वप्नेकी सृष्टिमें कोई मृतकहोताहै और उसके बांधवरुदन करते हैं और इसका प्रत्यक्ष अनुभव होताहै परन्तु हुआ कुछनहीं सब भ्रांतिमात्रहै,

तैसेही यह जगत् भ्रममात्र जानो ॥ इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थगीता वर्णनन्नामद्विशताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः २५९ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! जगत् तो अनेक और असंख्यरूप हुयेहैं और आगे होंगे पर उन जगतों की कथाओं से आपने मुझे उपदेश करके क्यों न जगाया? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! ये जो जगज्जालके समूहहैं उनमें जो पदार्थहैं सो सब शब्द अर्थसे रहित ,, और जो शब्दअर्थ से रहितहुये तो कुछनहये; इसलिये व्यर्थकहनेका क्याप्रयोजनहै। हे रामजी! जबतुम विदितवेद और निर्मल त्रिकालदर्शी होगे तब इन जगतोंको जानोगे। मैंने आगेभी तुमसे बहुतबार कहाहै और बारम्बार वही वर्णन करने में पुनरुक्ति दूषणहोता है परन्तु समझाने के निमित्त कहा है। जैसे एकसृष्टि को जाना, तैसेही संपूर्ण सृष्टियोंको जानो। जैसे अन्नके समूहसे एकमुट्ठीभर के देखनेसे जानलियाजाता है कि, सब ऐसेही हैं;तैसेही एकही सृष्टि को यथार्थजाना तो सबसृष्टियों कोभी जानलिया। हे रामजी! यह सर्व जगत् किसी कारणसे नहीं उत्पन्न हुआ। जिसमें कारण बिना पदार्थ भासे उसे जानिये कि, वही रूप है। सृष्टि के आदि भी वही सत्ताथी; अन्तभी वही होगी और मध्यमें जो कुछ भासता है उसे भी वही रूप जानिये। जैसे स्वप्ने के आदि भी अपना निर्मल अनुभव होता है; स्वप्नेके निवृत्त हुये भी वही रहता है और स्वप्ने के मध्य जो पदार्थ भासता है उसेभी वही जानिये और वस्तु कुछ नहीं अनुभवसत्ताही इसप्रकार हो भासती है। जब तुम विदितवेद होगे तब सर्व जगत् तुम को अपना आप भासेगा। हे रामजी! एक एक अणुमें अनेक सृष्टि हैं सो सब आकाश रूप हैं कुछ हुई नहीं। इसपर एक आख्यान कहताहूं सो सुनो। एक काल मैंने ब्रह्माजी को एकांतपाकर प्रश्नकिया कि; हे भगवन्! यह सृष्टि कितनी है और किसमें है? तब पितामहने कहा, हे मुनीश्वर! सर्व जगतों के शब्द अर्थ सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मसे इतर कुछ नहीं; जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् हैं तिनको सब जगत् आत्मरूप भासता है। जिसप्रकार जगत् हुआ है सो भी सुनो। हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाशके सूक्ष्मअणु में फुरना हुआ कि, 'अहमस्मि;' तब उस अणु ने आपको जीवजाना। जैसे अपने स्व में आपको जीवजाने और सर्व्वात्माहो तैसेही चिद्अणु सर्व्वात्मा अहंकारको अंगीकारकरके आपको जीव जाननेलगा और उसमें जो निश्चय होगया वह बुद्धि हुई। जैसे वायु में फुरना हो तैसेही तिसमें संकल्प विकल्परूपी फुरनाहुआ उसका नाम मनहुआ। तब मनके साथ मिलकर चिद्अणुनेदेहको चेता और अपने में देह और इन्द्रियां भासनेलगीं और अपने साथ शरीर देखा कि, यह शरीर मेराहै। जैसे स्वप्ने में अपनेसाथ कोई शरीरको देखे और बड़ा स्थूल दृष्टिआवे, तैसेही उसने अ-

पने साथ स्थूल शरीर देखा। जैसे स्वप्ने में सूक्ष्म अनुभव से बड़े पर्वत दृष्टि आतेहैं, तैसेही सूक्ष्म अणुसे स्थूल विराट् शरीर भासनेलगा। फिर देशकाल की कल्पना की और नाना प्रकारके स्थावर जंगम प्राणी विराट् भासनेलगे। जैसेस्वप्नेमें देश,काल और पदार्थ भासिआवें सो कुछ नहीं हैं, तैसेही देशकाल पदार्थ भासिआये परन्तु हैं कुछनहीं। जब चित्तसंवित् बहिर्मुख फुरतीहै तब नानाप्रकारकाजगत् भासता है और जब अन्तर्मुख होती है तब अवाच्यरूप होजाती है। जैसे वायुचलने और ठहरने में एकरूपहोती है, तैसेही फुरने अफुरने में संवित् एकही अभेदहै। हे रामजी! जितना जगत् है वह आकाश में आकाशरूप अपने आपमें स्थित है और अणु अणुप्रति सर्वदा काल सृष्टि है परन्तु आभासमात्र है। जो चैतसंबंधी होकर जीव सृष्टिकाअंत ले तो सृष्टि अनन्तहै इसका अंत कहीं नहीं आता। यह सृष्टि अविद्यारूप है सो अविद्याही चैत है। जब अविद्यासंबंधी होकर जगत् का अंतदेखेगा तब अंत कहीं न आवेगा और संसरने का नाम संसार है; जब स्वरूप में स्थित होगे तब सब जगत् ब्रह्मरूप होजावेगा और जगत् की कल्पना कुछ न भासेगी। हे रामजी! इस जगत् केआदिभी अद्वैत सत्ताथी; अंत में भी अद्वैतसत्तारहेगी और मध्य में जो कुछ भासता है उसको भी वही रूपजानो और कुछ बना नहीं। यह जगत् अकारण है अधिष्ठानसत्ता के अज्ञान से भासता है। इसीकानाम जगत् है और इसीकानाम अविद्या है। अधिष्ठान को जानने का नाम विद्या है। हे रामजी! न कोई अविद्या है और न जगत् है, ब्रह्मही अपने आप में स्थित है। चाहे जगत् कहो और चाहे ब्रह्म कहो दोनों एकही वस्तुके नाम हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मांडोपाख्याननाम द्विशताधिकषष्टितमस्सर्गः २६०॥

रामजीनेपूंछा; हे भगवन्! यह मैंने जाना कि, जगत् अकारण है। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर होता है, तैसेही यह जगत् है। पर जो अकारणही है तो अब यहां पदार्थ अकारणरूप काहेको उपजते दृष्टि आतेहैं? कारण विना तो नहीं उत्पन्न होते भासतेहैं; यह क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सर्वात्म है, उसमें जैसा निश्चय होता है तैसाही होकर भासता है; पर क्या भासताहै; अपना अनुभवही ऐसे होकर भासता है। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवही नानाप्रकार के पदार्थ होकर भासता है परन्तु उपजाकुछ नहीं सर्व पदार्थ आकाशरूपहैं; तैसेही यह जगत् कुछ उपजा नहीं कारण से रहित आकाशरूप है। हे रामजी! आदि सृष्टि अकारण हुई है; पीछे से सृष्टि में आभासरूप मनने जैसा जैसा निश्चयकिया है तैसेही है क्योंकि;सर्व शक्तिरूप है। आदिसृष्टि जो उपजती है सो अकारणरूप है और पीछे से सृष्टिकाल

में कारणकार्यरूप हुये हैं। जैसे स्वप्न सृष्टि आदिकारण विना होती है और पीछेसे कारण कार्य भासते हैं पर वास्तव में न कोई आकाश; न शून्यहै, न अशून्यहै; न सत्य है, न असत्यहै; न असत्यसत्य के मध्य है, न नित्य है, न अनित्य है; न परमहै, न अपरमहै; न शुद्धहै, न अशुद्ध है; द्वैतकुछ नहीं सब भ्रम है। हे रामजी! ज्ञानवान्को सर्व शब्द और अर्थ ब्रह्मरूप भासतेहैं। हमको तो कारण-कार्य भावकी कल्पनाकुछ नहीं। जैसे सूर्यमें अन्धकारका अभावहै, तैसेही ज्ञानवान् को कारण कार्यका अभाव है। जो सर्वात्माही है तोकारण कार्य किसको कहिये? रामजीने कहा कि; हे भगवन्! मैं ज्ञानी की बात पूंछताहूं; उनको कारणकार्यभाव किसनिमित्त नहीं भासता? जोकारण कार्य नहीं तो मृत्तिका और कुलालआदि द्वारा घटादिक क्योंकर उत्पन्नहोते दृष्टि आतेहैं? इससे तुमकहो कि, ज्ञानवान् को अकारण कैसे भासताहै और अज्ञानीको सकारण क्योंकर भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई कारण है, न कार्य है और न कोई अज्ञानी है मैं तुमसे क्याकहूं? जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनके निश्चय में जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती; उनके निश्चय में तो जगत्हैहीनहीं तो ज्ञानी और अज्ञानी क्या है? हे रामजी! आकाश का वृक्षनहीं तो उसका वर्णन क्या कीजिये? जैसे हिमालय पर्वत में अग्निका कणका नहींपायाजाता, तैसेही ज्ञानीके निश्चय में जगत् नहीं। ज्ञानी और अज्ञानी और कारण और कार्य ये शब्द जगत् में होतेहैं पर जो जगत्ही नहीं फुरा तो कारण, कार्य, ज्ञानी और अज्ञानी तुमसे क्या कहूं? जैसे स्वप्ने की सृष्टि सुषुप्ति में लीनहोजातीहै और वहां शब्द और अर्थकोई नहीं फुरता, तैसेही ज्ञानवान् के निश्चय में जगत्ही नहीं फुरता। हे रामजी! हमको तो सर्वब्रह्मही भासता है। मुझको कुछ कहना नहीं आता परन्तु तुमने पूंछा है इस निमित्त कुछ कहताहूं और अज्ञानी के निश्चय को अंगीकार करके कहताहूं। हे रामजी! यह जगत् अकारण और आभासमात्र है; किसी आरम्भ और परिणाम से नहीं हुआ। जब पदार्थों का कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान ब्रह्मही निकलताहै जो अद्वैत, अच्युत और सर्व इच्छासे रहितहै तो उसको कारण कैसे कहिये? इससे जानाजाताहै कि, जगत् आभासमात्रहै और कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अकारण होती है और उसमें अनेकपदार्थ भासते हैं पर उसका कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान अनुभवही निकलताहै और उसमें आरम्भ और परिणाम कुछ हुआ नहीं। सृष्टि अनुभवरूपहो भासती है जो पुरुष स्वप्ने में है उसको स्वरूपके प्रमादसे कारण कार्य जगत् और पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं; तैसेही जाग्रत् जगत् भासताहै। हे रामजी! सृष्टि आदि अकारणहुई है और पीछे सृष्टिकालमें कारण-कार्यरूपहो भासते हैं। जिसको अपना वास्तवस्वरूप स्मरण है

उसको अकारण भासताहै और जिस अज्ञानीको अपने वास्तव स्वरूपका प्रमादहै उसको कारण कार्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है । हे रामजी ! वास्तवमें एकही अनुभव आत्मसत्ताहै परन्तु जैसा जैसा अनुभवमें संकल्प दृढ़ होता है उसहीकी सिद्धि होती है और जिसका तीव्रसंवेग होताहै वहीहो भासता है । इसमें कुछ संदेह नहीं कि, कल्पवृक्षके पदार्थ संकल्पकी तीव्रतासे प्रत्यक्षहोतेहैं तो उन्हें किसका कार्यकहिये? यदि जगत् किसीकारणसे उत्पन्न होता तो महाप्रलयमें भी कुछ शेष रहता-जैसे अग्नि के पीछे राख रहजाती है पर जगत् के पीछे तो कुछ नहीं रहता और जैसे स्वप्नेकी सृष्टि जागेहुये पर कुछ नहीं रहती, तैसेही महाप्रलयमें जगत्का शेष कुछ नहीं रहता; इससे जाना जाताहै कि, यह आभासमात्र है । जैसे ध्यानमें ध्याता पुरुष किसी आकारको रचताहै तो उसका कारण कोई नहीं होता वह तो आकाशरूप है और अनुभव सत्ताही फुरनेसे इसप्रकार भासती है-आकार तो कोई नहीं और जैसे गन्धर्व नगर कारणसे रहित भासताहै,तैसेही यह जगत् कारण बिना भासिआया है । न कोई पृथ्वी है,न कोई जलहै,न तेज,वायु और आकाशहै सब आकाशरूप है परन्तु संकल्पकी दृढ़तासे पिण्डाकार भासते हैं । हे रामजी ! जब मनुष्य मरजाता है तब शरीर यहांहीं भस्म होजाताहै, फिर परलोकमें अपने साथ शरीर देखताहै और उस शरीरसे स्वर्ग नरकमें सुख दुःख भोगताहै तो उसका कारण कौनहै ? उसका कारण कोईनहीं पायाजाता केवल अपनी चैतनतामें संकल्पकी बासना जो दृढ़ हुई है उसीके अनुसार शरीर भासता है और स्वर्ग नरकमें दुःख सुख भासते हैं और तो कुछवस्तु नहीं । सब पदार्थ संकल्पके रचेहुये हैं सो सब आत्मरूप हैं जैसे आकाश व्योम और शून्य एकही वस्तुके नाम हैं, तैसेही कोई जगत् कहो और कोई ब्रह्मकहो इनमें भेदनहीं । फुरनेका नाम जगत् कहतेहैं और अफुरनेका नाम ब्रह्महै। जैसे वायु के चलने और ठहरने में भेदनहीं, तैसेही ब्रह्मको संवेदनके फुरने और न फुरने में भेद कुछनहीं । जो सम्यक्दर्शी हैं उनको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है इसकारण दोष किसीमें नहीं रहता और जो बड़ाकष्ट प्राप्तहोता है तौभी वे खेदवान् नहीं होते। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने में युद्ध करता है और उसको अपना जाग्रत्स्वरूप हृदय में आता है तो स्वप्ने को स्वप्ना जानताहुआ और युद्ध करता है तौभी दुःख होता है, तैसेही जो पुरुष परमपदमें जागाहै उसको सब क्रिया होतीहैं परन्तु आपको अक्रिय जानताहै । हे रामजी ! ज्ञानवान्‌को सब चेष्टा होतीहैं परन्तु उसके निश्चयमें क्रियाका अभिमान नहींहोता । जैसे नटुवा सब स्वांग धारता है परन्तु आपको स्वांग से रहित जानता है और स्वांगकी क्रियाको असत्य जानता है क्योंकि; उसको अपना स्वरूप स्मरण रहता है; तैसेही ज्ञानवान् सब क्रिया को असत्य जानता है । हे रामजी ! ये

सर्वपदार्थ अजातजात हैं—उपजे कुछनहीं। जैसे स्वप्ने में पदार्थ भासते हैं परन्तुउपजे नहीं अपना अनुभवही इस प्रकार भासता है; तैसेही ये जगत् के पदार्थ भी अनुभवरूप जानो। हे रामजी! बहुत शास्त्र और वेद मैं तुमको किस निमित्त सुनाऊं और किस निमित्तपढ़ूं; वेदान्त शास्त्रों का सिद्धांत यही है कि, वासना से रहित हो। इसीका नाम मोक्ष है और वासना सहित का नाम बन्ध है। वासना किसकी कीजिये यह तो सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है। इसमें क्या आस्था बढ़ाइये; ये तो स्वप्ने के पर्वत हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मगीतावर्णनंनाम
द्विशताधिकैकषष्टितमस्सर्ग्गः २६१॥

श्रीरामजीने पूछा; हे भगवन्! सब जगत् में तीन प्रकारके पदार्थ हैं—एक अप्रत्यक्ष पदार्थ; दूसरे प्रत्यक्ष पदार्थ और तीसरे मध्यभावी। जैसे वायु अप्रत्यक्षहै क्योंकि; रूप से रहि हैं परन्तु स्पर्श संयोग से भासतीहै इसलिये मध्यभावी प्रत्यक्षहै। अप्रत्यक्ष जो किसी से मिलेनहीं सो यह संवित् अप्रत्यक्ष है। हे मुनीश्वर! चन्द्रमा के मण्डलमें भी यह संवेदन जातीहै और फिर गिरतीहै और वृत्ति चित्तकरके चन्द्रमा को देखती है औ फिर आतीहै इससे जाना कि, निराकार है; जो साकार होतीतो चन्द्रमारूप होजाती फिर संवेदन आती—जैसे जलमें जल डाला फिर नहीं निकलता—इस कारण जानताहूं कि, यह अप्रत्यक्ष अर्थात् निराकार है। हे मुनीश्वर! अज्ञानी का आशय लेकर मैं कहताहूं कि; इस शरीर में जो प्राण आतेजाते हैं सो कैसे आते जाते हैं? जो तुमकहो कि, संवित् जो ज्ञानशक्ति है सो इस शरीर और प्राण को लिये फिरती है—जैसे मजूर भारकोलिये फिरता है—तो ऐसे कहना नहीं बनता क्योंकि; संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है। अप्रत्यक्ष साकार से नहीं मिलती तो वह चेष्टा क्योंकर करे? जो कहो कि, निराकार संवित्ही चेष्टा कराती है तो पुरुषकी संवित् चाहती है कि; पर्वत नृत्यकरे पर वह तो इसका चलाया नहीं चलता और क ते हैं कि, ये पदार्थ उठआवें परन्तु वे तो नहीं उठते क्योंकि; पदार्थ साकार रूप हैं और वृत्ति निराकार है; इसका उत्तर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस शरीर में एकनाड़ीहै जब वह अवकाशरूपी होतीहै तब उसमेंसे प्राणवायु निकलता है और जब संकोचरूप होती है तब प्राण वायु भीतर आताहै जैसे लुहारकी धौंकनी होती है तैसेही इसके भीतर पुरुष बलहै उससे चेष्टा होतीहै। रामजीनेपूछा, हे भगवन्! धौंकनी भी तब हलती है जब उसकेसाथ बलका स्पर्शहोताहै और स्पर्श तब होताहै जब प्रत्यक्ष वस्तु होतीहै पर चैतन्यता तो निराकारहै उसको स्पर्श क्योंकर कहिये? जो तुमकहो कि; उसकी इच्छाही से स्पर्शहोताहै तो, हे मुनीश्वर! मैं चाहताहूं कि, मेरे सम्मुख जो वृक्षहै सो गिरपड़े पर

वह तो नहीं गिरता क्योंकि, इच्छा निराकारहै जो साकार से स्पर्शहो तब उसकी शक्ति से गिरपड़े। यदि इच्छासेही चेष्टा होती है तो कर्म इन्द्रियां किस निमित्त हैं इच्छाही से जगत् की चेष्टा हो? यहभी संशय है कि, एकके बहुत क्योंकर होजाते हैं और बहुत का एक क्योंकर होजाता है? एक चैतन है पर जब प्राण निकलजाते हैं तब पाषाण और वृक्षकीनाईं जड़ होजाताहै; आत्मातो सर्वव्यापी है जड़कैसे होजाता है? कोई पाषाण और वृक्षरूप जड़है और कोई चैतन है यहभेद एकआत्मामें कैसेहुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे संशयरूपी वृक्षोंको मैं वचनरूपी कुल्हाड़े से काटता हूँ। जिनको तुम प्रत्यक्ष साकार कहते हो सो आकार कोईनहीं सब निराकार हैं; वह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ताही इसप्रकारहो भासती है—ये आकार कुछबने नहीं। जैसे स्वप्न नगर में आकार भासते हैं सो सब आकाशरूप निराकार हैं; तैसेही ये आकारभी जो तुमको दृष्टि आतेहैं सो सब निराकारहैं। स्वप्नेमें जो पर्वतभासतेहैं सो किसके आश्रय होतेहैं और देहादिक भासतेहैं सो किसके आश्रयहैं; इसलिये वे कुछ बनेनहीं अनुभव सत्ताही आकाररूपहो भासतीहै; तैसे इसेभीजानो कि, आकार कोई नहीं। हे रामजी! जब इन पदार्थोंका कारण बिचारिये तो कारण कोईनहीं निकलता, इसीसे जानाजाता है कि; आभासमात्रहैं बनेकुछनहीं और आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है। आत्मसत्ता अद्वैत और परमशुद्धहै उसमें जगत्कुछ बना नहीं तो मैं आकार क्याकहूँ और निराकार क्याकहूँ? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशभी द्वैत कुछ नहीं शुद्ध आत्मसत्ताही इसप्रकारहो भासती है। जैसे संकल्पके रचे पदार्थ होते हैं सो अनुभवहैं; तैसेही ये सब पदार्थ अनुभवरूपहैं--अनुभवसे भिन्न कुछनहीं। इस पर एक आख्यान कहताहूं उसे मनलगाके सुनो। हे रामजी! आगे भी मैंने तुमसे कहाहै और अब भी प्रसंगको पाकर कहताहूं। एक समय एक सृष्टिमें एक इन्द्र ब्राह्मण था जो मानों ब्रह्माहीथा। उसके गृहमें दशपुत्रहुये जो मानों दशोंदिशाथे। कुछ कालमें वह ब्राह्मण मृतक हुआ और उसकी स्त्री पतिव्रता थी इसलिये उसके प्राण भी छूटगये—जैसे दिनके पीछे संध्या आजातीहै। तब उनपुत्रोंने यथाशास्त्रक्रमसे उनकी क्रियाकी और फिर एकपहाड़की कन्दरामें जा स्थितहुये और विचारनेलगे कि; किसी प्रकार हम ऊंचे पदको पावें। हेरामजी! आगे मैंने तुमको सुनायाहै कि, प्रथम उन्होंने मंडलेश्वर; चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिकके पदको विचारा और फिर बड़ेभाईने निर्णय करके यही कहा कि; सबसे ऊंचा ब्रह्माजीका पदहै जिनकी यह सब सृष्टि रचीहुईहै इसलिये हमदशों ब्रह्माहोवें। ऐसे विचार करकेवे दशोंपद्मासनबांधके बैठे और यह निश्चय धारा कि, हम चतुर्मुख ब्रह्माहैं और सबसृष्टिहमारी रचीहै। निदान वे ऐसे होगये मानों पुतलियां लिखीहुई हैं और खानपानसे रहित मास, युग और वर्ष व्यतीत होगये पर वे

ज्योंके त्योंरहे चलायमान न हुये। जैसेजल नीचेठौरमें जाताहै ऊंचेको नहींजाता, तैसेही उन्होंने अपना निश्चय न त्यागा औरदृढ़रहे। जबकुछकालव्यतीतहुआ तब उनके शरीर गिरपड़े औरउनको पक्षीखागये परउनकी जोब्रह्माकी वासनासंयुक्त संवित्थी उसवासनासे दशोंब्रह्माहोगये औरउनकी दशहीसृष्टि देश, काल, पदार्थ औरनेतिसहित होगई। जैसे हमारी सृष्टिहै, तैसेही वे सृष्टि हुई। हेरामजी! वे सृष्टि क्या रूपहुई आत्माही वस्तु हुई और तो कुछनहीं; कुछ और होवे तो कहूँ। इससे सृष्टिका औररूप कुछनहीं अपना अनुभवही सृष्टिरूप भासता है और जो कुछपदार्थ भासते हैं सो सबआत्मरूप हैं। हे रामजी! जैसे हमब्रह्माके संकल्पमें रचेहैं तैसेही उन्होंनेभी रचालिये और वेभी इसप्रकार स्थितहोगये; इससे सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप है। जो किसीकारण से जगत् बनाहोता तो जानाजाता कि, कुछहुआ है पर इसका कारण कोईनहीं पायाजाता इससे संकल्पमात्र और आभासमात्र है। इससे कहताहूँ कि, ब्रह्महीं है और बस्तुकुछनहीं। जो कुछपदार्थ पाषाण, वृक्ष, जड़-चैतन्य भासतेहैं सोसब भ्रमस्वरूपहैं उनसे भिन्नकुछ नहीं। हेरामजी! महाभूतजो वृक्ष, पृथ्वी, आकाश, पहाड़हैं ये सब चिदाकाशरूपहैं-चिदाकाशसेभिन्न कुछनहीं। जैसे इन्द्रकेपुत्र एकसे अनेक होगये, तैसेही यहसृष्टिभी एकसे अनेकहै और प्रलयमें अनेकसे एकहोजातीहै। जैसे एक तुमस्वप्नेमें अनेकहोजातेहो और सुषुप्तिमें अनेकसेएक होजातेहो तैसेही यहजगत्भीहै और अकारणरूपहै। यदि इसेसकारणभीमानिये तो आत्मरूपीकुलालहै; संकल्पचक्रहै और अनुभव चैतन्यरूपी घट उससेउपजतेहैं और आभासभीवहीहै कुछदूसरीबस्तुनहीं। यहसबजगत्वहीरूपहै। जैसे इंद्रब्राह्मणके पुत्रोंको अपने अनुभवहीसे सृष्टिफुरआई सो अनुभवरूपही भासनेलगा इससे और कुछ न भई, तैसेही इससृष्टिकोभीजानो। हे रामजी! घट, वृक्ष, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब चैतन्यरूप हैं-चैतन्यसे भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्नेमें अपना अनुभवही घट, पहाड़, नदियां और पदार्थहो भासताहै-अनुभवसे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवसे भिन्ननहीं-ज्ञानीकोसदा यही निश्चय रहताहै। अब एक अनेकका उत्तर सुनो। हेरामजी! जैसे मनोराजमें एकसे अनेक होजाते हैं और अनेकसे एक होजाताहै; एवम् चैतन्यसे जड़ होजाताहै पर जड़ कोईपदार्थ नहीं भासता सर्वपदार्थ चैतन्यरूपहै। जहां अन्तःकरण प्रकटहोताहै सो चैतन्य भासताहै और जहां अन्तःकरण नहींमिलता सो जड़भासताहै-चैतन्यका आभास अन्तःकरणमें मिलता है पर जब पुर्य्यष्टका निकलजाती है तब जड़भासताहै। यहअज्ञानीकी दृष्टि कहीहै पर मुझसे पूछो तो जिसको जड़कहते हैं और जिसको चैतन कहते हैं और पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी कहते हैं वे सब ब्रह्मरूपहैं-ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं। जैसे स्वप्नेमें कितने जड़ और कितने चैतन्य पदार्थ भासते हैं और नानाप्रकारके पदार्थ भिन्नभिन्न भासते हैं पर सब

आत्मरूपहैं; भिन्न कुछ नहीं;तैसेही यह जगत् सब आत्मरूपहै और इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप हैं। सब नामरूप आत्माके हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं। शून्य, अशून्य, सत्य, असत्य सब आत्माकेनाम हैं–आत्मासे भिन्नकुछ नहीं। हे रामजी ! जिसको मूर्ख जड़कहते हैं सो जड़नहीं सब चैतन्यरूप हैं और सृष्टिकाल में जड़ही हैं। वे संवेदन में जड़रूप होकर रचितहुये हैं;वे चैतन्यही रचे हैं; जिसको अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद होता है उसको ये जड़ चैतन्य भिन्न भिन्न भासते हैं पर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको एक ब्रह्मसत्ताही भासती है। हे रामजी! यह मैंने तुम को उपदेश कियाहै सो बारम्बार बिचारने योग्यहै। जो कोई इसको नित्य विचारता रहेगा उसके दोष घटते जावेंगे और हृदय शुद्ध होगा और जो ब्रह्मविद्याको त्यागकर जगत्की ओर चित्तलगावेगा उसके दोष बढ़ते जावेंगे। हे रामजी ! ज्योंज्यों जीवकोब्रह्म विचार उदय होता जावेगा त्योंत्यों दुःख नाशहोते जावेंगे जैसे ज्यों ज्यों दिन उदय होताहै त्यों त्यों तम नष्ट होजाताहै–और विचारके त्यागे दुःख बढ़ते जातेहैं। जो महापापी हैं उनके पाप मेरे शास्त्रका संग न करनेदेंगे और उनको यह जगत् वज्रसार की नाईं दृष्टिआता है और संसार भ्रम कदाचित् निवृत्त नहीं होता। यह सब जगत् मैं,तुमआदि आकाशरूप हैं और भाव–अभाव आदिक सबशब्द ब्रह्मसत्ताके नाम हैं जोपरमशुद्ध, निरामय और अद्वैतहै और सदा अपनेही आपमें स्थितहै। जितने पदार्थ उसमें भासतेहैं वे ऐसेहैं जैसे शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै सो सबशिल्पीके चित्तमें होतीहैं, तैसेही जगत्के पदार्थोंकी प्रतिभा जो सब मनमेंहै सो उसीका किंचनरूप है कुछ भिन्नवस्तु नहीं। वह सदा अपने आपमें स्थितहै और परम मौनरूपहै उसमें विकल्प कोई नहीं प्रवेश करसक्ता ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्राख्यानवर्णनंनाम
द्विशताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः २६२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सर्वलोक चिन्मात्रहै इसीसे शांत और अद्वैतरूपहै। अज्ञानीको भिन्नभिन्न जगत् भासताहै और ज्ञानीको सब निराकार और आकाशरूपहै। आकार कुछ बने नहीं, आत्मसत्ता निराकारहै और वही परमशुद्धसत्ता इसप्रकार भासती है सोशांतरूप, अनंत और चिन्मात्रहै;इन्द्रियांभी ज्ञानरूपहैं औरहाड़, मांस,रुधिर,हाथ,पैर,शिरआदिक संपूर्णशरीरभी ज्ञानमात्रहै–ज्ञानसे भिन्नकुछ नहीं–चिन्मात्रही इसप्रकारहो भासताहै। जैसे स्वप्नेमें शरीरादिक और पहाड़, नदियां और वृक्ष भासतेहैं सो अपनाही अनुभवरूपहै कुछ और नहीं बना तैसे और यहजगत् सब अनुभवरूप है और कारणसे रहित कार्य भासताहै। तुम अपने अनुभवमें जागकर देखो कि, सब अनुभवरूपहै। आकाशमें आकाशभी आकाशरूपहै; सत्यमें

सत्यहै; भावमें भावहै और अभावमें अभावहै सर्व आत्मरूपहै भिन्नकुछ नहीं। जो तुम कहो कि,वस्तुकारणहीसे उत्पन्न होतीहै सोसत्यहोतीहै परन्तु जगत्का कारणकहींनहीं मिलता इससे यह मिथ्याहै तो कारणभी इसका तबकहिये जब यहकुछ वस्तु हो और कार्यभी तब कहिये जब इसका कारण सत्यहो। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता तो न किसीका समवाय कारणहै और न किसीकानिमित्त कारणहै। वह तो केवलअच्युतहै इसीसे समवाय कारण नहीं और अद्वैतहै इससे निमित्तकारणभी नहीं। वह तो सर्व इच्छासे रहितहै उसको किसका कारण कहिये और जोकारण नहीं तो कार्य किसका हो। इससे सर्व जगत् जो भासताहै सो आभासमात्रहै—उसी ब्रह्मसत्ताकानाम जगत्है। जैसे निद्रा एकहै और उसके दोस्वरूपहैं—एक स्वप्न और दूसरासुषुप्ति—फुरनेरूपका नाम स्वप्नाहै और न फुरनेरूपका नाम सुषुप्तिहै; तैसेही चैतन्यकेभी दोस्वरूप हैं फुरनेरूप चैतन्यका नाम जगत् है और अफुररूप का नामब्रह्महै। जैसे एकही वायुके चलना और ठहरना दोपर्यायहैं—जब चलतीहै तब लखनेमें आतीहै और ठहरतीहै तब अलक्ष्य होजातीहै और शब्दका विषय नहींहोती; तैसेही ब्रह्मसत्ताअफुरमें शब्दकी प्रवृत्तिनहीं होती। जब फुरतीहै तब द्रष्टा,दर्शन और दृश्य त्रिपुटीरूप हो भासती है और एकसे अनेकरूपहो भासती है, अनेकसे एकरूप है। जैसे एकही जल नदी,नाला,तालाब आदि भिन्न २ संज्ञापाताहै और जब समुद्रमें मिलता है तब एकरूपहो भासताहै; एवम् जैसे एकही कालके दिन, मास,वर्ष,युग, कल्प,घटी, मुहूर्त्त आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु काल तो एकही है; एक मृत्तिकाकी सेनाके हाथी, घोड़े आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु मृत्तिका तो एकही है; एक वृक्षके फूल, फल, टास, पत्र भिन्न २ नाम होते हैं परन्तु वृक्ष तो एकहीरूप है और एक जल के तरंग, बुद्बुदे, आवर्त्त, फेन आदिक नाम होते हैं परन्तु जल तो एकही है; तैसे परमात्मा में जगत् अनेक नामरूपको प्राप्त होताहै परन्तु सदा एकही रसरूप है। जैसे स्वप्ने में एकही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है और भिन्न २ नामरूपहो भासती है पर जब जागताहै तब अद्वैतरूप होताहै; तैसेही यह जगत् भी भिन्न२ नामरूप भासताहै परंतु आत्मसत्ता एकही है। हे रामजी! जब तुम उसमें जागोगे तब तुमको सब अपना आप अनुभवहो भासेगा जो केवल आत्मत्वमात्र और अनन्य अनुभवरूपहै। आत्मरूपीसमुद्रमें जगत्रूपी जलके कणके हैं। जैसे आकाशमें नक्षत्र फुरते हैं, तैसेही आत्मा में जगत् फुरते हैं। तारे तो आकाशसे भिन्नहैं परन्तु जगत् आत्मासे भिन्न नहीं—जैसे जलसे बूंद अभिन्न है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनाम
द्विशताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः २६३॥

श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! अंधकारमें जो पदार्थ होता है सो ज्योंकात्यों क्यों नहीं भासता पर जब सूर्यका प्रकाश होताहै तब ज्योंकात्यों भासता है। इस निमित्त कहताहूं कि; संशयरूपी तमके कारण जगत् ज्योंकात्यों नहीं भासता। पर तुम्हारे वचनरूपी सूर्यके प्रकाशसे जो पदार्थ सत्यहै उसको सम्यक्ज्ञानसे जानूंगा। हे भगवन्! पूर्वमें एक इतिहास हुआ है उसमें मुझको संशयहै सो दूर कीजिये। एक कालमें मैं अध्ययनशालामें विपश्चित पंडितसे अध्ययनकरताथा और बहुत ब्राह्मण बैठेथे कि, एक ब्राह्मण विदितवेद; बहुत सुन्दर; वेदान्त; सांख्य आदि शास्त्रोंके अर्थसे सम्पन्न; बड़ा तपस्वी और ब्रह्मलक्ष्मीसे तेजवान्–मानों दुर्वासा ब्राह्मण है–सभामें आकर परस्पर नमस्कार करके आसन पर बैठा और हम सबने उसको प्रणाम किया। उस समय वेदांत, सांख्य, पातंजलादिक शास्त्रों की चर्चा होती थी परन्तु सब तूष्णीं होगये और मैं उससे बोला कि, हे ब्राह्मण! तुम बड़ी दूर से आये हो; तुमने किस परमार्थ के निमित्त इतना कष्ट उठाया और तुम कहां से आते हो सो कहो? ब्राह्मण बोला, हे भगवन्! जिस प्रकार वृत्तांत हुआ है सो मैं कहता हूं। हे रामजी! विदेह नगर का मैं ब्राह्मण हूं–वहां मैंने जन्म लिया था और कुन्दवृक्ष के श्वेत फूलों के समान मेरे दाँत हैं इस कारण मेरे पिता माता ने मेरा नाम कुन्ददन्त रक्खा है। विदेह राजा जनकका जो नगर है वहां से मैं आयाहूं। वह नगर आकाश में जो स्वर्ग है मानों उसका प्रतिबिम्ब है और वहां के रहनेवाले शांतिमान् और निर्मल हैं। वहां मैं विद्यापढ़नेलगा और मेरामन उद्वेगवान् हुआ कि, यह संसार महाक्रूर बन्धन है इसलिये किसीप्रकार इस बन्धन सेछूटूं। हे रामजी! ऐसावैराग्य मुझकोउत्पन्नहुआ कि, किसी प्रकार शांतिमान् न हुआ। तब मैं वहां से निकला और जोजो शुभस्थान थे वहां विचरनेलगा। सन्तों और ऋषियोंके स्थान, ठाकुरद्वारे और तीर्थ आदि जो २ पवित्रस्थानथे उनका दर्शन किया। वहांसे आते एक पर्वत मिला उस पर मैं चढ़गया और एक उत्तमस्थानपर चिरपर्य्यंत तपकिया। फिर वहां से एकांत के निमित्तचला तो आगे एक आश्चर्य देखा सो कहताहूं। हे रामजी! मैं वहां से चलाजाताथा कि, बड़ाश्यामबन दिखलाईदिया जो मानों आकाशकी मूर्त्तिथा और शून्य और तमरूप था। उसबन में एकवृक्ष मुझकोदृष्टि आया जिसके कोमल पत्र और सुन्दर टहनियांथीं और उसमें एकपुरुष लटकताथा जिसकेपांवमें मूंजका रस्सा बँधाथा जो वृक्षसे बांधाहुआथा और उसका शीशनीचे, चरणऊपर और दोनों हाथ छातीपर पड़ेहुयेथे। तब मैंने विचारकिया कि, यहमृतकहोगा इसकोदेखूं। जब मैं निकटगया तब उसमें श्वासआतेजातेदेखे। उसको युवावस्थाकाशरीर था और वह हृदय से सबकाज्ञाता और शीत, उष्ण, अन्धेरी और मेघकोसहरहाथा। हे रामजी! तब

मैंने जाना कि, यह तपस्वी है और इसकी शूरबीरताबड़ी है। निदान मैंउसके
बैठगया और उसके चरण जो बांधेहुयेथे उनको कुछढीलाकिया। फिर उस
कहा कि, हे साधो। ऐसी क्रूरतपस्या तुम किसनिमित्त करतेहो; अपनावृत्तांत
कहो? उसने नेत्रखोल के कहा, हे साधो! यहतप मैं अपनी किसी कामना
करताहूं पर वह ऐसी कामना है कि, जो तुम उसे सुनोगे तो हँसीकरोगे। हे र
जब इसप्रकार उसने कहा तब मैंने कहा, हे साधो! मैं हँसी न करूंगा, तू अ
त्तान्तकह और जो कुछ तेराकार्यहो तो कहमैं करदूंगा। जब मैंने इसप्रकार ब
कहा तब उसने कहा कि, मनको उद्वेगसे रहित करके सुन मैं कहताहूं। मैं ब्र
और मथुरा में मेराजन्महुआ है। वहां जब मेरी बालअवस्था व्यतीतहुई अ
वन अवस्था का प्रारम्भहुआ तब मैंने वेद और शास्त्रों को भली प्रकारजाना
वासना मुझे उदयहुई कि; सब से बड़ा सुख राजा भोगता है इसलिये मैं राज
सुखभोगूं कि; क्या सुख है क्योंकि, और सुख मैंने भोगे हैं। फिर बिचार कि
राज्यकासुखतो तब भोगसक्ताहूं जब राजाहोऊं परराजाक्योंकरहोजाऊं;राजा त
है जबतपकरता है; इससेतपकरूं। हे साधो! ऐसे बिचारकर मैं तपकरनेलगा;
दशवर्ष मुझेतपकरते व्यतीतहुये हैं और आगेभीकरूंगा। जबतक सप्तद्वीपक
मुझको नहीं प्राप्त होता तबतक मैं तपकरूंगा। मैंने यही निश्चय धारा है कि
मेरा शरीरही नष्ट होगा अथवा सप्तद्वीप का राज्यही मुझको प्राप्तहोगा। यह
निश्चय है सो मैंने तुझसे कहा, अब जहां जानेकी तुझको इच्छाहो वहांजा।
जी! इसप्रकार कहकर उस तपस्वी ने फिरनेत्र मूँदकर चित्त स्थित करने को
धानकिया और इन्द्रियों से विषयों को त्यागकर मन निश्चलाकिया। तब मैंने
कहा कि, हे मुनीश्वर! मैंभी तेरेपास बैठाहूं और जबतक तुझेवरकीप्राप्ति न
तबतक मैं तेरीटहलकरूंगा—मुझे तेरेऊपर दयाआईहै। हे रामजी! इसप्रकार
कहकर मैं उद्वेग से रहित षट्मासपर्यंत उसके पास बैठारहा; और उसकी रक्ष
रहा; जब धूपआवे तब छायाकरूं और आंधी और मेघमें अपने शरीर को
उसकी रक्षाकरूं। निदान छः महीनेबीते तब सूर्य के मंडल से एक पुरुष निक
बड़ा प्रकाशवान्—मानों विष्णुभगवान् का तेजथा और वह हमारे निकट आ
सको देखकर मैंने मन, वाणी और शरीर तीनों से उसकी पूजाकी; तब उस
कहा; हे तपस्विन्! अब इस तपको त्याग और जो कुछ इच्छाहै सो माँग। तेरी
तो यही है कि, मैं सप्तद्वीपका राजाहोऊं सो तू सप्तद्वीप पृथ्वी का राजा और
में होगा और सप्त सहस्र वर्षपर्यंत राज्य करेगा परन्तु और शरीर से होगा
मजी! इस प्रकार कहकर वह पुरुष सूर्य के मंडल में अन्तर्द्धान होगया। जैसे

से तरंग निकलकरलयहोजावे, तैसेही वह लीनहुआ तब मैंने उससे कहा, हे ब्राह्मण अब तू क्यों संकटलेता है ? जिसनिमित्त तू तपकरता था सो वरतो तुझको प्राप्तहुआ-अब क्यों संक करता है ? हे रामजी ! जब इसप्रकार मैंने कहा कि, सूर्य के मंडल से निकलकर एकबड़ा तेजवान् पुरुष तुझको वरदेगयाहै तब उसने नेत्र खोल दिये और मैंने उसके चरणों से रस्सीखोलदी । उसका तेज उससमय बड़ा होगया और उसके शरीर की कांति प्रकाशवान् हुई । उस स्थान के निकट एक जलसेरहित तालावथासो उसके पुण्यसे जलसे पूर्ण होगया और उसमें हम दोनोंने स्नान किया और मंत्र पाठकर के संध्याकी । और फिर हम दोनों वृक्षोंके नीचेआये और जो वृक्ष फल से रहित थे वे उसकी पुण्य वासना से फल से पूर्ण होगये निदान उनफलों को हमने भक्षणकिया और तीनदिनपर्यंत वहां रहकर फिर चले तब वह बोला; हे साधो! हमदेश को चले हैं । जब तक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी हैं । फिर आगे एक बनआया जिसमें बहुत सुन्दर फूल, फल और बूटेलगे हुये थे और उनपरभँवरे विचरतेथे; जलके प्रवाहचलतेथे और कोयल, तोते, बगलेआदि पक्षी संयुक्त वृक्ष हमनेदेखे । आगे फिर तालवृक्ष बहुत देखे और कन्दरा के स्थान आये उन्हें हम लांघतेगये । हे रामजी ! इसी प्रकार हम राजसी, तामसी और सात्त्विकी तीनोंगुणों के रचे स्थानोंको लांघते२ मथुरा नगरके मार्ग आये जो सूधाथा पर उसको छोड़कर वह टेढ़ेमार्ग को चला तब मैंने कहा; हे साधो ! सूधे मार्ग को छोड़कर तू टेढ़ क्यों चलताहै ? उसने कहा, हे साधो ! चलाआ इसमार्ग में गौरीभगवतीका स्थानहै उनका दर्शन करतेचलें और मेरे सातभाई जो गौरी के स्थानपर उसीकामनाको लेकर तप करतेथे उनकी भी सुधिलें । हे रामजी ! जब हम उसमार्ग के सन्मखचले तब आगेएक महाशून्य बनआया जो मानो शून्य आकाश था और महातमरूपथा । कि, वहां वृक्ष, पशु, पक्षी, और मनुष्य कोई दृष्टि न आताथा । उसबनमें पहुंचकर उसने मुझसेकहा, हे ब्राह्मण ! इसस्थानमें मैं आगे षट्मासरहाहूं और मेरे सातभाई और थे उन्हों ने भी यही कामना धारकरके देवीका तप आरम्भ कियाथा चलो देखें । वह महापवित्र स्थानहै जिसके दर्शन कियेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं । तब मैंने कहा चलिये पवित्रस्थानको अवश्य देखाचाहिये । हे रामजी ! ऐसे विचारकर हम चले और जाते२ मरुस्थलकी तपीहुई पृथ्वीपर जानिकले तब वह ब्राह्मण देखकर गिरपड़ा और कहने लगा कि, हा कष्ट२ हम कहां आनपड़े ! तब तो मुझको भी भ्रम उदयहुआ कि, यह क्या हुआ । निदान वह फिर उठा और दोनों आगेगये तो एक वृक्ष हमको दृष्टिपड़ा कि; उसके नीचे एक तपस्वी ध्यानमें स्थित बैठाथा । हम उसके निकट गये और कहा; हे मुनीश्वर ! जाग जाग । जब हमने बहुत बार कहा तब उसने नेत्र खोलकर हमको

देखा और कहा तुम कौनहो ? ऐसे कहकर फिर कहा बहुत आश्चर्य है कि, यहां गौरी का स्थानथा वह कहांगया और और वृक्ष,बावलियां, कमल और सुन्दरस्थान और बड़े ऋषीश्वर और मुनीश्वरोंके स्थानथे वह कहांगये ? हे साधु ! यह क्या आश्चर्य हुआ सो तुम कहो ? तब हमने कहा,हे मुनीश्वर ! हम नहीं जानते हम तो अभी आये हैं; इसको तो तुम्हीं जानो। तब उनने कहा बड़ा आश्चर्य है ! हे रामजी ! ऐसे कह कर वह फिर ध्यानमें स्थित होगया और व्यतीत वृत्तांतका ध्यानकरके देखनेलगा। एक मुहूर्त्त पर्यन्त देखकर उसने फिर नेत्र खोलकर कहा कि, बड़ा आश्चर्य हुआहे !! तब हमने कहा, हे भगवन् ! जो कुछ वृत्तांतहुआ सो कृपाकरके हमसे कहो। तब तपस्वीने कहा,हे साधो ! एक समय बागेश्वरी भवानी इस बनमें आई और उसने रहने का एक स्थान बनाया जिसमें वह शिवकी अर्द्धशरीर गौरी रही। उस स्थानके निकट बहुत सुन्दर कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष, कदम्बवृक्ष इत्यादिक बहुत वृक्ष लगाये;कमलफूल आदि सर्वऋतोंके फूललगाये और बावलियां और बगीचे अति रमणीयरचे जिनपर कोयल, भँवरे,तोते,मोर,बगले आदि पक्षी विश्राम करने और शब्द करनेलगे। उसके निकट ऋषीश्वरों; मुनीश्वरों और तपस्वियोंकी कुटियां इन्द्रके नन्दनबन सदृश थीं और निकट व गांवकी बस्ती बहुत हुई। हे साधो ! यहां आठ ब्राह्मण तपके निमित्त आये थे और षट्मास यहांही रहे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मगीतागौरीबागवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुष्षष्टितमस्सर्ग्गः २६४॥

कदम्ब बोले, हे साधो ! मुझसे पूछो तो अपना वृत्तांत मैं कहताहूं। मैं मालवदेश का राजाथा और चिरपर्यंतखेदसे रहित मैंने विषयभोग भोगे तब मुझको यहविचार उपजा कि, यह संसार स्वप्नमात्र है और इसको सत्य जानकर स्थित होना मूर्खताहै। इतनी मेरी आयुर्बल बीती पर मैंने सुकृत कुछ न किया। यह विषयभोग आपात रमणीय और नाशवन्तहैं इनको मैं चिरपर्यंत भोगता रहाहूं और मुझको शान्ति न प्राप्त हुई—तृष्णा बढ़तीगई—इससे वही उपायकरूं जिससे मुझको शांतिहो और फिर कदाचित् दुःखी नं होऊं। हे साधो ! जब यहविचार मुझको उदयहुआ तब मैंने वैराग्य करके राज्यकीलक्ष्मी त्यागकी और ऋषि और मुनियोंके स्थान देखता इसकदम्बवृक्ष के नीचे आया। यहां आठ भाई ब्राह्मण आये थे उनमेंसे एक यह तो इसी पर्वतपर तपकरनेलगा था; दूसरा स्वामिकार्त्तिकके पर्वतपर तपकरने गया; तीसरा बनारस में तपकरने लगा, और चौथा हिमालयपर तपकरनेगया। चारभाई तो इसप्रकार चारोंस्थानोंको गये और चारभाई यहां तपकरनेलगे। उनसबकी यही कामना थी कि, हम पृथ्वीके सातोंद्वीपोंके राजाहों। हे साधो ! इसको तो सूर्यने वरदियाहै और बाकी

जो सातथे उन्होंने बागेश्वरी भवानीका इष्टकरके तपकिया । जब वह प्रसन्नहुई और बोली कि, वर मांगो तब उन्होंने कहा कि, हम सप्तद्वीप पृथ्वीके राजाहों । निदान उन सातोंने एकही वरमांगा और उनको वरदेकर परमेश्वरी अन्तर्द्धान होगई । उन्होंने यहभी वरमांगा था कि, यहांके वासियोंका स्थानभी हमारेपासहो । हे साधो ! इसवरको पाकर वे वहांसेचले और अपने गृहगये और बागेश्वरी वहां बारहवर्ष पर्यंतरहकर फिर उनकी मर्यादा थापनेके निमित्त यहांसे अंतर्द्धान होगई और यहांके वासी भी सबजातेरहे । बागेश्वरीके जानेसे यह स्थानशून्य होगया । एकयह कदम्बका वृक्ष रहगयाहै और एक मैं ध्यानमें स्थितरहाहूं । यह कदम्बका वृक्ष बागेश्वरीने अपनेहाथसे लगाया इस कारण यहनष्ट नहीं हुआ और जर्जरी भावभी नहीं हुआ। हेसाधो! और सबजीव यहांआकर अदृष्टहोगये इसकारण सबशुभआचाररहे।उन आठोंभाइयोंमें सातआगे गयेहैं और एक यह बैठाहै इसको भी घरजानाहै; वहां सब इकट्ठे होंगे। जैसे अष्टबसु ब्रह्मपुरीमें एकत्रहों । हे साधो ! जब वे गृहसे तप करनेके निमित्तनिकले तब उनकी स्त्रियोंने बिचारकिया कि;हमारे भर्त्ता तो तपकरनेगये हैं हमभी जाकर तपकरें इसलिये उनआठों ने तप आरम्भ किया और सौ सौ चान्द्रायणव्रत किये तब उनका शरीर जैसे बसंतऋतुकी मंजरी जेठ आषाढ़में कृशहोजाती है तैसेहीहो गया । एकतो भर्त्ताका बियोग; दूसरे तपसे वे कृशहोगईं तब पार्वती बागेश्वरी प्रसन्न हुई और बोलीं कि, कुछवरमांगो । जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्नहोकर बोलता है, तैसेही वे प्रसन्नहोके बोलीं; हे देवताओंकी ईश्वरी ! हमयह बरमांगती हैं कि, हमारे भर्त्ता अमरहों और जैसेतेरा और शिवकासंयोगहै तैसेही हमारा उनकाहो । तब भवानीने कहा, हे सुभद्रे ! इस शरीरसे तो कोई अमर नहीं रहता । आदि जो सृष्टिहुई है उसमें नेतिहुई है कि, शरीरसे कोईअमर नरहेगा और जितना कुछ जगत् देखती हो वह सब नाशरूपहै; कोई पदार्थ स्थिर नहीं रहता इसलिये और कुछ वरमांगो । तब ब्राह्मणियोंनेकहा, हे देवी ! भलाजो हमारे भर्त्तामरें तो उनकेजीव हमारे गृहमें रहैं और उनकी संवित् बाहर न जावे । तब बागेश्वरीने कहा,ऐसेही होगा कि, उनके जीव तुम्हारेही घरमें रहेंगे और उनको जो लोकांतर भासेगा उसके साथही तुमभीउनकी स्त्रीहोकर स्थितहोगी । ऐसे कहकर बागेश्वरी अंतर्द्धान होगई । कुन्ददंत बोले, हे रामजी ! इसप्रकार सुनकर मैं आश्चर्य्यवान् हुआ तब मैंने कहा, हे मुनीश्वर ! यह तो तुमने बड़ी आश्चर्य्य कथा सुनाई कि, आठों भाइयों ने एकही वरपाया । उनको एक पृथ्वी में सात २ द्वीपों का राज्य क्योंकर प्राप्त होगा ? हे रामजी ! जब इस प्रकार उससे मैंने पूछा; तब कदम्बतपने कहा, हे साधो ! यह क्या आश्चर्य्य है और आश्चर्य्य सुनो । हे ब्राह्मण ! जब यह आठों भाई तप के लिये घर से निकले थे

तब इनके पितामाता नेभी विचारकिया कि, हमारे पुत्र तो तपकरनेगये हैं इसलिये हमभी उनके निमित्तजाकर तपकरें और उनकी स्त्रियोंको अपने साथलेकरतीर्थ और ठाकुरद्वारे दिखातेफिरें। निदान उन्होंनेभी बैठकर तपकिया और कुछ चान्द्रायणव्रत करके देवीको प्रसन्नकिया। देवीसे बरलेकर जब वे अपने घरको आनेलगे तब एक स्थानमें दुर्बासा ऋषीश्वर बैठाथा, जिसके दुर्बल अंग और बिभूति लगीथी और जटा खुलीहुई थी। उसको देखकर वे पाससेही चलेगये पर उसे नमस्कार नकिया तब उसने कहा, हे ब्राह्मण! तुम क्यों दुष्ट स्वभावसे हमारे पाससे चलेगये और हम को नमस्कारभी नकिया? अब तुम्हाराबर निवृत्तहोगा। जो वर तुमको प्राप्तहुआहै सो नहोगा उसके बिपरीत होजावेगा। तब उन्होंने कहा, हे मुनीश्वर! यह बचनतुम कैसे कहते हो; हमारे ऊपर क्षमाकरो। यह ऐसेही कहरहेथे कि,वह अन्तर्द्धान होगया और ब्राह्मण अपने गृहमें आये और शोकवान् हुये हे ब्राह्मण! देख जबतक आत्म-बोधसे शून्य है तब तक अनेक दुःख उपजेंगे; कई प्रकारके आश्चर्य भासेंगे और संदेह दूर न होवेगा। जब आत्मबोध होगा तब कोई संसार आश्चर्य न भासेगा। हे ब्राह्मण! यह सब चिदाकाशमें मायामात्रही रचना बनती है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्राह्मणकथाबर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्गः॥ २६५॥

कुन्ददन्तने कहा, हे भगवन्! मैं यहसुनकर आश्चर्यवान् हुआहूँ और मुझेएक संशय उत्पन्नहुआ है सो निवृत्त कीजिये? तुमने कहा कि, एकद्वीप में आठों इकट्ठे सप्तद्वीपके राजा होंगे पर सातोद्वीप तो एकही हैं और राज्य करनेवाले आठ हैं, यह कैसे राज्यकरेंगे? और इन्होंने वर और शाप दोनों पाये हैं यह इकट्ठे क्योंकर होंगे? जैसे धूप और छाया; और दिन और रात्रि इकट्ठे होने कठिन हैं; तैसेही बर और शाप एक होने कठिन हैं। कदम्बतप बोले, हे साधो! जो कुछइनकी भविष्यत्होगी सो मैं कहताहूँ। जबकुछ काल गृहस्थी में ब्यतीत होगा तब इनके शरीर छूटजावेंगे और इनको कुटुम्बी जलावेंगे। इनकी पुर्यष्टका अनुभव से मिलीहुई है इस कारण एक मुहूर्त्त पर्यंत इनको जड़ीभूत सुषुप्तिहोगी और उसके अनन्तर चैतन्यता फुर आवेगी। तब शंख, चक्र, गदा, पद्म सहित चतुर्भुज बिष्णु का रूप धारके बर आवेंगे और त्रिनेत्र हाथमें त्रिशूललिये और भृकुटी चढ़ाये क्रोधवान् सदाशिव का रूप धारणकर शाप आवेंगे; तब बर कहेंगे कि, हे शाप! तुम क्यों आयेहो अब तो हमारा समय है? जैसे एकऋतके समय दूसरी नहीं आती, तैसेही तम न आवो। तब शाप कहेंगे, हे बरो! तुम क्यों आयेहो अबतो हमारा समय है? जैसे एक ऋतुके होते दूसरीका आना नहीं बनता, तैसेही तुम्हाराआना नहीं बनता। तब बरकहेंगे,

हे शाप ! तुम्हाराकर्त्ता ऋषि मनुष्यहै और हमाराकर्त्ता देवताहै। मनुष्यसे देवता पूजनेयोग्य है क्योंकि; बड़ेहैं, इससे तुम जावो। जब इसप्रकार बर कहेंगे तब शाप क्रोधवान्होंगे और मारनेके निमित्त त्रिशूल हाथमें उठावेंगे । तब बर कहेंगे, हे शाप! यदि तुम और हमलड़ेंगे तो पीछे किसी बड़े न्याय कर्त्ता के पास जावेंगे जो हमारा न्याय चुकादेगा इससे प्रथमही क्यों न जावें ? तब शाप कहेंगे, हे बर ! जो कोई युक्तिसहित वचन कहता है उसको सबकोई मानते हैं; तुमने भलाकहा है चलिये। ऐसेचर्चा करके दोनों ब्रह्मपरीमें जावेंगे और ब्रह्माजीको प्रणाम करेंगे और अगला वृत्तांतकह कर कहेंगे, हे देव ! यह हमारा न्यायकरो कि, उनको बर स्पर्शकरे अथवा शापस्पर्श करे ? तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे साधो ! जिसका अभ्यास उनकेभीतर दृढ़हो वह प्रवेश करै। तब बरकेस्थान शापजाकर ढूढ़ेंगे और शापके स्थान बरजाय ढूढ़ें और ढूँढ़कर शापआयके कहेंगे;हे स्वामिन्! हमारी हानिहुई और बरकी जयहुईहै क्योंकि;उनकेभीतर बरहीस्थित है। जिसका अभ्यास हृदयमें स्थित है उसीकी जय होती है सो तो इनकेभीतर बज्रसारकीनाईं बर स्थितहै। हे स्वामिन् ! हमारा अधिभौतिक शरीर कोईनहीं; हमतो संकल्परूप हैं। जिस संकल्पकी दृढ़ताहोती है वही उदय होताहै। बरका कर्त्ताभी ज्ञानमात्र होताहै; बरको लेताभी वहीज्ञानरूप है और बरको ग्रहण करता जानता है कि; यह हमारा स्वामी है। उस संकल्पसे बरका कर्त्ता देवताजानताहै कि, मैंने बरदिया है और ग्रहणकरनेवाला जानता है कि, मैंने बरलिया है। हे ईश्वर ! उसका जो बररूप संकल्प है सो उसके निश्चयमें दृढ़ होजाता है। जिस संकल्पकी संवित्से एकताहोतीहै वहीप्रकट होताहै । इसीप्रकार शापभी है परन्तु न कोई बरहै, न शाप है दोनों संकल्परूप हैं। जैसा संकल्प अनुभव आकाशमें दृढ़ होताहै वही भासता है। बरदेनेवाला भी अनुभवसत्ता है और लेनेवालाभी आत्मसत्ताहै। वहीसत्ता बररूप होकर स्थित होतीहै और वहीसत्ता शापरूप होकरस्थित होतीहै। जिस संकल्पकी दृढ़ता होतीहै उसीका अनुभवहोताहै। हे स्वामिन्! यहतुमसे सुनाहुआ हम कहते हैं कि;इसको कोई बाहरकाकर्म फलदायक नहींहोता जोकुछ भीतर सारहोता है वही फल होताहै। इनके भीतर तो बरका संकल्प दृढ़ है और हमारा नहीं है तो हमारा तुमको नमस्कार है—अब हम जातेहैं । हे कुन्ददन्त ! इस प्रकारसे शाप अधिभौतिक शरीर त्यागकर अन्तबाहक शरीरसे अन्तर्द्धान होजावेंगे। जैसे आकाश में भ्रमसे तरुवरे भासें और सम्यक्ज्ञानसे अन्तर्द्धान होजावें; तैसेही शाप अन्तर्द्धान होजावेंगे । तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे बर! तुम शीघ्रही उनके पास जावो और वहबर और दूसराबर जो उनकी स्त्रियोंने लियाथा कि, उनकी पुर्यष्टका अन्तःपुरमें रहे फिर पूँछेंगे, हे भगवन् ! हमकोक्या आज्ञाहै। हमको तोउनको

उसी मन्दिरमें रखना है और उनको सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्यभी भोगनाहै और दि-ग्विजय करना है यह कैसे होगा ? तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे साधो ! यह क्या है ? जो उन्हें सप्तद्वीपकी पृथ्वीका राज्य करना है तो उनका तुम्हारे साथ बिरोध कुछनहीं। तुमको उसीमन्दिरमें उनकी पुर्यष्टका रखनी है और वहांहीं राज्य भुगावना है इस-लिये जो कुछ तुम्हारा स्वभाव है सो करना। कुन्ददन्त ने पूँछा, हे भगवन् ! इससे तो हमको बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है कि, उसी मन्दिर में आठो भाई सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य कैसे करेंगे ? इतनी पृथ्वी उस मन्दिर में क्योंकर समावेगी यहीआ-श्चर्यहै ? जैसे कमलके फूलकी कलीमें कोईकहे कि,हाथी शयनकरे वा हाथीकीपंक्तिहै सो आश्चर्यहै; तैसेही यह आश्चर्य है। ब्राह्मण बोले, हे साधो ! ब्रह्मरूपी आकाशहै उसके अणुका जो सूक्ष्मअणुहै उसमें जो स्वप्नफुराहै सो हमारा जगत्है। यदि स्वप्ने में यह सृष्टि समारही है तो मन्दिरमें समाना क्या आश्चर्य है ! हे साधो ? यह सब जगत् स्वप्नमात्रहै और अहंत्वमादिक सब जगत् स्वप्न निद्रामें फुरताहै। आत्मसत्ता सदा अद्वैत, परमशांत और अनन्तहै और उसमें जगत् आभासमात्रहै। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवही सूक्ष्मसे सूक्ष्म होताहै और उसमें त्रिलोकी भासि आतीहै। यदि सूक्ष्म संवित्में त्रिलोकी भासिआतीहै तो मन्दिरमें भासना क्या आश्चर्यहै ? हे साधो! जब यह पुरुष मरजाताहै तब इसकी सूक्ष्मपुर्यष्टका जड़ होजाती है और उसमें फिर त्रिलोकी फुर आती है। तुम देखो कि, यदि सूक्ष्महीमें भासिआई और जो परमसूक्ष्म में सृष्टि बनजाती है तो मन्दिरमें होनेका क्या आश्चर्य है। हे साधो ! यह सर्वजगत् जो भासताहै सो आत्मामें स्थितहै और उसका किंचन इस प्रकारहो भासताहै। अब तुम जावो उनको राज्य भुगावो। हे कुन्ददन्त ! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहेंगे तब वर नमस्कार करके अधिभौतिक शरीर त्यागदेंगे और अन्तबाहक शरीरसे उनके हृदय में स्थित होंगे। जैसे एक शत्रुको दूरकरके दूसरा स्थितहो तैसेही शापको दूर करके उनके हृदयमें वर आन स्थित हुये और उनको त्रिलोकी भासनेलगी और पुर्यष्टका को अन्तःपुरमें वरने रोकछोड़ा। जैसे जल बनको रोकताहै तैसेही उनकी पुर्यष्टकाको वरने रोका। हे कुन्ददन्त ! इस प्रकार उनको अपने अन्तःपुरमें सृष्टि भासी और उ-न्होंने जाना कि, हम सातोंद्वीपके राजाहुये हैं। इसप्रकार वे आठो उस अन्तःपुरमें सातोंद्वीप पृथ्वीके राजा हुये परन्तु परस्पर अज्ञात रहे। एक सप्तद्वीपका राजा हुआ और जंबूद्वीप में जो उज्जैननगर है उसमें उसकी राजधानी हुई। दूसरा कुशद्वीपमें रहनेलगा; तीसरा क्रौंचद्वीपमें रहनेलगा, चौथा शाकद्वीपका राजा हुआ और उससे हरकारे कहनेलगे कि, पातालके नाग बड़े दुष्टहैं उनको किसीप्रकार जीतो। तब वह समुद्रके मार्गसे पातालमें नागोंको जीतने जावेगा और एकद्वीपमें अपनी स्त्रीसे शांत

होजावेगा । पांचवां शाल्मलिद्वीपमें स्थितहोगा जहां बड़ीप्रकाश संयुक्त स्वर्णकीपृथ्वी है । वहां एक पर्वत होगा और उसके ऊपर एक तालहोगा जिसमें वह विद्याधरों से लीला करता फिरेगा । और दिग्विजय करके आवेगा । उसकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा और मानसी पीड़ासे रहित होगी । छठा गोमेदकनाम्न द्वीपमें होगा और उसका युद्ध पुष्करद्वीप वालेसे होवेगा । सातवां पुष्करद्वीपका राजा होगा जो गोमेदकवाले राजा से युद्ध करेगा और आठवां लोकालोक पर्वतका राजा होगा । हे कुन्ददन्त ! इसप्रकार वे अपने अन्तःपुरमें सृष्टि देखेंगे और राज्य भोगेंगे परन्तु परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होगी । सबकी राजधानी भी मैंने तुझसे कही कि, एककी जम्बूद्वीपके उज्जैननगरमें; दूसरेकी कुशद्वीपमें; तीसरेकी क्रौंचद्वीपमें, चौथे की शाकद्वीपमें, पांचवेंकी शाल्मलिद्वीपमें; छठेकी गोमेदकद्वीपमें; सातवेंकी पुष्करद्वीपमें और आठवेंकी लोकालोक पर्वत स्वर्ण पृथ्वीमें होगी । हे साधो ! इसप्रकार उनकी भविष्यत् होगी सो मैंने सब तुमसे कही । जैसा हृदयमें निश्चय होताहै तैसाही फल होता है । बाहर कैसीही क्रिया करो और भीतरसत्ता नहीं तो वह फलदायक नहीं होती । जैसे नट स्वांग बनाकर चेष्टा करताहै परन्तु उसके भीतर उसका सद्भाव नहींहोता इससे वह फलदायक नहीं होती । हे साधो ! जैसा हृदयमें निश्चय होताहै वही वरदायक होता है, इसलिये परमार्थ का निश्चय करना योग्य है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्राह्मणभाविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः २६६ ॥

कुन्ददन्त बोले, हे मुनीश्वर ! मुझको बड़ा संशय हुआ है कि; उसी अन्तःपुरमें अपने अपने द्वीपोंका राज्य वे क्योंकर करेंगे ? कदम्बतप बोले, हे साधो ! यह सर्वजगत् जो तुझको दृष्टि आताहै सो कुछ बना नहीं; शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आप में स्थितहै । उनको जो अन्तःपुरमें अपनी अपनी सृष्टि भासेगी सो क्या रूप होगी ? उनका जो अपना अनुभवहै वही सृष्टिरूपहो भासेगा कि; आपही सृष्टिरूप और आपही राजा होंगे । यह जो कुछ जगत् तुझको भासताहै सोभी परब्रह्महै भिन्न कुछनहीं । जैसे समुद्रमें तरंग फुरते हैं सो जलहीरूपहैं और लीन होतेहैं तौभी जलही रूपहैं, जलसे भिन्न नहीं और न कुछ उपजता है, न मिटता है; तैसेही ब्रह्ममें जगत् न उपजताहै और न लीन होताहै परब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं इससे वे ब्राह्मण भी अजरूप अपने आपको फुरनेसे जगत्रूप देखेंगे । हे साधो ! जब सुषुप्ति होतीहै तब अद्वैत अपनाही अनुभवहोताहै और फिर उसमें स्वप्नेकी सृष्टि फुरआतीहै पर वही सुषुप्तिरूप है; तैसेही परमसुषुप्तिरूप आत्माहै जहां सुषुप्तिभी लीन होजाती है और उसमें यह जगत् फुरताहै सो वहीरूपहै । आधार—आधेयसे रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित

है। हे साधो! जैसे एकही मन्दिरमें बहुत पुरुष शयनकरें तो उनको अपने अपनेस्वप्ने की सृष्टि भासती है इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, तैसेही उनको अपनी अपनी सृष्टि भासेगी तो इसमें क्या आश्चर्य है? जो कुछ जगत् भासता है सो ब्रह्ममेंहै और ब्रह्मरूपही अपने आपमें स्थितहै। कुन्ददन्त बोले, हे भगवन्! आत्मसत्ता तो एक और केवलहै बल्कि उसको एक भी नहीं कहसक्के और परमशांतरूप, शिवपद और अद्वैतरूपहै तो नानाप्रकार क्यों भासती है? यह तो स्वभाव सिद्धहै सो नानात्व होकर वास्तव क्यों भासती है? कदम्बतप बोले, हे साधो! सर्वशांतरूप और चैतन्य आकाशहै और नानाप्रकारकी जो भासती है सो और कोई नहीं आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि भासतीहै सो कुछ नहीं बनी अपना अनुभवही सृष्टिरूपहो भासताहै; तैसेही यह जगत् अनुभवरूपहै। हे साधो! सृष्टिके आदि अद्वैत आत्मसत्ताथी उसमें जो जगत् भासिआया सोभी तुम वही रूप जानो। जैसे समुद्रही तरंगरूपहो भासताहै, तैसेही आत्मसत्ता सृष्टिरूपहो भासती है। जैसे कोई थंभे से रहित स्थानमें सोयाहो उसको बहुत थंभोंसंयुक्त मन्दिर भासिआवे तो वहां बना तो कुछ नहीं अनुभव आकाशही थंभरूपहो भासता है; तैसेही जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो अपना अनुभवरूप जानो। जैसे आकाश में शून्यता; अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता है; तैसेही आत्मा में जगत् है। चाहे कोई जगत् कहो अथवा ब्रह्मकहो पर ब्रह्म और जगत् में भेदनहीं। जैसे वृक्ष और तरु एकही वस्तु हैं; तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तुके दोनाम हैं। इसजगत; इंद्रियों और मनसे अतीत आत्माको जानो और जो इनतीनोंका विषय है सोभी आत्मा को जानो दूसरी वस्तु कुछ नहीं। नानारूप जोदृष्टि आताहै सो नानात्व नहींहुआ—दूसरा नहीं भासताहै। जैसेस्वप्नेमें बड़ेआरम्भदृष्टि आतेहैं और सेना और नानाप्रकारके पदार्थ भासतेहैं परन्तु कुछहुये नहीं, तैसेही यह जगत् नानाप्रकार भासताहै परन्तु कुछहुआ नहींसर्वचिदाकाशरूप हैं। जैसे एक निद्राकी दोवृत्तिहै—एकस्वप्न और दूसरी सुषुप्तिरूप—स्वप्नेमें नानात्व भासतीहै और सुषुप्तिमें एकसत्ता होतीहै; तैसेही चित्संवित्के फुरनेमें नानात्व भासताहै और न फुरनेमें एकहै। हे साधो! वह तो सर्वदा कालमें एकरूपहै परन्तु प्रमादसे भेदभासताहै। जैसेस्वप्नेकी सृष्टि अपनाही अनुभवरूप है परन्तु प्रमादसे भिन्नभिन्न भासतीहै; तैसेही यह जगत् है। हमको तो सर्वदाकाल वही भासता है। जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी एकही वृक्षके नामहैं; जो वृक्षका ज्ञाताहै उसको सबवृक्षरूपही भासताहै; तैसेही सर्वनामरूपसे हमको आत्माही भासताहै—आत्मासे भिन्नकुछ नहीं भासता। आदिफुरनेमें जैसे निश्चयहुआ है सो और निश्चय पर्यंत तैसेही रहताहै यहसब विश्व संकल्परूपहै और संकल्पका

राजसे स्वप्ननगर कल्पले और उसमें अनेक प्रकारकी चेष्टाकरे सो जबतक संकल्प होत है तबतक वहीसृष्टि स्थितहोतीहै और जबसंकल्प मिटगया तबसृष्टिलय होजातीहै तो और वस्तु कुछ न हुई तेराअनुभवही सृष्टिरूप होकर स्थितहुआ; तैसेही यह जगत् अनुभवरूपहै और कुछनहीं। कुन्ददन्तने पूछा, हे तपस्विन्! संकल्प तो पूर्वस्मृतिको लेकर फुरताहै; ब्रह्मामें मनोराज संकल्पकी सृष्टि किससंस्कार को लेकर फुरती है यहसंशय मेरा निवृत्तकरो? कदम्बतप बोले, हे साधो! यहसंपूर्ण सृष्टिकिसी संस्कारसे नहीं उत्पन्नहुई, भ्रमसे भासतीहै। जैसे स्वप्नेमें मनुष्य आपको मृतक हुआ जानताहै सोउसको पूर्वके संस्कारकी स्मृति तो नहीं होती अपूर्वही भासिआतीहै; तैसेही ये पदार्थ जो तुझको भासतेहैं सो अपूर्व हैं किसी स्मृति से नहीं हुये। स्मृति और अनुभव तो जगत्ही में उत्पन्नहुये हैं पर जब जगत्का फुरना न था तब स्मृति और अनुभयभी न थे। जब जगत् फुरा तबयेभी फुरे हैं इससे संपूर्ण जगत् अपूर्व है और भ्रम से भासताहै। जैसे स्वप्ने में मुआ किसी कुलमें अपनाजन्म देखे और उसको ऐसेभासे कि, कुलचिरकालकी चलआतीहै पर जबजाग उठे तब पूर्व किसको कहे। और स्मृति किसकी करे; न कहीं जन्मरहता है और न कुलरहता है; तैसेही ज्ञानवान्को यह जगत् आकाशरूप भासताहै तो मैं तुझको पूर्वकी स्मृति क्याकहूं? हे ब्राह्मण! और कुछ बनानहीं आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों स्थितहै। जिससे यहसर्व जगत् हुआहै; जिसमें यह सर्वहै और जो सर्वहै सो सर्वात्माहै। जो वहीहै तो दूसरा किसको कहूं? इससे ऐसे जानकर तुम विचारो तब सर्वदुःख तुम्हारे नष्ट होंगे। हे साधो! कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। कर्त्ता कर्मके करनेवाले को कहते हैं; कर्म जोहै सो करनेकी संज्ञा है; करण क्रियाका साधकहै सम्प्रदान जिस निमित्त हो; अपादान जिससे लयकीजिये और अधिकरण जिसमें कीजिये। हे साधो! ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। विश्वका कर्त्ता भी ब्रह्म है; विश्वकर्माभी ब्रह्म है; विश्वका साधकभी ब्रह्म है; जिसमें निमित्त यह विश्वहै सोभी ब्रह्म है और जिसमें यह विश्व होता है सोभी ब्रह्म है। हे साधो! ऐसा जो सर्वात्मा है उसको नमस्कार है। हे साधो! उस सर्वात्मा को ऐसे जाननाही उसकी परमपूजा है। ऐसेही तुमभी पूजनकरो। हे साधो! अबतुमजावो और अपने बांछित में बिचरो। तुम्हारे बांधव तुमको चितवतेहोंगे उनकेपासजावो—जैसे कमलके पास भँवरेजातेहैं—और हमभी समाधि में स्थित होतेहैं। जो कुछ गुह्यबातहै सोभीमैं कहताहूं। जिससे कोई सुखपाता है वही करता है। मुझको तो जगत् दुःख दायक दृष्टि आया है इस कारण मैं समाधि में लगताहूं। हे साधो! यद्यपि मुझे सब अवस्थातुल्यहैं तौभी चित्त की वृत्ति जो संसारके कष्टसे दुःखित होकर आत्मपदमें स्थित हुई है उस स्थिति के

सुखके संस्कारसे फिर उसी ओर धावती है। अब तुम जावो मैं समाधिमें स्थितहोताहूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकुन्ददन्तोपदेशोनाम
द्विशताधिकसप्तषष्टितमस्सर्गः २६७ ॥

कुन्ददन्त बोले,हे रामजी ! इसप्रकार कहकर वह फिर समाधिमें लगा और इन्द्रियों और मनकी क्रियासे रहित हुआ—मानों कागजपर मूर्त्ति लिखीहो । तब फिर हम उसे बहुत जगातेरहे और बड़े शब्द किये परन्तु वह न जागा। निदान हम वहांसे चले और उस ब्राह्मणके घर आये तो उनके घरमें बड़ा उत्साह हुआ और समयपाकर क्रमसे वे सातों भाई मरगये पर अष्टम मेरा मित्र जीतारहा था वह भी कुछदिनमें मृतक होगया तब मैं बहुत शोकवान् हुआ कि, मेरा प्रियतमभी मरगया अब मैं क्याकरूं। हे रामजी ! तब मैंने विचारकिया कि,फिर मैं कदम्बतपाकेपासजाऊं तो मेरादुःख नष्टहोगा। निदान मैं वहांगया और तीनमास पर्य्यंत उसके पासरहा । उसको मैं जगातारहा परन्तु वह न जागा पर जब तीनमास होचुके तब वह जागा और मैंने उसको प्रणाम करककहा; हे मुनीश्वर ! वे तो अपने अपने राज्य को भोगनेलगे और मैं अकेला कष्टवान् हूं इससे मेरादुःख तुमनष्टकरो—मैं तुम्हारी शरण आयाहूं । कदम्बतपा बोले, हे साधो ! मेरे उपदेशसे तुझको स्वरूपका साक्षात्कार न होगा क्योंकि; तुझको अभ्यासनहींहै। अभ्यासबिना स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता इससे मेरा कहनाभीव्यर्थहोगा।मैं दुःखनष्ट होनेका एकउपाय तुझसे कहताहूं उससे तू मेरे समान और दुःखसेरहित होकर अनन्त आत्माहोगा। हे साधो ! अयोध्यानगरीके राजादशरथकेगृहमें रामजीपुत्रहुयेहैं जिनको वशिष्ठजी मोक्षोपाय उपदेश करेंगे और बड़ीसभामें कहेंगे वहां तू जा तो तुझकोभी स्वरूपकी प्राप्तिहोगी—संशयमतकर । हे रामजी ! जब इसप्रकार उस तपस्वीने मुझसे कहा,तब मैं वहांसे चलकर तुम्हारेपास आयाहूं। जो कुछतुमने पूछाथा सो सबवृत्तांत मैंने कहा और जो कुछ देखासुनाथा वहभी कहा । रामजीबोले, हे वशिष्ठजी ! जो वृत्तांत मैंने उससे सुनाथा सो प्रभुके आगे कहा और कुंददंतभी तुम्हारे पास बैठाहै अब इससे पूछिये कि; स्वरूपकी प्राप्तिहुई अथवा नहींहुई ? बाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज ! जब इसप्रकार रामजीने कहा तब मुनियोंमें शार्दूल वशिष्ठजी उसकी ओर कृपादृष्टिकरके बोले, हे ब्राह्मण ! यह मोक्षोपाय जो मैंने संपूर्ण कहाहै उसको सुनकर तूने क्या जाना ? कुन्ददन्तबोले, हे सर्वसंशयोंके निवृत्त करनेवाले ! तुम्हारे बचनरूपी प्रकाशसे मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारका नाशहुआहै; जो कुछ जानने योग्य पदहै सो मैंने जाना है और जो कुछ पाने योग्यथा सो मैंने पाया । अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआहूं और मुझको कोई कल्पना नहीं रही । मैं अनन्त आत्माहूं और नित्य, शुद्ध,अच्युत, परमानन्द स्वरूपहूं—सर्व जगत् मेराही स्वरूपहै। हे भगवन् ! अन्तःपुर

में इतनी सृष्टिके समानेका जो संशयथा सो तुम्हारे वचनोंसे दूरहुआ और अब एक एक राईमें मुझको ब्रह्मांड भासते हैं और आत्मत्वभाव से दिखाई देते हैं। जैसे अनेक दर्पणोंमें अपना मुखही भासताहै; तैसेही मुझको सर्व ओर अपना आपही भासताहै। हे भगवन्! तुम्हारे वचन मैंने आदिसे लेकर अन्त पर्यन्त संपूर्ण सुने है जो परमपावन; सारके परमसार और आत्मबोधके कारणहैं। उनके विचारसे मेरी भ्रांति निवृत्त होगई है और अब मैं अपने आपमें स्थित हुआहूं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकुन्ददन्तविश्रामप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टषष्टितमस्सर्ग्गः २६८॥

वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार कुन्ददन्तनेकहा तब वशिष्ठजी सुनकर परम उचित वचन परमपदपावनका कारण फिर कहनेलगे कि; हे रामजी! अब कुंददन्तने आत्मअनुभवमें विश्राम पायाहै। इसको अब हस्तामलकवत् अपना आप अनुभवरूप जगत् भासताहै। आत्माही निद्रास्वरूप होकर भासता है और आत्माही द्रष्टारूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। अपना अनुभवही जगत्रूपहो भासताहै सो अनुभव आकाश सम शांतरूप, अनन्त और अखण्ड सदा ज्योंकात्यों है। हेसाधो! वह नानारूप भासताहै परंतु अनानाहै औरसदा ज्योंकात्यों अचेतचिन्मात्र परमशून्यहै जिसमें शून्यभी शून्य होजाताहै और चेत दृश्यरूप फुरनेसे रहितहै इसीकारण परमशून्य है; बोलता दृष्टि आताहै परन्तु परममौनहै। हे रामजी! उसमें जगत् कुछबना नहीं; जैसेस्वप्नेमें पहाड़ दृष्टिआतेहैं सो न सत्यहैं और न असत्यहैं; तैसेही यहजगत् सत्य असत्यसे विलक्षण है क्योंकि; कुछबना नहीं—जो कुछभासताहै सो आत्माहै। जैसे रत्नोंका प्रकाश चमत्कार होताहै, तैसेही आत्माका प्रकाश जगत् है और जैसे समुद्र द्रवतासे तरंगरूप होभासताहै, तैसेही ब्रह्मसंवेदनसे जगत्रूपहो भासताहै। आदि स्पंद फुरआईहै सो जगत्रूपहोकर स्थितहै और वह जैसे हुआहै तैसे हुआहै पर आत्माकार्य कारणभावसे रहितहै। जिसको प्रमादहै उसको यहकारण भावभासताहै और उसको तैसाही है पर जो सत्यजानकर पापकरतेहैं उनके बड़े पाप उदयहोतेहैं और स्थावररूप होकर फिर जंगममनुष्यहोते हैं। हे रामजी! इसप्रकार यह ज्ञानसंवित् चैतसंबन्धी होकर नाना प्रकारके रूपधारतीहै और प्रमादसे भिन्न२भासतीहै परन्तु स्वरूपसे कुछऔर नहीं होती सदा अखण्डरूपहै। जबतक प्रमादहोताहै तबतक जगत्का आदि और अन्तनहींभासता और जब प्रमादसे जागताहै तब सर्वकल्पना मिटजातीहैं। हे रामजी! यहसर्व्व जगत् जो भासता है सो कुछबना नहीं वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जब जाग्रत् अवस्था का अभावहोता है और सुषुप्तिआती है तो उसमें न शुभ की कल्पना रहती है और न अशुभकी कल्पना रहती है; उदय—अस्तकी क-

ल्पनासेरहित केवल अद्वैतसत्ता रहतीहै और जब फिर उसमें चैतन्यता फुरती है तब फिर स्वप्नेकी सृष्टि भासती है । कहीं स्थावर जंगम सृष्टि भासती है जिसमें संवेदन फुरती भासती है सो जंगम कहाता है और जिसमें संवेदन फुरना नहीं भासता सो स्थावर कहाताहै परन्तु और कुछ नहीं वही अद्वैत अनुभव सत्ता स्थावरजंगमरूप हो भासती है; तैसेही आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है । हे रामजी ! सृष्टिके आदि परम सुषुप्तिसत्ताथी उसमें संवेदन फुरने से जगत् भासिआया सो वही संवेदनरूप जगत् है और जिस आत्मसत्ता में फुरी है वहीरूप है भिन्न कुछ नहीं । जैसे शरीरके अंग हाथ, पांव, नख, केशादिक सब शरीररूपहैं; तैसेही परमात्मा के अंग हस्त पादादिक हैं शेष सृष्टि और नखकेशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्मरूपहै और दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभवरूप होती है और संकल्पपुरकीरची सृष्टि संकल्पररूप होतीहै; तैसेही यह सृष्टि अनुभवरूपहै और किसीकारण से नहीं उपजी—इससे ब्रह्महीरूप है । ब्रह्मके सूक्ष्म अणुमें सृष्टि फुरी है सो क्यारूप है ? ब्रह्महीं सृष्टि है और सृष्टिहीब्रह्म है—ब्रह्म और जगत् में भेदकुछनहीं परन्तु अज्ञान निद्रा से भिन्न भिन्न भासता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! निद्राका कितना प्रमाण है और कितनेकाल पर्यंत रहती है ? सूक्ष्म अणु में सृष्टि कैसे फुरी है और कैसे स्थित है ? अणु उसकी क्यों संज्ञा है और अनन्त क्योंकरहै ? जो देवता असुरादिक रूपको चित्तप्राप्तहुआ है वह क्या है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अज्ञान निद्रा अपने कालमें तो अनादिहै और नहीं जानीजाती कि, कबकीहुईहै और अन्त भी नहीं जानाजाता कि, कबतकरहेगी । अज्ञानकाल में तो इसका आदि अन्त प्रमाणकुछ नहीं भासता और बोध में इसका अत्यन्ताभाव दिखताहै । चित्सत्ताकीजो अनन्तता पूँछो तो वह तो अद्वैत चिन्मात्र आत्मसमुद्र है और उसमें सूक्ष्मभाव अहमस्मि जो संवित् फुरतीहै उसका नाम चित्तहै । उसचित्तमें आगे जगत् होताहै । शुद्धचिन्मात्रमें संवेदन चित्तफुरताहै उसमें जगत्है; वही चित्तदेवता, असुर और जंगमरूप हो भासताहै और नाग, पिशाच, कीटादिक स्थावर—जंगमरूप हो भासती है । वास्तव में चैतन्यसत्ताही है उससे भिन्नकुछ नहीं और सब चिदाकाशरूप है फुरनेसे नानाप्रकार है । हे रामजी ! परम शुद्ध चिद् अणु से मिलकर चित्त अनेक ब्रह्मांड धारता और उससूक्ष्मअणु में अनन्त ब्रह्मांड फुरते हैं परन्तु उससे भिन्न नहीं । जैसे एक पुरुष शयन करता है तो उसको स्वप्ने मे अनेकजीव भासिआते हैं और उन जीवों में अपने अपने स्वप्ने की सृष्टि फुरती है सो अनेक सृष्टि होजाती हैं; तैसेही सूक्ष्मचिद् अणु में अनन्त सृष्टि फुरती है परन्तु आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहींबना । जैसे सूर्यकी किरणों में अनन्त सूक्ष्म त्रसरेणुहोती हैं; तैसेही परमात्मसूर्यके चिद्-

अणु सूक्ष्म है । इन त्रसरेणुसे भी सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टि अपनी अपनी फुरती हैं। हे रामजी! जबतक चित्त फुरतारहताहै तबतक सृष्टिका अन्तनहींआता। असंख्य जगत् भ्रमआगेदेखे हैं और असंख्यही आगेदेखेंगे । जब चित्त फुरने से रहित होता है तब जगत् कल्पना मिटजाती है । जैसे स्वप्ने में सृष्टिभासती है और बड़े ब्यवहार होतेहैं पर जब जागउठता है तब स्वप्ने की सृष्टि ब्यवहार की कल्पना मिटजाती है और अद्वैत अपना आपही भासता है; तैसेही चित्तके ठहरने से सब भ्रम मिटजाताहै।हे रामजी ! सूक्ष्मचिद्अणु कीभी संज्ञातबहुईहै जब इसको चित्का संबंधहुआ है। जब चित्को अपने स्वभावमें स्थितकरोगे तब द्वैतकल्पना और सूक्ष्म-स्थूलभाव मिटजावेंगे। इसकी सूक्ष्म संज्ञा अविद्यक भावसे है जो इन्द्रियोंका विषय नहीं इससे अणुताहै; सूक्ष्मअणुमेंभी ब्यापाहुआहै इससे सूक्ष्म अणुकहाताहै और अनन्तता इसकारण है कि, सब को धाररहा है। हे रामजी ! यह जगत् अभावमात्र है। जैसे मरुस्थलमें जलाभास होता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै।यह जगत् ही नहींहै तो इसका कारण किसे कहिये ? आदि सृष्टि अकारण फुरीहै और फिर उस में कारण-कार्य भासनेलगे हैं सो आभास की दृढ़ता से हैं। जैसे स्वप्ने में आदि सृष्टि अकारण बीज,वृक्ष, कुलाल,मट्टी और घट इकट्ठे फुरआते हैं। जब उस स्वप्ने की दृढ़ता होजाती है तब कारण कार्य भासते हैं परन्तु जो सोया पड़ा है उसको दृढ़ भासते हैं; तैसेही अज्ञानी को जगत् कार्य्य कारण दृढ़भासता है और ज्ञानवान् को सब अपना आपही भासता है । जैसे स्वप्नेसे जागे स्वप्ने की सृष्टि अपने आपही भासती है कि, मैंहींथा और कुछनथा; तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् आकाशरूप भासता है पृथ्वी,अप, तेज, वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्व्वत, वृक्ष, नदी, स्थावर-जंगम सर्व जगत् सब आकाशरूपहैं और संवेदनके फुरनेसे दृष्टिआते हैं वास्तव में भिन्न कुछनहीं। हे रामजी ! यह जगत् चित्तमें स्थित है। जैसे किसीपुरुष ने थंभेमें पुतलियाँ कल्पीं तो उन पुतलियों के दोरूप होतेहैं-एक शिल्पी के चित्त में फुरतीहै सो आकाशरूपहै और एक थंभेमें कल्पीहै सो थंभेरूपहै और थंभेमें स्थितरूप है पर शिल्पीके चित्तमें नृत्यकरतीहै ।हे रामजी ! और तो कुछनहीं बना सब थंभेरूपहैं और शिल्पीके चित्तमें कल्पनामात्र है; तैसेही चित्तरूपी शिल्पीकी जगद्रूपी पुतलियां कल्पनामात्रहैं पर आत्मरूपी थंभा ज्योंका त्योंहै-आत्मासे भिन्न कुछनहीं। जैसे पटके ऊपर मूर्त्तिलिखीहो तो उस मूर्त्तिकारूप पटहीहै-पटसे भिन्न कुछनहीं-वह पटही मूर्त्तिरूप भासताहै; तैसेही यह जगत् आत्मा से भिन्ननहीं-आत्माही जगत्रूप होभासताहै। आत्मा और जगत् में कुछभेद नहीं। जैसे ब्रह्म आकाशरूपहै,तैसेही जगत् आकाशरूप है । जगत्रूप आधारहै और उसमें ब्रह्म बसने वालाहै । ब्रह्मरूप आ-

धारहै और उसमें जगत् बसनेवाला है।हे रामजी! जितने समूह जगत्में विद्या और अविद्यारूपहैं सो सब संकल्पसे रचितहैं और बास्तवमें सब आत्मस्वरूप हैं। समता, सतता और निर्विकारता आदि और इनसे विपरीत अविद्यारूप सबएकहीरूपहैं;एकही में फुरतेहैं और एकहीरूप हैं। जैसे अनुभवरूप स्वप्नजगत् अनुभवमें स्थितहोताहै सो सर्वआत्मरूप होताहै;तैसेही यहजगत् सर्वब्रह्मरूपहै—ब्रह्मसे भिन्नन कुछवरकी कल्पना है और न शापकी कल्पनाहै।ब्रह्मसत्तानिर्विकार अपने आपमेंस्थितहै उसमें न कारणहै और न कार्य है। जैसे ताल, नदी और मेघ जलही होतेहैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मरूप है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! बर और शापके कर्त्ता जो प्रच्छिन्न हैं और कारण बिना तो कार्य नहीं बनता तुम कैसे कहते हो कि, कारण–कार्य कोईनहीं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्धचिदाकाश आत्मसत्ता का किंचन जगत् होताहै। जैसे समुद्रमें तरंग फुरते हैं,तैसेही आत्मसत्तामें जगत्फुरते हैं और जैसे तरंग जलरूपहोतेहैं,तैसेही जगत् आत्मरूप है—आत्मासे भिन्नकुछनहीं। जैसे आदि परमात्मासे सृष्टिका फुरना हुआहै तैसेहीस्थितहै अन्यथा नहींहोता। सबजगत् संकल्परूपहै। अनेक प्रकारकी वासना संवेदन में फुरती है पर जिनको स्वरूपका विस्मरण हुआहै उनको यह जगत् सत्यरूप भासताहै। जो उनको बिचार उत्पन्न हो तो वहीकाल है जिसकालमें बिचार उत्पन्न होताहै और उसीकालमें अज्ञान निद्रा का अभाव होताहै। हे रामजी ! जब विचार अभ्यास करके मनतद्रूप होताहै तब यथाभूत दर्शनहोताहै और संपूर्णब्रह्मांड अपना आपही भासता है क्योंकि; अपने आपमें स्थित है । सबका अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है उसमें अहं प्रतीति होतीहै इसकारण अपने आपमें सृष्टि भासती है। जैसे स्पन्द फुरते हैं, तैसेही उनकी सिद्धि होतीहै; निरावरण दृष्टि होतीहै निरावरण दृष्टि करके सर्व संकल्प सिद्ध होताहै क्योंकि; यह जगत् सब आत्मामें संकल्पकारचा हुआहै और उसमें इसको अहंप्रत्यय हुई है । हे रामजी ! जो यह संकल्प उठता है कि, यह कार्य ऐसेहो तो वह तैसेही होताहै। हे रामजी! शुद्ध संवेदन में जैसा संकल्प होताहै वही हो भासता है संकल्परूपही है संकल्प से भिन्न नहीं। इसकारण बर और शापका और कोई कारण नहीं; बर और शापभी संकल्परूप हैं और उनसे जो पदार्थ उत्पन्न होतेहैं वे किसीसमवाय कारण से तो नहीं उत्पन्न हुये संकल्पही से हुयेहैं इससे सब अकारणरूप हैं। ब्रह्मरूपी समुद्र के तरंग उठते हैं तो कारण और कार्यमें तुमसे क्या कहूँ ? सब जगत् ब्रह्मरूप है और द्वैत और एककी कल्पना कुछनहीं। हे रामजी ! हमको सदा ब्रह्मसत्ताही भासती है और कार्य कारण कोईनहीं भासता। जैसे स्वप्ने में किसीके घरमें पुत्रहुआ और वह बड़े उत्साहको प्राप्तहुआ पर जब जाग्रत् का संस्कार चित्आया तब उसका पिताही उपजा नहीं तो पुत्र कैसेकहिये ? तबते

सब अपना आपही होजाता है, न कोई कारण भासता है और न कार्य भासता है। जो स्वप्ने में सोयाहै उसको जैसे भासता है तैसेही भासता है। जैसे वर और शाप का आसरा संकल्प है और संकल्पही वर और शाप हो भासता है और अकारणही होताहै। जिसको शुद्ध संवेदन से एकता हुई है वह निरावरण है और उसमें जैसे फुरना आभास फुरता है, तैसाही सिद्ध होताहै। रामजीने पूछा; हे भगवन्! एक ऐसे हैं जिनको आवरण है और उनका संकल्प जैसे फुरता है—वर देवें अथवा शापदेवें—तैसेही होजाता है और स्वरूपका साक्षात्कार उनको नहींहुआ पर शुभकर्म उनमें प्रत्यक्ष मिलते हैं तो शुभकर्मही वर और शापके कारण हुये; तुम कैसे कहते हो कि, निरावरण पुरुषका संकल्प सिद्धहोताहै। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ताहै वही चित् धातु कहाती है। उस चित्धातु में जो आभास फुरना है वही संवेदन कहाता है। वह संवेदन जब फुरती है तब जीव जानता है कि,'मैं ब्रह्मा हूँ;' तो संवेदन नेही आपको जगत्का पितामह जाना और उसीने आगे मनोराज कल्पा तब पंचभूत का ज्ञान हुआ कि; शून्यरूप आकाश;स्पंदरूप वायु;उष्णरूप अग्नि; द्रवतारूप जल और कठोर रूप पृथ्वी है, फिर उसीसे देश और कालकी कल्पना हुई और स्थावरजंगम पदार्थकी कल्पनासे वेद,शास्त्र,धर्म, अधर्म का फुरनाहुआ जिससे यह निश्चयहुआ कि,यह तपस्वी है और इसने तपकियाहै इसके कहेसे वरहो पर स्वरूपके साक्षात्कारसे रहितहै तो भी इसका कहाहो यह तपका फलहै। आदि संकल्प ऐसे हुआहै तोवर और शापकाकर्त्ता तपस्वी नहीं इसका अधिष्ठान वही संवेदन है जिससे आदिसंकल्प फुराहै। हे रामजी! वर और शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदनसे फुराहै और संवेदन आत्माका आभासहै तौमैं कारण और कार्यक्याकहूं? और जगत् क्याकहूं? आत्माका आभास संवेदन ब्रह्माहै जिसने आगे संकल्पपुर सृष्टिरची है और हम, तुम आदिक सब उसके संकल्पमें हैं। वह ब्रह्माजी निराकार, निराधार और निरालम्ब स्थितहै कुछ आकारको नहीं प्राप्तहुये, इससे उसका विश्वभी वही रूप जानो। हे रामजी! जैसे उसका स्पन्दहुआ है तैसेही स्थितहै; अन्यथा नहीं होता जो वही विपर्ययकरे तो हो और नहीं होता। अग्निमें उष्णता; वायुमें स्पन्द इत्यादिक जो पदार्थ हैं सो अपने अपने स्वभाव में स्थितहैं और हमको सब ब्रह्मरूपहैं। जैसे शरीरमें हाड़मांससे भिन्ननहीं होता तैसेही हमको ब्रह्मसे भिन्ननहीं भासता। जैसेघट में मृत्तिकासे भिन्नकुछ नहीं होता और काष्ठकी पुतलीको काष्ठसे भिन्न चेष्टानहीं होती तैसेही जगत् ब्रह्मसे भिन्ननहीं होता। हे रामजी! यहसर्व जगत् जो तुमको भासताहै सो ब्रह्मही है। ब्रह्मही फुरने से नानाप्रकार जगत्हो भासताहै। जैसे समुद्र द्रवतासे तरंग बुद्बुदे,फेनहो भासताहै;तैसेही ब्रह्मसंवेदनसे जगत्रूपहो भासताहै पर ब्रह्मसे

भिन्न कुछनहीं। जैसे पर्वतसे जलगिरताहै सो कणके कणके होभासताहै और जब गिरकरठहर जाताहै तब समुद्ररूप होताहै परन्तु जलसे भिन्नकुछ नहीं होता;तैसेही जब चित्त फुरताहै तब नानाप्रकारका जगत्हो भासताहै और जब ठहरजाताहै तबसर्व जगत् एक अद्वैतरूप होभासताहै परब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं होता;ब्रह्महो स्थावर जंगमरूपहो भासताहै। जहां पुर्यष्टकाका संबन्धनहीं भासता सो अजंगम कहाताहै और जहां पुर्यष्टकाका सम्बन्ध होताहै वह जंगमरूप भासताहै परन्तु आत्मामें उभयतुल्य हैं। जैसे एकही हाथकी अंगुलीहै जिसको उष्णता अथवा शीतलताका संयोग होता है सो फुरनेलगती है और जिसको शीत उष्णका संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती;तैसेही जिस आकारको पुर्यष्टकाका संयोगहै सोफुरताहै और चैतन्यता भासतीहै और जिसको पुर्यष्टकाका संयोग नहीं होता उसमें जड़ता भासतीहै। जडभी दो प्रकारके हैं—एकको पुर्यष्टकाका संयोगहै और जड़है और दूसरेको पुर्यष्टकाका संयोग नहीं और जड़है। वृक्ष और पर्वतों को पुर्यष्टकाका संयोगहै परन्तु घनसुषुप्ति जड़तामें स्थितहैं इसकारण जड़ भासतेहैं और मृत्तिका पुर्यष्टकासे रहितहै इसकारण जड़है परन्तु वास्तवमें स्थावर, जंगम; इष्ट, अनिष्ट; वर, शाप; देश, काल, पदार्थ; सबही ब्रह्मरूपहै और ब्रह्मसत्ताही ऐसे स्थितहुई है। जैसे अपने अनुभवमें संकल्प नगर नानाप्रकारका भासताहै परन्तु संकल्परूप है—संकल्पसे भिन्नकुछ नहीं और मृत्तिकाकी सेना अनेक प्रकारकी होतीहै परन्तु मृत्तिकारूप है—मृत्तिकासे भिन्न कुछनहीं; तैसेही सर्वअर्थके धारनेवाली चैतन्यधातु नानाप्रकारके आकारको प्राप्तहोती है परन्तु चैतन्यतासे भिन्न कुछनहीं होती। हे रामजी ! धातु उसको कहतेहैं जो अर्थको धारे। जितने पदार्थ तुमको भासतेहैं सो सबअर्थरूपहैं और वस्तुरूप जोधातुहै सोआत्मसत्ताहै। उसने दोअर्थ धारेहैं—एकस्वप्न अर्थ और दूसरा बोधअर्थ—स्वप्नअर्थमें तो नानात्व भासती है और बोध अर्थमें एकअद्वैतसत्ता भासतीहै। जैसेएकही धातुमिलने और बिछुरनेसे दोअर्थ धारतीहै सो परस्पर प्रतियोगी शब्दहैं परन्तु एकहीने धारेहैं;तैसेहीस्वप्न और बोधअर्थ इनदोनोंको आत्मसत्ताने धाराहै। जैसे तरंग और बुद्बुदे जलरूपहैं; तैसेही जगत् ब्रह्मरूपहै। जो ज्ञानवान्हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासताहै और अज्ञानीकोनानात्वभासताहै। इससे तुमस्वभाव निश्चयहोकरदेखो सब ब्रह्मरूपहै—भिन्नकुछनहीं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मप्रतिपादनंनाम
द्विशताधिकैकोनसप्ततितमस्सर्गः २६९॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन् । जो सर्व ब्रह्महो है तो नेति क्याहै और नाना प्रकारके पदार्थ क्यों भासतेहैं ? तुम कहतेहो कि, जगत् संकल्पसे रचितहै तो हे भगवन् ! ये जो पदार्थ असंख्यरूपहैं कि, उनकी संज्ञाकी नहीं जाती और इनपदार्थोंका स्वभाव

एकएकका अचलरूप होकर कैसे स्थितहै? सर्वदेवताओंमें सूर्यकाप्रकाश क्योंअधि-कहै और एकही सूर्यमें दिन और रात्रि छोटे बड़े क्योंहोते हैं; यह विचित्रता क्याहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्धचिन्मात्रसत्तामें अकस्मात्से जो आभासफुराहै उस आभासका नाम नेतिहै और सृष्टिभी आभासमात्रहै किसीकारण करके नहीं उपजी। जिसके आश्रय आभास फुरताहै वही वस्तु अधिष्ठानहोतीहै, इससे जगत् सबब्रह्म-रूपहै और चिन्मात्र सत्ता अपने आपमें स्थितहै,न उदयहोतीहै और न अस्तहोती है वह परिणामसे रहित सदाअद्वैतरूपस्थितहै और उसमें न जाग्रतहै;न स्वप्नहै और न सुषुप्तिहै तीनों अवस्था आभासमात्रहैं पर चैतन्यसत्तामें इनसे द्वैतनहीं बना;यह तीनों इसीका स्वभाव प्रकाशरूपहै—इससे भिन्नकुछ नहीं। जैसे आकाश और शून्य-ता;वायु और निस्स्पन्द; अग्नि और उष्णता और कर्पूर और सुगन्धिमें भेद नहीं; तैसेही जाग्रदादिक जगत् और ब्रह्ममें भेदनहीं। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रमें जोचित्त-भावहुआहै उसमें चैतन्य आभास फुराहै और उसमें जैसासंकल्प फुराहै तैसेही स्थित हुआहै। कि; यह इसप्रकारहो और इतने कालरहे; उसी संकल्प निश्चयका नामनेति है। जैसे आदि संकल्प दृढ़हुआहै, तैसेही अबतक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश अपने अपने भावमें स्थित हैं और अपने स्वभावको नहीं त्यागते जबतक उन की नेतिहै तबतक तैसेही जगत् सत्तामें स्थितहैं। हे रामजी! इसका नामनेतिहै। जैसे आदि संकल्प धाराहै तैसेही स्थितहै और वास्तवमें आभासरूपहै। अकस्मात् से यह आभास फुराहै सो किसी सूक्ष्म अणुमें फुराहै। जैसे समुद्रके किसी स्थानमें तरंग बुद्बुदे फुरतेहैं, सम्पूर्ण समुद्रमें नहीं फुरते; तैसेही जहां संवेदनमें जैसा फुरना होताहै तैसेही स्थितहोताहै सो नेतिहै। जैसे तरंग और बुद्बुदे समुद्रसे भिन्ननहीं, तैसेही नेति आत्मासे भिन्ननहीं। जैसे द्रवतासे समुद्रमें तरंग फुरतेहैं, तैसेही आत्मा में संवेदन करके नेति और जगत् जो फुरतेहैं सो वही रूपहै—आत्मासे भिन्नकुछ नहीं जैसे किसीने कहा कि, चन्द्रमाका प्रकाशहै सो चन्द्रमा और प्रकाशमें भेदनहीं, तैसे-ही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। यहविश्व आत्माका स्वभावहै। जैसे एकही काल की दिन,पक्ष,वार,मास,वर्ष,युग, कल्प इत्यादिक बहुतसंज्ञा हैं परन्तु काल एकही है, तैसेही भिन्नभिन्न जगत्के नामहैं सो सब ब्रह्महीहै। हे रामजी। जब संवेदन चित्तके सन्मुख होतीहै तब प्रथमशब्द तन्मात्रा फुरतीहै और उससे आकाश उपजताहै जि-सका स्वभाव शून्यताहै; फिर जब वह स्पर्श तन्मात्राको चेता तब उससे इसमें वायुफुरा और वायुका स्पंदस्वभावहै। फिर रूप तन्मात्राको चेता तब उससे अग्नि प्रकटहुई जिसका उष्ण स्वभावहै। फिर रसतन्मात्राको चेता तब उससे जलप्रकटहुआ जि-सका द्रवस्वभाव है। फिर गन्ध तन्मात्राको चेता तब उससे पृथ्वी प्रकटहुई जिसका

स्थिर स्वभावहै। इसप्रकार पंचभूत फुरआये। हे रामजी ! आदि जो शब्द तन्मात्रा फुरीहै सो जितने कुछ शब्दसमूहह उनका बीजहै सब उसीसे उत्पन्नहुये हैं। पदार्थ, वाक्य, वेद,शास्त्र,पुराण सब उसीसे फुरेहैं। इसीप्रकार पृथ्वी,अप,तेज,वायु, आकाश इनका जो कार्य स्वभावहै सो सबका बीजआदि इनकी तन्मात्राहै और उसतन्मात्रा का बीजवहसंवित् सत्ताहै। हे रामजी ! अबइनतत्त्वोंकी खानिसुनो। पृथ्वीसे अणुभी होतीहै और एकदलाभी होतीहै सो पृथ्वी तो एकहै और अणुभी वही है; तैसेहीसर्व तत्त्वोंको समुझदेखना। पृथ्वीकी खानि भू पीठहै जो सम्पूर्णभूत जातको धारतीहै;जल की खानि समुद्रहै जो सर्वपदार्थोंमें रसरूप होकर स्थितहै;अग्निका तेज जो प्रकाशहै उसकी समष्टिता सूर्यहै;सर्वस्पन्द समष्टिता पवनहै और सम्पूर्ण शून्य पदार्थोंकीखानि आकाशहै। इसप्रकार ये पांचों तत्त्व संकल्पसे उपजेहैं। जैसे बीजसे अंकुर उपजताहै, तैसेही यहभूत संकल्पसे उपजेहैं। संकल्प संवेदनसे फुराहै और संवेदन आत्माका आभासहै जोअद्वैत,अच्युत,निर्विकल्प और सर्वदा अपने आपमें स्थितहै। उसीके आश्रय संवेदनआभास फुराहै, फिर संवेदनसे संकल्पफुराहै और संकल्पसे जगत् बनगयाहै। जैसे समुद्रमें तरंगफुरतेहैं और लीनहोतेहैं; तैसेही संकल्पमें जगत् उपजताहै और फिर संकल्पहीमें लीन होताहै। जैसे तरंग जलरूपहै,तैसेही पृथ्वी,जल,तेज,वायु,आकाश सब चैतन्यरूप हैं। सर्वपदार्थ जो देखने सुननेमें आतेहैं और नहीं आते सो सबचैतन्यरूपहैं,आत्मासे भिन्नकुछ नहीं;वहीआत्मा इसप्रकार होताहै। स्वप्नेमें अपनाअनुभवहीपदार्थहो भासताहै परंतु कुछबनानहीं। नानाप्रकार भासताहै तौभीअनानाहै तैसेहीजगत् नानाप्रकार भासताहै तौभी कुछबना नहीं। जैसे एक निद्राके दोरूपहैं—एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति—जब फुरना होता है तब स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जब फुरना निवृत्त होजाता है तब सुषुप्ति होतीहै और जैसे वायुके दोरूप हैं; जब स्पन्द होतीहै तब भासती है और जब निस्पन्द होतीहै तबनहीं भासती; तैसेहीजब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है और जब नहीं फुरती तबजगत्भी नहीं भासता—इसीकानाम महाप्रलय है—पर दोनों आत्माके आभास हैं। हे रामजी ! संकल्प रूप ब्रह्मा बालकने आत्मा में आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, चक्र इत्यादि क्रमसे रचेहैं जैसे बालक अपने में संकल्प रचे, तैसेही ब्रह्माने रचा है। उसने एक भूगोलरचा है जिस पर नक्षत्रचक्र रचाहै और उसचक्रके दोभागकियेहैं जो अन्योन्यसन्मुखस्थितहैं। जब सूर्य उसके सन्मुख होताहै तब सातघड़ी दिन और रात्रिका प्रमाण होताहै। जबसूर्य उस नक्षत्रचक्रके ऊर्ध्व और उदय होताहै तब दिन बड़े होतेहैं और जबअधकीओर उदय होताहै तब दिन छोटेहोजाते हैं निदान ज्यों ज्यों सूर्य क्रमकरके ऊर्ध्वसे अधको ओर उदय होताहै त्यों त्यों दिनछोटे होतेजातेहैं और रात्रि बढ़तीजाती है और जब

षट्मासके उपरांत पौषत्रयोदशीसे सूर्यक्रमकरके ऊर्ध्वको उदय होताहै तबदिन बढ़ता जाता है। आषाढ़ की द्वादशीसे लेकर पौषत्रयोदशी पर्यंत रात्रि बढ़ती है और दिन घटता है और फिर रात्रि घटतीजाती है और दिनबढ़ता जाताहै। जब सूर्यउस चक्र के मध्य उदय होताहै तब दिन और रात्रि समान होजाताहै परन्तु संवेदनरूप ब्रह्मा का सब संकल्प विलास है। जैसे शिल्पी शिलामें पुतलियां कल्पताहै और चेष्टाकरता है पर बनाकुछ नहीं शिलाही अपने घन स्वभावमें स्थित होती है; तैसेही चित्त रूपी शिल्पी आत्मारूपी शिलामें जगत् रूपी पुतलियां कल्पता है परन्तु बनाकुछ नहीं ब्रह्मसत्ताही सदा अपने आपमें स्थित है। संवेदन फुरने से जब उसे रूपदेखने की इच्छा होती है तब चक्षुइंद्रिय बनजाती है जो रूप को ग्रहण करती है;जब स्पर्श की इच्छा होतीहै तब त्वचा इन्द्रिय बनजाती है जो स्पर्श को ग्रहण करती है; जब गन्धकी इच्छा होती है तब घ्राण इन्द्रिय बनकर गन्ध ग्रहणकरती है; जब शब्द सुननेकी इच्छा होतीहै तबश्रवण इन्द्रियां बनजातीहैं जो शब्दविषयोंको ग्रहणकरती हैं और जब रसकी इच्छा होतीहै तब रसना इंद्रिय प्रकटहोकर स्वादग्रहण करती है। जब अपने और वायु देखनेकी ओर चेततीहै तब अपने साथवायुदेखती है और उसवायुमें प्राण फुरते देखतीहै। हे रामजी! देखना, सुनना, रसलेना, स्पर्शकरना, बोलना और गन्धलेना जहांजहां इन्द्रियां विषयोंको ग्रहणकरती गईं सो देशहै; जिसविषयको ग्रहणकरने लगतीहैं सोपदार्थहैं और जिस समयग्रहण करनेलगतीहैं; सो कालहै। इसप्रकार देश, काल और पदार्थ हुयेहैं और फिर क्रमसे शुभ अशुभ कर्मभासनेलगे। हे रामजी! इसप्रकार संवेदनने फुरकर जगत्को रचाहै और शरीर को रचकर इष्टअनिष्टको ग्रहणकरतीहै। जो तुम कहो कि, इन्द्रियांतो भिन्नभिन्न हैं और अपने २ विषयको ग्रहण करती हैं सर्व इन्द्रियोंके इष्टअनिष्ट इसजीवको कैसे होते हैं तो इसका दृष्टान्तसुनो? हे रामजी! जैसे तुमएकहो और माला के दाने बहुत हैं पर सर्वका आश्रयसूत्र है; तैसेही अहंकार रूपी सूत्रमें सर्वइन्द्रिय रूपी दाने हैं,इस कारण अहंकार जीव आश्रयभूत इन्द्रियों के सुखसे सुखीहोता है और दुःखसे दुःखी होताहै। इन्द्रियां आपही से कार्य करने को समर्थ नहींहोतीं अहंकार जीवकी सत्ता से चेष्टा करती हैं। जैसे शंखको आपसे बजने की सामर्थ्य नहीं पर जब पुरुषबजाता है तो शब्द करता है; तैसेही इन्द्रियों की चेष्टा अहंकार और जीवसे होताहै। हे राम जी! वास्तव में न कोई इन्द्रियां हैं; न इनके विषय हैं और न मनका फुरना है सर्व आभासमात्र है। जब संवेदन फुरती है तब इतनीसंज्ञा धारती है और जब संवेदन निर्वाण होतीहै तब सर्वकल्पना मिटजाती हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवसंसारवर्णनंनामद्विशताधिकसप्ततितमस्सर्गः॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यहसंपूर्ण कल्पनाका क्रम मैंने तुमसे कहा है । जितना कुछ जगत् देखतेहो सो संवेदनरूप है। शुद्धचिन्मात्रसत्ताका आदि आभास और चैतन्यताका लक्षण चित्तअहं जो अस्मिहै उसकानाम संवेदनहै और उसके इतने पर्यायहुयेहैं कि, कोई तो ब्रह्मा कहतेहैं; कोई विष्णु कहतेहैं; कोई प्रजापति कहतेहैं और कोई शिवआदि नामलेतेहैं।उससंवेदनने आगे संकल्प फुरके विश्वरची जो अकारण है किसी कारणसे नहींबनी। काकतालीयवत् अकस्मात् आभासफुराहै और आकारसहित दृष्टि आतीहै परन्तु अंतवाहकहै और व्यवहार सहित दृष्टिआतीहै परंतु अव्यवहारहै । हे रामजी ! संवेदन जोअंतवाहकरूपहै उसने आगे विश्वरचीहै सोभी अंतवाहकरूप है परंतु अज्ञानी को संकल्पकी दृढ़तासे अधिभौतिकरूपहो भासती है। जैसे संकल्प नगर और स्वप्नपुर संकल्पसे भिन्न नहीं और संकल्पकी दृढ़तासेही आकाररूप पहाड़,नदियां, घट, पट, आदिपदार्थ प्रत्यक्ष भासतेहैं परंतु बने तो कुछनहीं शून्यरूप हैं; तैसेही यहजगत् निराकार शून्यरूपहै। हे रामजी ! आदि अंतवाहकरूप संवेदनही बहिर्मुख फुरनेसे देश,काल, पदार्थ रूप होकर स्थितहुई है। जब बहिर्मुख फुरना मिटजाताहै तब जगत् आभासभी मिटजाताहै। जैसेस्वप्नका आभास जगत् तबतक भासताहै जबतक निद्रामें सोयाहोताहै पर जबजागताहै तबस्वप्नेका जगत् मिटजाताहै और एकअद्वैतरूप अपना आपही भासताहै; तैसेही यह जगत् अज्ञानके निवृत्तहुये लीन होजाताहै। सब जगत् निराकारहै पर संकल्पकी दृढ़तासे आकार भासतेहैं । हे रामजी ! संवेदनमें जो संकल्प फुरताहै वही अन्तःकरण चतुष्टय होके भासताहै । पदार्थके चितवने से इसका नाम चित्तहोताहै; संकल्प विकल्पके संसरनेसे इसका नाम मनहोताहै; ज्योंका त्यों निश्चय करनेसे इसका नामबुद्धि होताहै और वासनाके समूह मिलनेसे पुर्यष्टका कहातीहै पर सब संकल्पमात्र है और उनसे जगत् उपजाहै वहभी संकल्परूपहै। जैसे इन्द्रजालकी बाजी और स्वप्नेका नगरसंकल्पकी दृढ़तासे पिण्डाकार भासते हैं परन्तु सबआकाश रूपहैं; तैसेही यह जगत् आकाशरूप है—आत्मासे भिन्न कुछहै नहीं। जो तुमकहो कि; भासता क्यों है ? तो जिसमें भासता है उसे वहीरूप जानो और देश, काल, नदी, पहाड़, पृथ्वी, देवता मनुष्य,दैत्य, ब्रह्मासे आदि कीट पर्यंत जो स्थावर—जंगमरूप जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है और वेद, शास्त्र, जगत्, कर्म, स्वर्ग, तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं वेभी सब ब्रह्मरूप हैं। वही निराकार अद्वैत ब्रह्मसत्ता संवेदन से जगत्रूप हो भासती है। जैसे स्वप्ने में अपनाही अनुभव सृष्टिरूपहो भासता है; तैसेही अपनाही अनुभव यह जगत् हो भासता है और जैसे समुद्र द्रवता से तरंग हो भासताहै पर जलही जल है; तैसेही शुद्ध चिन्मात्रमें संवेदन से जगत् आभास फुरताहै सो ब्रह्मही ब्रह्म है भिन्नकुछ

नहीं। हे रामजी! जो कुछ तुमको भासता है सो सब अच्युत और अनन्तरूप अपने आप में स्थित है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वब्रह्मरूपप्रतिपादनन्नाम द्विशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः॥ २७१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब द्रष्टा दृश्यरूप को चेतता है तब विश्व होतीहै सो विश्व सब अन्तबाहक रूपहै। निराकार संकल्प को अन्तबाहक कहते हैं। जब दृश्यमें अहंभाव से चैतन्यता रहती है तब अन्तबाहक से अधिभौतिक शरीर होजाता है। आदिजो ब्रह्मा संवेदन फुराहै सोअन्तबाहक शरीर हुआहै और जबउसने बारम्बार अपने शरीर को देखा तब वहभी चतुष्टयमुख अधिभौतिक होगया। उसने ओंकार का उच्चार करके वेद और वेदके क्रमको रचा और संकल्प से विश्वरचा। जैसे कोई बालक मनोराज से बगीचा रचे और उसमें नानाप्रकारके वृक्ष, फल, फूल,टास और पत्र रचे; तैसेही ब्रह्माजीने रचा और अन्तबाहक जीव उपजे और जब जीवों को शरीर में दृढ़अभ्यास हुआ तबवे अन्तबाहकसे अधिभौतिक होगये। रामजीने पूँछा, हे भगवन्! ब्रह्मसत्ता तो निराकार थी उसको शरीरका संयोग कैसेहुआ है और उससे अधिभौतिकता कैसे होगई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई शरीर है। और न किसीको शरीर का संयोग हुआ है केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें जो चैतन्य संवेदन फुरी है वही संवेदन दृश्यको चेतती रहीहै। वही जगत्रूप होकर स्थितहुई है। जब संकल्पकी दृढ़ता होई तब अपने साथ शरीर और आकार भासनेलगे परन्तु सब आकाशही रूप हैं—कुछ बनेनहीं। जैसे स्वप्नेकीसृष्टि को उपजी कहिये तो उपजीनहीं और उसका कारणभी कोईनहीं केवल आकाशरूप है और कोई पदार्थ उपजा नहीं परन्तु स्वरूपके विस्मरणसे आकार भासतेहैं; तैसेही यह शरीर और जगत् जो भासता है सो केवल आभासमात्र है और असंभावनाकी दृढ़तासे प्रत्यक्ष भासता है। जब स्वरूप का विचार करके देखोगे तब शांतहोजावोगे। हे रामजी! अविद्याभी कुछ बस्तु नहीं। जैसे स्वप्ने के पदार्थ अविद्यमान होते हैं और विद्यमान भासते हैं पर जब जागता है तब अविद्यमान होजाते हैं; तैसेही यह जगत् अविचार सिद्ध है बिचार कियेसे शांत होजाताहै। जब विचारकरके देखोगे तब सर्वात्माही भासेगा। हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारीहै अर्थात् सत्तामात्रहै उसका अभाव कदाचित् नहींहोता और अच्युतहै अर्थात् सदाज्यों का त्यों है अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागता इसलिये जो उससे भिन्नभासे उसे भ्रममात्र जानो। हे रामजी! विचार करके जब दृश्य भ्रम शांत होता है तबमोक्ष प्राप्तहोता है। आत्मसत्ताज्ञानरूप और निराकार सदा अपने आपमें स्थित है। जब सम्यक्-

ज्ञानका बोध होताहै तब जगद्भ्रम नष्टहोता है। रामजीने पूंछा हे मुनीश्वर! सम्यक्ज्ञान और बोध किसको कहते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! केवल जो बोधमात्र है सो बोध कहाता है और उसको ज्योंका त्यों जानना सम्यक्ज्ञान है। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! केवल बोध और केवल ज्ञान किसको कहतेहैं ? वशिष्ठजीबोले, हे राघव! दृश्यसे रहित जो चिन्मात्र है उसको तुम केवल बोधजानो—उसमें बाणीकी गमनहीं। इसीप्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ताको ज्योंका त्यों जाननाही केवल ज्ञान है। रामजी ने पूँछा; हे भगवन्! केवल बोध अचेत चिन्मात्र है तो उसमें जगत् भ्रम क्यों भासता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चिन्मात्र जो द्रष्टारूप है उसमें जब संवेदन चेतना फुरती है तब वही चेतना चेतरूप दृश्यहो भासती है। जैसे स्पंदसे रहित वायु निर्लक्षरूप होतीहै और जब स्पन्दरूप होतीहै तब स्पर्श से भासती है; तैसेही संवेदन से जो दृश्य भासती है सो वही संवेदन दृश्य हो भासती है। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! जो द्रष्टा दृश्यरूप भासता है तो दृश्य बाहर क्यों भासता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसीकारण भ्रम कहा है कि; अपने भीतर है और बाहर भासती है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपनेही अन्तर होतीहै पर वास्तवमें न भीतरहै और न बाहरहै, आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है; तैसेही अबभी ज्योंकी त्यों स्थित है, भीतर और बाहर भ्रमसे भासती है। रामजी ने पूंछा; हे भगवन्! जो आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और दृश्य भ्रम से भासती है तो शशे के सींग भी भ्रममात्र हैं वे क्यों नहीं भासते और अहं और त्वं क्यों भासते हैं ? भूतोंकी चेष्टा तो प्रत्यक्ष भासती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अहं त्वमादिक जगत् भी कल्पनामात्र है। जैसे शशेके सींग कल्पनामात्र हैं और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है; तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र है। जैसे मृगतृष्णाका जल और संकल्पनगर भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भ्रममात्र है, किसीकारण से नहीं उपजा। जैसे स्वप्नेमें शशे के सींग नहीं भासते हैं और जगत् भासताहै; तैसेही यह भ्रमहै। रामजीने पूंछा; हे मुनीश्वर! भूत,भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालोंमें जगत् की स्मृति अनुभवसे जानते हैं और कारण—कार्यभाव पातेहैं तो तुम भ्रममात्र कैसे कहते हो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं यह कहताहूं कि; जो कारण से कार्य होताहै सो सत्य होताहै। तुम कहो कि, जगत्का कारण क्या है अर्थात् जैसे बीजसे बटहोता है; तैसेही इसका कारण कौन है ? रामजी बोले; हे भगवन्! जगत् सूक्ष्म अणुसे उपजता है और लीन भी सूक्ष्मतत्त्वके अणुमेंही होता है। वशिष्ठजीने पूंछा, हे रामजी ! सूक्ष्म अणुकिसमें रहते हैं ? रामजी बोले, हे मुनीश्वर! महाप्रलयमें शुद्ध चिन्मात्रसत्ता शेषरहतीहै और उसीमें अणुरहतेहैं। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! महाप्रलय किसको कहते हैं ? जहां सर्वशब्द और अर्थकाअभा-

वहै उसका नाम महाप्रलय है। वहां तो शुद्धचिन्मात्र सत्ता रहती है जिसमें बाणीकी गमनहीं तो उसमें सूक्ष्म अणुकैसेहों और कारणकार्य भाव कैसेहो? रामजीने पूंछा, हे मुनीश्वर! जोशुद्धचिन्मात्रसत्ताही रहतीहै तोउसमें जगत् कैसे निकलआताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विश्वकुछ उपजा हो तो मैं तुमसे कहूं कि,इसप्रकार जगत् की उत्पत्ति होतीहै पर जो जगत् कुछ उपजाही नहीं तो इसकी उत्पत्ति कैसे कहूं? जब चिन्मात्रमें चेतता फुरती है तब जगत् अहं त्वमादिक भासताहै सो फुरनाहीरूप है और कुछ उपजा नहीं—वहीरूपहै। हे रामजी! ज्ञानका जो दृश्यभ्रमसे मिलापहै सोही बन्धनका कारणहै और उसका अभाव होना मोक्षहै। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! ज्ञानके हुये जगत्का अभाव कैसे होताहै? यहतो दृढ़हो रहाहै इसकी शांतिकैसेहोतीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सम्यक् ज्ञानसे जो बोधहोताहै उसबोधसे दृश्यका सम्बन्ध निवृत्तहोताहै। वहबोध निराकार और निज शीतलरूपहै उसीसे मोक्षमेंप्रवर्त्तताहै। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! बोध तो केवलरूपहै; सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं जिससे यहजीव बंधनसे मुक्तहोताहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसज्ञानसे ज्ञेय दृश्यका संयोग नहीं होता उसको केवल ज्ञानी अविनाशी रूप कहतेहैं। जब ज्ञेयका अभाव होताहै तब सम्यक्ज्ञान कहाताहै। जगत् ज्ञेय अविचारसिद्धहै। रामजीने पूँछा; हे भगवन्! ज्ञानसे ज्ञेय भिन्नहै अथवा अभिन्नहै और ज्ञानक्योंकर उत्पन्नहोता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बोधमात्रका नाम ज्ञानहै और उससे ज्ञानज्ञेय भिन्न नहीं। जैसे वायुसे वायुकाफुरना भिन्ननहीं। रामजीने पूंछा कि, हे भूत,भविष्यत् और वर्त्तमानके जानने वाले! जो शशेके सींगकी नाईं ज्ञेयअसत्यहै तो भिन्नहोकर क्यों भासती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रांतिसे भासताहै; उसका सद्भाव नहीं है और न भीतर जगत्है न बाहर जगत्है अर्थसेरहित भासताहै। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! अहं त्वमादिक तो प्रत्यक्ष भासते हैं और इनका अर्थसहित अनुभव होताहै तुमकैसे अभाव कहतेहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्वजगत् विराट्पुरुष का वपुहै सो आदिविराट्ही उपजा नहीं तो औरकी उत्पत्ति कैसेकहिये? रामजीने पूंछा; हे मुनीश्वर! जगत्का सद्भाव तो तीनोंकालोंमें पायाजाताहै पर तुम कहतेहो कि, उपजाही नहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे स्वप्नेमें सबजगत् अथप्रत्यक्ष भासते हैं पर कुछ उपजेनहीं और जैसे मृगतृष्णा का जल; आकाशमें द्वितीय चन्द्रमा और संकल्प नगर भ्रमसे भासता है; तैसेही अहं त्वमादिक जगत् भ्रमसे भासता है। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! अहं त्वमादिक जगत् दृढ़ भासता है तो कैसे जानिये कि, उपजानहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जोपदार्थ कारणसे उपजताहै वहनिश्चय सत्यजाना जाताहै। जब महाप्रलय होती है तब कारण कार्य कुछ

नहीं रहता सब शांतरूप होताहै और फिर उस महाप्रलयसे जगत् फुरआताहै । इसी से जानाजाताहै कि; सब आभासमात्रहै । रामजीने पूंछा;हे मुनीश्वर ! जब महाप्रलय होती है तब अज और अविनाशी सत्ताशेष रहती है, इससे जानाजाता है कि; वही जगत्का कारणहै । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसाकारण होताहै तैसाही उसकाकार्यहोताहै उससे विपर्यय नहीं होता । जो आत्मसत्ता अद्वैत और आकाशरूप है तो जगत्भी वहीरूपहै । घटसे पटकी नाई और तो कुछ नहींउपजता ? रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! जब महाप्रलय होतीहै तब जगत् सूक्ष्मरूप होकर स्थित होताहै और उसी से फिर प्रवृत्ति होतीहै । वशिष्ठजी बोले; हे निःपाप रामजी ! महाप्रलयमें जो तुमने सृष्टिका अनुभव किया सो क्यारूप होतीहै ? रामजी बोले; हे भगवन् ! ज्ञप्तिरूप सत्ताही वहां स्थित होतीहै औरतुम ऐसोंने अनुभवभी कियाहै कि; आकाशरूपहै । सत्य और असत्य शब्दसे नहीं कहा जाता । वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो ! जो ऐसेहुआ तौभी जगत्तो ज्ञप्तिरूप हुआ–इससे जन्म मरणसे रहित शुद्धज्ञानरूपहै । रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! तुम कहतेहो कि, जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ भ्रममात्रहै सो भ्रम कहांसे आयाहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जगत् चित्तके फुरनेसे भासता है । जैसे जैसे चित्तफुरताहै तैसेही तैसे भासताहै इसका और कोईकारण नहीं । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! जो यह चित्तके फुरने से भासता है तो परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं कि, अग्निको जल नष्ट करता है और जलको अग्नि नष्ट करतीहै ? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! जो द्रष्टा पुरुषहै सो दृश्यभावको नहींप्राप्त होता और ऐसी कुछवस्तुनहीं । भानरूप आत्माही चैतन्य घन सर्वरूप हो भासता है । रामजीने पूँछा; हे भगवन् ! चिन्मात्रतत्त्व आदि अन्तसे रहित है और जब वह जगत् को चेतता है तब होता है पर तौभी तो कुछ हुआ ? जगत् को चेतका असंभव कैसेकहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसका कारण कोई नहीं, इससे चेतका असंभव है । चेतन सदा मुक्ति और अवाच्यपद है । रामजीने पूँछा;हे भगवन् ! जो इसप्रकार है तो जगत् और तत्त्वकैसे फुरते हैं और अहंत्वं आदिक द्वैत कहांसे आये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कारण के अभाव से यह जगत् कुछ आदिसे उपजा नहीं सर्वशान्तरूपहै और नानाभासता है सो भ्रममात्रहै । रामजीने पूँछा; हे भगवन् ! निर्मलतत्त्व जो सर्वदा प्रकाशरूपहै सो निरुल्लेख और अचलरूप है उसमें भ्रांति कैसेहै और किसको है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कारणके अभावसे निश्चय करके जानो कि; भ्रांति कुछवस्तु नहीं । अहं त्वं आदिक सर्व एक अनामय सत्ता स्थित है । रामजीने पूँछा; हे ब्राह्मण ! मैंभ्रमको प्राप्तहुआ हूँ इससे और अधिक पूँछना नहींजानता और अत्यन्त प्रबुद्धभी नहीं तो अबक्या पूँछूं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह प्रश्नकरो कि; कारणविना जगत्

कैसे उत्पन्न हुआ ? जब बिचार करके कारण का अभाव जानोगे तब परम स्वभाव अशब्दपद में बिश्रांति पावोगे । रामजी ने पूँछा; हे भगवन् ! मैं यह जानता हूँ कि कारण के अभावसे जगत् कुछ उपजा नहीं परन्तु चेतका फुरना भ्रम कैसे हुआ ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कारणके अभावसे सर्वत्र शांतिरूप है । भ्रमभी कुछ दूसरी बस्तु नहीं । जब तक आत्मपद में अभ्यास नहींहोता तब तक भ्रम भासताहै और शांति नहीं होती पर जब अभ्यास करके केवल तत्त्व में बिश्रांति पावोगे तब भ्रम मिटजावेगा । रामजी ने पूँछा; हे भगवन्! अभ्यास और अनभ्यास कैसे होताहै और एक अद्वैत में अभ्यास अनभ्यास भ्रांति कैसे होती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अनन्ततत्त्वमें शांतिभी कुछबस्तु नहीं और जो आभास शांति भासती है सो महाचिद्घन अविनाशरूप है । रामजी ने पूँछा; हे ब्राह्मण ! उपदेश और उपदेश के अधिकारी ये जो भिन्न भिन्न शब्द हैं सो सर्व आत्मा में कैसे भासते हैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! उपदेश और उपदेश के योग्य ये शब्द भी ब्रह्महीं में स्थित हैं । शुद्ध बोधमें बंध और मोक्ष दोनों का अभाव है। रामजीनेपूछा; हे भगवन् ! जोआदि में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ तो देश, काल, क्रिया और द्रव्य के भेद कैसे भासतेहैं ? व-शिष्ठजी बोले, हे रामजी ! देश, काल, क्रिया और द्रव्यके जो भेदहैं सो संवेदनदृश्य में हैं और अज्ञानमात्र भासते हैं—अज्ञानमात्र से कुछ भिन्न नहीं । रामजीनेपूंछा; हे भगवन् ! बोधको दृश्य की प्राप्ति कैसे हुई ? जहांद्वैत और एकता कारणका अभाव है वहां दृश्यभ्रम कैसे है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बोधको दृश्यप्राप्ति और द्वैत एकका भ्रम मूर्खका विषय है, हम ऐसोंका विषय नहीं । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! अनन्ततत्त्व जो केवल बोधरूप है तो अहं त्वं हमारेमें कैसे होताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुद्धबोध सत्तामें जो बोधका जाननाहै सो अहं त्वं करके कहाताहै । जैसे पवनमें फुरना है, तैसेही उसमें चेतना फुरती है । रामजीने पूंछा,हे भगवन् ! जैसे नि-र्मल अचलसमुद्र में तरंग और बुद्बुदे होते हैं सो कुछ जलसे भिन्न नहीं; तैसेही बोधमें बोधसत्तासे भिन्न कुछ नहीं जो अपने आपमें स्थित है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो ऐसे है तो किसका किसको दुःख हो । एक अनन्ततत्त्व अपने आपमें स्थित और पूर्ण है । रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! जो वह एक और निर्मल है तो अहं त्वं आदिक कलना कहां से आई और दृढ़ हुई कि, भोक्ताकीनाईं भोगता है ? वशि-ष्ठजीबोले,हे रामजी ! ज्ञेय जो दृश्यसत्ताहै उसका जानना उसको बन्धन नहीं क्योंकि; ज्ञानही सर्व अर्थ रूपहोकर स्थित हुआ तो बन्ध और मोक्ष किसको हो ? रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! ज्ञप्ति जो बाह्यअर्थ को देखती है—जैसे आकाशमें नीलता और स्वप्ने में पदार्थ सो असत्यरूप सत्यहो भासते हैं; तैसेही यह बाह्यअर्थ भी असत्य

ही सत्यहो भासते हैं। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कारणसे रहित जो बाह्यअर्थसत्य भी भासते हैं सो भ्रममात्र हैं–भिन्नकुछ नहीं ? रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! जैसे स्वप्नकाल में स्वप्नेके पदार्थों का दुःख होताहै चाहेवे सत्यहों अथवा असत्यहों; तैसेही इसजगत्में सत्य और असत्यका दुःख होताहै परन्तु इसकी निवृत्तिका उपाय कहिये। वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! जो इसप्रकारहै कि; जगत् स्वप्नकी नाईहै तो यह सब पिण्डाकार भ्रममात्रसे भासताहै और सर्वअर्थ शान्तरूपहै नानात्व कुछनहीं। रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! स्वप्न और जाग्रत्में पिण्डाकार और पर अपररूप कैसे उत्पन्न होतेहैं और कैसे शांतहोते हैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! पूर्व अपर का बिचार कीजिये कि; जगत् आदिमें क्यारूपथा और अन्तमें क्यारूप होताहै; जब ऐसा बिचार होगा तब शांति होजावेगी। जैसे स्वप्ने में स्थूल पदार्थ पिण्डरूप भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं; तैसेही जाग्रत पदार्थभी आकाशरूपहैं। रामजीने पूँछा; हे भगवन् ! जब भिन्नभावकी भावना प्राप्तहोती है तब जगत्को कैसे देखता है और संस्कार भ्रम शान्त कैसे होता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो निर्वासी पुरुष है उसके हृदय से जगत् का सद्भाव उठ जाता है। जैसे संकल्प नगर और कागद की मूर्त्ति असत् भासती है; तैसेही उसको जगत् असत् भासता है। रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! जब वासना से रहित पिण्डभाव शांतहुये जगत् को स्वप्नवत् जानता है तो उसके उपरांत क्या अवस्था होती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जगत् को जीव जब संकल्प रूप जानता है तब वासना निर्वाण होजातीहै और पंच तत्त्वों का क्रम उपजना और बिनशना लीन होजाता है। तब केवल परमतत्त्व भासता है और सब आकाशरूप होजाता है। रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! अनेक जन्मकी जो वासना दृढ़ होरही है और अनेक शाखा होकर फैलीहै इसलिये संसार का कारण घोरबासनाही है सो कैसे शांतहोतीहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब यथा भूतार्थ ज्ञान होता है तब आत्मामें भ्रांति रूप जगत् स्थित हुआ शान्त होताहै। जब पिण्डाकार अर्थ पदार्थ सोजाता है तब कर्मरूप दृश्य चक्रभी शान्त होजाता है। जैसे स्वप्ने के पदार्थ जाग्रत् में नष्ट होजाते हैं; तैसेही आत्मतत्त्व के बोधसे सब वासना नष्ट होजाती हैं। रामजीने पूंछा; हे मुनीश्वर ! जब पिण्डग्रहण निवृत्त हुआ और कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ तब फिर क्या प्राप्तहोताहै ? वशिष्ठजी बोले;हे रामजी ! जब पिण्डग्रहण भ्रमशांत होता है तब जीव निर्मल होकर क्षोभसे रहित होता है; जगत् आस्था दृश्यकी शांतिहोजाती है और चित्त परमात्मतत्त्व को प्राप्तहोता है। रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! यह बालक के संकल्पवत् कैसे स्थितहै ? जो संकल्परूप है तो इसके जो जड़में पदार्थ है उसके नष्ट हुये इसको दुःख क्यों प्राप्त होताहै और

इस जगत् की आस्था कैसे शान्त होती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पदार्थ संकल्प से उत्पन्न हुआ है उसके नष्ट करने में दुःख नहीं होता और जो पूर्व अपर विचार करके चित्तसे रचा जानिये तो भ्रम शान्त होजाता है। रामजीने पूँछा; हे भगवन्! चित्तकैसा है और उससे कैसेरचा बिचारिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित्तसत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरती है उसीको संकल्परूप चित्त कहते हैं। उससे रहित बिचारने से वासना शान्त होजाती है। रामजी बोले; हे ब्रह्मन्! चैत्यसे रहित चित्त कैसे होताहै और चित्तसे उदयहुआ जगत् निर्बाण कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित्त कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, अनहोताही द्वैत भासता है–कुछहै नहीं। रामजी बोले; हे भगवन्! जगत् तो प्रत्यक्ष भासता है; जो उपजाही नहीं तो इसका अनुभव कैसेहोता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अज्ञानीको जो जगत् भासता है सो सत्यनहीं और ज्ञानवान्को जो भासता है सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है। रामजीने पूँछा; हेभगवन्! अज्ञानीको तीनोंजगत् जो सत्यनहीं कैसे भासते हैं और ज्ञानवान्को कैसे भासते हैं जो कहनेमें नहींआता? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! अज्ञानीको द्वैतसघन दृढ़भासताहै और ज्ञानवान्को सघन द्वैतनहीं भासता क्योंकि; आदि तो उपजानहीं अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्यपद है। रामजीनेपूँछा; हेभगवन्! जो आदि उपजा नहीं तो अनुभवभी न हो पर यहतो प्रत्यक्ष अनुभव होताहै; इसे असत्य कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! असत्यही सत्यकी नाईं हो भासता है–इसी कारण रहित भासता है। जैसे स्वप्ने में पदार्थ का अनुभवहोता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं; तैसेही यह असत्यही अनुभव होता है। रामजी बोले;हे भगवन्! स्वप्ने में असंकल्प में जो दृश्य शंकाका अनुभव होता है सो जाग्रत् के संस्कारसे होता है और कुछ नहीं। वशिष्ठजी ने पूंछा; हे रामजी! स्वप्ना और संकल्प उसके संस्कार से होताहै सो जाग्रत् के संस्कारसे कैसे होताहै? वहीरूपहै अथवा जाग्रत्से अन्यहै? रामजी बोले; हे भगवन्! स्वप्ने के पदार्थ और मनोराज जाग्रत् के संस्कारसे भ्रमसे जाग्रत्की नाईं भासते हैं। वशिष्ठजी ने कहा; हे रामजी! जो स्वप्नेमें जाग्रत् संस्कार से जगत् जाग्रत्की नाईं भासता है कि;स्वप्नेमें किसी का घर लुटगया अथवा जलके प्रवाहमें बहगया–तो जाग्रत् में तो कुछहुआ नहीं क्योंकि; प्रातःकालउठकर देखता है तब ज्योंकात्यों भासताहै–तो संस्कार भी कुछ न हुआ सब कल्पनामात्र जानना। रामजी बोले; हे भगवन्! अब मैंने जाना कि; यह सब ब्रह्महीहै; न कोई देह है, न जगत् है, न उदय है और न अस्तहै; सर्वदाकालसर्व प्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपनेआप में स्थितहै और उससे भिन्न जो कुछ भासताहै सो भ्रममात्रहै और भ्रमभी कुछ वस्तु नहीं सर्व चिदाकाश ब्रह्मरूपहै। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ भासताहै सो

सब ब्रह्महीं का प्रकाशहै। वहीअपने आपमें प्रकाशताहै। रामजीने पूछा;हे भगवन्! सर्गके आदिमें देह चित्तादिक कैसे फुरआये हैं और आत्माका प्रकाशरूप जगत्कैसे है ? प्रकाशभी उसका होताहै जो साकाररूप होताहै पर ब्रह्म तो निराकार है उसका प्रकाश कैसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! सर्वब्रह्मरूप है। प्रकाश और प्रकाशक का भेद भी कुछनहीं और दूसरी बस्तुभी कुछनहीं वही अपने आपमें स्थित है—इसीसे स्वप्रकाश कहाहै। सूर्य आदिक का प्रकाश त्रिपुटीसे भासता है सोभीउसके आश्रय होकर प्रकाशता है और उसके प्रकाश का आधारभूत कहाता है जिसके आश्रयहोकर सूर्य जगत् को प्रकाशताहै। आत्मसत्ता अद्वैत और विज्ञानघन है उसमें जो चित्तसंवेदन फुरी है वही जगत्रूप होकर स्थित हुईहै। आत्मसत्ता और जगत् में कुछभेद नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछभेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेदनहीं—वही इसप्रकार हुयेकी नाईं स्थित हुआहै। हे रामजी! निराकारही स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है। इस जगत् के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी उसीसे जो नानाप्रकार का जगत् दृष्टिआया सो वहीरूप हुआ और कारण तो कोई नहीं। जैसे स्वप्ने के आदि अद्वैतसत्ता निराकार है और उससे जो सूर्यादिक पदार्थ भासिआते हैं सोभी वहीरूप हुये पर प्रकट भासतेभी हैं; तैसेही इस जगत् कोभी अकारण और निराकार जानो। हे रामजी! न कोई जाग्रत्है; नस्वप्नहै और न सुषुप्ति है सब आभासमात्रहै—वही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। हमको तो वही सदा बिज्ञानघनआत्मसत्ता भासतीहै जैसे दर्पणमेंअपनामुखभासताहै;तैसेही हमको अपना आप भासता है और अज्ञानी को भ्रांतिरूप जगत् भासता है। जैसे वृक्ष के झुण्ड में दूरसे भ्रांति करके पुरुषभासता है; तैसेही अज्ञानीको जगत् भासता है। हे रामजी ! न कोई द्रष्टा है और न दृश्य है। द्रष्टा तो तब कहिये जो दृश्यहो; और दृश्य तब कहिये जो द्रष्टाहो; जो दृश्य नहीं तो द्रष्टाकिसका और जो द्रष्टाहीनहींतो दृश्य किसका? इससे निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जो आकार भी भासते हैं तो भी निराकार है—आत्मसत्ताही संवेदन करके आकार रूपहो भासती है और जैसे थंभेमें चितेरा पुतलियां कल्पताहै कि; इतनी पुतलियां थंभेमें निकलेंगी तो उसको खोदेबिनाही प्रत्यक्ष भासतीहैं; तैसेही खोदेबिना ब्रह्मरूपीथंभेमें मनरूपीचितेरा ये पुतलियां देखता है सो हुआ कुछनहीं। हे रामजी! इन मेरे बचनोंको तुम स्वप्न और संकल्प दृष्टांत से देखो कि; अनुभवरूपही आकारहो भासता है—अनुभवसे भिन्न कुछनहीं। इस मेरे बचनरूपी उपदेश को हृदयमें धारो और अज्ञानियों के बचनको त्यागदो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्यावादबोधोपदेशोनाम
द्विशताधिकद्विसप्ततितमस्सर्ग्गः २७२ ॥

रामजी बोले; हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि; हम अज्ञानसे जगत्को देखतेथे। जगत् तो कुछ बस्तुनहीं सर्वब्रह्महीही है और अपने आपमें स्थित है। यह जगत्भ्रम से भासता है। अब मैंने जाना कि; यह जगत् बास्तवमें न पीछेथा और न आगेहो· वेगा; सर्वशान्त निरालम्ब बिज्ञानघन सत्ताहै और भ्रांतिभी कुछबस्तु नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है जो निर्बिकार और शांतरूप है। जैसे स्वर्ग, परलोक, स्वप्न और संकल्पपुरके आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता होती है और उसका आभास संवेदन स्पन्द फुरती है तो अनेक पदार्थ सहित जगत् भासिआता है सो अनुभवरूप होता है भिन्न कुछवस्तु नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूपहै। हे प्रभो! अब मैंने तुम्हारी कृपासे ऐसे निश्चय कियाहै कि; जगत् अविचार सिद्धहै और बिचार कियेसे निवृत्त होजाता है। जैसे शशेके सींग और आकाशके फूल असत्य होते हैं; तैसेही जगत् असत्य है। बड़ा आश्चर्य है कि; असत्यरूप अविद्याने जगत् को मोहितकिया था। अब मैंने जाना कि; अविद्या कुछवस्तु नहीं अपनी कल्पनाही आपको बन्धनकरती है। जैसे अपनी परछाहीं में बालक भूतकल्पता है और आपही भय पाताहै; तैसेही अपनी कल्पनाही अविद्यारूप भासती है पर जबतक बिचार प्राप्त नहींहुआ तभी तक भासती है विचार कियेसे उसका अत्यन्त अभाव होजाता। जैसे जेवरी में सर्प भासता है और जेवरीके जानेसे सर्पका अत्यन्त अभाव होजाताहै। जैसे किसीस्थान में भ्रमसे मनुष्य भासताहै;तैसेही आत्मामें भ्रमसे अविद्यारूप जगत् भासताहै। जैसे आकाशकेफूल और शशेकेसींग कुछबस्तुनहीं; तैसेही अविद्याभी कुछबस्तुनहीं। जैसे बन्ध्याकापुत्रभासे तौभी भ्रममात्र जानाजाता है और स्वप्नेमें अपने मरनेका अनुभव हो वहभी भ्रममात्र है; तैसेही अविद्यारूप जगत् भासता है तौभी असत्यहै प्रमाण-रूपनहीं। प्रमाण उसे कहते हैं जो यथार्थज्ञानका साधकहो पर यहजो प्रत्यक्षप्रमाण है सो यथार्थ कर्त्ता नहीं क्योंकि; बस्तुरूप आत्मा है सो ज्योंका त्यों नहीं भासता सी-पीमें रूपेके समान विपर्यय भासताहै। यह प्रत्यक्ष अनुभवभी होताहै तौभी असत्य-रूप है—प्रमाण क्योंकर जाने। हे भगवन्! यह जगत् और कुछ बस्तु नहीं केवल कल्पनामात्र है जैसे जैसे आत्मा में संकल्प दृढ़ होता है; तैसेही तैसे जगत् भासता है। जैसे जो पुरुष स्वर्ग में बैठाहो उसके हृदयमें यदि कोई चिन्ता उपजे तो उसको स्वर्ग भी नरकरूप होजाता है क्योंकि; भावना नरककी होजाती है। हे भगवन्! यह जगत् केवल वासनामात्र है। आत्मा में जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना केवल यह जगत् चित्तमें है। जैसे पत्थरकी शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै सो जैसी कल्पता है तैसेही भासती हैं--शिलासे भिन्नकुछनहीं; तैसेही आत्मामें चित्त ने जगत् पदार्थ रचे हैं और जैसे जैसे भावना करता है तैसेही तैसे यह भासता है।

आत्मामें जगत् न कुछ हुआहै और न आगे होगा। ब्रह्मसत्ता केवल अपने आपमें स्थितहै जो स्वच्छ, अद्वैत, परम मौनरूप और द्वैत और एक कल्पनासे रहितहै और परम मुनीश्वरों से सेवने योग्यहै। ऐसा जो पदहै सो मैंने पाया है और अपनेआपमें स्थित और सर्वदुःखोंसे रहित हूँ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः २७३॥

रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर! आदि, अन्त और मध्यसे रहित जो पदहै और जिसका मुनियों कोभी जानना कठिन है वह पद मैंने पाया है और एक और द्वैतकी कल्पना जो शास्त्र और वेदोंमें कही है वह मेरी मिटगई है। अब मैं परमशांत होकर निश्शंक हुआहूँ और कोई दुःख मुझको नहींरहा। सब जगत् मुझको आत्मरूपही भासता है। हे भगवन्! अब मैंने जाना कि; न कोई अविद्या है; न विद्या है; न सुख है और न दुःख है मैं सर्वदा अपने आत्मपद में स्थित हूँ और पानेयोग्य पदपाया है जो आगेभी प्राप्त था। जो कहते हैं कि, हम उसपदको नहीं जानते उनको भी वह प्राप्तरूप है परन्तु वे अज्ञान से नहीं जानते। वह पदऔर किसीसे नहीं जानाजाता अपने आपसे जानाजाता है और ऐसेभी नहीं है कि; किसीसे जनाइये और जानने योग्य और हो; वह तो आपही बोधरूप है और न कोई भ्रांतिहै; न जगत् है सर्वआत्माही है। हे मुनीश्वर! अज्ञान और ज्ञान भी ऐसे है जैसे स्वप्ने की सृष्टि हो। जैसे उसमें अन्धकार भासताहै सो तब नाशहोताहै जब सूर्यउदयहो। जब स्वप्नेसे जाग उठे तब न अन्धकार रहता है और न प्रकाशही रहता है; तैसेही आत्मपद में जागेसे ज्ञान और अज्ञान दोनों का अभाव होजाता है और द्वितीय कल्पना मिटजाती है। जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है परन्तु जगत् आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं जैसे शिलाका अन्तर जड़ीभूत होता है; तैसेही आत्माकारूप जगत् है जैसे जल और तरंग में भेदनहीं; तैसेही आत्मा और जगत् अभेदरूप है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष को ऐसे आत्मा में अहंप्रतीति हुई है वह कार्यकर्त्ता दृष्टि आताहै तौभी हृदय के निश्चय से कुछ नहीं करता और अशांतरूप दृष्टिआता है तौभी सदा शांतरूप है। हे मुनीश्वर! अज्ञानरूपी मध्याह्न का सूर्य है और जगत् की सत्यतारूपी दिन है। जगत् का भाव अभाव पदार्थरूपी उसका प्रकाश है और तृष्णारूपी मरुस्थल है जिसमें अज्ञानी जीवरूपी मार्गपंथी हैं उनको दिन और मार्ग निवृत्त नहीं होता। जो ज्ञानवान् स्वभाव में स्थित हैं उनको न संसार की सत्यतारूपी दिनभासता है और न तृष्णारूपी मरुस्थल भासताहै। वे संसारकी ओर से सोरहे हैं। ऐसी अद्वैत सत्ता

उनकोप्राप्तहुई है जहां सत्य और असत्य दोनों नहीं इसकारण उन्हें जगत् कलना नहीं भासती। हे मुनीश्वर ! अब मैं जागाहूं और सब जगत् मुझको अपना आपही दृष्टिआता है। मैं निर्वाणरूप, निराकार, निरिच्छित और स्वभावसत्तारूपहूं। अब कोई दुःख मुझको नहीं। हे मुनीश्वर! उसपद को मैंने पायाहै जिसके पानेसे तृष्णाकदाचित् नहीं उपजती। जैसे पाषाणकी शिलामें प्राणनहीं फुरते, तैसेही मुझमें तृष्णा नहीं फुरती। सर्व आत्मरूपही मुझको भासता है। यह जो जीव है उसमें जीवत्व कुछनहीं;जीवत्व भ्रांति सिद्धहै सब आत्मस्वरूप है। मुझको तो निरालंबसत्ता अपनी आपही भासती है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुस्सप्ततितमस्सर्गः २७४॥

रामजीनेपूँछा; हे मुनीश्वर ! आत्मामें अनन्तसृष्टिफुरती हैं। जैसे मेघकी बूंदों की गिनती नहीं होती, तैसेही परमात्मा में सृष्टि के अन्तकी गिनतीनहीं होती। जैसे एक रत्नकी असंख्यात किरणें होतीहैं; तैसेही परमात्मा में असंख्य सृष्टि है; कई परस्पर मिलतीं और कई नहीं मिलतीं परंतु स्वरूप से एकरूप हैं। जैसे समुद्रमें लहरें उठती हैं तो उनमें कई नूतन भिन्न भिन्न औरही प्रकारकी उठतीं हैं; कई परस्पर ज्ञातहोतीहैं और कई नहीं होतीं और एकहीज्वाला के बहुतदीपक होते हैं और कोई अन्योन्य और कोई परस्परमिलतेहैं और पर स्वरूपसे एकरूपहैं तैसेही आत्मामें अनन्त जगत् फुरते हैं परन्तु परस्पर एकरूप हैं। यदि नानाप्रकार का जगत् दृष्टि आया तो उसमें वहीरूपहुआ और कारणतो कोई नहीं ? जैसे शून्य के आदि निराकार सत्ता होती है और उसीसे सूर्यादिक पदार्थ भासिआते हैं सोभी वहीरूपहुये प्रकटभासतेभीहैं परन्तु निराकार होते हैं; तैसेही यह जगत् भी अकारण निराकार है। हे मुनीश्वर ! अब मैंने ज्योंकात्यों जाना है। जैसे स्वप्ने में मुयेहुये बोलते हैं, जीतेहुये मृतक दृष्टआतेहैं और सब पदार्थ विपर्यय भासते हैं परन्तु जब जागउठेतब सब ज्योंकेत्यों भासतेहैं; तैसेही मैं जागउठाहूं अब मुझको विपर्यय नहीं भासता–यथाभूतार्थ मुझको अब सर्वात्माही भासता है। हे मुनीश्वर! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे परमसमाधि में स्थित हैं और उनको उत्थान कदाचित् नहीं होता अर्थात् स्वरूपसे भिन्न नहीं भासता। वे व्यवहार करते दृष्टिआते हैं परन्तु व्यवहारसे रहित हैं क्योंकि; उनको अभिलाषा कुछ नहीं रहती बिनाअभिलाषा चेष्टाकरते हैं और उनको हृदय से कुछ कर्त्तृत्वका अभिमाननहीं फुरता। इसीका नाम परमसमाधि है। जब बोधकी प्राप्ति होतीहै तब तृष्णाकोईनहीं रहती और सब पदार्थ विरस होजाते हैं क्योंकि; आत्मपद परमानंदरूप है और तृष्णासे रहित है। उसीकानाम मोक्ष है और उसीकानाम निर्वाण है, जिस में उत्थान

कोई नहीं । हे मुनीश्वर ! आत्मानंद ऐसा पद है जिसके आनन्दको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक और ज्ञानवानों की वृत्तिसदा दौड़ती है और संसार के पदार्थोंकी ओर नहीं धावती । जिसपुरुष को शीतलस्थान प्राप्तहुआहै वह फिर ज्येष्ठ आषाढ़की धूपकोनहीं चाहता कि, मरुस्थल में दौड़े; तैसेही ज्ञानवान्‌की वृत्ति आनन्दकीओर नहीं धावती । हे मुनीश्वर ! मैंने निश्चयकिया है कि; तृष्णा कासाताप कोई नहीं और अतृष्णा कीसी शान्ति कोई नहीं । यदि कोई पुरुष परमैश्वर्य्य को प्राप्तहुआ हो पर उसको हृदयकी तृष्णा जलातीहो तो वह कृपण और दरिद्री है और आपदाका स्थानहै और जो निर्द्धन दृष्टिआताहो परन्तु उसके हृदय में कोई तृष्णा नहीं तो वह परमैश्वर्य से सम्पन्नहै और परम सम्पदाकी मूर्त्तिहै । जो बड़ा पण्डितहो परन्तु तृष्णासहितहो तो उसे परममूर्ख जानिये; उसको बोधकी प्राप्ति कदाचित् नहोगी । जैसे मूर्त्तिकी अग्नि शीतको निर्वाण नहीं करती; तैसेही उसकी मूर्खताको पण्डितभी निर्वाण नहीं करसक्ता । हे मुनीश्वर ! सहस्रोंमें कोई बिरला पुरुष तृष्णासे रहित होताहै । जैसे पिंजरेमें पड़ा सिंह पिंजरेको तोड़कर निकले, तैसेही कोई बिरला तृष्णाके जालको तोड़कर निकलता है । जो पण्डितस्वरूप को विचारके वितृष्णा नहीं होता और अतीत होकर वितृष्णा नहीं होता तो वे पण्डित और अतीत दोनों मूर्ख हैं । ज्योंज्यों तृष्णाको घटावे त्योंत्यों जाग्रत् बोध उदय होगा । जैसे ज्योंज्यों रात्रिकी क्षीणता होती है, त्योंत्यों दिनका प्रकाश होता है और ज्योंज्यों रात्रिकी वृद्धि होती है त्योंत्यों दिनकी क्षीणता होती है; तैसेही ज्योंज्यों तृष्णा बढ़ती जावेगी त्योंत्यों बोधकी प्राप्ति कठिन होगी और ज्योंज्यों तृष्णा घटती जावेगी त्योंत्यों बोधकी प्राप्ति सुगम होगी । हे मुनीश्वर ! अब मैं उस पदको प्राप्त हुआहूं जो अच्युत, निराकार और द्वैत–एक कलनासे रहित है । उस पदको मैंने आत्मासे जानाहै और अब मैं निश्शंक हुआहूं । जिस पदके पायेसे कोई इच्छा नहींरही सो परमानन्द आत्मपद है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रान्तिवर्णनंनाम
द्विशताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः २७५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बड़ा कल्याण हुआहै कि; तुम जागेहो । ऐसे परमपावन वचन तुमने कहे हैं कि, जिनके सुनने से पापका नाश होताहै । ये वचन अज्ञानरूपी अन्धकारकेनाशकर्त्ता सूर्य्य हैं और तन मनके तापको नाशकर्त्ता चन्द्रमाकी किरणें हैं । हे रामजी ! जो पुरुष अपने स्वभावमें स्थितहैं उनको व्यवहार और समाधि में एकही दशाहै और वे अनेक प्रकारकी चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु उनके निश्चयमें कर्त्तृत्वका अभिमान कुछ नहीं फुरता, वे सदा परमध्यानमें स्थित हैं । जैसे पत्थरकी शिलामें स्पन्द कुछ नहीं फुरता; तैसेही उनको कुछ कर्त्तृत्व बुद्धि नहीं फुरती

क्योंकि; उनके दृश्यमें देहाभिमान निवृत्त हुआ है और चिन्मात्रस्वस्वरूपमें स्थित हुईहै। वह आत्मपद परम शांतरूप, द्वैत और कलनासे रहित एकहै। ऐसा जो पद है उसे ज्ञानवान् आत्मतासे जानता है; उसको निर्वाण कहते हैं और उसीको मोक्ष कहते हैं। हे रामजी! ऐसा जो पदहै उसमें हम सदा स्थितहैं और ब्रह्मा, विष्णुसे आदि लेकर जो ज्ञानवान् पुरुषहै वे भी उसी पदमें स्थितहैं। वे नानाप्रकारकी चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु सदा शांतरूप हैं और उनको क्रिया और समाधिमें एकही आत्मपदका निश्चय रहताहै। जैसे वायुस्पन्द और निस्स्पन्दमें एकही हैं और जल और तरंग ठहरने में एकही हैं; तैसेही ज्ञानी दोनोंमें समहै। जैसे आकाशरूप और शून्यतामें भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत्‌में भेद नहीं। रामजीने पूछा; हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे मुझको कोई कलना नहीं फुरती। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसे आदि लेकर जो कुछ जगत्‌है सो सब आकाशरूप मुझको भासताहै और सर्वदा काल सर्वप्रकार मैं अपने आपमें स्थित अच्युत और अद्वैतरूपहूं। मेरेमें जगत्‌की कलना कोई नहीं; चित्‌संवेदन द्वारा मैंहीं जगत्‌रूपहो भासताहूं पर स्वरूपसे कदाचित् चलायमान नहीं होता। मैं अचैत चिन्मात्र स्वरूपहूं और अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मैं जानताहूं कि, तुम जागेहो परन्तु अपने दृढ़बोध के निमित्त मुझसे फिर प्रश्नकरो कि, "यह जगत्‌है नहीं" तो भासता क्याहै? रामजी बोले; हे भगवन्! मैं तुमसे तो तब पूछूं जो मुझको जगत्‌का आकार भासताहो मुझ को तो जगत् कुछ भासताही नहीं। जैसे संकल्पके अभाव हुये संकल्पकी चेष्टा भी नहीं भासती; जैसे बाजीगरकी मायाके अभावहुये बाजी नहीं रहती; स्वप्ने के अभाव हुये स्वप्नेकी सृष्टि नहीं भासती और भविष्यत्कथाके पुरुष नहीं भासते; तैसेही मुझ को जगत् नहीं भासता; तो फिर मैं किसका संशय उठाऊं? आदि जो संवेदन फुरी है सो विराट्‌पुरुष होकर स्थित हुई है और उसीने आगे देश, काल, पदार्थ, स्थावर—जंगम जगत् रचाहै—उसीके समष्टि वपुका नाम विराट्‌है। जैसे स्वप्नेका पर्वतहो; तैसेही यह विराट्‌पुरुषहै जो आकाशरूप है। जो वह आपही आकाशरूपहै तो उसका रचा जगत् मैं क्यों पूछूं? जैसे स्वप्नेकी मृत्तिका आकाशरूपहै अर्थात् जो उपजीही अनउपजी है तो उसके पात्रका मैं क्यों पूछों? इसलिये न कोई विराट्‌है और न उसका जगत्‌है; मिथ्याही विराट्‌है और मिथ्याही उसकी चेष्टा है। केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै; न कोई जगत्‌है और न कोई उसका विराट्‌है। जैसे स्वप्नेका पर्वत आभासमात्र होताहै; तैसेही यह जगत् आकार भासताहै। जैसे बीजसे वृक्ष होताहै; तैसेही ब्रह्मसे जगत् प्रकट हुआ है। बल्कि, यह भी कैसे कहिये? बीज तो साकार होताहै और उसमें वृक्षकासद्भाव रहताहै जो परिणामसे वृक्ष होताहै और आत्मा ऐसे

कैसेहो; वह तो निराकार है और उसमें जगत् नहीं है क्योंकि; वह निर्विकार, अद्वैत और निर्वेदहै उसको जगत्का कारण कैसे कहिये ? न कोई जाग्रत्है; न स्वप्नाहै और न सुषुप्तिहै; ये अवस्था भी आकाशमात्र हैं । आत्मा परिणामभावको नहीं प्राप्तहोता वह तो सदा अपने आपमें स्थितहै । हे मुनीश्वर ! मैं,तुम,आकाश,वायु,अग्नि,जल, पृथ्वी सब आकाशरूपहै और अब मुझको सर्व आत्माही भासता है। हे मुनीश्वर ! एकसविकल्प ज्ञानहै और दूसरा निर्विकल्पज्ञान है सो आकाशवत् अचेत चिन्मात्र है । जो दृश्यके सम्बन्धसे रहितहै उसे आकाशवत् निर्मल जानो;वही निर्विकल्पज्ञान है । जिनको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि, वे महापुरुष हैं उनको मेरा नमस्कार है और जिनको दृश्यका संयोगहै वे सविकल्प ज्ञानी हैं। वे संसारी हैं और उनको जगत् भिन्न भिन्न विषमता सहित भासता है परन्तु तौभी भिन्न कुछ नहीं । जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासते हैं तौभी जलस्वरूपहैं; तैसेही भिन्न भिन्न जीव और उनका ज्ञान है तौभी मुझको अपना आपही भासताहै। जैसे अवयवीको सब अंग अपनेही भासते हैं; तैसेही सर्वजगत् मुझको अपना आपही केवल अद्वैतरूप भासता है और जगत्की कलना कोई नहीं फुरती । जैसे स्वप्ने से जागेको स्वप्ने की सृष्टि नहीं फुरती, कल्पना से रहित अपना आपही अद्वैत भासता है; तैसेही मुझको जगत् कल्पना से रहित अपना आपही भासता है । हे मुनीश्वर ! आगमसे लेकर जो शास्त्र हैं उनसे उल्लंघ कर मैंने वचन कहे हैं परन्तु जो मेरे हृदय में है वही कहा है। जो कुछ हृदय में होता है वही बाहर वाणी से कहाजाता है । जैसे जो बीज बोया है सोई अंकुर निकलता है, बीज बिना अंकुर नहीं निकलता; तैसेही जो कुछ मेरे हृदय में है सोई वाणीसे कहता हूं। यह विद्या सर्व प्रमाणसे सिद्ध है । हे मुनीश्वर ! जिसको यहदशा प्राप्त है वही जानताहै और कोई नहीं जानसक्ता। जैसे जिसने मद्यपान कियाहै वही उन्मत्तताको जानताहै और कोई नहीं जानसक्ता; तैसेही जो ज्ञानवान्है वही आत्मरसको जानता है और कोई नहींजानता । उस आत्मरस के पानेसे फिर कोई कल्पना नहीं रहती। हे मुनीश्वर ! मैं आत्माअजन्मा, अबिनाशी और परमशान्तरूपहूँ; उभय एककीकल्पना से रहित अचेत चिन्मात्रहूँ और जगत्रूप हुयेकी नाईंभीमें भासताहूँ पर निराभास हूँ; मेरे में आभासभी कोई बस्तुनहीं क्योंकि; निराकार हूँ । इसप्रकार मैंने अपनेआप को यथार्थ चिन्मात्र जानाहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकषट्सप्ततितमस्सर्ग्गः २७६ ॥

बाल्मीकिजीबोले,हे भरद्वाज ! इसप्रकार कहकर रामजी एकमुहूर्त्तपर्यंत तूष्णीहोगये अर्थात् उन्होंने परमात्मपदमें विश्रांतिपाई और इन्द्रियों और मनकी वृत्तिआत्म-

पदमें उपशमहुई। उसके उपरांत जानकरभी कमलनयन रामजीने लीलाके निमित्त प्रश्नकिया कि,हे संशयरूपीमेघके नाशकर्त्ता शरत्काल! मुझको एक कोमलसासंशय हुआहै उसकोदूरकरो?हे मुनीश्वर! आत्मपदअव्यक्त और अचिन्त्यहै अर्थात् इन्द्रियों और मनका बिषय नहीं और मनकी चिन्तना में भी नहीं आता और जो बड़े महापुरुष हैं उनके कहने में भी नहीं आता तो ऐसा जो अचैत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है वह शास्त्रसे कैसे जानाजाता है? शास्त्रतो अविच्छेद प्रतियोगीकरके कहतेहैं सो सबिकल्प है पर सबिकल्पसे निर्बिकल्प पद कैसे जानाजाता है कि; गुरु और शास्त्रसे जानिये? बिकल्परूप शास्त्र हैं उनमेंभीसार अर्थ मिलताहै परन्तु बिकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो उसके साथ हैं उनसे सर्वात्मा क्योंकर जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह गुरु और शास्त्रसे नहीं जानाजाता और गुरु और शास्त्रबिनाभी नहीं जानाजाता। हे रामजी! नानाप्रकार के जो बिकल्परूपशास्त्र हैं उनसे निर्बिकल्परूप कैसे जानता है सो भी सुनो। हे रामजी! व्यवधान देशके एक किटक थे जो गृहस्थी में रहतेथे, निदान उनको आपदा प्राप्तहुई और चिन्ता से दुर्बल होनेलगे और भोजनभी न मिले जैसे बसन्तऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढ़के धूपसे सूखजाती है और जैसे जलसे निकला कमल सूखजाता है; तैसेही सम्पदारूपी जलसे निकलकर आपदारूपी धूपसे किटक सूखगये। तब उन्होंने बिचारकिया कि; किसी प्रकार हमारा उदरपूर्णहो इसलिये हम वनमें जाकर लकड़ी चुनें कि, हमाराकष्ट दूरहो। हे रामजी! ऐसे बिचार करके वे वनमें गये और लकड़ियाँ लेआये। इसीप्रकार वे लकड़ियाँ लेआवें और बाजारमें बेंचकर उदर पूर्णकरें। जब कुछकाल व्यतीत हुआ तब उनमें से किसी एकने चन्दन की लकड़ी पहिंचानी और उनसे बिशेषमोल पाया। इसीप्रकार एकको ढूँढ़ते ढूँढ़ते रत्न प्राप्तहुये और उनको बिशेष ऐश्वर्य प्राप्त हुआ इसलिये उन्होंने लकड़ी उठानी छोड़दी। वे फिर और स्थान ढूँढ़ने लगे कि; रत्नसे भी बिशेष कुछपाइये और वनकी पृथ्वीको खोदते खोदते उनको चिन्तामणि मिली, इसलिये उनको बड़ाही ऐश्वर्यप्राप्त हुआ और जैसे ब्रह्मा;इन्द्रादिकहैं तैसेहीहोगये। हेरामजी! जिन्होंने उद्यमकरकेवनकी सेवनाकीथी उनको बड़ा सुख प्राप्तहुआ कि; लकड़ियां उठाते२ उनका उदरपूर्णहुआ और दुःख निवृत्तहुआ; जिनको चन्दनकी लकड़ी प्राप्त हुई उनका उदरपूर्ण होनेसे और भी सन्ताप मिटे और जिनको चिन्तामणि प्राप्तहुई उनके सर्व सन्तापमिटगये औरवे परमैश्वर्यवान् हुये परन्तु सबको वनसे प्राप्तहुआ और जो बनकेनिकट उद्यम करनेनगये घरहीबैठेरहे उन्होंने दुःखितहोकर प्राणोंकोत्यागदिया परन्तु सुख न पाया॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिन्तामणिप्राप्तिर्नाम
द्विशताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः २७७॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! यह जो तुमने किटकका वृत्तांत कहा उसका तात्पर्य मैंने कुछनजाना। वे कीट कौन कौन थे; वह वन क्या था और आपदा क्याथी सो कृपाकरके प्रकट कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ये सर्वजीव जो तुम देखतेहो सो सबकीट हैं और उनको अज्ञानरूपी आपदा लगीहै और अध्यात्मिक, अधिभौतिक और अधिदैविक तापोंकी चिंतासे वे जलते हैं। अध्यात्मिक काम क्रोधादिक मानसी दुःखहैं; अधिभौतिक देहके वात, पित्त, कफ आदिक दुःख हैं और अधिदैविक वे दुःख हैं जो अहोंसे अनिच्छित प्राप्त होतेहैं। हे रामजी! उनमें प्रयत्न करके जो शास्त्ररूपी वन में गयेहैं सो सुखीभये और जो अर्थी सुखके निमित्त शास्त्ररूपी वनको सेवते हैं उनको सत्यकर्मरूपी लकड़ियां प्राप्त होतींहैं जिनसे नरकरूपी उदर पूर्ण का जो दुःखथा सो निवृत्त होताहै और स्वर्गरूपी सुख पातेहैं। फिर शास्त्ररूपी वनको सेवते सेवते उपासनारूपी चन्दनवृक्ष प्राप्त होता है उससे और दुःख भी निवृत्त होते हैं और विशेष सुखको पाते हैं जब अपने इष्टदेवको सेवताहै तब स्वर्गादिक विशेष सुख पाताहै और अपने स्थानको प्राप्त होताहै। फिर जब शास्त्ररूपी वनको ढूंढ़ताहै तब विचाररूपी रत्न विशेषपाता है। जब सत्य असत्यका विचार प्राप्तहोताहै तब सर्वदुःख नष्टहोजाते हैं। यह जो सुख प्राप्त होता है सो शास्त्रसेही होता है। जैसे चन्दन और लकड़ियां आदिपदार्थवनमेंप्रकटथे और चिन्तामणि गुप्तथी;तैसेही और शास्त्रोंमेंधर्म, अर्थ और काम प्रकटहैं और ज्ञानरूपी चिन्तामणि गुप्तहै। जब दूसरे शास्त्ररूपी वनको वैराग्य और अभ्यासरूपी यत्न से खोजे तब आत्मरूपी चिन्तामणि पाताहै। हे रामजी! वनमेंही उसने चिंतामणि पाई थी क्योंकि; वहां चिंतामणिका वनथा परंतु जब अभ्यास किया था तब पाईथी और उसी वनमें पाई थी; तैसेही गुरु और शास्त्रका भी जब मट्टीके खोदनेके समान अभ्यास करता है तब आपही चिंतामणिवत् आत्मप्रकाश होताहै। जैसे मट्टीके खोदने से चिन्तामणि का प्रकाश नहीं उपजता क्योंकि, चिन्तामणि तो आगेही प्रकाशरूप थी; खोदने से केवल आवरण दूरहुआ तब आपही भासिआई; तैसेही गुरु और शास्त्रों के वचन के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होताहै तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाश आती है। गुरु और शास्त्र हृदयकी मलीनता दूरकरते हैं और जब मलीनता दूरहोती है तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशतीहै। इससे गुरु और शास्त्रोंसे मलीनता दूरहोती है परन्तु इनकी कल्पना भी द्वैतमें होती है सो कल्पना द्वैत संसार को नाशकरनेवाली है। परमार्थकी अपेक्षासे शास्त्र और गुरुभी द्वैतकल्पना है और अज्ञानीकी अपेक्षासे गुरु और शास्त्र कृतार्थकरते हैं और इनके अभ्यास से आत्मपद पाताहै। प्रथम अज्ञानी शास्त्रको भोगके निमित्त सेवते हैं और शास्त्रमें भोगका अर्थ जानते हैं। जैसे लकड़ियोंके निमित्त वे कीट वनको

सेवतेथे। शास्त्रमेसबकुछहै; जैसे जिसकोरुचिसे अभ्यासहोताहै तैसेही पदार्थ उसको प्राप्तहोते हैं। शास्त्र एकहीहै परन्तु पदार्थों में भेद है। जैसे पौंड़ेके रससे गुड़, शक्कर और मिश्रीहोतीहै;तैसेही शास्त्रएकहै उसमेंपदार्थ भिन्नभिन्नहैं। जिसजिस अर्थकेपाने के निमित्त कोई यह यत्न करेगा उसीको पावेगा—शास्त्र में भोगभी हैं और मोक्षभीहैं। अज्ञानी भोगके निमित्त यत्न करते हैं परन्तु वेभी धन्य हैं क्योंकि; शास्त्रतो सेवनेलगे; उन्हें सेवते सेवते कभी किसीकालमें आत्मपदरूपी चिन्तामणि भी प्राप्तहोवेगी परन्तु आत्मपदपानेके निमित्त शास्त्र श्रवणकरना योग्य है। सुनसुनकर अभ्यास द्वारा आत्मपदप्राप्तहोगा आत्मपदपानेसे तब सर्वओरसे समभावहोगा। जैसे सूर्यके उदयहुये सर्वओरसे प्रकाशफैलजाताहै;तैसेही सर्वओरसेसमताप्रकाशेगी तब सुषुप्ति की नाईं स्थितिहोगी अर्थात् द्वैत और एक कलनाभी शांत होजावेगी और अनुभव अद्वैतमें जाग्रतहोगी परन्तु सन्तोंकेसंग और शास्त्रोंकेविचार अभ्यासद्वाराहोगी। जो जन परोपकारी संसार समुद्रसे पारकरनेवाले हों सोही सन्तजन हैं; उनके संगसेआत्मपद प्राप्त होगा। हे रामजी! गुरु और शास्त्र नेति नेति करके जानते हैं अर्थात् अनात्म धर्म को निषेध करके आत्मतत्त्व शेष रखते हैं। जब अनात्म धर्म को त्याग करोगेतब आत्मतत्त्व शेषरहेगा। उसको जानलोगे तो उसके जानेसे और कुछजानना नहीं रहता और उसके जाननेमें यत्नभी कुछ नहीं केवल आवरण दूरकरने के निमित्त यत्न है। जैसे सूर्य के आगे बादल आता है तो सूर्य नहीं भासता इसलिये बादलों के दूरकरने का यत्नचाहिये सूर्य के प्रकाशके निमित्त यत्ननहीं चाहिये। जब बादल दूरहोते हैं तब स्वाभाविकही सूर्य प्रकाशता है; तैसेही गुरु और शास्त्र के यत्नसे जब अहंकाररूपी आवरण दूरहोते हैं तब सुप्रकाश आत्मा भासिआता है सात्त्विक गुणी जो गुरु और शास्त्र हैं उनसे जबरज और तम गुणों का अभाव होताहै तब परमअनुभव ज्योति आत्मा अकस्मात् प्रकाशिआताहै और जब वह प्रकाशहुआ तब उस से उन्मत्त होजाता है और द्वैतरूपी संसार की कल्पना नहींरहती। जैसे सुन्दर स्त्रीको देखकर कामी पुरुष उन्मत्त होजाताहै और संसारकी सुरति भूलजाती है; तैसेहीज्ञानी आत्मपद को पाकर उन्मत्त होता है और संसार की सुरति उसे भूलजाती है और परमैश्वर्यवान् होता है। उसका साधन केवल शास्त्र का विचार है। वनके सेवने से चिंतामणि पाने का जो दृष्टांत कहा है सो जानलेना॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेगुरुशास्त्रोपमावर्णनंनाम द्विशताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः २७८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जोकुछ सिद्धांत संपूर्ण है सो मैंने तुमसे बिस्तारपूर्वक कहाहै उसके सुनने और बारम्बारविचारनेसे मूढ़भी निरावरण होंगे तो उत्तम पुरुषको

निरावरण होनेमें क्या आश्चर्य है ? हे रामजी ! यह मैंभी जानता हूँ कि; तुम विदित वेद हुयेहो प्रथम मैंने उत्पत्ति प्रकरण तुमसे कहा है कि; जगत् की उत्पत्ति चित्त संवेदन से हुईहै, फिर स्थिति प्रकरण कहा है कि; जगत् की स्थिति इसप्रकार हुईहै । उत्पत्ति यह कि, चित्त संवेदनके फुरनेसे जगत् उपजा है और संवेदन फुरने की दृढ़ता सेही उसकी स्थिति हुईहै। उसके उपरांत उपशम प्रकरण कहाहै कि; मन इसप्रकार अफुर होताहै । जब चित्त उपशमहुआ तब परम कल्याण हुआ । मनके फुरनेका नाम संसार है । जब मन उपशम होजाता है तब संसार की कल्पना मिटजाती है। यह संपूर्ण बिस्तारपूर्वक कहा है परन्तु अब जानता हूं कि; तुम बोधवान् हुयेहो । हे रामजी ! मैंने तुमसे प्रथम भी आत्मज्ञान का उपाय कहा है और जिनको ज्ञानप्राप्त हुआ है उनके लक्षण भी कहे हैं और अबभी संक्षेप से कहता हूं । प्रथम बालअवस्था में सन्तजनों का संगकरना चाहिये और सच्छास्त्रों को बिचारना चाहिये । इस शुभ आचार से अभ्यास द्वारा जब आत्मपदकी प्राप्ति होती है तब समता प्राप्त होतीहै और सब का सुहृद होजाता है । सुहृदता परमानन्दरूप जननी है जो सदा संग रहती है । जैसे सुन्दर पुरुष को देखकर उसकी स्त्री प्रसन्न होतीहै और प्राणका त्यागना भी अंगीकार करती है परन्तु उस पुरुष को नहीं त्यागती; तैसेही जिसज्ञानवान् पुरुषकी ब्रह्मलक्ष्मी से सुन्दर कांति है उसको समता, मुदिता और सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागती; सदा उसके हृदयरूपी कंठ में लगी रहती है और वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है। हे रामजी ! जिसको देवताओं का राज्य प्राप्त होताहै वह भी ऐसाप्रसन्न नहीं होता और जिसको सुन्दर स्त्रियां प्राप्त होती हैं वहभी ऐसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होताहै। हे रामजी ! समता तो द्विधारूपी अन्धकारका नाश-कर्त्ता सूर्य है और तीनों तापरूपी उष्णता के नाश करने को पूर्णमासी का चन्द्रमा है सुहृदता और समता सौभाग्यरूपी जलका नीचास्थान है। जैसे जलनीचे स्थानमें स्वाभाविकही चलाजाताहै; तैसेही सुहृदता में सौभाग्यता स्वाभाविक होती है। जैसे चन्द्रमाकी किरणों के अमृत से चकोर तृप्तवान् होताहै; तैसेही आत्मरूपी चन्द्रमा की समता और सुहृदतारूपी किरणों को पाकर व्रतादिक चकोर तृप्त होकर आन-न्दवान् होतेहैं और जीतेहैं। हे रामजी ! वह ज्ञानवान् ऐसी कांति से पूर्ण है जो क-दाचित् क्षीणनहीं होती। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में भी उपाधि दृष्टआती है परन्तु ज्ञानवान् के मुखमें तैसी भी उपाधिनहीं। जैसेउत्तम चिन्तामणि की कांति होतीहै, तैसेही ज्ञानवान् की कांति होती है जो रागद्वेष से कदाचित् क्षीण नहीं होती । वह सदा प्रसन्न रहता है। हे रामजी ! समताही मानों सौभाग्यरूपी कमलकी खानि है । समदृष्टि पुरुषऐसे आनन्दकेलिये जगत्में विचरताहै और प्राकृतआचारकोकरता है।

वह भोजनकरताहै ग्रहणकरताहै,वा कुछलेतादेताहै सबलोग उसके कर्त्तृत्वकी स्तुतिकरतेहैं। हे रामजी ! ऐसा पुरुष ब्रह्मादिकोंसेभी पूजनेयोग्यहै; सबही उसका मानकरतेहैं और सबउसके दर्शनकी इच्छा करतेहैं और दर्शनकरके प्रसन्नहोतेहैं। जैसेसूर्य के उदयहुये सूर्यमुखी कमल खिलआतेहैं और सर्वहुलासको प्राप्तहोतेहैं; तैसेही उस का दर्शन करके सब हुलासको प्राप्तहोतेहैं। वह जो करताहै सो शुभ आचारही करताहै और जो कुछ और भी करबैठताहै तौभी उसकी निन्दालोगनहीं करते क्योंकि; जानतेहैं कि; यह समदर्शी है। समतासे वह सबका सुहृदहोताहै और शत्रुभी उसके मित्र होजातेहैं। जिनको समताभाव उदयहुआ है उनको अग्नि जला नहीं सक्ता; जल डुबानहीं सक्ता और वायु सुखानहींसक्ता। वह जैसी इच्छाकरेतैसेही सिद्धिहोतीहै। हे रामजी ! जिसको समता प्राप्तहुई है वह पुरुष अतोल होजाताहै और संसारकी उपमा उसको कोई देनहीं सक्ता। जिसको समता नहीं प्राप्तहुई वह सबके संग सुहृदताका अभ्यासकरे तो जो उसका शत्रुहो वहभी मित्रहोजाता है क्योंकि; अभ्यासकी दृढ़तासे शत्रुभी मित्र भासने लगतेहैं। जो सर्वमें समताका अभ्यास करताहै वहीदृढ़ होताहै और समताभावसे कदाचित् चलायमान नहीं होता। हे रामजी ! एकराजाथा उसने अपने शरीरका मांसकाट क्षुधार्थीको दिया परन्तु समतासे चलायमान न हुआ; ज्योंका त्योंरहा। एक पुरुषको उसकी पुत्री अतिप्यारीथी और उसने उसे किसीको दिया जिसने शत्रुकोदी परंतु वह ज्योंका त्योंरहा। एक और राजाथा जिसको स्त्री अति प्यारीथी पर उसने उसका कुछ व्यभिचारसुना और मारडाला परंतु समतारूपधर्मको न त्यागा। हेरामजी ! जबराजाके गृहमेंमंगलहोताहै तब वहअपने नगरकोभूषणों और वस्त्रोंसे सुन्दर करताहै और प्रसन्न होताहै सो अवस्था राजा जनककी देखीथी। एक समय उसने सर्वस्थान अति प्रज्वालित अग्निसे जलतेदेखे पर अपने समताभावसे चलायमान न हुआ। एक और राजाथा उसने राज्यभी और को देदिया और आपराज्यबिना विचरतारहा परंतु समताभावसे चलायमान न हुआ। हे रामजी ! एकदैत्यथा उसको देवताओंका राज्यमिला और फिर राज्यनष्ट होगया परंतु दोनोंभावोंमें वहसमहीरहा । एकबालकथा उसने चन्द्रमाको लड्डू जानकर फूंकमारी परन्तु वह ज्योंका त्योंरहा। हे रामजी ! इसीप्रकार मैंने अनेक देखे हैं जिनको सम्यक्आत्मज्ञान प्राप्त हुआहै और वे सुख दुःखसे चलायमान नहींहुये। हे रामजी ! ज्ञानी और अज्ञानीका प्रारब्ध भोगतुल्यहै परंतु अज्ञानी रागद्वेषसे तपायमान होताहै और ज्ञानी दृढ़समझके बशसे तपायमान नहीं होता, सर्वअवस्थाओंमें उसको समताभावहोता है। जो फलआत्मपदके साक्षात् होनेसे प्राप्तहोताहै सोतप,तीर्थ,दान और यज्ञसे प्राप्तनहीं होता। जबअपना बिचार उत्पन्न होताहै तबसर्व भ्रांति निवृत्तहोजाती हैं और सर्वज-

गत् आत्मरूपही भासताहै। इसी दृष्टको लियेज्ञानी प्राकृत आचारमें विचरतेहैं परंतु निश्चयमें सदा निर्गुणहैं । रामजीने पूंछा; हे मुनीश्वर ! ऐसी अद्वैत दृष्टि निष्ठा जिनको प्राप्तहुई है उनको कर्मोंके करनेसे क्या प्रयोजनहै; वे त्याग क्यों नहीं करते ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठहैं उनसे त्याग ग्रहणकी भ्रांतिचली जाती है और उसभ्रमसे रहित होकर वे प्रारब्धके अनुसार चेष्टाकरतेहैं। हे रामजी ! जो कुछ स्वाभाविक क्रिया उनको बनपड़ीहै उसका वे त्यागनहीं करते । उसमें उनको ज्ञानप्राप्तहुआहै सो आचारकरते हैं—और को ग्रहण नहीं करते और उसकात्याग नहीं करते। हे रामजी ! जिनको गृहस्थीहीमें ज्ञानप्राप्त हुआहै वे गृहस्थीहीमें बिचरतेहैं उसका त्यागनहीं करते—जैसे हम स्थितहैं और जिनको राज्यमें ज्ञानप्राप्त हुआहै सो राज्यहीमें रहेहैं—जैसे तुमहो । जो ब्राह्मणको ज्ञानप्राप्त हुआहै वह ब्राह्मणहीके कर्मोंमें रहे हैं और इसीप्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जिसवर्णाश्रममें किसीको ज्ञानप्राप्तहुआहै वही कर्म करताहै । हे रामजी ! कई ज्ञानवान् गृहस्थीहीमें रहेहैं; कई राज्यहीकरते हैं; कई संन्यासी होरहेहैं;कई बनमें बिचरते फिरतेहैं; कई पर्वतकन्दरा में ध्यानस्थितहो रहेहैं; कई नगरोंमें रहतेरहेहैं; कई मथुरा,केदारनाथ,प्रयाग, जगन्नाथ इत्यादिकमें रहेहैं; कई देवताकापूजन; कई कर्म;कई तीर्थ और अग्निहोत्र करतेहैं और कई हमारी नाई जप करतेहैं । कई अस्ताचल पर्वतमें; कई उदयाचल पर्वतमें और कई मन्दराचल,हिमाचल इत्यादिक पर्वत स्थानोंमें विचरते रहेहैं। कई शास्त्रबिहित कर्म्म करते रहेहैं; कई अवधूत होरहेहैं; कई भिक्षामांगमांग भोजनकरते रहेहैं;कई कठिनवचन बोलते रहेहैं; कई अज्ञानीहुये बिचरते रहेहैं और कई विद्याध्ययन इत्यादिक नानाप्रकारकी चेष्टा करतेरहेहैं क्योंकि; उनको चेष्टा स्वाभाविक प्राप्तहुईहै; वे यत्नसे कुछनहीं करते। हे रामजी ! वे शुभकर्म करें अथवा अशुभकर्मकरें परन्तु कोई क्रिया उनको बंधन नहीं करती और जो अज्ञानीहैं सो जैसे कर्मकरेंगे तैसेही फलकोभोगेंगे। जो पुण्यकर्मकरेंगे तो स्वर्गसुख भोगेंगे और पापसे नरकदुःखभोगेंगे । जो कामनासे रहित शुभकर्म करेगा उसका अन्तःकरण शुद्धहोगा और संतोंकेसंग और सच्छास्त्रों से शुद्धताको प्राप्तहोगा । हे रामजी ! जो अर्द्धप्रबुद्धहैं वे पाप करने लगजावें और आत्मअभ्यास त्यागदें तो वे दोनों मार्गोंसे भ्रष्टहैं—न स्वर्गको प्राप्तहोतेहैं और न आत्मपदको प्राप्त होतेहैं । तप,दान,तीर्थादिक सेवनेसेभी आत्मपदनहीं प्राप्तहोता;जबबिचार उपजताहै और आत्मपदका अभ्यासहोताहै तभी आत्मपद मिलताहै और जबआत्मपद प्राप्त होताहै तब निश्शंकहोजाताहै और चेष्टाव्यवहार करताभी दृष्टआताहै परन्तु उसका चित्त शांत होजाताहै । जैसे तांबेको जब पारसकास्पर्श कीजिये तब वह सुवर्णहोजाताहै; आकार उसका नष्टहीरहताहै परंतु तांबे भावका अभाव होजाताहै;तैसेही जब

चित्तको आत्मपदका स्पर्शहोता है तब चित्तशान्त होजाता है परन्तुचेष्टा उसीप्रकार होतीहै और जगत् की सत्यता नष्ट होजाती है। हे रामजी ! अब तुम जागेहो और निश्शंकहुये हो । रागद्वेष तुम्हारा नष्टहोगयाहै और तुम निर्विकार आत्मपद को प्राप्त हुयेहो। जन्म, मृत्यु, बढ़ना, घटना, युवा और वृद्धहोना; इन सर्व्वबिकारों से रहित आत्मपदको तुमने पाया है और सर्वका अधिष्ठान जो परमशुद्ध चैतन्य है सो तुमको प्राप्त हुआहै। हे रामजी ! जो कुछ मुझको कहनाथा सो कहा । यह सारकासार आत्म-पदहै और जो कुछ जानने योग्यथा सो तुमने जाना इसके उपरान्त न कुछ कहना रहाहै और न कुछ जाननारहाहै—यहीं तक कहना और जाननाहै। अब तुम निश्शंक होकर बिचरो तुमको संशय कोई नहींरहा और क्षय और अतिशयसे रहित पद तुमने पायाहै अर्थात् तुमने अविनाशी और सर्वसे उत्तमपद पायाहै। बाल्मीकिजी बोले;हे साधो ! जब इस प्रकार मुनियोंमें शार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णी होरहे तब सर्वसभा जो बैठीथी सो परम निर्विकल्पपदमें स्थित होगई और जैसे वायुसे रहित कमल फूल पर भँवरे अचल होते हैं; तैसेही चित्तरूपी भँवरे आत्मपदरूपी कमलके रसको लेते हुये स्थित होरहे । सबके सब ब्रह्मको जानकर ब्रह्मरूपहुये और ब्रह्मही में स्थितहुये। निकट जितने मृगथे वेभी तृणकाखाना छोड़कर अचल होगये;दूसरे पशु; पक्षीभी सुन कर निस्स्पन्दहोरहे और स्त्रियां जो बालकोंसंयुक्त चपलथीं वे सुनकर जड़वत् होगईं पूर्व जो मुक्तिमान् सिद्धोंके गण मोक्ष उपायके श्रवणको आयेथे और देवता अरु सिद्धों ने तमाल,कदम्ब,पारिजात,कल्प इत्यादिक दिव्य वृक्षोंके फूलोंकी बर्षाकी और नगारे, भेरी और शंख, बजने और वशिष्ठजीकी स्तुति करनेलगे। निदान बड़े शब्द हुये जिनसे दशोंदिशा पूर्ण होगईं और ऊपरसे देवतों और सिद्धोंके नगारोंके शब्द हुये जिनसे पर्वतों में शब्दभाव उठे और दिव्यफूलोंकी ऐसी सुगन्धि फैली—मानों पवन भी रंगित हुआहै। तब सिद्धों ने कहा; हे वशिष्ठजी ! हमनेभी अनेक मोक्षके उ-पाय सुने और उच्चार किये परन्तु जैसा तुमने कहाहै तैसा न आगे सुनाहै;न गाया है और न कहाहै। जो तुम्हारे मुखारविंदसे श्रवण कियाहै उससे हम परमसिद्धांत को जानगये हैं। इसके श्रवणसे पशु, पक्षी और मृगभी कृतार्थ हुये हैं और मनुष्यों की तो क्या वार्ता कहिये वे तो कृतार्थही हुये हैं और निष्पाप ज्ञानको पाकर मुक्तहोंगे। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो ! ऐसे कहकर उन्होंने फिर फूलोंकी वर्षाकी और वशिष्ठ-जीको चन्दनकालेप किया। जब इस प्रकार वे पूजा करचुके तब और जो निकट बैठे थे सो परमविस्मयको प्राप्तहुये कि; ऐसा परम उपदेश वशिष्ठजीने किया। तब राजा दशरथ उठखड़ा हुआ और हाथ जोड़कर वशिष्ठजीको नमस्कार करके बोला; हे भ-गवन् ! तुम्हारी कृपासे हम षडैश्वर्यों से सम्पन्न हुये हैं । हे भगवन् ! तुमने सम्पूर्ण

शास्त्र सुनायाहै जिसको सुनकर हम पूजन करनेके योग्य हैं; इसलिये हे देव! हम तुम्हारा पूजन किससे करें ? ऐसा कोई पदार्थ पृथ्वी आकाश और देवताओं में भी नहीं दृष्ट आता जो तुम्हारी पूजाके योग्यहो—सर्व पदार्थ कल्पित हैं; और जो सत्य पदार्थसे पूजाकरें तो सत्य तुमहींसे पायाहै। इससे ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो तुम्हारी पूजाकेयोग्यहो तथापि अपनी२ शक्तिके अनुसार हम पूजन करते हैं तुम क्रोधवान् न होना और हँसीभी न करना। हे मुनीश्वर! मैं राजा दशरथ; मेरे अन्तःपुरकी संपूर्ण स्त्रियां; मेरे चारोंपुत्र; मेरा सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण प्रजा सहित जो कुछ मैंने लोक में यश कियाहै और परलोकके निमित्त पुण्य कियाहै वह सर्व तुम्हारे चरणोंके आगे निवेदन करताहूं। हे साधो! इस प्रकार कहकर राजा दशरथ वशिष्ठजीके चरणों पर गिरे। तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन्! तुम धन्यहो, जिनको ऐसी श्रद्धाहै परन्तु हम तो ब्राह्मणहैं हमको राज्य क्या करनाहै और हम राज्यका व्यवहार क्या जानें! कभी ब्राह्मणने राज्य कियाहै; राजा तो क्षत्रियही होते हैं; इसलिये तुमहींसे राज्यहोगा। यह जो तुम्हारा शरीर है उसे मैं अपनाही जानताहूं और ये तेरे चतुष्टय पुत्र मैं आगे से अपने जानताहूं। हम तो तुम्हारे प्रणामसेही संतुष्टहैं; यह राज्यका प्रसाद हमने तुमकोही दिया। फिर वाल्मीकिजी बोले कि; जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथने फिर कहा कि; हे स्वामिन्! तुम्हारेलायक कोई पदार्थ नहीं। तुम ब्रह्मांडके ईश्वरहो बल्कि तुमसे ऐसे वचन कहते भी हमको लज्जा आती है परन्तु योग के निमित्त तुम्हारे आगे विनती की है कि; मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवणकिया है इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारा पूजनकरें। तब वशिष्ठजीने कहा; बैठो और राजा बैठगया। फिर रामजीने निरभिमान होकर कहा; हे संशयरूपीतिमिर के नाशकर्त्ता सूर्य! तुम्हारा पूजन हम किससे करें ? कोई पदार्थ गृहमें अपना नहीं। हे गुरोजी! मेरे पास और कुछ नहीं है केवल एक नमस्कारही है। ऐसे कहकर वे चरणोंपर गिरे और नेत्रों से जल चलनेलगा। वे बारबार उठें और आत्मानन्द प्राप्तिके उत्साह से फिर गिरपड़ें। निदान जब वशिष्ठजीनेकहा बैठजाओ तब रामजीभी बैठगये। फिर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि सबअर्घ्यपाद्यसे पूजनेलगे और फूलों की वर्षाकी जिससे वशिष्ठजीका शरीर भी ढकगया और जब वशिष्ठजी ने भुजासे फूल दूर किये तब मुखदृष्ट आनेलगा। जैसे बादलोंके दूरहुये चन्द्रमा दृष्टिआताहै; तैसेही मुख दीखनेलगा। फिर वशिष्ठजीने व्यास, बामदेव, विश्वामित्र, नारद, भृगु, अत्रि इत्यादिक जो बैठेथे उनसे कहा; हे साधो! जो कुछ मैंने सिद्धान्तके वचन कहे हैं इनसे न्यून वा अधिक जो कुछहो सो अब तुम कहो। जैसे जैसा स्वर्ण होताहै तैसाही अग्नि में दिखाई देताहै; तैसेही तुम कहो। तब सबने कहा; हे मुनीश्वर! ये तुमने परमसार

वचन कहे हैं; जो तुम्हारे वचनको न्यून वा अधिक जानकर उनकी निंदाकरेगा वह महापातित होगा। ये वचन परमपद पानेके कारण हैं। हे मुनीश्वर! हमारे हृदय में भी जो कुछ जन्म जन्मान्तरका मैलथा वह नष्टहोगया। हम तो पूर्ण ज्ञानवान्थे परंतु पूर्वजन्म जो धरे हैं उनकी स्मृति हमारे चित्तमें थी कि; अमुकजन्म हमने इसप्रकार पाया था और अमुकजन्म इसप्रकार पाया था सो सर्व स्मृति अब नष्ट हुई है और जैसे अग्निमें डाला सुवर्ण शुद्ध होता है तैसेही तुम्हारे वचनों से हमारा स्मृतिरूप मल नष्ट हुआहै। अब हम जानते हैं कि, न कोई जन्मथा और न हमने कोई जन्म पाया है-हम अपनेही आपमें स्थित हैं। हे मुनीश्वर! तुम संपूर्ण विश्वके गुरु और ज्ञान अवतारहो इसलिये तुमको हमारा नमस्कारहै। राजा दशरथ भी धन्यहैं जिनके संयोगसे हमने मोक्ष उपाय सुनाहै और ये रामजी विष्णुभगवान् हैं। इतना कह फिर बाल्मीकिजी बोले कि, इसीप्रकार ऋषीश्वर और मुनीश्वर वशिष्ठजी को परमगुरु जानकर स्तुति करनेलगे, रामजीको विष्णुभगवान् जानकर उनकी भी स्तुतिकी और राजादशरथकीभी स्तुतिकी कि,जिनके गृहमें विष्णुभगवान्ने अवतारलिया फिर वशिष्ठजीको अर्घ्यपाद्यसे पूजनेलगे। आकाशके सिद्धबोले; हे वशिष्ठजी! तुम को हमारा नमस्कार है तुम गुरुकेभी गुरु हो। हे प्रभो! जो कुछ तुमने उपदेशकिया है और जो कुछ उसमें युक्तिकही है ऐसे वचन वागीश्वरीभी कहे अथवा न कहे। तुमको बारम्बार नमस्कार है और राजादशरथ चतुर्द्वीप पृथ्वी के राजा को भी नमस्कार है जिसके प्रसंग से हमने ज्ञान और युक्तिसुनी। ये रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं और चारों आत्माहैं इनको हमारा प्रणामहै। ये चारोंभाई ईश्वर हैं जिनपर विष्णुभगवान् दया करते हैं और जीवन्मुक्त अवस्था को धारकर बैठेहैं। वशिष्ठजी परमगुरु हैं और विश्वामित्रतपकीमूर्त्ति हैं। बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब सिद्ध कहचुके तब वे फूलोंकी वर्षा करनेलगे। जैसे हिमालय पर्वत पर बरफकी वर्षा होती है और वह बरफ से पूर्ण होजाता है; तैसेही वशिष्ठजी पुष्पों से पूर्णहुये। आकाशचारी जो ब्रह्मलोक के वासीथेउन्होंनेभी उनपरपुष्पों की वर्षाकीऔर जोसभामें ब्रह्मर्षिआदि बैठेथे उनका भी यथायोग्य पूजन किया। इसप्रकार जब सिद्ध पूजन करचुके तब कई ध्याननिष्ठ होरहे; सबके चित्त शरत्काल के आकाशवत् निर्मल होगये और अपने स्वभाव में स्थितहुये। जैसे स्वप्ने की सृष्टिका कौतुकदेखकर कोई जागउठे और हँसे; तैसेही वे हँसनेलगे। तब वशिष्ठजीने रामजीसे कहा; हे रघुबंशी कुलरूपी आकाशके चन्द्रमा! तुम अब किसदशामें स्थित हो और क्या जानते हो? रामजी बोले; हे भगवन्! सर्व धर्म ज्ञानके समुद्र! तुम्हारी कृपा सेमैं अब अपने आपमेंस्थितहूं और कोई कल्पना मुझेनहींरही। अब मैं परमशांतिमान् हुआहूं और मुझको शेष विशेष कोईनहींभासता

मोती और हीरोंकी माला; मोहरें, रुपये, घोड़े, गऊ, वस्त्र, भूषण आदि जो ऐश्वर्य्य की सामग्री है उससे यथायोग्य पूजन किया । जो बिरक्त संन्यासीथे उनको प्रणाम करके प्रसन्न किया और जो राजर्षिथे उनका भी पूजनकिया । तब वशिष्ठजी उठखड़े हुये और परस्पर सबने नमस्कार किया और मध्याह्न के नौबत नगारे बजने लगे । सब श्रोता उठकर बिचरने लगे । कोई चलेजाते थे और कोई शीशहिलाते कोई हाथकी अंगुली हिलाते, नेत्रनकी भवेंहिलाते परस्परचर्चा करतेजातेथे । इसप्रकार सब अपने स्थानों को गये । वशिष्ठजी सन्ध्या उपासना करने लगे और सर्वश्रोता बिचार पूर्वक रात्रिको व्यतीत कर सूर्यकी किरणोंके निकलतेही आपहुँचे । गगनचारी; सप्तलोक के रहनेवाले; ऋषि और देवता; भूमिवासी राजर्षि, ब्रह्मर्षि और जो श्रोताथे सो सब आकर अपने २ स्थानपर बैठगये और सबने परस्पर नमस्कार किया । तब रामजी हाथ जोड़कर उठखड़ेहुये और बोले, हे भगवन् ! अब जो कुछ मुझको सुनना और जानना रहा है सो तुमही कृपाकरके कहो । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो कुछ सुनने योग्य था सो तुमने सुनाहै। अब तुम कृतकृत्यहुयेहो और सर्वरघुवंशियों का कुल तुमने तारा है और जो आगेहोंगे सो सब तुमने कृतकृत्य कियेहैं । अब तुम परमपद को प्राप्तहुयेहो और जो कुछतुमको पूछनेकी इच्छा है सोपूछलो । हे रामजी! जो सत्तासमान में स्थितहुयेहो तो विश्वामित्रके साथजाकर इनका कार्यकरो और जो कुछपूछनेकी इच्छाहो सोपूछलो । रामजीनेपूछा; हेभगवन् ! आगेमैं अपने आपको इस देहसंयुक्त प्रच्छन्नरूप देखता था और अब अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता—सब अपना आपही भासता है । हे मुनीश्वर ! अब इसशरीरसे मुझकोकुछ प्रयोजन नहींरहा । जैसे फूल से सुगन्धलेकर पवन चलाजाता है और फूलसेउसका प्रयोजन नहीं रहता; तैसेही इस देहमें जो कुछ सारथा सो मैं पाकर अपने आप में स्थितहूं और शरीरके साथ मुझको प्रयोजन नहीं रहा । अब राज्य भोगनेसे कुछसुख दुःख नहीं और इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्टमें मुझको कुछ हर्ष शोक नहीं । मैं अब सबसे उत्तम पदको प्राप्त हुआहूं और सब कलनासे रहित अविनाशी, अव्यक्तरूप सर्वसे निरंतर सदा अपने आपमें स्थित और निराकार और निर्विकारहूं । जो कुछ पानेयोग्य था सो मैंने पायाहै और जो कुछ सुनने योग्यथा सो सुनाहै और जो कुछ तुमको कहना था सो कहाहै अब तुम्हारी वाणी सफल हुई है । जैसे कोई रोगीको औषध देता है तो उस औषधसे उसका रोग जाताहै और उसका कल्याण होता है; तैसेही तुम्हारी वाणीसे मेरा संशयरूपरोग गयाहै और अपने आपसे तृप्त हुआहूं । अब मैं निःशंक होकर अपने आपमें स्थितहूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामद्विशताधिकाशीतितमस्सर्गः २८०

वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो रामजी ! तुम मेरे परमवचन सुनो दृढ़ अभ्यासके निमित्त मैं फिर कहताहूं । जैसे आदर्शको ज्योंज्यों मार्जन करतेहैं त्योंत्यों उज्ज्वल होता है; तैसेही बारम्बार सुननेसे अभ्यास दृढ़ होताहै । जितना कुछ जगत् भासता है सो सब चिदानन्द स्वरूप है । भासती भी वही वस्तु है जो आगे ज्ञानरूप होती है । वह ज्ञानरूप चेतनहै इससे जो पदार्थ भासते हैं सो सब चेतनरूपहैं और जो भिन्न२ पदार्थ द्वैतकी कल्पनासे भासते हैं सोभी वास्तवमें ज्ञानरूप चेतनहैं । जैसे जो कुछ उच्चार करते हैं सो सब शब्द है पर शब्दरूप एक है और अर्थ से भिन्न २ भासते हैं । जब अर्थ की कल्पना त्यागदीजै तबयही शब्द है और जो अर्थ कीजिये कि, यहजल है, यह पृथ्वी है; यह अग्नि है इनसे आदिलेकर अनेक शब्द और अर्थ होते हैं और अर्थ से रहित शब्द एकही है; तैसेही यह सब चेतन है पर चित्तकी कल्पनासे भिन्न२ पदार्थ भासते हैं और कुछ वस्तु नहीं और जो भासता है सो उसीका आभास है। हे रामजी ! आभासभी अधिष्ठानसत्ता भासती है परन्तु ज्ञानमें भेद होताहै पर ज्ञान में भी भेद नहीं वृत्तिमें भेद है जिसमें अर्थ भासते हैं । ज्ञानरूप अनुभव सत्ताहै; इसमें जैसे अर्थकी वृत्ति आभास होतीहै उसीको जानता है । जैसे एकही रस्सी पड़ी होती है और उसमें सर्पकाअर्थ वृत्ति न ग्रहण करेतो सर्प तो कुछ नहीं वह रस्सीहीहै; तैसेही अर्थभेद ग्रहणकीजिये तो भेदहै नहीं तो ज्ञानहीहै और सर्वपदार्थ जो भासते हैं वे सब ज्ञानरूपी हैं और कुछ बना नहीं । हे रामजी ! स्वप्ने के दृष्टांत मैंने तुमको जतानेके निमित्त कहेहैं, वास्तव में स्वप्ना भी कोई नहीं; अद्वैतसत्ताही अपने आपमें स्थित है । जैसे समुद्रसदा जलरूप है पर द्रवतासे तरंग बुद्बुदे भासतेहैं सो नानारूप नहीं और नानाहो भासता है; तैसेही सर्व जगत् अनानारूप है और नानाहो भासता है । तुम अपने स्वप्ने की स्मृति को विचारकर देखो कि; तुम्हारा अनुभवही नानाप्रकार हो भासताहै परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जाग्रत् जगत्भी तुम्हारा अपना आप है और दूसरा कुछ नहीं । सदा निराकार, निर्विकार और आकाश रूप आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जो अद्वैतसत्ता निराकार, निर्विकार और सदा अपने आपमें स्थितहै तो पृथ्वी कहांसे उपजी है; जल कैसे उपजाहै और अग्नि, वायु, आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशमें कैसे उपजे हैं मेरे दृढ़बोधके निमित्त कहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह तुम कहो कि; स्वप्ने में पृथ्वी कहांसे उपज आती है और जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य, देश, काल, पदार्थ कहां से उपजते हैं ? रामजी बोले; हे मुनीश्वर ! स्वप्ने में जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देश, काल, पदार्थ भासतेहैं सो सब आत्मरूप होतेहैं और आत्मसत्ताही ज्योंकीत्यों होती है सो तत्त्ववेत्ताओंको ज्योंकी

त्यों भासती है और जो असम्यक्दर्शी हैं उनको भिन्नभिन्न पदार्थ भासते हैं। भासना दोनोंका तुल्य होताहै परन्तु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थको ग्रहण करती है उसको ज्यों की त्यों आत्मसत्ता भासती है और जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ ग्रहण नहीं करती उसको वही वस्तु और रूपहो भासती है। हे मुनीश्वर! और जगत् कुछ बना नहीं वही आत्मसत्ता स्थितहै। जब कठोर रूपकी संवेदन फुरती है तब पृथ्वी और पहाड़रूप हो भासती है; जब द्रवताका स्पन्द फुरताहै तब जलरूपहो भासतीहै और उष्णरूप की संवेदन फुरती है तब अग्नि भासती है; इसीप्रकार वायु, आकाशादिक पदार्थों से जैसे फुरना होताहै तैसेही हो भासता है। जैसे जल तरंगरूपहो भासता है परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं, जलही रूपहै; तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूपहो भासती है और वही रूपहै जगत् कुछ वस्तु नहीं। यह गुण और क्रिया सब आकाशमें है वास्तवमें कुछ नहीं क्योंकि; कारण रहित असत्यरूप है। यह अहं त्वंसे आदिक लेकर सब जगत् आकाशरूप है कुछ बनानहीं, आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और कोई आधार नहींहै। अद्वैतसत्तासदा अपने आपमें स्थितहै और नानारूपहो भासतीहै। जब चित्त संवेदन फुरतीहै तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, कालहो भासताहै। कहींसर्व आत्माकाज्ञान फुरताहै और कहींपरिच्छिन्नता भासतीहै परन्तु वास्तवमें कुछबनानहीं वही वस्तुहै; जैसा उसमेंफुरना फुरताहै तैसाहीहो भासता है। अनुभवसत्ता परमआ-काशरूपहै जिसमें आकाशभी आकाशरूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिदाकाशजगत्एकताप्रतिपादनं नामद्विशताधिकैकाशीतितमस्सर्गः २८१॥

रामजी बोले; हे भगवन्! अब यहप्रश्न है कि, जो जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछभेद नहीं और परम आकाशरूप हैं तो उससत्ताको जाग्रत् और स्वप्ने के शरीर से कैसे संयोग है; वह तो निरवयव और निराकार है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्व आकार जो तुमको भासतेहैं सो सब आकाशरूपहैं और आकाश में आकाशही स्थित है सर्गके आदिमें आकारका अभावथा सोही अबभी जानो कि; उपजा कोई नहीं परम आकाशसत्ता अपनेआपमेंस्थितहै। जब वह अद्वैतसत्ता चिन्मात्रमें चित्त किंचन होता है तब वहीसत्ता आकारकीनाईं भासतीहै परन्तु कुछहुआ नहीं, आकाशही रूपहै। जैसे स्वप्नेमें शरीरोंका अनुभव करताहै पर वे कुछ आकारतो नहींहोते केवल आकाशरूप होतेहैं; तैसेही यह जगत् भी निराकार है परन्तु फुरनेसे आकारहो भासता है। जिन तत्त्वों से शरीर होताहै सो तत्त्वही उपजे नहीं तो शरीर की उत्पत्ति कैसेकहूँ? हे राम जी! और जगत् कुछ उपजा नहीं, ब्रह्मही किंचन से जगत रूपहो भासता है। जैसे जल और द्रवता में भेद नहीं और जैसे आकाश और शून्यता में भेदनहीं; तैसेही

सब ब्रह्महीका प्रकाशहै। वहीअपने आपमें प्रकाशताहै। रामजीने पूछा;हे भगवन्! सर्गके आदिमें देह चित्तादिक कैसे फुरआये हैं और आत्माका प्रकाशरूप जगत्कैसे है? प्रकाशभी उसका होताहै जो साकाररूप होताहै पर ब्रह्म तो निराकार है उसका प्रकाश कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वब्रह्मरूप है। प्रकाश और प्रकाशक का भेद भी कुछनहीं और दूसरी बस्तुभी कुछनहीं वही अपने आपमें स्थित है–इसीसे स्वप्रकाश कहाहै। सूर्य आदिक का प्रकाश त्रिपुटीसे भासता है सोभीउस के आश्रय होकर प्रकाशता है और उसके प्रकाश का आधारभूत कहाता है जिसके आश्रयहोकर सूर्य जगत् को प्रकाशताहै। आत्मसत्ता अद्वैत और विज्ञानघन है उस में जो चित्तसंवेदन फुरी है वही जगत्रूप होकर स्थित हुईहै। आत्मसत्ता और जगत् में कुछभेद नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछभेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेदनहीं–वही इसप्रकार हुयेकी नाईं स्थित हुआहै। हे रामजी! निराकारही स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है। इस जगत् के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी उसीसे जो नानाप्रकार का जगत् दृष्टिआया सो वहीरूप हुआ और कारण तो कोई नहीं। जैसे स्वप्ने के आदि अद्वैतसत्ता निराकार है और उससे जो सूर्यादिक पदार्थ भासिआते हैं सोभी वहीरूप हुये पर प्रकट भासतेभी हैं; तैसेही इस जगत् कोभी अकारण और निराकार जानो। हे रामजी! न कोई जाग्रत्है; नस्वप्नहै और न सुषुप्ति है सब आभासमात्रहै–वही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। हमको तो वही सदा विज्ञानघनआत्मसत्ता भासतीहै जैसे दर्पणमेंअपनामुखभासताहै;तैसेही हमको अपना आप भासता है और अज्ञानी को भ्रांतिरूप जगत् भासता है। जैसे वृक्ष के भुण्ड में दूरसे भ्रांति करके पुरुषभासता है; तैसेही अज्ञानीको जगत् भासता है। हे रामजी! न कोई द्रष्टा है और न दृश्य है। द्रष्टा तो तब कहिये जो दृश्यहो; और दृश्य तब कहिये जो द्रष्टाहो; जो दृश्य नहीं तो द्रष्टाकिसका और जो द्रष्टाहीनहींतो दृश्य किसका? इससे निर्बिकार ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जो आकार भी भासते हैं तो भी निराकार है–आत्मसत्ताही संवेदन करके आकार रूपहो भासती है और जैसे थंभेमें चितेरा पुतलियां कल्पताहै कि; इतनी पुतलियां थंभेमें निकलेंगी तो उसको खोदेबिनाही प्रत्यक्ष भासतीहैं; तैसेही खोदेबिना ब्रह्मरूपीथंभेमें मनरूपीचितेरा ये पुतलियां देखता है सो हुआ कुछनहीं। हे रामजी! इन मेरे बचनोंको तुम स्वप्न और संकल्प दृष्टांत से देखो कि; अनुभवरूपही आकारहो भासता है–अनुभवसे भिन्न कुछनहीं। इस मेरे बचनरूपी उपदेश को हृदयमें धारो और अज्ञानियों के बचनको त्यागदो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याबादबोधोपदेशोनाम
द्विशताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः २७२॥

रामजी बोले; हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि; हम अज्ञानसे जगत्को देखतेथे। जगत् तो कुछ बस्तुनहीं सर्वब्रह्महीं है और अपने आपमें स्थित है। यह जगत्भ्रम से भासता है। अब मैंने जाना कि; यह जगत् बास्तवमें न पीछेथा और न आगेहो- वेगा; सर्वशान्त निरालम्ब बिज्ञानघन सत्ताहै और भ्रांतिभी कुछबस्तु नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है जो निर्बिकार और शांतरूप है। जैसे स्वर्ग, परलोक, स्वप्न और संकल्पपुरके आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता होती है और उसका आभास संवेदन स्पन्द फुरती है तो अनेक पदार्थ सहित जगत् भासिआता है सो अनुभवरूप होता है भिन्न कुछबस्तु नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूपहै। हे प्रभो! अब मैंने तुम्हारी कृपासे ऐसे निश्चय कियाहै कि; जगत् अबिचार सिद्धहै और बिचार कियेसे निवृत्त होजाता है। जैसे शशेके सींग और आकाशके फूल असत्य होते हैं; तैसेही जगत् असत्य है। बड़ा आश्चर्य है कि; असत्यरूप अविद्याने जगत् को मोहितकिया था। अब मैंने जाना कि; अविद्या कुछबस्तु नहीं अपनी कल्पनाही आपको बन्धनकरती है। जैसे अपनी परछाहीं में बालक भूतकल्पता है और आपही भय पाताहै; तैसेही अपनी कल्पनाही अबिद्यारूप भासती है पर जबतक बिचार प्राप्त नहींहुआ तभी तक भासती है विचार कियेसे उसका अत्यन्त अभाव होजाता। जैसे जेवरी में सर्प भासता है और जेवरीके जानेसे सर्पका अत्यन्त अभाव होजाताहै। जैसे किसीस्थान में भ्रमसे मनुष्य भासताहै;तैसेही आत्मामें भ्रमसे अविद्यारूप जगत् भासताहै। जैसे आकाशकेफूल और शशेकेसींग कुछबस्तुनहीं; तैसेही अविद्याभी कुछबस्तुनहीं। जैसे बन्ध्याकापुत्रभासे तौभी भ्रममात्र जानाजाता है और स्वप्नेमें अपने मरनेका अनुभव हो वहभी भ्रममात्र है; तैसेही अविद्यारूप जगत् भासता है तौभी असत्यहै प्रमाण- रूपनहीं। प्रमाण उसे कहते हैं जो यथार्थज्ञानका साधकहो पर यहजो प्रत्यक्षप्रमाण है सो यथार्थ कर्त्ता नहीं क्योंकि; वस्तुरूप आत्मा है सो ज्योंका त्यों नहीं भासता सी- पीमें रूपेके समान बिपर्यय भासताहै। यह प्रत्यक्ष अनुभवभी होताहै तौभी असत्य- रूप है–प्रमाण क्योंकर जाने। हे भगवन्! यह जगत् और कुछ बस्तु नहीं केवल कल्पनामात्र है जैसे जैसे आत्मा में संकल्प दृढ़ होता है; तैसेही तैसे जगत् भासता है। जैसे जो पुरुष स्वर्ग में बैठाहो उसके हृदयमें यदि कोई चिन्ता उपजे तो उसको स्वर्ग भी नरकरूप होजाता है क्योंकि; भावना नरककी होजाती है। हे भगवन्! यह जगत् केवल वासनामात्र है। आत्मा में जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना केवल यह जगत् चित्तमें है। जैसे पत्थरकी शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै सो जैसी कल्पता है तैसेही भासती हैं–शिलासे भिन्नकुछनहीं; तैसेही आत्मामें चित्त ने जगत् पदार्थ रचे हैं और जैसे जैसे भावना करता है तैसेही तैसे यह भासता है।

आत्मामें जगत् न कुछ हुआहै और न आगे होगा। ब्रह्मसत्ता केवल अपने आपमें स्थितहै जो स्वच्छ, अद्वैत, परम मौनरूप और द्वैत और एक कल्पनासे रहितहै और परम मुनीश्वरों से सेवने योग्यहै। ऐसा जो पदहै सो मैंने पाया है और अपनेआपमें स्थित और सर्वदुःखोंसे रहित हूँ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः २७३॥

रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर! आदि, अन्त और मध्यसे रहित जो पदहै और जिसका मुनियों कोभी जानना कठिन है वह पद मैंने पाया है और एक और द्वैतकी कल्पना जो शास्त्र और वेदोंमें कही है वह मेरी मिटगई है। अब मैं परमशांत होकर निश्शंक हुआहूँ और कोई दुःख मुझको नहींरहा। सब जगत् मुझको आत्मरूपही भासता है। हे भगवन्! अब मैंने जाना कि; न कोई अविद्या है; न विद्या है; न सुख है और न दुःख है मैं सर्वदा अपने आत्मपद में स्थित हूँ और पानेयोग्य पदपाया है जो आगेभी प्राप्त था। जो कहते हैं कि, हम उसपदको नहीं जानते उनको भी वह प्राप्तरूप है परन्तु वे अज्ञान से नहीं जानते। वह पदऔर किसीसे नहीं जानाजाता अपने आपसे जानाजाता है और ऐसेभी नहीं है कि; किसीसे जनाइये और जानने योग्य और हो; वह तो आपही बोधरूप है और न कोई भ्रांतिहै; न जगत् है सर्वआत्माही है। हे मुनीश्वर! अज्ञान और ज्ञान भी ऐसे हैं जैसे स्वप्ने की सृष्टि हो। जैसे उसमें अन्धकार भासताहै सो तब नाशहोताहै जब सूर्यउदयहो। जब स्वप्नेसे जाग उठे तब न अन्धकार रहता है और न प्रकाशही रहता है; तैसेही आत्मपद में जागेसे ज्ञान और अज्ञान दोनों का अभाव होजाता है और द्वितीय कल्पना मिटजाती है। जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है परन्तु जगत् आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं जैसे शिलाका अन्तर जड़ीभूत होता है; तैसेही आत्माकारूप जगत् है जैसे जल और तरंग में भेदनहीं; तैसेही आत्मा और जगत् अभेदरूप है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष को ऐसे आत्मा में अहंप्रतीति हुई है वह कार्यकर्त्ता दृष्टि आताहै तौभी हृदय के निश्चय से कुछ नहीं करता और अशांतरूप दृष्टिआता है तौभी सदा शांतरूप है। हे मुनीश्वर! अज्ञानरूपी मध्याह्न का सूर्य है और जगत् की सत्यतारूपी दिन है। जगत् का भाव अभाव पदार्थरूपी उसका प्रकाश है और तृष्णारूपी मरुस्थल है जिसमें अज्ञानी जीवरूपी मार्गपंथी हैं उनको दिन और मार्ग निवृत्त नहीं होता। जो ज्ञानवान् स्वभाव में स्थित हैं उनको न संसार की सत्यतारूपी दिनभासता है और न तृष्णारूपी मरुस्थल भासताहै। वे संसारकी ओर से सोरहे हैं। ऐसी अद्वैत सत्ता

उनकोप्राप्तहुई है जहां सत्य और असत्य दोनों नहीं इसकारण उन्हें जगत् कलना नहीं भासती । हे मुनीश्वर ! अब मैं जागाहूं और सब जगत् मुझको अपना आपही दृष्टिआता है । मैं निर्वाणरूप, निराकार, निरिच्छित और स्वभावसत्तारूपहूं । अब कोई दुःख मुझको नहीं । हे मुनीश्वर! उसपद को मैंने पायाहै जिसके पानेसे तृष्णाकदाचित् नहीं उपजती । जैसे पाषाणकी शिलामें प्राणनहीं फुरते, तैसेही मुझमें तृष्णा नहीं फुरती । सर्व आत्मरूपही मुझको भासता है । यह जो जीव है उसमें जीवत्व कुछनहीं;जीवत्व भ्रांति सिद्धहै सब आत्मस्वरूप है। मुझको तो निरालंबसत्ता अपनी आपही भासती है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुस्सप्ततितमस्सर्गः २७४ ॥

रामजीनेपूँछा; हे मुनीश्वर ! आत्मामें अनन्तसृष्टिफुरती हैं । जैसे मेघकी बूंदों की गिनती नहीं होती, तैसेही परमात्मा में सृष्टि के अन्तकी गिनतीनहीं होती । जैसे एक रत्नकी असंख्यात किरणें होतीहैं; तैसेही परमात्मा में असंख्य सृष्टि है; कई परस्पर मिलतीं और कई नहीं मिलतीं परंतु स्वरूप से एकरूप हैं । जैसे समुद्रमें लहरें उठती हैं तो उनमें कई नूतन भिन्न भिन्न औरही प्रकारकी उठती हैं; कई परस्पर ज्ञातहोतीहैं और कई नहीं होतीं और एकहीज्वाला के बहुतदीपक होते हैं और कोई अन्योन्य और कोई परस्परमिलतेहैं और पर स्वरूपसे एकरूपहैं तैसेही आत्मामें अनन्त जगत् फुरते हैं परन्तु परस्पर एकरूप हैं । यदि नानाप्रकार का जगत् दृष्टि आया तो उसमें वहीरूपहुआ और कारणतो कोई नहीं ? जैसे शून्य के आदि निराकार सत्ता होती है और उसीसे सूर्यादिक पदार्थ भासिआते हैं सोभी वहीरूपहुये प्रकटभासतेभी हैं परन्तु निराकार होते हैं; तैसेही यह जगत् भी अकारण निराकार है। हे मुनीश्वर ! अब मैंने ज्योंकात्यों जाना है । जैसे स्वप्ने में मुयेहुये बोलते हैं, जीतेहुये मृतक दृष्टआतेहैं और सब पदार्थ बिपर्यय भासते हैं परन्तु जब जागउठेतब सब ज्योंकेत्यों भासतेहैं; तैसेही मैं जागउठाहूं अब मुझको बिपर्यय नहीं भासता—यथाभूतार्थ मुझको अब सर्वात्माही भासता है । हे मुनीश्वर! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे परमसमाधि में स्थित हैं और उनको उत्थान कदाचित् नहीं होता अर्थात् स्वरूपसे भिन्न नहीं भासता । वे व्यवहार करते दृष्टिआते हैं परन्तु व्यवहारसे रहित हैं क्योंकि; उनको अभिलाषा कुछ नहीं रहती बिनाअभिलाषा चेष्टाकरते हैं और उनको हृदय से कुछ कर्त्तृत्वका अभिमाननहीं फुरता। इसीका नाम परमसमाधि है । जब बोधकी प्राप्ति होतीहै तब तृष्णाकोईनहीं रहती और सब पदार्थ विरस होजाते हैं क्योंकि; आत्मपद परमानंदरूप है और तृष्णासे रहित है। उसीकानाम मोक्ष है और उसीकानाम निर्वाण है, जिस में उत्थान

कोई नहीं । हे मुनीश्वर ! आत्मानंद ऐसा पद है जिसके आनन्दको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक और ज्ञानवानों की वृत्तिसदा दौड़ती है और संसार के पदार्थोंकी ओर नहीं धावती । जिसपुरुष को शीतलस्थान प्राप्तहुआहै वह फिर ज्येष्ठ आषाढ़की धूपकोनहीं चाहता कि, मरुस्थल में दौड़े; तैसेही ज्ञानवान्की वृत्ति आनंदकीओर नहीं धावती । हे मुनीश्वर ! मैंने निश्चयकिया है कि; तृष्णा कासाताप कोई नहीं और अतृष्णा कीसी शान्ति कोई नहीं । यदि कोई पुरुष परमैश्वर्य्य को प्राप्तहुआ हो पर उसको हृदयकी तृष्णा जलातीहो तो वह कृपण और दरिद्री है और आपदाका स्थानहै और जो निर्द्धन दृष्टिआताहो परन्तु उसके हृदय में कोई तृष्णा नहीं तो वह परमैश्वर्य से सम्पन्नहै और परम सम्पदाकी मूर्त्तिहै । जो बड़ा पण्डितहो परन्तु तृष्णासहितहो तो उसे परममूर्ख जानिये; उसको बोधकी प्राप्ति कदाचित् नहोगी । जैसे मूर्त्तिकी अग्नि शीतको निर्वाण नहीं करती; तैसेही उसकी मूर्खताको पण्डितभी निर्वाण नहीं करसक्ता। हे मुनीश्वर ! सहस्रोंमें कोई बिरला पुरुष तृष्णासे रहित होताहै । जैसे पिंजरेमें पड़ा सिंह पिंजरेको तोड़कर निकले,तैसेही कोई बिरला तृष्णाके जालको तोड़कर निकलता है । जो पण्डितस्वरूप को विचारके वितृष्णा नहीं होता और अतीत होकर वितृष्णा नहीं होता तो वे पण्डित और अतीत दोनों मूर्ख हैं । ज्यांज्यों तृष्णाको घटावे त्यांत्यों जाग्रत् बोध उदय होगा । जैसे ज्योंज्यों रात्रिकी क्षीणता होती है, त्योंत्यों दिनका प्रकाश होता है और ज्योंज्यों रात्रिकी वृद्धि होती है त्योंत्यों दिनकी क्षीणता होती है; तैसेही ज्योंज्यों तृष्णा बढ़ती जावेगी त्योंत्यों बोधकी प्राप्ति कठिन होगी और ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जावेगी त्योंत्यों बोधकी प्राप्ति सुगम होगी । हे मुनीश्वर ! अब मैं उस पदको प्राप्त हुआहूं जो अच्युत, निराकार और द्वैत–एक कलनासे रहित है । उस पदको मैंने आत्मामें जानाहै और अब मैं निश्शंक हुआहूं । जिस पदके पायेसे कोई इच्छा नहींरही सो परमानन्द आत्मपद है ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रान्तिवर्णनंनाम
द्विशताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः २७५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बड़ा कल्याण हुआहै कि; तुम जागेहो । ऐसे परमपावन वचन तुमने कहे हैं कि, जिनके सुनने से पापका नाश होताहै । ये वचन अज्ञानरूपी अन्धकारकेनाशकर्त्ता सूर्य्य हैं और तन मनके तापको नाशकर्त्ता चन्द्रमाकी किरणें हैं । हे रामजी ! जो पुरुष अपने स्वभावमें स्थितहैं उनको व्यवहार और समाधि में एकही दशाहै और वे अनेक प्रकारकी चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु उनके निश्चयमें कर्तृत्वका अभिमान कुछ नहीं फुरता, वे सदा परमध्यानमें स्थित हैं । जैसे पत्थरकी शिलामें स्पन्द कुछ नहीं फुरता; तैसेही उनको कुछ कर्तृत्व बुद्धि नहीं फुरती

क्योंकि; उनके दृश्यमें देहाभिमान निवृत्त हुआ है और चिन्मात्रस्वस्वरूपमें स्थित हुईहै। वह आत्मपद परम शांतरूप, द्वैत और कलनासे रहित एकहै। ऐसा जो पद है उसे ज्ञानवान् आत्मतासे जानता है; उसको निर्वाण कहते हैं और उसीको मोक्ष कहते हैं। हे रामजी! ऐसा जो पदहै उसमें हम सदा स्थितहैं और ब्रह्मा, विष्णुसे आदि लेकर जो ज्ञानवान् पुरुषहैं वे भी उसी पदमें स्थितहैं। वे नानाप्रकारकी चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु सदा शांतरूप हैं और उनको क्रिया और समाधिमें एकही आत्मपदका निश्चय रहताहै। जैसे वायुस्पन्द और निस्स्पन्दमें एकही है और जल और तरंग ठहरने में एकही है; तैसेही ज्ञानी दोनोंमें समहै। जैसे आकाशरूप और शून्यतामें भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। रामजीने पूछा; हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे मुझको कोई कलना नहीं फुरती। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसे आदि लेकर जो कुछ जगत्है सो सब आकाशरूप मुझको भासताहै और सर्वदा काल सर्वप्रकार मैं अपने आपमें स्थित अच्युत और अद्वैतरूपहूं। मेरेमें जगत्की कलना कोई नहीं; चित्संवेदन द्वारा मैंहीं जगत्रूपहो भासताहूं पर स्वरूपसे कदाचित् चलायमान नहीं होता। मैं अचैत चिन्मात्र स्वरूपहूं और अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मैं जानताहूं कि, तुम जागेहो परन्तु अपने दृढ़बोध के निमित्त मुझसे फिर प्रश्नकरो कि, "यह जगत्है नहीं" तो भासता क्याहै? रामजी बोले; हे भगवन्! मैं तुमसे तो तब पूछूं जो मुझको जगत्का आकार भासताहो मुझ को तो जगत् कुछ भासताही नहीं। जैसे संकल्पके अभाव हुये संकल्पकी चेष्टा भी नहीं भासती; जैसे बाजीगरकी माायाके अभावहुये बाजी नहीं रहती; स्वप्ने के अभाव हुये स्वप्नेकी सृष्टि नहीं भासती और भविष्यत्कथाके पुरुष नहीं भासते; तैसेही मुझ को जगत् नहीं भासता; तो फिर मैं किसका संशय उठाऊं? आदि जो संवेदन फुरी है सो विराट्पुरुष होकर स्थित हुई है और उसीने आगे देश, काल, पदार्थ, स्थावर-जंगम जगत् रचाहै-उसीके समष्टि वपुका नाम विराट्है। जैसे स्वप्नेका पर्वतहो; तैसेही यह विराट्पुरुषहै जो आकाशरूप है। जो वह आपही आकाशरूपहै तो उसका रचा जगत् मैं क्यों पूछूं? जैसे स्वप्नेकी मृत्तिका आकाशरूपहै अर्थात् जो उपजीही अनउपजी है तो उसके पात्रका मैं क्यों पूछों? इसलिये न कोई विराट्है और न उसका जगत्है; मिथ्याही विराट्है और मिथ्याही उसकी चेष्टा है। केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै न कोई जगत्है और न कोई उसका विराट्है। जैसे स्वप्नेका पर्वत आभासमात्र होताहै; तैसेही यह जगत् आकार भासताहै। जैसे बीजसे वृक्ष होताहै; तैसेही ब्रह्मसे जगत् प्रकट हुआ है। बल्कि, यह भी कैसे कहिये? बीज तो साकार होताहै और उसमें वृक्षकासद्भाव रहताहै जो परिणामसे वृक्ष होताहै और आत्मा ऐसे

कैसेहो; वह तो निराकार है और उसमें जगत् नहीं है क्योंकि; वह निर्विकार, अद्वैत और निर्वेदहै उसको जगत्का कारण कैसे कहिये ? न कोई जाग्रत्है; न स्वप्नाहै और न सुषुप्तिहै; ये अवस्था भी आकाशमात्र हैं । आत्मा परिणामभावको नहीं प्राप्तहोता वह तो सदा अपने आपमें स्थितहै । हे मुनीश्वर ! मैं,तुम,आकाश,वायु,अग्नि,जल, पृथ्वी सब आकाशरूपहै और अब मुझको सर्व आत्माही भासता है। हे मुनीश्वर ! एकसविकल्प ज्ञानहै और दूसरा निर्विकल्पज्ञान है सो आकाशवत् अचेत चिन्मात्र है। जो दृश्यके सम्बन्धसे रहितहै उसे आकाशवत् निर्मल जानो;वही निर्विकल्पज्ञान है। जिनको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि, वे महापुरुष हैं उनको मेरा नमस्कार है और जिनको दृश्यका संयोगहै वे सविकल्प ज्ञानी हैं। वे संसारी हैं और उनको जगत् भिन्न भिन्न विषमता सहित भासता है परन्तु तौभी भिन्न कुछ नहीं । जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासते हैं तौभी जलस्वरूपहैं; तैसेही भिन्न भिन्न जीव और उनका ज्ञान है तौभी मुझको अपना आपही भासताहै । जैसे अवयवीको सब अंग अपनेही भासते हैं; तैसेही सर्वजगत् मुझको अपना आपही केवल अद्वैतरूप भासता है और जगत्की कलना कोई नहीं फुरती । जैसे स्वप्ने से जागेको स्वप्ने की सृष्टि नहीं फुरती, कल्पना से रहित अपना आपही अद्वैत भासता है; तैसेही मुझको जगत् कल्पना से रहित अपना आपही भासता है । हे मुनीश्वर ! आगमसे लेकर जो शास्त्र हैं उनसे उल्लंघ कर मैंने वचन कहे हैं परन्तु जो मेरे हृदय में है वही कहा है। जो कुछ हृदय में होता है वही बाहर वाणी से कहाजाता है । जैसे जो बीज बोया है सोई अंकुर निकलता है, बीज विना अंकुर नहीं निकलता; तैसेही जो कुछ मेरे हृदय में है सोई बाणीसे कहता हूं। यह विद्या सर्व प्रमाणसे सिद्ध है । हे मुनीश्वर ! जिसको यहदशा प्राप्त है वही जानताहै और कोई नहीं जानसक्का। जैसे जिसने मद्यपान कियाहै वही उन्मत्तताको जानताहै और कोई नहीं जानसक्का; तैसेही जो ज्ञानवान्है वही आत्मरसको जानता है और कोई नहींजानता । उस आत्मरस के पानेसे फिर कोई कल्पना नहीं रहती। हे मुनीश्वर ! मैं आत्माअजन्मा, अविनाशी और परमशान्तरूपहूँ; उभय एककीकल्पना से रहित अचेत चिन्मात्रहूँ और जगत्रूप हुयेकी नाईंभीमैं भासताहूँ पर निराभास हूँ; मेरे में आभासभी कोई बस्तुनहीं क्योंकि; निराकार हूँ । इसप्रकार मैंने अपनेआप को यथार्थ चिन्मात्र जानाहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकषट्सप्ततितमस्सर्ग्गः २७६ ॥

बाल्मीकिजीबोले,हे भरद्वाज ! इसप्रकार कहकर रामजी एकमुहूर्त्तपर्यंत तूष्णीहोगये अर्थात् उन्होंने परमात्मपदमें बिश्रांतिपाई और इन्द्रियों और मनकी वृत्तिआत्म-

पदमें उपशमहुई। उसके उपरांत जानकरभी कमलनयन रामजीने लीलाके निमित्त प्रश्नकिया कि,हे संशयरूपीमेघके नाशकर्त्ता शरत्काल! मुझको एक कोमलसासंशय हुआहै उसकोदूरकरो?हे मु ीश्वर! आत्मपद अव्यक्त और अचिन्त्यहै अर्थात् इन्द्रियों और मनका बिषय नहीं और मनकी चिन्तना में भी नहीं आता और जो बड़े महा-पुरुष हैं उनके कहने में भी नहीं आता तो ऐसा जो अचैत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है वह शास्त्रसे कैसे जानाजा ा है? शास्त्रतो अबिच्छेद प्रतियोगीकरके कहतेहैं सो सबिकल्प है पर सबिकल्पसे निर्बिकल्प पद कैसे जानाजाता है कि; गुरु और शास्त्रसे जानिये? बिकल्परूप शास्त्र हैं उनमेंभीसार अर्थ मिलताहै परन्तु बिकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो उसके साथ हैं उनसे सर्बात्मा क्योंकर जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह गुरु और शास्त्रसे नहीं जान जाता और गुरु और शास्त्रबिनाभी नहीं जानाजाता। हे राम-जी! नानाप्रकार के जो बिकल्परूपशास्त्र हैं उनसे निर्बिकल्परूप कैसे जानता है सो भी सुनो। हे रामजी! व्यवधान देशके एक कि क थे जो गृहस्थी में र तेथे, निदान उनको आपदा प्राप्तहुई और चिन्ता से दुर्बल होनेलगे और भोजनभी मिलेजैसे बसन्तऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढ़के धू से सूखजाती है और जैसे जलसे निक कमल सूखजाता है; तैसेही सम्पदारूपी जलसे निकलकर आपदारूपी धूपसे किटक सूखगये। तब उन्हों ने बिचारकिया कि; किसी प्र ार हमारा उदरपूर्णहो इसलिये हम वनमें जाकर लकड़ी चुनें कि, हमाराकष्ट दूरहो। हे रामजी! ऐसे बिचार करके वे वनमें गये और लकड़ियाँ लेआये। इसीप्रकार वे लकड़ियाँ लेआवें और बाजारमें बेंचकर उदर पूर्णकरें। जब कुछकाल ब्यतीत हुआ तब उनमें से किसी एकने चन्दन की ल-कड़ी पहिंचानी और उनसे विशेषमे ल पाया। इसीप्रकार एकको ढूँढ़ते ढूँढ़ते रत्न प्राप्त ुये और उनको विशेष ऐश्वर्य्य प्राप्त हुआ इसलिये उन्होंने लकड़ी उठानी छोड़दी। वे फिर और स्थान ढूँढ़ने लगे कि; रत्नसे भी विशेष कुछपाइये और बनकी पृथ्वीको खोदते खोदते उनको चिन्तामणि मिली, इसलिये उनको बड़ाही ऐश्वर्यप्राप्त हुआ और जैसे ब्रह्मा;इन्द्रादिकहैं तैसेहीहोगये। हेरामजी! जिन्होंने उद्यमकरकेवनकी सेवनाकीथी उनको बड़ा सुख प्राप्तहुआ कि; लकड़ियां उठा े२ उनका उदरपूर्णहुआ और दुःख निवृत्तहुआ; जिनको चन्दनकी लकड़ी प्राप्त हुई उनका उदरपूर्ण होनेसे और भी सन्ताप मिटे और जिनको चिन्तामणि प्राप्तहुई उनके सर्ब सन्तापमिटगये औरवे परमैश्वर्यवान् हुये परन्तु सबको वनसे प्राप्तहुआ और जो बनकेनिकट उद्यम करनेनगये घरहीबैठेरहे उन्होंने दुःखितहोकर प्राणोंकोत्यागदिया परन्तु सुख न पाया॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिन्तामणिप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकसप्तसप्त तिमस्सर्ग्गः २७७॥

रामजीने पूछा; हे भगवन् ! यह जो तुमने किटकका वृत्तांत कहा उसका तात्पर्य मैंने कुछन जाना। वे कीट कौन कौन थे; वह बन क्या था और आपदा क्याथी सो कृपाकरके प्रकट कहो। बशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ये सर्वजीव जो तुम देखतेहो सो सबकीट हैं और उनको अज्ञानरूपी आपदा लगीहै और अध्यात्मिक, अधिभौतिक और अधिदैविक तापोंकी चिंतासे वे जलते हैं। अध्यात्मिक काम क्रोधादिक मानसी दुःखहैं; अधिभौतिक देहके बात, पित्त, कफ आदिक दुःख हैं और अधिदैविक वे दुःख हैं जो ग्रहोंसे अनिच्छित प्राप्त होतेहैं। हे रामजी ! उनमें प्रयत्न करके जो शास्त्ररूपी बन में गयेहैं सो सुखीभये और जो अर्थी सुखके निमित्त शास्त्ररूपी वनको सेवते हैं उनको सत्यकर्मरूपी लकड़ियां प्राप्त होतीहैं जिनसे नरकरूपी उदर पूर्ण का जो दुःखथा सो निवृत्त होताहै और स्वर्गरूपी सुख पातेहैं । फिर शास्त्ररूपी बनको सेवते सेवते उपासनारूपी चन्दनवृक्ष प्राप्त होता है उससे और दुःख भी निवृत्त होते हैं और विशेष सुखको पाते हैं जब अपने इष्टदेवको सेवताहै तब स्वर्गादिक विशेष सुख पाताहै और अपने स्थानको प्राप्त होताहै। फिर जब शास्त्ररूपी बनको ढूंढ़ताहै तब विचाररूपी रत्न विशेषपाता है। जब सत्य असत्यका विचार प्राप्तहोताहै तब सर्वदुःख नष्टहोजाते हैं। यह जो सुख प्राप्त होता है सो शास्त्रसेही होता है। जैसे चन्दन और लकड़ियां आदिपदार्थबनमेंप्रकटथे और चिन्तामणि गुप्तथी;तैसेही और शास्त्रोंमेंधर्म,अर्थ और काम प्रकटहैं और ज्ञानरूपी चिन्तामणि गुप्तहै। जब दूसरे शास्त्ररूपी बनको वैराग्य और अभ्यासरूपी यत्न से खोजे तब आत्मरूपी चिन्तामणि पाताहै। हे रामजी ! बनमेंही उसने चिंतामणि पाई थी क्योंकि; वहां चिंतामणिका बनथा परंतु जब अभ्यास किया था तब पाईथी और उसी बनमें पाई थी; तैसेही गुरु और शास्त्रका भी जब मट्टीके खोदनेके समान अभ्यास करता है तब आपही चिंतामणिवत् आत्मप्रकाश होताहै। जैसे मट्टीके खोदने से चिन्तामणि का प्रकाश नहीं उपजता क्योंकि, चिन्तामणि तो आगेही प्रकाशरूप थी; खोदने से केवल आवरण दूरहुआ तब आपही भासिआई; तैसेही गुरु और शास्त्रों के बचन के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होताहै तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाश आती है। गुरु और शास्त्र हृदयकी मलीनता दूरकरते हैं और जब मलीनता दूरहोती है तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशतीहै। इससे गुरु और शास्त्रोंसे मलीनता दूरहोती है परन्तु इनकी कल्पना भी द्वैतमें होती है सो कल्पना द्वैत संसार को नाशकरनेवाली है । परमार्थकी अपेक्षासे शास्त्र और गुरुभी द्वैतकल्पना है और अज्ञानीकी अपेक्षासे गुरु और शास्त्र कृतार्थकरते हैं और इनके अभ्यास से आत्मपद पाताहै। प्रथम अज्ञानी शास्त्रको भोगके निमित्त सेवते हैं और शास्त्रमें भोगका अर्थ जानते हैं । जैसे लकड़ियोंके निमित्त वे कीट वनको

सेवतेथे। शास्त्रमेंसबकुछहै; जैसे जिसकोरुचिले अभ्यासहोताहै तैसेही पदार्थ उसको प्राप्तहोते हैं। शास्त्र एकहीहै परन्तु पदार्थों में भेद है। जैसे पौंडेके रससे गुड़, शक्कर और मिश्रीहोतीहैं;तैसेही शास्त्रएकहै उनमेंपदार्थ भिन्नभिन्नहैं। जिसजिस अर्थकेपाने के निमित्त कोई यह यत्न करेगा उसीको पावेगा—शास्त्र में भोगभी हैं और मोक्षभीहैं। अज्ञानी भोगके निमित्त यत्न करते हैं परन्तु वेभी धन्य हैं क्योंकि; शास्त्रतो सेवनेलगे; उन्हें सेवते सेवते कभी किसीकालमें आत्मपदरूपी चिन्तामणि भी प्राप्तहोवेगी परन्तु आत्मपदपानेके निमित्त शास्त्र श्रवणकरना योग्य है। सुनसुनकर अभ्यास द्वारा आत्मपदप्राप्तहोगा आत्मपदपानेसे तब सर्वओरसे समभावहोगा। जैसे सूर्यके उदयहुये सर्वओरसे प्रकाशफैलजाताहै;तैसेही सर्वओरसेसमताप्रकाशेगी तब सुषुप्ति की नाईं स्थितिहोगी अर्थात् द्वैत और एक कलनाभी शांत होजावेगी और अनुभव अद्वैतमें जाग्रत्होगी परन्तु सन्तोंकेसंग और शास्त्रोंकेविचार अभ्यासद्वाराहोगी। जो जन परोपकारी संसार समुद्रसे पारकरनेवाले हों सोही सन्तजन हैं; उनके संगसेआत्मपद प्राप्त होगा। हे रामजी! गुरु और शास्त्र नेति नेति करके जानते हैं अर्थात् अनात्म धर्म को निषेध करके आत्मतत्त्व शेष रखते हैं। जब अनात्म धर्म को त्याग करोगेतब आत्मतत्त्व शेषरहेगा। उसको जानलोगे तो उसके जानेसे और कुछजानना नहीं रहता और उसके जाननेमें यत्नभी कुछ नहीं केवल आवरण दूरकरने के निमित्त यत्न है। जैसे सूर्य के आगे बादल आता है तो सूर्य नहीं भासता इसलिये बादलों के दूरकरने का यत्नचाहिये सूर्य के प्रकाशके निमित्त यत्ननहीं चाहिये। जब बादल दूरहोते हैं तब स्वाभाविकही सूर्य प्रकाशता है; तैसेही गुरु और शास्त्र के यत्नसे जब अहंकाररूपी आवरण दूरहोते हैं तब सुप्रकाश आत्मा भासिआता है सात्त्विक गुणी जो गुरु और शास्त्र हैं उनसे जबरज और तम गुणों का अभाव होताहै तब परमअनुभव ज्योति आत्मा अकस्मात् प्रकाशिआताहै और जब वह प्रकाशहुआ तब उस में उन्मत्त होजाता है और द्वैतरूपी संसार की कल्पना नहींरहती। जैसे सुन्दर स्त्रीको देखकर कामी पुरुष उन्मत्त होजाताहै और संसारकी सुरति भूलजाती है; तैसेहीज्ञानी आत्मपद को पाकर उन्मत्त होता है और संसार की सुरति उसे भूलजाती है और परमैश्वर्यवान् होता है। उसका साधन केवल शास्त्र का विचार है। वनके सेवने से चिंतामणि पाने का जो दृष्टांत कहा है सो जानलेना॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेगुरुशास्त्रोपमावर्णनंनाम द्विशताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः २७८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जोकुछ सिद्धांत संपूर्ण है सो मैंने तुमसे विस्तारपूर्वक कहाहै उसके सुनने और बारम्बारविचारनेसे मूढ़भी निरावरण होंगे तो उत्तम पुरुषको

निरावरण होनेमें क्या आश्चर्य है ? हे रामजी ! यह मैंभी जानता हूँ कि; तुम विदित वेद हुयेहो प्रथम मैंने उत्पत्ति प्रकरण तुमसे कहा है कि; जगत् की उत्पत्ति चित्त संवेदन से हुईहै, फिर स्थिति प्रकरण कहा है कि; जगत् की स्थिति इसप्रकार हुईहै । उत्पत्ति यह कि, चित्त संवेदनके फुरनेसे जगत् उपजा है और संवेदन फुरने की दृढ़ता सेही उसकी स्थिति हुईहै । उसके उपरान्त उपशम प्रकरण कहाहै कि; मन इसप्रकार अफुर होताहै । जब चित्त उपशमहुआ तब परम कल्याण हुआ । मनके फुरनेका नाम संसार है । जब मन उपशम होजाता है तब संसार की कल्पना मिटजाती है । यह संपूर्ण बिस्तारपूर्वक कहा है परन्तु अब जानता हूं कि; तुम बोधवान् हुयेहो । हे रामजी ! मैंने तुमसे प्रथम भी आत्मज्ञान का उपाय कहा है और जिनको ज्ञानप्राप्त हुआ है उनके लक्षण भी कहे हैं और अबभी संक्षेप से कहता हूं । प्रथम बालअवस्था में सन्तजनों का संगकरना चाहिये और सच्छास्त्रों को बिचारना चाहिये । इस शुभ आचार से अभ्यास द्वारा जब आत्मपदकी प्राप्ति होती है तब समता प्राप्त होतीहै और सब का सुहृद होजाता है । सुहृदता परमानन्दरूप जननी है जो सदा संग रहती है । जैसे सुन्दर पुरुष को देखकर उसकी स्त्री प्रसन्न होतीहै और प्राणका त्यागना भी अंगीकार करती है परन्तु उस पुरुष को नहीं त्यागती; तैसेही जिसज्ञानवान् पुरुषकी ब्रह्मलक्ष्मी से सुन्दर कांति है उसको समता, मुदिता और सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागती; सदा उसके हृदयरूपी कंठ में लगी रहती है और वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी ! जिसको देवताओं का राज्य प्राप्त होताहै वह भी ऐसाप्रसन्न नहीं होता और जिसको सुन्दर स्त्रियां प्राप्त होती हैं वहभी ऐसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होताहै । हे रामजी ! समता तो द्विधारूपी अन्धकारका नाश-कर्त्ता सूर्य है और तीनों तापरूपी उष्णता के नाश करने को पूर्णमासी का चन्द्रमा है सुहृदता और समता सौभाग्यरूपी जलका नीचास्थान है । जैसे जलनीचे स्थानमें स्वाभाविकही चलाजाताहै; तैसेही सुहृदता में सौभाग्यता स्वाभाविक होती है । जैसे चन्द्रमाकी किरणों के अमृत से चकोर तृप्तवान् होताहै; तैसेही आत्मरूपी चन्द्रमा की समता और सुहृदतारूपी किरणों को पाकर ब्रतादिक चकोर तृप्त होकर आन-न्दवान् होतेहैं और जीतेहैं । हे रामजी ! वह ज्ञानवान् ऐसी कांति से पूर्ण है जो क-दाचित् क्षीणनहीं होती । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में भी उपाधि दृष्टआती है परन्तु ज्ञानवान् के मुखमें तैसी भी उपाधिनहीं । जैसेउत्तम चिन्तामणि की कांति होतीहै, तैसेही ज्ञानवान् की कांति होती है जो रागद्वेष से कदाचित् क्षीण नहीं होती । वह सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी ! समताही मानों सौभाग्यरूपी कमलकी खानि है । समदृष्टि पुरुषऐसे आनन्दकेलिये जगत्में विचरताहै और प्राकृतआचारकोकरता है ।

वह भोजनकरताहै ग्रहणकरताहै,वा कुछलेतादेताहै सबलोग उसके कर्त्तृत्वकी स्तुतिकरतेहैं। हे रामजी ! ऐसा पुरुष ब्रह्मादिकोंसेभी पूजनेयोग्यहै; सबही उसका मानकरतेहैं और सबउसके दर्शनकी इच्छा करतेहैं और दर्शनकरके प्रसन्नहोतेहैं। जैसेसूर्य के उदयहुये सूर्यमुखी कमल खिलआतेहैं और सर्वहुलासको प्राप्तहोतेहैं; तैसेही उस का दर्शन करके सब हुलासको प्राप्तहोतेहैं। वह जो करताहै सो शुभ आचारही करताहै और जो कुछ और भी करबैठताहै तौभी उसकी निन्दालोगनहीं करते क्योंकि; जानतेहैं कि; यह समदर्शी है। समतासे वह सबका सुहृदहोताहै और शत्रुभी उसके मित्र होजातेहैं। जिनको समताभाव उदयहुआ है उनको अग्नि जला नहीं सक्ता; जल डुबानहीं सक्ता और वायु सुखानहींसक्ता। वह जैसी इच्छाकरैतैसेही सिद्धिहोतीहै। हे रामजी ! जिसको समता प्राप्तहुई है वह पुरुष अतोल होजाताहै और संसारकी उपमा उसको कोई देनहीं सक्ता। जिसको समता नहीं प्राप्तहुई वह सबके संग सुहृदताका अभ्यासकरै तो जो उसका शत्रुहो वहभी मित्रहोजाता है क्योंकि; अभ्यासकी दृढ़तासे शत्रुभी मित्र भासने लगतेहैं। जो सर्वमें समताका अभ्यास करताहै वहीदृढ़ होताहै और समताभावसे कदाचित् चलायमान नहीं होता। हे रामजी ! एकराजाथा उसने अपने शरीरका मांसकाट क्षुधार्थीको दिया परन्तु समतासे चलायमान न हुआ; ज्योंका त्योंरहा। एक पुरुषको उसकी पुत्री अतिप्यारीथी और उसने उसे किसीको दिया जिसने शत्रुकोदी परंतु वह ज्योंका त्योंरहा। एक और राजाथा जिसको स्त्री अति प्यारीथी पर उसने उसका कुछ व्यभिचारसुना और मारडाला परंतु समतारूपधर्मको न त्यागा। हेरामजी ! जबराजाके गृहमेंमंगलहोताहै तब वहअपने नगरकोभूषणों और वस्त्रोंसे सुन्दर करताहै और प्रसन्न होताहै सो अवस्था राजा जनककी देखीथी। एक समय उसने सर्वस्थान अति प्रज्वलित अग्निसे जललेदेखे पर अपने समताभावसे चलायमान न हुआ। एक औरराजाथा उसने राज्यभी और को देदिया और आपराज्यबिना विचरतारहा परंतु समताभावसे चलायमान न हुआ। हे रामजी ! एकदैत्यथा उसको देवताओंका राज्यमिला और फिर राज्यनष्ट होगया परंतु दोनोंभावोंमें वहसमहीरहा। एकबालकथा उसने चन्द्रमाको लड्डू जानकर फूंकमारी परन्तु वह ज्योंका त्योंरहा। हे रामजी ! इसीप्रकार मैंने अनेक देखे हैं जिनको सम्यक्आत्मज्ञान प्राप्त हुआहै और वे सुख दुःखसे चलायमान नहींहुये। हे रामजी ! ज्ञानी और अज्ञानीका प्रारब्ध भोगतुल्यहै परंतु अज्ञानी रागद्वेषसे तपायमान होताहै और ज्ञानी दृढ़समझके वशसे तपायमान नहीं होता, सर्वअवस्थाओंमें उसको समताभावहोता है। जो फलआत्मपदके साक्षात् होनेसे प्राप्तहोताहै सोतप,तीर्थ,दान और यज्ञसे प्राप्तनहीं होता। जबअपना बिचार उत्पन्न होताहै तबसर्व भ्रांति निवृत्तहोजाती हैं और सर्वज-

गत् आत्मरूपही भासताहै। इसी दृष्टको लियेज्ञानी प्राकृत आचारमें विचरतेहैं परंतु निश्चयमें सदा निर्गुणहैं। रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर! ऐसी अद्वैत दृष्टि निष्ठा जिनको प्राप्त हुई है उनको कर्मोंके करनेसे क्या पयोजनहै; वे त्याग क्यों नहीं करते? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठहैं उनसे त्याग ग्रहण की भ्रांतिचली जाती है और उसभ्रमसे रहित होकर वे प्रारब्धके अनुसार चेष्टाकरतेहैं। हे रामजी! जो कुछ स्वाभाविक क्रिया उनको बनपड़ीहै उसका वे त्यागनहीं करते। उसमें उनको ज्ञानप्राप्तहुआहै सो आचारकरते हैं—और को ग्रहण नहीं करते और उसकात्याग नहीं करते। हे रामजी! जिनको गृहस्थीहीमें ज्ञानप्राप्त हुआहै वे गृहस्थीहीमें विचरतेहैं उसका त्यागनहीं करते—जैसे हम स्थितहैं और जिनको राज्यमें ज्ञानप्राप्त हुआहै सो राज्यहीमें रहेहैं—जैसे तुमहो। जो ब्राह्मणको ज्ञानप्राप्त हुआहै वह ब्राह्मणहीके कर्मोंमें रहे हैं और इसीप्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जिसवर्णाश्रममें किसीको ज्ञानप्राप्तहुआहै वही कर्म करताहै। हे रामजी! कई ज्ञानवान् गृहस्थीहीमें रहेहैं; कई राज्यहीकरते हैं; कई संन्यासी होरहेहैं;कई वनमें विचरते फिरतेहैं; कई पर्वतकन्दरा में ध्यानस्थितहो रहेहैं; कई नगरोंमें रहतेरहेहैं; कई मथुरा,केदारनाथ,प्रयाग, जगन्नाथ इत्यादिकमें रहेहैं; कई देवताकापूजन; कई कर्म;कई तीर्थ और अग्निहोत्र करतेहैं और कई हमारी नाईं जप करतेहैं। कई अस्ताचल पर्वतमें; कई उदयाचल पर्वतमें और कई मन्दराचल,हिमाचल इत्यादिक पर्वत स्थानोंमें विचरते रहेहैं। कई शास्त्रविहित कर्म्म करते रहेहैं; कई अवधूत होरहेहैं; कई भिक्षामांगमांग भोजनकरते रहेहैं;कई कठिनवचन बोलते रहेहैं; कई अज्ञानीहुये विचरते रहेहैं और कई विद्याध्ययन इत्यादिक नानाप्रकारकी चेष्टा करतेरहेहैं क्योंकि; उनको चेष्टा स्वाभाविक प्राप्तहुईहै; वे यत्नसे कुछनहीं करते। हे रामजी! वे शुभकर्म करें अथवा अशुभकर्मकरें परन्तु कोई क्रिया उनको बंधन नहीं करती और जो अज्ञानीहैं सो जैसे कर्मकरेंगे तैसेही फलकोभोगेंगे। जो पुण्यकर्मकरेंगे तो स्वर्गसुख भोगेंगे और पापसे नरकदुःखभोगेंगे। जो कामनासे रहित शुभकर्म करेगा उसका अन्तःकरण शुद्धहोगा और संतोंकेसंग और सच्छास्त्रों से शुद्धताको प्राप्तहोगा। हे रामजी! जो अर्द्धप्रबुद्धहैं वे पाप करने लगजावें और आत्मअभ्यास त्यागदें तो वे दोनों मार्गोंसे भ्रष्टहैं—न स्वर्गको प्राप्तहोतेहैं और न आत्मपदको प्राप्त होतेहैं। तप,दान,तीर्थादिक सेवनेसेभी आत्मपदनहीं प्राप्तहोता;जबविचार उपजताहै और आत्मपदका अभ्यासहोताहै तभी आत्मपद मिलताहै और जबआत्मपद प्राप्त होताहै तब निश्शंकहोजाताहै और चेष्टाव्यवहार करताभी दृष्टआताहै परन्तु उसका चित्त शांत होजाताहै। जैसे तांबेको जब पारसकास्पर्श कीजिये तब वह सुवर्णहोजाताहै; आकार उसका नष्टहीरहताहै परंतु तांबे भावका अभाव होजाताहै;तैसेही जब

चित्तको आत्मपदका स्पर्शहोता है तब चित्तशान्त होजाता है परन्तुचेष्टा उसीप्रकार होतीहै और जगत् की सत्यता नष्ट होजाती है। हे रामजी! अब तुम जागेहो और निश्शंकहुये हो। रागद्वेष तुम्हारा नष्टहोगयाहै और तुम निर्विकार आत्मपद को प्राप्त हुयेहो। जन्म, मृत्यु, बढ़ना, घटना, युवा और वृद्धहोना; इन सर्व्वबिकारों से रहित आत्मपदको तुमने पाया है और सर्वका अधिष्ठान जो परमशुद्ध चैतन्य है सो तुमको प्राप्त हुआहै। हे रामजी! जो कुछ मुझको कहनाथा सो कहा। यह सारकासार आत्मपदहै और जो कुछ जानने योग्यथा सो तुमने जाना इसके उपरान्त न कुछ कहना रहाहै और न कुछ जाननारहाहै—यहीं तक कहना और जाननाहै। अब तुम निश्शंक होकर बिचरो तुमको संशय कोई नहींरहा और क्षय और अतिशयसे रहित पद तुमने पायाहै अर्थात् तुमने अविनाशी और सर्वसे उत्तमपद पायाहै। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! जब इस प्रकार मुनियोंमें शार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णी होरहे तब सर्वसभा जो बैठीथी सो परम निर्विकल्पपदमें स्थित होगई और जैसे वायुसे रहित कमल फूल पर भँवरे अचल होते हैं; तैसेही चित्तरूपी भँवरे आत्मपदरूपी कमलके रसको लेते हुये स्थित होरहे। सबके सब ब्रह्मको जानकर ब्रह्मरूपहुये और ब्रह्मही में स्थितहुये। निकट जितने मृगथे वेभी तृणकाखाना छोड़कर अचल होगये; दूसरे पशु; पक्षीभी सुन कर निस्स्पन्दहोरहे और स्त्रियां जो बालकोंसंयुक्त चपलथीं वे सुनकर जड़वत् होगईं पूर्व जो मुक्तिमान् सिद्धोंके गण मोक्ष उपायके श्रवणको आयेथे और देवता अरु सिद्धों ने तमाल, कदम्ब, पारिजात, कल्प इत्यादिक दिव्य वृक्षोंके फूलोंकी वर्षाकी और नगारे, भेरी और शंख, बजने और वशिष्ठजीकी स्तुति करनेलगे। निदान बड़े शब्द हुये जिनसे दशोंदिशा पूर्ण होगई और ऊपरसे देवतों और सिद्धोंके नगारोंके शब्द हुये जिनसे पर्वतों में शब्दभाव उठे और दिव्यफूलोंकी ऐसी सुगन्धि फैली—मानों पवन भी रंगित हुआहै। तब सिद्धों ने कहा; हे वशिष्ठजी! हमनेभी अनेक मोक्षके उपाय सुने और उच्चार किये परन्तु जैसा तुमने कहाहै तैसा न आगे सुनाहै; न गाया है और न कहाहै। जो तुम्हारे मुखारविंदसे श्रवण कियाहै उससे हम परमसिद्धांत को जानगये हैं। इसके श्रवणसे पशु, पक्षी और मृगभी कृतार्थ हुये हैं और मनुष्यों की तो क्या वार्ता कहिये वे तो कृतार्थही हुये हैं और निष्पाप ज्ञानको पाकर मुक्तहोंगे। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! ऐसे कहकर उन्होंने फिर फूलोंकी वर्षाकी और वशिष्ठजीको चन्दनकालेप किया। जब इस प्रकार वे पूजा करचुके तब और जो निकट बैठे थे सो परमविस्मयको प्राप्तहुये कि; ऐसा परम उपदेश वशिष्ठजीने किया। तब राजा दशरथ उठखड़ा हुआ और हाथ जोड़कर वशिष्ठजीको नमस्कार करके बोला; हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे हम षडैश्वर्यों से सम्पन्न हुये। हे भगवन्! तुमने सम्पूर्ण

शास्त्र सुनायाहै जिसको सुनकर हम पूजन करनेके योग्य हैं; इसलिये हे देव ! हम तुम्हारा पूजन किससे करें ? ऐसा कोई पदार्थ पृथ्वी आकाश और देवताओं में भी नहीं दृष्ट आता जो तुम्हारी पूजाके योग्यहो-सर्व पदार्थ कल्पित हैं; और जो सत्य पदार्थ पूजाकरें तो सत्य तमहींसे पायाहै। इससे ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो तुम्हारी पूजाकेयोग्य तथापि अपनी२ शक्तिके अनुसार हम पूजन करते हैं तुम क्रोधवान् न होना और हँसीभी न करना। हे मुनीश्वर ! मैं राजा दशरथ; मेरे अन्तःपुरकी संपूर्ण स्त्रियां; मेरे चारोंपुत्र; मेरा सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण प्रजा सहित जो कुछ मैंने लोक में यश कियाहै और परलोकके निमित्त पुण्य कियाहै वह सर्व तुम्हारे चरणोंके आगे निवेदन करताहूं। हे साधो ! इस प्रकार कहकर राजा दशरथ वशिष्ठजीके चरणों पर गिरे। तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन् ! तुम धन्यहो, जिनको ऐसी श्रद्धाहै परन्तु हम तो ब्राह्मणहैं हमको राज्य क्या करनाहै और हम राज्यका व्यवहार क्या जानें ! कभी ब्राह्मणने राज्य किया है; राजा तो क्षत्रियही होते हैं; इसलिये तुमहींसे राज्यहोगा। यह जो तुम्हारा शरीर है उसे मैं अपनाही जानताहूं और ये तेरे चतुष्टय पुत्र मैं आगे से अपने जानताहूं। हम तो तुम्हारे प्रणामसेही संतुष्टहैं; यह राज्यका प्रसाद हमने तुमको ही दिया। फिर बाल्मीकिजी बोले कि; जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब राजा दशरथने फिर कहा कि; हे स्वामिन् ! तुम्हारेलायक कोई पदार्थ नहीं। तम ब्रह्मांडके ईश्वरहो बल्कि तुमसे ऐसे वचन कहते भी हमको लज्जा आती है परन्तु योग के निमित्त तुम्हारे आगे विनती की है कि; मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवणकिया है इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारा पूजनकरें। तब वशिष्ठजीने कहा; बैठो और राजा बैठगया। फिर रामजीने निरभिमान होकर कहा; हे संशयरूपीतिमिर के नाशकर्त्ता सूर्य ! तुम्हारा पूजन हम किससे करें ? कोई पदार्थ गृहमें अपना नहीं। हे गुरोजी ! मेरे पास और कुछ नहीं है केवल एक नमस्कारही है। ऐसे कहकर वे चरणोंपर गिरे और नेत्रों से जल चलनेलगा। वे बारबार उठें और आत्मानन्द प्राप्तिके उत्साह से फिर गिरपड़ें। निदान जब वशिष्ठजीनेकहा बैठजाओ तब रामजीभी बैठगये। फिर लक्ष्मण,भरत,शत्रुघ्न,राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि सबअर्घ्यपाद्यसे पूजनेलगे और फूलों की वर्षाकी जिससे वशिष्ठजीका शरीर भी ढकगया और जब वशिष्ठजीने भुजासे फूल दूर किये तब मुखदृष्ट आनेलगा। जैसे बादलोंके दूरहुये चन्द्रमा दृष्टिआताहै; तैसेही मुख दीखनेलगा। फिर वशिष्ठजीने व्यास, बामदेव, विश्वामित्र, नारद, भृगु, अत्रि इत्यादिक जो बैठेथे उनसे कहा; हे साधो ! जो कुछ मैंने सिद्धान्तके वचन कहे हैं इनसे न्यून वा अधिक जो कुछहो सो अब तुम कहो। जैसे जैसा स्वर्ण होताहै तैसाही अग्नि में दिखाई देताहै; तैसेही तुम कहो। तब सबने कहा; हे मुनीश्वर ! ये तुमने परमसार

वचन कहे हैं; जो तुम्हारे वचनको न्यून वा अधिक जानकर उनकी निंदाकरेगा वह महापतित होगा। ये वचन परमपद पानेके कारण हैं। हे मुनीश्वर! हमारे हृदय में भी जो कुछ जन्म जन्मान्तरका मैलथा वह नष्टहोगया। हम ते पूर्ण ज्ञानवान्थे परंतु पूर्वजन्म जो धरे हैं उनकी स्मृति हमारे चित्तमें थी कि; अमुकजन्म हमने इसप्रकार पाया था और अमुकजन्म इसप्रकार पाया था सो सर्व स्मृति अब नष्ट हुई है और जैसे अग्निमें डाला सुवर्ण शुद्ध होता है तैसेही तुम्हारे वचनों से हमारा स्मृतिरूप मल नष्ट हुआहै। अब हम जानते हैं कि, न कोई जन्मथा और न हमने कोई जन्म पाया है—हम अपनेही आपमें स्थित हैं। हे मुनीश्वर! तुम संपूर्ण विश्वके गुरु और ज्ञान अवतारहो इसलिये तुमको हमारा नमस्कारहै। राजा दशरथ भी धन्यहैं जिनके संयोगसे हमने मोक्ष उपाय सुनाहै और ये रामजी विष्णुभगवान् हैं। इतना कह फिर बाल्मीकिजी बोले कि, इसीप्रकार ऋषीश्वर और मुनीश्वर वशिष्ठजी को परमगुरु जानकर स्तुति करनेलगे, रामजीको विष्णुभगवान् जानकर उनकी भी स्तुतिकी और राजादशरथकीभी स्तुतिकी कि,जिनके गृहमें विष्णुभगवान्ने अवतारलिया फिर वशिष्ठजीको अर्घ्यपाद्यसे पूजनेलगे। आकाशके सिद्धबोले; हे वशिष्ठजी! तुम को हमारा नमस्कार है तुम गुरुकेभी गुरु हो। हे प्रभो! जो कुछ तुमने उपदेशकिया है और जो कुछ उसमें युक्तिकही है ऐसे बचन वागीश्वरीभी कहे अथवा न कहे। तुमको बारम्बार नमस्कार है और राजादशरथ चतुर्द्वीप पृथ्वी के राजा को भी नमस्कार है जिसके प्रसंग से हमने ज्ञान और युक्तिसुनी। ये रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं और चारों आत्माहैं इनको हमारा प्रणामहै। ये चारोंभाई ईश्वर हैं जिनपर विष्णुभगवान् दया करते हैं और जीवन्मुक्त अवस्था को धारकर बैठेहैं। वशिष्ठजी परमगुरु हैं और विश्वामित्रतपकीमूर्त्ति हैं। बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब सिद्ध कहचुके तब वे फूलोंकी वर्षा करनेलगे। जैसे हिमालय पर्वत पर बरफकी वर्षा होती है और वह बरफ से पूर्ण होजाता है; तैसेही वशिष्ठजी पुष्पों से पूर्णहुये। आकाशचारी जो ब्रह्मलोक के वासीथेउन्होंनेभी उनपरपुष्पों की वर्षाकीऔर जो सभामें ब्रह्मर्षिआदि बैठेथे उनका भी यथायोग्य पूजन किया। इसप्रकार जब सिद्ध पूजन करचुके तब कई ध्याननिष्ठ होरहे; सबके चित्त शरत्काल के आकाशवत् निर्मल होगये और अपने स्वभाव में स्थितहुये। जैसे स्वप्ने की सृष्टिका कौतुकदेखकर कोई जागउठे और हँसे; तैसेही वे हँसनेलगे। तब वशिष्ठजीने रामजीसे कहा; हे रघुबंशी कुलरूपी आकाशके चन्द्रमा! तुम अब किसदशामें स्थित हो और क्या जानते हो? रामजी बोले; हे भगवन्! सर्व धर्म ज्ञानके समुद्र! तुम्हारी कृपा सेमैं अब अपने आपमेंस्थितहूं और कोई कल्पना मुझेनहींरही।अब मैं परमशांतिमान् हुआहूं और मुझको शेष विशेष कोईनहींभासता

केवल अपना आपही पूर्णभासता है—अब मुझको कोई संशय नहीं रहा और इच्छाभी कुछनहींरही । मैंने अब परम निर्विकल्प पदपायाहै और कोई कल्पनामुझको नहीं फुरती । जैसे नील, पीतादिक उपाधि से रहित स्फटिक प्रकाशती है; तैसेही मैं निरुपाधि स्थित हूँ और संकल्प—विकल्प उपाधि का अभाव होगयाहै । अबमैं परम शुद्धता को प्राप्त हुआहूँ; मेरा चित्त शांत होगयाहै और मेरीचेष्टा पूर्ववत् होगी पर निश्चयमें कुछ न फुरेगा । जैसे शिलामें प्राण नहीं फुरते; तैसेही मुझको द्वैतकल्पना कुछनहीं फुरती । हे मुनीश्वर ! अब मुझको सब आकाशरूप भासताहै । मैं शांतरूप होकर परम निर्वाण हूँ और भिन्नभाव जगत् मुझको कुछनहीं भासता—सर्व्व अपना आपही भासता है । अब जो कुछ तुम कहो वही करूं । अब मुझको शोक कोई नहीं रहा और राज्यकरना, भोजन, छादन, बैठना, चलना, पानकरना, जैसे तुम कहो तैसेही करूं । तुम्हारे प्रसाद से मुझको सर्व समान हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रामप्रकटीकरणंनाम
द्विशताधिकैकोनाशीतितमस्सर्गः २७९ ॥

वाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज ! जब ऐसे रामजीने कहा तब वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! बड़ा कल्याणहुआ कि; तुम अपने आपमें स्थितहुयेहो । अब तुमने यथार्थ जानाहै पर अब जो कुछ सुननेकीइच्छाहो सो कहो । रामजीबोले;हे संशयरूपी अन्धकारके नाशकर्त्ता सूर्य और संशयरूपी वृक्षोंके नाशकर्त्ता कुठार ! अब तुम्हारेप्रसाद से मैं परम विश्रांति को प्राप्त हुआ हूँ और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिकी कलनासे रहित हूँ । जाग्रत् जगत् भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है और श्रवणकरने की इच्छा नहीं रही । अब परमध्यान मुझको प्राप्त हुआ है अर्थात् आत्मा से भिन्न कुछ बस्तुनहीं भासती । मैं आत्मा, अज, अविनाशी, शान्तरूप और अनन्त, सदा अपने आपमें स्थित हूँ । ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है । अब प्रलयकालका पवनचले और समुद्र उछलें और नानाक्षोभ हों तौभी मेरा चित्तस्वरूपसे चलायमान न होगा और जो त्रिलोकी का राज्य मुझको प्राप्तहो तोभी मेरे चित्तमें हर्ष नउपजेगा । मैं सत्तासमान में स्थित हूँ । बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज ! जब इसप्रकार रामजीनेकहा तबमध्याह्न का सूर्य शिरपर उदयहुआ और राजा जो रत्न और मणियोंके भूषण पहिनकर बैठे थे उन मणियोंकी कांति किरणोंसे अति बिशेषहुई और सूर्यके साथहो एकहोगई—मानों ऐसे वचन सुनकर नृत्यकरती है । तब वशिष्ठजीने कहा; हे रामजी ! अबहम जातेहैं क्योंकि, मध्याह्नकी उपासना कासमयहै; जो कुछ तुम्हें पूछनाहो सो कलफिर पूछना । तब राजा दशरथ पुत्रोंसहित उठ खड़ेहुये और वशिष्ठजी का बहुत पूजन किया । जो ऋषीश्वर, मुनीश्वर और ब्राह्मणथे उनकाभी यथायोग्य पूजनकिया और

मोती और हीरोंकी माला; मोहरें, रुपये, घोड़े, गऊ, वस्त्र, भूषण आदि जो ऐश्वर्य्य की सामग्री है उससे यथायोग्य पूजन किया । जो बिरक्त संन्यासीथे उनको प्रणाम करके प्रसन्न किया और जो राजर्षिथे उनका भी पूजनकिया । तब वशिष्ठजी उठखड़े हुये और परस्पर सबने नमस्कार किया और मध्याह्न के नौबत नगारे बजने लगे । सब श्रोता उठकर बिचरने लगे । कोई चलेजाते थे और कोई शीशहिलाते कोई हाथकी अंगुली हिलाते, नेत्रनकी भवेंहिलाते परस्परचर्चा करतेजातेथे । इसप्रकार सब अपने स्थानों को गये । वशिष्ठजी सन्ध्या उपासना करने लगे और सर्वश्रोता बिचार पूर्वक रात्रिको व्यतीत कर सूर्यकी किरणोंके निकलतेही आपहुँचे । गगनचारी; सप्तलोक के रहनेवाले; ऋषि और देवता; भूमिवासी राजर्षि, ब्रह्मर्षि और जो श्रोताथे सो सब आकर अपने २ स्थानपर बैठगये और सबने परस्पर नमस्कार किया। तब रामजी हाथ जोड़कर उठखड़ेहुये और बोले, हे भगवन् ! अब जो कुछ मुझको सुनना और जानना रहा है सो तुमही कृपाकरके कहो । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो कुछ सुनने योग्य था सो तुमने सुनाहै। अब तुम कृतकृत्यहुयेहो और सर्वरघुबंशियों का कुल तुमने तारा है और जो आगेहोंगे सो सब तुमने कृतकृत्य कियेहैं । अब तुम परमपद को प्राप्तहुयेहो और जो कुछतुमको पूछनेकी इच्छा है सोपूछलो । हे रामजी! जो सत्तासमान में स्थितहुयेहो तो बिश्वामित्रके साथजाकर इनका कार्यकरो और जो कुछपूछनेकी इच्छाहो सोपूछलो । रामजीनेपूछा; हेभगवन् ! आगेमैं अपने आपको इस देहसंयुक्त प्रच्छन्नरूप देखता था और अब अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता—सब अपना आपही भासता है । हे मुनीश्वर ! अब इसशरीरसे मुझकोकुछ प्रयोजन नहींरहा । जैसे फूल से सुगन्धलेकर पवन चलाजाता है और फूलसेउसका प्रयोजन नहीं रहता; तैसेही इस देहमें जो कुछ सारथा सो मैं पाकर अपने आप में स्थितहूं और शरीरके साथ मुझको प्रयोजन नहीं रहा । अब राज्य भोगनेसे कुछसुख दुःख नहीं और इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्टमें मुझको कुछ हर्ष शोक नहीं । मैं अब सबसे उत्तम पदको प्राप्त हुआहूं और सब कल्पनासे रहित अविनाशी, अव्यक्तरूप सर्वसे निरंतर सदा अपने आपमें स्थित और निराकार और निर्विकारहूं । जो कुछ पानेयोग्य था सो मैंने पायाहै और जो कुछ सुनने योग्यथा सो सुनाहै और जो कुछ तुमको कहना था सो कहाहै अब तुम्हारी बाणी सफल हुई है । जैसे कोई रोगीको औषध देता है तो उस औषधसे उसका रोग जाताहै और उसका कल्याण होता है; तैसेही तुम्हारी बाणीसे मेरा संशयरूपरोग गयाहै और अपने आपसे तृप्त हुआहूं । अब मैं निःशंक होकर अपने आपमें स्थितहूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामद्विशताधिकाशीतितमस्सर्गः २८०

वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो रामजी! तुम मेरे परमवचन सुनो दृढ़ अभ्यासके निमित्त मैं फिर कहताहूं। जैसे आदर्शको ज्योंज्यों मार्जन करतेहैं त्योंत्यों उज्ज्वल होता है; तैसेही बारम्बार सुननेसे अभ्यास दृढ़ होताहै। जितना कुछ जगत् भासता है सो सब चिदानन्द स्वरूप है। भासती भी वही वस्तु है जो आगे भानरूप होती है। वह भानरूप चेतनहै इससे जो पदार्थ भासते हैं सो सब चेतनरूपहैं और जो भिन्न२ पदार्थ द्वैतकी कल्पनासे भासते हैं सोभी वास्तवमें भानरूप चेतनहैं। जैसे जो कुछ उच्चार करते हैं सो सब शब्द है पर शब्दरूप एक है और अर्थ से भिन्न २ भासते हैं। जब अर्थ की कल्पना त्यागदीजै तबयही शब्द है और जो अर्थ कीजिये कि, यहजल है, यह पृथ्वी है; यह अग्नि है इनसे आदिलेकर अनेक शब्द और अर्थ होते हैं और अर्थ से रहित शब्द एकही है; तैसेही यह सब चेतन है पर चित्तकी कल्पनासे भिन्न२ पदार्थ भासते हैं और कुछ वस्तु नहीं और जो भासता है सो उसीका आभास है। हे रामजी! आभासभी अधिष्ठानसत्ता भासती है परन्तु ज्ञानमें भेद होताहै पर ज्ञान में भी भेद नहीं वृत्तिमें भेद है जिसमें अर्थ भासते हैं। ज्ञानरूप अनुभव सत्ताहै; इसमें जैसे अर्थकी वृत्ति आभास होतीहै उसीको जानता है। जैसे एकही रस्सी पड़ी होती है और उसमें सर्पकाअर्थ वृत्ति न ग्रहण करेतो सर्प तो कुछ नहीं वह रस्सीहीहै; तैसेही अर्थभेद ग्रहणकीजिये तो भेदहै नहीं तो ज्ञानहीहै और सर्वपदार्थ जो भासते हैं वे सब ज्ञानरूपी हैं और कुछ बना नहीं। हे रामजी! स्वप्ने के दृष्टांत मैंने तुमको जतानेके निमित्त कहेहैं, वास्तव में स्वप्ना भी कोई नहीं; अद्वैतसत्ताही अपने आपमें स्थित है। जैसे समुद्रसदा जलरूप है पर द्रवतासे तरंग बुद्बुदे भासतेहैं सो नानारूप नहीं और नानाहो भासता है; तैसेही सर्व जगत् अनानारूप है और नानाहो भासता है। तुम अपने स्वप्ने की स्मृति को विचारकर देखो कि; तुम्हारा अनुभवही नानाप्रकार हो भासताहै परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जाग्रत् जगत्भी तुम्हारा अपना आप है और दूसरा कुछ नहीं। सदा निराकार, निर्विकार और आकाश रूप आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो अद्वैतसत्ता निराकार, निर्विकार और सदा अपने आपमें स्थितहै तो पृथ्वी कहांसे उपजी है; जल कैसे उपजाहै और अग्नि, वायु, आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशमें कैसे उपजे हैं मेरे दृढ़बोधके निमित्त कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह तुम कहो कि; स्वप्ने में पृथ्वी कहांसे उपज आती है और जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य, देश, काल, पदार्थ कहां से उपजते हैं? रामजी बोले; हे मुनीश्वर! स्वप्ने में जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देश, काल, पदार्थ भासतेहैं सो सब आत्मरूप होतेहैं और आत्मसत्ताही ज्योंकीत्यों होती है सो तत्त्ववेत्ताओंको ज्योंकी

त्यों भासती है और जो असम्यक्दर्शी हैं उनको भिन्नभिन्न पदार्थ भासते हैं। भासना दोनोंका तुल्य होताहै परन्तु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थको ग्रहण करती है उसको ज्यों की त्यों आत्मसत्ता भासती है और जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ ग्रहण नहीं करती उसको वही वस्तु और रूपहो भासती है। हे मुनीश्वर! और जगत् कुछ बना नहीं वही आत्मसत्ता स्थितहै। जब कठोर रूपकी संवेदन फुरती है तब पृथ्वी और पहाड़रूप हो भासती है; जब द्रवताका स्पन्द फुरताहै तब जलरूपहो भासतीहै और उष्णरूप की संवेदन फुरती है तब अग्नि भासती है; इसीप्रकार वायु, आकाशादिक पदार्थों से जैसे फुरना होताहै तैसेही हो भासता है। जैसे जल तरंगरूपहो भासता है परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं, जलही रूपहै; तैसेही आत्मसत्ता जगत्‌रूपहो भासती है और वही रूपहै जगत् कुछ वस्तु नहीं। यह गुण और क्रिया सब आकाशमें है वास्तवमें कुछ नहीं क्योंकि; कारण रहित असत्यरूप है। यह अहं त्वंसे आदिक लेकर सब जगत् आकाशरूप है कुछ बनानहीं, आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और कोई आधार नहींहै। अद्वैतसत्तासदा अपने आपमें स्थितहै और नानारूपहो भासतीहै। जब चित्त संवेदन फुरतीहै तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, कालहो भासताहै। कहींसर्व आत्माकाज्ञान फुरताहै और कहींपरिच्छिन्नता भासतीहै परन्तु वास्तवमें कुछबनानहीं वही वस्तुहै; जैसा उसमेंफुरना फुरताहै तैसाहीहो भासता है। अनुभवसत्ता परमआ-काशरूपहै जिसमें आकाशभी आकाशरूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिदाकाशजगतएकताप्रतिपादनं नामद्विशताधिकैकाशीतितमस्सर्ग्गः २८१॥

रामजी बोले; हे भगवन्! अब यहप्रश्न है कि, जो जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछभेद नहीं और परम आकाशरूप हैं तो उससत्ताको जाग्रत् और स्वप्ने के शरीर से कैसे संयोग है; वह तो निरवयव और निराकार है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्व आकार जो तुमको भासतेहैं सो सब आकाशरूपहैं और आकाश में आकाशही स्थित है सर्गके आदिमें आकारका अभावथा सोही अबभी जानो कि; उपजा कोई नहीं परम आकाशसत्ता अपनेआपमेंस्थितहै। जब वह अद्वैतसत्ता चिन्मात्रमें चित्त किंचन होता है तब वहीसत्ता आकारकीनाईं भासतीहै परन्तु कुछहुआ नहीं, आकाशही रूपहै। जैसे स्वप्नेमें शरीरोंका अनुभव करताहै पर वे कुछ आकारतो नहींहोते केवल आकाशरूप होतेहैं; तैसेही यह जगत् भी निराकार है परन्तु फुरनेसे आकारहो भासता है। जिन तत्त्वों से शरीर होताहै सो तत्त्वही उपजे नहीं तो शरीर की उत्पत्ति कैसेकहूँ? हे राम जी! और जगत् कुछ उपजा नहीं, ब्रह्मही किंचन से जगत् रूपहो भासता है। जैसे जल और द्रवता में भेद नहीं और जैसे आकाश और शून्यता में भेदनहीं; तैसेही

ब्रह्म और जगत् में भेदनहीं । संवेदनसे अर्थ संकेत है और जब संवेदना न फुरै तब अर्थ संकेत न हो । भिन्नभिन्न वस्तुसे एकहीसत्ताके नाम हैं। भिन्न २ नाम तब भासते हैं जब वेदना फुरती है, नहींतो शब्द जलरवके तुल्य है--वस्तु से भेदनहीं। जैसे वायु और स्पन्दमें भेद नहीं; स्पन्दरूपहो भासती है और निस्स्पन्द नहीं भासती परन्तु दोनोंरूप वायुकेहीहैं; तैसेही स्पन्दसे ब्रह्ममें किंचन जगत् भासताहै और जबसंवेदन नहीं फुरती तब जगत् नहीं भासता परन्तु दोनोंरूप ब्रह्मकेही हैं । ब्रह्म और जगत् में भेद कुछनहीं । जैसे एकनिद्रा के दोरूप होते हैं--एक स्वप्ना और दूसरी सुषुप्ति--परन्तु दोनों एक,निद्राकेही पर्याय हैं,तैसेही जगत्का होना और न भासना एकब्रह्मकी दोनों संज्ञाहैं,चाहे ब्रह्म कहो और चाहे जगत्कहो,ब्रह्म और जगत्में भेदकुछनहीं;ब्रह्म-ही जगत्रूपहो भासता है । जैसे निर्मल अनुभवसे स्वप्नेमें शिला भासिआती है पर वह शिला तो स्वप्ने में कुछ उपजी नहीं, अपना अनुभवही शिलारूपहो भासता है; तैसेही ये सर्व आकार जो भासते हैं सो आकाशरूप हैं और आत्मसत्ताही आकाश रूप जगतहो भासतीहै। जगत् कुछ उपजानहीं और न सत्यहै,न असत्यहै,न आता है, न जाताहै केवल आत्मसत्ता अपनेआपमें स्थितहै। रामजीनेपूछा,हे मुनीश्वर ! आगे तुमने मुझसे अनेक सृष्टि कहीहैं कि, कई जलमें; कई अग्निमें; कई पृथ्वीमें; कई वायुमें; कईपहाड़ और पत्थरों में और कईआकाश में पक्षीवत् इत्यादिक नानाप्रकार की सृष्टि तुमने कहीहैं तो अब यह प्रश्न है कि, हमारी सृष्टि किससे उत्पन्न हुई है ? वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! तुमतो वहीप्रश्न करतेहो जो अपूर्व होताहै और जोआगे देखा और सुना न हो और जगत् से जानाभी न हो । इस जगत् की उत्पत्ति वेद पुराण तो योंही कहते हैं और लोकमेंभी प्रसिद्ध है कि, ब्रह्मासे हुईहै पर वास्तव में चिदाकाश रूप है कुछउपजी नहीं । ये दोनोंप्रकार मैंने तुमसे कहे हैं पर उनको तुम जानकरभी प्रश्न करतेहो इसलिये तुम्हारा प्रश्नही नहीं बनता । रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर ! यह सृष्टि कितनी है; कहांतक चलीजाती है और कितनेकाल पर्यंत रहेगी ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जितनी सृष्टि तुमजानते हो वह है नहीं--ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है--और सृष्टि बहुत हैं परन्तु वास्तवमें कुछ हुई नहीं और आदि,अन्त और मध्यसे रहित हैं। वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और यह जितनी सृष्टि हैं सो आभासमात्र हैं। ब्रह्म जोआदि,अन्त और मध्यसे रहितहै उसका आभासभी तैसाही है। जैसे जितनावृक्ष होताहै उतनीही छायाहोती है; तैसेही ब्रह्मका आभास सृष्टि है और वास्तव में पूछोतो आभासभी कोई नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और वही जगत्रूप आपको देखताहै--ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं । जैसे स्वप्नेके पुरमें पर्वत, नदी, आयुध आदि नानाप्रकारके व्यवहारके रूपधारकर आत्मसत्ताही स्थित होती

है और कुछनहींबना और जैसे संकल्प नगर भासताहै; तैसेही इसजगत्को भी जानो क्योंकि, और कुछबनानहीं आत्मसत्ताही जगत्रूपहो भासती है। जगत् यदि किसी कारणसे उपजा होता तो सत्होता पर इसका कारण कोई नहीं पायाजाता इसलिये असत् है, इसका न कोई निमित्तकारण पायाजाताहै और न समवाय कारणपायाजाता है। हे रामजी! जो किसी कारण से न उपजाहो और भासे उसको स्वप्नपुरवत् आकाशमात्र जानो। जिसमें आभास भासती है सो अधिष्ठान सत्ता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो सर्प कुछनहीं रस्सीही सर्प रूपहो भासती है; तैसेही जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता सत्य है और शुद्ध, निर्दुःख, अच्युत, बिज्ञान सदा अपने आप में स्थित है। वही सत्ता जगत् रूपहो भासती है। जैसे जलही तरंग रूप हो भासताहै तैसेही ब्रह्मही जगत्रूपहो भासताहै। हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मका हृदयहै अर्थात् उसीका स्वभावहै ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं। ज्ञानीको सर्वदा ऐसेही भासताहै। जैसे स्वप्ने से जागकर सब अपना आपही भासता है; तैसेही यह जगत् अपना आपहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदाभाववर्णनंनाम
द्विशताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः २८२ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस जगत् का कारण कोई नहीं। जो जगत्ही नहीं तो कारण कैसे हो और कारण नहीं तो जगत् कैसे हो? इससे सर्व ब्रह्मही है। इसी पर एक उपाख्यानहै सो सुनो। हे रामजी! कुशद्वीपके पूर्व और पश्चिम दिशाके मध्य में सुवर्णकी ऐलवती नगरी महा उज्ज्वल रूपहै और उसमें बड़े २ ऊंचे थंभ बनेहैं— मानों पृथ्वी और आकाशको उन्होंनेही पूर्ण कियाहै। उस नगरीका एक प्रगपती राजा है। एक कालमें मैं आकाशसे शीघ्रवेगसे उसके गृहमें आया और उसने भली प्रकार अर्घ्यपाद्यसे प्रीतिपूर्वक मेरा पूजन किया और सिंहासन पर बैठाकर मुझसे एक महा प्रश्न किया कि, जिस प्रश्नसे उपरांत कोई प्रश्न नहीं। राजा बोले; हे भगवन्! तुम संशयरूपी तमके नाशकर्त्ता सूर्यहो। मुझको एक संशय है सो दूरकरो। हे मुनीश्वर! प्रथम तो यह प्रश्नहै कि, जब महाप्रलय होताहै तब कार्य, कारण और सर्व शब्दकी कल्पनाका अभाव होजाता है। उसके पीछे महाआकाश सत्ता शेष रहती है जिसमें वाणीकी भी गम नहीं अवाच्यपदहै तो उससे फिर सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? वहां उपादान कारण और निमित्त कारण तो कोई न रहता तो सृष्टि कैसे होती है? श्रुति और पुराणमें सुनताहूं कि, महाप्रलयसे फिर सृष्टि उत्पन्न होती है। दूसरा यह प्रश्नहै कि, जंबूद्वीपमें कोई मृतक हुआ अथवा किसी और ठौर गयाहुआ मृतक हुआ तो उसका वह शरीर तो वहांही भस्म होजाताहै और परलोकमें पुण्य पापका फल दुःख

सुख भोगताहै तो जिस शरीरसे भोगताहै उस शरीरका कारण तो कोई नहीं ? जो तुम कहो कि, पुण्य और पापही उस शरीरका कारण है तो पुण्यपाप तो आपही निराकार हैं उनसे सार रूप शरीर कैसे उपजे ? और जो तुम कहो परलोक कोई नहीं और पुण्य पाप भी कोई नहीं तो श्रुति और पुराणके वचनों से विरोध होताहै क्योंकि, सबही वर्णन करते हैं कि, मर कर परलोक जाता है और जैसे कर्म किये हैं तैसे भोगताहै ? जिस शरीरसे भोगता है उसका कारण तो कोई नहीं और न कोई पिता है; न माता है ? वह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ ? तीसरा प्रश्न यह है कि, जब यह परलोक में जाता है तो उसके निमित्त दान पुण्य करते हैं उनका फल उसको कैसे प्राप्त होता है ? चतुर्थप्रश्न यह है कि, महाप्रलय में जो ब्रह्माउत्पन्न हुआहै उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ ? जो महाप्रलय में न उपजाहो और अपने आपही से उपजे वह स्वयंभू कहाता है पर महाप्रलय में तो शेष अद्वैत रहाथा उससे जो उत्पन्नहुआ उसे स्वयंभू कैसे कहिये ? जो कहो स्वयंभू अपने आप से उपजता है तो अपनाआप आत्मा है जो सबका अपना आप है; अब क्यों नहीं उससे ब्रह्माउत्पन्न होता है ? पांचवां प्रश्न यह है कि, एक पुरुषथा जिसका एक मित्रथा और एक शत्रुथा और उन दोनोंने प्रयाग क्षेत्रमें जाकर करवट लिया जो इसका मित्रथा उसने वाञ्छाकी कि, मेरा मित्रचिरकाल जीतारहे और चिरंजीव हो और दूसरे ने यह संकल्प धारा कि,मेराशत्रु इसीकालमें मरजावे । हे मुनीश्वर ! एकही कालमें दो अवस्था कैसेहोवेंगी ? छठाप्रश्न यह है कि; सहस्रों मनुष्य ध्यानलगाये बैठेहैं कि; हम इसी आकाश के चन्द्रमा हों सो एकही आकाश में सहस्रों चन्द्रमा कैसेहोंगे ? सप्तमप्रश्न यहहैकि; सहस्रों पुरुष यही ध्यानलगाये बैठेहैं कि, एकसुन्दर स्त्री जो बैठीथी वह हमको मिले पर वहस्त्री पतिव्रता है उसके सहस्र भर्त्ता एककालमें कैसेहोंगे ? अष्टम प्रश्न यह है कि, एक पुरुष था उसको किसीने वरदिया कि, तुम जाकर मृतक हो और सप्तद्वीप का राज्यकरो और किसीने शापदिया कि, तेरा जीव अपनेही गृहमें रहेगा औरमृतक हो बाहर न जावेगा तो ये दोनों एकही कालमें कैसे होंगे ? नवम प्रश्नयह है कि, एक काष्ठका थम्भाथा उसको एकने कहा कि, यह सुवर्णका होजावेगा और वह सुवर्णका होगया; तो सुवर्ण कैसे उत्पन्न हुआ ? उसका कारण कोई न था—कारण बिनाकार्य कैसे उत्पन्न हुआ ? जैसा अन्नका बीजबोते हैं तैसाही अन्न उत्पन्न होता है, और नहीं उगता तो काष्ठसे स्वर्ण कैसे उत्पन्न हुआ ? जो कहो संकल्प से उपजा तो हम भी संकल्पकरते हैं कि, अमुककार्य ऐसे हो पर वह क्यों नहीं होता ? इसलिये जानाजाता है कि, संकल्प से भी उत्पन्न नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जिसप्रकार यह वृत्तांत है सो कहो । एक कहते हैं कि, आगे असतहीथा तो असत्से जगत् की उत्पत्ति कैसेहुई ?

यह मुझको संशय है उसको दूरकरो। जो कोई संतके निकट आता है सो निष्फल नहीं जाता इसलिये कृपाकरके कहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नवर्णनंनाम द्विशताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः २८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे अपने संशयोंका समूह कहा तब मैंने उससे कहा; हे राजन्! ये सर्व संशय जो तुझको हैं सो मैं सब दूर करूंगा। जैसे सम्पूर्ण अन्धकारको सूर्य नाश करताहै। हे राजन्! यह सर्व जगत् जो तुझको भासताहै सो ब्रह्मरूपहै और सदा अपने आपमें स्थितहै। जब उसमें चित्त फुरताहै तब वही चित्त संवेदन जगत्रूपहो भासताहै, इससे जो कुछ आकार भासते हैं सो सब चिन्मात्ररूपहैं;न कोई कार्यहै और न कारणहै; और जो तुम प्रत्यक्ष प्रमाण से संशय करो कि; सब चिन्मात्ररूपहै तो जब यह शरीर मृतक होजाताहै तब चेतता क्यों नहीं; चाहिये कि, उस कालमें भी उसमें ज्ञानहो। हे राजन्! जब जाग्रत्का अंत होताहै पर स्वप्न नहीं आया तब शुद्ध चिन्मात्र रहताहै। फिर जब उसमें स्वप्नेकी सृष्टि भासि आती है तो उस सृष्टिमें कई चेतन भासते हैं; कई मृतक भासते हैं; कई जड़ भासते हैं और स्थावर–जंगम नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है परन्तु और तो कुछनहीं वही चिन्मात्र स्वरूपहै जो अनुभवरूपहो भासती है। कहीं चेतन बोलते और चलते भासते हैं परन्तु वही है? जो चेतनता न होती तो कैसे भासते? जिससे भासते हैं तिससे सब चेतनहैं। तैसेही इस जगत्में भी कहीं बोलते चलते भासते हैं और कहीं शव भासते हैं परन्तु वही चिन्मात्र सत्ताहै; जैसा २ संकल्प उसमें फुरताहै तैसा २ हो भासताहै। हे राजन्! जैसे प्रथम प्रलयसे सृष्टि उत्पन्न हुईथी तैसेही उत्पन्न होतीहै। यह सृष्टि किसीका कार्य नहीं और किसीका कारण भी नहीं–बिना कारण उपजी भासती है। हे राजन्! जो महाप्रलयमें शेष रहताहै सो चिन्मात्र है। उस चिन्मात्रसत्ता से जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरीहै सो ब्रह्मा विराट्रूप होकर स्थित हुई और उसी ने जगत् कल्पनाकी है। उसमें उसने नेति रची है कि, यह पदार्थ इस प्रकारहो तैसेही चित्त संवेदनमें दृढ़ होकर भासित हुआहै उसका नाम जगत्है। वही आत्मसत्ता किंचनरूप होकर जगत्रूप भासती है। हे राजन्! जैसे तेरे संकल्प और स्वप्नेके सृष्टि की आदि शुद्ध आत्मसत्ताथी और वही फुरनेसे पदार्थरूपहो भासती है; तैसेही इसे भी जानो; वास्तवमें न कोई कार्य है और न कोई कारणहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अकारण होती है; तैसेही यह जगत् भी अकारणहै और आदि अन्तके विचारसे रहितहै। जो वर्तमान प्रत्यक्ष प्रमाणको मानते हैं उनको कार्य और कारण प्रत्यक्ष भासते हैं और उनके वचनभी निरर्थकहैं। जैसे अन्धे कूपके दर्दुर शब्द करते हैं; तैसेही वे भी निरर्थक

प्रत्यक्ष प्रमाणसे कार्यकारणके बाद करते हैं। उनको हमारे वचन सुननेका अधिकार नहीं और हमको भी उनके वचन सुनने योग्य नहीं। हे राजन्! जिस शास्त्रके सुनने और जिस गुरुके मिलनेसे संपूर्ण संशय निवृत्त न हों उस शास्त्र और गुरुका कहना भी अन्धकूपके दर्दुरवत् व्यर्थ है। जो परमार्थसत्तासे विमुख हुये हैं उनको यह भ्रम अपनेमें भासताहै और शरीरके मृतकहुये आपको मरता जानता है और फिर वासनाके अनुसार शरीर उपजता और जीताहै तब मानते हैं कि; अब हम उपजे हैं। फिर अपने पुण्य पाप कर्मका अनुभव करते हैं। जैसे स्वप्नेमें कोई अपने साथ शरीर देखताहै तैसेही परलोकमें जीवको अपने साथ शरीर भासि आताहै और तैसेही यह शरीर भी भासिआयाहै। न कोई इसका कारणहै; न पंचभौतिकहै; न इसका शरीर है और न किसी कारणसे भूत उपजे हैं, अपनीही कल्पना आकाररूप होकर भासती है; और आकार कोई नहीं केवल ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै और जैसा संकल्प उसमें दृढ़ होताहै तैसा पदार्थ भासिआताहै। हे राजन्! जो तू इस जगत्को सत्य मानताहै तो सब कुछ सिद्ध होताहै, शरीर भी है; परलोक भी है और नरक स्वर्ग भी है। जैसा यह लोकहै तैसाही परलोकहै; जो यह लोक निश्चयमें सत्यहै तो वह लोक भी सत्यहो भासेगा। और जैसा कर्म करेगा तैसा फल भोगेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नोत्तरवर्णनंनाम
द्विशताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः २८४॥

वशिष्ठजी बोले,हे राजन्! यहसर्व जगत् जो तुझको भासताहै सो सब संकल्पमात्र है। जैसे कोई बालक अपनेमन में वृक्ष और उसमें फूल, फल, और टासकल्पे सो संकल्पमात्र है; तैसेही यह जगत् भी संवेदनरूपी ब्रह्माने कल्पा है और उसके मनमें फुरता है सो संकल्परूप है। जैसे उसने संकल्पकिया है तैसेही स्थित है और जैसे उसमें क्रमरचा है कि, इस प्रकार यह पदार्थ होगा सो तैसेही स्थित हुआ है और देश, काल, पदार्थ भी तैसेही स्थित हैं। इसका नाम नेति है। हे राजन्! तूने प्रश्न कियाथा कि, जो पुरुष अरूपहै और दूरहै यदि उसके अर्थ किसीने दिया तो उसको कैसे पहुंचता है और स्वरूप और स्वरूपका कैसे संयोग है? जो कोई शुद्ध संवेदन पुरुष है उसको सब पदार्थ निकट भासते हैं और जो कोई पुरुष मनोराज कल्पता है और उसमें बड़ादेश रचता है सो दूरसे दूरमार्ग है तो जो उसदेशके बासीहैं उनको देशकी अपेक्षासे दूसरा देश दूरसे दूर है परन्तु जिसका मनोराज है उसको तो सब निकट है और अपना आपही रूप है। इसप्रकार जो शुद्धसंवेदनरूप है उसके अर्थ जो कोई देताहै--ईश्वरअर्थ अथवा देवताकेअर्थहो--उसको निकटसे निकट सबअपने में भासता है। आदिनेति इसीप्रकारहुई है कि, शुद्धसंवेदन को सब अपने निकट से

निकटही भासताहै क्योंकि; सब संकल्पहै और जैसी रचना संकल्पमें रचतीहै तैसेही होतीहै—संकल्प में क्या नहीं होता ? थम्भेका प्रश्न जो तूने कियाहै कि, काष्ठका था सुवर्णका कैसेहोगया; सोभी सुनो। हे राजन्! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्माहै उसने अपने मनोराजमें नेतिकी है कि; तपादिकसे बर और शाप सिद्ध होता है। उसके कहे से जो काष्ठ का थम्भा स्वर्ण होगया तो तू बिचारकर देख कि, किसकारण से काष्ठका सुवर्ण हुआ। वह केवल संकल्पमात्र है; जो संकल्पसे भिन्नकुछभी होता तो काष्ठका सुवर्ण न होता। यह सर्व बिश्व संकल्परूप है; जैसा संकल्प दृढ़ होताहै, तैसाही हो भासताहै। जैसे तू अपने मनोराजमें संकल्प करैहै कि,यह ऐसेरहे और जो उससे और प्रकारकरे तोभी होजावे सोहोता है; तैसेही वर और शापभी और प्रकार होजातेहैं। न और कोई जगत्है, न कार्यहै और न कारणहै वही आत्मसत्ता ज्योंकीत्योंहै; जैसासंकल्प जिसमें फुरताहै तैसाहोभासताहै तू पूँछताहै कि, असत्यसे फिर जगत् कैसे उत्पन्न होताहै जो आपही न हो तो उससे जगत् कैसेप्रकटे ? हे राजन्! असत्य इसीका नामहै कि,जो जगत् असत्यथा इसलिये श्रुतिने उसे असत्यकहा। जो आदि असत्यथा इसलिये असत्यता जगत्की कहीहै पर आत्मातो असत्य नहींहोता ? सबका शेषभूत आत्माहै; जबउसमें संवेदन फुरतीहै तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप होजाताहै परन्तु उससंवेदन के फुरने और मिटनेमें ब्रह्म ज्योंका त्यों है; उसका अभाव नहीं होता। जैसे जलमें तरंग उपजता है और फिर लीन होजाता है परन्तु उसके उपजने और मिटनेमें जल ज्योंका त्योंहै और तरंग उसके आभास फुरते हैं। जैसे तू मनोराजसे एकनगर कल्पे और फिर संकल्प छोड़दे तब संकल्परूप नगरका अभाव होजाताहै परन्तुसदा अबिनाशीरहताहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टिउपजतीभीहै और लीनभीहोजातीहै परन्तु अधिष्ठान ज्योंकात्यों है; और जैसे रत्नोंका प्रकाश उठताहै और लीनभी होजाता है परन्तुरत्न ज्यों का त्यों होता है; तैसेही आत्मा विश्व के भाव अभावमें ज्यों का त्यों रहता है पर उसका आभास जगत् उपजता मिटता भासताहै। उपजताहै तब उत्पत्ति भासती है और जब मिटता है तब प्रलय होजाती है परन्तु उभय आभासहैं। जैसे वायु फुरती है तब भासती है और ठहरजाती है तब नहीं भासती परन्तु वायु एकहै; तैसेही आत्मा एकही है फुरने का नाम उत्पत्ति है और न फुरने का नाम जगत् की प्रलय है सो सर्व किंचनरूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नोत्तरद्वितीयोनाम द्विशताधिकपंचाशीतितमस्सर्ग्गः २८५॥

वशिष्ठजी बोले; हे राजन्! तूने प्रयागके जो दो पुरुषों का प्रश्नकिया है उसका उत्तर सुन। जोउसका शत्रु बनगयाथा सोतो उसका पापथा और जोउसका मित्रबन

गया था सो उसका पुण्यथा । प्रयाग तीर्थ धर्मक्षेत्रथा । हे राजन् ! पापरूप वासनाके अनुसार मृत्यु भासतीहै पर पुण्यरूपी जो मित्रहै सो पापरूपी शत्रुको रोंकताहै और पुण्यरूपी तीर्थके बलसे हृदयसे अल्परूपी पाप वेगसे भासता है । जब मृत्यु आतीहै तब वह आपको मरता जानता है और भाईजन कुटुम्बी रुदनकरते हैं पर जब अपनी ओर देखता है तब जानता है कि, मैं तो मुआनहीं । जब मृतक स्वर्गकी ओर देखताहै तब आपको मुआजानता है और भाईजन रुदन करते हैं । इसप्रकार उसको मरना भासता है और यह देखता है कि; भाईजन जलानेचले हैं; उन्होंने अग्निमें मुझको डालाहै और मैं जलताहूं । जब फिर पुण्यकी ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआनहीं जीताहूं और जब फिर पापकी ओर देखता है तब जानता है कि; मैं मुआ हूं और मुझको यमदूत लेचलेहैं; यह परलोक है और यहां मैं सुखदुःख भोगता हूँ । जब फिर पुण्यकी ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआनहीं; जीताहूँ; यह मेरे भाई जनबैठे हैं और वहां मेरा व्यवहार चेष्टा है । इसप्रकार उभय अवस्थाको पुरुष देखता है । जैसे संकल्पपुर और स्वप्ननगरमें उभय अवस्थादेखे और एकही पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टा देखता है । कहीं जीता देखता है; कहीं मृतक देखता है; कहीं व्यवहार देखता है और कहीं निर्व्यापार इत्यादिक नानाप्रकार की चेष्टा एकही पुरुष में होतीहैं; तैसेही एकही पुरुषको पुण्यपाप की बासना से जीना मरना भासता है । हे राजन् ! यह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही रूप हो भासता है । परलोक जाननाभी अपने बासना के अनुसार भासता है और जो कुछ उसके निमित्त पुत्र बांधव देते हैं सो पुत्र बांधव भी उसकी पुण्य पाप वासनासे स्थित हुये हैं । वे जो कुछ इसके निमित्त करते हैं उनसे यह सुख, दुःख,नरक, स्वर्गभोगता है पर बास्तव में कोई बांधव और पुत्र नहीं; उसकी बासना ही नानाप्रकार के आकार को धारकर स्थित हुई है । हे राजन् ! सहस्र चन्द्रमाका जो तूने प्रश्न किया है उसका उत्तर सुन । सहस्रभी इसी आकाश में स्थित होते हैं और अपनी अपनी वासना से कलासंयुक्त चन्द्रमा हो बिराजते हैं परन्तु एक को दूसरा नहीं जानता परस्पर अज्ञात हैं—जो अन्तबाहक दृष्टि से देखे उसको भासते हैं । हे राजन् ! जो कोई ऐसी भावना करे कि, मैं उसके मंडल को प्राप्त होऊं तो तत्कालही जा प्राप्त होता है । जैसे एकही मन्दिर में बहुत मनुष्य सोये हों तो उनको अपने अपने स्वप्ने की सृष्टि भासती है और अन्योन्य विलक्षणहै—एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता; तैसेही एक आकाशमें सहस्रचन्द्रमा बनते हैं । जैसे इन्द्र ब्राह्मणके दशपुत्र दशब्रह्माहो बैठे थे तैसेही जिसकी कोई तीव्र भावना करताहै वही होजाताहै । जो कोई भावनाकरे कि;हम इसी मंदिरमें सप्तद्वीपका राज्यकरें तो वैसाही होजाताहै क्योंकि; अनुभवरूपी

कल्पवृक्षहै उसमें जैसी तीव्रभावना होती है, तैसीही हो भासती है। बरके वशसे उस पुरुषको सप्तद्वीपका राज्य प्राप्तहुआ और शापके वशसे उसका जीव उसी मन्दिर में रहकर द्वीपका राज्य करतारहा। जैसे स्वप्नेमें राज्य करे हैं तैसेही अपने मन्दिर में अपनी संवेदनही सृष्टिरूपहो भासती है। इसी प्रकार जो एक स्त्रीकी भावना करके सहस्रपुरुष ध्यान लगाये बैठे थे कि;हम उसके भर्त्ताहों सोभी होजाते हैं। हे राजन्! उनकी जो तीव्रभावना है वही स्त्रीकारूप धारकर उनको प्राप्तहोगी वे जानेंगे कि; वही स्त्री हमको प्राप्त हुईहै। यह जगत् केवल संकल्पमात्रहै, संकल्पसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं; और सब चिदाकाशरूपहै अपनेही अनुभवसे प्रकाशताहै और जैसे उसमें संकल्प फुरताहै तैसेही हो भासताहै। पृथ्वी, जल, तेज आदिक तत्त्व कोई नहीं आत्मसत्ताही इसप्रकार स्थितहै जो परमशांत,निराकार,निर्विकार और अद्वैतरूप है। राजा बोले; हे मुनीश्वर! जगत्के आदि जो आत्मसत्ताथी सो किस आकाररूप देहमें स्थित थी; देह बिना तो स्थित नहीं होती? जैसे आधार बिना दीपक नहीं रहता आधार होताहै तो उसमें जागताहै तैसेही आत्मसत्ता किसमें स्थितथी? वशिष्ठजीने कहा, हे राजन्! जितने आकार तुझको भासते हैं और जिनको देखकर तूने प्रश्न उठाया है सो है नहीं; ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। जिन भूतोंसे बना देह भासताहै सो भूत भी मृगतृष्णाके जलवत्है। जैसे रस्सी में सर्प; सीपीमें रूपा; आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्रहै क्योंकि, इनका अत्यन्त अभावहै; तैसेही यह भूताकार ब्रह्ममें भ्रम से भासते हैं—ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। तूने पूछा था कि; ज्यों स्वयंभू अपने आपसे उपजते हैं तो अब क्यों नहीं होता सो,हे राजन्! कई उसके सदृश उत्पन्न होते हैं पर वास्तवमें कुछ उपजा नहीं और नानाप्रकार भासताहै परन्तु नानाप्रकार नहीं हुआ। जैसे स्वप्नेमें सदा तू देखताहै कि; अद्वैत अपना आपही नानारूपहो भासता है और पर्वतपर दौड़ता फिरताहै सो किस शरीरसे दौड़ताहै और क्या रूप होताहै? जैसे वह पर्वत और शरीर आकाशरूप होताहै और भ्रमसे पिंडाकार भासताहै;तैसेही यह जगत् भी आकाशरूपहै भ्रमसे पिंडाकार भासताहै। हे राजन्! तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख कि, यह सब जगत् तेरा अनुभव आकाशहै स्वप्नेका दृष्टांत भी मैंने तुमसे चेतनेके निमित्त कहा है। स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै; जब उसमें आभास संवेदन फुरती है तब वही जगत्रूपहो भासती है और जब आभास संकल्प मिटजाता है तब प्रलयकाल भासता है। वास्तवमें न कोई उत्पन्न होताहै और न प्रलय होताहै ज्योंकीत्यों आत्मसत्ता स्थितहै। जैसे एक निद्राके दोरूप होतेहैं-एक स्वप्ना और दूसरा सुषुप्ति पर जाग्रत्में यह दोनों आकाशमात्र होती हैं; तैसेही आभासकी दो संज्ञा होती हैं—एक जगत् और दूसरी

महाप्रलय पर आत्मरूपी जाग्रत्‌में दोनोंका अभाव होजाता है। हे राजन्! तू स्वरूप में जागकर और कलनाको त्यागकर देख कि, सब आत्मरूप है—और कुछ नहीं। हे रामजी! इस प्रकार मैं राजाको कहकर उठखड़ा हुआ तब उसने भली प्रकार प्रीतिसंयुक्त मेरा पूजन किया और जब वह पूजन करचुका तब मैं जिस कार्यके लिये आया था सो कार्य करके स्वर्गको चलागया॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकषडशीतितमस्सर्ग्गः २८६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् सब चिदाकाश रूपहै और दूसरा कुछबना नहीं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि,सब चिदाकाश है बना कुछ नहीं तो सिद्ध, साधु, विद्याधर,लोकपाल,देवता इत्यादिक जो भासते हैं; कुछ बने क्योंनहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये जो सिद्ध, साधु,विद्याधर, देवता लोक और लोकपाल हैं सो वास्तवमें कुछ उपजे नहीं; ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै और ये जो प्रत्यक्ष भासते हैं सो शुद्धसंकल्पसे रचेहुये हैं परन्तु वास्तवमें कुछ बनेनहीं,भ्रमसे इन की सत्यता भासती है। जैसे मृगतृष्णाकी नदी, रस्सीमें सर्प, सीपीमें रूपा और संकल्पनगरहै; तैसेही आत्मामें यह जगत् है। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में नानाप्रकारकी रचना भासती है परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जगत्‌है। जो पुरुष इसको देखकर सत्य मानताहै वह असम्यक्‌दर्शी है और जो आत्माको देखता है वही देखताहै और वही सम्यक्‌दर्शी है। हे रामजी! ये लोक और लोकपाल जगत्सत्तामें ज्योंकेत्यों हैं और जैसे स्थितहैं तैसेही हैं परन्तु परमार्थ से कुछ उपजेनहीं, अनुभवसत्ताही संवेदन से दृश्यरूपहो भासती है और द्रष्टाही दृश्यरूपहो भासता है परन्तु स्वरूपसे भिन्न कुछ नहीं हुआ। जैसे आकाश और शून्यता और अग्नि और उष्णतामें भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत्‌में भेद नहीं। हे रामजी! अब एक और वृत्तांत तुम सुनो। स्वप्नेमें जैसे अब हमहैं तैसेही एक आगे भी चित्त प्रतिमा हुईथी। पूर्व एक कल्प में तुम और हम हुयेथे। तुम मेरे शिष्यथे और मैं तुम्हारा गुरुथा। तूने एक बनमें मुझ से प्रश्न किया था कि, हे भगवन्! एक मुझको संशयहै सो नाशकरो। महाप्रलयमें नाश क्या होताहै और अविनाशी क्या रहताहै? तब मैंने कहाथा, हे तात! जितना शेष विशेषरूप जगत्‌है सो सब नाश होजाताहै—जैसे स्वप्नेका नगर सुषुप्तिमें लीन होजाताहै और निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है। क्रिया, काल, कर्म,आकाश, पृथ्वी, अप,तेज, वायु, पहाड़,नदियां और इनसे लेकर जो कुछ जगत् क्रिया,काल और द्रव्य संयुक्तहै वह सब नाश होजाता है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र ये जो कार्यके कारणहैं उनका नाम भी नहीं रहता। संवेदन शक्ति जो चैतन्यका लक्षणरूपहै सोभी नहीं रहती;

केवल अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाशही शेष रहताहै। शिष्य बोले; हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्य होती है उसका नाश नहीं होता और जो असत्य होती है सो आभासरूपहै पर यह जगत् तो विद्यमान भासताहै सो महाप्रलयमें कहांजावेगा? गुरु बोले, हे तात! जो सत्य है उसका नाश कदाचित् नहीं होता और जो असत्य है उसका भावनहीं; इसलिये जितना कुछ जगत् तुझको भासता है सो सब भ्रममात्रहै इसमेंकोई वस्तुभी सत्य नहीं भासती है परन्तु जैसे मृगतृष्णाका जल स्थित नहीं होता और दूसरा चन्द्रमा व आकाश में तरुवरे भ्रममात्रहैं; तैसेही यह जगत् भी जो भासता है सो भ्रममात्र है। जैसे स्वप्ने का नगर प्रत्यक्ष भी भासताहै परन्तु भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भी भ्रमरूपजानो। हे तात! आत्मसत्ता सर्वदा काल सर्वत्र अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने में जाग्रत् का अभाव होताहै और जाग्रत् में स्वप्ने का अभाव होता है तो सृष्टि कहां जाती है? जैसे जाग्रत् में स्वप्नेकी सृष्टिका अभाव होजाताहै; तैसेही महाप्रलयमें इसका अभाव होजाताहै। शिष्यबोले; हे भगवन्! यह जो भासता है सो क्याहै और जो नहीं भासता सो क्याहै? इसकारूप क्याहै और चिदाकाशसे कैसे हुआहै? गुरुबोले; हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाशमें किंचन संवेदन फुरतीहै तब जगत्रूप हो भासती है इससे इसका रूपभी चिदाकाशहीहै– चिदाकाश से भिन्न कुछनहीं सृष्टि और प्रलय दोनों उसीके रूप हैं; जब संवेदन फुरती है तब सृष्टि हो भासती है और जब अफुर होती है तब प्रलयरूप हो भासती है पर दोनों उसके रूपहैं। जैसे एकही बपुमें दो स्वरूप हैं–दंतों से शुक्ल लगता है और केशोंसे कृष्णलगता है; तैसेही आत्मामें सर्ग और प्रलय दो रूप होतेहैं पर दोनों आत्मरूप हैं। जैसे एकही निद्राकी दो अवस्था होतीहैं–एक स्वप्ना और दूसरी सुषुप्ति पर जाग्रत् में उभयनहीं; तैसेही निद्रारूप संवेदन में सर्ग और प्रलय भासतीहै पर जाग्रत्रूप आत्मामें दोनों का अभाव है। हे तात! जो कुछ तुझको भासताहै सो सब चिदाकाश रूपहै–और कुछ नहीं ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेमें अपना अनुभवही जगत्रूपहो भासता है; तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। शिष्य बोले; हे भगवन्! जो इसी प्रकार है कि; द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासताहै तो और जगत् तो कुछ न हुआ सर्व वही है? गुरु बोले; हे तात! इसीप्रकार है। जगत् कुछ बस्तु नहीं चिदाकाशही जगत्रूप हो भासता है और आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है और कुछनहीं क्योंकि; सब उसीका किंचन है और सर्वमें सर्वदा काल सर्व प्रकार वही सृष्टि होकर फुरती है और किसीमें किसीकाल किसीप्रकार कुछ हुआ नहीं आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै और जो कुछ जगत् भासताहै उसे वही रूप जानो। जिसको तू सर्ग और प्रलय कहताहै सो सब आत्मसत्ताके नामहैं वही सर्वमें सर्वदा काल सर्व प्रकार स्थितहै। एकही

जो परमदेवहै वही घटपट रूपहुआहै। पर्वत, पट, जल, तृण, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, स्थावर, जंगम, अस्ति, नास्ति, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल, मूर्त्ति, अमूर्त्ति, बंध, मोक्ष आदि सर्व शब्द अर्थसे जो पदार्थ सिद्ध होते हैं सो सर्व आत्मरूपहैं और सर्वमें सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्माही है और जिसमें सर्वदा काल सर्वप्रकार नहीं वहभी आत्माही है जो सदा ज्योंकात्योंहीं है। जैसे स्वप्नेमें जोकुछभासताहै सो सब आत्मसत्ताहीहै और दूसरा कुछ बना नहीं। हे तात! तृणही कर्त्ता है; तृणही भोक्ता है और तृणही सर्वेश्वर है। घट कर्त्ता है, घट भोक्ता है और घटही सर्वका ईश्वर है। पट कर्त्ता है; पट भोक्ता है और पटही परमेश्वर है। नर कर्त्ता है नर भोक्ता है और नरही सर्वका ईश्वरहै। इसी प्रकार एक एक वस्तु नामसे जो वस्तुहै सो करता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप है। ब्रह्मासे लेकर तृण पर्य्यंत जो कुछ जगत् भासताहै सो सर्व आत्मरूपहै और क्षय, उदय, भीतर, बाहर, कर्त्ता, भोक्ता सब ईश्वरहै सो विज्ञानमात्रहै। कर्त्ता–भोक्ता वही है और न कर्त्ता है, न भोक्ता भी वही है। विधिमुख करके भी वही है और निषेध भी वही है। शुद्धदृष्टिसे सब चिदात्माही भासता है जो सर्व दुःखसे रहित है। जिनको आत्मदृष्टि नहीं प्राप्त हुई उनको भिन्न भिन्न जगत् भासता है जो अनुभवसे भिन्न नहीं है। ऐसे जानकर अपने स्वरूपमें स्थित होरहो। हे रामजी! इस प्रकार मैंने तुम से कहाथा परन्तु उससे तुमको अभ्यास की ऊनता से बोध न हुआ इसलिये वही संस्कार अब तुमको प्राप्तहुआ है और इसीकारण से अबतुम जागे हो। हे रामजी! अब तुम अपने स्वरूपमें स्थित होकर कृतकृत्य हुयेहो इसलिये अपनी राजलक्ष्मी को भोगो; प्रजाकी पालना करो और हृदयसे आकाशवत् निर्लेप रहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपूर्वरामकथावर्णनंनाम
द्विशताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः २८७॥

वाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब बशिष्ठजी इसप्रकार रामजीसे कह चुके तब आकाशमें जो सिद्ध और देवता स्थित थे वे फूलोंकीबर्षा करने लगे–मानोंमेघ बरफ की बर्षा करतेहैं अथवा आकाश कंपायमान हुआहै उससे तारेगिरतेहैं–जबवे पुष्पों की बर्षा करचुके तब राजा दशरथ उठखड़ेहुये और अर्घ्यपाद्यदे और पूजनकरहाथ जोड़के कहनेलगे कि; हे मुनीश्वर! बड़ा कल्याण और बड़ा हर्ष हुआ जो तुम्हारे प्रसाद से हम आत्मपदको प्राप्तहोकर कृतकृत्य हुये। चित्तका बियोग हुआ है इससे दृश्य फुरने का भी अभाव हुआहै और हम अचित; चिन्मात्रहैं। अबहम परमपदको प्राप्तहुये हैं और हमारे सब सन्ताप मिटगये हैं। संसाररूपी जो अन्धमार्ग था उससे थकेहुये अब हम बिश्रान्तिको प्राप्तहुये हैं। अब मैं पहाड़की नाईं अचलहुआहूँ; सब आपदा से तरगया हूँ और जोकुछ जाननाथा सो जानरहा हूँ। हे मुनीश्वर! तुमने बहुत

युक्तिसे दृष्टांत देकर जगाया है अर्थात् शून्यके दृष्टांत, सीपीमेंरूपा; मृगतृष्णा जल; रस्सीमें सर्प; आकाशमें दूसरा चन्द्रमा और नावपर नदीके किनारोंका भासना; जलमें तरंग; स्वर्ण में भूषण; बायु का फुरना; गन्धर्वनगर; संकल्पपुर आदि दृष्टान्त कहेहैं जिनसे हमने तुम्हारीकृपा से जानाहै कि; आत्मसत्तासे भिन्नकुछनहीं। बाल्मीकिजीबोले कि, जब इसप्रकार दशरथ कहचुके तबरामजीउठे और हाथजोड़कर इसप्रकार कहनेलगे कि, हे मुनीश्वर! तुम्हारी कृपासे मेरा मोह नष्टहुआ है। अब मैं परमपदको प्राप्तहुआ हूँ; किसीमें मुझको न राग है और न द्वेषहै और परम शांति को प्राप्तहुआ हूँ। न अब मुझे किसीके करनेसे अर्थ है और न करने में कुछ अनर्थहै– मैं परमशांतपदको प्राप्तहुआ हूँ। हे मुनीश्वर! तुम्हारे बचनों को स्मरण करके मैं आश्चर्यको प्राप्तहोकर हर्षित होताहूँ। मेरे सब संदेह नष्ट होगयेहैं और अब मुझको और नहीं भासता सर्बब्रह्महीं भासताहै। लक्ष्मण बोले, हे भगवन्! मैं संतोंकेबचन इकट्ठे करता रहा था और संपूर्ण जो मेरे पुण्य थे सो अब इकट्ठे हुयेथे जिन सबका फल अब उदयहुआ है। तुम्हारी कृपासे अब मैं सर्व संशयोंसे रहित होकर परमपदको प्राप्तहुआ हूँ। तुम्हारे बचन चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल हैं किन्तु उनसे भी अधिक हैं इससे मैंने परमशांति पाई है और मेरेदुःख सन्ताप सर्बनष्टहुये हैं। शत्रुघ्न बोले; हे मुनीश्वर! जगत् और मृत्युका जो भयथा वहतुमने दूरकियाहै और अपने अमृतरूपी बचनों का सुधापान कराया है। अब हमारे संशय सब नष्टहुये हैं और हम आत्मपद को प्राप्त हुयेहैं। हमारे जो चिरकाल के पुण्यथे उनकाफल आजपाया है। बिश्वामित्र बोले; हे मुनीश्वर! सर्ब तीर्थोंके स्नान करने और दूसरे कर्मों से भी मनुष्य ऐसा पवित्र नहीं होता जैसे तुम्हारे बचनों से हम पवित्र हुयेहैं। आज हमारे श्रवण पवित्र हुयेहैं। नारदजी बोले; हे मुनीश्वर! ऐसा मोक्षउपाय मैंनेदेवतों और सिद्धोंके स्थान में भी नहीं सुना और ब्रह्माके मुखसे भी नहीं सुना जैसा कि; तुमने उपदेश कियाहै। इसके श्रवणकियेसे फिर संशय नहीं रहता। फिर दशरथबोले; हे मुनीश्वर! आत्मज्ञान ऐसी सम्पदा कोई नहीं; इससे तुमने परम सम्पदा हमको दीहै जिसके पायेसे फिर किसी पदार्थ की इच्छा नहींरही। अबतो हम अपने स्वभावमें स्थित हुये हैं और संपूर्ण कर्म हमको छोड़गये हैं। हमारे बहुत जन्मों के पुण्यइकट्ठे हुयेथे उनके फलसे ये तुम्हारे पावन बचन सुने हैं। रामजी बोले; हे मुनीश्वर! बड़ा हर्ष हुआ कि, सर्व सम्पदा का अधिष्ठान प्राप्तहुआ है और सर्ब आपदा का अन्तहुआ है। ज्ञानसे रहित जो अज्ञानीहैं वे बड़ेअभागी हैं। जो आत्मपद को त्यागकर अनात्मपदार्थ की ओर धावते हैं वेभी यत्नकरके प्राप्त होतेहैं पर उनसे बिमुख हो तब आत्मपद प्राप्त होताहै। उसी आत्मपदकोपाकर मैं शांतिमान्

होकर हर्षशोकसे रहित आहूँ और मैंनेअचलपद पायाहै और अजित अविनाशी सदा अपने आपमें स्थितहूँ । तुम्हारीकृपासे आपको ऐसा जान ाहूँ । लक्ष्मण बोले; हे मुनीश्वर ! सहस्र सूर्य एकत्र उदय हों तौ भी हृदय के तमको दूर नहींकरसक्के पर वह तम तुमने दूरकिया है; और सहस्र चन्द्रमा इकट्ठे उदय हों तौभी हृदयकी तपन निवृत्त नहीं करसक्के पर तुमने संपूर्ण तपन निवृत्तकी है । हम निःसतापपदको प्राप्त ुयेहैं । बाल्मीकिजी बोले; हे साधो ! जब इस प्रकार सब कहचुके तब बशिष्ठ ी ने कहा । हे रामजी ! इस मोक्ष उपाय कथाके सुनकर सर्व ब्राह्मणोंका यथायोग्य पूजन करो और दानकरो और ो इतर जीवहैं वे भी यथायोग्य यथाशक्ति पूजनकरते हैं। तुम तो राजाहो । जब इसप्रकार बशिष्ठजीने कहा तब राजादशरथने उठकर सहस्र मथुराबासी विद्यावान् ब्राह्मणों को भोजनकराया और दक्षिणा, बस्त्र, भूषण, घोड़े, गांव आदिकदिये और यथायोग्य पूजन किया । निदान बड़ा उत्साहहुआ; अंगना नृत्य करनेलगीं और नगारे, सहनाई आदि बाज बजने लगे और चक्रवर्ती राज होकर दशरथ ने उत्साह किया । इसप्रकार सातादि तक ब्राह्मणों, अतिथियों और निर्धनों को द्रव्यदेक राजाने पूजनकिया और अन्न और वस्त्रआदिकसे सबको प्रसन्नकिया ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेउत्साहवर्णनंनाम
द्विशताधिकअष्टअष्टाशीतितमस्सर्ग्गः २८८ ॥

बाल्मीकिजी बोले; हेभरद्वाज ! इसप्रकार वशिष्ठमुनिके वचन सुनकर सब रघुवंशी कृतकृत्यहुये । जैसे रामजी सुनकर संशय रहित जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं; तैसेही तुम भी विचरो । यह मोक्ष उपाय ऐसाहै कि, जो अज्ञानी श्रवणकरे तो वहभी परमपदको प्राप्तहो । तुम्हारी क्या बातहै ुम तो आगेसे भी बुद्धिमानहो । जिस प्रकार मुझसे ब्रह्माजीने कहाथा सो मैंने तुमको सुनायाहै । जैसे रामजी आदिक कुमार और दश-रथ आदिक राजा जीवन्मुक्त ोकर बिचरे हैं; तैसेही तुम भी बिचरो । उनमें मोह भी दृष्टि आत था परन्तु वे स्वरूपसे चलायमान नहीं हुये । ज्ञान ऐसा सुख और कोई नहीं और अज्ञान ऐसा दुःखभी कोई नहीं । इससे अधिक कैसे कहिये । यह जो मोक्ष उपाय मैंने तुमसे कहाहै सो परमपावनहै; संसार समुद्रसे पार करनेवालाहै; दुःखरूपी अंधकारको नाशकर्त्ता सूर्यरूपहै और सुखरूपी कमलकी खानिका तालहै । जो पुरुष इसका बारम्बार बिचारकरे वह यदि महामूर्खहो तौभी शांतपदको प्राप्तहो । जो कोई इस मोक्ष उपायको पढ़ेगा; कहेगा; सुनेगा; लिखेगा अथवा लिखकर पुस्तकदेगा उसके हृदय जो कामना होगी वह पूर्ण होगी; ब्रह्मलोकको प्राप्तहो ा और वह राजसूय यज्ञका फलपावेगा और फिर बिचारकर ज्ञानपाकर मुक्तहोगा । हे अंग ! यह जो मो-क्षउपाय है सो बड़ाशास्त्र है; इसमें बड़ी कथा है और नानाप्रकार की युक्ति हैं जिन

कथाओं और युक्तियों से वशिष्ठजीने रामजीको जगाया था सो मैंने तुझको सुनाय है । अपने उपदेश से उन्होंने उनको जीवन्मुक्त कियाथा और कहाथा कि; तुमराज लक्ष्मी भोगो । वही मैंने भी तुमसे कहाहै कि; जीवन्मुक्त होक अपने तप मेंमें साव-धान होरहो औ निश्चय आत्मसत्तामें रखना । जिस उपदेशसे रघुबन्शी कृत हुये हैं सो मैंने तुमसे ज्योंकात्यों कहा है। इस निश्चय को धारकर कृतकृत्य होरहो। इसमें जितने इतिहास और कथाहैं उनके भिन्न २ नामसुनो। वैराग्य प्रकरणमें संपू । रामजी के प्रश्न हैं; मुमुक्षु प्रकरण में शुक निर्बाणही कहा है; उत्पत्ति प्रकरणमें ये आठ आख्यान कहे हैं; एक आकाशजका; दूसरा लीलाका; तीसरासूचीका; चतुर्थ इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रका; पंचम कृत्रिम इन्द्र और अहल्या का; षष्टम चितोपाख्यान: सप्तम बाल्मीकिकी कथा और अ म सांबरका आख्यान; स्थिति प्रकरणमें चार आख्यान हैं; एक भृगुके सुतक; दूसरा दामब्या और लकटका; तीसरा भीम, भास, दृटका और चतुर्थ दासूरका । उपशम प्रकरणमें एकादश आख्यान कहे हैं; एक ज-नककी सिद्धगीता;दूसरा पुण्यपावन;तीसराबलिको बिज्ञानकी प्राप्तिका वृत्तांत;चतुर्थ प्रह्लादविश्रांति; पंचमगाधिका वृत्तांत; षष्टम उद्दालक निर्वाण; सप्तम स्वर्गनिश्चय, अष्टम परिघ निश्चय; नवम भास; दशम बिलाससम्वाद और एकादश बीतह । निर्वाण प्रकरणमें सप्तविंशति आख्यान कहे हैं; भुशुंडि और वशिष्ठका; महेश औ वशिष्ठका; सिलाकोशका; उपदेश अर्जुन; स्वप्नसत्यरुद्र; वैतालका; भगीरथका; गंगा अवतार; शिखरध्वजका; वृहस्पतिकच प्रबोध; मिथ्यापुरुषका; शृंगीगणका; इक्ष्वाकु निर्वाण; मृगव्याधि दृष्टांत; बलवृहस्पति; मंकीनिर्वाण; विद्याधरका; हरिणोपाख्यान: आख्यानोपाख्यान; विपश्चितकी कथा; शिविका; शिलाका; इन्द्र ब्राह्मणके पुत्रों का: कुन्ददन्तका; म प्रश्न उत्तरबाक्य;शिष्यगुरु; महोत्सव और ग्रंथप्रशंसाफल चतुष्टय प्रकरणों में सब पचास आख्यान वर्णनकियेगये हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमहारामायणेवशिष्ठरामचन्द्रसम्बादेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षोपाय वर्णनंनामद्विशताधिकएकोननवतितमस्सर्गः २८९ ॥

समाप्तोयंश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेउत्तरार्द्धः ॥

इति ॥

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई,)के छापेखाने में छापागया जनवरी सन् १८९० ईसवी ॥